

श्रीमद्भगवत्

(तृतीय-खण्ड — दशम-स्कन्ध)

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीमद्कृष्णद्वैपायनवेदव्यास-प्रणीतम्

श्रीमद्भागवतम्

(तृतीय-खण्ड — दशम-स्कन्ध)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके
प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य-केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

श्रीमद्भागवतम् (तृतीय-खण्ड — दशम-स्कन्ध)

रचयिता — श्रीमद्वृष्णद्वैपायनवेदव्यास

सम्पादक — श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रकाशक — गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन, वृन्दावन, (उ०प्र०)

मुद्रक — फर्स्ट वर्ल्ड प्रिंट पैक एल०एल०पी०, फरीदाबाद

प्रथम संस्करण — श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजकी तिरोभाव-तिथि
७ नवम्बर, २०२१

ISBN: 978-81-950106-2-2

© २०२१ गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्राप्ति-स्थान—

१. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ०प्र०)	९७१९०७०९३९
२. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ०प्र०)	९२१९४७८००१
३. श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ, गोवर्धन (उ०प्र०)	(०५६५)२८१५६६८
४. श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ, जनकपुरी, नई दिल्ली	९५०१६५८२५७
५. श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, नवद्वीप (प०ब०)	९०६४८५१२५८
६. श्रीगोपीनाथ-भवन, वृन्दावन (उ०प्र०)	९६३४५६३७३९
७. जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ, पुरी (ओड़िशा)	९७७६२३८३२८
८. श्रीराधे-कुञ्ज, वृन्दावन (उ०प्र०)	८७९१५५७२८०
९. श्रीराधामाधव गौड़ीय मठ, फरीदाबाद (हरियाणा)	९९११२८३८६९

Please visit us at www.purebhakti.com & www.harikatha.com

समर्पण

भक्त-भागवतके सम्पूर्ण आनुगत्यमें ही ग्रन्थ-भागवतके अनुशीलनका दृढ़ अनुमोदन करनेवाले, भागवतके सिद्धान्तोंमें विशेष पारदर्शी, प्राकृत कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाके लिए भागवतका पाठ करनेवालोंके लिए पाषण्ड-गजैकसिंह-स्वरूप और शुद्ध-भागवत-परम्पराका आनुगत्य स्वीकारकर समस्त अप-उप-छलादि धर्मरूपी मेघके आवरणसे गौडीय गगनमें भागवत-अर्ककी प्रभा-राशिको निर्मुक्त रखनेवाले 'वैकुण्ठप्रिय' अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी प्रेरणासे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

श्रीगुरुदेवकी अपनी ही वस्तु उन्हींके श्रीकरकमलोंमें समर्पित है।

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

प्रकाशन-मण्डली

अनुवादिका

श्रीमती डा० मधु खण्डेलवाल 'साहित्याचार्या'
एम०ए० (संस्कृत) पी-एच०डी०

टंकण

श्रीपाद भक्तिवेदान्त सागर महाराज
श्रीमान् अच्युतानन्द दासाधिकारी
श्रीमान् कमलाकान्त दासाधिकारी
श्रीमती वृन्दा देवी दासी

संयोजना

श्रीपाद भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
श्रीमान् अमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रूफ-संशोधन

श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराज
डा० मधु खण्डेलवाल

विशेष सहयोग

श्रीमान् सुबलसखा दासाधिकारी
सुश्री राधिका खण्डेलवाल

प्रच्छद एवं अन्य चित्र

श्रीयुक्ता श्यामारानी दासी

ले-आउट

श्रीमती शान्ति दासी

कवर डिजाइन

श्रीमान् कृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी

प्रकाशनार्थ आर्थिक सेवा

श्रीमती सपना रमेश खण्डेलवाल (मुम्बई), श्रीमती ललिता अग्रवाल (मुम्बई),
श्रीमती सुचित्रा देवी दासी (मुम्बई), श्रीमती विशाखा देवी दासी (मुम्बई), श्रीमती
बरखा मयंक रावत (सिङ्गापुर) एवं धर्मेण पटेल इस गन्थके प्रकाशनमें
आर्थिक-सेवा-योगदान द्वारा श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गके कृपा-भाजन हुए हैं।

विषय-सूची

प्रस्तावना	xxiii-xxviii
दशम स्कन्धकी कथाका सार	१
प्रथम अध्याय—श्रीकृष्णावतार चरितामृत-श्रवणसे अतृप्त महाराज परीक्षितके श्रीशुकदेवके समीप पुनः प्रश्न एवं देवकीसुतसे अपनी मृत्युकी सम्भावना सुनकर भयभीत कंस द्वारा देवकीके छह पुत्रोंका वध	४१
द्वितीय अध्याय—कंसके विनाशके लिए देवकीके गर्भमें श्रीहरिका प्रवेश, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा देवकी गर्भ-गत श्रीहरिकी स्तुति एवं देवकीको सान्त्वना प्रदान	६०
तृतीय अध्याय—स्वयं भगवान् श्रीहरिका स्व-स्वरूपमें आविर्भाव, माता-पिताके द्वारा पुत्रकी भगवत्-ज्ञानसे स्तुति, कंससे भयभीत पिताके द्वारा पुत्रको गोकुलमें ले जाना	७५
चतुर्थ अध्याय—चण्डिकाके वाक्य-श्रवणसे अति व्याकुल कंसका दुर्मति मन्त्रियों द्वारा प्रदत्त बालादि-हिंसारूप अहितकारी परामर्शको 'हित' रूपमें मान लेना	९२
पञ्चम अध्याय—श्रीनन्दमहाराजके पुत्रका जातकर्मादि सम्पादन, मथुरा-गमन एवं वसुदेवके साथ मिलनोत्सव	१०४
षष्ठ अध्याय—सखा वसुदेवके वचनानुसार श्रीनन्दका गोकुल लौटते समय पथमें मृत राक्षसीका दर्शन एवं उसकी मृत्युका प्रसङ्ग सुनकर विस्मित रह जाना	११४
सप्तम अध्याय—श्रीकृष्णकी बाल-लीलाके श्रवणसे महाराज परीक्षितके उत्साहपूर्वक प्रश्न, शिशुरूप श्रीकृष्ण द्वारा शकट-उत्क्षेपण, तृणावर्त-वध एवं मुख-गह्वरमें विश्वरूप-प्रदर्शन	१२७

अष्टम अध्याय—गर्ग मुनि द्वारा देवकी-पुत्र एवं रोहिणी-पुत्रका नामकरण, नन्दके समीप कृष्ण-तत्त्व-वर्णन, श्रीराम-कृष्णका घुटनोंके बल चलना, पद द्वारा विचरण, माखन चोरी, दधि-पात्र भञ्जन आदि बाल्यक्रीड़ाएँ, श्रीकृष्णका मृद्-भक्षण, विश्वरूप-प्रदर्शन एवं परीक्षित्के प्रश्नोंके उत्तर, श्रीशुकदेव द्वारा द्रोण तथा धरादेवीका प्रसङ्ग-वर्णनादि १३९

नवम अध्याय—माता यशोदाके दधि-मन्थन-कालमें कृष्णकी स्तन्य-पान-अभिलाषा, माता द्वारा कृष्णको स्तन्य-पान कराते-कराते ही भूमिपर उतारकर चूल्हेपर स्थित उबलते दूध-रक्षण हेतु गमनपर कृष्ण द्वारा क्रोध-प्रदर्शन एवं दधि-पात्र-भञ्जनादि लीला, कृष्ण द्वारा भग्न मटकीको देखकर यशोदाका कृष्णको बाँधनेका उद्यम, समस्त बन्धन-रज्जुओंका दो अङ्गुल छोटा पड़ जाना, माताका परिश्रम देखकर कृष्ण द्वारा बन्धन स्वीकार करना १५७

दशम अध्याय—दामोदर श्रीकृष्णका यमलार्जुन-मोचन-लीला-रहस्य एवं कृष्णपादपद्म-स्पर्शके कारण शापसे मुक्त होनेपर यमलार्जुन-वृक्षसे निर्गत दोनों कुबेर-पुत्रों द्वारा दिव्यदेह धारणपूर्वक कृष्ण-स्तुति १६५

एकादश अध्याय—श्रीनन्द द्वारा कृष्णका दाम-बन्धन मोचन, श्रीकृष्ण द्वारा फल-क्रयादिके छलसे फल-विक्रयिणीके प्रति कृपा-प्रदर्शन, श्रीनन्दादि गोपोंकी संगोष्ठी, गोकुलसे वृन्दावन यात्रा, वत्स-चारण, बकासुर-वध लीला १७८

द्वादश अध्याय—गोप-बालकोंके साथ वन-विहार, अघासुर-वध-लीला १९४

त्रयोदश अध्याय—ब्रह्मा द्वारा गोवत्स एवं वत्सपाल-हरण, श्रीकृष्ण द्वारा सर्वान्तर्यामीरूपमें योगमायाके प्रभावसे एक वर्ष तक उन-उन स्वरूपोंमें लीला

विस्तार करते हुए ब्रह्म-विमोहन एवं अन्तमें ब्रह्माका मोहनाश	२०८
चतुर्दश अध्याय —भगवान्‌के अचिन्त्य लीला-विलासको देखकर विस्मित होनेके कारण पूर्व तथा भावीका निर्णय करनेमें असमर्थ ब्रह्माजीके द्वारा कृष्ण-स्तुति	२२७
पञ्चदश अध्याय —श्रीराम-कृष्णका व्रजबालकोंके साथ धेनु-पालन करते-करते तालवनमें प्रवेश, श्रीबलराम द्वारा सानुचर धेनुकासुर-वध एवं श्रीकृष्ण द्वारा कालिय-विषसे गायोंके साथ गोपबालकोंका रक्षण	२५०
षोडश अध्याय —यमुना-हृदमें श्रीकृष्णकी कालिय-दमन- लीला, कालियकी पत्नियों द्वारा कृष्ण-स्तव, कालियके प्रति कृष्णका अनुग्रह एवं कृष्णादेशसे कालियका पूर्व स्थान रमणक-द्वीपमें गमन	२६५
सप्तदश अध्याय —कालियका नागालय रमणक-द्वीपका त्याग करके यमुना-प्रवेशका कारण-कथन, गरुडके प्रति सौभरिके शाप-वचन, कालिय-हृदसे निकले कृष्णके दर्शनसे गोपबालकोंका आनन्द एवं कृष्ण द्वारा निद्रित व्रजवासियोंका दावानलसे परित्राण	२८८
अष्टादश अध्याय —श्रीरामकृष्णकी ग्रीष्ममें वन-विहार- लीला, भगवत्-विहार-स्थली श्रीवृन्दावनमें ग्रीष्म एवं वसन्तके गुण-लक्षण-प्रकाश एवं श्रीबलराम द्वारा प्रलम्बासुर वध	२९५
एकोनविंश अध्याय —श्रीकृष्ण द्वारा मुञ्जारण्यमें प्रविष्ट गोप एवं गोधनको दावानलसे संरक्षण करते हुए भाण्डीरवनमें लाना	३०५
विंश अध्याय —श्रीरामकृष्णका वर्षा ऋतुमें गोपोंके साथ वन-विहार एवं उपमानोंके संयोगसे वर्षा एवं शरद् ऋतुओंकी शोभाके वर्णन द्वारा विविध उपदेश	३१०

एकविंश अध्याय—शरद् ऋतुके आगमनसे श्रीकृष्णका रम्य वृन्दावनमें प्रवेश एवं कृष्णकी वंशी-ध्वनि सुनकर ब्रज-गोपियों द्वारा कृष्णका गुणगान	३२४
द्वाविंश अध्याय—श्रीकृष्णको पतिरूपमें पानेके लिए गोप-कन्याओं द्वारा कात्यायनी-अर्चन, श्रीकृष्ण द्वारा गोपियोंका वस्त्र-हरण एवं वर-प्रदान	३३५
त्रयोविंश अध्याय—क्षुधार्त गोपबालकोंकी रामकृष्णके समीप क्षुधा-प्रशमन हेतु प्रार्थना एवं उनके आदेशसे यज्ञशालामें याज्ञिक विप्रोंके समीप अन्नकी याचना, विप्रोंसे कुछ प्राप्त न होनेपर कृष्णादेशसे पुनः उनकी पत्नियोंके समीप अन्न-भिक्षा, विप्र-पत्नियों द्वारा अन्न-दान एवं कृष्णकृपा-प्राप्ति तथा दान न देनेके कारण विप्रोंको पश्चात्ताप	३४६
चतुर्विंश अध्याय—इन्द्र-गर्वको चूर्ण-विचूर्ण करनेकी इच्छासे कृष्ण द्वारा इन्द्र-याग निवारण एवं गोवर्द्धन-यज्ञ-प्रवर्तन	३६२
पञ्चविंश अध्याय—यज्ञ-भङ्गके कारण क्रोधवश इन्द्र द्वारा ब्रज-नाशके लिए मूसलाधार वारि-वर्षण, वर्षण-निवारणके लिए कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन-धारण एवं गोकुल-रक्षण-लीला	३७३
षड्विंश अध्याय—श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलाके दर्शनसे विस्मित गोपोंके समीपमें श्रीनन्द द्वारा गर्ग-वचनोंका अनुवाद करते हुए कृष्णके ऐश्वर्यका वर्णन	३८२
सप्तविंश अध्याय—श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभाव-दर्शनसे इन्द्र एवं सुरभि द्वारा कृष्णाभिषेक एवं श्रीकृष्णका 'गोविन्द' नामकरण	३८९
अष्टाविंश अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा वरुणालयसे नन्दको लौटा लाना एवं गोपोंको वैकुण्ठलोक दिखाना	३९८

एकोनत्रिंश अध्याय—रासलीला-विलासके लिए श्रीकृष्णकी गोपियोंके साथ उक्ति-प्रत्युक्ति एवं रासारम्भमें उनका अन्तर्धानरूप कौतुक	४०४
त्रिंश अध्याय—विरह-व्यथित गोपियोंका उन्मत्तके समान वन-वनमें भ्रमण करते हुए कृष्णको खोजना, वनमें प्रिय-विरह-विधुरा श्रीवृषभानु-नन्दिनीका दर्शन, उनके साथ गोपियोंका यमुना-पुलिनमें पुनः लौट आना एवं कृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा	४२२
एकत्रिंश अध्याय—यमुना-पुलिनपर आकर कृष्णके दिखायी न देनेपर विह्वल गोपियोंका कृष्ण-गीतिके साथ कृष्ण-दर्शनके लिए व्याकुल भावसे प्रार्थना	४३७
द्वात्रिंश अध्याय—कृष्ण-दर्शनकी अभिलाषिणी गोपियोंके मध्य श्रीकृष्णका प्रकट होना एवं उन्हें सान्त्वना प्रदान करना तथा गोपियोंका कृष्ण-प्रेमसे अत्यन्त आनन्दित होना	४४६
त्रयस्त्रिंश अध्याय—यमुना-उपवनमें गोपी-मण्डलके मध्यगत बहुमूर्ति प्रकट करते हुए कृष्णकी रासक्रीड़ा एवं यमुना-विहार, श्रीशुकदेव द्वारा परीक्षितके संशयको दूर करनेके बहाने रासलीलाके सम्बन्धमें बद्धजीवके प्राकृत विचारका खण्डन	४५४
चतुस्त्रिंश अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा अम्बिकावनमें सर्पग्रस्त नन्दका एवं अङ्गिरा गोत्रज ऋषिके शापसे सर्पयोनि-प्राप्त 'सुदर्शन' नामक विद्याधरका मोचन तथा शंखचूड़-वध लीला	४७३
पञ्चत्रिंश अध्याय—श्रीकृष्णका गोचारणके लिए वन-गमन करने पर गोपियों द्वारा कृष्ण-विरह-सूचक गीतिके आश्रयसे दिवस-यापन	४८१
षट्त्रिंश अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा अरिष्टासुर-वध, नारदके वचनोंसे राम-कृष्णको वसुदेवके पुत्र जानकर कंस	

द्वारा उन दोनोंके विनाशके लिए विचार-विमर्श, वृन्दावनमें 'केशी' दैत्यको भेजना तथा रामकृष्णको मथुरामें लानेके लिए अक्रूरको आदेश	४९२
सप्तत्रिंश अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा केशी-दैत्य-वध, श्रीकृष्णकी भावी-लीलाओंके कीर्तन द्वारा नारदजीका कृष्ण-स्तव एवं श्रीकृष्ण द्वारा व्योमासुर वध	५०३
अष्टत्रिंश अध्याय—महामति अक्रूरजीका व्रज-गमन एवं श्रीराम-कृष्ण तथा व्रजराज द्वारा उनका सत्कार	५१३
एकोनचत्वारिंश अध्याय—अक्रूरसे कंसका उद्देश्य सुनकर गोपोंके साथ श्रीकृष्णका रथारोहण, मथुरा-यात्रा-कालमें गोपियोंकी विलापोक्ति, श्रीकृष्णका दूतोंके द्वारा गोपियोंको आश्वासन, अक्रूरका रथ-चालन एवं गमन-पथ पर यमुना-जलमें विष्णु-लोकका दर्शन	५२६
चत्वारिंश अध्याय—अक्रूरजी द्वारा भगवत्-स्तव	५४३
एकचत्वारिंश अध्याय—श्रीरामकृष्णका मथुरा-नगरीमें प्रवेश, नगर-स्त्रियोंका कृष्ण-दर्शनके लिए उल्लास, श्रीकृष्णका रजक-वध, सुदामा माली एवं दर्जीको वरदान	५५४
द्विचत्वारिंश अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा कुब्जाके शरीरको सीधा और सुन्दर बना देना, यज्ञ-धनुषको तोड़ना, कंस-रक्षकोंका विनाश एवं कंस द्वारा अमङ्गल-दर्शन एवं रङ्गोत्सव आदि	५६९
त्रिचत्वारिंश अध्याय—श्रीराम-कृष्ण द्वारा रङ्गद्वारपर 'कुवलयपीड' नामक मदोन्मत्त हाथीका वध करके रङ्गस्थलमें प्रवेश एवं चाणूरके साथ कथोपकथन	५८०
चतुश्चत्वारिंश अध्याय—श्रीकृष्ण एवं श्रीबलराम द्वारा यथाक्रमसे चाणूरादि एवं मुष्टिकादि मल्लोंके वधके बाद कंस एवं उसके कङ्कादि आठ भाइयोंका विनाश,	

श्रीकृष्ण द्वारा कंस-पत्नियोंको सम्यक् आश्वासन एवं अपने माता-पिताका बन्धन-मोचन	५९१
पञ्चचत्वारिंश अध्याय—राम-कृष्ण द्वारा माता-पिताको सान्त्वना प्रदान करना, मातामह उग्रसेनका राज्याभिषेक, शीघ्र ब्रजमें आगमनकी बात कहकर नन्दादि ब्रजवासियोंको उत्साह-दान, द्विजाति-संस्कार एवं ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करते हुए गुरुकुलवास एवं विद्याध्ययन लीला, पञ्चजन नामक असुर-वध एवं पाञ्चजन्य शंख-प्राप्ति, यमालयसे गुरुपुत्रको लौटाकर गुरुदक्षिणा-दान एवं नगरमें प्रत्यागमन	६०५
षट्चत्वारिंश अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा उद्धवको ब्रजमें भेजकर नन्द-यशोदाके शोकको दूर करनेका प्रयास	६१९
सप्तचत्वारिंश अध्याय—कृष्णादेशसे गोपियोंको सन्देश प्रदान द्वारा सान्त्वना देकर उद्धवका मधुपुरी-प्रत्यागमन और ब्रजवासियोंका तीव्र प्रेम प्रकाश	६३४
अष्टचत्वारिंश अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा कुब्जाके मनोभिलाष-पूरणके लिए उसके गृहमें गमन एवं उसके साथ विहार, अक्रूर-गृहमें जाकर अक्रूरकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर उनकी प्रशंसा, पाण्डवोंका संवाद लेनेके लिए उन्हें हस्तिनापुर भेजना, अनन्तर उद्धवके साथ निजगृहमें प्रत्यावर्तन	६६२
एकोनपञ्चाशत्तम अध्याय—अक्रूरका कृष्णादेशसे हस्तिनापुर-गमन, विदुर एवं कुन्तीदेवीके निकट पाण्डवोंके प्रति धृतराष्ट्रके वैषम्य-व्यवहारके विषयमें श्रवण, कुन्तीदेवीका श्रीरामकृष्णके चरणकमलोंमें शरणागति-ज्ञापन, अक्रूरका धृतराष्ट्रके प्रति हितोपदेश, धृतराष्ट्रका मनोभिप्राय जानकर मथुरामें प्रत्यावर्तन एवं कृष्णके समीप सम्पूर्ण संवाद-निवेदन	६७३

पञ्चाशत्तम अध्याय—जामाता कंसके निधनका समाचार सुनकर जरासन्धका मथुरापर आक्रमण, राम-कृष्ण द्वारा जरासन्धकी सत्रह बार पराजय, जरासन्धकी अठारहवीं बार युद्धकी प्रस्तुतिके समय नारद द्वारा प्रेरित कालयवन नामक एक वीर द्वारा अपने समान योद्धाकी खोज करते हुए मथुरामें आगमन, जरासन्धके अविलम्ब आगमनकी सम्भावनासे दोनों ओर यादवोंके प्रति विपत्तिकी आशङ्कासे श्रीकृष्ण द्वारा उन यादवोंके रक्षणके लिए समुद्रमें दुर्ग-निर्माण, योगबलसे यादवोंको वहाँपर ले आना, आत्मीयोंको सुरक्षित देखकर बलदेवकी अनुमति लेकर द्वारकापुरीसे बिना अस्त्रके बाहर चले जाना..... ६८१

एकपञ्चाशत्तम अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा मुचुकुन्दकी प्रखर दृष्टिसे कालयवनका संहार, मुचुकुन्द द्वारा कृष्ण-स्तुति एवं कृष्ण-कृपा-प्राप्ति ६९६

द्विपञ्चाशत्तम अध्याय—मुचुकुन्दकी कृष्णाराधना, मथुरापर पुनः आक्रमण करनेवाले यवन-सैन्यका श्रीकृष्ण द्वारा संहार, धन-रत्नादि लेकर कृष्णके द्वारका-गमन-कालमें बहु सैन्यके साथ जरासन्ध द्वारा पुनः मथुरा पर आक्रमण, राम-कृष्ण द्वारा पलायन-लीला एवं 'प्रवर्षण' नामक पर्वत पर आरोहण, जरासन्ध द्वारा पर्वतमें आग लगा देना, जरासन्धसे अलक्षित होकर रामकृष्ण द्वारा पर्वत-शिखरसे कूदकर समुद्रसे परिवेष्टित द्वारकामें प्रवेश, कार्य सफल हुआ मानकर जरासन्धका सैन्य-सहित अपने राज्यको प्रस्थान, श्रीकृष्णका द्वारका-वासके समय विदर्भराजकी कन्या रुक्मिणी देवी द्वारा श्रीकृष्णका पतिके रूपमें वरण एवं ब्राह्मण द्वारा कृष्णके समीप पत्र-प्रेषण..... ७१४

त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय—रुक्मिणीके पत्रानुसार श्रीकृष्णका विदर्भ-नगरमें गमन तथा जरासन्ध प्रमुख शत्रुओंके समक्ष रुक्मिणी-हरण ७२६

चतुष्पञ्चाशत्तम अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा विपक्षी राजाओंकी पराजय, रुक्मिणी-भ्राता रुक्मीको विरूप करके कृष्णका द्वारकापुरीमें प्रत्यागमन एवं रुक्मिणीसे विवाह, रुक्मी द्वारा 'भोजकट' नामक नगरका निर्माण करके क्रोधपूर्वक वास ७४०

पञ्चपञ्चाशत्तम अध्याय—श्रीकृष्णसे प्रद्युम्नका जन्म, शम्बरसुर द्वारा प्रद्युम्न-हरण, शम्बरका वध करके पत्नी रतिदेवीके साथ प्रद्युम्नका द्वारकामें प्रत्यावर्तन एवं पुरवासियोंका आनन्द-वर्द्धन ७५६

षट्पञ्चाशत्तम अध्याय—राजा सत्राजित्के द्वारा सूर्यसे स्यमन्तक मणिकी प्राप्ति, मणि-हरण कार्यमें सत्राजित्का कृष्णके प्रति मिथ्या सन्देह, स्वकलंक मिटानेके विचारसे श्रीकृष्ण द्वारा मणि-आहरण, श्रीकृष्णको जाम्बवान् एवं सत्राजित्की पुत्रियोंकी प्राप्ति, सत्राजित् द्वारा उपहार-स्वरूप प्रदत्त मणिको स्वीकार न करना तथा स्यमन्तक-हरणादि द्वारा अर्थकी अनर्थताका कथन ७६७

सप्तपञ्चाशत्तम अध्याय—लाक्षागृहका संवाद सुनकर श्रीरामकृष्णका हस्तिनापुर-गमन, अक्रूर एवं कृतवर्माके उकसानेपर शतधन्वा द्वारा मणिके लोभसे सत्राजित्का वध, रामकृष्णका द्वारका-गमन, शतधन्वा द्वारा अक्रूरके समीप मणि रखकर प्राण बचानेके भयसे पलायन, मणिहरणमें प्रायोजक अक्रूर एवं कृतवर्माका भी पलायन, मिथिला उपवनमें कृष्ण द्वारा शतधन्वाके वधके बाद भी मणिकी अप्राप्ति, श्रीबलरामका

जनक-भवनमें एवं श्रीकृष्णका द्वारकामें गमन, अक्रूर द्वारा लायी गयी मणिसे श्रीकृष्णका स्व-अपयश-मार्जन एवं अक्रूरको उसी मणिका पुनः प्रत्यर्पण.....	७७९
अष्टपञ्चाशत्तम अध्याय—पाण्डवोंके अज्ञातवासके बाद श्रीकृष्णका पाण्डवोंके दर्शनके लिए इन्द्रप्रस्थ गमन, कालिन्दी आदि पाँच कन्याओंसे श्रीकृष्णका पाणि-ग्रहण, अग्निदेवता द्वारा खाण्डव-दहन तथा अर्जुनको गाण्डीव आदि प्रदान, मय दानव द्वारा सभा-निर्माण तथा दुर्योधनका भ्रम	७८९
एकोनषष्टितम अध्याय—इन्द्रके अनुरोधसे श्रीकृष्ण द्वारा मुर आदि अनुचरोंके साथ पृथ्वीपुत्र नरकासुरका वध, पृथ्वी द्वारा कृष्णस्तव एवं नरकासुर द्वारा अपहृत द्रव्यादिका श्रीकृष्णको प्रत्यर्पण, श्रीकृष्ण द्वारा नरक-पुत्रको अभय दान, नरक द्वारा अपहृत सोलह हजार कन्याओंसे श्रीकृष्णका पाणिग्रहण, स्वर्गसे पारिजात-हरण एवं इसपर इन्द्रादिकी दुर्बुद्धि	८०४
षष्टितम अध्याय—श्रीकृष्णके परिहासमय वचनोंसे रुक्मिणीका क्रोधित होना, श्रीकृष्ण द्वारा उन्हें सान्त्वना देना एवं दोनोंका प्रणय-कलह	८१९
एकषष्टितम अध्याय—श्रीकृष्णके पुत्र-पौत्रादि सन्ततिका वर्णन, अनिरुद्ध विवाहमें बलराम द्वारा रुक्मी-वध, कलिङ्ग राजाका दन्तोत्पाटन एवं श्रीकृष्णके पुत्रादिके विवाहका वर्णन	८३९
द्विषष्टितम अध्याय—‘उषा-हरण’ प्रसङ्गारम्भ, अनिरुद्धका बाणासुरकी कन्या उषाके साथ विहार, बाणासुरका अनिरुद्धके साथ संग्राम एवं अनिरुद्धका नागपाशमें बन्धन ...	८४९
त्रिषष्टितम अध्याय—बाण-यादव-समरमें शिवबल-पराजय, वैष्णव-ज्वर द्वारा रौद्र-ज्वरका पीड़न, रौद्र-ज्वर द्वारा	

कृष्ण-स्तुति, श्रीकृष्ण द्वारा बाणका बाहुच्छेदन एवं बाणकी सहस्र भुजाओंसे मात्र चार भुजाओंका संरक्षण करते हुए उसके प्रति कृपा-प्रदर्शन एवं उषाके साथ अनिरुद्धको लेकर द्वारकामें प्रत्यावर्त्तन	८५९
चतुःषष्टितम अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा इक्ष्वाकु-तनय नृगराजका शाप-विमोचन, ब्रह्मस्व-अपहरण दोषोक्ति द्वारा राजाओंको शिक्षा-दान एवं नृग-उद्धार प्रसङ्गमें विभूति-भाग्य-भोगादिसे मदमत्त यादवोंका अनुशासन	८७४
पञ्चषष्टितम अध्याय—श्रीबलदेवका सुहृद्-दर्शनकी अभिलाषासे गोकुल-गमन, मधु एवं माधव मासमें यमुनाके उपवनमें अपनी गोपियोंके साथ रास-रसोत्सव एवं यमुनाकर्षण लीला	८८६
षट्षष्टितम अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा काशी जाकर पौण्ड्रक, उसके मित्र काशीराज एवं सुदक्षिण आदिका वध	८९६
सप्तषष्टितम अध्याय—रैवतक पर्वतपर ललनाओंके यूथके साथ क्रीडारत श्रीबलदेव द्वारा नरकमित्र मैन्द-वानरके भ्राता अति दुष्ट द्विविद वानरका विनाश-साधन	९०७
अष्टषष्टितम अध्याय—दुर्योधन-पुत्री लक्ष्मणाका हरण करनेमें जाम्बवती-नन्दन साम्बका कौरवोंके साथ युद्धमें बन्दी होनेपर उसकी मुक्तिके लिए बलदेवका हस्तिनापुर-गमन, बन्धुभावसे शान्ति-स्थापन करनेके लिए अनिच्छुक कौरवोंका उद्धत-भाव देखकर बलदेवका हस्तिनापुर-आकर्षण, दुर्योधनादिकी बलदेव-स्तुति, श्रीबलदेवका लक्ष्मणाके साथ साम्बको लेकर द्वारका प्रत्यावर्त्तन	९१४
एकोनसप्ततितम अध्याय—श्रीकृष्णकी सोलह हजार महिषियोंके गृहमें एक ही समय पर विभिन्न	

गृहस्थोचित लीलाएँ देखकर श्रीनारदका विस्मय एवं
श्रीकृष्णकी स्तुति, नारदके प्रति कृष्णकी कृपा ९२८

सप्ततितम अध्याय—श्रीकृष्णका आह्निक कर्म, सुधर्मा
सभामें जरासन्ध द्वारा अवरुद्ध राजाओंके द्वारा प्रेरित
दूतोंका आगमन एवं कृष्णके समीप प्रीति-विधानकी
कामना, नारदका आगमन, कृष्णकी पाण्डवोंका संवाद
जाननेकी इच्छा, नारद द्वारा पाण्डवोंके वाञ्छित राजसूय
यज्ञानुष्ठानकी वार्त्ताका ज्ञापन एवं उस विषयमें कृष्णके
अनुमोदनकी प्रार्थना, राजसूय-यज्ञमें गमन और
जरासन्ध-विजय—इनमें प्रथम क्या करणीय है—इस
विषयमें श्रीकृष्णका उद्धवसे विचार-विमर्श ९४१

एकसप्ततितम अध्याय—राजसूयादि यज्ञ श्रीकृष्णकी
अचिन्त्य इच्छासे संघटित एवं जरासन्ध-वधादि उसीके
अन्तर्गत हैं—उद्धव द्वारा यह बतलानेपर महिषियोंके
साथ श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ जानेके लिए प्रस्तुत होना,
दूत आदिसे राजाओंको सान्त्वना-दान एवं श्रीकृष्णके
आगमनसे पाण्डवोंका आनन्दोत्सव ९५५

द्विसप्ततितम अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्ठिरके राजसूय
यज्ञानुष्ठान-प्रस्तावका अनुमोदन, भीमसेन द्वारा दुर्जय
जरासन्धका वध, जरासन्ध-पुत्र सहदेवका राजपदपर
अभिषेक एवं कारारुद्ध राजाओंको मुक्ति दान ९६९

त्रिसप्ततितम अध्याय—श्रीकृष्ण द्वारा राजाओंका मोचन
करते हुए जरासन्ध-पुत्र सहदेव द्वारा उन्हें राजयोग्य
भोगादि प्रदान एवं उनपर कृपा करते हुए निजरूप
प्रदर्शन, सहदेव द्वारा पूजित होकर भीम-अर्जुनके साथ
इन्द्रप्रस्थ प्रत्यागमन एवं युधिष्ठिरकी प्रेम-विह्वलता ९८३

चतुःसप्ततितम अध्याय—राजसूयके आरम्भमें युधिष्ठिरकी
कृष्ण-स्तुति, होतृ-वरण, अग्रपूजा प्रसङ्गमें सहदेव द्वारा

कृष्ण-पूजाकी ही श्रेष्ठताका ज्ञापन, चेदिराजकी असहिष्णुता एवं कृष्ण-कार्ण-निन्दा, श्रीकृष्णके चक्र द्वारा शिशुपालका शिरच्छेदन, शिशुपालको सारूप्य-मुक्तिकी प्राप्ति, राजसूय समापनके अन्तमें महिषियोंके साथ कृष्णका द्वारका-प्रस्थान, दुर्योधनकी परसुख-असहिष्णुता एवं कलहका आवाहन ९९२

पञ्चसप्ततितम अध्याय—यज्ञ-सम्पादनके अन्तमें महाराज युधिष्ठिरका अनुचरगणके साथ दीक्षान्त स्नानादि उत्सव एवं मयदानव द्वारा निर्मित उनकी सभामें दृष्टि-भ्रमके कारण मात्सर्य-पीड़ित राजा दुर्योधनका मान-भङ्ग १००६

षट्सप्ततितम अध्याय—रुक्मिणी-हरणकालमें पराजित राजाओंमें अन्यतम शाल्व द्वारा पृथ्वीको यादव-रहित करनेकी प्रतिज्ञाके अनुसार शिवाराधना एवं शिव-वरदानसे मयदानव-रचित इच्छानुरूप गतिशील 'सौभ' नामक यान-प्राप्ति, वृष्णि-वीरोंके साथ शाल्वपक्षियोंका महायुद्ध, वीरवर प्रद्युम्नके दिव्यास्त्र द्वारा शाल्व-रचित मायाका विनाश, शाल्वानुचर द्युमान्की गदासे आहत प्रद्युम्नका दारुकपुत्र अर्थात् उनके सारथि द्वारा रणस्थलसे अपसारण, संज्ञा-प्राप्तिके बाद प्रद्युम्नका इस कारणसे वीरोचित क्षोभ-प्रकाश एवं यह सब सुननेके बाद सारथिके निजधर्मका कथन १०१७

सप्तसप्ततितम अध्याय—प्रद्युम्नका शाल्वके साथ पुनः युद्ध, श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थसे द्वारकामें लौटकर रणक्षेत्रमें गमन एवं कापट्यपरायण शाल्वका विनाश तथा सौभ-यान-भञ्जन १०२५

अष्टसप्ततितम अध्याय—शाल्वमित्र दन्तवक्र एवं उसके भाई विदूरथका विनाश करते हुए श्रीकृष्णका अपने नगरमें विहार, दन्तवक्रको सारूप्य मुक्ति-प्राप्ति, कौरव और

पाण्डवके मध्य युद्धके प्रारम्भकी बात सुनकर श्रीबलदेवका तीर्थ-स्नानके लिए द्वारकासे प्रस्थान एवं तीर्थ-भ्रमण, नैमिषारण्यमें रोमहर्षण सूतका प्राण-विनाश एवं उनके पुत्र उग्रश्रवा सूतकी भागवतवक्ताके रूपमें नियुक्ति १०३६

एकोनाशीतितम अध्याय—नैमिषारण्यवासी द्विजोंकी सन्तुष्टिके लिए लोकशिक्षा हेतु सूत-हत्या-जनित अपराध-मोचनके बहाने श्रीबलदेव द्वारा 'बल्लव' नामक असुरका विनाश करके नाना तीर्थोंमें अवगाहन, कुरुक्षेत्रमें भीम-दुर्योधनका युद्ध देखकर उसे दैवकृत जानकर उनका द्वारकामें प्रत्यागमन, पुनः नैमिषमें गमन, ऋषियोंको अप्राकृत स्वरूप-ज्ञान-प्रदान एवं यज्ञ-समाप्ति-स्नानके बाद श्रीरेवतीदेवीके साथ मिलन १०४७

अशीतितम अध्याय—द्वारकामें श्रीकृष्णके निज गृहागत धनाभिलाषी सखा सुदामा विप्रकी अर्चना करके दोनोंका गुरुकुलमें एकत्र वास-कालीन लीलाओंकी चर्चा करते हुए गुरु-सेवाकी महिमाका कीर्तन १०५५

एकाशीतितम अध्याय—श्रीकृष्णका सखा सुदामाके साथ प्रेमालाप, सखा द्वारा लाये गये चिउड़ेका भक्षण एवं सखाके आश्रममें इन्द्र-दुर्लभ भवनका निर्माण, सुदामाका गृहमें प्रत्यागमन, ऐश्वर्य-दर्शनसे विस्मय एवं श्रीभगवान्‌के भक्त-वात्सल्यकी प्रशंसा तथा अनासक्त भावसे विषयोंको स्वीकार करते हुए यथाकाल उनकी वैकुण्ठ-प्राप्ति १०६७

द्व्यशीतितम अध्याय—सूर्य-ग्रहणके उपलक्षमें कुरुक्षेत्रमें समागत यादव एवं अन्यान्य राजाओंका परस्पर कृष्ण-कथा-आलापन एवं नन्दादि सुहृदोंके आनन्ददायक श्रीकृष्णका कुरुक्षेत्रमें आगमन एवं सुदीर्घ-विरह-सन्तप्त व्रजवासियोंके साथ मिलन १०७८

त्रयशीतितम अध्याय—(कुरुक्षेत्रमें) स्त्रियोंके मध्य श्रीकृष्ण-
कथा-प्रसङ्गमें कृष्ण-पत्नियों द्वारा द्रौपदीके निकट
अपने-अपने विवाहकी कथा १०९३

चतुरशीतितम अध्याय—(कुरुक्षेत्रमें) श्रीकृष्णके दर्शनार्थ
मुनि-समागम, श्रीकृष्ण द्वारा साधु-माहात्म्य एवं मुनियों
द्वारा कृष्ण-माहात्म्य कीर्तन, श्रीवसुदेव द्वारा जीवके
मङ्गलोपायके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर, मुनियोंके यज्ञ द्वारा
सर्वयज्ञेश्वर श्रीहरिकी आराधनाका उपदेश, वसुदेवका
यज्ञोत्साह एवं यज्ञान्तमें बन्धुओंका अपने-अपने स्थानों
पर प्रस्थान ११०८

पञ्चाशीतितम अध्याय—माता-पिता द्वारा प्रार्थित राम-
कृष्ण द्वारा पिताको तत्त्वज्ञान एवं माताको मृतपुत्र
प्रदान तथा कृष्ण-कृपासे देवकीपुत्रोंकी मुक्ति-प्राप्ति ११३०

षडशीतितम अध्याय—अर्जुनका दम्भपूर्वक सुभद्रा-हरण
एवं भक्तवत्सल श्रीकृष्णका मिथिला जाकर अपने भक्त
बहुलाश्व एवं श्रुतदेवके गृहमें एक ही समय अवस्थान
एवं उन्हें सन्मार्गका उपदेश प्रदान करके द्वारकामें
प्रत्यावर्तन ११४८

सप्ताशीतितम अध्याय—श्रीनारायण-नारद-संवादमें 'वेदों'
द्वारा नारायणकी सगुण-निर्गुण स्तुतिका वर्णन ११६५

अष्टाशीतितम अध्याय—गुणातीत विष्णु-उपासकोंकी मायिक
गुणोंसे निर्मुक्ति एवं वैकुण्ठ-पदवी-प्राप्ति तथा गुणमय
अन्य देवोपासकोंकी जड़ीय विभूति-प्राप्ति आदिके वर्णन-
प्रसङ्गमें श्रीकृष्णका जीवोंके प्रति वास्तव अनुग्रहका लक्षण
तथा शिव-वर-दूत वृकासुर-निधनके उल्लेखके द्वारा
ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वरमें श्रीविष्णुका महत्त्व-वर्णन ११९०

एकोनवतितम अध्याय—'कौन देवता श्रेष्ठ है'—इस
विषयमें संयतचित्तसे मुनियोंके निकट भृगुकृत (परीक्षा

द्वारा) विष्णुके उत्कर्षका वर्णन एवं श्रीकृष्ण-अर्जुनका महाकालपुर-गमन तथा द्वारकावासी विप्रके पुत्रके उद्धार-प्रसङ्गमें अर्जुनका कृष्ण-प्रभाव देखकर विस्मित होना	१२०३
नवतितम अध्याय—“मधुरेण समापयेत्” इस न्यायके अनुसार संक्षेपमें पुनः श्रीकृष्णलीला एवं कारणसहित यदुवंशकी अनन्तताका वर्णन	१२२४



प्रस्तावना

परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी अनुकम्पा और प्रेरणासे आज कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवतम्के मूल श्लोक एवं श्लोकानुवाद सहित दशम-स्कन्ध [तृतीय-खण्ड] का हिन्दी-संस्करण प्रकाशित हो रहा है। मेरे द्वारा श्रीमद्भागवतका माहात्म्य वर्णन करना सूर्यको दीपक दिखलाना है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्का स्वरूप है। इसीलिए महाभागवतजन भगवद्भावनासे श्रद्धापूर्वक इस ग्रन्थराज भागवतकी आराधना किया करते हैं। भगवान् श्रीवेदव्यास जैसे भगवत्-स्वरूप महापुरुषको भी वेदोंका विभाग करने, निखिल श्रुतियोंके सार ब्रह्मसूत्र, महाभारत और पुराणोंकी रचना करनेपर भी शान्ति नहीं मिली, अन्ततः श्रीमद्भागवतकी रचना करनेपर ही उन्हें शान्ति मिली। जिसमें सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वजनिक निखिल समस्याओंका समाधान है—उस श्रीमद्भागवतकी अपार महिमाको कौन वर्णन कर सकता है? यह परम मधुर भगवद्-रसका छलकता हुआ अगाध-अनन्त महासागर है। इसीलिए भावुक भक्तजन इसमें अवगाहनकर परम मधुर भगवद्-रसका पद-पदपर आस्वादन करते हैं। 'विद्याभागवतावधि' अर्थात् भागवत पराविद्याकी चरमसीमा है।

गरुड़पुराणमें लिखा है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थं विनिर्णयः।

गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थं परिबृंहितः॥

श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रका अर्थ, महाभारतका तात्पर्य-निर्णय, गायत्रीका भाष्य और समस्त वेदोंके तात्पर्यका संवर्द्धन है।

पद्मपुराणमें भी कथित है—

तमादिदेवं करुणानिधानं तमालवर्णं सुहितावतारम्।

अपारसंसार-समुद्र-सेतुं भजामहे भागवत-स्वरूपम्॥

अर्थात् मैं अपार संसार सागरको पार करनेके लिए सेतु-स्वरूप आदिदेव, करुणानिधान, तमालवर्ण श्रीकृष्णके मङ्गलमय शाब्दिक-अवतार श्रीमद्भागवतका भजन (सेवन) करता हूँ।

अतः इस ग्रन्थ-भागवतकी महिमा ब्रह्माजी और महादेव शङ्करजीकी तो बात ही क्या, स्वयं श्रीकृष्ण भी पूर्ण रूपमें नहीं वर्णन कर सकते।

आजकल भारत और समस्त विश्वके हिन्दी-भाषी लोगों द्वारा अधिकांशतः गीता-प्रेस, गोरखपुरसे अनुवादित श्रीमद्भागवतका ही पठन-पाठन होता है। किन्तु दूसरे किसी संस्थानसे प्रकाशित हिन्दीका भागवत-संस्करण उपलब्ध नहीं होता। गीता-प्रेससे प्रकाशित श्रीमद्भागवतका अनुवाद प्रधानतः प्रसिद्ध निर्विशेषवादी या अद्वैतवादी ब्रह्मलीन पं० श्रीशान्तनु-विहारीजी द्विवेदी, संन्यास ग्रहणके पश्चात्—श्रद्धेय स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीने किया है। अत्यन्त परितापका विषय है कि उनके इस अनुवादमें भक्तिपरक श्लोकोका भी अनुवाद अद्वैतवादपरक रूपमें किया गया है। यत्र-तत्र सर्वत्र अद्वैतवादका मिश्रण है, जैसे—‘जीवका प्रधान लक्ष्य मुक्ति है’, ‘जीव और ब्रह्म एक हैं’, ‘मुक्तिके पश्चात् जीव ब्रह्म हो जाता है’, जगत् मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है इत्यादि।

किन्तु श्रीमद्भागवतके रचयिता महाभागवत वेदव्यासजी कहते हैं—

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परम गीयते।
तत्र ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारण परो भक्त्याविमुच्येन्नरः॥

(श्रीमद्भा० १२/१३/१८)

अर्थात् श्रीमद्भागवत-पुराण निर्मल अर्थात् कर्म, ज्ञान, योगसे रहित पुराण है। यह वैष्णव-मात्रका प्रिय है, किन्तु यह कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियोंको प्रिय नहीं है। इसका श्रद्धापूर्वक श्रवण,

पठन और मनन करनेवालोंको स्वयं-भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्रेमाभक्ति प्राप्त हो जाती है तथा उसके आनुषङ्गिक-फलसे उनका माया-बन्धन भी समाप्त हो जाता है।

और भी—

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवापरैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥
(श्रीमद्भा० १/१/२)

अर्थात् यह ग्रन्थराज श्रीमद्भागवत महामुनि श्रीनारायण ऋषिके द्वारा चतुःश्लोकीके रूपमें रचित है। इसमें निर्मत्सर अर्थात् सब प्राणियोंमें दयाविशिष्ट व्यक्तियोंके लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी छलसे रहित (कैतवशून्य) परमधर्मकी व्याख्या हुई है। वही धर्म जीवका त्रिताप नाशक, कल्याणकारी और यथार्थ वस्तु-तत्त्वज्ञानप्रद है। जिस किसी समय सुकृतिवान् पुरुष इसके श्रवणमात्रकी इच्छा करते हैं, उसी समय ईश्वर अविलम्ब ही उनके हृदयमें आकर बद्ध हो जाते हैं। अतएव अब अन्य किसी साधन या शास्त्रसे प्रयोजन ही क्या है?

श्रीधरस्वामीपादने प्रस्तुत श्लोककी टीकामें 'प्रोज्झित कैतवः' पदमें कैतवः—शब्दका अर्थ 'मोक्षकी कामना तकको छोड़ना' किया है। श्रीवेदव्यास और भी कहते हैं—

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा॥
(श्रीमद्भा० १/७/७)

अर्थात् इसके श्रवणमात्रसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम प्रेममयी भक्ति उदित हो जाती है, जिससे जीवके शोक, मोह और भय अनायास ही नष्ट हो जाते हैं।

‘ज्ञाने प्रयासमुदपास्य’ (श्रीमद्भा० १०/१४/३) श्लोकमें भी वर्णित है—निर्विशेष ज्ञानकी तो बात ही क्या, तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिके लिए भी समस्त प्रकारके प्रयासोंको छोड़कर जो भगवान्की लीला-कथाओंका ही श्रवण करते हैं, भगवान् उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं। ब्रह्माजी आगे और भी कहते हैं—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

(श्रीमद्भा० १०/१४/४)

अर्थात् हे प्रभो! परम कल्याण-स्वरूप आपको पानेके लिए भक्ति ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। जो लोग भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्रम करते हैं और दुःख भोगते हैं, उन्हें मात्र क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है, जैसे थोथी-भूसी कूटनेवालेका केवल श्रम ही होता है, उसे चावल नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(श्रीमद्भा० ३/२९/१३)

अर्थात् निष्काम भक्त मेरी सेवाको छोड़कर दिये जानेपर भी सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्षतकको ग्रहण नहीं करते। वे मुक्तिका तिरस्कारकर भक्तिको ही ग्रहण करते हैं और उसे ही परम पुरुषार्थ मानते हैं।

आत्मा और परमात्मा एक नहीं हैं। आत्मा भगवान्का एक क्षुद्र अंश (विभिन्नांश) है। जीव क्षुद्र हैं, परमात्मा विभु हैं; जीव अनेक हैं, ईश्वर एक हैं; जीव मायाबद्ध होने योग्य हैं, ईश्वर मायापति हैं। जगत् मिथ्या नहीं, अनित्य है अर्थात् जगत् सत्यसङ्कल्प परमात्माके सत्यसङ्कल्पसे उत्पन्न होनेके कारण सत्य

है, किन्तु नाशवान् है। श्रीमद्भागवतमें इन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है। भगवान् निराकार, अरूप, निर्गुण नहीं, अपितु सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं। श्रीकृष्ण, नन्दनन्दन, यशोदानन्दन, गोपीकान्त और राधाकान्त आदि उनके अनन्त नाम हैं। नवजलधरके समान उनका साँवला रूप है। जन्म, बालक्रीड़ा, असुर-संहार, रासलीला आदि उनकी अनन्त मधुर-मधुर लीलाएँ हैं। श्रीकृष्णके अंशों एवं अंशांश-कलाओंसे जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार होता है। अतः वे निराकार, निर्गुण आदि निर्विशेष तत्त्व कैसे हो सकते हैं? अतएव वैष्णवोंको गीताप्रेसके भागवत-संस्करणका पठन-पाठन आनन्दप्रद नहीं, अपितु इसके विपरीत दुःखदायी ही प्रतीत होता है।

यद्यपि गीताप्रेसके श्रीमद्भागवतकी अनुवाद-शैली सरल-सहज, बोधगम्य, मधुर और आकर्षक है, तथापि उसके पठन-पाठनसे जीवोंका आत्यन्तिक कल्याण नहीं हो सकता अर्थात् उन्हें भगवत्-प्रेम, सेवा, शुद्धभक्ति कदापि प्राप्त नहीं हो सकते। ऐसा विचारकर ही मैंने परम विदुषी, श्रीमद्भागवतपर पी०एच०डी० करनेवाली मधु बेटीसे कहा कि श्रीमद्भागवतका एक यथार्थ हिन्दी अनुवाद होना आवश्यक है और यदि तुम कर सको तो जगत्का परम कल्याण होगा। किन्तु वह हिन्दी अनुवाद विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता वैष्णवकुल-चूड़ामणि अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' के द्वारा प्रकाशित श्रीमद्भागवतके बंगला संस्करणके आधारपर ही होना चाहिये। इसके लिए उसने बंगला भाषाका अध्ययन किया। तत्पश्चात् उसने 'श्रील प्रभुपाद' के द्वारा प्रकाशित संस्करणके आधारपर श्रीमद्भागवतका हिन्दी अनुवाद किया। बेटी मधुके द्वारा प्रस्तुत किये गये अनुवादको मैंने स्वयं बहुत सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया तथा उसमें संशोधनके साथ-साथ विषयोंको वैष्णव-आचार्योंकी टीकाओंके आधारपर और भी स्पष्ट किया।

श्रीमद्भागवतके इस हिन्दी-संस्करणका एक वैशिष्ट्य यह है कि इसमें प्रत्येक स्कन्धकी कथाका सार दिया गया है, जिससे पाठकोंको उस स्कन्धकी विषयवस्तुसे अवगत होनेमें सुविधा होगी। इसके अतिरिक्त इस संस्करणमें श्लोकोंका अनुवाद अभिन्न-व्रजेन्द्रनन्दन श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा स्थापित शक्ति-परिणामवाद समन्वित अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्त पर आधारित है।

इस विशाल ग्रन्थमें भ्रम-प्रमादवशतः कुछ त्रुटि-विच्युतियोंका रह जाना अस्वाभाविक नहीं है। सुधी पाठकों द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हमलोग आनन्दित होंगे।

परमार्थ प्राप्तिके इच्छुक श्रद्धालुजन इस ग्रन्थराजका पठन-पाठनकर परमार्थ-पथपर अग्रसर हों—यही विनीत प्रार्थना है।
अलमतिविस्तरेण।

श्रीगोपाष्टमी

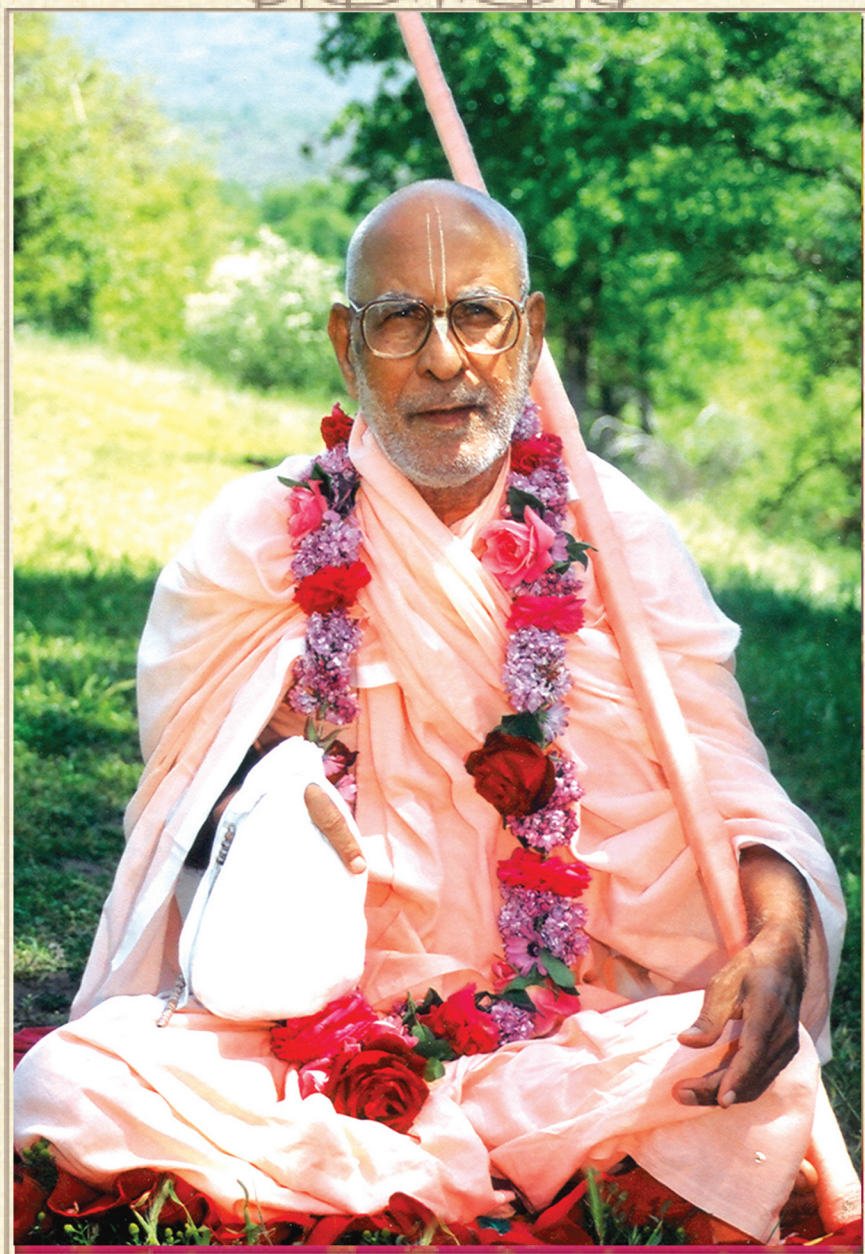
५२३ श्रीचैतन्याब्द

२६ अक्टूबर २००९ ई०

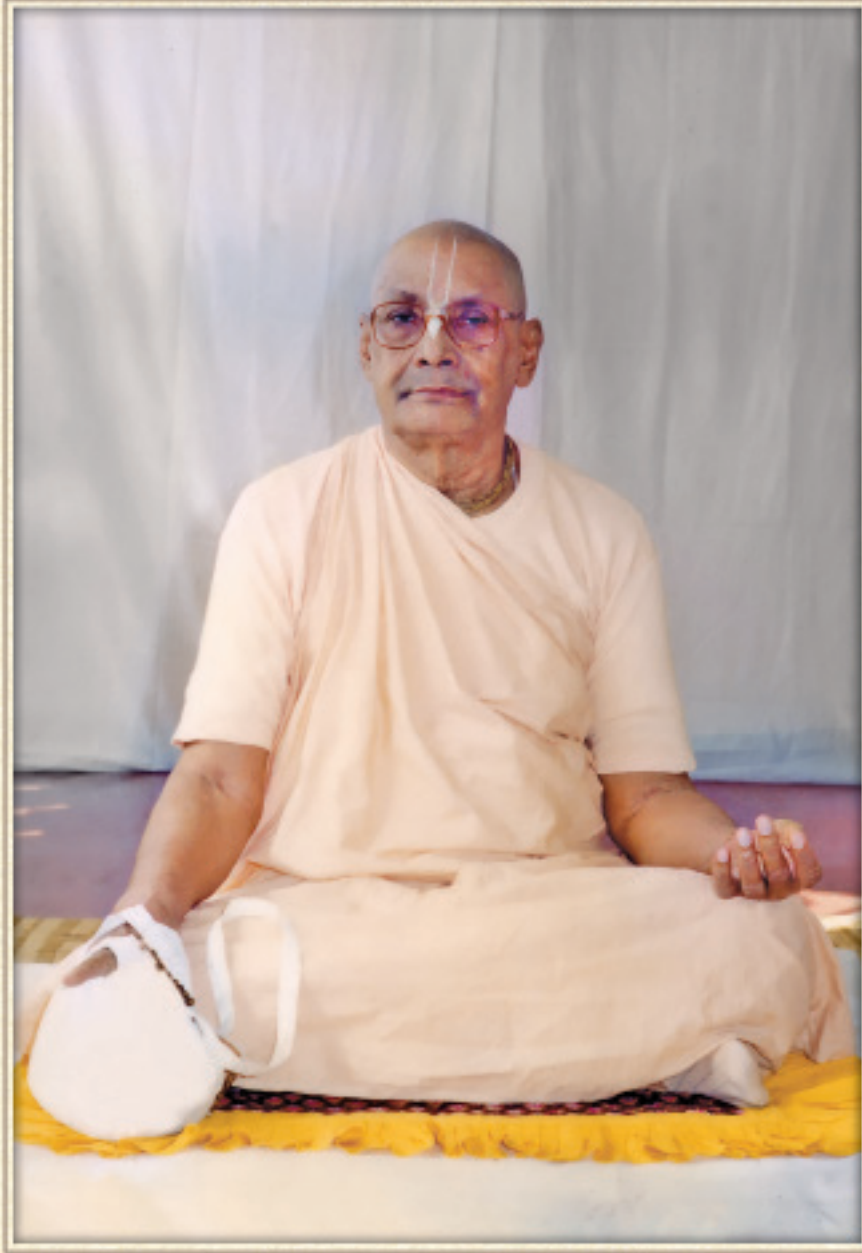
श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश-प्रार्थी

त्रिदण्डिभिक्षु

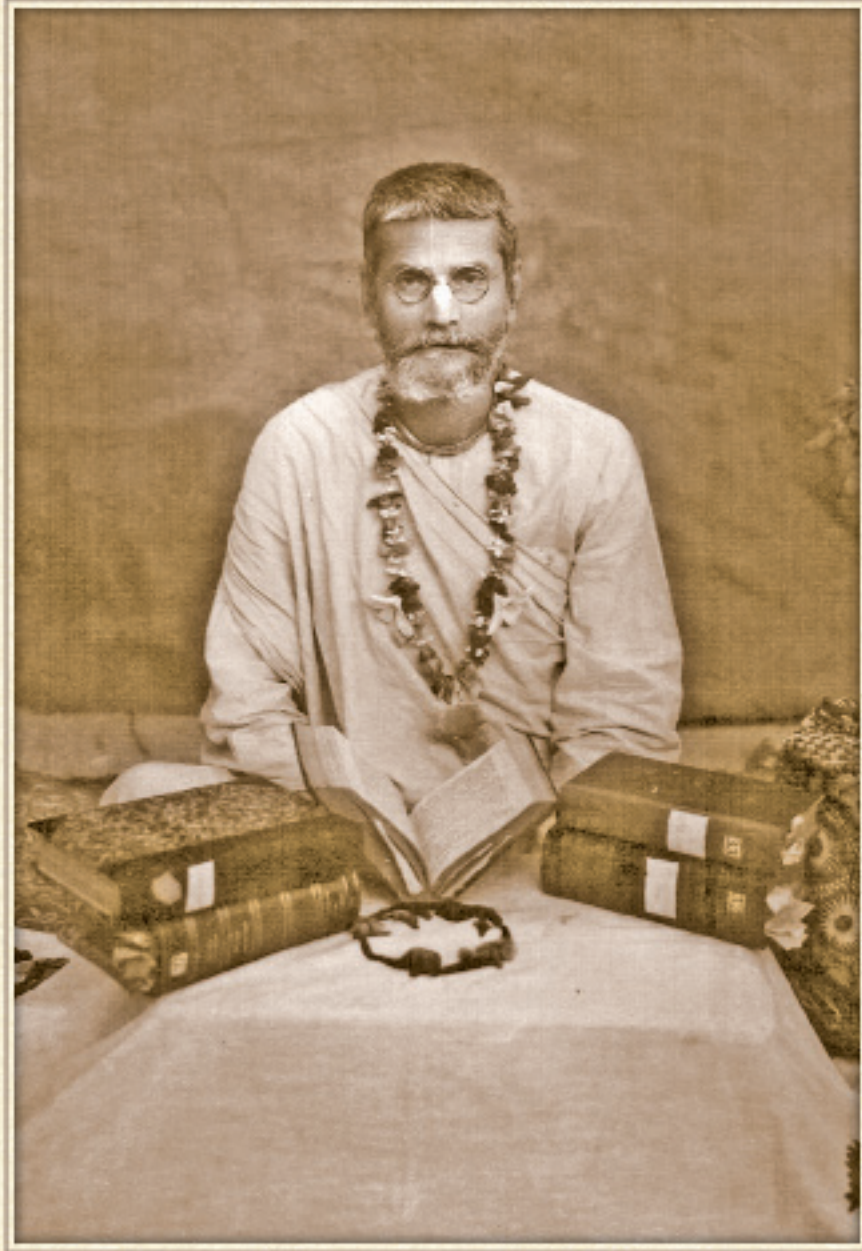
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण



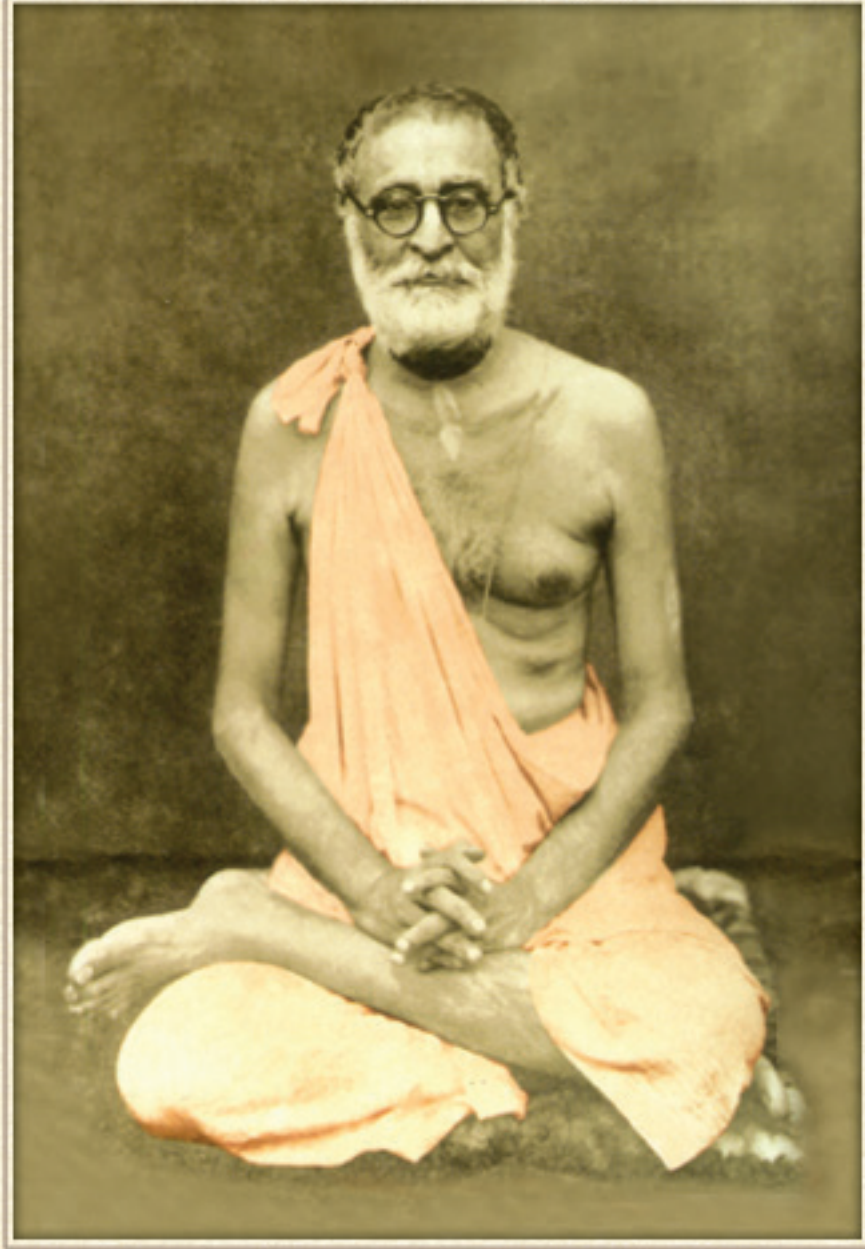
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्वक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज



ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज



ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज



ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'



रसिककुल चूडामणि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर



शिशु कृष्ण द्वारा शकटासुरका वध



श्रीगर्गाचार्य द्वारा कृष्ण-बलरामका नामकरण



श्रीवृन्दावनके निकुञ्जमें सखियों सहित श्रीश्रीराधाकृष्ण



दशमः स्कन्धः

दशम स्कन्धका कथासार

श्रीशुकदेव नवम स्कन्धमें चन्द्र-सूर्यवंशके विस्तृत विवरण-प्रसङ्गमें यदुवंश-परम्पराका वर्णन कर रहे थे कि महाराज परीक्षित् शुकदेवसे यदुकुलमें प्रकटित रामकृष्णकी भौम-लीलाको सुनानेका अनुरोध करने लगे। परीक्षित्ने बलदेव एवं कृष्णका जन्म-रहस्य, कृष्ण द्वारा कंस-वध, द्वाराका-वासका काल-परिमाण एवं महिषियोंकी संख्या इत्यादि विषयमें बहुत-से प्रश्न किये। श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित्के प्रश्नोंकी प्रशंसा की। वे बतलाने लगे कि पृथ्वी दैत्योंके भारसे कातर होकर ब्रह्माके शरणागत हुई। ब्रह्मा देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर जाकर विष्णुकी आराधना करने लगे। ब्रह्माने समाधिमें विष्णुकी आकाशवाणी सुनी कि मायाके साथ देवताओंको भी भगवान्के अवतरणके विषयमें बता दिया गया है तथा भगवान्के सन्तोष-विधानके लिए उन देवताओंको पत्नियोंके साथ यादव एवं पाण्डव-कुलमें जन्म लेनेका आदेश प्रदान कर दिया गया है।

वसुदेव देवकीके साथ विवाह करके लौट रहे थे, उस समय कंस अपनी बहन देवकीको प्रसन्न करनेके लिए वसुदेवके रथका सारथि बनकर रथ चलाने लगा। इसी अवसर पर आकाशवाणीसे देवकीके अष्टम गर्भजात पुत्रके द्वारा अपनी मृत्युकी भविष्यवाणी सुनकर कंस देवकीके वधके लिए उद्यत हो गया। वसुदेव कंसको नानाविध वचनोंसे सान्त्वना देनेमें असमर्थ रहे। तब उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे देवकीके पुत्रोंका जन्म होते ही उन्हें उसके हाथोंमें सौंप देंगे। इस प्रतिज्ञासे उन्होंने देवकीके प्राणोंकी रक्षा की। यथाकाल देवकीके प्रथम पुत्रने जन्म-ग्रहण किया। वसुदेव उसे कंसके हाथोंमें समर्पण करनेके लिए प्रस्तुत हुए। कंसने वसुदेवको उनका पुत्र लौटा दिया। तभी नारदजीने आकर कंसके निकट व्रजवासी

एवं वृष्णिवंशियोंके स्वरूपका परिचय दिया। कंस भी अपने पूर्वजन्मकी कथाको जानता था। अतः उसने वसुदेव और देवकीको कारागारमें बन्द कर दिया एवं क्रमशः देवकीके छह पुत्रोंको मार दिया। अपने पिता उग्रसेनको भी उसने कारागारमें आबद्ध कर दिया तथा यादवोंके साथ विरोध ठान लिया।

कंस जरासन्ध, अघ एवं बकादि असुरोंकी सहायतासे यादवोंकी हत्या करता रहा। वे भयभीत होकर विभिन्न राज्योंमें पलायन कर गये। भगवान् योगमायाको यशोदाके गर्भसे जन्म लेनेका एवं देवकीके सप्तम गर्भजात बलदेवको रोहिणीके गर्भमें स्थापन करनेका आदेश देकर स्वयं वसुदेवके चित्तसे देवकीके हृदयमें प्रविष्ट हो गये। माया द्वारा देवकीका गर्भ आकर्षित होनेपर नष्ट हो गया। देवकी इस कारण विलाप करने लगीं। भगवत्-उपस्थितिके कारण देवकीका तेजोमय रूप देखकर कंसने अपने विनाशकर्ता श्रीहरिके आविर्भावके विषयमें निश्चय कर लिया। वह हर क्षण शत्रुभावसे भगवत्-चिन्तनमें रत रहकर सम्पूर्ण जगत्को कृष्णमय देखने लगा। देवता देवकी गृहमें आकर विविध रहस्यपूर्ण वचनोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

भगवान् श्रीहरि देवकीके गर्भसे चतुर्भुज मूर्तिमें प्रकट हुए। वसुदेव एवं देवकी भगवान्की स्तुति करके उनसे अपने ऐश्वरिक रूपको गोपन करनेकी प्रार्थना करने लगे। भगवान्ने अपने स्वाभाविक द्विभुज रूपको प्रकट करके वसुदेव देवकीके पूर्वजन्मकी कथाका वर्णन किया। अनन्तर वसुदेव भगवत्-इच्छासे बन्धनसे मुक्त होकर कृष्णको नन्दव्रजमें यशोदाकी शय्यापर स्थापन करके यशोदाकी पुत्रीको लेकर लौट आये एवं पूर्ववत् बँध गये। भगवान्की मायाके प्रभावसे सोये हुए प्रहरीगण जाग गये और कन्याकी क्रन्दन-ध्वनि सुनकर देवकीके प्रसवका समाचार उन्होंने कंसके समीप ज्ञापन किया। कंस तत्क्षण ही सूतिकागृहमें आया और देवकीके अनुनय-विनयकी उपेक्षा करके उसने उस कन्याको उठा लिया। कंस कन्याको शिलापर फेंकना ही चाहता था कि

कन्या उसके हाथसे छूटकर अष्टभुजा मूर्तिमें प्रकाशित हो गयी एवं कंस-अन्तक (कंस-हन्ता) के अन्यत्र जन्मकी सूचना दे दी। कंस दैववाणीकी असत्यतासे विस्मित रह गया। उसने वसुदेव-देवकीको बन्धन मुक्त किया और देवकीकी सन्तति-नाशके लिए उनसे क्षमाकी प्रार्थना की। अनन्तर मन्त्रियोंके साथ परामर्श करके समस्त देवताओंके मूल-विष्णुके विरोधके उद्देश्यसे देव, ऋषि, गो, विप्र एवं नवजात शिशुओंकी हत्याके लिए अपने अनुचरोंको आदेश दे दिया।

महाराज नन्दने पुत्रके दर्शनसे आनन्दित होकर जातकर्मादि संस्कार सम्पादन किये। गोपोंको गोकुलकी रक्षाके लिए नियुक्त करके कंसको वार्षिक कर प्रदान करनेके लिए वे मथुरा पहुँचे। वसुदेवने नन्दका साक्षात् करके उनके सौभाग्यकी प्रशंसा की और ब्रजकी कुशल-वार्ता पूछने लगे। नन्दने कुशलता बताकर देवकीके पुत्रोंके विनाशके लिए दुःख प्रकट किया और वसुदेवको सान्त्वना प्रदान की। वसुदेवने गोकुलमें उत्पातकी सम्भावना जानकर नन्दसे गोकुल लौट जानेके लिए कहा। नन्द महाराज वसुदेवसे विदा लेकर गोकुलकी ओर चल पड़े।

कंस द्वारा प्रेरित पूतना पुर, ग्राम, ब्रजादिमें शिशुओंकी हत्या करती हुई भ्रमण किया करती थी। एक दिन पूतना परम सुन्दरी स्त्रीकी मूर्ति धारण करके भगवान्‌के समीप आयी और उन्हें गोदमें बिठाकर विष-ग्रसित (विषसे लेप किया हुआ) स्तन्य-पान कराने लगी। भगवान्‌ जोर-से स्तनोंको दबाकर स्तन्य सहित पूतनाके प्राणोंका पान करने लगे। पूतनाने निजरूप धारण किया और प्राणहीन होकर गोष्ठके बाहर भूमिपर जा गिरी। गोपियोंने मृत राक्षसीके वक्षसे कृष्णको उठाया और रक्षाबन्धन करके यशोदाको अर्पण कर दिया। यशोदाने उस समय कृष्णको स्तन्य पान कराके सुला दिया। इसी अवसरपर नन्दादि गोप मथुरासे लौटे। पूतना-निधन एवं शिशुका कुशल-संवाद सुनकर वे आनन्दित हुए।

कृष्णकी तीन मासकी अवस्थामें यशोदाने पुरस्त्रियोंके साथ मिलकर विविध माङ्गलिक अनुष्ठानोंके साथ कृष्णका अभिषेक किया। तदनन्तर शिशुको निद्रित देखकर उन्होंने उसे शकटके नीचे सुला दिया और स्वयं उत्सव-कार्योंमें नियुक्त हो गयीं। कृष्णने रोदनके छलसे अपना एक पग ऊपर उछालकर शकटको विध्वस्त कर दिया। बालकोंसे शकट-भञ्जनकी बात सुनकर यशोदा आर्यीं और पुत्रको स्तन्य-पान कराने लगीं। उन्होंने ग्रह-शान्तिके लिए ब्राह्मणोंके द्वारा हवन आदिके अनुष्ठान एवं आशीर्वचनोंके उच्चारण करवाये।

जब कृष्ण एक वर्षके थे, तब यशोदाने अपनी गोदमें बैठे पुत्रको अत्यन्त भारी जानकर भूमिपर रख दिया और 'नारायण' का स्मरण करने लगीं। कंसके अनुचर तृणावर्तने चक्रवातके रूपमें आकर सम्पूर्ण गोकुलको धूलसे आच्छादित किया और शिशुका हरण कर लिया। अति दूर तक वहन करनेके कारण वह बालकको छोड़ना चाहता था, परन्तु कृष्णने उसे इस प्रकारसे गृहीत कर लिया कि वह मायावी असुर भूमिपर गिर पड़ा और पञ्चत्वको प्राप्त हो गया। यशोदादि व्रजाङ्गनाएँ दैत्यके वक्षःस्थलपर कृष्णको अक्षत देखकर अत्यन्त आनन्दसे विस्मित रह गयीं।

एक बार यशोदा कृष्णको स्तन्य-पान करा रही थीं कि इसी समय कृष्णने जँभाई ली। तब यशोदाको कृष्णके मुखमें आकाश, स्वर्ग इत्यादि चराचर सभी प्राणी दिखायी दिये। इससे उनका शरीर काँपने लगा। वे आँखें मूँदकर आश्चर्यचकित रह गयीं।

एक दिन वसुदेव द्वारा प्रेरित गर्गमुनि नन्दालय आये और उन्होंने कंसके भयके कारण गोपनरूपमें रामकृष्णका नामकरण किया। इस प्रसङ्गमें बलदेव, सङ्कर्षण, कृष्ण इत्यादि नामोंका तात्पर्य एवं कृष्णके चतुर्युगोचित वर्ण एवं गुण-कर्मके अनुसार अनन्त नामोंका उल्लेख करते हुए गर्गाचार्यने नन्दरायजीसे पुत्रका पालन सावधानीसे करनेके लिए कहा और उनसे विदा ली। तदनन्तर शुकदेवने कृष्ण-बलदेवका घुटनोंके बल चलना, माखन-

चोरी, दधिकी मटकी फोड़ना, गोपियोंका यशोदाके समीप अभियोग, यशोदाका डाँटना, कृष्णका मिट्टी खाना, मुखके अन्दर यशोदाको विश्वरूप-प्रदर्शन, उसे देखकर यशोदामें ऐश्वर्य-भावोदयके कारण सम्भ्रम-बुद्धि एवं योगमायाके प्रभावसे पुनः वात्सल्य-भावका प्रकाश, नन्द-यशोदाका द्रोण-धरा रूपमें जन्म एवं ब्रह्म-वरसे पुत्ररूपमें भगवान्की प्राप्ति इत्यादि प्रसङ्ग कहे।

एक दिवस यशोदा दधि-मन्थनमें लगी हुई थीं कि कृष्ण स्तन्य-पानके लिए आये और माताके कार्यमें बाधा देने लगे। माता स्नेहसे ओतप्रोत होकर कृष्णको स्तन्य-पान कराने लगीं, किन्तु दूधमें उफान आता देखकर कृष्णको भूमिपर बिठाकर दुग्ध-रक्षण हेतु चली गयीं। स्तन्य-पानसे अतृप्त रहनेके कारण कृष्णने क्रोधित होकर दधि-पात्रको तोड़ दिया और नवनीत (ताजा माखन) खाने लगे। लौटनेपर माताने दधि-पात्रको टूटा हुआ देखा, तो यह पुत्रका ही कार्य है—ऐसा अनुमान करके गृहमें प्रवेश किया। वहाँ कृष्णको उलटे ऊखलपर खड़े होकर चौक्रे नेत्रोंसे इधर-उधर ताकते हुए एवं वानरोंको माखन बाँटते हुए देखने लगीं। माताको देखते ही कृष्ण ओखलीसे कूदकर भागने लगे। माता उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगीं और उन्हें पकड़ लिया। वे कृष्णको ऊखलसे बाँधनेके लिए उद्यत हुईं, परन्तु रस्सी दो अङ्गुल कम पड़ गयी। पुनः और रस्सियाँ लाकर उसमें जोड़ने लगीं, परन्तु हर बार वे रस्सियाँ दो अङ्गुल कम पड़ती गयीं। इस प्रकार जितनी बार रस्सी लातीं, उतनी बार दो अङ्गुल कम पड़ जाती। अन्तमें माताको थकी हुई देखकर कृष्ण स्वयं बन्धनमें आ गये। अनन्तर माता घरके कार्योंमें व्यस्त हो गयीं। इधर नारद-शापसे यमलार्जुनके रूपमें परिणत कुबेरके दोनों पुत्रोंके प्रति कृष्णकी दृष्टि पड़ी।

ऐश्वर्य-मदसे मत्त कुबेरके दोनों पुत्र मन्दाकिनीमें विवस्त्र होकर स्त्रियोंके साथ विहार कर रहे थे, उसी समय वहाँ देवर्षि नारदका आगमन हुआ, किन्तु नारदजीको देखकर भी कामासक्त

इन दोनोंमें चेतनाका उदय नहीं हुआ। देवर्षि नारदने उनका ऐश्वर्याभिमान दूर करनेके लिए उन्हें आच्छादित-चेतन स्थावर-देह-प्राप्तिका अभिसम्पात दे दिया। इस कारण वे गोकुलमें यमलार्जुन वृक्षरूपमें परिणत हो गये। “देवताओंके सौ वर्ष बाद वे पापसे मुक्त हो जायेंगे”—नारदके इस वचनको सत्य करनेके लिए निर्दिष्ट कालके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्ण ऊखलको खींचते हुए वहाँ पहुँचे और ऊखलसे (वृक्षोंके बीचमें अटक जानेसे ऊखल टेढ़ा हो गया था) दोनों वृक्ष उखाड़ दिये। कुबेरके दोनों पुत्रोंने दिव्य देह प्राप्त करके कृष्णकी स्तुति एवं परिक्रमा की और उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान कर गये।

यमलार्जुनके गिरनेसे जो शब्द हुआ, उसे सुनकर नन्दादि गोपोंको लगा कि कहीं बिजली तो नहीं गिर गयी, अतः नन्दादि गोप वहाँ पहुँचे। उन्होंने वहाँ श्रीकृष्णको ऊखलसे बँधे हुए देखा। गोपबालकोंसे (यमलार्जुन-भञ्जनकी) पूरी बात सुनकर भी नन्दादि गोपोंको कृष्णके ऐश्वर्य-ज्ञानसे रहित होनेके कारण उसपर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कृष्णको बन्धनसे मुक्त कर दिया।

एक दिन एक फल बेचनेवाली आयी। तब कृष्ण अपने छोटे-छोटे हाथोंमें धान्य लेकर उसके पास पहुँचे तथा फलकी प्रार्थना करने लगे। उसने कृष्णके दोनों हाथोंको फलोंसे भर दिया और कृष्णने उसके फलकी टोकरीको रत्नोंसे पूर्ण कर दिया।

गोकुलमें नाना प्रकारके उत्पात देखकर नन्दादि गोपगण गोकुलका परित्याग करके वृन्दावनमें पहुँचे। एक दिन राम-कृष्ण यमुनाके किनारे गोचारणमें संलग्न थे कि उन्हें मारनेके लिए वत्सासुर बछड़ोंके झुण्डमें प्रवेश कर गया। कृष्णने उसके दोनों पैरोंके साथ उसकी पूँछको पकड़ा और उसे घुमाते-घुमाते उसके प्राण निकाल दिये। एक दिन बछड़ोंको जलपान करानेके लिए कृष्ण जलाशयमें गये और बकरूपी असुरको देखा। बकासुर

कृष्णको देखते ही उन्हें निगल गया। कृष्ण उसके उदरस्थ होकर उसके तालू-मूलको आगसे जलाने लगे। बक इस तापको सहन नहीं कर पाया। उसने कृष्णको उगल दिया। भगवान् श्रीकृष्णने उसे चोंचसे पकड़कर चीर डाला।

एक बार कृष्ण वन-भोजनकी आशासे बालकोंके साथ वनमें पहुँचे। वे वन-विहारमें तल्लीन हो गये कि अघासुरने वहाँ उपस्थित होकर अजगरकी देह धारण की और मुख खोलकर सो गया। कृष्णके सङ्गी-बालक गोवत्सोंके साथ असुरके मुखमें घुस गये। कृष्ण उनके उद्धारके लिए अजगरके पेटमें घुसकर अपने शरीरको बढ़ाने लगे, जिससे उसका वायु-निर्गमन पथ बन्द हो गया और असुरकी मृत्यु हो गयी।

अघासुरके वधके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बालकोंके साथ यमुना-पुलिनपर आये और भोजन करनेमें व्यस्त हो गये। बछड़े घास चरते-चरते दूर स्थानपर चले गये। श्रीकृष्ण साथियोंकी व्याकुलता देखकर बछड़ोंको खोजनेके लिए चल दिये। ब्रह्माने भगवान्‌के ऐश्वर्यको देखनेकी इच्छासे जैसे बछड़ोंको दूसरे स्थानपर रख दिया था, उसी प्रकार बालकोंको भी स्थानान्तरित कर दिया। कृष्ण जान गये कि यह ब्रह्माका कार्य है। अतः वे स्वयं वत्स एवं बालकरूपमें पूर्ववत् लीला करने लगे। प्रायः एक वर्ष होनेको आया कि बलदेवने गोवत्स एवं बालकोंको कृष्णरूपमें देखा, तो उसका कारण पूछने लगे। कृष्णने उन्हें सम्पूर्ण रहस्य बतला दिया। ब्रह्माके अपने काल-परिमाणसे एक त्रुटि समय ही व्यतीत हुआ था (मानव परिमाणसे एक वर्ष बीता था) कि वे पुनः वहाँ आये। उन्होंने भगवान् श्रीहरिको गोवत्स एवं गोपबालकोंके साथ क्रीडारत देखा एवं निज अपहृत बालकोंको उसी पूर्व स्थानमें अवस्थित देखा, तो सत्यका निर्धारण करनेमें असमर्थ हो गये। इसी समय अपने सम्मुख गोवत्स एवं बालकोंको चतुर्भुज श्यामसुन्दररूपमें देखनेपर ब्रह्मा मोहग्रस्त हो गये। कृष्णने यह जानकर अपनी मायाको गोपन कर लिया। ब्रह्मा बाह्य-चेतनाको

प्राप्त हुए, तो कृष्णको पूर्ववत् भोजनरत देखा। तब वे कृष्णके चरणकमलोंमें प्रणत हो गये और उनकी स्तुति करने लगे। अनन्तर कृष्णके अनुमोदनसे अपने धामको चले गये।

राम-कृष्णकी पौगण्ड-लीला-कालमें एक दिन श्रीदामादि गोप-बालकोंने उन दोनोंको सुस्वादु तालफलसे पूर्ण तालवन एवं वहाँ स्थित कंसके अनुचर धेनुकासुरके बारेमें बताया। राम-कृष्ण उस स्थानपर उपस्थित हुए। बलदेवने तालवृक्षको बहुत जोरसे हिलाया, जिससे उसके बहुत सारे फल नीचे गिर गये। तभी गधा-रूपधारी धेनुकने बलदेवपर आक्रमण कर दिया। बलदेवने धेनुकासुरके पीछेवाले दोनों पैरोंको पकड़कर घुमाते हुए उसे तालवृक्षके ऊपर पटक दिया, इससे असुरने अपने प्राण त्याग दिये। धेनुकके भाई-बन्धुओंने क्रोधमें भरकर बलदेवपर आक्रमण किया। बलदेवने उन सबको मार गिराया।

एक दिन कृष्ण-बलदेवके बिना ही अपने सखाओंको लेकर गोचारणके लिए यमुना तट पहुँचे। गायोंके साथ गोपालगण यमुनाके विषैले जलका पान करके मूर्च्छित होकर नदीके तटपर ही गिर पड़े। कृष्णने अमृत-वर्षिणी दृष्टि द्वारा सभीको जीवन-दान दिया एवं विषैले जलको शुद्ध करनेके लिए हृदमें कूद पड़े। कालिन्दी-हृदमें वे निर्भय होकर विहार करने लगे। कालियने जब अपने भवनपर आक्रमण देखा, तो वह कृष्णपर टूट पड़ा। कृष्ण कालियके फनके ऊपर नृत्य करते-करते उसके सहस्र फनोंको निपीड़ित करने लगे। इससे कालिय अचेतनप्राय हो गया। नागपत्नियाँ स्तुति करने लगीं। उनकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर भगवान्ने कालियको प्राणोंकी भिक्षा दी तथा यमुना छोड़कर रमणकद्वीप जानेका आदेश दिया।

रमणकद्वीपस्थ नागगण आत्म-रक्षाके लिए गरुडजीको प्रत्येक मासकी अमावस्या एवं पूर्णिमाको बलि प्रदान करते थे, किन्तु कालिय गरुडजीको वह बलि न देकर उसे स्वयं खा लेता था। गरुडजीको जब यह पता चला, तब उन्होंने कालियपर आक्रमण

कर दिया। कालिय गरुडजीके प्रहारोंसे आहत होकर उनके द्वारा अगम्य यमुनामें प्रवेश कर गया। एक दिन गरुडजीने सौभरि मुनिके निषेध करनेपर भी यमुनामें मत्स्यका भक्षण कर लिया, तब उन्होंने गरुडको अभिशाप प्रदान किया कि गरुड यमुनाका जल स्पर्श करते ही मृत्युको प्राप्त हो जायेंगे। कालिय यह बात जानता था, इसलिए निर्भय होकर वहाँ रहने लगा। श्रीकृष्ण कालियको यमुनासे निकाल कर स्वयं हृदसे बाहर आ गये। भूखे और प्यासे ब्रजवासियोंने वह रात्रि कालिन्दीके तटपर ही बितायी। मध्यरात्रिमें दावानल प्रज्वलित हो उठा और उसने ब्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया। कृष्णने उस दावानलका पान कर लिया।

एक दिन राम-कृष्ण एवं गोपगण क्रीड़ामें प्रमत्त हो रहे थे कि प्रलम्बासुर गोपवेशमें वहाँ प्रवेश कर गया। कृष्ण यह जान गये और उन्होंने यूथ-क्रीड़ाका प्रस्ताव रखा। इसमें पण (बाजी) इस प्रकार रखा गया कि हारनेवाला व्यक्ति जीतनेवालेको अपने कन्धेपर वहन करेगा। प्रलम्बासुर पराजित होकर बलदेवको अपने कन्धेपर वहन करते हुए लक्ष्यस्थलसे बहुत दूर ले गया और कृष्णके बहुत दूर रहते उसने अपना स्वरूप प्रकट कर दिया। बलदेवने उसे देखकर मुट्टियोंसे उसके मस्तकपर बहुत प्रहार किये, इससे वह मृत्युको प्राप्त हो गया।

और एक बार गोपबालक खेलनेमें लीन हो गये, उधर गौएँ बहुत दूर एक गहन एवं दुर्गम वनमें घुस गयीं। वनमें दावानल फैल गया और गौएँ उससे सन्तप्त होकर इषिकावनमें घुस गयीं। गोपबालक उन्हें खोजते हुए शरवन पहुँचे। गोधनका उद्धार करनेके लिए एवं दावानलसे सन्तप्त होनेके कारण वे अपनी रक्षाके लिए कृष्णके शरणागत हुए। भगवान्ने उन्हें आँखें बन्द करनेका आदेश दिया और क्षणभरमें दावानल पान कर लिया।

श्रीकृष्ण गोपबालकोंके साथ गोचारणके लिए अरण्यमें जाते और वंशीनाद करते। कामभाव जाग्रत करनेवाले वेणुगीतको

सुनकर गोपियाँ सखियोंके साथ कृष्णकी लीलाओंका कीर्तन करतीं।

गोपियाँ कृष्ण-गुण-गान करते-करते यमुना-तटपर जातीं और स्नानके बाद कृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी आशासे कात्यायनीका अर्चन करतीं। इस प्रकार उन्होंने एक मास तक व्रतका अनुष्ठान किया। वे नदीके किनारे वस्त्र रखतीं और यमुनामें विहार करने लगतीं। इसी अवसरपर भगवान् श्रीकृष्ण आये और उनके समस्त वस्त्रोंको लेकर यमुना-तटपर स्थित कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये। कन्याओंको व्रतकी सफलताके लिए उत्कण्ठित जानकर कृष्णने किनारेपर आकर उन्हें वस्त्र ग्रहण करनेका आदेश दिया। कुमारियोंने कपट क्रोध करके राजभयका प्रदर्शन किया और वस्त्रोंकी प्रार्थना की। कृष्णने ऐसी बातोंपर ध्यान न देकर किनारे पर आनेका आदेश दिया। तब कुमारियाँ अपनी लज्जाकी रक्षा करती हुई जलसे निकलीं। इसपर कृष्णने उन्हें व्रत-भङ्गका डर दिखाया और उसके निवारण हेतु हाथ जोड़कर प्रणाम करनेका आदेश दिया। गोपियोंने सर्वकर्मफलदाता कृष्णको प्रणाम किया। श्रीकृष्णने उन्हें सभी वस्त्र प्रदान कर दिये। उस स्थानका परित्याग करनेकी गोपियोंकी इच्छा नहीं थी। भगवान्ने उन्हें अभीष्ट-सिद्धिका वर प्रदान किया। गोपियोंके मनोरथ पूर्ण हुए और वे व्रजमें लौट आयीं। अनन्तर कृष्ण सखाओंके साथ गोचारणके लिए दूर स्थानपर चले गये। ग्रीष्मसे सन्तप्त होकर उन सबने वृक्षके नीचे आश्रय लिया। छाया-फलादि-प्रदान द्वारा श्रीकृष्णने वृक्षोंकी परोपकार-वृत्तिका दृष्टान्त देते हुए शिक्षा दी कि देही मात्रको प्राण, अर्थ, बुद्धि एवं वचनों द्वारा सबका कल्याण अर्थात् श्रेय-आचरण करना चाहिये।

गोचारणरत गोपालोंने श्रीकृष्णके निकट भोज्यकी प्रार्थना की। उन्होंने गोपालोंको याज्ञिक विप्रोंके पास अन्नकी प्रार्थनाके लिए भेजा। याज्ञिक विप्रोंके द्वारा प्रत्याख्यात होनेपर उन्होंने उन्हें विप्र-पत्नियोंके पास भेजा। कृष्ण-गुणोंसे आकर्षित विप्र-पत्नियाँ

कृष्णके भोज्य-प्रार्थना-वचनोंको सुनते ही चार प्रकारके अन्नको लेकर उनके समीप उपस्थित हुई। कृष्णके आदेशसे वे पुनः लौट आयीं। विप्रोंने अनुशोचना करके अपने-अपने त्रिविध-संस्कार-युक्त विप्रजन्मसे संस्कार-विहीन पत्नियोंकी अधिक श्रेष्ठता स्थापित करते हुए कृष्णके उद्देश्यसे उनको प्रणाम किया।

एक बार श्रीकृष्णने गोपोंका इन्द्र-यज्ञके लिए उद्यम देखकर इन्द्र-पूजाकी निष्फलता एवं इन्द्रकी असमर्थता दिखाकर गोवर्द्धन-पूजाकी व्यवस्था की। उन्होंने इन्द्र-याग हेतु संग्रहीत द्रव्योंके द्वारा गोवर्द्धनकी पूजा कराके और स्वयं अभिनव रूप धारण करके गोवर्द्धनको निवेदित नैवेद्य आदिका भोजन किया।

यज्ञ-भङ्गसे क्रोधित देवराज वारि-वर्षण एवं शिला-वृष्टि द्वारा व्रजवासियोंको उत्पीड़ित करने लगे। तब कृष्णने वामहस्तपर गोवर्द्धन-गिरिको उठा लिया और उसके गर्तमें पशुओंके साथ गोपोंको आश्रय प्रदान किया। एक सप्ताह तक कृष्ण गिरिराजको धारण किये रहे। अब इन्द्रको कृष्णका प्रभाव ज्ञात हुआ। उसने मेघोंको निरस्त कर दिया। गोपादि सभी गिरि-गर्भसे बाहर आये।

गोपगण कृष्णकी अद्भुत लीलाओं एवं गोप-गोपियोंके कृष्णानुरागको देखकर कृष्णके 'सामान्य गोपबालक' मात्र परिचयपर सन्देह करने लगे। उन लोगोंने नन्दबाबासे कहा कि वे गर्ग मुनि द्वारा कथित सम्पूर्ण विषयोंका उनके समीप वर्णन करें। कृष्णमें नारायणकी शक्तिका आवेश जानकर नन्दके साथ उन सबने कृष्णकी पूजा की।

गोवर्द्धन-धारणसे कृष्णको क्लान्ति हुई होगी—ऐसा सोचकर इन्द्र सिर झुकाये कृष्णके समीप आये और अपराध-क्षमाके लिए प्रणाम एवं स्तुति करने लगे। कृष्णने इन्द्रको अपने पदपर अभिमान-रहित होकर अधिष्ठित रहनेके लिए कहा। इन्द्रने सुरभिके साथ आकर आकाशगङ्गाके जल एवं सुरभि-दुग्ध द्वारा कृष्णका अभिषेक करके उन्हें 'गोविन्द' नाम प्रदान किया।

एक बार गोपराज नन्दने एकादशी तिथिपर उपवास किया। रात्रि समाप्त हुई जानकर वे आसुरी बेलामें ही स्नानके लिए यमुनामें प्रविष्ट हो गये। वरुणके भृत्य उन्हें वरुणालय ले गये। कृष्ण जान गये कि यह वरुणका कार्य है, तो वे वहाँ पहुँचे। वरुण श्रीकृष्णकी पूजा करके भृत्यकृत अपराधके लिए क्षमा प्रार्थना करने लगे। गोपराज नन्द कृष्णके प्रभावको देखकर आश्चर्यचकित हो गये और अपने सगे-सम्बन्धियोंको इस विषयमें बताने लगे। उन्होंने कृष्णको 'स्वयं-भगवान्' जानकर परमपद-दर्शनकी अभिलाषा की। कृष्णने उन्हें ब्रह्म-हृदमें स्नान कराके ब्रह्मलोकका दर्शन करा दिया।

भगवान् श्रीकृष्णने शारदीय रात्रिमें रासक्रीड़ाकी इच्छासे वंशी-ध्वनि की। गोपियाँ अपने-अपने कार्योंको छोड़कर कृष्णके समीप उपस्थित हो गयीं। कृष्णने उपहास करते हुए उन्हें लौटनेका आदेश दिया। वे लौटीं तो नहीं, अपने विरह-सन्तापको दूर करनेके लिए कातरतापूर्वक कृष्णसे अनुरोध करने लगीं। कृष्णने विविध-क्रीड़ाओं द्वारा उनका आनन्द विधान किया, जिससे उन्हें गर्व हो आया। तब कृष्ण उनका गर्व दूर करनेके लिए रासस्थलीसे अदृश्य हो गये।

रासस्थलीसे कृष्णके अन्तर्धान होनेपर गोपियाँ उनके चिन्तनमें डूबकर गान करती हुई स्थावर, जङ्गम सभीसे कृष्णके विषयमें पूछने लगीं। कृष्णको खोजतीं-खोजतीं वे अति विह्वल एवं कातर हो पड़ीं तथा कृष्ण-लीलाओंका अनुकरण करने लगीं। वन-प्रदेशमें भ्रमण करती हुई उन्होंने भूमिपर कृष्णके साथ श्रीराधाके पदचिह्नोंका दर्शन किया और श्रीराधाजीके सौभाग्यकी प्रशंसा करने लगीं। इधर श्रीराधाजीने अकेले ही कृष्ण-सङ्गकी प्राप्तिसे अपनेको अधिक सौभाग्यवती मानकर आगे चलनेकी असमर्थता कृष्णको बतायी। श्रीकृष्णके स्कन्धपर आरोहण करनेकी इच्छा प्रकट करनेपर कृष्ण अदृश्य हो गये। उस समय श्रीराधा-कृष्णके अनुसन्धानमें रत सखियोंके साथ मिलकर स्वयं भी कृष्णको ढूँढ़ने

लगीं, किन्तु उसमें असफल होनेके कारण यमुना-तटपर लौट आयीं और कृष्णका गुणगान करने लगीं।

कृष्णगतप्राण गोपियाँ विविध आर्त्ति-वचनोंसे कृष्ण-कृपाकी प्रार्थना करने लगीं, तब कृष्ण उनके निकट आविर्भूत हो गये। कृष्ण-दर्शनसे अत्यन्त आनन्दपूर्वक गोपियाँ विविध प्रकारसे कृष्णकी सेवा करने लगीं। कृष्णने उनके साथ रासक्रीड़ा प्रारम्भ कर दी तथा गोपियोंके साथ प्रश्नोत्तरमें अपनी भक्तवश्यता प्रकाशित की।

यमुना-तटपर श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके मध्य एक-एक मूर्त्ति प्रकट करके रासक्रीड़ा करने लगे। कृष्णगतप्राणा गोपियाँ नृत्य, गीतादिके द्वारा कृष्णको प्रसन्न करनेमें लग गयीं। जब वे नृत्यादिसे क्लान्त हो गयीं, तब कृष्णने अङ्ग-आलिङ्गन आदि द्वारा उनकी श्रान्तिको दूर किया। जैसे बालक निज प्रतिबिम्बके साथ क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार कृष्णने भी अपनेसे अभिन्न गोपियोंके साथ क्रीड़ा की। गोपियोंके साथ कृष्णकी लम्पटोचित कामक्रीड़ाकी कथा सुनकर परीक्षित्को सन्देह हुआ, तो श्रीशुकदेवने बताया कि सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णकी यह क्रीड़ा दोषजनक नहीं है। यदि कोई इन लीलाओंका अनुकरण करेगा, तो उसका अमङ्गल अवश्यम्भावी है। गोपियोंकी कृष्णानुरक्तिके विषयमें श्रवणसे जीवकी भोग-वासना नष्ट हो जाती है और सेवा-प्रवृत्ति उदित हो जाती है।

नन्दप्रमुख गोपवृन्द शिवपूजाके उपलक्ष्यमें अम्बिकावन पहुँचे। शिव-पूजा करनेके बाद उन्होंने रात्रि वहीं व्यतीत कर दी। एक क्षुधातुर सर्पने आकर नन्दको ग्रस लिया। गोपगण सर्पको भगानेमें असमर्थ होकर कृष्णके शरणागत हो गये। कृष्णने अपने चरणसे सर्पका स्पर्श किया। सर्पने तत्क्षण ही अपनी देहको छोड़कर विद्याधर देहको प्राप्त किया। कृष्णके पूछनेपर उसने अङ्गिरा-गोत्रमें उत्पन्न ऋषियोंकी अवज्ञाके फलस्वरूप सर्प-योनि-प्राप्तिके विषयमें वर्णन करते हुए सुदर्शन नामक विद्याधरके रूपमें अपना परिचय

प्रदान किया एवं कृष्णकी अनुमति प्राप्त करके अपने स्थानपर प्रस्थान किया।

दोल पूर्णिमाके दिवसपर राम एवं कृष्ण ब्रजनारियोंके साथ वनमें विहार करने लगे। कुबेरका अनुचर शंखचूड़ गोपियोंको लेकर उत्तर दिशाकी ओर भाग चला। गोपियाँ कातरतापूर्वक विलाप करने लगीं, तब राम-कृष्ण उसके समीप पहुँचे। उस समय शंखचूड़ प्राण-भयसे पलायन करने लगा। श्रीकृष्णने उसका अनुसरण करते हुए उसका वध कर दिया और उसके मस्तकसे मणि निकालकर बलदेवको अर्पण कर दी।

श्रीकृष्ण जब गोचारणके लिए जाते, तब उनके ध्यानमें मग्न गोपियाँ कृष्णलीलाका गान करती हुई कृष्ण-विरहमें अति कष्टसे दिन यापन करती थीं।

अरिष्टासुर रामकृष्णको मारनेके लिए कृष्णरूप धारण करके गोष्ठमें आया। कृष्णने उसके दोनों सींगोंको पकड़ा और उसे भूमिपर गिरा दिया, जिससे वह मर गया। उसके बाद देवर्षि नारदने कंसके समीप राम-कृष्णका वास्तविक परिचय प्रदान किया। कंसने राम-कृष्णको बुलानेके लिए अक्रूरजीको भेजा।

कंस द्वारा प्रेरित केशी दानव अश्व-मूर्ति धारण करके कृष्णके समीप पहुँचा। कृष्णने उसके दोनों पिछले पैरोंको पकड़कर बहुत दूर फेंक दिया और उसके मुखके भीतर अपना हाथ डालकर उसके साँसके आने-जानेके मार्गको रोककर उस दैत्यका वध कर दिया। इसके बाद देवर्षि नारद कृष्णके समीप गये और उनकी स्तुति करके तथा उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चले गये। राम-कृष्ण गोप-बालकोंके साथ लुका-छिपी खेलने लगे। इस खेलमें कोई भेड़, कोई उन भेड़ोंका चरवाहा तथा कोई चोर बन गया और भेड़-चोरी आदि खेलोंमें रम गये। इतनेमें ही व्योमासुर गोपालवेशमें चोरोंके दलमें मिल गया और गोपालोंका अपहरण करके उन्हें पर्वतकी गुफामें बन्द कर दिया। श्रीकृष्ण

व्योमासुरके दुष्कर्मको जान गये और उन्होंने पशुके समान उसका गला घोटकर उसे मार दिया।

राम-कृष्णको लानेके लिए कंस द्वारा प्रेरित होकर अक्रूरने गोकुलकी यात्रा की। कृष्ण-दर्शन होंगे या नहीं—इस विषयमें वे सन्दिग्धभावसे चलते जा रहे थे। सूर्यास्तके समय वे गोष्ठपर पहुँचे और अभिभूत होकर व्रजकी रजपर लोटने लगे। अनन्तर व्रजमें प्रवेश किया। राम-कृष्णने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। अक्रूरने राम-कृष्ण एवं नन्द द्वारा विविध प्रकारसे सत्कार प्राप्त किया।

सान्ध्य-भोजनके बाद श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे कुशल-मङ्गल पूछा तथा आत्मीयोंके प्रति कंसके व्यवहारके विषयमें जानना चाहा। उन्होंने अक्रूरके आगमनका कारण भी पूछा। अक्रूरने कंसके सभी कलुषित अभिप्राय कृष्णके समीप प्रकाशित कर दिये। राम-कृष्ण पिताके समीप आये और हँसते हुए कंसका आदेश बतलाया। गोपराज नन्दने गोकुलवासियोंको भेंट सामग्रीके साथ कंसके पास जानेकी घोषणा कर दी। गोपियाँ कृष्णके मथुरा-गमनका समाचार सुनकर अत्यन्त व्यथित हो गयीं। वे विधाता एवं अक्रूरजीकी निन्दा करने लगीं और कृष्णका नाम ले-लेकर रोने लगीं।

गोपियाँ रोती रहीं और अक्रूर रथ चलाते रहे। गोकुलवासी शकटपर चढ़कर रथके पीछे-पीछे आने लगे। गोपवधुओंने कुछ दूर तक रथका अनुगमन किया। श्रीकृष्णने शीघ्र ही लौट आनेकी बात कहकर उन्हें सान्त्वना प्रदान की। जहाँ तक रथकी ध्वजा दिखायी दी, वे मूर्तियोंके समान खड़ी रहीं। अनन्तर घर लौट आयीं।

अक्रूरने कालिन्दीके किनारेपर रथ रोका। राम-कृष्णने यमुना-जलका पान एवं आचमनादि सम्पन्न किये। अक्रूरने राम-कृष्णकी आज्ञासे कालिन्दी-हृदमें स्नान किया और प्रणवका जाप करते हुए जलके मध्य राम-कृष्णके दर्शन किये। इससे

विस्मित होकर अक्रूर जलसे ऊपर उठे तथा रथके ऊपर राम-कृष्णको देखकर पुनः जलमग्न हुए। अनन्तदेवकी क्रोड़में पार्षदोंसे वेष्टित वासुदेवका दर्शन करके अक्रूर बड़े प्रेमके साथ उनकी स्तुति करने लगे।

श्रीकृष्णने अक्रूरको स्वमूर्ति दिखाकर उसे गोपन कर लिया। अक्रूर सविस्मय कृष्णके समीप आये और कृष्ण-दर्शन-विषयमें कृष्णके प्रश्नके उत्तरमें बताया कि स्थावर-जङ्गम सभीमें कृष्ण विद्यमान हैं। इसके बाद वे रथ चलाते हुए अपराह्ममें मथुरा पहुँचे। उनसे पहले ही मथुरा पहुँचे हुए नन्दादिसे वे मिलने गये। तदनन्तर गोपोंके साथ मथुरापुरीकी शोभा देखनेके लिए निकले। पुर-स्त्रियाँ अपने-अपने कार्यों एवं वेश-विन्यास आदिका परित्याग करके कृष्ण-दर्शनके लिए अटारियों पर चढ़ गयीं। कोई-कोई द्वारके बाहर आकर राम-कृष्णके ऊपर पुष्प-वर्षा करने लगीं तथा अन्य राम-कृष्णके निरन्तर दर्शनकी प्राप्तिके सौभाग्यके कारण गोपियोंकी प्रशंसा करने लगीं। कृष्णने कंसके धोबीसे वस्त्रोंकी प्रार्थना की, परन्तु उसके निषेध एवं भर्त्सना करनेपर भगवान्ने उसका संहार कर दिया। भगवान्ने अपने उपयोगी वस्त्रोंको ग्रहण कर लिया। एक दर्जीके द्वारा अनुरूप वेशके निर्माण करनेपर रामकृष्णने उसे वर प्रदान किया। सुदामा मालीके घरमें जाकर उसके द्वारा पुष्प-मालाओंसे अलङ्कृत होकर उसे भी मनोभीष्ट वर प्रदान किया और वहाँसे आगे चल पड़े।

पथमें राम-कृष्णने कुब्जाको देखा, तो उसे अङ्गराग देनेके लिए कहा। कुब्जाने उनके रूपसे आकर्षित होकर उन्हें पर्याप्त अङ्गराग प्रदान किया। श्रीकृष्णने अपने दर्शनके साक्षात् फलस्वरूप त्रिवक्रा कुब्जाको सुन्दर युवती बना दिया। कुब्जा श्रीकृष्णसे अपने घर चलनेका निवेदन करने लगी। कृष्णने उसकी अभिलाषाको कुछ समय बाद पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा की। अनन्तर व्यापारियोंसे आदर प्राप्त करते हुए धनुर्यज्ञ-स्थानपर प्रवेश करके वहाँ उन्होंने धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ायी और उसे तोड़ दिया। धनुर्भङ्गसे कंसके

हृदयमें भय उत्पन्न होने लगा। रक्षकोंने आक्रमण किया, तो कृष्णने उन्हें धनुषके टुकड़ोंसे मार डाला। अब वे गोपोंके छकड़ोंके डेरेपर पहुँचे और वहाँ रात्रि बितायी। रात्रिके बीतनेपर मल्लक्रीड़ा आरम्भ होनेपर पुरवासी एवं जनपदवासी वहाँ उपस्थित हुए। कंसने नन्दादि गोपोंका आह्वान किया। गोपोंने उसे भेंट-सामग्री प्रदान की और रङ्ग-भूमि स्थलपर अपना स्थान ग्रहण किया।

राम-कृष्ण उत्सव देखने पहुँचे, तो कुवलयपीड़ हाथी उनका मार्ग रोकने लगा। तब भगवान्ने हाथीके साथ उसके महावतको भी मार दिया। उनका सर्वाङ्ग हाथीके रक्तकी बूँदोंसे सुशोभित होने लगा। वे स्कन्धपर हाथीके दोनों दाँत धारण कर रङ्गस्थलपर प्रविष्ट हुए। वहाँ उपस्थित विभिन्न स्वभावके व्यक्तियोंने कृष्णको विभिन्न रूपोंमें देखा। इसके बाद चाणूर एवं मुष्टिक नामक दोनों मल्ल राम-कृष्णको मल्ल-क्रीड़ाके लिए ललकारने लगे।

राम-कृष्ण जैसे दो सुकुमार बालकोंको चाणूर और मुष्टिकके साथ मल्ल-क्रीड़ा करते देख सभी स्त्रियाँ राजा एवं सभासदोंकी निन्दा करने लगीं। उन दोनोंकी लीलाओंका स्मरण करते हुए वे ब्रजभूमिकी प्रशंसा करने लग गयीं। पुत्रस्नेहके कारण वसुदेव एवं देवकी शोकार्त हो गये। राम-कृष्णने चाणूर, मुष्टिक एवं अन्यान्य मल्लोंका संहार कर दिया। कंसने रण-वाद्य बन्द करवा दिये। वसुदेव, नन्द इत्यादिको मार डालनेका और राम-कृष्णको नगरसे बाहर करनेका आदेश दे दिया। वह यह सब प्रलाप कर ही रहा था कि कृष्ण फुर्तीसे उछले एवं मञ्चके ऊपर उपस्थित हो गये। उन्होंने कंसके केश पकड़े और उसे भूमिपर गिरा दिया। कृष्ण कंसके ऊपर कूदे और उनके कूदते ही उसकी मृत्यु हो गयी। कंसके आठ भाइयोंने कृष्णपर आक्रमण किया। बलदेवने उन आठोंको मार डाला। अब राम-कृष्णने अपने माता-पिताको बन्धनसे मुक्त किया। उनके चरणोंकी वन्दना की। वसुदेव एवं देवकी उन्हें जगदीश्वर जानकर उन्हें हृदयसे लगा न सके।

उत्तरार्द्ध

कृष्ण योगमायाके प्रभावसे माता-पिताके ऐश्वर्य भावको दूर करते हुए उनके समीप गये और इतने समय तक उनकी सेवा-शुश्रूषा न कर सकनेके कारण उनसे क्षमा प्रार्थना की। वसुदेव एवं देवकीने राम-कृष्णका आलिङ्गन किया। उन्होंने अपने प्रेमाश्रुओंसे उन दोनोंका अभिषेक किया। कृष्णने उग्रसेनको राज्य प्रदान करके कंस-भयसे भागे हुए आत्मीयोंको बुलाया और वहीं वास कराया। उन्होंने नन्द महाराजको विविध उपहार प्रदान करके ब्रजमें लौटनेका अनुरोध किया। नन्दने राम-कृष्णका आलिङ्गन किया और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे ब्रजमें लौट गये। अनन्तर राम-कृष्ण द्विजाति संस्कारसे संस्कृत होकर गुरुकुलमें वासकी इच्छासे अवन्तीपुर-स्थित सान्दीपनि मुनिके आश्रममें पहुँचे। चौंसठ दिनोंमें चौंसठ कलाओं (विद्याओं) की शिक्षा ग्रहण करके उन्होंने गुरु-दक्षिणा प्रदान करनेकी इच्छा की। तब सान्दीपनि मुनिने उनसे मृत पुत्रको लानेकी प्रार्थना की। राम-कृष्ण समुद्रके समीप गये। अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्री लेकर समुद्र उनके समीप उपस्थित हुए। समुद्रको गुरुदेवके निर्देशसे अवगत कराके राम-कृष्णने समुद्रमें प्रवेश किया और 'पञ्चजन' नामक असुरका विनाश करके उसके अङ्गजात शङ्खको ग्रहण किया। उसके उदरमें गुरुपुत्र दिखायी न देनेपर वे यमलोक पहुँचे और यमराजके द्वारा आदर-सत्कार प्राप्त किया। यमराज द्वारा प्रत्यर्पित गुरुपुत्रको लेकर गुरुको प्रदान किया और अपने घर लौट आये।

श्रीकृष्णके प्रिय सखा उद्धव वृष्णियोंके मन्त्री थे। एक दिन कृष्णने उद्धवको ब्रजमें भेजकर ब्रजवासियोंकी मनःपीड़ाको निवारण करनेका आदेश दिया। ब्रज पहुँचनेपर गोपराज नन्दने उनका अर्चन किया और कृष्णकी कुशलता पूछी। वे कृष्णके गुणोंका गान करने लगे। नन्द-यशोदाका कृष्णमें परम अनुराग देखकर उद्धवने उनके निकट कृष्णकी बातें कीं। नन्दके साथ कृष्णालापमें ही उनकी रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातःकाल गोपियाँ ब्रज-द्वारमें

रथ देखकर अक्रूरके पुनः आगमनकी बात सोचकर विलाप करने लगीं। इतनेमें ही उद्धव प्रातः कृत्य समापन करके वहाँ उपस्थित हुए।

गोपियोंने उद्धवके पीताम्बर एवं कमलसम नेत्रोंको देखा, तो उनका परिचय जाननेके लिए उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। उन्हें कृष्ण-प्रेरित जानकर एकान्तमें ले गयीं। वे कृष्णकी पूर्व लीलाओंका स्मरण करके लोक-लाज त्यागकर रोने लगीं। कोई गोपी भ्रमरको देखकर प्रिय-सङ्गका स्मरण करके विविध प्रकारके जल्प करने लगी। उद्धवने गोपियोंको सान्त्वना प्रदान की। उनके अनुरोधसे उद्धव तीन महीनों तक व्रजमें रहे और गोप-गोपियोंकी अनुमतिसे मथुरा लौट आये।

श्रीकृष्णने उद्धवसे व्रजके समस्त संवादको सुना। इसके बाद वे उद्धवके साथ कुब्जाके घर गये। वहाँ कुब्जाकी अभिलाषाके अनुसार कुछ समय तक उसके घरमें रहे और अपने भवनमें लौट आये। तदनन्तर बलदेव एवं उद्धवके साथ अक्रूरके घर पहुँचे।

अक्रूर राम-कृष्णका यथोचित अर्चन करके उनका स्तव करने लगे। कृष्णने प्रसन्न होकर अक्रूरकी प्रशंसा की। उन्होंने अक्रूरको पाण्डवोंका संवाद लेनेके लिए हस्तिनापुर भेजा।

अक्रूरने हस्तिनापुरमें जाकर पाण्डवोंका कुशल-क्षेम पूछा। धृतराष्ट्र पाण्डवोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं—यह जाननेके लिए वे कुछ महीने वहाँ रहे। धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंके साथ जो असत्-व्यवहार किया था, विदुर एवं कुन्तीने वह सब अक्रूरको निवेदन कर दिया। कुन्तीने अक्रूरसे माता-पिता आदि यादवोंका संवाद पूछा तथा कृष्ण-शरणागति सूचक वचनोंका उच्चारण करने लगीं। अक्रूरने उन्हें सान्त्वना प्रदान की। धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्होंने राम-कृष्णका आदेश एवं विविध तत्त्वपूर्ण वाक्योंको ज्ञापन किया और उनसे समदर्शी होकर प्रजा एवं आत्मीयोंका पालन करनेके लिए कहा। पुत्रस्नेहग्रस्त धृतराष्ट्रके

यथायोग्य उत्तरोको सुनकर अक्रूर मथुरा लौट आये और राम-कृष्णके समीप समस्त संवाद निवेदन कर दिया।

कंसकी मृत्युके पश्चात् कंसकी दोनों पत्नियोंने पिता जरासन्धको विधवा होनेका कारण बतलाया। तब जरासन्धने पृथ्वीको यादवोंसे रहित करनेकी इच्छासे मथुरापर आक्रमण किया। भू-भारहारी श्रीकृष्णने बलदेवके साथ जरासन्धके असीमित सैन्यका विनाश कर दिया। बलदेवने जरासन्धको बन्दी बना दिया। कृष्णने भू-भार-हरणकी इच्छासे पुनः सैन्य-संग्रहके लिए जरासन्धको मुक्त कर दिया। जरासन्ध राम-कृष्णसे वैर साधनेके उद्देश्यसे तपस्यामें लग गया। अन्य राजाओंने उपदेशोंके द्वारा उसे तपस्या करनेसे रोका। तब जरासन्ध तपस्यासे विरत होकर अपने स्थानपर लौट आया।

जरासन्धने पुनः-पुनः पराजित होकर भी सत्रह बार यादवोंके साथ युद्ध किया। अठारहवीं बार जब युद्धकी प्रस्तुतिका समय आया, उस समय कालयवन नामक एक वीर अपने समान योद्धाका अनुसन्धान कर रहा था। देवर्षि नारदने उसे यादवोंके समीप भेज दिया। कालयवनने तीन करोड़ सैनिकोंके साथ यदुपुरीपर आक्रमण कर दिया। श्रीकृष्णने यादवोंपर विपद्की आशङ्कासे समुद्रमें एक पुरीकी रचना की एवं योगबलसे सभी आत्मीयोंको वहाँ ले आये। सभी आत्मीयोंको सुरक्षित देखकर वे बलदेवकी आज्ञासे पुरद्वारसे निरस्त्र ही निकल गये।

कालयवनने नारद-वर्णित लक्षणोंके द्वारा कृष्णको पहचान लिया। उसने कृष्णको निरस्त्र देखकर युद्धकी इच्छासे निरस्त्र ही उनका अनुकरण किया। कृष्ण कालयवनके हस्तगत होनेका अभिनय करते हुए दूरवर्ती पर्वतके गढ़में प्रवेश कर गये। कालयवन भी उसी गिरिकी गुफामें घुस गया और एक सोये हुए व्यक्तिको कृष्ण समझकर उनपर पदाघात किया। पद-प्रहारसे वे उठ बैठे और उन्होंने कालयवनको अपनी प्रखर दृष्टिसे भस्म कर दिया। सोये हुए पुरुष मान्धाताके पुत्र मुचुकुन्द थे। उन्होंने

असुरोंसे भयभीत देवताओंकी रक्षा की थी। तदर्थ देवताओंसे निद्राका वर प्राप्त करके वे सो गये थे। मुचुकुन्द कृष्णके अतुलनीय रूपको देखकर अभिभूत हो गये और उनसे परिचय पूछा। कृष्णने अपना परिचय प्रदान किया। मुचुकुन्द उन्हें प्रणाम करके स्तव करने लगे। भगवान् वासुदेवने मुचुकुन्दको दूसरे जन्ममें कृष्ण-प्राप्तिका वर प्रदान किया। मुचुकुन्दने मुकुन्दको प्रणाम किया एवं परिक्रमा करके बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ वे श्रीहरिकी आराधनामें निमग्न हो गये।

श्रीकृष्ण यवन-सैन्यसे परिवेष्टित होकर द्वारका लौटे। वहाँ उन्होंने सेनाका विनाश किया और उनके धनादिको द्वारका ले आये। इसके बाद जरासन्ध युद्धके लिए पुनः आया। राम-कृष्ण भयार्तके समान अभिनय करते हुए दूरदेश पलायन कर गये और वहाँ स्थित प्रवर्षण नामक पर्वतपर चढ़ गये। जरासन्ध उन्हें खोजने लगा। जब वे कहीं दिखायी नहीं दिये, तो उसने पर्वतके चारों ओर आग लगा दी। राम-कृष्ण ग्यारह योजन ऊँचे पर्वतसे छलाङ्ग लगाकर द्वारकामें प्रविष्ट हो गये। जरासन्ध राम-कृष्णको अग्नि-दग्ध जानकर अपने देशमें लौट गया।

विदर्भराज भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीने कृष्णकी गुणावलीको सुनकर श्रीकृष्णको अपने अनुरूप पतिके रूपमें निश्चय कर लिया। रुक्मिणीके भाई रुक्मीने शिशुपालको रुक्मिणीके वरके रूपमें निर्णय कर रखा था। यह जानकर रुक्मिणीने एक विश्वस्त ब्राह्मणके द्वारा कृष्णके समीप एक पत्र भेजा और शिशुपाल उनसे विवाह करे, इससे पहले उन्हें ग्रहण करनेका अनुरोध करते हुए अपने हरणके उपायको भी सूचित कर दिया।

कृष्ण ब्राह्मण-प्रमुखसे रुक्मिणीके पत्रके विषयमें सुनकर रुक्मिणीके उद्धारके लिए कृत-सङ्कल्प हो गये और विवाहके निर्दिष्ट दिनके पूर्व ही रथके द्वारा विदर्भ देश पहुँच गये।

विदर्भजात भीष्मक शिशुपालसे अपनी पुत्रीका विवाह करनेकी इच्छासे विवाहोचित अनुष्ठानोंको सम्पन्न करनेमें लगे थे। चेदिराज

दमघोष भी पुत्रके माङ्गलिक कार्योंको सम्पन्न करके विदर्भनगर पहुँच गया था। भीष्मकने उनकी ससम्मान अगवानी करते हुए उन्हें वास-स्थान प्रदान कर दिया। कृष्ण-विद्वेधी राजागण शिशुपालकी सहायताके लिए उसके साथ आये थे। बलदेव श्रीकृष्णको अकेले ही जाते देख चतुरङ्ग-सेनाके साथ विदर्भकी ओर चल दिये। भीष्मकने राम-कृष्णकी अगवानी एवं अर्चन करके उन्हें समुचित वास-स्थानका निर्देश कर दिया था।

विवाहके दिन रुक्मिणी रक्षकोंसे परिवृत होकर कुल-प्रथाके अनुसार अम्बिकाके मन्दिरमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने अम्बिकाका अर्चन एवं वन्दना की। कृष्णको पतिरूपमें प्राप्त होनेकी प्रार्थना करके वे मन्दिरके बाहर आयीं कि तभी श्रीकृष्णने सभीके समक्ष उन्हें रथपर आरोहण कराया और वहाँसे प्रस्थान करने लगे। विपक्षी राजा कृष्णके पीछे दौड़े, तो बलदेव विपक्ष-सैन्यको ध्वंस करने लगे। उस समय राजागण विमुख होकर चले गये। रुक्मिणीका भाई रुक्मी अपनी बहिनके ऐसे विवाहको सहन नहीं कर पाया और श्रीकृष्णपर आक्रमण कर दिया। कृष्णने रुक्मिणीके अनुरोधसे उसका वध न करके उसे विरूप कर दिया। रुक्मी व्यर्थ-मनोरथ हो गया और कृष्णके निधनकी कामनासे भोजकट-नामक नगरका निर्माण करके वहाँ रहने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीको अपने पुरमें ले गये और वहाँ उनके साथ विधिपूर्वक विवाह किया।

कामदेवने शिवजीके कोपानलसे दग्ध होकर पुनः रुक्मिणीके गर्भसे 'प्रद्युम्न' नामसे जन्म-ग्रहण किया। शम्बरासुरने अपना शत्रु जानकर उनका अपहरण करके उन्हें समुद्रमें डाल दिया। एक मत्स्यने उनका भक्षण कर लिया। यह मत्स्य धीवरके जालमें फँस गया और शम्बरगृहमें पुनः आ गया। रसोइया भोजनके लिए उसका छेदन कर रहा था कि उसके उदरमें बालक दिखायी दिया। उसने वह बालक मायावतीको अर्पण कर दिया। कामदेवकी पत्नी रतिदेवी पतिके पुनः शरीर धारण करनेकी प्रतीक्षामें

शम्बरके घरमें मायावती नामसे पाचिका रूपसे रह रही थीं। उन्हें बालकका परिचय प्राप्त हुआ। यौवन प्राप्त होनेपर रतिदेवीने प्रद्युम्नको उनके सम्यक् परिचयसे अवगत कराया और उन्हें 'महामाया' नामकी विद्या प्रदान करके शम्बरासुरको मारनेके लिए कहा। कामदेवने युद्धके लिए शम्बरका आह्वान किया तथा 'महामाया' विद्याके प्रभावसे उसकी समस्त मायाको विनष्ट करके उसका संहार कर दिया। आकाशचारिणी भार्या रतिदेवी उन्हें द्वारका ले आयीं। प्रद्युम्नको देख करके रुक्मिणीका दुग्ध क्षरण होने लगा। उन्हें प्रद्युम्नका परिचय जाननेकी इच्छा हुई। वसुदेव, देवकी आदि भी वहाँ आ गये। नारदने आकर सस्त्रीक प्रद्युम्नका पूर्व परिचय प्रदान किया। प्रद्युम्नका परिचय प्राप्त करके उन सबने उनका आलिङ्गन किया।

राजा सत्राजित्ने सूर्यकी आराधना करके 'स्यमन्तक' मणिको प्राप्त किया था। यह मणि प्रतिदिन आठ भार स्वर्ण प्रसव करती थी। जिस स्थलपर यह सुपूजित होकर विद्यमान रहती थी, वहाँ किसी प्रकारका अमङ्गल नहीं होता था। श्रीकृष्णने उस मणिको यदुराज उग्रसेनके लिए माँगा, परन्तु सत्राजित्ने मना कर दिया। एक दिन सत्राजित्का भाई प्रसेन उस मणिको कण्ठमें धारणकर अश्वपर सवार होकर शिकारके लिए वनमें भ्रमण कर रहा था। एक सिंहने अश्वके साथ प्रसेनका भी वध कर दिया और मणि लेकर पर्वतकी गुफामें चला गया। भल्लूकराज जाम्बवान्ने उस शेरको मार दिया और वह मणि पुत्रको खिलौनेके रूपमें दे दी।

सत्राजित्ने भाईके दिखायी न देनेपर सोचा कि श्रीकृष्णने ही मणि-प्राप्त करनेके लिए प्रसेनकी हत्या की होगी। श्रीकृष्णने उस कलङ्कको दूर करनेके लिए प्रसेन जिस मार्गसे गया था, उसका अनुसरण किया और क्रमशः जाम्बवान्की गुफामें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने जाम्बवान्के पुत्रके हाथमें इसे देखा। श्रीकृष्णको देखकर बालककी धात्री डरकर रोने लगी। जाम्बवान् कृष्णको देखते ही उनके साथ युद्ध करने लगे। अट्ठाईस दिनों तक युद्ध करनेके

बाद उन्हें बोध हुआ कि वे स्वयं परमेश्वर श्रीकृष्ण ही हैं। उन्होंने स्तव-स्तुति द्वारा श्रीकृष्णको प्रसन्न किया एवं स्यमन्तकके साथ अपनी कन्या जाम्बवतीको भी कृष्णके हाथोंमें समर्पण कर दिया। कृष्ण मणि लेकर सत्राजित्की सभामें आये और सम्पूर्ण प्रसङ्ग सम्यक् रूपसे वर्णन किया। मणिको लौटानेपर सत्राजितने स्वयंको श्रीकृष्णके चरणोंमें अपराधी जानकर अपराधके मार्जनके लिए अपनी पुत्री सत्यभामाको श्रीकृष्णके लिए समर्पण कर दिया। यौतुक (दहेज) रूपमें प्रदान करनेपर कृष्णने उस मणिको लौटा दिया। श्रीकृष्ण एवं बलदेव पाण्डवोंके अग्नि-दाहका विवरण सुनकर हस्तिनापुर पहुँचे। इधर शतधन्वाने अक्रूर एवं कृतवर्माके परामर्शसे सत्राजितको निद्रितावस्थामें ही मार डाला और मणिको लेकर वहाँसे चला गया। पिताके शोकसे व्याकुल सत्यभामाने स्वयं हस्तिनापुर जाकर कृष्णके समीप पिताके निधनका समाचार ज्ञापन किया। कृष्ण-बलदेव द्वारकामें लौट आये। शतधन्वा अक्रूरके समीप मणि रखकर चला गया। कृष्ण-बलदेव उसके पीछे दौड़े और उसे मार भी डाला, किन्तु मणि उसके पास नहीं मिली। अक्रूर शतधन्वाके निधनके विषयमें सुनकर मणि लेकर पलायन कर गये। अब द्वारकामें विविध प्रकारके अमङ्गल दिखायी दिये। श्रीकृष्ण अनुमान करने लगे कि मणि अक्रूरके पास ही होनी चाहिये। इस सन्दर्भमें वास्तव रहस्यका निरूपण करते हुए उन्होंने मणिको स्वजनोंको दिखाया और बादमें यह मणि पुनः अक्रूरजीको लौटा दी।

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके अज्ञातवासके बाद उनके दर्शन करनेकी इच्छासे हस्तिनापुर गये और कई महीनों तक इन्द्रप्रस्थमें रहे। एक दिन कृष्ण एवं अर्जुन वन-गमनकी इच्छासे निकले। उन्होंने यमुनाके समीप एक अतीव सुन्दरी एवं मनोरमा कन्याको देखा। वह कृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिए तपस्या कर रही थी। भगवान् उसे रथपर आरोहण कराके हस्तिनापुर ले आये।

श्रीकृष्णने विश्वकर्मा द्वारा पाण्डवोंके लिए एक रमणीय नगरका निर्माण करवाया। खाण्डव-दहनके समय मयदानवने अर्जुन द्वारा रक्षित होनेके कारण एक विचित्र सभाकी रचना करके उसे अर्जुनको प्रदान किया। उस सभामें दुर्योधनको दृष्टि-भ्रम हुआ था। श्रीकृष्णको जब यह ज्ञात हुआ कि अवन्तीके राजाकी बहन मित्रविन्दा उनमें आसक्त है, तो उन्होंने उसे सभासे बलपूर्वक हरण कर लिया। इसके बाद नागनजितकी पुत्रीके विवाहमें पण (बाजी) लगा था, जिसके अनुसार श्रीकृष्णने सात बैलोंको पराजित करके उन्हें एक साथ ही नथ लिया और नागनजितसे विवाह कर लिया। विवाहके बाद श्रीकृष्ण नागनजितको लेकर द्वारका लौट आये। इस अवसर पर उक्त वृषभों द्वारा पराजित राजाओंने पथमें कृष्णके ऊपर आक्रमण कर दिया। अर्जुनने उन सबको पराजित कर दिया। अनन्तर श्रीकृष्णने बुआ श्रुतकीर्तिकी पुत्री भद्रासे एवं स्वयंवर-सभासे हरण करके मद्राजकी पुत्री लक्ष्मणासे भी विवाह किया।

इन्द्रने कृष्णको बतलाया कि नरकासुर देवताओंपर अत्याचार कर रहा है। श्रीकृष्ण सत्यभामाके साथ नरकके राज्यमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने ताम्रादि पुत्रोंके साथ मुरासुर एवं नरकासुरका संहार किया और उसके द्वारा अपहृत सोलह हजार रानियोंको द्वारका भेज दिया। इसके बाद वे इन्द्रालय पहुँचे। वहाँ इन्द्र एवं उनकी पत्नी शचीने भगवान्का आदर सत्कार किया। सत्यभामाके अनुरोधसे स्वर्गसे पारिजात उखाड़कर उसे सत्यभामाके घरसे संलग्न उद्यानमें स्थापित कर दिया। उसके बाद श्रीकृष्णने सोलह हजार मूर्तियोंमें प्रकाशित होकर पूर्वोक्त सोलह हजार स्त्रियोंसे एक साथ ही विवाह किया।

एक बार श्रीकृष्ण रुक्मिणीकी शय्यापर विराजमान थे। रुक्मिणी सखियोंके साथ श्रीकृष्णकी सेवा कर रही थीं। श्रीकृष्णने परिहासमें रुक्मिणीके पति होनेके लिए अपनेको अयोग्य बताते हुए रुक्मिणीसे ऐसे अप्रिय वचन कहे कि वे रोने लगीं। शोक

एवं भयके कारण वे मूर्च्छित हो गयीं। प्रियतमाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीकृष्णने रुक्मिणीको उठाया और उन्हें सान्त्वना देकर अपने परिहासकी बात बतायी। रुक्मिणीने शान्त होकर श्रीकृष्णके स्तुतिसूचक विविध वचनोंके द्वारा श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाको ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया।

कृष्णतत्त्वसे अनभिज्ञ उनकी पत्नियाँ श्रीकृष्णको सर्वदा अपने गृहमें ही देखकर अपनेको ही पतिकी अत्यधिक प्रियतमा मानती थीं। उनमें सभीको दस-दस पुत्र प्राप्त हुए थे। कृष्ण-पुत्रोंके भी बहुत-से पुत्र, पौत्रादि हुए थे। रुक्मीने कृष्ण द्वारा अपमानित होकर भी बहिनकी प्रसन्नताके लिए प्रद्युम्नको अपनी पुत्री एवं अनिरुद्धको पौत्री प्रदान कर दी। अनिरुद्धके विवाहके समय रुक्मी बलदेवके साथ पासा खेलने लगा, परन्तु पराजित होनेपर भी उसने अपनी हार नहीं मानी। वह बलदेवको 'ग्वाला' कहकर अपमानित करने लगा। बलदेवने क्रोधित होकर रुक्मीका वध कर दिया। उस समय कलिङ्गराज दौत दिखाकर हँस रहा था। बलदेवने उसे पकड़कर उसके दौत उखाड़ डाले। इसके बाद नवविवाहिता वधू रोचनाके साथ अनिरुद्धको लेकर बलदेवके साथ यादवोंने भोजकटसे द्वारकाकी ओर प्रस्थान किया।

बलिका ज्येष्ठ पुत्र बाणासुर शिव-कृपासे इन्द्रादि देवताओंको अपने भृत्यके समान मानता था। उसकी पुत्री उषाने स्वप्न देखा कि एक सुन्दर युवकके साथ उसका समागम हो रहा है, तब वह अत्यन्त विचलित होकर उठ बैठी। उसने चित्रलेखाको स्वप्नके विषयमें बतलाया। चित्रलेखाने देव, गन्धर्व, वृष्णिवंशी इत्यादि पुरुषोंका चित्र अङ्कन करके उषाके निकट उसके द्वारा स्वप्नमें देखे पुरुषको निर्देश करनेके लिए कहा। उषाने अनिरुद्धको निर्देश कर दिया। तब चित्रलेखा योगबलसे द्वारका गयी और अनिरुद्धको लाकर उसने उषाके निकट उपस्थित कर दिया। उषा अनिरुद्धकी सेवा करने लगी। अन्तःपुरके रक्षकोंने उषाके शरीरमें रतिचिह्न देखे, तो बाणासुरको यह समाचार दिया। बाणासुर पुत्रीके गृहमें

अनिरुद्धको देखकर उनके साथ युद्ध करने लगा। अनन्तर अनिरुद्धको युद्धमें पराजित करके उन्हें नागपाशमें बाँध दिया।

अनिरुद्ध कहीं दिखायी नहीं दे रहे थे, इस कारण उनके आत्मीयगण चार महीनोंसे शोकाकुल हो रहे थे, तब नारदने आकर अनिरुद्धके बन्धनका समाचार दिया। तब श्रीकृष्णने यदुवीरोंको लेकर बाणासुरकी पुरीको घेर लिया और उसके साथ युद्ध करने लगे। महादेव आकर अपने भक्त बाणासुरके पक्षमें योगदान करने लगे। श्रीकृष्णने शङ्करको मोहित करते हुए बाणासुरकी सहस्र भुजाओंसे मात्र चार भुजाएँ शेष रखकर सबको काट डाला। रुद्रके अनुरोधसे श्रीकृष्णने उसके प्राणोंकी रक्षा की। बाणासुरने स्तुति द्वारा श्रीकृष्णको प्रसन्न किया। श्रीकृष्णने बाणासुरको अभय प्रदान किया। वे वधूके साथ अनिरुद्धको लेकर द्वारकाकी ओर चल दिये।

एक बार यदुकुमार खेलनेके बाद जल ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जल-रहित एक कुएँके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक गिरगिटको देखा। वे उसे निकालनेकी चेष्टा करने लगे। जब वे असमर्थ हो गये, तो यह समाचार श्रीकृष्णको निवेदन किया। श्रीकृष्णने बायें हाथसे पकड़कर कुएँसे उसका उद्धार किया। इस गिरगिटको देवतनु प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णने जब उससे उसका परिचय जानना चाहा, तो उसने नृग-नामक इक्ष्वाकुपुत्रके रूपमें अपना परिचय दिया। दान-धर्ममें दोषके कारण उसे गिरगिट योनि प्राप्त हुई—यह बतलाकर वह श्रीकृष्णका स्तव करने लगा और स्वर्गलोककी ओर चला गया। श्रीकृष्णने इस प्रसङ्गमें ब्रह्मस्व-हरणका फल कितना विषमय होता है—यदुकुमारोंको यह शिक्षा प्रदान करके ब्राह्मणोत्पीड़नसे सदैव विरत रहनेका उपदेश दिया।

एक दिन बलदेव सुहृदोंके दर्शनके लिए गोकुलकी ओर चल दिये। नन्द, यशोदा आदिने उनका आनन्दपूर्वक आलिङ्गन किया और आशीर्वाद दिया। बलदेवने पूजनीयोंको प्रणाम किया और मित्रोंके साथ मिलकर परस्पर कुशल समाचार पूछा। उन्होंने

कृष्ण-विरहसे कातर गोपियोंको कृष्णका समाचार प्रदान करके उन्हें सान्त्वना दी। अनन्तर दो महीने तक गोकुलमें रहकर बलरामने अपनी अनुरक्ता गोपियोंके साथ यमुना-पुलिनपर विहार किया। वरुण द्वारा प्रेरित दिव्य वारुणी पान करके बलरामने जल-क्रीड़ाके लिए यमुनाका आह्वान किया। यमुनाने बलदेवको मत्त जानकर उनकी उपेक्षा कर दी। तब बलदेव हलके अग्रभाग द्वारा यमुनाका आकर्षण करने लगे। इससे भयभीत यमुना श्रीबलदेवके चरणोंमें शरणागत हुई और उनसे क्षमा-प्रार्थना करने लगी। अनन्तर श्रीबलदेव प्रसन्न होकर गोपियोंके साथ यमुनामें जल-क्रीड़ा करने लगे।

बलदेवके नन्दव्रज जानेपर करुषाधिपति पौण्ड्रकने स्वयंको 'वासुदेव' मानकर अपनी ख्याति करने हेतु कृष्णके समीप संवाद भेजा कि वही वासुदेव है। कृष्ण अपने वासुदेव चिह्नादिका परित्याग करें एवं पौण्ड्रककी शरण ग्रहण करें, अन्यथा उसके साथ युद्ध करें। भगवान् श्रीकृष्ण उसके सोऽहंवाद अथवा मायावाद-विमूढ़तारूप पाखण्डताको समुचित दण्ड देनेके लिए काशीपुरी गये। वहाँ कृत्रिम वासुदेवचिह्नधारी पौण्ड्रक एवं उसके मित्र काशीराजका मस्तक काटकर द्वारका लौट आये। अनन्तर काशीराजके पुत्र सुदक्षिणने पितृ-हन्ताको मारनेके लिए महादेवकी आराधना की तथा उनके उपदेशसे अभिचार-यज्ञानुष्ठान किया। उस यज्ञकुण्डसे शूल हाथमें लिये एक अग्निमूर्ति निकली और द्वारकाकी ओर चल दी, परन्तु सुदर्शनके प्रभावसे प्रतिहत होकर वाराणसीपुरी लौट आयी। उसने पुरोहितोंके साथ सुदक्षिणको भस्म कर दिया। बादमें सुदर्शन चक्रने भी उसके पीछे-पीछे काशीपुरीमें प्रस्थान किया और राजपुरी (काशीपुरी) के साथ समग्र वाराणसीको ही जला दिया।

नरकासुरके मित्र मैन्द वानरका भाई द्विविद मित्रके वधके प्रतिशोधकी कामनासे गोकुलमें उत्पीड़न तथा रैवतक पर्वतपर

बलदेवके साथ विहारमें रत स्त्रियोंका अपमान करने लगा। बलदेवने अपने हल-मुसलसे उसके प्राणोंका संहार कर दिया।

जाम्बवती-नन्दन साम्बने दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाका स्वयंवर-सभासे हरण कर लिया। कौरवोंने एकत्र मिलित होकर साम्बको युद्धमें परास्त कर दिया और उन्हें बाँधकर हस्तिनापुर ले गये। नारदके द्वारा यह संवाद जानकर बलदेव हस्तिनापुर आये और कौरवोंको साम्बको लौटानेका आदेश दिया, पर उन्होंने अनसुना कर दिया। इस पर बलदेव क्रोधित होकर हलके अग्रभागसे हस्तिनापुरको खींचने लगे। तब कौरव डर गये और बलदेवकी स्तुति करने लगे। उन्होंने उपहारोंके साथ साम्ब एवं लक्ष्मणाको उन्हें प्रदान किया। बलदेव उन्हें लेकर द्वारका लौट गये।

श्रीकृष्णके एक ही समय पृथक् रूपसे सोलह सहस्र स्त्रियोंके साथ पाणिग्रहणको अति विचित्र जानकर देवर्षि नारद उसके दर्शनके लिए द्वारकामें आये। श्रीकृष्ण एक ही समय विभिन्न पत्नियोंके गृहोंमें विभिन्न कार्य-कलापोंमें लीन थे—उनके इस ऐश्वर्यको देखकर नारद अति मुग्ध हो गये। तब श्रीकृष्णने उनकी मुग्धताको दूर करके उन्हें निजावतारका कारण बतलाया। इसके बाद नारद कृष्ण द्वारा यथाविधि सम्मान प्राप्त करके भगवान्का ध्यान करते हुए प्रस्थान कर गये।

एक दिन श्रीकृष्ण प्रातः कृत्य समापन करके सभामें प्रविष्ट हुए। जरासन्ध द्वारा काराबद्ध राजाओंने अपने उद्धारके लिए दूत द्वारा श्रीकृष्णके समीप संवाद भेजा। इसी अवसर पर देवर्षि नारदने आकर बतलाया कि महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञानुष्ठानके लिए श्रीकृष्णके अनुमोदनकी प्रार्थना की है। इन दोनों कार्योंमें कौन-सा कार्य पहले करना चाहिये—इस विषयमें श्रीकृष्णने मन्त्री उद्धवसे परामर्श माँगा। उद्धवने राजसूयके अनुष्ठान द्वारा दोनों कार्योंको सम्पन्न करनेका परामर्श प्रदान किया। श्रीकृष्णने तदनुसार अविलम्ब जरासन्धका संहार करेंगे—यह कहकर राजाओंके पास संवाद भिजवा दिया और महिषियोंके साथ इन्द्रप्रस्थ चले गये।

युधिष्ठिरने कृष्णके समीप राजसूय-अनुष्ठानके अनुमोदनकी प्रार्थना की, तब श्रीकृष्णने उसमें अपनी सहमति प्रदान की। तदर्थ उन्होंने यज्ञीय उपकरणोंके संग्रहके लिए पृथ्वीके राजाओंको पराजित एवं वशीभूत करनेकी आवश्यकता भी बतलायी। युधिष्ठिरने तदनुसार भाइयोंको दिग्विजयके लिए भेजा तथा कहा कि दिग्विजयके अन्तमें वे प्रभूत धन संग्रह करके लायें। इसके बाद जरासन्धको अपराजेय जानकर श्रीकृष्ण, भीम एवं अर्जुन ब्राह्मणवेशमें जरासन्धके निकट जाकर अपनी प्रार्थनीय वस्तु देनेके लिए उससे अनुरोध करने लगे। जरासन्धने उनके अङ्गोंपर धनुष एवं प्रत्यंचाके चिह्न देखकर उन्हें क्षत्रिय जान लिया, तो भी उनकी याचना-पूर्तिके लिए सहमत हो गया। श्रीकृष्णने अपना परिचय देते हुए उसके निकट द्वन्द्व-युद्धकी प्रार्थना की। जरासन्ध भीमके साथ युद्धका इच्छुक होकर गदा हाथमें लेकर युद्धके लिए प्रस्तुत हो गया। इसके बाद दोनोंको समान योद्धा मानकर श्रीकृष्णने वृक्षकी एक शाखाको चीरकर भीमको जरासन्धके वधके उपायका सङ्केत दिया। भीमने जरासन्धको भूमिपर गिराकर चीर डाला। श्रीकृष्णने जरासन्ध-पुत्र सहदेवको राजपदपर अभिषिक्त करके जरासन्ध द्वारा कारावासमें बन्द सभी राजाओंको मुक्त कर दिया।

जरासन्ध द्वारा बन्द बीस हजार आठ सौ राजा कृष्ण-कृपासे कारागारसे मुक्त होकर कृष्णको प्रणाम करके स्तुति करने लगे। श्रीकृष्णने उन्हें राजयोग्य भूषणोंसे विभूषित करके अपने-अपने राज्यमें भेज दिया। अनन्तर वे भीम एवं अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ लौट आये।

युधिष्ठिरने जरासन्धके निधनका समाचार सुनकर श्रीकृष्णका स्तव करते हुए उनकी महिमाका कीर्तन किया। भरद्वाज, वशिष्ठ इत्यादिका उन्होंने होताके रूपमें वरण किया। अब “सर्वप्रथम पूजा-प्राप्तिके योग्य कौन है” इस विषयपर प्रश्न उठा। सहदेवने “श्रीकृष्णकी पूजासे सबकी पूजा हो जाती है” यह कहकर

श्रीकृष्णकी अग्र-पूजाका प्रस्ताव रखा। सभास्थ सभी सदस्योंने इस प्रस्तावका अनुमोदन किया। युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी पूजा करनेके बाद उनके पद-धौत जलको अमात्य और आत्मीयोंके साथ मस्तकपर धारण किया। शिशुपाल श्रीकृष्णकी पूजासे असहिष्णु होकर सभास्थ सभी लोगोंकी एवं श्रीकृष्णकी निन्दा करने लगा। इससे सभासद कानोंपर हाथ ढककर वहाँसे प्रस्थान कर गये। पाण्डव एवं अन्यान्य राजाओंने कृष्णके निन्दा करनेवालोंको शान्त करनेके लिए अस्त्र उठा लिये। श्रीकृष्णने उन्हें रोका और सुदर्शनसे शिशुपालका सिर काट डाला। इसके बाद विधिपूर्वक यज्ञको पूर्ण किया गया और श्रीकृष्ण महिषियोंके साथ द्वारका चले गये। राजा दुर्योधनके अतिरिक्त सभामें उपस्थित सभीने राजसूय यज्ञ एवं यज्ञेश्वर श्रीकृष्णकी प्रशंसा की।

युधिष्ठिरका अन्तःपुर मय दानव द्वारा विविध ऐश्वर्यके साथ निर्मित हुआ था। राजा दुर्योधन ईर्ष्यावश इस निर्माणको सहन न कर सका। एक दिन युधिष्ठिर सभामें बन्धुवर्ग एवं श्रीकृष्णके साथ बैठे हुए थे कि दुर्योधन भी उस सभामें चला आया। सभास्थलमें उसे स्थलभागपर 'जल' और जलभागपर 'स्थल' का भ्रम होने लगा। इस पर भीमसेन एवं स्त्रियाँ हँसने लगे और दुर्योधनने लज्जावश उस स्थानका त्याग कर दिया।

रुक्मिणी विवाहके समय पराजित राजाओंमेंसे एक शाल्वने पृथ्वीको यादवोंसे रहित करनेकी प्रतिज्ञा कर रखी थी। प्रतिदिन मात्र एक मुट्ठी धूल खाकर वह महादेवकी आराधना करता था। आशुतोषके प्रसादसे मयदानव निर्मित इच्छानुरूप गतिशील 'सौभ' नामक यानको प्राप्त करके शाल्वने द्वारकापुरी पर चढ़ाई कर दी और विमानसे वृक्ष, पत्थर आदि फेंकने लगा। प्रद्युम्न, सात्यकि आदि यदुवीर शाल्वके साथ युद्ध करने लगे। शाल्वका कोई अनुचर प्रद्युम्नको युद्धक्षेत्रसे दूर ले गया। संज्ञा प्राप्त होनेपर प्रद्युम्नने रणक्षेत्रसे पलायन करनेके लिए सारथीको बहुत डाँटा और पुनः रणक्षेत्रकी ओर बढ़ गये। शाल्वका यादवोंके साथ

सत्ताईस दिन-रात तक युद्ध चलता रहा। श्रीकृष्ण हस्तिनापुरसे लौट आये और रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। शाल्व 'सौभ' में बैठकर विविध प्रकारसे मायाका प्रदर्शन करता रहा। श्रीकृष्णने गदा द्वारा सौभको तोड़कर शाल्वका मस्तक काट डाला।

शाल्वका मित्र दन्तवक्र शत्रु-पीड़नकी कामनासे युद्धस्थलपर उपस्थित होकर कर्कश वचनोंसे श्रीकृष्णका तिरस्कार करने लगा। श्रीकृष्णने गदासे उसके वक्षपर प्रहार करके उसके प्राणोंका संहार कर दिया। इसके बाद उसका भाई विदूरथ हाथमें तलवार लेकर युद्ध स्थलपर आया। श्रीकृष्णने सुदर्शन द्वारा उसका भी सिर काट डाला। कौरव-पाण्डवोंके युद्धकी तैयारीके विषयमें सुनकर स्वयं युद्धसे पृथक् रहनेकी इच्छासे श्रीबलदेव तीर्थयात्राके छलसे द्वारका त्याग करके विविध तीर्थस्थानोंपर गमन करते हुए नैमिषारण्यमें मुनियोंके यज्ञस्थलपर उपस्थित हुए। वहाँ प्रत्युत्थान (सम्मान प्रदर्शन) आदि क्रियाओंसे रहित होकर उच्चासनपर विराजमान रोमहर्षणको देखकर उन्होंने कुशके अग्रभागसे उसका वध कर दिया। इससे मुनिगण दुःखी हो गये। उन्होंने बलदेवको बतलाया कि यज्ञ-समाप्ति तक उन सबने रोमहर्षणको परमायु प्रदान की थी। यह जानकर बलदेवने उसके पुत्र उग्रश्रवाको इच्छानुरूप आयु प्रदान करके उसका पुराण-वक्ताके रूपमें निर्देश कर दिया तथा मुनियोंके अनुरोधसे यज्ञ नष्ट करनेवाले बल्वल नामक दानवको मार दिया। तत्पश्चात् मुनियोंके विधानका निर्वाह करनेके लिए प्राकृत मनुष्यका अनुकरण करते हुए रोमहर्षण-वधका प्रायश्चित्त करनेके लिए वे बारह महीनों तक व्रतके अनुष्ठान एवं तीर्थ-स्नानके लिए चल पड़े।

श्रीबलदेव विविध तीर्थोंमें पर्यटन कर रहे थे कि उन्हें कौरव-पाण्डवोंके युद्धका संवाद ज्ञात हुआ। भीम एवं दुर्योधन गदायुद्ध कर रहे थे। उनके युद्धको रोकनेकी इच्छासे बलदेव कुरुक्षेत्र पहुँचे। उन्होंने भीम एवं दुर्योधनको संग्राम बन्द करनेका आदेश दिया। उन दोनोंने युद्धको विराम नहीं दिया। तब यह युद्ध

दैवकृत है—यह जानकर वे द्वारका लौट आये। अनन्तर वे पुनः नैमिषारण्य गये और ऋषियोंके अनुरोधसे बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान किया तथा ऋषियोंको उनके अपने स्वरूपका ज्ञान प्रदान किया।

श्रीकृष्णके सखा सुदामा विप्र अनायास ही प्राप्त द्रव्यों द्वारा जीविकाका निर्वाह करते थे। एक दिन पत्नीके अनुरोधसे उन्होंने अपने दारिद्र्य-मोचनके लिए श्रीकृष्णके समीप जानेकी इच्छा की। वे अपनी पत्नीसे कृष्णके लिए कुछ भेंट देनेके लिए कहने लगे। उनकी पत्नी पास-पड़ोसके ब्राह्मणोंके पास गयी तथा चार मुट्ठी चिउड़ा माँगकर ले आयी। उसने चिउड़ोंको एक फटे-पुराने वस्त्रमें बाँधकर अपने स्वामीके हाथमें रख दिया। सुदामा रुक्मिणीके महलमें श्रीकृष्णके समीप उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण उन्हें देखते ही खड़े हो गये और सुदामा ब्राह्मणको यथोचित सम्मान प्रदान किया। वे अपने सखा सुदामाका हाथ पकड़कर गुरुकुल-वासके समयके चरितोंकी चर्चा करने लगे। अनन्तर श्रीकृष्णने सखासे भेंट माँगी। तब सुदामा लज्जाके कारण नगण्य भेंट चिउड़ोंको प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हुए। तब भक्तवत्सल भगवान्ने सुदामाके वस्त्रमें बाँधे हुए चिउड़ोंसे एक मुट्ठी चिउड़ा भक्षण कर लिया। दूसरी मुट्ठी लेना ही चाहते थे कि रुक्मिणीदेवीने उन्हें रोक दिया और कहा कि एक मुट्ठी चिउड़ा भक्षण करके ही श्रीकृष्णने ब्राह्मणको अतुल ऐश्वर्य प्रदान कर दिया है। द्विजवर सुदामा दूसरे दिन निजालय चले गये। वहाँ जब वे अपने आश्रमके समीप उपस्थित हुए, तब उस स्थानपर एक विचित्र प्रासाद देखकर विस्मित रह गये। उन्हें देखते ही दासियोंसे परिवेष्टित उनकी पत्नी घरसे बाहर आयी और ब्राह्मणको भीतर ले गयी। सुदामाने पत्नीके साथ अनासक्त भावसे विषयोंका भोग किया तथा शीघ्र ही वैकुण्ठधाममें प्रस्थान किया।

राम-कृष्णकी द्वारका-लीला-कालमें एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण पड़ा था। इस कारण पुण्यार्जनकी इच्छासे भारतवर्षीय मनुष्य

कुरुक्षेत्रमें सम्मिलित हुए थे। यादव, गोप, गोपियाँ सभी परस्पर आलिङ्गनादि करते हुए सम्भाषण कर रहे थे। समागत राजागण अपनी पत्नियोंके साथ श्रीकृष्णका दर्शन करते हुए कृष्ण-सङ्ग-प्राप्तिके कारण यादवोंकी प्रशंसा कर रहे थे। नन्द-यशोदा राम-कृष्णको गोदमें रखकर प्रेमाश्रुओंसे सराबोर हो रहे थे। देवकी एवं रोहिणी यशोदाको आलिङ्गन करके राम-कृष्णके लालन-पालनके लिए कृतज्ञता प्रकाश करने लगीं। श्रीकृष्णने विरह-सन्तप्त गोपियोंके प्रीति-विधानके लिए तत्त्वपूर्ण विविध वचनोंसे सान्त्वना देते हुए निज-स्वरूपका भी ज्ञान प्रदान किया। गोपियाँ निरन्तर कृष्णके ध्यानमें लगी रहती थीं, इसलिए अन्तमें उन्होंने उन्हें ही प्राप्त किया।

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा युधिष्ठिर आदिसे कुशल-प्रश्न करनेके बाद द्रौपदीने कृष्ण-पत्नियोंको सम्बोधन करते हुए उनके विवाहके विषयमें जाननेकी इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्णकी महिषियोंने अपने-अपने विवाहकी कहानियाँ बतायीं। द्रौपदी, सुभद्रा एवं अन्यान्य राजपत्नियाँ श्रीकृष्णके प्रति कृष्ण-महिषियोंके अत्यन्त प्रणय-भावको देखकर विस्मित रह गयीं। अनन्तर व्यासदेव-नारदादि मुनि कृष्ण-दर्शनके लिए यहाँ आये। ऋषियोंको देखकर पहलेसे ही बैठे राजागण, युधिष्ठिरादि पाण्डव उठ खड़े हुए और उन्होंने प्रणाम, आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा की। इसके बाद श्रीकृष्णने विविध वचनोंसे उनकी प्रशंसा की। उन्होंने भी श्रीकृष्णका स्तव किया और उनसे प्रस्थानकी अनुमति माँगी। उस समय वसुदेवने मुनियोंसे कर्मबन्धनके खण्डनका उपाय पूछा। उन्होंने यज्ञके द्वारा यज्ञेश्वर श्रीहरिकी आराधनाका उपदेश दिया। वसुदेवने उनका ऋत्विक् रूपमें वरण करके बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् सभी अपने-अपने स्थानोंपर चले गये।

मुनियोंसे अपने दोनों पुत्रोंके प्रभावको जानकर वसुदेवने राम-कृष्णकी स्तुति करके उनके प्रति पुत्र-बुद्धिको दूर करनेकी

प्रार्थना की। श्रीकृष्णने वसुदेवको भगवत्-तत्त्वका उपदेश प्रदान किया। देवकीने राम-कृष्ण द्वारा श्रीसान्दीपनि मुनिके मृत पुत्रोंको लौटा लानेका समाचार सुना, तो अपने मृत पुत्रोंको लौटानेके लिए राम-कृष्णसे अनुरोध किया। वे सुतलपुरमें राजा बलिके निकट गये। बलिकी पूजा ग्रहण करके वहाँ उपस्थित देवकीके मृत पुत्रोंको लौटा लाये। पुत्रोंको देखकर देवकीके स्तनोंसे दुग्ध क्षरित होने लगा। देवकीने अपने पुत्रोंको श्रीकृष्ण द्वारा पीत-उच्छिष्ट स्तन्य पान कराया। इस अमृत-पानसे पुत्रोंको अपने स्वरूपका ज्ञान हुआ और वे देवलोक चले गये।

महाराज परीक्षितने शुकदेवसे अपनी पितामही सुभद्रादेवीके विवाहके विषयमें जाननेकी अभिलाषा प्रकट की, तब शुकदेव कहने लगे—अर्जुन तीर्थ-यात्राके समय पृथ्वीपर पर्यटन करते हुए प्रभासक्षेत्रमें उपस्थित हुए। वहाँ सुभद्राके विवाहका समाचार सुनकर सुभद्रा-हरणका निश्चय किया और त्रिदण्डिस्वामीका वेश धारण करके द्वारका पहुँचे। वे वहाँ कुछ मास (चातुर्मास) रहे और एक दिन देवोत्सवके उपलक्ष्यमें बाहर आयी हुई सुभद्राका उन्होंने वसुदेव आदिकी इच्छाके अनुसार हरण कर लिया। इसपर बलदेव क्रोधित हो गये, किन्तु श्रीकृष्ण और बन्धु-बान्धवों द्वारा सान्त्वना प्राप्त करके उन्होंने वर-वधूको दहेज आदि देकर विदा किया।

बहुलाश्व और श्रुतदेव नामक दो कृष्ण-भक्त मिथिलामें वास करते थे। श्रीकृष्ण नारदादि मुनियोंके साथ दोनोंके घर पहुँचे। उन्होंने सानुचर श्रीकृष्णकी पूजा एवं स्तव किया। श्रीकृष्णने मुनियोंके माहात्म्यका वर्णन किया और दोनों भक्तोंको सन्मार्गका उपदेश प्रदान करके द्वारकामें लौट आये।

ब्रह्मवस्तु गुणातीत होनेके कारण अनिर्देश्य है, अतः त्रिगुण विषयक वेद अभिधा वृत्ति द्वारा किस प्रकारसे ब्रह्मके स्वरूपका निर्देश कर सकते हैं—इस विषयपर परीक्षितका प्रश्न होनेपर श्रीशुकदेवने नारायण-नारद संवादका उल्लेख करते हुए 'जनलोक'

में ब्रह्माके मानस-पुत्रोंके मध्य सनन्दन द्वारा कीर्तित श्रुति-स्तवका कीर्तन किया।

जो भोगरहित शङ्करके उपासक हैं, वे प्रायः धनाढ्य और जो सर्वभोगाश्रय श्रीहरिके सेवक हैं, वे भोगहीन हैं—ऐसा क्यों? इस विषयपर महाराज परीक्षितने प्रश्न उत्थापित किया। तब शुकदेवने कहा कि शङ्कर त्रिगुणमय होनेके कारण अपने उपासकोंको त्रिगुणोंके अन्तर्गत सभी वैकारिक पदार्थोंको प्राप्त करा देते हैं, किन्तु श्रीहरि निर्गुण होनेके कारण अपने भक्तोंको भी निर्गुण बना देते हैं। इसी विषयपर युधिष्ठिरके प्रश्नके उत्तरमें श्रीकृष्णने बतलाया कि वे जिनके प्रति अनुग्रह करते हैं, उनका धन हरण कर लेते हैं, इसलिए उनके आत्मीयगण उस निर्धन पुरुषका त्याग कर देते हैं। वह निर्धन व्यक्ति धन-संग्रहके लिए पुनः यत्न करता है, परन्तु कृष्ण-कृपासे उसके सारे मनोरथ विफल हो जाते हैं। इससे निवृत्त-चित्त वह व्यक्ति साधुओंका सङ्ग प्राप्त करके कृष्ण-कृपासे वैकुण्ठको प्राप्त होता है। जब कि विषयासक्त व्यक्ति श्रीकृष्णकी आराधना दुष्कर जानकर आशुतोष देवताओंकी उपासनासे राज्य, स्त्री इत्यादि प्राप्त करके गर्वसे भरकर वरदाताओंका ही अपमान करता है। इस प्रसङ्गमें वृकासुरकी आख्यायिका सुनी जाती है। वृकासुरने “कौन-से देवता आशुतोष हैं”—इस विषयमें नारदसे प्रश्न किया। नारदके उपदेशसे उसने शङ्करकी आराधना की। शङ्कर उससे सन्तुष्ट हो गये और उसे वर माँगनेके लिए कहा। तब वृकासुरने “जिसके मस्तकपर हाथ रखूँ, उसकी मृत्यु हो जाए”—यह वर माँगा। इस प्रकारसे वर माँगकर वरकी सत्यताकी परीक्षाके लिए शिवके मस्तकपर हाथ रखनेके लिए उद्यत हुआ, तब शङ्कर भयभीत होकर चारों दिशाओंमें दौड़े। अन्तमें श्रीकृष्ण बाल-ब्रह्मचारीका वेश धारण करके वृकासुरके समीप आये और छलपूर्वक उसके अपने ही मस्तकपर हाथ रखवाकर उसका विनाश कर दिया।

गुणावतार-त्रयके मध्य कौन श्रेष्ठ हैं—इस विषयपर सरस्वतीके किनारे स्थित मुनियोंमें तर्क हुआ, तो उन्होंने इसके निर्णयके लिए भृगुको भेजा। भृगु ब्रह्माके समीप गये, परन्तु प्रणाम आदि नहीं किया। इसपर ब्रह्मा क्षुब्ध हो गये। अब वे शङ्करके समीप गये, उन्हें 'विपथगामी' कहकर सम्बोधन किया, तब शङ्कर त्रिशूल हाथमें लेकर भृगुका वध करनेके लिए तत्पर हो गये। अनन्तर वे नारायणके समीप पहुँचे और उनके वक्षःस्थलपर पदाघात किया। लक्ष्मीके साथ नारायणने भृगुका सम्मान किया। “आपके आनेका समाचार पहले जान नहीं सका” यह कहकर सम्मान-प्रदर्शनमें त्रुटि होनेके कारण क्षमा-प्रार्थना की। भृगुने मुनियोंके समीप लौटकर क्रमपूर्वक समस्त प्रसङ्ग बतलाया। मुनियोंने विष्णुको ही 'सर्वश्रेष्ठ' निश्चय करके उनकी आराधना द्वारा मुक्ति प्राप्त की।

एक बार द्वारकामें एक ब्राह्मणके पुत्र भूमिष्ठ होते ही मृत्युको प्राप्त हो जाते थे। तब ब्राह्मण राजद्वारमें गया और राजाके विकर्मको ही अपने पुत्रोंकी मृत्युके कारणरूपमें निश्चित किया। इस ब्राह्मणके नवम पुत्रकी मृत्युके समय अर्जुनने ब्राह्मणकी सन्तानकी रक्षाके लिए प्रतिज्ञा की, किन्तु ब्राह्मण-पत्नीके प्रसवके समय सम्पूर्ण यत्न करके भी उसकी रक्षामें विफल रहे। तब प्रतिज्ञा भङ्ग होनेके कारण उन्होंने प्राणोंका त्याग कर देना चाहा, किन्तु श्रीकृष्ण उन्हें महाकालपुर ले गये। वहाँ उन्होंने सहस्र फणोंसे युक्त अनन्तदेवको एवं उनके शरीरमें अवस्थित सर्वव्यापक विराट् पुरुषको देखा। विराट् पुरुषने कृष्ण और अर्जुनको बतलाया कि उन दोनोंके दर्शनके लिए ही विप्र पुत्रोंको यहाँ बुलवा लिया था। बादमें बहुत प्रकारसे उनकी स्तुति की। कृष्ण-अर्जुन वहाँसे विप्र-पुत्रोंको लेकर लौट आये और उन्हें ब्राह्मणको सौंप दिया। उस समय अर्जुन श्रीकृष्णके प्रभावको देखकर अतिशय विस्मित रह गये।

श्रीकृष्ण द्वारकामें यादवों एवं महिषियोंसे परिवृत होकर रहते थे। वे महिषियोंके साथ विविध क्रीड़ाओंमें रत रहते थे। गन्धर्व उनके चरित्रका कीर्तन करते थे एवं बन्दीगण उनकी स्तुति करते थे। उनकी प्रत्येक महिषीसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें अठारह महारथी थे। यदुवंशियोंकी संख्याका निर्णय करना तो दूरकी बात है, उनमेंसे प्रसिद्ध चरित्रोंकी संख्या करना भी असम्भव है। यदुवंशके बच्चोंको शिक्षादानके लिए तीन करोड़ आठ हजार आठ सौ अध्यापकोंकी बात सुनी जाती है। असुर मनुष्योंका उत्पीड़न कर रहे थे, इसलिए भगवत्-आदेशसे देवतागण यदुकुलमें उत्पन्न हुए थे। वे श्रीकृष्णको ईश्वरके रूपमें जानते थे एवं हर क्षण कृष्णके समीप रहते हुए दिव्यानन्दमें अपने शरीरका ज्ञान खो बैठते थे।

अन्तमें श्रीशुकदेव गोस्वामी कृष्ण-कथाके श्रवण-कीर्तनके फलका वर्णन करके स्कन्धका समापन करते हैं।



॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः ॥

श्रीमद्भागवतम्

दशमः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

आकाशवाणीसे अपनी मृत्युकी संभावना सुनकर कंस द्वारा
देवकीके छह पुत्रोंका वध

श्रीराजोवाच—

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः।

राज्ञाञ्चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

महाराज परीक्षितने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे कहा—भगवन्! आपने
चन्द्रवंश एवं सूर्यवंशके पुत्र-पौत्रादिका क्रमपूर्वक वर्णन किया एवं
दोनों वंशोंके राजाओंके अत्यन्त आश्चर्यजनक दिग्विजय आदि
चरित्रोंका भी कीर्तन किया है ॥ १ ॥

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम।

तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥

हे यतीश्वर! आपने जिस अत्यन्त सद्धर्मपरायण यदुवंशका
वर्णन किया, इस समय उस यदुवंशमें भगवान् विष्णु श्रीबलदेवके
साथ इस जगत्में अवतीर्ण हुए हैं। उन्हीं विष्णुकी विक्रमपूर्ण
लीलाओंका हमारे निकट कीर्तन कीजिये ॥ २ ॥

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः।

कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंको प्रेममय बनानेके कारण
भूतभावन (जीवोंके पालनकर्ता) कहे जाते हैं तथा विश्वके

प्राणीमात्रकी चेतनादि शक्तिके प्रेरक होनेके कारण विश्वात्मा (अन्तर्यामी) कहे जाते हैं। वे ही सबके हितकारी एवं प्रेमास्पद हैं। उन्होंने यादव-कुलमें प्रकटित होकर जिन-जिन लीलाओंका प्रकाश किया, उस लीला-चरितावलीका हमारे लिए क्रमपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्-

भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।

क उत्तमःश्लोकगुणानुवादात्

पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥

उत्तमश्लोक श्रीहरिका गुणानुकीर्तन श्रौत-परम्परासे साधित होता रहा है अर्थात् कृष्णानुशीलनके अतिरिक्त अन्य विषय वासनाओंसे रहित मुक्त जनोंके द्वारा श्रीकृष्णके गुण श्रीगुरुमुखसे श्रवणकर बादमें उत्तमरूपसे कीर्तित होते रहते हैं। यह सङ्कीर्तन मुमुक्षुओंके लिए भव-रोगकी अचूक ओषधि-स्वरूप है तथा रुचिपरायण भक्तोंके हृदय और कर्णोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है। तब पशुघाती व्याध अथवा आत्मघाती अपराधियोंके अतिरिक्त और कौन ऐसा बुद्धिमान् व्यक्ति है, जो इस हरिकीर्तनसे क्षणभरके लिए भी विरत हो जाय? ॥ ४ ॥

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयै-

देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।

दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं

कृत्वातरन् वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं

सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।

जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो

मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजा-

मन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।

प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतञ्च
मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥

मेरे पितामह युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डवोंको भगवान्‌के चरण 'तरण-साधन' अर्थात् नौकाके रूपमें प्राप्त हुए थे अर्थात् जिन भगवान्‌ श्रीकृष्णकी पद-पल्लव-तरणीका सम्यक्‌रूपसे आश्रय लेकर कुरुक्षेत्र युद्धमें बड़े-बड़े तिमिङ्गिल जैसे मच्छोंको भी निगल जानेवाले देव-विजयी अर्थात् भीष्मादिरूप अतिरथोंसे (महायोद्धाओंसे) भरे हुए दुष्पार—अति विशाल कुरु-वाहिनी—रूप समुद्रको पाण्डवोंने सहजतासे उसी प्रकार पार कर लिया, जिस प्रकार कोई पथिक रास्तेके गोष्पदको (बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेको) अनायास ही पार कर जाय। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जब मेरा शरीर पीड़ित हो रहा था, तब मेरी माता उनके शरणागत होकर रक्षाके लिए उन्हें पुकारने लगी। इसपर श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्रको धारण करके मेरी माताके गर्भमें प्रवेश कर गये और कुरु एवं पाण्डव कुलकी उत्तर-पीढ़ीके बीजस्वरूप मेरे (तर्जनीके द्वारा वक्षःस्थलका स्पर्श करते हुए) इस शरीरकी रक्षा की। हे विद्वन् श्रीशुकदेव ! जो अपनी इच्छा-शक्तिसे स्वरूपगत नर-शरीर प्रकटकारी हैं, जो समस्त देहोंके अन्तरमें पुरुष एवं बाहरसे कालके रूपमें विराजित होकर संसार एवं मुक्ति प्रदान करते हैं, उन श्रीहरिकी चरितावलीका वर्णन कीजिये ॥ ५-७ ॥

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।

देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥

हे शुकदेव गोस्वामी ! आपने पहले कहा था कि द्वितीय-व्यूहमें आद्य नारायण सङ्कर्षणदेव बलराम रोहिणीके पुत्र हैं। यदि देहान्तर स्वीकार न किया जाय, तो रोहिणीके गर्भसे प्रकटित बलदेव पुनः देवकीके गर्भसे प्रकटित हुए हैं—यह सङ्गति किस प्रकार सम्भव है ? ॥ ८ ॥

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः।

क्व वासं ज्ञातिभिः सार्द्धं कृतवान् सात्वतां पतिः॥ ९ ॥

मुक्तिप्रदाता भगवान् श्रीकृष्ण किस कारणसे पितृगृह (वसुदेव-भवन, मथुरा) से व्रज (नन्दालय, महावन) गये थे? सात्वत-पति यदुवंश-शिरोमणि भक्तवत्सल प्रभुने नन्द आदि गोप-बन्धुओंके साथ कहाँ निवास किया था?॥ ९ ॥

व्रजे वसन् किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः।

भ्रातरं चावधीत् कंसं मातुरद्धातदर्हणम्॥ १० ॥

ब्रह्मा और शङ्करको भी वशीभूत करनेवाले भगवान् श्रीकेशवने व्रजमें एवं मधुपुरी मथुरामें निवास करते हुए किन-किन लीलाओंका विस्तार किया था और किस कारणसे वधके अयोग्य मामा कंसका स्वयं ही वध कर दिया था?॥ १० ॥

देहं मानुषमाश्रित्य कतिवर्षाणि वृष्णिभिः।

यदुपुर्यां सहावात्सीत् पत्न्यः कत्यभवन् प्रभोः॥ ११ ॥

उन्होंने सच्चिदानन्दविग्रह नित्यस्वरूप मनुष्य शरीरको प्रकटित करके वृष्णिजनोंके साथ द्वारकामें कितने वर्षों तक वास किया था एवं सर्वशक्तिमान् प्रभु श्रीकृष्णकी कितनी रानियाँ थीं?॥ ११ ॥

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम्।

वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्धधानाय विस्तृतम्॥ १२ ॥

हे सर्वज्ञ मुनिवर! इन समस्त प्रश्नोंका एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो मैंने नहीं पूछा है, उन समस्त कृष्ण-चरितोंका कृपा करके क्रमपूर्वक विस्तारसे वर्णन कीजिये। मैं श्रद्धाके साथ उन्हें सुननेके लिए आतुर हूँ॥ १२ ॥

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।

पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥ १३ ॥

यद्यपि मैंने (प्रायोपवेशनके लिए) जल-पान तक भी त्याग कर दिया है, तथापि आपके मुख-पद्मसे निःसृत सर्वदुःखहारी

कृष्ण-लीलाकी पीयूष-धाराका पान करनेके कारण अत्यन्त असहनीय यह क्षुधा मेरे श्रवणमें किसी भी प्रकारकी बाधा डालनेमें समर्थ नहीं हो रही है ॥ १३ ॥

श्रीसूत उवाच—

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं,
वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं,
व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥

श्रीसूतगोस्वामीने कहा—हे भृगुनन्दन शौनकजी! अनन्तर परमपूज्य, महाभागवत, सर्वज्ञ-शिरोमणि व्यासनन्दन श्रील शुकदेवने इन समस्त साधु एवं युक्तिसङ्गत प्रश्नोंको श्रवण करके परीक्षित महाराजको साधुवाद प्रदान करते हुए उनका अभिनन्दन किया एवं कलि-कलुष-नाशिनी हरि-लीला कथाको कहना प्रारम्भ किया ॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच—

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम।
वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥ १५ ॥

श्रील शुकदेवने कहा—हे उत्तम राजर्षे! आपकी बुद्धि भलीभाँति स्थिर एवं निश्चित हो गयी है अर्थात् अत्यन्त उपयुक्त विषयमें लग गयी है, क्योंकि श्रीवासुदेवकी लीला-कथामें आपकी सहज, सुदृढ़ एवं अव्यभिचारिणी (नैष्ठिकी) रति उदित हुई है ॥ १५ ॥

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि।
वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥

विष्णुपाद-सम्भूता गङ्गा अथवा श्रीविष्णु (शालग्राम) चरणोदक जिस प्रकारसे ऊर्ध्व (स्वर्ग), मध्य (मर्त्य) एवं अधः (पाताल) लोकोंको (त्रिभुवनको) पवित्र करता है, उसी प्रकार वासुदेव-चरित्र विषयक प्रश्न वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता—इन तीनोंको पवित्र करते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।

आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥

हे परीक्षित! उस समय शास्त्रमर्यादाका लङ्घन करनेवाले तथा छलपूर्वक अहङ्कारी राजाओंका रूप धारण करनेवाले दैत्य एवं उनकी शत-अयुत (असंख्य) सेनाके भारी भारसे आक्रान्त एवं पीड़ित होकर पृथ्वीदेवी ब्रह्माके शरणापन्न हुई थीं ॥ १७ ॥

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।

उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं समवोचत ॥ १८ ॥

दुःखसे कातर पृथ्वी गौका रूप धारण करके करुण स्वरसे क्रन्दन करते-करते ब्रह्माजीके समीप उपस्थित हुई। उनका मुख अश्रुओंसे व्याप्त था। उन्होंने अपने दुर्भाग्यकी सारी बात ब्रह्माजीको कह सुनायी ॥ १८ ॥

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह ।

जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

पृथ्वीकी दुःखभरी कथाको सुनकर ब्रह्माजी मन-ही-मन विचार करने लगे कि विश्वकी रचना करना मेरा कार्य है और पालन करना भगवान् विष्णुका कार्य है। भगवान् विष्णु क्षीरसागरमें रह रहे हैं—अतः वहीं चलकर उन्हें सारी बात निवेदित करना ठीक रहेगा। (इस समय दो कार्य उपस्थित हो गये हैं—पृथ्वीका पालन एवं दैत्योंका संहार। पहले कार्यकी आज्ञा देवेन्द्रको दी जा सकती है और दैत्य-विनाशके लिए श्रीरुद्रको कहा जा सकता है। अतः ब्रह्माजी देवताओंके साथ त्रिलोचनको भी साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर पहुँचे) ॥ १९ ॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।

पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥ २० ॥

वे उस स्थानपर उपस्थित होकर स्थिर चित्तसे वाञ्छाकल्पतरु (समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले), विश्व-रक्षक, देवताओंके

भी देवता, सर्वकष्टहारी, विघ्नविनाशन क्षीरोदकशायी, पुरुषावतार, जगत्के नाथकी पुरुषसूक्तके द्वारा उपासना करते हुए समाधिस्थ हो गये ॥ २० ॥

गिरं समाधौ गगने समीरितां
निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह।
गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥

ब्रह्माने समाधि अवस्थामें ही क्षीरोदकशायी भगवान् द्वारा समुच्चारित आकाशवाणीको सुनकर देवताओंको सम्बोधित करते हुए कहा, “हे देवताओ! आपलोग मुझसे क्षीरोदशायी महापुरुषकी वाणी श्रवण करें और अविलम्ब प्रयत्नपूर्वक उसका पालन करें ॥” २१ ॥

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥ २२ ॥

मेरे निवेदन करनेसे पहले ही भगवान् धरणीदेवीके दुःखको जान गये हैं। वे निखिलेश्वरपति अपनी कालशक्ति द्वारा भू-भार हरण करनेके लिए जितने दिन भूमण्डल पर विचरण करते हुए लीला करेंगे, तब तक आपलोग भी भगवान्के अंशजात पार्षदवर्ग (उद्धव, सात्यकि आदि) के साथ-साथ यदुकुलमें (पाण्डवादियोंके भी) पुत्र-पौत्र आदिके रूपमें जन्म लेकर उनके निकट ही अवस्थित रहें ॥ २२ ॥

वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥

समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त पुरुषोत्तम भगवान् श्रीवासुदेव वसुदेवजीके घरमें स्वयं ही प्रकट होंगे। देवपत्नियाँ (उपेन्द्र इत्यादि मन्वन्तरोंकी

पत्नियों) उनकी और उनकी प्रियतमा (श्रीराधा) की सेवाके लिए (गोपाङ्गनाओंके रूपमें) ब्रजमें जन्म-ग्रहण करें॥ २३॥

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट्।

अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया॥ २४॥

चतुर्व्यूह-प्रधान भगवान् वासुदेवके प्रथम अंश (प्रकाश-विग्रह) श्रीसङ्कर्षण देश, काल एवं सीमादिसे रहित होनेके कारण 'अनन्त' कहे जाते हैं। विभिन्न अवतार प्रकट करनेके कारण वे अंशरूपमें 'शेष' नामक सहस्रवदन (हजारों मुखवाले) हैं। ये मूलसङ्कर्षण स्वयं प्रकाशित हैं—ये भगवान् श्रीकृष्णकी सेवाकी इच्छासे उनसे पहले प्रकट होंगे॥ २४॥

विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत्।

आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति॥ २५॥

(अद्वयज्ञानतत्त्व भगवान्की एक ही मायाशक्ति स्वरूपभेदसे उन्मुखमोहिनी और विमुखमोहिनी दो प्रकारकी है। उन्मुखमोहिनी माया गोकुलेश्वरी, अन्तरङ्गा शक्ति एवं योगमायाके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा विमुखमोहिनी माया अखिलेश्वरी बहिरङ्गा जड़मायाके नामसे कीर्तित हैं। एक ही माया इन दो प्रकारके स्वरूपोंके द्वारा अप्राकृत एवं प्राकृत दोनों ही जगत्को सम्मोहित करती हैं।) जिस माया द्वारा अप्राकृत एवं प्राकृत—ये दो प्रकारके जगत् मुग्ध होते हैं, वे ही भगवत्-शक्ति—विष्णुमाया भगवान्के आदेशसे स्वांशसे प्रकट बहिरङ्गा मायाशक्तिके साथ कार्य करनेके लिए अर्थात् उन्मुखमोहिनी योगमाया-स्वरूपके द्वारा देवकीके सप्तमगर्भका आकर्षण, यशोदाको निद्राके आवेशमें पहुँचाना आदि कार्य एवं विमुखमोहिनी जड़माया-स्वरूपके द्वारा कंसादिकी वञ्चना इत्यादि कार्योंको साधनेके लिए प्रकट होंगी॥ २५॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यादिश्यामरगणान्

प्रजापतिपतिर्विभुः।

आशवास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ॥ २६॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—दक्षादि प्रजापतियोंके पति ऐश्वर्यशाली ब्रह्माने देवताओंको इस प्रकार आदेश दिया एवं धरणी (पृथ्वी) देवीको विविध वचनोंके द्वारा सान्त्वना देकर अपने परमधाम ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २६ ॥

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम्।

माथुरान् शूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥

प्राचीन कालमें यादवोंके राजा शूरसेन मथुरापुरीमें वास करते हुए माथुरमण्डल एवं शूरसेन-मण्डल नामक प्रदेशोंपर शासन करते थे ॥ २७ ॥

राजधानी ततः साभूत् सर्वयादवभूभुजाम्।

मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥

उस समयसे वह मथुरा नगरी यदुवंशीय राजाओंकी राजधानी नामसे प्रसिद्ध हुई। उस मधुपुरीमें भगवान् श्रीकृष्ण नित्य विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः।

देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥

एक बार शूरवंशीय वसुदेवने उसी मथुरा नगरीमें विवाह किया एवं दूसरे दिन अपनी नव विवाहिता पत्नी देवकीके साथ अपने घर जानेके लिए रथपर आरोहण किया ॥ २९ ॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया।

रश्मीन् हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥

उग्रसेन राजाका पुत्र कंस अपनी बहनको प्रसन्न करनेकी इच्छासे घोड़ोंकी रास पकड़कर उस रथको स्वयं ही हाँकने लगा। शत-शत स्वर्णमय रथ उसे घेरे हुए थे ॥ ३० ॥

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम्।

अश्वानामयुतं सार्द्धं रथानाञ्च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलङ्कृते।

दुहित्रे देवकः प्रादाद् याने दुहितृवत्सलः ॥ ३२ ॥

देवकीके पिता कन्या-वत्सल देवक पुत्रीसे अत्यन्त प्रेम करते थे। इसलिए उन्होंने कन्या एवं जामाताको विदा करते समय सुवर्ण-मालाओंसे विभूषित चार-सौ हाथी, दस हजार घोड़े, अठारह सौ रथ एवं इन सबके साथ सुन्दर वस्त्र एवं विविध अलङ्कारोंसे समलङ्कृत दो सौ नव-यौवना दासियाँ दहेजके रूपमें प्रदान कीं ॥ ३१-३२ ॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम्।

प्रयाणप्रक्रमे तात वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥

हे वत्स परीक्षित्! वर-वधूकी यात्राके प्रारम्भमें शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि सभीकी एक साथ मङ्गल-ध्वनि होने लगी ॥ ३३ ॥

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक्।

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥

कंस घोड़ोंकी लगाम पकड़कर रथ हाँक ही रहा था कि उसी समय पथमें दैववाणी (आकाशवाणी) उसे सम्बोधित करते हुए कहने लगी—रे मूर्ख! तू जिसे रथमें बिठाकर ले जा रहा है, उसीका आठवाँ गर्भ तेरे प्राणोंका संहार करेगा ('गर्भ' कहा, क्योंकि कन्या दर्शनसे कंसको सन्देह न हो) ॥ ३४ ॥

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः।

भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥

भोजकुलका कलङ्क वह पापात्मा क्रूरमति कंस दैववाणीको सुनते ही बहिन देवकीका वध करनेके लिए उद्यत हो गया। उसने एक हाथमें तलवार उठा ली और दूसरे हाथसे उसके केशबन्धन (चोटी) को पकड़ लिया ॥ ३५ ॥

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम्।

वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥

उसी समय धैर्य, गम्भीरता, क्षमा एवं चतुरता आदि गुणोंके महासमुद्र महात्मा वसुदेवजी स्त्री-वध-रूप निन्दित कर्ममें उद्यत, नृशंस, निर्लज्ज, क्रूर कंसको (स्तुति आदि साम मार्गके द्वारा) सान्त्वना देते हुए कहने लगे ॥ ३६ ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान् भोजयशस्करः ।

स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्राहपर्वणि ॥ ३७ ॥

श्रीवसुदेवने कहा—हे कंस! तुम भोजराजवंशके भूषण-स्वरूप हो। वीर तुम्हारी गुणावलीकी प्रशंसा करते रहते हैं। जो ऐसा गुणवान्, महायशस्वी व्यक्ति है, वह विवाहोत्सवके अवसरपर क्या अबला स्त्री-जातिकी—अपनी छोटी बहिनका वध कर सकता है? ॥ ३७ ॥

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।

अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥

(यदि तुम कहो कि मृत्युके भयसे बहिनके वधके लिए प्रवृत्त हुए हो, तो भी यह उचित नहीं है।) हे वीर! जो जन्म-ग्रहण करते हैं, उनकी देहके साथ अलक्षितरूपसे मृत्युकी भी उत्पत्ति होती है। आज ही हो अथवा सौ वर्षोंके बाद, देहधारियोंकी मृत्यु निश्चित है—यह अन्यथा नहीं हो सकता। अतः इस निश्चित विषयमें तुम्हारा शोक करना उचित नहीं है ॥ ३८ ॥

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।

देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥

देहकी प्राप्ति एवं त्याग ही जीवके जीवन एवं मृत्यु हैं। जब देह पञ्चत्वको प्राप्त करता है, तब जीव अपने-अपने कर्मके अनुसार अनायास ही दूसरी देहको प्राप्त होता है और पहली देहका त्याग कर देता है ॥ ३९ ॥

व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।

यथा तृणजलौकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥ ४० ॥

जिस प्रकार पुरुष चलते समय एक पैर भूमिपर स्थापित करता है और दूसरे पदसे भूमिका त्याग कर देता है एवं जिस प्रकार जोंक एक तृणका आश्रय करके पूर्वाश्रित तृणका त्याग कर देती है, उसी प्रकार देहाभिमानी जीव भी कर्मके अनुसार शुभाशुभ देहको ग्रहण करके पूर्वदेहका परित्याग कर देता है ॥ ४० ॥

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं
मनोरथेनाभिनविष्टचेतनः ।
दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्
प्रपद्यते तत् किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥

संसारमें लोग विभिन्न मनोरथ किया करते हैं। जब वे इस लोकके राजादिको देखते हैं या पारलौकिक इन्द्रादिके ऐश्वर्यके विषयमें सुनते हैं, तो उन्हीं दृष्ट एवं श्रुत विषयोंमें उनका चित्त तल्लीन हो जाता है। इन्द्रादि एवं राजादिके रूप, भोगादिका मनन करते हुए सांसारिक मनुष्य इतने भावुक हो जाते हैं कि जाग्रत अवस्थामें ही सुधबुध खोकर अपनी स्वाभाविक देहको (दरिद्रावस्थाको) भूल जाते हैं। स्वप्न देखते समय भी राजारूपमें अपने शरीरको प्रत्यक्ष मानते हैं और इन्द्रादि रूपोंमें स्वयंको देखा करते हैं। उसी प्रकार जीव भी अपने कर्मोंके वशीभूत होनेके कारण दूसरी देहको प्राप्त करके पहली देहको भूल जाता है ॥ ४१ ॥

यतो यतो धावति दैवचोदितं
मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ।
गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ
प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥ ४२ ॥

मन अति चञ्चल एवं विकार-ग्रस्त है। पञ्चत्व-प्राप्तिकालमें फलाभिमुखी कर्मोंसे प्रेरित होकर अविवेकी जीवका मन मायाके द्वारा रचित विभिन्न पाञ्चभौतिक देहोंमेंसे जिस किसी देहके चिन्तनमें तन्मय हो जाता है अथवा आविष्ट रहता है, तो उसी

मनोधर्मके वशीभूत होकर वह उसी देहमें 'मैं' बुद्धि कर लेता है और उसी विकारग्रस्त मनके साथ दूसरा जन्म-ग्रहण करता है ॥ ४२ ॥

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः

समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।

एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्,

गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३ ॥

सूर्य, चन्द्रादि ज्योतिर्मय पदार्थ जिस प्रकारसे जलसे भरे हुए मृण्मय घट (मिट्टीके घड़े) अथवा तेल, घी आदि तरल वस्तुओंमें प्रतिबिम्बित होते हैं तथा वायुके प्रवाहसे जलादिमें कम्पनके कारण बड़े या छोटे प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार जीव अपनी अविद्याके कारण कल्पित देह एवं मन आदिमें आसक्त हो जाता है तथा भोगवासनाके कारण मोहित होकर वह शरीरके कृशत्व (दुबला-पतला होना) आदि धर्मको और मनके चिद्-आभास धर्मको आत्मामें आरोपित कर लेता है ॥ ४३ ॥

तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत् स तथाविधः ।

आत्मनः क्षेममन्विच्छन् द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४ ॥

अतएव जब असत् कर्म ही अशुभ देहका कारण है, तो जो शुभ-अशुभ बुद्धियुक्त पुरुष अपने मङ्गलकी कामना करता है, वह किसीकी हिंसा नहीं करेगा। परद्रोही व्यक्तिको इस लोकमें शत्रुसे एवं परलोकमें यमादिसे निश्चय ही भयकी सम्भावना बनी रहती है ॥ ४४ ॥

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ।

हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥

यह तो अभी छोटी बालिका है और अति दीन है, तुम्हारी छोटी बहन भी है, इसलिए तुम्हारी कन्याके समान ही तुम्हारे स्नेहकी पात्री है। भयसे कातर होकर यह कठपुतलीके समान

अचेतन हो रही है। तुम दीनवत्सल हो, इसलिए इस वत्सलाका वध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है ॥ ४५ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ।

न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥ ४६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे कुरुकुलभूषण ! कंस अतिशय निष्ठुर और निर्दयी था और उसमें भी वह सर्वदा दैत्योंके परामर्शके अनुसार ही कार्य करता था। अतः वसुदेवने पूर्वोक्त प्रकारसे सामनीतिका प्रयोग करते हुए शान्त वचनोंके द्वारा मित्रताके भावसे उसे समझाया और पारलौकिक भयप्रद वचनोंके द्वारा भय दिखलाया, परन्तु कंस बहिनका वध करनेसे विरत नहीं हुआ ॥ ४६ ॥

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ।

प्राप्तं कालं प्रतिव्योदुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥

वसुदेव समझ गये कि यह मन्दबुद्धि कंस बहिनका वध किये बिना माननेवाला नहीं है। वे विचार करने लगे कि इस विकट परिस्थितिका प्रतिकार कैसे किया जाय, कैसे देवकीकी रक्षा की जाय। उन्होंने निश्चय किया कि यह समय तो टाल देना चाहिये ॥ ४७ ॥

मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद् बुद्धिबलोदयम् ।

यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको, जहाँ तक बुद्धि एवं बल हैं, तब तक मृत्युसे बचनेका उपाय करना चाहिये। (इसके सम्मुख मेरा बल तो विफल ही है, बुद्धि-कौशलसे ही मृत्युके निवारणका प्रयत्न करता हूँ।) यदि प्रयत्न करनेपर भी मृत्युका निवारण नहीं कर सके, तो फिर शरीरधारी जीवका कोई अपराध नहीं होता ॥ ४८ ॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान् मोचये कृपणामिमाम् ।

सुता मे यदि जायेरन् मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥

विपर्ययो वा किं न स्यादगतिर्धातुर्दुरत्यया ।

उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥

कंस साक्षात् मृत्यु-स्वरूप है, अपने सारे पुत्रोंको उसे समर्पित करनेकी प्रतिज्ञा करके इस दीन पत्नीकी रक्षा कर लेता हूँ। (यदि मेरी पत्नीके पुत्र उत्पन्न होनेके पहले ही कंसकी मृत्यु हो जाती है, तो सब प्रकारसे मङ्गल ही होगा।) यदि मेरे पुत्रका जन्म हो जाय और कंसकी स्वतः मृत्यु नहीं होती है, तो मेरा पुत्र क्या उसका विनाश नहीं कर पायेगा? हो सकता है, मेरा पुत्र ही इसे मार डाले। विधाताके विधानको कोई भी टाल नहीं सकता। अभी 'अपने पुत्रको तुम्हें दे दूँगा', इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उपस्थित मृत्युसे देवकीको बचा सकता हूँ। बादमें यदि मृत्यु होती है, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं होगा ॥ ४९-५० ॥

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयो-

रदृष्टतोऽन्यत्र निमित्तमस्ति ।

एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः

शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥ ५१ ॥

जिस प्रकार लकड़ियोंमें आग लगने एवं बुझनेके लिए दैवके अतिरिक्त कोई अन्य कारण प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होता (अर्थात् वन अथवा गाँवमें आग लगनेपर वह अग्नि कभी-कभी समीप स्थित लकड़ी अथवा गृह आदिका परित्याग करके दूर स्थित गृह अथवा लकड़ी आदिको जला देती है, उसका कारण जिस प्रकारसे दैवके [अदृष्टके] अतिरिक्त और कुछ नहीं होता), उसी प्रकार देहधारीके देहसे संयोग एवं वियोगका अदृष्टके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण स्थिर करना दुःसाध्य है ॥ ५१ ॥

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ।

पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५२ ॥

वसुदेवका जहाँ तक अपना ज्ञान था, उसके अनुसार उन्होंने इस प्रकार विचार किया। इसके बाद अपने मनको स्थिर करते

हुए उन्होंने कंसके प्रति बहुत सम्मान प्रदर्शित किया और उस पापात्माका अत्यधिक आदर किया ॥ ५२ ॥

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ।

मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

वसुदेवका हृदय दुःखानलसे जला जा रहा था। उन्हें अत्यन्त विषाद हो रहा था, परन्तु कंस अति निर्लज्ज एवं निष्ठुर था। वसुदेव बाह्यरूपसे उसे विश्वास दिलानेके लिए विकसित कमलके समान प्रफुल्लित मुखकमलसे मुस्कुराते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ ५३ ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक् ।

पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥

श्रीवसुदेवने कहा—हे सौम्य! अभी आपने जो दैववाणी सुनी है, उसके अनुसार तो इस देवकीसे आपको कोई भय नहीं है। भय तो आपको इसके आठवें पुत्रसे है। मैं इसके आठवें पुत्रको अथवा आठों ही पुत्रोंको आपके हाथोंमें सौंप दूँगा ॥ ५४ ॥

श्रीशुक उवाच—

स्वसुर्वधात्रिवृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ।

वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—वसुदेवके यथार्थ वचनोंको सुनकर उसने देवकीका वध करनेका विचार छोड़ दिया। वह यह भी जानता था कि वसुदेवके वचन कभी मिथ्या नहीं होते। इससे वसुदेवजी सन्तुष्ट हो गये और कंसकी प्रशंसा करते हुए (कि 'तुम्हारी धर्मशीलताका यश सम्पूर्ण संसारमें फैलेगा') अपने घर चले आये ॥ ५५ ॥

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ।

पुत्रान् प्रसुषुवे चाष्टौ कन्याञ्चैवानुवत्सरम् ॥ ५६ ॥

सारे देवता देवकीके शरीरमें निवास करते थे, प्रसूतिकाल उपस्थित हानेपर सर्वदेवतामयी देवकीने प्रति वर्ष एक-एक करके आठ पुत्र एवं एक कन्याको (सुभद्राको) जन्म दिया ॥ ५६ ॥

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।

अप्रयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥ ५७ ॥

प्रतिज्ञा-भङ्गरूप असत्यके भयसे अत्यन्त विह्वल होकर वसुदेवजीने अतिशय मानसिक कष्टके साथ कीर्तिमान् नामक प्रथम पुत्रको कंसके हाथोंमें सौंप दिया ॥ ५७ ॥

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।

किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥

सत्य-प्रतिज्ञ साधुओंके लिए क्या कोई कार्य कठिन होता है? (अर्थात् नहीं।) जिन्होंने भगवान्को ही एकमात्र वास्तव वस्तु जान लिया है, उन्हें अन्य किसी विषयकी क्या अपेक्षा रहती है? जिनका स्वभाव निन्दित है, उसके लिए कुछ भी अकरणीय नहीं है और जो भगवान्को अपनी आत्मा समर्पण कर चुके हैं, वे किस वस्तुका परित्याग नहीं कर सकते? ॥ ५८ ॥

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ।

कंसस्तुष्टमना राजन् प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

हे महाराज परीक्षित! जब कंसने देखा कि शत्रु और मित्रको समानरूपसे देखनेवाले वसुदेवका अपने पुत्रके जीवन और मृत्युमें समान भाव है और उनकी सत्यमें पूर्ण निष्ठा भी है, तब वह सन्तुष्ट हो गया तथा हँसते-हँसते उनसे कहने लगा ॥ ५९ ॥

प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् ।

अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥ ६० ॥

हे वसुदेव! आप इस नन्हे-से सुकुमार पुत्रको ले जाइये, मुझे आपके इस प्रथम पुत्रसे कोई भय नहीं है। दैववाणीके अनुसार आपके आठवें पुत्रसे ही मेरी मृत्यु निर्दिष्ट हुई है ॥ ६० ॥

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः ।

नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥ ६१ ॥

वसुदेव 'तथास्तु' कहकर पुत्रको लेकर अपने भवनमें चले आये, किन्तु वे उस अजितेन्द्रिय, क्रूर कंसके वचनोंपर विश्वास नहीं कर सके ॥ ६१ ॥

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषाञ्च योषितः ।

वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥

सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।

ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥

एतत् कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः ।

भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानाञ्च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥

हे भरतवंशके अवतंस (दायाद) परीक्षित्! इधर भगवत्-अभिन्नविग्रह भक्तवर देवर्षि नारद कंसके पास आये और कहने लगे—व्रजवासी नन्द आदि गोपकुल और उन समस्त गोपोंकी पत्नियाँ, वसुदेव आदि प्रमुख वृष्णिवंशीगण, देवकी आदि यदुकुलकी ललनाएँ, नन्द और वसुदेवके ज्ञाति, सजातीय बन्धु और सुहृद्वर्ग एवं जो बाह्यरूपसे तुम्हारी सेवा कर रहे हैं, वे सब-के-सब देवता हैं, भगवान्‌के पार्षद हैं। उन्होंने और भी स्पष्ट कर दिया कि पृथ्वीके भारस्वरूप दैत्योंके संहारकी प्रस्तुति प्रारम्भ हो रही है ॥ ६२-६४ ॥

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून् मत्वा सुरानिति ।

देवक्या गर्भसम्भूतं विष्णुञ्च स्ववधं प्रति ॥ ६५ ॥

देवकीं वसुदेवञ्च निगृह्य निगडैर्गृहे ।

जातं जातमहन् पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥

देवर्षि नारद जब चले गये, तब कंसको निश्चय हो गया कि सभी यादवलोग देवता हैं। उसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न सन्तान मात्रको अपनी मृत्युका कारण विष्णु मानकर देवकी और वसुदेवको शृङ्खलाओं (जञ्जीरों) से बाँधकर कारागारमें डाल

दिया। अजन्मा विष्णुसे अपनी मृत्युकी आशङ्का करके जैसे-जैसे उनकी (वसुदेव और देवकीकी) एक-एक सन्तान उत्पन्न होती गयी, वैसे-वैसे वह (कंस) एक-एक करके उनका वध करता गया। (वह प्राकृत जन्म-रहित विष्णुके प्राकट्यको प्राकृत जीवके जन्मके समान समझ रहा था।) ॥ ६५-६६ ॥

मातरं पितरं भ्रातृन् सर्वाश्च सुहृदस्तथा।

घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७ ॥

हे परीक्षित्! इस पृथ्वीपर प्रायः यह बात देखी जाती है कि अपनी इन्द्रियोंका ही पोषण करनेमें सर्वदा व्यस्त रहनेवाले भोगी एवं लोभी राजालोग अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिए अपनी जननी, जनक, सहोदर, भ्राता, आत्मीयों एवं सुहृदोंका वध कर डालते हैं ॥ ६७ ॥

आत्मानमिह सज्जातं जानन् प्राविष्णुना हतम्।

महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

पहले (पूर्व जन्ममें) जब कंस इस पृथ्वीपर कालनेमि नामक दुर्दान्त असुरके रूपमें उत्पन्न हुआ था, तब विष्णुने उसका संहार किया था। इस बातको (देवर्षि नारदसे) जानकर कंसने यदुवंशियोंसे घोर विरोध ठान लिया तथा उनके साथ विरुद्धाचरण करने लगा ॥ ६८ ॥

उग्रसेनञ्च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम्।

स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान् महाबलः ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशम स्कन्धे
पूर्वार्द्धे श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यदु, भोज एवं अन्धकादि वंशोंके अधिपति अपने पिता उग्रसेनको कारागारमें कैदकर महाबली क्रूर कंस 'शूरसेन' नामक राज्यपर स्वयं शासन करने लगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके प्रथम अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

द्वितीयोऽध्यायः

योगमाया द्वारा सङ्कर्षण-आकर्षण एवं ब्रह्मादि देवताओं
द्वारा गर्भगत श्रीहरिका वन्दन

श्रीशुक उवाच—

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्त्तमहाशनैः ।
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥
अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।
यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे महाराज परीक्षित! कंस बड़ा पराक्रमी था, उसे मगध राजा जरासन्धका भी ऐकान्तिक आश्रय था। कंसने प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, नरकासुर एवं अन्यान्य असुर राजाओंके साथ मिलकर यादवोंपर अत्याचार आरम्भ कर दिया ॥ १-२ ॥

ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् ।
शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोशलानपि ॥ ३ ॥

इन असुरोंके उत्पातोंसे भयभीत होकर यादवगण कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह एवं कोशल आदि प्रदेशोंकी ओर चले गये और वहीं बस गये ॥ ३ ॥

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ।
हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥
सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥ ५ ॥

कुछ लोग (अक्रूर इत्यादि) ऊपर-ऊपरसे कंसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवा करने लगे। जब उग्रसेन-पुत्र कंसने एक-एक करके देवकीके छह पुत्रोंको मार डाला, तब

देवकीके हर्ष और शोकको बढ़ानेवाला सप्तम गर्भ प्रकाशित हुआ। यह गर्भ श्रीकृष्णका अंश (अथवा श्रीकृष्णमय धाम) है। विद्वान् व्यक्ति इसका द्वितीय चतुर्व्यूहके सङ्कर्षणके रूपमें वर्णन करते हैं॥ ४-५ ॥

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम्।

यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत्॥ ६ ॥

सबके अंशी विश्वात्मा भगवान्ने देखा कि मेरे आश्रित, मेरे अनुगत मेरे निजजन यादव कंससे भयभीत हो रहे हैं, तब उन्होंने अपनी विमलादि चित्-शक्तियोंकी वृत्तियोंमें पञ्चमी वृत्तिविशेषको (ब्रह्मादिको भी मोहित करनेवाली जगत्की कारण-शक्ति योगमायाको) आदेश दिया॥ ६ ॥

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोप-गोभिरलङ्कृतम्।

रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले।

अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि॥ ७ ॥

हे जगत्पूज्ये! सर्वमङ्गले! तुम गोप, गोपी और गायोंसे अतिशय सुशोभित व्रजमें गमन करो। हे भद्रे! हे देवि! उस नन्द-गोकुलमें वसुदेव-महिषी—रोहिणीदेवी वास कर रही हैं। वसुदेवकी अन्य पत्नियाँ भी कंससे भयभीत होकर वहाँके गोपनीय स्थानोंमें निवास कर रही हैं॥ ७ ॥

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम्।

तत् सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय॥ ८ ॥

(तुम वहाँ जाकर) देवकीके उदरसे गर्भरूपमें स्थित मेरे अंशजात, मेरे द्वितीय स्वरूप अथवा आश्रय सङ्कर्षण जो 'शेष' भी कहे जाते हैं, उन्हें बिना किसी कष्टके आकर्षणकर गोपन रूपसे रोहिणीके उदरमें संस्थापित करो॥ ८ ॥

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।

प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि॥ ९ ॥

हे कल्याणि ! इसके बाद मैं भी ज्ञान, बल आदि ऐश्वर्योंके साथ परिपूर्णरूपमें देवकीका पुत्रत्व अङ्गीकार करूँगा और तुम नन्दराज-महिषी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना। (तुम्हें यशोदाका वात्सल्य प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि ब्रजमें तुम गोपनीयरूपमें रहोगी।) ॥ ९ ॥

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम्।

धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥

प्राकृत मनुष्य (आत्म-अनात्म-परमात्म तत्त्वको न जाननेवाले) तुम्हें (तुम्हारे विमुखमोहनकारी स्वरूपको) अपनी समस्त प्राकृत (जड़) अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली, समस्त भोग एवं वर प्रदान करनेवाली एवं वरोंकी अधीश्वरी जानकर धूप-दीप, नैवेद्य तथा अन्यान्य उपहारोंसे पूजा करेंगे ॥ १० ॥

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि।

दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥

कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च।

माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥ १२ ॥

भूतलपर मनुष्य तुम्हारे लिए बहुत-से स्थान (मन्दिर) बनायेंगे एवं दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि नामोंसे पुकारेंगे। (कृष्णके नाम नित्य होते हैं। वे लोगों द्वारा प्रदत्त अथवा रचित नहीं होते, परन्तु कृष्णकी छाया-शक्तिको लोग विविध नाम प्रदान करते हैं—काशीमें दुर्गा, अवन्तीमें भद्रकाली, उत्कलमें विजया, कोल्हापुरमें वैष्णवी अर्थात् महालक्ष्मी, कामरूप देशमें चण्डिका, उत्तरदेशमें माया एवं शारदा, अम्बिकावनमें अम्बिका तथा कन्याकुमारीमें कन्यका—इस प्रकार अन्यान्य योगपीठोंमें मायादेवी विभिन्न नामोंसे परिचित हैं।) ॥ ११-१२ ॥

गर्भसङ्कर्षणात् तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि।

रामेति लोकरमणाद्बलभद्रं बलोच्छ्रयात् ॥ १३ ॥

देवकीके गर्भसे आकर्षण किये जानेके कारण रोहिणीनन्दन इस भूतलपर 'सङ्कर्षण' नामसे प्रसिद्ध होंगे। गोकुलवासियोंका आनन्द विधान करनेके कारण 'राम' एवं बलकी अधिकताके कारण (अर्थात् सन्धिनी शक्तिके शक्तिमान् विग्रह होनेके कारण) 'बलभद्र' कहे जायेंगे ॥ १३ ॥

सन्दिष्टैवं भगवता तथ्येत्योमिति तद्वचः ।

प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत् तथाकरोत् ॥ १४ ॥

भगवान्का इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर 'वैसा ही करूँगी' यह कहकर योगमायाने भगवान्के वचनोंको सिरोधार्यकर उनकी परिक्रमा की। तत्पश्चात् नन्दगोकुलमें आकर भगवत् निर्देशके अनुसार उन्होंने देवकीके गर्भका आकर्षणकर उसे रोहिणीके गर्भमें स्थापन कर दिया ॥ १४ ॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।

अहो विस्मसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥

जब योगमायाने देवकीके गर्भका आकर्षणकर उसे रोहिणीके उदरमें स्थापन कर दिया, तब नगरवासी अति उच्च स्वरसे विलाप करने लगे—हाय! हाय! देवकीका गर्भ नष्ट हो गया। लगता है कि कंसने देवकीपर कोई मन्त्र फूँक दिया है अथवा उसे कोई ओषधि दे दी है ॥ १५ ॥

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ।

आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६ ॥

(इधर) भक्तोंके भय-विनाशक, विश्वात्मा, सर्व-प्रेमास्पद, सर्वैश्वर्य-पूर्ण, भगवान् भी अपने पूर्णस्वरूप अर्थात् पुरुषावतारादि अंश एवं अपनी समस्त कलाओंके साथ वसुदेवजीके मनमें उदित हुए ॥ १६ ॥

स बिभ्रत् पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ।

दुरासदोऽतिदुर्द्धर्षो भूतानां सम्बभूव ह ॥ १७ ॥

वसुदेवजी भगवत्-सम्बन्धी तेजको धारणकर सूर्यके समान दीप्तिमान् हो गये। वे ऐसे दुर्गम हो गये कि कंस आदि किसी भी जीवकी उनके पास जानेकी सामर्थ्य नहीं होती थी। उनकी दुर्द्धर्षता (प्रचण्डता) कंस आदि जीवोंके लिए असहनीय थी॥ १७॥

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं
समाहितं शूरसुतेन देवी।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः॥ १८॥

इसके बाद पूर्व दिशा जिस प्रकार आनन्दप्रद चन्द्रको धारण करती है, उसी प्रकार देवकीने भी वसुदेवके द्वारा विधिपूर्वक दीक्षा विधानसे समर्पित, जगत्-मङ्गलकारी, अक्षय ऐश्वर्यसे युक्त सर्वमूलस्वरूप सर्वात्मा विष्णुको मनके द्वारा धारण किया॥ १८॥

सा देवकी सर्वजगन्निवास-
निवासभूता नितरां न रेजे।
भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा
सरस्वती ज्ञानखले यथा सती॥ १९॥

समस्त जगत्के आश्रय-स्वरूप भगवान्की आश्रय-स्वरूपिणी होकर भी देवकी सबको आनन्दित नहीं कर पा रही थीं। कलशमें अवरुद्ध (बन्द) दीपककी शिखा और ज्ञान-खल (ज्ञान-वज्रक) के द्वारा आबद्ध विद्यादेवीके समान कंसके कारागृहमें बन्द देवकीका तेज उतनी शोभा नहीं पा रहा था॥ १९॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां
विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम्।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवं श्रितो यत्र पुरेयमीदृशी॥ २०॥

देवकीदेवीके अन्तरमें अजित भगवान्के विराजमान होनेके कारण उनकी प्रभासे कारागृह आलोकित रहता था एवं उनके

मुखपर भगवत् आनन्दके कारण सदैव पवित्र एवं मन्द हास्य छाया रहता था। ऐसी देवकीको देखकर कंस मन-ही-मन विचार करने लगा—अबकी बार मेरा प्राण-संहारक हरि निश्चय ही देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया है, क्योंकि यह देवकी इससे पूर्व कभी ऐसी दीप्तिमती नहीं थी॥ २० ॥

किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे
यदर्थतन्त्रो विहन्ति विक्रमम्।
स्त्रियाः स्वसुगुरुमत्या वधोऽयं
यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः॥ २१ ॥

अब शीघ्र-से-शीघ्र मुझे क्या करना चाहिये? देवताओंका कार्य पूर्ण करनेके लिए प्रकटित श्रीहरि अपना विक्रम त्याग देगा, ऐसा तो हो ही नहीं सकता; स्वार्थपरायण व्यक्ति भी अपने पराक्रमको कलङ्कित नहीं करते। गर्भ-वध करनेसे तो देवकीका वध भी निश्चित है। फिर देवकी स्त्रीजातिकी है, मेरी बहिन है, उसमें भी गर्भवती है, इसका वध करनेसे तत्काल ही मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु नष्ट हो जायेंगे॥ २१ ॥

स एष जीवन् खलु सम्परेतो
वर्त्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम्॥ २२ ॥

जो व्यक्ति क्रूरकर्म करते हुए जीवित रहता है, वह जीवन धारण करते हुए भी मृतकके समान है; क्योंकि सभी लोग उस क्रूर व्यक्तिको अभिशाप देते रहते हैं। मृत्युके बाद उस देहात्म-अभिमानिकी (शरीरको आत्मा मानकर अनिष्ट कर्मोंसे देहका पोषण करनेवालेकी) गति निश्चय ही अन्धतम नरकमें होती है॥ २२ ॥

इति घोरतमाद् भावात् सन्निवृतः स्वयं प्रभुः।
आस्ते प्रतीक्षन्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत्॥ २३ ॥

इस प्रकार विविध प्रकारसे विचार करके कंस स्वयं ही गर्भनाशरूप घोरतम क्रूर कार्यसे विरत हो गया, परन्तु हृदयमें भगवान्‌के प्रति नित्य विद्वेषका भाव पोषण करता हुआ उनके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २३ ॥

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम् ।

चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥

कंस जब सिंहासनपर विराजमान होता, शय्यापर सोता, भोजन-पान करता तथा पृथ्वीपर चलता-फिरता—सब समय शत्रुभावसे श्रीहरिका चिन्तन करता रहता। वह चिन्तनमें इतना तन्मय हो गया कि सम्पूर्ण जगत् उसे हरिमय दिखायी देने लगा ॥ २४ ॥

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।

देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिवृषणमैडयन् ॥ २५ ॥

हे परीक्षित्! चतुर्मुख ब्रह्मा और शिव, नारदादि मुनिगणों तथा अपने अनुचर देवताओंके साथ कंसके बन्दीगृहमें आये और सुमधुर वचनोंसे देवकीके गर्भमें विराजमान समस्त-काम-वर्षणकारी (समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले) श्रीहरिका इस प्रकार स्तव करने लगे।

(श्लोकस्थ 'वृषण' से तात्पर्य है—लीलामृतवर्षी 'कृष्ण-मेघ'। आकाशमें घने बादलोंको देखकर जिस प्रकार किसान, मोर, चातक एवं संतप्त प्राणियोंको आनन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार यहाँ भी कृष्णरूप नवजलधरको देखकर ब्रह्मादिको उल्लास हुआ है। ब्रह्मा चौदह भुवनरूप क्षेत्रके कृषकके समान हैं, शिव उल्लसित साधुओंके पक्षधर नृत्यविनोदी मयूरके समान हैं, नारदादि कृष्णैकजीवन होनेसे उत्कण्ठित चातकके समान हैं और देवतागण कंस, जरासन्धादिरूप दावानलसे आवृत हाथियोंके लिए सिंहके समान हैं) ॥ २५ ॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
 सत्यस्य योनिं निहितञ्च सत्ये।
 सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
 सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥

हे भगवन्! आप सत्यसङ्कल्प हैं (आप जो सङ्कल्प करते हैं, उसकी सत्यताका संरक्षण करते हैं), आप सत्यव्रत (सत्यकालवर्ती, सर्वदेशवर्ती एवं सर्वश्रेष्ठ) हैं। सत्य ही आपको प्राप्त करनेका श्रेष्ठ उपाय है, इसलिए आप सत्यपरायण, सत्य परमेश्वर हैं। सृष्टि, स्थिति एवं लय—इन तीनों कालोंमें समानरूपसे वर्तमान रहनेके कारण आप त्रिसत्य हैं। आप पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) की उत्पत्तिके मूल कारण हैं, पञ्चभूतकी उत्पत्तिके पश्चात् भी आप उनमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं एवं प्रलयकालमें (पञ्चभूतोंके विनाशकालमें) भी आप ही एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं। आप ऋत (सत्यवचन) एवं समदर्शन—दोनोंके प्रवर्तक हैं। अतः हम सत्यात्मक आपके शरणागत हो रहे हैं ॥ २६ ॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-
 श्चतुरसः पञ्चविधः षडात्मा।
 सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो
 दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

यह समष्टि-व्यष्टि देहात्मक प्रपञ्च ही मूल वृक्षस्वरूप है। एकमात्र प्रकृति ही इस संसाररूप वृक्षका मूल आश्रय है। सुख-दुःख इसके दो फल हैं; सत्त्व, रज और तम—ये तीन इसके मूल हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार इसके रस हैं; पाँच इन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका) इस वृक्षको जाननेके उपाय हैं; शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और पिपासा (प्यास)—ये छह इसके स्वभाव हैं; त्वक् (चर्म), रुधिर (रक्त), मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात इस वृक्षकी छाल

हैं एवं मिट्टी, जल, तेज, मरुत्, व्योम, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये आठ इसकी शाखाएँ हैं; मुख आदि नौ द्वार इसके खोडर (छिद्र) हैं एवं दस प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय) इसके पत्र हैं, इसमें जीवात्मा और परमात्मा नामके दो पक्षी विराजमान हैं ॥ २७ ॥

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति-
स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८ ॥

हे भगवन्! इस संसाररूप आदिवृक्षके आप ही एकमात्र मूल (उपादान) कारण हैं, आप ही इसके एकमात्र विलय-स्थान हैं, आप ही इसके एकमात्र पालक हैं, किन्तु आपकी माया द्वारा जिनका चित्त आवृत है, वे अज्ञ लोग आपको बहुत रूपोंमें देखते हैं, पण्डित लोग ऐसा नहीं देखते। (तात्पर्य यह है कि सृष्टि, संहार आदि कार्योंके कर्तृत्वके मूलमें विष्णु ही एकमात्र स्वतन्त्र कर्त्ता हैं, ब्रह्मा-रुद्रादिका स्वतन्त्र कर्तृत्व न रहनेके कारण उन्हें सृष्टि आदि कार्योंका कर्त्ता नहीं कहा जाता। अज्ञ व्यक्ति विष्णुतत्त्वको न जानकर ऐसा सोच लेते हैं कि सृष्टि और संहारके कर्त्ता गुणावतार ब्रह्मा और शिव हैं।) ॥ २८ ॥

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥

आप चिद्घनविग्रह अर्थात् ज्ञानैकस्वरूप हैं। आप स्थावर और जङ्गमात्मक सभी जीवोंका पालन करते हैं। आप इस जगत्के कल्याणके लिए मङ्गलदायक, धार्मिक लोगोंके लिए सुखदायक और दुष्टोंके लिए विनाशक विशुद्धसत्त्वमय मत्स्य आदि रूपोंको

पुनः-पुनः प्रकटित करते हैं। इन रूपोंके द्वारा आप धार्मिक सन्तोंको बहुत सुख देते हैं और दुष्टोंको उनकी दुष्टताके कारण दण्डित भी करते हैं॥ २९॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि

समाधिनावेशितचेतसैके ।

त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन

कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्॥ ३०॥

हे कमलनयन! कुछ प्रधान विवेकी लोग ही आपको विशुद्ध सत्त्वगुणके आश्रयके रूपमें जानते हैं। अतः वे समाधिस्थ होकर पृथ्वीपर प्रकटित आपके शरीर, गुण एवं लीलादिके अतिशय ध्यानमें अपने चित्तको आविष्ट कर देते हैं। ऐसा करके वे महत् लोगोंके आदरणीय आपके चरणकमलरूपी जहाजका अवलम्बन कर भवसागरको बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेके समान अनायास ही पार कर जाते हैं॥ ३०॥

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्

भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।

भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते

निधाय याताः सदनुग्रहो भवान्॥ ३१॥

हे स्वप्रकाश! आप भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं। आपके चरणाश्रित महाजन इस भीषण एवं सुदुस्तर भव-सागरको स्वयं पार करके आपकी पादपद्म-तरणीको इस लोकमें गुरु-परम्परामें अथवा श्रौतपन्थमें रख गये हैं, क्योंकि ये महाजन सभी प्राणियोंसे अतिशय प्रेम करते हैं।

(आप जिनके अतःकरणोंमें उदित नहीं होते, उनके लिए ही तमःपुञ्जरूप यह संसार समुद्र-तुल्य भयानक एवं दुष्पार होता है, किन्तु प्रेमाभक्तिरूप उदयपर्वतपर आपके उदित होनेपर समस्त अन्धकार स्वयं ही विलीन हो जाता है और संसार-तरण अनायास ही हो जाता है)॥ ३१॥

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
 स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
 आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
 पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ ३२ ॥

यदि कोई कहे कि भगवत्-चरणाश्रयकी क्या आवश्यकता है? शुष्कज्ञानके द्वारा भी तो भवसागर पार किया जा सकता है। इसके उत्तरमें कहते हैं—हे कमललोचन! जो व्यक्ति अपनेको मिथ्या ही 'जीवन्मुक्त' अभिमान करते हैं, वस्तुतः वे बद्ध ही हैं, क्योंकि आपमें उनकी प्रीति न रहनेके कारण उन लोगोंका चित्त मलिन रहता है। वे सब व्यक्ति कठोर तपस्या और साधनके कष्ट उठाकर किसी प्रकार मोक्षके सन्निकट प्रदेशमें आरोहण करनेपर भी आपके चरणकमलोंका अनादर करनेके कारण वहीँसे गिर जाते हैं। भक्ति बिना ज्ञानका प्रयास मरीचिकाके जलके समान है ॥ ३२ ॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्-
 भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः ।
 त्वयाभिगुप्ता चिरन्ति निर्भया
 विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥

हे माधव! हे प्रभो! जिन्होंने आपसे प्रीतिका सम्बन्ध जोड़ रखा है, सौहार्द बाँध रखा है, जिनका आपमें दृढ़ विश्वास है, वे परम भक्त अर्थात् आपके निजजन ज्ञानके अभिमान रखनेवालोंके समान कभी भी शुद्ध भक्ति-पथसे भ्रष्ट नहीं होते, बल्कि वे आपके द्वारा सब प्रकारसे सुरक्षित होकर विघ्न डालनेवालोंके सिरपर पैर रखकर निर्भयतापूर्वक विचरण करते हैं ॥ ३३ ॥

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ
 शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ।
 वेदक्रियायोगतपःसमाधिभि-
 स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥

हे भगवन्! आप जगत्की स्थितिके लिए समस्त जीवोंके परम मङ्गलसाधक, विशुद्धसत्त्वमय, सच्चिदानन्दमय अपने परम दिव्य विग्रहको प्रकट करते हैं। इस शुद्ध मायातीत, चिन्मय विग्रहके माध्यमसे ही लोग वेदाध्ययनरूप ब्रह्मचारीका धर्म, क्रियायोगरूप गृहस्थका धर्म, वनवास आदि तपस्यारूप वानप्रस्थका धर्म, समाधिरूप यतिका धर्म—इन चार प्रकारके स्वधर्मों द्वारा आपकी पूजा करते हैं। यदि आप शरीर धारण न करें, तो मनुष्योंका कर्मफल सिद्ध नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्
विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्
प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥

हे विधाता! यदि आपका यह विशुद्ध-सत्त्वमय शरीर प्रकटित नहीं होता, तो अज्ञान और अज्ञानकृत भेदको नष्ट करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान (साक्षात्कारात्मक विज्ञान) सम्भव ही नहीं होता। (श्रीविग्रहके विज्ञानसे ही संसार-बन्धनका क्षय होता है।) जगत्में दिखनेवाले तीनों गुण आपके हैं और आपके द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, यह सत्य है, परन्तु इन गुणोंकी प्रकाशक वृत्तियोंसे आपके जड़ बुद्धि आदि गुणोंके अधिष्ठाता ईश्वर-स्वरूपका केवल अनुमान ही होता है, वास्तविक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता, किन्तु जो आपके विशुद्ध-सत्त्वमय विग्रहके उपासक हैं, आपके पादारविन्दोंके सेवक हैं, वे उपासना-सेवा द्वारा आपका साक्षात्कार करते हैं ॥ ३५ ॥

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि-
निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो
देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥ ३६ ॥

(देवता लोग अनेक रूपोंमें प्रकाशमान् भगवान्को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—) हे देव ! हे भक्तवत्सल ! श्यामसुन्दर (नाम) अथवा कृपार्द्र-लोचन आदि नामोंके द्वारा, वसुदेव गृहमें प्राकट्य, नन्दगृहमें जन्मादि अथवा भू-भार-हरण, गोवर्धन-धारण, त्रिभङ्गललित आदि लीलाओं द्वारा आपके नाम, गुण, जन्म एवं क्रियादिका निरूपण नहीं हो सकता। यदि ये किसी प्रकारसे वाच्य अथवा ध्येय हो जाएँ, परन्तु विषयोन्मुखी जीवको इनके माधुर्यका साक्षात् रूपसे अनुभव नहीं होता। आप अनुमान द्वारा निर्णय लेनेवाले साधकोंके मन एवं वाणीके अगोचर हैं एवं उनके भी साक्षीस्वरूप हैं। श्रवण, कीर्त्तनरूप आदि सेवाभावोंसे अर्थात् भक्तियोगसे भक्तगण आपका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्
नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-
रविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥

हे भगवन् ! आपके चरणकमलोंमें आविष्ट भक्तगण समस्त कार्योंमें आपके परम मङ्गलमय नामों एवं रूपोंका श्रीगुरुमुखसे श्रवणकर कीर्त्तन एवं स्मरण करते हैं तथा दूसरोंको भी स्मरण एवं चिन्तन कराते हैं। वे आपके अनुभवकी प्राप्तिके योग्य हो जाते हैं और उन्हें इस जन्म-मरण-प्रवाहरूप संसारमें आना नहीं पड़ता ॥ ३७ ॥

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो
भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः।
दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभनै-
र्द्रक्ष्याम गां द्याञ्च तवानुकम्पिताम् ॥ ३८ ॥

हे हरे ! (हे सर्वदुःखहारिन् !) आप सर्वेश्वर हैं ! आपके चरणकमलोंसे उत्पन्न इस धरतीका गुरुतर भार आपके प्रकट होनेसे ही दूर हो गया, यह हमारा परम सौभाग्य है, परन्तु हमारा

और अधिक सौभाग्य यह होगा कि हम आपके ध्वज, वज्र, अंकुश आदि सुशोभन चरणचिह्नोंसे अङ्कित पृथ्वीको और आपकी कृपासे अलंकृत देवलोकको भी देख सकेंगे ॥ ३८ ॥

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं
विना विनोदं बत तर्कयामहे।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया
कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥

हे ईश! आप असंसारी, अजन्मा होकर भी अपने स्वरूपानन्दके आस्वादनके लिए अर्थात् लीला-विनोदके (क्रीड़ाकौतुकके) लिए जन्म-ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई कारण दिखायी नहीं देता। (कर्मफलबाध्य जीवके समान आपके जन्मादिका कोई कारण नहीं है।) हे नित्यमुक्त! हे अभयाश्रय! आप सर्वाधिष्ठान-स्वरूप हैं। जीवात्माके जन्म, अवस्थान एवं ध्वंस अथवा जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय—ये सब अपाश्रिता (जिसने आपका आश्रय नहीं लिया है) अविद्या द्वारा आपमें आरोपित हैं ॥ ३९ ॥

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-
राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनञ्च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४० ॥

हे ईश। आपने (पहले भी) मत्स्य, हयग्रीव (अश्व), कूर्म, नृसिंह, वराह, हंस, क्षत्रिय (रामचन्द्र), विप्र (परशुराम) एवं देवताओंके (उपेन्द्र-वामन आदिके) रूपोंमें अवतार धारणकर हम लोगोंका तथा त्रिभुवनका जिस प्रकारसे पालन-परित्राण किया है, इसी प्रकार अब भी आप पृथ्वीका भार हरण कीजिये और हमारी रक्षा कीजिये। हे यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! हम आपकी वन्दना करते हैं ॥ ४० ॥

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमा-
नंशेन साक्षाद्भगवान् भवाय नः।

माभूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-
गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥

(भगवान्की स्तुति करते हुए देवतागण देवकीसे कहने लगे)
हे माता देवकी! सौभाग्यसे हमारे मङ्गलके लिए साक्षात् परमपुरुष
भगवान् श्रीबलदेवके साथ आपके गर्भमें पधारे हैं। अतः मृत्युके
अभिलाषी कंससे आपको कोई भय नहीं है। वह स्वयं ही मरना
चाहता है। आपके नित्य पुत्र श्रीकृष्ण यदुवंशके रक्षक होंगे ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा।
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—चिन्मय एवं प्रपञ्चातीत पुरुषोत्तम श्रीविष्णुका
इस प्रकार स्तव कर देवता ब्रह्मा और शिवको आगे करते हुए
देवलोकमें चले गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके द्वितीय अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

तृतीयोऽध्यायः

भगवान्का आविर्भाव, पिता-माता द्वारा स्तुति और
वसुदेव द्वारा भगवान्को गोकुलमें ले जाना

श्रीशुक उवाच—

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षं ग्रहतारकम् ॥ १ ॥
दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्।
मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥
नद्यः प्रसन्नसलिला हृदा जलरुहश्रियः।
द्विजालिकुलसन्नादस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥
ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥
मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम्।
जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो समम् ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—परीक्षित्! अब समस्त गुणोंसे सम्पन्न
अतीव रमणीय काल समुपस्थित हुआ। आकाश स्थित अश्विनी
आदि नक्षत्र, सूर्य आदि ग्रह एवं अन्यान्य तारागण शान्त हो गये।
रोहिणी नक्षत्रका आगमन हुआ। वर्षाकालके बाद शरत्कालीन
गुणोंसे युक्त होनेके कारण दिशाएँ स्वच्छ एवं प्रसन्न थीं। निर्मल
आकाश-मण्डल उज्ज्वल तारोंसे विभूषित था। पृथ्वीपर स्थित
बड़े-बड़े नगर, गाँव, गोष्ठ (अहीरोंकी बस्तियाँ), हीरे इत्यादिकी
खानें अति मङ्गलमय थे, नदियाँ निर्मल वारिसे परिपूर्ण थीं।
सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे, रात्रिमें भी दिनकी शोभा उजागर
हो रही थी। वनराजियाँ कोकिलादि पक्षियोंके श्रुतिमधुर (कर्णप्रिय)
कलरव एवं भ्रमरोंके मनोहारी गुञ्जारसे झङ्कृत हो रही थीं,
वृक्षावली रङ्ग-बिरङ्गे पत्र-पुष्पोंसे सुरम्य हो रही थी। परम पवित्र,

शीतल धीर सुगन्धित समीर अपने कोमल स्पर्शसे लोगोंको सुख प्रदान करता हुआ प्रवाहित हो रहा था, जिससे वर्षाकालमें वसन्त-ऋतुका स्मरण हो रहा था। साग्निक अथवा याज्ञिक ब्राह्मणोंकी (कंसके अत्याचारसे) बुझी हुई होम-अग्नियाँ स्वयं ही प्रज्वलित हो उठीं। इसी समय अजन्मा भगवान् विष्णुके अवतरणका क्षण उपस्थित हो गया। असुर-द्वेषी साधुओंके चित्त प्रसन्न हो गये। स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ अपने-आप बजने लगीं ॥ १-५ ॥

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः।

विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं मुदा ॥ ६ ॥

किन्नर एवं गन्धर्व हर्षोल्लाससे मङ्गलगान करने लगे, सिद्ध एवं चारण भगवान्का गुणगान करते हुए स्तव करने लगे एवं विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ आनन्दसे सराबोर होकर नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः।

मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥

निशीथे तम उद्धूते जायमाने जनार्दने।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।

आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥

देवता एवं ऋषि-मुनि आनन्दसे भरकर पुष्प-वृष्टि करने लगे। जलसे भरे मेघ समुद्रके स्वरका अनुकरण करते हुए मन्द-मन्द गर्जन करने लगे। भाद्र मासकी अष्टमीकी रात्रिका समय था। जन्म-मृत्युके चक्रसे मोचन करनेवाले भगवान् जनार्दन प्रकट होनेवाले थे। चारों ओर घोर अन्धकारका साम्राज्य था। उसी समय पूर्व दिशामें उदित सोलह कलाओंसे पूर्ण चन्द्रके समान सभी जीवोंके हृदय-गुफामें विराजमान् श्रीकृष्ण देवरूपिणी, सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी देवकीदेवीके गर्भसे प्रकट हुए। (कंसादि असुरोंको विमोहित करनेके लिए भगवान् आठवें महीनेमें ही मेघोंके बीच चन्द्रमाके समान प्रकट हो गये, सामान्य बालकके

समान भूमिष्ठ नहीं हुए। ज्योतिष-शास्त्रके अनुसार चन्द्रमा, मङ्गल, बुध एवं शनि उस समय उच्चस्थ थे, वृष लग्न थी, बुधवार था।) ॥ ७-८ ॥

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥

वसुदेवने देखा कि यह बालक तो बड़ा अद्भुत है, इसके दोनों नयन नीलकमलके समान सुन्दर एवं विशाल हैं, चार कोमल हाथ शङ्ख, गदा, चक्र एवं कमलसे सुशोभित हैं, वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न-सुवर्णमयी रेखासे अलङ्कृत है, गलेमें कौस्तुभ मणि विराजित है, सुरम्य अङ्गकान्तियुक्त नवीन जलधरके समान श्यामल सुन्दर शरीरपर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा है, महामूल्यवान् श्रेष्ठ वैदूर्यमणिसे शोभित नील एवं पीत छविसे युक्त त्रिकोण पत्रावलीरूप मुकुट धारण किये हुए है, कुण्डल-युगलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल अंशुमालीकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें दीप्तिमयी करधनी, बाहोंमें सुन्दर बाजूबन्द और कलाइयोंमें आकर्षक कंगन आदि आभूषणोंसे सुशोभित बालकका अङ्ग-अङ्ग अद्भुत छटासे शोभायमान हो रहा है। वसुदेव नवजात शिशुका आपाद निरीक्षण करने लगे ॥ ९-१० ॥

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं
सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृश-
न्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥

उस समय श्रीहरिका पुत्ररूपमें दर्शन करके वसुदेवके नयन विस्मयसे प्रफुल्लित हो उठे। वे श्रीकृष्ण-जन्म-महोत्सवके अनुष्ठानमें विशेष श्रद्धाके साथ संलग्न हो गये और आनन्दसे ओतप्रोत होकर उन्होंने मन-ही-मन तत्काल ब्राह्मणोंको दस हजार गायें दान करनेका सङ्कल्प कर लिया॥ ११॥

अथैनमस्तौदवधार्य पुरुषं
परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं
विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित्॥ १२॥

हे भरतकुलनन्दन! वसुदेवजीके मनमें भगवान्‌के प्रति पुत्रका भाव एवं अपने इष्टदेवकी स्फूर्ति दोनों एक साथ जाग उठे। उन्हें निश्चय हो गया कि यह बालक परमपुरुष नारायण है। वे भगवत्-प्रभावको जानते थे, इसलिए निर्भय हो गये। भगवान्‌की अङ्ग-कान्तिसे सूतिका-गृह प्रकाशित हो रहा था। वसुदेवजीने भगवान्‌के चरणोंमें सिर झुकाया और हाथ जोड़कर शुद्ध बुद्धिके साथ उस बालककी स्तुति करने लगे॥ १२॥

श्रीवसुदेव उवाच—

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्॥ १३॥

श्रीवसुदेवजीने कहा—आप प्रकृतिके ईक्षणकर्त्ता हैं। प्रकृतिके गुणोंसे परे साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, सर्वान्तर्यामी (सबकी बुद्धियोंके साक्षी) एवं विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप साक्षात् भगवान् हैं, यह मैंने जान लिया है॥ १३॥

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम्।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे॥ १४॥

हे आनन्दघनस्वरूप! सृष्टिके प्रारम्भमें आप अपनी विक्षेपात्मिका नामकी माया-शक्तिके द्वारा पहले तो त्रिगुणात्मक विश्वकी सृष्टि करते हैं। अनन्तर इसका स्पर्श मात्र भी किये बिना अन्तर्यामीरूपमें

आप इसमें प्रविष्टके समान लक्षित होते हैं। आप सर्वमय होकर भी आज मेरे सम्मुख इस सूतिका-गृहमें विराजमान हैं ॥ १४ ॥

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह।

नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥ १५ ॥

सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव।

प्रागेव विद्यमानत्वात् तेषामिह सम्भवः ॥ १६ ॥

एवं भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणै-

ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः।

अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते

सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥

महत्-तत्त्व, अहङ्कार-तत्त्व एवं पञ्च-तन्मात्र इत्यादि अविकारी (अविभाज्य) पदार्थ जिस प्रकार असमान (भिन्न-भिन्न भौतिक) गुणोंसे युक्त एवं पृथक्-पृथक् होकर भी चैतन्यकी प्रेरणा द्वारा (कालवशात्) विकारी (पञ्च महाभूत एवं इन्द्रियादि) सोलह भौतिक पदार्थोंके साथ मिलित होकर ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं एवं सृष्टिके पश्चात् उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी प्रविष्ट-से जान पड़ते हैं—ब्रह्माण्डकी सृष्टिके पूर्व ये महत्-तत्त्व आदि कारणरूपमें विद्यमान रहते हैं, अतः ब्रह्माण्डकी सृष्टिके बाद उनका प्रवेश सम्भव नहीं है, उसी प्रकार सभी पदार्थ आपकी मायाके गुणोंसे लिप्त हो जाते हैं, किन्तु कारणत्वरूपमें प्रविष्ट होनेपर भी आप निर्लिप्त ही रहते हैं। आप रूपादि ज्ञानके द्वारा तो अनुमेय हैं, परन्तु इन्द्रियग्राह्य प्रकृतिके गुणोंके साथ विद्यमान रहकर भी उनके द्वारा गृहीत नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि चक्षु द्वारा जिस प्रकार रूप ग्रहण किया जाता है, किन्तु रसका आस्वादन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण किये जा सकते हैं, किन्तु इन्द्रियातीत होनेके कारण आपको ग्रहण नहीं किया जा सकता। (प्रकृतिके गुण तो बन्धनमें डालनेवाले एवं दुःखात्मक हैं, परन्तु आप हैं आनन्दस्वरूप।) आप सभी लोगोंके आत्मस्वरूप

परमात्मा अर्थात् सर्वमय व्यापक वस्तु हैं, इसलिए अखण्ड एवं अनावृत (आवरणरहित) हैं (व्यापक वस्तुका आवरण नहीं हो सकता)। बाह्य एवं अन्तर भेद-रहित आपका गर्भादिमें प्रवेश असम्भव है। आपमें कुछ भी बाहरी या भीतरी नहीं है। आपने कभी भी देवकीके गृहमें प्रवेश नहीं किया, आप पहलेसे ही वहाँ उपस्थित हैं ॥ १५-१७ ॥

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं
सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥ १८ ॥

जो व्यक्ति परिदृश्यमान (प्रकृतिके तीन गुणोंसे निर्मित) शरीर आदि (अर्थात् भोग्यमाला, चन्दन, वनिता इत्यादि) पदार्थोंको आत्मासे पृथक् वास्तव (स्वतन्त्र) सत्तायुक्त समझता है, वह वस्तुतः मूर्ख है। विचार करनेपर देखा जाता है कि ये देहादि पदार्थ वाक्-चातुर्य एवं पाण्डित्यके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं, प्रवाद मात्र हैं। सर्वदा विद्यमान न रहनेके कारण ये शोक, मोहादि दुःख तथा संसार-प्रवाहको देनेवाले हैं। यथार्थ मनीषी इन पदार्थोंको अवास्तव एवं घृणास्पद मानकर परित्याग कर देते हैं। परित्यज्य वस्तु (देह-गृहादि) को सत्य समझकर ग्रहण करनेवाला किस प्रकार बुद्धिमान् हो सकता है? ॥ १८ ॥

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते
त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥

हे विभो! विद्वान् व्यक्ति निष्क्रिय, निर्गुण एवं निर्विकार आपसे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं संहार बतलाते हैं। ब्रह्म एवं ईश्वर-स्वरूप आपमें कुछ भी विरुद्ध अथवा असङ्गत नहीं है। सत्त्वादि गुणोंके द्वारा सृष्टि आदि कार्य होते हैं, किन्तु आप

समस्त गुणोंके आश्रय हैं, इसलिए सृष्टि-कर्तृत्व आदि आपमें आरोपित होते हैं। (वस्तुतः भगवान् ब्रह्म एवं ईश्वर दोनोंके आश्रय हैं—अतः ब्रह्मस्वरूपका निर्विकारत्व एवं ईश्वर-स्वरूपका सृष्टि-कर्तृत्व इन दोनों परस्पर विरुद्ध गुणोंका सामञ्जस्य भगवान्में लक्षित होता है।) ॥ १९ ॥

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया
 विभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः।
 सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं
 कृष्णञ्च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥

आप गुणातीत होकर भी अपनी मायासे तीनों भुवनोंकी स्थितिके लिए स्व-स्वरूपमें शुद्धसत्त्वमय शुक्ल वर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप), सृष्टिके लिए रजोगुण प्रधान रक्त वर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) एवं प्रलयकालमें तमोगुण प्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) धारण करते हैं। (त्रिविध वर्णोंके उल्लेखसे चक्षु द्वारा दृश्य वर्ण नहीं, अपितु सत्त्वादि गुणोंको जानना चाहिये। बक परम तामसी धर्मसे युक्त होकर भी शुक्लवर्ण है, परम सात्त्विक श्रीव्यास एवं शुकादिका वर्ण कृष्ण है। क्षीरोदशायी विष्णुका श्यामवर्ण प्रसिद्ध है, रुद्रका शुक्ल वर्ण है—इसलिए ब्रह्माके रक्तवर्णत्वका इस स्थलपर तात्पर्य नहीं है। ब्रह्मा एवं रुद्रमें जिस प्रकार रजोगुण एवं तमोगुणका योग है, उस प्रकार विष्णुमें सत्त्वगुणको कोई योग नहीं है, क्योंकि सत्त्वगुणमें आवरण एवं विक्षेप नहीं होते। विष्णु उदासीनरूपसे सत्त्वगुणमें अवस्थान करते हैं) ॥ २० ॥

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषु-
 गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर।
 राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
 निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥

हे विभो! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। इस मर्त्यलोककी रक्षाकी अभिलाषासे आप मेरे घरमें अवतीर्ण हुए हैं। कोटि-कोटि असुर क्षत्रिय राजाओंका नाम धारण करके सेनाका अपने सङ्केतोंपर परिचालन करते हैं। अब आप इनका संहार कर डालेंगे ॥ २१ ॥

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे
श्रुत्वाग्रजांस्ते न्यवधीत् सुरेश्वर।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं
श्रुत्वाधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥

हे देवाधिपते! इस दुष्ट कंसने 'मेरे गृहमें आपका जन्म होगा'—यह सुनकर आपके बड़े भाइयोंका वध कर दिया। अब उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे प्रदान कर देंगे और वह किसी भी क्षण अस्त्र धारण करके यहाँ उपस्थित हो जायेगा। आप अपने इस रूपका संवरण कर लीजिये, मैं काँप रहा हूँ ॥ २२ ॥

श्रीशुक उवाच—

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम्।

देवकी तमुपाधावत् कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—अनन्तर कंसके भयसे डरी हुई देवकी महापुरुषके लक्षणोंसे युक्त पुत्रके दर्शनकर अत्यन्त विस्मयके साथ उनकी स्तुति करने लगीं ॥ २३ ॥

श्रीदेवक्युवाच—

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं

ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।

सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं

स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥

माता देवकीने कहा—हे देव! वेदोंने जिस अव्यक्त (काय, वाक्, मनसे अगोचर) वस्तुको जगत्का कारण बतलाया है,

जिसका ब्रह्म (सर्वापेक्षा बृहत्), ज्योतिर्मय (चेतनमय स्वप्रकाश वस्तु), मायारहित, निर्विकार (शोक, मोहके वशीभूत नहीं), निर्विशेष (साधारण एवं विशेष दोनों भेदोंसे रहित), केवल धर्म-स्वरूप कहकर वर्णन किया है, आप इसी आध्यात्मिक बुद्धि आदिके प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं (निराकार, निर्विशेष, ज्योतिर्मय ब्रह्म विष्णुसे पृथक् नहीं हैं, बल्कि उनकी अङ्गकान्ति मात्र हैं) ॥ २४ ॥

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने
महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते
भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥ २५ ॥

महाप्रलय अर्थात् ब्रह्माकी पूरी आयु—दो परार्द्ध समाप्त होनेपर कालशक्तिके प्रभावसे जब चराचर सारे लोक (चौदह भुवन) नष्ट अर्थात् विलीन हो जाते हैं, तब पृथ्वी इत्यादि पाँचों स्थूल-भूत सूक्ष्म तन्मात्राओंको प्राप्त हो जाते हैं। सभी व्यक्त पदार्थ अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं। आदिभूत अहङ्कार प्रकृति तत्त्वमें लीन हो जाता है। उस समय अनन्त संज्ञक एकमात्र आप ही शेष रहते हैं, इसलिए आपका एक नाम 'शेष' भी है ॥ २५ ॥

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम्।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां-
स्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥

हे प्रकृतिके प्रवर्तक! यह सारा विश्व जिस कालके अधीन होकर चलता है, जो निमेषसे वर्ष तक अनेक विभागोंमें विभाजित है, उस सर्वसंहारक महान् कालको सारे वेद विष्णुस्वरूप आपकी लीलामात्र कहकर वर्णन करते हैं। आप सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं एवं परम कल्याणके आश्रय हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ। मुझे अभय प्रदान कीजिये ॥ २६ ॥

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्
 लोकान् सर्वान् निर्भयं नाध्यगच्छत्।
 त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य
 सुस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥

यह मर्त्यलोक मृत्युरूप कालसर्पसे अत्यन्त भयभीत है। यह रक्षा एवं आश्रय हेतु ब्रह्मादि सभी लोकोंमें भ्रमण करता रहता है, परन्तु कालरूप सर्प उसके पीछे-पीछे भागता है—इसे कहीं भी निर्भय स्थान नहीं मिलता। आज सौभाग्यसे—आपकी महत् कृपासे प्राप्त शक्तिके बलसे आपके चरण-कमलोंका आश्रय प्राप्त करके यह (मर्त्यलोक) स्वस्थ होकर सुखपूर्वक सो रहा है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु भी इस मर्त्यलोकसे दूर भाग गयी है (कंसके भयसे केवल मैं ही विह्वल हूँ) ॥ २७ ॥

स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजात्र-
 त्स्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहासि।
 रूपञ्चेदं पौरुषं ध्यानधिष्यन्
 मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥

आप भक्तोंके भयहारी हैं। हम दोनों महाभयङ्कर, दुर्दान्त कंससे बहुत ही डरे हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। आप अपने इस ध्यानगम्य, अलौकिक, अप्राकृत, चतुर्भुज, विष्णुरूपको स्थूल देहाभिमानियोंके चर्मचक्षुओंके समक्ष प्रकट न करें। (वे इसके दर्शनकी योग्यता नहीं रखते।) ॥ २८ ॥

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन।
 समुद्रिजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥

हे मधुसूदन! चञ्चलमति मैं आपके लिए कंससे उद्विग्न (अधीर) हो रही हूँ। अतएव मेरे गर्भसे आपके जन्म-ग्रहणका समाचार वह पापी कंस जिस प्रकार जान नहीं पाये, ऐसा उपाय कीजिये ॥ २९ ॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।

शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥ ३० ॥

हे विश्वात्मन्! शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसे सुशोभित आप अपना यह अलौकिक चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये॥ ३० ॥

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते

यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।

बिभर्त्ति सोऽयं मम गर्भेगोऽभू-

दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत्॥ ३१ ॥

आपसे ऐसा अलौकिक रूप गोपन करनेके लिए क्यों कह रही हैं, सुनिये। आप परमपुरुष हैं, प्रलयकालमें चराचरात्मक इस ब्रह्माण्डको आप स्व-तनु-मन्दिरमें (अपने श्रीविग्रहमें) स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, वही ब्रह्माण्ड-विग्रह विष्णुरूपी आप आज मेरे गर्भवासी हुए हैं। यह आपकी अद्भुत मनुष्यलीला नहीं तो और क्या है? अहो! यह मनुष्योंके लिए असम्भव होनेके कारण अत्यन्त उपहासका विषय है। (लोग कहेंगे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके आधारस्वरूप भगवान् मेरे गर्भसे प्रकट हुए हैं, कैसी विडम्बना है?)॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच—

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति।

तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः॥ ३२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे पतिव्रता-शिरोमणे! मैं केवल इसी जन्ममें तुम्हारे गर्भमें आया हूँ, ऐसा नहीं है। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पूर्वजन्ममें तुम पृश्नि नामसे उत्पन्न हुई थीं एवं शुद्धचित्त ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे॥ ३२ ॥

युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः॥ ३३ ॥

अनन्तर तुम दोनोंने ब्रह्माके आदेशसे प्रजाकी सृष्टिके लिए इन्द्रियोंका संयम करके कठोर तपस्या आरम्भ कर दी॥ ३३ ॥

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ।
 सहमानौ श्वासरोध-विनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥
 शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ।
 मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥

तुम दोनोंने वर्षा, वायु, धूप, शीत और उष्ण आदि कालके समस्त गुणोंको निरन्तर सहन किया, क्रमशः प्राणायाम आदि द्वारा तुम्हारे चित्तकी मलिनता दूर हो गयी। जो पत्ते वृक्षसे गिर जाते थे, उन सूखे पत्तोंको ही तुम दोनों खा लिया करते थे और कभी तो मात्र वायुका ही सेवन करके रह जाते थे। इससे तुम्हारा चित्त अत्यन्त शान्त हो गया था। अभीष्ट फल प्राप्तिकी आशासे तुम दोनोंने मेरी सम्यक् आराधना की थी ॥ ३४-३५ ॥

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ।
 दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥

तुमने मुझमें ही अपने चित्तको आविष्ट कर दिया था। इस प्रकार अत्यन्त दुःसाध्य घोर तपस्या करते-करते बारह हजार दैव-वर्ष बीत गये ॥ ३६ ॥

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे ।
 तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥
 प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ।
 व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥

हे पुण्यमयी देवि! उस समय तुम्हारी निरन्तर कठोर तपस्या, तपस्यासे उत्पन्न साधनभक्ति-विषयक श्रद्धा और श्रद्धासे उत्पन्न भक्तिसे आराधित एवं सन्तुष्ट होकर वरदाताओंमें श्रेष्ठ मैं तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करनेकी इच्छासे इसी रूपसे (इसी देहसे) तुम्हारे सम्मुख प्रकट हुआ था एवं मेरे 'अभीष्ट वर माँगो'—यह कहनेपर तुम दोनोंने मुझ-जैसा आकृति-विशिष्ट पुत्र माँगा था ॥ ३७-३८ ॥

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती।

न वव्राथेऽपवर्ग मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥

चिरकालसे तुम्हारा ग्राम्य विषयों (मैथुनादि) से कोई सम्बन्ध न था और न ही तुम्हारी कोई सन्तान थी। उस समय पुत्रस्नेहमयी मेरी वैष्णवी मायासे मोहित होकर (वात्सल्य रसास्वादनके आनन्दके कारण) तुम लोगोंने मुक्तिकी प्रार्थना नहीं की ॥ ३९ ॥

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं सत्सदृशं सुतम्।

ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥

तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हुए, तुम्हें मेरे समान पुत्र-प्राप्तिरूप वर प्राप्त हुआ। अभीष्ट वर प्रदान करके मैं वहाँसे अदृश्य हो गया। अनन्तर पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे तुम विषयादिका भोग करने लगे ॥ ४० ॥

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम्।

अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥

मैंने देखा कि इस लोकमें सच्चरित्र, सरलता, उदारता तथा अन्य गुणोंमें तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है, इसलिए त्रेतायुगमें मैं तुम दोनोंका पुत्र हुआ और 'पृश्निगर्भ' के नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥

तयोर्वी पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात्।

उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥

पुनः दूसरे जन्ममें तुम हुई अदिति और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मेरा नाम 'उपेन्द्र' हुआ। शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे 'वामन' भी कहते थे ॥ ४२ ॥

तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम्।

जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥

अयि पतिव्रता-शिरोमणे! अब इस तीसरे जन्ममें भी वही रूप धारणकर मैं तुम्हारे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ हूँ। तुम दोनों वही पृथ्वि एवं सुतपा तथा अदिति एवं कश्यप हो। मेरी इस वाणीको सत्य समझना ॥ ४३ ॥

एताद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे।

नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४ ॥

मैंने पूर्व जन्मका स्मरण करानेके लिए ही तुम दोनोंके समक्ष इस अलौकिक चतुर्भुज रूपको प्रकट किया; अन्यथा केवल मनुष्य शरीरसे मेरे अवतारका अर्थात् मेरे स्वरूपका (विष्णु-आविर्भावका) ज्ञान नहीं हो सकता था। (मेरा परिपूर्णस्वरूप मनुष्याकार द्विभुज ही है।) ॥ ४४ ॥

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत्।

चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५ ॥

तुम दोनों निरन्तर मेरे प्रति पुत्र-भाव एवं भगवत्-भाव रखना। अनुरागमय वात्सल्य-भाव और भगवद्भावसे चिन्तन करते-करते तुम्हारा चित्त मुझमें आसक्त हो जायेगा और तुम परमगतिको प्राप्त करोगे ॥ ४५ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूर्ण्णीं

भगवानात्ममायया।

पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४६ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—परीक्षित! भगवान् श्रीहरि यह कहकर मौन हो गये एवं माता-पिताके देखते-ही-देखते अपनी योगमाया शक्तिसे उसी समय साधारण शिशु बन गये अर्थात् स्वभावसिद्ध अपने नित्यरूपको धारण कर लिया ॥ ४६ ॥

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः

सुतं समादाय स सूतिकागृहात्।

यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा

या योगमायाजनि नन्दजायया ॥ ४७ ॥

अनन्तर भगवान्की प्रेरणासे वसुदेव जिस समय बालकको गोदमें धारण करके सूतिका-गृहसे बाहर निकलनेकी अभिलाषा कर रहे थे, उसी समय यशोदाने भगवान्की आत्मशक्तिरूपिणी अजन्मा योगमायाको प्रसव किया ॥ ४७ ॥

तया हतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु
 द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ।
 द्वारश्च सर्वाः पिहिता दुरत्यया
 बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ ४८ ॥
 ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते
 स्वयं व्यवर्त्यन्त यथा तमो रवेः ।
 ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः
 शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन् फणैः ॥ ४९ ॥

योगमायाने अपने प्रभावसे द्वारपाल एवं पुरवासी सभीकी चेतनाको हर लिया। इससे उन सबकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो गयीं और वे निद्रित हो गये। सूर्यका उदय होनेपर जिस प्रकार अन्धकार स्वयं ही दूर हो जाता है, उसी प्रकार बालकृष्णको लेकर वसुदेवजी बाहर जानेके लिए जैसे ही तत्पर हुए, वैसे ही विशाल लौह-कपाटोंमें लोहेकी कीलोंसे युक्त एवं लौह-शृङ्खलाओं (जञ्जीरों) द्वारा बँधे हुए सुदृढ़ ताले अपने-आप खुल गये। मेघ मन्द-मन्द गर्जनके साथ वर्षा कर रहे थे, अतः छत्राकारमें अनन्तनाग द्वारदेशसे आरम्भ करके अपने फनोंसे वर्षाको रोकते हुए महाभाग्यशाली कृष्णवाहक वसुदेवके पीछे-पीछे चलने लगे। (शय्या, आसन, परिधान, पादुका, छत्र, चामर इत्यादि रूपोंमें अनन्तदेव श्रीकृष्णकी क्या सेवा नहीं करते?) ॥ ४८-४९ ॥

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा
 गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
 भयानकावर्त्तशताकुला नदी
 मार्ग ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥ ५० ॥

इन्द्रदेव निरन्तर जल-वर्षण कर रहे थे, जिससे यमुना नदीका जल और भी गहरा हो गया तथा उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त होकर वेगपूर्वक प्रवाहित होने लगा। चारों ओर तरल फेन-ही-फेन परिलक्षित हो रहे थे। सैकड़ों भीषण आवर्त (भँवर) व्याकुलता उत्पन्न कर रहे थे। समुद्रने जिस प्रकार रामचन्द्रको पथ प्रदान कर दिया था, यमुनाने भी उसी प्रकार वसुदेवजीको मार्ग दे दिया ॥ ५० ॥

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्
गोपान् सुषुप्तानुपलभ्य निद्रया।
सुतं यशोदाशयने निधाय तत्-
सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५१ ॥

तदनन्तर वसुदेव नन्दरायके गोकुलमें गये एवं वहाँ सभी गोपोंको योगनिद्राके प्रभावसे नींदमें बेसुध (अचेत) देखा। उन्होंने अपने पुत्रको महानिधिके समान गूढ़ भावसे यशोदाकी शय्यापर सुलाकर कन्याको (योगमायाको) कंसकी वञ्चनाके लिए ग्रहण कर लिया और पुनः कंस-कारागारमें उपस्थित हो गये ॥ ५१ ॥

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम्।
प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५२ ॥

कारागारमें पहुँचकर वसुदेवने उस कन्याको देवकीकी शय्यापर रख दिया। बादमें अपने पैरोंको लोहेकी बेड़ियोंसे बाँधकर वे पहलेके समान ही आबद्ध होकर बन्दीगृहमें स्थित हो गये ॥ ५२ ॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कृष्णजन्मनि
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सद्यः प्रसूता होनेके कारण यशोदा परिश्रमसे क्लान्त थीं। योगमायाने उनकी स्मरण-शक्तिको हर लिया था। वह इतना ही

जान पार्यीं कि सन्तान उत्पन्न हुई है—वह पुत्र है या कन्या—यह भलीभाँति जान न पार्यीं ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके तृतीय अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

चतुर्थोऽध्यायः

देवी चण्डिकाके वचनोंको सुनकर कंस द्वारा दुष्ट मन्त्रियोंके बाल-हिंसारूप परामर्शको अपने हितमें मान लेना

श्रीशुक उवाच—

बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।

ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्! इसके बाद नगरके सारे द्वार पहलेके ही समान भीतर एवं बाहर दोनों ओरसे स्वयं ही बन्द हो गये। तब नवजात शिशुकी रोदन-ध्वनिको सुनकर द्वारपालोंकी नींद टूटी और घरमें पाले हुए कुत्तेके समान वे उठ खड़े हुए ॥ १ ॥

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ।

आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥

उन्होंने अविलम्ब ही कंसके समीप उपस्थित होकर उसे देवकीके सन्तानके जन्मका समाचार निवेदन किया, जिसका कंस बड़ी उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहा था ॥ २ ॥

स तल्पात् तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ।

सूतीगृहमगात् तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्द्धजः ॥ ३ ॥

समाचार सुनते ही कंस हड़बड़ाते हुए शीघ्र उठ बैठा तथा 'यह शिशु मेरा कालस्वरूप है'—यह सोचकर व्याकुल हो गया। वह उसी क्षण सूतिका-गृहकी ओर झपटा। उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि उसके बाल बिखरे हैं। रास्तेमें कई स्थलोंपर लड़खड़ानेके कारण वह गिरते-गिरते बचा ॥ ३ ॥

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।

स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

कारागारमें कंसके पहुँचनेपर सती देवकी अत्यन्त दुःख और कातर (दीन) भावसे (लोभ उदित करानेके लिए) उससे कहने लगीं—हे कल्याण (हे मङ्गलबुद्धे)! यह कन्या तो आपकी भावी पुत्रवधू होगी। (बलपूर्वक कन्याको छीनते देखकर कहा) यह स्त्री-जातिकी है, अबला है—इस कन्याकी हत्या करना आपके लिए उचित नहीं है॥४॥

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः।

त्वया दैवनिमृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम्॥५॥

भैया! आपने दैवकी प्रेरणासे मेरे अग्नितुल्य तेजस्वी बहुत-से पुत्रोंको मार डाला है। आपका क्या दोष है? मेरा ही दुर्दैव है। अब केवल यही एक कन्या बची है, इसे तो मुझे दे दो। मेरी गोद सूनी न करो॥५॥

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो।

दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम्॥६॥

हे प्रभो! हे भाई! मेरे बहुत-से पुत्र मर गये हैं। मैं अत्यन्त दीना एवं निःसहाया हूँ। आपकी छोटी बहिन हूँ; अतएव मुझ मन्दभागिनीकी बची हुई एकमात्र अन्तिम सन्तानको प्रदान करना आपके लिए उचित है॥६॥

श्रीशुक उवाच—

उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत्।

याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः॥७॥

श्रीशुकदेव कहते हैं—देवकीने कन्याको अपनी ही कन्याके समान वक्षःस्थलपर दोनों हाथोंसे छिपा लिया और अतिशय दीनतापूर्वक क्रन्दन करती हुई कंससे प्रार्थना करने लगीं, परन्तु दुरात्मा कंसने देवकीको डाँट-डपटकर उनके हाथोंसे उस कन्याको बलपूर्वक छीन लिया॥७॥

तां गृहीत्वा चरणयोजातिमात्रां स्वसुः सुताम्।

अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः॥८॥

कंसने नवजात भाँजीके दोनों पैरोंको पकड़कर वेगपूर्वक पत्थरकी चट्टान पर पटक दिया। स्वार्थबुद्धिने उसके हृदयसे सौहार्दको समूल नष्ट कर दिया था। आत्मीयताका भाव उसमें रह ही नहीं गया था॥ ८ ॥

सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता।

अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी अनुजा (छोटी बहिन) योगमायादेवी कंसके हाथोंसे नीचे पटके जानेपर भी आकाशकी ओर उछलीं और कंसके मस्तकपर पदाघात करती हुई आकाशमें चली गयीं। वहाँ वे शूल आदि अस्त्रोंसे युक्त अष्टभुजामूर्तिके रूपमें दिखायी दीं॥ ९ ॥

दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।

धनुःशूलेषुचर्मासि-शङ्खचक्रगदाधरा ॥ १० ॥

सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।

उपाहतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

वे देवी दिव्यमाला, वस्त्र, अङ्ग-विलेपन (चन्दन आदि) और रत्न आभूषणोंसे विभूषिता थीं। वे अपनी महाभुजाओंमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुई थीं। अप्सरा, किन्नर, नाग, सिद्ध, चारण, गन्धर्व आदि उनकी पूजा हेतु बहुमूल्य सामग्री प्रदानकर उनकी वन्दना कर रहे थे। वे कंससे कहने लगीं— ॥ १०-११ ॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत्।

यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥ १२ ॥

रे मूढ़! मेरा वध करके तुझे क्या फल प्राप्त होगा? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु एवं तेरा संहारक किसी अन्य स्थानपर जन्म-ग्रहण कर चुका है। इसलिए व्यर्थ ही निर्दोष शिशुओंकी हत्या मत कर॥ १२ ॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि।

बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह॥ १३ ॥

भगवती योगमाया कंससे इस प्रकार कहकर वहाँसे अदृश्य हो गयीं और भूतलपर अर्थात् वाराणसी आदि विभिन्न स्थानोंपर अन्नपूर्णादि विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध और पूजित हुई॥ १३ ॥

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः।

देवकीं वसुदेवञ्च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत्॥ १४ ॥

देवीकी बात सुनकर कंस स्तम्भित रह गया। मानुषी देवकीसे दुर्गादेवी कैसे उत्पन्न हो सकती हैं? दैववाणी किस प्रकार मिथ्या हो सकती है? कंसने देवकी एवं वसुदेवको बन्धनसे मुक्त कर दिया और अति विनीत भावसे उनसे कहने लगा—॥ १४ ॥

अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना।

पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः॥ १५ ॥

मेरी प्यारी बहन! प्यारे बहनोई! जिस प्रकार राक्षस निर्दयतापूर्वक अपनी सन्तानकी हिंसा करते हैं, हाय-हाय! उसी प्रकार मुझे पापात्माने तुम्हारी अनेक सन्तानोंकी हत्या कर दी॥ १५ ॥

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत् खलः।

कौल्लोकान् वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन्॥ १६ ॥

मैं अतिशय निर्दय एवं क्रूर हूँ। मैंने अपने ही भाई-बन्धुओं और सुहृदोंका त्याग कर दिया। अब तो मैं ब्रह्मघातीके समान सदा (जीवनभर) अनुताप ही करता रहूँगा। मैं नहीं जानता, इस देहके छूटनेके बाद मुझे किस नरकमें जाना पड़ेगा?॥ १६ ॥

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम्।

यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुनिहतवान् शिशून्॥ १७ ॥

हाय! केवल मनुष्य ही मिथ्या नहीं बोलते, देवता भी मिथ्या कहते हैं। मैंने उनके वचनोंपर विश्वास करके अपनी ही बहिनके बालकोंको मार डाला। ओह! मैं कैसा घोर पापी हूँ!॥ १७ ॥

मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतं भुजः।

जान्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥ १८ ॥

हे महाभाग! तुम दोनों बड़े महात्मा हो। दुर्गादेवी तुम्हारी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई हैं। उन शिशुओंको तो अपने प्रारब्धके अनुसार फल मिला है। अतः उनके लिए शोक मत करो। प्राणी दैवके वशमें होनेके कारण सर्वदा एकत्र नहीं रह पाते ॥ १८ ॥

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च।

नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार इस लोकमें मिट्टी आदिसे निर्मित वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं, उसी प्रकार आत्मासे पाञ्चभौतिक देह उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है। कलश आदिके नष्ट होनेपर मिट्टी जिस प्रकार नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार इस पाञ्चभौतिक शरीरके जन्म-मरण होनेपर भी जीवात्मा स्वयं विकृत अथवा नष्ट नहीं होती ॥ १९ ॥

यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः।

देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ २० ॥

जो लोग इस तत्त्वको यथार्थरूपसे नहीं जानते, वे नाशवान् शरीरको आत्मा मान बैठते हैं अथवा पृथक्-पृथक् शरीरको ही पृथक्-पृथक् आत्मा समझ लेते हैं और इसी भेद-ज्ञानसे देहके जन्म-मरणको आत्माका जन्म-मरण मान बैठते हैं। बहिन! इसी भेद-ज्ञानसे पुत्रादिका देहके साथ संयोग सुखका कारण और उस देहका वियोग उनके लिए दुःखका कारण होता है। जब तक यह अज्ञान रहता है, तब तक संसार-जनित सुख-दुःखका अन्त नहीं हो सकता ॥ २० ॥

तस्माद्भद्रे स्वतनयान् मया व्यापादितानपि।

मानुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१ ॥

मेरी कल्याणमयी बहिन! जिस प्रकार सारे जीव ही दैववश अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग करते हैं, उसी प्रकार मेरे द्वारा

मारे गये अपने पुत्रोंके लिए शोक मत करो। इच्छा न रहनेपर भी अपने किये हुए कर्मोंका फल भोगना पड़ता है॥ २१ ॥

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक्।

तावत् तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात्॥ २२ ॥

जीव जब तक अपने शुद्ध स्वरूपको नहीं जानता, तब तक आत्म-ज्ञानसे रहित होकर “मैं मर गया हूँ, मैंने मार दिया है” इस प्रकारसे आत्मापर विनाश्य-विनाशक भावकी कल्पना कर लेता है। देहादिमें आत्माभिमान रखनेवाले मूर्ख लोग आत्माके बाध्य-बाधक भाव अर्थात् यह वध्य है, यह घातक है—इस प्रकार कर्म-कर्तृत्व भावको प्राप्तकर उसके फल सुख-दुःखादिको प्राप्त करते हैं॥ २२ ॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः।

इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोत्राग्रहीत्॥ २३ ॥

सत्य है, सत्य है, मैं महादुष्ट तथा पापी हूँ। मैंने जान-बूझकर अति घोर पाप किया है। आप महानुभाव हैं, दीनोंके प्रति दयावान हैं। आप मेरी दुष्टताको क्षमा कीजिये। यह कहकर कंसने अपनी बहन एवं बहनोईके चरण पकड़ लिये। उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे॥ २३ ॥

मोचयामास निगडाद् विश्रब्धः कन्यकागिरा।

देवकीं वसुदेवञ्च दर्शयन्नात्मसौहृदम्॥ २४ ॥

तदनन्तर योगमायाके वचनोंपर विश्वासकर कंसने आत्मीयता दिखाते हुए देवकी एवं वसुदेवको लोहेकी बेड़ियोंसे मुक्त कर दिया॥ २४ ॥

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च देवकी।

व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह॥ २५ ॥

देवकीने जब भाईको इतना अनुताप करते देखा, तो उसके प्रति क्रोधका परित्याग कर दिया। सन्तानके लिए जिस शोकसे

वे सन्तप्त हो रही थीं, उस शोकका भी त्याग करते हुए उन्होंने कंसके अपराधोंको क्षमा कर दिया। तत्पश्चात् वसुदेव हँसते हुए कंससे कहने लगे ॥ २५ ॥

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम्।

अज्ञानप्रभवाहंभीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥

हे महाभाग! आपने जो कहा, वह वस्तुतः सत्य ही है, क्योंकि जीव आत्मविषयक अज्ञानके कारण ही शरीर आदिको 'मैं' मान बैठते हैं और इसी अहं बुद्धिसे अपने-परायेका भेद कर लेते हैं ॥ २६ ॥

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ।

मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७ ॥

ये भेद-बुद्धिपरायण जीव शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह एवं मदमें इतने डूबे रहते हैं कि वस्तुओंके वास्तविक विनाशकर्ता परमेश्वर ही हैं—यह नहीं जान पाते। उनकी समझमें मनुष्य, गौ, अश्व इत्यादिके विनाशके कारण राजा, व्याघ्र, रोगादि ही हैं। कोई अहङ्कारविमूढ़ तो स्वयंको कर्ता मानकर ईश्वरका कर्तृत्व देख ही नहीं पाता, जबकि वास्तवमें ईश्वर ही प्रेरक होकर एक भावसे दूसरे भावका अर्थात् एक वस्तुसे दूसरी वस्तुका नाश करा रहे हैं ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच—

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः।

देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद् गृहम् ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामी कहते हैं—परीक्षित! देवकी एवं वसुदेवने प्रसन्न होकर इस प्रकार निष्कपट वचनोंसे कंसको सान्त्वना दी और कंस उनकी अनुमति लेकर अपने भवनमें चला गया ॥ २८ ॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः।

तेभ्य आचष्ट तत् सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥

अनन्तर जब रात्रि बीत गयी, तब कंसने मन्त्रियोंको बुलाया और 'तेरा संहारक किसी अन्य स्थानपर जन्म ले चुका है' इत्यादि योगमायाने जो कुछ कहा था, वह सब उन मन्त्रियोंको बतलाने लगा ॥ २९ ॥

आकर्ण्य भर्तृर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।

देवान् प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥

कंसके असुर मन्त्री स्वभावतः देवताओंसे द्वेष करते थे। दृष्ट विषयोंमें तो वे निपुण थे, किन्तु यथार्थ विषयोंमें अनिपुण थे। स्वामी कंसकी बातें सुनकर वे देवताओंसे और भी अधिक चिढ़ गये और कहने लगे— ॥ ३० ॥

एवं चेत् तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ।

अनिर्दृशात्रिर्दृशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥

हे भोजराज! यदि वस्तुतः ऐसा ही है, तो हम आज ही नगर, ग्राम एवं जनपदमें जन्मे हुए, चाहे वे दस दिनोंसे कम हों या अधिक, इस वयके सारे शिशुओंको मार डालेंगे ॥ ३१ ॥

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ।

नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥

देवता लोग तो युद्ध-भीरु, डरपोक हैं, वे सर्वदा आपके धनुषकी टंकारसे बेचैन रहते हैं। अतः वे युद्धके लिए प्रयास भी करें, तो आपका क्या अनिष्ट कर लेंगे? ॥ ३२ ॥

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ।

जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥

युद्ध-भूमिमें जैसे ही आप देवताओंपर बाण चलाते हैं, उनमेंसे कुछ तो आपके बाणोंकी वर्षासे घायल हो जाते हैं और जान बचाते हुए समर-भूमिको छोड़कर चारों ओर भागने लगते हैं ॥ ३३ ॥

केचित् प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः।

मुक्तकच्छशिखाः केचिद्धीताः स्म इति वादिनः ॥ ३४ ॥

कुछ देवता तो इतने दुर्बल हैं कि भयभीत होकर अस्त्र-शस्त्र त्यागकर आपके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं, तो कुछ अन्य देवता इतने डरे हुए हैं कि अपनी चोटीके बाल तथा कच्छ खोलकर आपकी शरणमें आकर कहते हैं, 'हम आपसे भयभीत हैं। हमारी रक्षा करें ॥' ३४ ॥

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान् विरथान् भयसंवृतान्।

हंस्यन्यासक्तविमुखान् भग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥

हे स्वामी! आप उन देवताओंका वध नहीं करते, जिनके पास रथ नहीं होता, जो अस्त्र-शस्त्र भूल आते हैं, जो आपसे डरते हैं, विषयासक्तिके कारण युद्धसे विमुख रहते हैं, जिनका धनुष टूट जाता है, जो युद्धसे विराम ले लेते हैं। अतः अब यह धर्मका समय नहीं है, आप धार्मिकताको छोड़ दें ॥ ३५ ॥

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकल्थनैः।

रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा।

किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ ३६ ॥

देवता युद्धक्षेत्रमें तो नहीं, हाँ युद्धक्षेत्रसे अन्यत्र (जहाँ कोई लड़ाई-झगड़ा न हो) निर्भय स्थानपर बड़ी-बड़ी बातें करते हुए अपनी वीरताका प्रदर्शन करते हैं; अपनी स्त्रियोंके समीप ही अपने शौर्य-बलको प्रकट करते हैं, ऐसे देवताओंसे हमें क्या भय है? विष्णु अथवा शम्भुका पराक्रम हमारे समान है ही नहीं, हमें उनसे डरनेका कोई कारण नहीं है। आपके भयसे विष्णु तो सर्वदा लोगोंके हृदयमें एकान्तमें वास करता है, उसमें बल होता तो हमारे समक्ष आकर युद्ध न करता? शम्भु आपसे डरकर इलावृत नामक वनमें रहता है। (जहाँ पुरुष यदि प्रवेश करें, तो वे स्त्री बन जाते हैं।) इन्द्र तो नितान्त शक्तिहीन है और ब्रह्मा सदैव तपस्यामें लीन रहता है। अतः जो आपसे डरकर

इधर-उधर छिपे हुए हैं, उनसे हमें क्या डर हो सकता है ? ॥ ३६ ॥

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे।

ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥

तथापि देवताओंकी उपेक्षा करना उचित नहीं है, यह हमारा परामर्श है, क्योंकि अन्ततः वे हमारे शत्रु ही हैं। नीति-शास्त्रकी रीति है कि क्षुद्र शत्रुको भी छोटा न समझे। अतः उन्हें जड़से उखाड़नेके लिए हम जैसे विश्वासपात्र सेवकोंको नियुक्त कीजिये ॥ ३७ ॥

यथामयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-

र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम्।

यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा

रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥

जब मनुष्यके शरीरमें कोई रोग हो जाता है और उसकी चिकित्सा नहीं की जाती—उसकी उपेक्षा कर दी जाती है, तब वह रोग अपनी जड़ें जमा लेता है और शरीरमें पूरी तरह समा जाता है, इस प्रकार वह रोग असाध्य हो जाता है अथवा जिस प्रकार प्रथम अवस्थामें इन्द्रियोंकी उपेक्षा कर दी जाय, तब उनका दमन असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार यदि शत्रुको दुर्बल जानकर उसकी उपेक्षा कर दी जाय, तब वह अधिक शक्ति सञ्चय करके प्रबल हो जाता है और फिर उसे पराजित करना असाध्य हो जाता है ॥ ३८ ॥

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः।

तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥

विष्णु ही देवताओंका मूल है। जहाँ अनादि-सिद्ध, वेद-प्रसिद्ध सनातन धर्म होता है, वह वहीं निवास करता है। वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या एवं दक्षिणासे युक्त यज्ञादि उस (सनातन) धर्मके मूलस्वरूप हैं ॥ ३९ ॥

तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।

तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥

हे राजन्! इसलिए हमलोग सब प्रकारसे वेदज्ञ ब्राह्मण, याज्ञिक तपस्वी एवं यज्ञके लिए घी आदि, हवि-प्रदायिनी गायोंका सम्पूर्णरूपसे विनाश कर डालेंगे ॥ ४० ॥

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।

श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, सहिष्णुता एवं यज्ञ—ये सब विष्णुके शरीर हैं ॥ ४१ ॥

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विङ्गुहाशयः ।

तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचर्तुर्मुखाः ।

अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥

सबकी हृदय-गुफामें छिपकर रहनेवाला वह विष्णु ही दैत्योंका प्रधान शत्रु है एवं वही समस्त देवताओंका प्रधान नायक है। शिव एवं ब्रह्माके साथ सभी देवता उसी विष्णुका आश्रय करके रहते हैं। उस विष्णुके मूल हैं—ब्रह्मवादी ऋषि-मुनि। इन ऋषि-मुनियोंको (तपस्वियोंको) मार डालना ही उस विष्णुके वधका उपाय है। इनके मर जानेपर यज्ञादि नहीं होंगे और यज्ञोंके न रहनेसे विष्णुकी भी सत्ता नहीं रहेगी ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह संमन्त्र्य दुर्मतिः ।

ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—काल-पाशमें बँधे हुए दुर्मति दैत्य कंसने दुष्ट मन्त्रियोंके साथ इस प्रकार परामर्श करके स्थिर किया कि याज्ञिक ब्राह्मणोंका वध ही उसके मङ्गल-साधनका उपाय है ॥ ४३ ॥

सन्दिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ।

कामरूपधरान् दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥

इसके बाद कंसने पर-पीड़न-प्रिय (जिन्हें दूसरोंको दुःख देना अच्छा लगता है) एवं इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ दानवोंको सर्वत्र सज्जनोंका उत्पीड़न एवं वध करनेका आदेश दिया और अपने महलमें प्रवेश कर गया ॥ ४४ ॥

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ।

सतां विद्वेषमाचेरुरादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥

परीक्षित्! वे असुर तमोगुणी थे, इसलिए उन्हें हित-अहितका कोई विवेक न था। रजः-प्रकृति कंसके अनुचरोंने साधुओंपर अत्याचार आरम्भ कर दिया। हे राजन्! जो सत्पुरुषोंसे विद्वेष करते हैं, उनकी मृत्यु उनके सिरपर सवार रहती है ॥ ४५ ॥

आयुः श्रियं यशोधर्मं लोकानाशिष एव च ।

हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे राजन्! साधुओंको कष्ट देनेसे व्यक्तिकी आयु, सौभाग्य, यश, धर्म, लोक-परलोक, समस्त मङ्गल एवं सारे शुभ विषय विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चतुर्थ अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

पञ्चमोऽध्यायः

गोकुलमें भगवान् श्रीकृष्णका जन्मोत्सव एवं मथुरामें
वसुदेवके साथ मिलनोत्सव

श्रीशुक उवाच—

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।

आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः ॥ १ ॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।

कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—महामना नन्दरायका हृदय बड़ा उदार था। पुत्रका जन्म होनेपर वे आनन्द-सागरमें डूब गये। उन्होंने स्नान किया एवं पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा अलङ्कार धारण कर लिये। वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे स्वस्तिवाचन एवं पुत्रका जातकर्म अदि संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करवाये। देवताओं एवं पितरोंका भी अर्चन करवाया ॥ १-२ ॥

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते।

तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥

नन्दमहाराजने ब्राह्मणोंको वस्त्र-रत्नादि आभूषणोंसे विभूषित बीस लाख गायें एवं रत्नों तथा सुनहरे (सोनेके तारोंसे जड़े हुए) वस्त्रोंसे आवृत तिलके सात पर्वत प्रदान किये ॥ ३ ॥

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया।

शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥ ४ ॥

(आवश्यक विविध दानादि एवं जातकर्म संस्कार द्वारा बालककी गर्भ-शुद्धि होती है—इन्हीं शोधक तत्त्वोंको बतलाते हैं)—हे राजन्! कालके द्वारा भूमि, स्नानसे देह, प्रक्षालनसे वस्त्र, संस्कारोंसे गर्भ, शौचसे (स्वच्छतासे) अपवित्र वस्तुओंसे लिप्त

द्रव्यादि, तपस्यासे इन्द्रियादि, यज्ञसे ब्राह्मण, दानसे धनादि द्रव्य, सन्तोषसे मन एवं आत्मविद्यासे (परमात्माके स्वरूप-ज्ञानसे) अथवा भगवत्-भक्तिसे जीवात्माकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवन्दिनः ।

गायकाश्च जगुर्नदुर्भेयो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥

उस समय ब्राह्मणगण स्वस्तिवाचन करने लगे (मङ्गलमय आशीर्वाद वचन कहने लगे), सूत (पौराणिक आख्यान कहनेवाले), मागध (राजाओंके वंशका वर्णन करनेवाले) और बन्दीजन (समयानुसार प्रस्तावित विषयका वर्णन करनेवाले चारण) स्तुति करने लगे। गायक मङ्गल-गीत गाने लगे। भेरी एवं दुन्दुभियाँ बार-बार बजने लगीं ॥ ५ ॥

व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।

चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥

व्रजपुरमें स्थित सभी घरोंके द्वार, आङ्गन, मध्यभाग एवं भीतरी भागोंको झाड़-बुहारकर सुमार्जित एवं चन्दन, पुष्पादिके रस (इत्र) द्वारा छिड़काव करके सुसिक्त कर दिया गया। सम्पूर्ण व्रजमण्डलको यत्र-तत्र-सर्वत्र चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाओं, पुष्प-मालाओं, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों एवं नव पल्लवोंकी विविध तोरणों (वन्दनवारों) से सजा दिया गया ॥ ६ ॥

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ।

विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥ ७ ॥

गाय, बैल एवं बछड़ेके अङ्गोंमें हल्दी और तेलका छाप लगाया गया तथा उन्हें गैरिकादि विचित्र रङ्गीन धातुओं, मयूर-पुच्छों, फूलोंके हारों, आकर्षक वस्त्रों एवं स्वर्णाभूषणोंसे सजाया गया ॥ ७ ॥

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।

गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

हे राजन्! सभी गोप बहुमूल्य वसन, आभूषण, अङ्गरखे (कञ्चुक), उत्तरीयवस्त्रों एवं पगड़ियोंसे सुशोभित होकर विविध प्रकारके उपहारकी सामग्रियाँ हाथोंमें ले-लेकर नन्द बाबाके घर पधारे ॥ ८ ॥

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम्।

आत्मानं भूषयाञ्चक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥ ९ ॥

गोपियाँ भी यशोदाके पुत्र-जन्मका समाचार सुनकर अति आनन्दित हो गयीं। उन्होंने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, अलङ्कार एवं अञ्जन इत्यादिके द्वारा अपना शृङ्गार किया ॥ ९ ॥

नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।

बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥

उनके मुखपर लगा हुआ नवीन कुङ्कुम ऐसा प्रतीत होता था, मानो कमलपर केसर सुशोभित हो रही हो। विशाल नितम्बवाली इन गोपियोंने अपने-अपने हाथोंमें स्वर्ण-रससे रञ्जित वस्त्रोंसे ढके हुए सोनेसे निर्मित पात्रोंमें रत्नोंके हार, बहुमूल्य वसन, नारियल आदि फल, तण्डुल, दुर्वा, चन्दन एवं पुष्पमालादि धारण कर रखे थे। परम हर्ष और उत्सुकताके कारण वे द्रुत गतिसे नन्द-गृहकी ओर चली जा रही थीं, जिससे उनके कुच-युगल (स्तन) हिल रहे थे ॥ १० ॥

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-

श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।

नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-

व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥

जिस समय गोपियाँ नन्दालयकी ओर जा रही थीं, उस समय उनके कानोंमें अत्युज्ज्वल मणियोंके कुण्डल झिलमिला रहे थे। कण्ठमें स्वर्ण हार एवं दोनों हाथोंमें स्वर्ण-खचित मणि-जड़ित (जड़ाऊ) कङ्कन सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने रङ्ग-बिरङ्गे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहन रखे थे। मार्गमें उनकी चोटियोंमें बँधी

पुष्पमालाओंसे पुष्प झड़ रहे थे, मानो वे पथमें ही पुष्प-वर्षण कर रही हों। दोलायमान कुण्डल, हार एवं पयोधरोंसे शोभित होकर वे मार्ग पर चल रही थीं॥ ११॥

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके।

हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः॥ १२॥

नन्द-गृह पहुँचकर सभी गोपियाँ सीधे सूतिका-गृहमें पहुँचीं और नवजात बालकको आशीर्वाद प्रदान करने लगीं—‘हे लाल! चिरञ्जीव रहो, चिरकाल तक राजा बनकर प्रजाका पालन करो’, ‘भगवान् इसकी रक्षा करें’ इसके बाद वहाँसे बाहर आकर हल्दी, तेल एवं दहीसे मिश्रित जलसे एक-दूसरेपर छिड़काव करने लगीं और उच्च स्वरसे मङ्गल गीत गाने लगीं॥ १२॥

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।

कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते॥ १३॥

विश्वेश्वर, अनन्त श्रीकृष्णके नन्दगृहमें शुभागमनके महोत्सवपर तीनों भुवनोंमें अद्भुत वाद्य बजने लगे। (अखण्ड ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य आदि गुणोंसे युक्त श्रीकृष्णका जन्मोत्सव धूमधामसे मनाया गया। अनन्तका स्वागत अनन्त वाद्य यन्त्रोंसे हुआ)॥ १३॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः।

आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः॥ १४॥

सभी गोप आनन्दमें ऐसे मतवाले हो गये कि दही, दूध, घी एवं जलादि द्रव्य या तो एक-दूसरेपर उलीचने लगे या आनन्दपूर्वक इधर-उधर फेंकने लगे। वे मक्खनको भी एक दूसरेके मुख एवं अङ्गोंमें मलने लगे और नन्द-आङ्गनकी फिसलनभरी कीचड़में कभी छिपने लगे और कभी एक-दूसरेको बलपूर्वक गिराने लगे। इस प्रकार व्रजवासी अनूठी रीतिसे नन्दरायजीके पुत्रका जन्मोत्सव मनाने लगे॥ १४॥

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम्।

सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः॥ १५॥

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत्।

विष्णोराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६ ॥

श्रीनन्दमहाराज महा-उदारमना थे। उन्होंने गोप-गोपियोंके लिए एवं नृत्य-गीत-वाद्य-शस्त्र-शास्त्रादि अन्यान्य विद्याओंसे जीविकाका निर्वाह करनेवाले सूत, मागध, बन्दीजन आदिको वस्त्र, आभूषण एवं गौएँ प्रदान कीं। समागत लोगोंको विद्या, वयस एवं गौरवादिके अनुसार माला, चन्दन, ताम्बूलादि दिये और उत्साहप्रद वचन भी कहे। जिसने जो माँगा, वदान्यवर नन्दरायने उसे वही देकर उसका यथोचित सत्कार किया। विष्णुकी आराधना एवं उनके लिए दानादि करनेसे विष्णु सन्तुष्ट होते हैं—अतः अपने पुत्रके समस्त प्रकारके मङ्गलके उद्देश्यसे नन्दजीने दानादिके द्वारा भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट किया। उन्होंने नवग्रह एवं दिक्पालोंका भी अर्चन किया ॥ १५-१६ ॥

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता।

व्यचरद्विव्यवासस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥

श्रीनन्दराजने महाभाग्यवती (कृष्णकी वात्सल्य-लीलाका दर्शन प्राप्त होनेसे वे महाभागा कही गयी हैं) रोहिणीदेवीका अभिनन्दन करते हुए कहा, 'आपके शुभागमनसे ही यह पुत्र हुआ है।' यह कहकर उन्होंने उन्हें भी दिव्य वसन और कण्ठहार आदि आभूषणोंसे विभूषित किया। रोहिणीजी वस्त्राभरणोंसे सुसज्जित होकर वहाँ आयी हुई स्त्रियोंके सम्मानके लिए इधर-उधर विचरण कर रही थीं। इस समय उन्हें न तो पतिके बन्धनके कष्टका स्मरण रहा और न ही अपने विरह-दुःखका ॥ १७ ॥

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।

हरेर्निवासात्मगुणै

रमाक्रीडमभूत्प ॥ १८ ॥

हे राजन्! उसी दिनसे (श्रीकृष्णके प्रकटकालसे) नन्दव्रज सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियोंसे अत्यन्त समृद्ध हो गया। भगवान्के नित्य निवास और अपने स्वाभाविक गुणोंके कारण वह लक्ष्मीजीका

विहार-स्थल (समस्त सम्पत्तियोंका क्रीड़ा-स्थल) बन गया। ('रमाक्रीडम्' पद श्रीकृष्णके आविर्भावके पश्चात् सर्वलक्ष्मीमयी श्रीराधिकाके आविर्भावको सूचित करता है। नन्दबाबाके भर-भर हाथ लुटाने पर भी वहाँ कोई कमी नहीं रह सकती थी।) ॥ १८ ॥

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः।

नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरुद्वह ॥ १९ ॥

हे कुरुकुलरक्षक! नन्दरायको चिर-प्रतीक्षित पुत्र-महानिधि प्राप्त हुई थी। शुभ कार्यमें बहुत विघ्न आते हैं, इसलिए उन्होंने देवताओं, पितरों, दिक्पालों, ग्रहों—सभीको प्रसन्न किया था। अब देशाध्यक्ष दुष्ट राजा कंसको स्वर्णमुद्रा, रत्न एवं वस्त्रादि देकर प्रसन्न करना चाहिये। इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये। यह सोचकर वार्षिक कर प्रदान करनेके छलसे नन्दमहाराज मथुरा चले गये। गोकुलकी रक्षाके लिए उन्होंने बलिष्ठ गोपोंको नियुक्त कर रखा था ॥ १९ ॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम्।

ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥

परम मित्र एवं भाई नन्दमहाराज मथुरामें आये हैं और उन्होंने कंसको कर प्रदान कर दिया है—जब वसुदेवजीको यह ज्ञात हुआ, तो वे उस स्थानपर गये, जहाँ नन्दबाबा ठहरे हुए थे ॥ २० ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम्।

प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥

अचानक आये हुए प्रियतम वसुदेवको देखकर नन्दबाबा अत्यन्त आनन्दित और प्रेमविभोर हो गये, मानो मूर्च्छित देहमें प्राणोंका सञ्चार हो गया हो। वे आसनसे तुरन्त उठ खड़े हुए और उन्होंने वसुदेवको दोनों भुजाओंमें भरकर अपने हृदयसे लगा लिया ॥ २१ ॥

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः।

प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ॥ २२ ॥

हे महाराज परीक्षित्! वसुदेव नन्दबाबाके द्वारा पूजित एवं समादृत होकर आसन पर बैठ गये। अपने दोनों पुत्रोंके प्रति स्नेह-आसक्तिके कारण वसुदेवजीका चित्त उनमें ही लगा हुआ था। वे नन्दबाबासे कुशल-मङ्गल पूछते हुए इस प्रकार कहने लगे— ॥ २२ ॥

दिष्ट्या भातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते।

प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥ २३ ॥

वसुदेवने कहा—हे भाई! इतने वर्षों तक सन्तानहीन होनेके कारण तुमने परिणत वयस (ढलती उम्र) में सन्तानकी आशा भी छोड़ दी थी, परन्तु यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई है ॥ २३ ॥

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः।

उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥

बड़े भाग्यसे आज तुम्हें पाकर मैंने मानो पुनर्जन्म प्राप्त किया है, क्योंकि इस संसार-चक्रमें अपने प्रियजनोंका दर्शन अति दुर्लभ है। (अथवा इस संसार-चक्रमें रहते हुए भी जैसे पुत्ररूपमें तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है, इसीको मैं परम सौभाग्य मानता हूँ। इतने दिनों तक तुम्हारा दर्शन प्राप्त न होनेके कारण मैं मर-सा रहा था।) ॥ २४ ॥

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम्।

ओधेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥

जैसे नदीके प्रबल प्रवाहमें तरङ्गोंसे परिचालित तिनके, लकड़ी आदिका एक स्थानपर मिलन दुर्लभ है, वैसे ही भाग्यकी विचित्रतासे सगे-सम्बन्धी और प्रेमियोंका भी एक स्थानपर रहना सम्भव नहीं, जबकि वह सबको प्रिय लगता है। वस्तुतः सबका प्रारब्ध अलग-अलग होता है ॥ २५ ॥

कच्चित् पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम्।

बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः॥ २६ ॥

आजकल तुम बन्धु-बान्धवों एवं स्वजनोंके साथ मिलकर जिस महावनमें (बृहद्वनमें) रह रहे हो, वह पशुओंके लिए हितकर तो है न? वहाँ कोई रोग तो नहीं है? वह स्थान प्रचुर जल, घास, लता-पत्र आदिसे परिपूर्ण है न?॥ २६ ॥

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे।

तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः॥ २७ ॥

भाई! मेरा पुत्र (बलदेव) अपनी माँ (रोहिणी) के साथ तुम्हारे व्रजमें रहता है। यशोदादेवी एवं तुम अपने पुत्रके समान ही उसका लालन-पालन करते हो। यह तो तुम दोनोंको ही माता-पिता मानता होगा। वह तुम्हारे व्रजपुरमें अपनी माँके साथ सकुशल रह रहा है न?॥ २७ ॥

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः।

न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते॥ २८ ॥

शास्त्रोंमें धर्म, अर्थ और काम मनुष्योंके लिए इसलिए बतलाये गये हैं, जिनसे स्त्री, पुत्र और स्वजनोंको सुख मिले। सुहृदोंको कष्ट प्राप्त हो—ऐसे धर्म, अर्थ और काम हितकारी अथवा सुखदायक नहीं हो सकते। (स्त्री-पुत्रके विच्छेदसे मैं पुत्रादि-पालनका सुख प्राप्त नहीं कर सकता—अतः मेरा गृहस्थाश्रम किसी कामका नहीं है)॥ २८ ॥

श्रीनन्द उवाच—

अहो ते देवकी पुत्राः कंसेन बहवो हताः।

एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता॥ २९ ॥

श्रीनन्दमहाराजने कहा—तुम जिस व्रजकी कुशल-क्षेम पूछ रहे हो, मैं इस विषयमें क्या कहूँ? तुम्हारे दुःखसे मैं महादुःखी हो रहा हूँ। हाय! कंसने देवकीसे उत्पन्न तुम्हारे बहुत-से पुत्रोंको मार

डाला। मात्र एक कन्या बची थी, वह भी आकाशमें अदृश्य हो गयी। (यह सुनकर वसुदेवजी बड़े निःशङ्क और आनन्दित हो गये कि नन्दजी कन्याके विषयमें कुछ भी नहीं जानते)॥ २९॥

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः।

अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति॥ ३०॥

संसारमें जीव निश्चय ही अदृष्ट (भाग्य) पर निर्भर है। पुत्रादिका सुख जब भाग्यमें लिखा नहीं होता, तो पुत्रादि रहते नहीं। भाग्य परम पदार्थ है। यद्यपि पुत्रादिका वियोग होता है, तथापि भाग्यवश उनके साथ पुनर्मिलन भी होता है। जो यह जान लेता है कि सुख-दुःखका कारण भाग्य ही है, वह उन सुख-दुःखसे मोहित नहीं होता॥ ३०॥

श्रीवसुदेव उवाच—

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः।

नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले॥ ३१॥

श्रीवसुदेवने कहा—भाई! तुमने राजा कंसको वार्षिक कर प्रदान कर दिया है एवं मुझसे भी तुम्हारा मिलना हो गया है। अब अधिक समय तक तुम्हारा इस स्थानपर रहना उचित नहीं है, क्योंकि गोकुलमें शत्रुओंके द्वारा अनेक उत्पातोंकी सम्भावना है॥ ३१॥

श्रीशुक उवाच—

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः।

अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम्॥ ३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे नन्दवसुदेवसङ्गमो नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥

श्रीशुकदेवने कहा—वसुदेवके यह कहनेपर नन्दबाबा आदि गोपोंने उनसे अनुमति ली तथा बैलोंसे जोते हुए छकड़ोंपर सवार होकर गोकुलकी ओर चल दिये॥ ३२॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पञ्चम अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

षष्ठोऽध्यायः

व्रज लौटते समय मृत राक्षसी पूतनाको देखकर
नन्दका विस्मित रह जाना

श्रीशुक उवाच—

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन्।

हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्! नन्दबाबा रास्तेमें सोचने लगे कि वसुदेवजीके वचन कभी भी मिथ्या नहीं हो सकते। सम्भवतः गोकुलमें कोई उत्पात हुआ हो, ऐसी आशङ्कासे वे मन-ही-मन अपने मनोहर पुत्र श्रीकृष्णके रक्षणके लिए सर्वभयनाशक अपने इष्टदेव श्रीहरिके शरणागत हो गये ॥ १ ॥

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी।

शिशूंश्चचार निघ्नन्ती-पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥

इधर भीषण स्वभाववाली बालघातिनी (बच्चोंको मारनेवाली) पूतना नामकी राक्षसी कंस द्वारा नियुक्त होकर नगर, जनपद (ग्राम), गोष्ठ (अहीरोंकी बस्तियों) आदि स्थानोंपर शिशुओंकी हत्या करती हुई भ्रमण कर रही थी ॥ २ ॥

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु।

कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥

(यह सुनते ही राजा परीक्षित् श्रीकृष्णके लिए चिन्तित हो गये। तब श्रीशुकदेव कहने लगे—) हे राजन्! जिस स्थलपर मानव अपने इस लोक और परलोकके कार्योंमें सात्वतपति भक्तवत्सल श्रीकृष्णकी राक्षस-विनाशक लीलाओं और नामोंका श्रवण-कीर्तन आदि नहीं करते, उसी स्थलपर राक्षस-राक्षसियोंका प्रभाव बढ़ जाता है, किन्तु जिस स्थानपर श्रीकृष्णका प्रीतिपूर्वक

स्मरण रहता है, वहाँ श्रीकृष्ण स्वयं विद्यमान रहते हैं। उस स्थानपर भयकी आशङ्का किस प्रकार हो सकती है? (सर्वमङ्गल-निधान श्रीगोविन्द स्वयं नन्दालयमें विराजमान हैं।) ॥ ३ ॥

सा खेचर्येकदोत्पत्य पूतना नन्दगोकुलम्।

योषित्वा माययात्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥ ४ ॥

पूतना स्वेच्छाविहारिणी, आकाशचारिणी और कामरूपधारिणी (इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली) थी। कृष्णजन्मसे छठवें दिन रात्रिकालमें उस राक्षसीने मायासे सुन्दरी नारीका वेश धारण किया और आकाश-मार्गसे विचरण करते हुए नन्द-गोकुलमें प्रवेश कर गयी ॥ ४ ॥

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां

बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।

सुवाससं कल्पितकर्णभूषण-

त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५ ॥

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै-

र्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम्।

अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं

गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६ ॥

उसकी चोटीमें मल्लिकाके पुष्प गुँथे हुए थे, विशाल नितम्ब एवं ऊँचे-ऊँचे स्तनयुगलके भारसे उसकी कमर पतली हो गयी थी, उसके वस्त्र अतिशय सुन्दर थे। कुण्डलोंकी चमक और घुँघराले केशोंकी दमकसे उसका मुखमण्डल अतिशय शोभायमान हो रहा था। वह अपनी मधुर मुसकान और चञ्चल चितवनसे व्रजवासियोंके मनोको आकर्षित कर रही थी। सभी सोच रहे थे—अहो! कैसा रूप है? कैसा अनुराग है? गोपियाँ उस रूपवती रमणीको देखकर यह विचार कर रही थीं कि अपने हाथमें कमल लिये साक्षात् लक्ष्मीदेवी अपने पति श्रीकृष्णके दर्शनके लिए ही आयी हैं ॥ ५-६ ॥

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्
 यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम्।
 बालं प्रतिच्छन्नजोरुतेजसं
 ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥

नन्दगोकुलमें वह बालघातिनी पूतना (हत्या करनेके लिए) शिशुओंको इधर-उधर ढूँढ़ती हुई अनायास ही अर्थात् भगवत्-लीलाशक्तिकी प्रेरणासे अन्यत्र (कहीं दूसरी जगह) न जाकर नन्दबाबाके महलमें प्रवेश कर गयी। वहाँ उसने शय्यापर भस्मसे आच्छादित अग्निके समान अपने भगवत्-तेजको छिपाये हुए दुष्ट-विनाशक-बालकरूपी-श्रीकृष्णको एक सामान्य बालकके रूपमें देखा ॥ ७ ॥

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं
 चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः।
 अनन्तमारोपयदङ्गमन्तकं
 यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्थावर और जङ्गम सभीकी आत्मा हैं। उन्होंने जान लिया कि यह पूतना 'शिशु-विनाशक ग्रहरूपिणी' है। तब (उसका विनाश करनेकी इच्छासे भीरुके समान) उन्होंने अपने दोनों नेत्रोंको मूँद लिया। जैसे सर्पको रज्जु समझकर कोई मूर्ख उसे उठा लेता है, उसी प्रकार पूतनाने अपने कालस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको अपनी गोदमें उठा लिया।

[श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने भगवान् द्वारा नेत्र मूँदनेके पाँच कारण बतलाये हैं—(१) बाल-माधुर्यके कारण अपरिचित पूतनाको देखनेसे भय-प्रदर्शन। (२) अमङ्गलकारी दुष्टका अदर्शन। (३) अपनी दृष्टिके सम्मुख कोई कपट-मूर्ति न रह पानेके कारण। (४) मातृवेशधारिणी स्त्रीका वध करनेमें लज्जाके कारण। (५) पूतनाकी मरणकालीन यन्त्रणाको देखनेकी अनिच्छाके कारण] ॥ ८ ॥

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां
 वीक्ष्यान्तरा कोषपरिच्छदासिवत् ।
 वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते
 निरीक्ष्यमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥

उस राक्षसी (पूतना) का चित्त सुकोमल मखमली म्यानमें रखी तीक्ष्ण तलवारके समान कुटिल था। बाहरसे वह अपनी मधुर चेष्टाओं एवं वात्सल्यभावसे माताके समान प्रतीत हो रही थी। यशोदा एवं रोहिणी देवी उसके स्नेह-प्राकट्य तथा सौन्दर्य-प्रभासे इतनी प्रभावित हो गयीं कि उसे एकटक निहारती रहीं। वे मन-ही-मन सोचती रहीं कि क्या यह अम्बिका देवी है अथवा इन्द्राणी है अथवा मूर्तिमती त्रैलोक्य-सम्पत्ति है? यही कारण था कि घरमें आयी उस सुन्दरीको किसीने रोका-टोका नहीं ॥ ९ ॥

तस्मिन् स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं
 घोराङ्गमादाय शिशोर्ददावथ ।
 गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत्-
 प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥

उस भयङ्कर राक्षसी पूतनाने उसी स्थानपर बालक श्रीकृष्णको गोदमें झटसे उठा लिया और भयङ्कर एवं दुर्जर (जो किसी भी प्रकारसे पच न सके) विष लगे हुए स्तनको उसके मुखमें दे दिया। भगवान् श्रीकृष्णने क्रोधपूर्वक अपने दोनों हाथोंसे स्तनोंको जोरसे दबाया तथा उनकी दुष्ट-संहारिका शक्ति उस राक्षसीके स्तन्य-पानके साथ-साथ उसके अपवित्र प्राणोंका भी पान करने लगी ॥ १० ॥

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी
 निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।
 विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
 प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥

उस समय उस राक्षसीके प्राणोंके आश्रय समस्त मार्मिक स्थानोंपर तीव्र पीड़ा होने लगी। असह्य पीड़ाके कारण वह पुकारने लगी—‘अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर!’ इस प्रकार कहते हुए वह अपने हाथ-पैर बार-बार इधर-उधर पटक-पटककर रोने लगी। उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया और दोनों नेत्र विस्फारित हो गये (अर्थात् आँखें फट गयीं) ॥ ११ ॥

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा
साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा।
रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः
पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया ॥ १२ ॥

उस पूतना राक्षसीके चिल्लानेका वेग अति भयङ्कर एवं गम्भीर था। उसकी भयङ्कर ध्वनिके प्रभावसे पर्वतोंके साथ पृथ्वी और ग्रह-नक्षत्रोंके साथ आकाश विचलित होने लगे। रसातलादि सप्तपाताल, पृथ्वी और सारी दिशाएँ गूँज उठीं। बहुत-से लोग वज्रपातकी आशङ्कासे पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ १२ ॥

निशाचरीत्यं व्यथितस्तना व्यसु-
र्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि।
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥

हे राजन्! इस प्रकार उस निशाचरी पूतनाके स्तनोंमें इतनी पीड़ा हुई कि वह अपने मायाकृत सुन्दर रूपको रख न सकी। उसका भयङ्कर राक्षसी रूप प्रकट हो गया। उसके शरीरसे प्राण निकल गये, मुख खुला रह गया, बाल बिखर गये और हाथ-पैर फैल गये। इन्द्रके वज्रसे आहत हुए वृत्रासुरकी भाँति वह निष्प्राण होकर बाहर गोष्ठमें जाकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ॥ १४ ॥

हे महाराज ! उस पूतनाके शरीरने (भूमिपर) गिरते-गिरते छह कोसकी सीमा तकके भूभागमें स्थित (कंसके उद्यानमें स्थित कंसके द्वारा भक्षण किये जानेवाले फलोंसे युक्त) वृक्षोंको चूर्ण विचूर्ण कर डाला। उसका वह शरीर अत्यन्त विशाल एवं आश्चर्यजनक था। (गायोंके उपभोगकी वस्तु होनेके कारण तृणादिको कोई क्षति नहीं हुई थी—उनकी स्थिति यथावत् थी।) ॥ १४ ॥

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम्।
 गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्द्धजम् ॥ १५ ॥
 अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम्।
 बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयहृदोदरम् ॥ १६ ॥
 सन्तत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम्।
 पूर्वन्तु तन्निःस्वनित-भिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥

उसका शरीर बड़ा ही भयानक था। मुख हलके दण्डके समान तीक्ष्ण भयङ्कर दाढ़ोंसे युक्त था, नासिकाके छिद्र पर्वतकी गुफाके समान गहरे थे, दोनों स्तन पर्वतके शिखरोंसे गिरे हुए शिलाखण्डोंके समान विशाल थे, ताम्र (लाल) वर्णके बाल बिखरे पड़े थे। उसकी आँखें अन्धे कुँएके समान गहरी एवं नितम्ब नदीके तटके समान भीषण थे। दोनों भुजाएँ, दोनों जाँघें और दोनों पैर नदीके बाँधोंके समान थे एवं पेट जलरहित सूखे सरोवरके समान था। पहले तो उसके भीषण शब्दसे गोप एवं गोपाङ्गनाओंके हृदय, कर्ण और मस्तक विदीर्ण-से हो गये थे, पुनः उसके इस प्रकारके भयङ्कर शरीरको देखकर वे लोग और भी अधिक भयभीत हो गये ॥ १५-१७ ॥

बालञ्च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम्।

गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥ १८ ॥

गोपियाँ अत्यन्त घबरायी हुई थीं, परन्तु जैसे ही उन्होंने उस मृत राक्षसीके वक्षःस्थलपर निर्भय होकर खेलते हुए बालगोपाल

श्रीकृष्णको देखा, तो विस्मयसे हर्षित हो उठीं। वे हड़बड़ाती हुई शीघ्रतापूर्वक दौड़ीं तथा पूतनाके पास पहुँचकर बालक श्रीकृष्णको उठा लिया ॥ १८ ॥

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः।

रक्षां विदधिरे सम्यगगोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥

यशोदा एवं रोहिणीदेवी अब भी अतिशय विकल हो रही थीं। उन्होंने अन्यान्य गोपियोंके साथ समस्त विपत्तियोंसे बालक श्रीकृष्णकी भलीभाँति रक्षाके लिए उसके सभी अङ्गोंपर गायकी पूँछ घुमाना, सूपका स्पर्श कराना आदि माङ्गलिक कार्य किये और करवाये ॥ १९ ॥

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम्।

रक्षाञ्चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥ २० ॥

गोपियोंने गोमूत्र एवं गोरज द्वारा शिशुको स्नान कराके उसके अङ्गोंमें गोबर लगाया। अनन्तर उसके ललाट आदि बारह अङ्गोंमें केशव, नारायण, माधव इत्यादि भगवान्‌के भिन्न-भिन्न नामोंका अङ्कन करके बालककी रक्षा की ॥ २० ॥

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक्।

न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥

किञ्चित् आश्वासन प्राप्त करके गोपियाँ अब विधिपूर्वक बालकका रक्षाविधान करने लगीं। सर्वप्रथम उन्होंने आचमन किया और अपने अङ्गोंमें दोनों हाथोंसे अङ्गन्यास तथा करन्यास किये। बादमें बालकके पैरोंसे लेकर सारे अङ्गोंमें अनुस्वार युक्त अजादि नामका प्रथम अक्षर 'अं' और बादमें 'नमः' से युक्त करके 'अं नमः' (अज नामक भगवान् तुम्हारी रक्षा करें), 'मं नमः' (अर्थात् मणिमान् नामक भगवान् तुम्हारी रक्षा करें) इस प्रकार बालकके अङ्गोंमें बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तवजान्वथोरू

यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।

हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं
 विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ २२ ॥
 चक्रच्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
 तत्पाश्वर्योर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ।
 कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्र-
 स्ताक्षर्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३ ॥

हे महाराज ! गोपियोंने इन मन्त्रोंसे बीजन्यास किया था—भगवान् अज तुम्हारे दोनों पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञपुरुष दोनों जाँघोंकी, अच्युत कटिप्रदेशकी, हयग्रीव जठरकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थलकी, सूर्य कण्ठकी, विष्णु भुजाओंकी, ऊरुक्रम मुखमण्डलकी, ईश्वर मस्तककी, चक्री सम्मुख भागकी, गदाधारी श्रीहरि पश्चात् भागकी, धनुर्धारी मधुसूदन एवं खड्गधारी अजन तुम्हारी दोनों बगलोंकी रक्षा करें। शङ्खधारी उरुगाय चारों कोनोंमें, उपेन्द्र ऊपरके भागमें, गरुड भूतलमें एवं परम पुरुष हलधर चारों दिशाओंमें तुम्हारी रक्षा करें ॥ २२-२३ ॥

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोऽवतु ।
 श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ २४ ॥

भगवान् हृषीकेश समस्त इन्द्रियोंकी, नारायण प्राणोंकी, श्वेतद्वीपके अधिपति चित्तकी एवं योगेश्वर तुम्हारे मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान् परः ।
 क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥
 ब्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।
 भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥ २६ ॥

पृश्निगर्भ तुम्हारी बुद्धिकी एवं परमेश्वर तुम्हारी आत्माकी रक्षा करें। गोविन्द क्रीड़ा करते समय, माधव शयनकालमें, भगवान् वैकुण्ठ जाते समय, श्रीपति बैठते समय एवं सर्वग्रह विनाशन भगवान् यज्ञभुक् भोजनके समय तुम्हारी रक्षा करें ॥ २५-२६ ॥

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कुष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः।
 भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥
 कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः।
 उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८ ॥
 स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धा बालग्रहाश्च ये।
 सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥

डाकिनी, यातुधानी (राक्षसी) एवं कुष्माण्डा नामक शिशु-विघ्नकारिणी समस्त ग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका इत्यादि, मिर्गी (अपस्मार) और उन्माद (पागलपन) आदि रोग, स्वप्नमें देखे हुए समस्त महा-उत्पात, सभी वृद्धग्रह और बालग्रह, देह-प्राण एवं इन्द्रियोंकी हिंसा करनेवाले—ये सभी विष्णुका नाम लेते ही भयभीत होकर विनष्ट हो जाँएँ ॥ २७-२९ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम्।

पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवने कहा—प्रेमपाशमें बँधी हुई गोपियोंने इस प्रकार बालक श्रीकृष्णकी रक्षा-मङ्गल-क्रिया सम्पादित की। तदनन्तर यशोदादेवीने अपने पुत्रको स्तन-पान कराकर उसे पालनेपर सुला दिया। (बालकका स्तन-पान करना उसकी आरोग्यताका लक्षण है।) ॥ ३० ॥

तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः।

विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥ ३१ ॥

उसी समय नन्दमहाराज और उनके साथी सभी गोप मथुरासे व्रजमें लौटे। उन्होंने जब पूतनाका भयङ्कर शरीर देखा, तब वे अतिशय आश्चर्यचकित हो गये। वे सोचने लगे—क्या देवराज इन्द्रने किसी पर्वतके पंख काट डाले हैं, जो आकाशमें व्याप्त

होता हुआ वह यहाँ भूमिपर गिर पड़ा है? अथवा हमारी ही स्वाभाविक भ्रान्तिके कारण कोई योगिनी हमें दूसरे स्थानपर ले आयी है? अथवा यह कोई ऐन्द्रजालिक कार्य है? ॥ ३१ ॥

नूनं बतर्षिः सज्जातो योगेशो वा समास सः।

स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥

वे विचार करने लगे कि हमारे वंशमें वसुदेव महाशय निश्चय ही ऋषि, तपस्वी या योगी हैं। प्रतीत होता है कि वे अष्टाङ्गयोगाभ्यासी हैं, क्योंकि उन्होंने अपने योगचक्षुओंसे मथुरामें ही भावी घटनाको देख लिया था। जिस उत्पातके विषयमें वे बतला रहे थे, व्रजमें आकर हम वही उत्पात देख रहे हैं ॥ ३२ ॥

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः।

दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन् काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥

तब तक व्रजवासियोंने उपानन्द आदिके आदेशसे कुल्हाड़ीसे उस राक्षसीके अङ्गोंके टुकड़े-टुकड़े करके गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियोंसे भलीभाँति जला दिया। (विषधर प्राणियोंकी उपशान्ति दहनके द्वारा होती है।) ॥ ३३ ॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः।

उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥ ३४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने उस राक्षसीका स्तन-पान किया था, उससे उसके सारे पाप तत्काल ही नष्ट हो गये थे, इसलिए उसे जलाते समय उसके शरीरसे अगुरुके समान सुगन्धित धुआँ उठने लगा ॥ ३४ ॥

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।

जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्रतिम् ॥ ३५ ॥

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने।

यच्छन् प्रियतमं किन्नुरक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥

पूतना अपनी जातिमें प्रसिद्ध राक्षसी थी। बालकोंकी हत्या करना और उनका खून पी जाना उसका स्वभाव था। उसने श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे उन्हें विषलिप्त स्तन-पान कराया, फिर भी उसे सत्पुरुषोंको प्राप्त होनेवाली परम गति प्राप्त हुई। जब कृष्ण-हननकी इच्छासे ऐसी गति प्राप्त होती है, तो जो उदासीन भावसे, उससे बढ़कर विश्वासपूर्वक, उससे भी अधिक श्रद्धा और भक्ति अथवा प्रीतिपूर्वक भगवान्‌को कोई वस्तु प्रदान करते हैं—इस विषयमें कहना ही क्या है? वस्तुतः परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णको कृष्णैकजीवन माताओंकी भाँति कोई अतिशय प्रिय वस्तु अतिशय प्रीतिके साथ प्रदान करे, तो उसे जो सद्गति प्राप्त होगी, वह अनिर्वचनीय है। (शुकदेवने यहाँ यशोदा देवीके नामका उल्लेख न करके उन्हें दूरसे प्रणाम करके उनकी महिमा स्थापित की है।) ॥ ३५-३६ ॥

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः।

अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत् स्तनम् ॥ ३७ ॥

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम्।

कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावोऽनुमातरः ॥ ३८ ॥

भक्तोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णके चरणयुगल सदैव विद्यमान रहते हैं। वे चरणयुगल जगत्-पूज्य एवं ब्रह्मा, शिव आदि द्वारा भी वन्दित हैं। (उन्हें भी साक्षात् सेवा प्राप्त नहीं है।) उन्हीं श्रीचरणयुगलसे भगवान्‌ने जिसके अङ्गको दबाकर स्तन्यपान किया था, वह पूतना यद्यपि राक्षसी थी, तथापि उसने माताओं द्वारा प्राप्य स्थानके समान स्वर्ग (वैकुण्ठ-सालोक्य) अर्थात् परम सुखानुभव एवं ऐश्वर्यसे युक्त स्थान प्राप्त किया था। तब श्रीकृष्णने जिनके स्तनोंका दूध बड़े प्रेमसे पान किया है, वे सभी माताके समान गौएँ और माताएँ उससे भी बढ़कर उत्तमा गति प्राप्त करेंगी, इस विषयमें और क्या कहा जाय? ॥ ३७-३८ ॥

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।
 भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्यद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥
 तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।
 न पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसम्भवः ॥ ४० ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण मुमुक्षुओंको कैवल्य आदि समस्त प्रकारकी मुक्तियाँ एवं समस्त अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करते हैं। तब जो श्रीकृष्णको नित्यकाल पुत्ररूपमें ही देखती हैं, अत्यन्त पुत्र-स्नेहवश झरते हुए स्तन्यामृतको बालगोपालको प्रदान करती हैं और बालकृष्ण स्वयं नित्य-निरन्तर उस दुग्धामृतका पर्याप्त रूपसे पान करते हैं, ऐसी सभी गोपियों एवं गायोंका अज्ञान-जनित जन्म एवं मृत्युरूप संसार कदापि सम्भव नहीं हो सकता ॥ ३९-४० ॥

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ।
 किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥

नन्दमहाराजके साथ मथुरासे आनेवाले व्रजवासी चिताके धुएँसे उठी सुगन्धको सूँघकर कहने लगे—अरे! यह क्या है? यह सुगन्ध कहाँसे आ रही है? बड़ा आश्चर्य है? यह अगुरुकी धूप-धूम क्या इन्द्रपुरीसे निकलकर पृथ्वीको भेदते हुए सुतलमें जा रही है? अथवा बलिके महलसे निकलकर देवलोकमें जा रही है? अथवा उत्तर दिशामें स्थित कुबेरपुरीसे आ रही है? अथवा पश्चिम दिशामें स्थित वरुणालयसे आ रही है? व्रजवासी इस प्रकार परस्पर बातचीत करते हुए व्रजमें पहुँचे ॥ ४१ ॥

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।
 श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन् सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥

प्रत्यक्षदर्शियोंने नन्दबाबा आदि गोपोंको पूतना राक्षसीके आनेसे लेकर मरनेतककी सम्पूर्ण घटनाओं तथा श्रीकृष्णकी कुशलताका समाचार बतलाया, तो वे विस्मयसे सन्न रह गये। नन्दराय

मन-ही-मन विचार करने लगे कि वसुदेव धन्य हैं। उन्होंने ठीक ही कहा था कि ब्रजमें कोई विपत्ति आ सकती है। बालक निरापद (स्वस्थ) है। अच्छा हुआ! यह अनुग्रह श्रीनारायणके अतिरिक्त और कौन कर सकता है? ॥४२॥

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ।

मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरुद्वह ॥४३॥

हे कुरुवंशरक्षक! उदार-शिरोमणि नन्दबाबा मृत्युके मुखसे लौटे अपने पुत्रको गोदमें लेकर एवं उसका मस्तक सूँघकर परम आनन्दित हुए। वे मन-ही-मन कहते जाते थे—हाय! मैं प्रवासमें चला गया, इसलिए यह अनर्थ हो गया। मैं मथुरा गया ही क्यों? द्वारपालोंने उसे (पूतनाको) पुरीमें प्रवेश करने ही क्यों दिया? ॥४३॥

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।

शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पूतनामोक्षणं नाम

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य पूतना-मोक्षरूप श्रीकृष्णकी इस अद्भुत बाल-लीलाका श्रद्धापूर्वक श्रवण करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें परम प्रेम (परम आसक्ति) प्राप्त करते हैं ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके षष्ठ अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त ।

सप्तमोऽध्यायः

शकट-भञ्जन, तृणावर्त्त-उद्धार एवं माताको विश्व-दर्शन

श्रीराजोवाच—

येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः।

करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो॥ १ ॥

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा

सत्त्वञ्च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः।

भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं

तदेव हारं वद मन्यसे चेत्॥ २ ॥

महाराज परीक्षित्ने कहा—प्रभो! परमेश्वर भगवान् श्रीहरि मत्स्यादि अवतार लेकर जो सब लीलाएँ करते हैं, वे मेरे कानोंको अति तृप्त करती हैं और मेरे मनको भी अति प्रीतिकर लगती हैं, तथापि जिन्हें सुननेमात्रसे ही जीवोंके मनकी ग्लानि अर्थात् भगवत्-कथा-श्रवणमें अरुचि उत्पन्न करनेवाली नाना प्रकारकी भोग-वासनाएँ एवं तृष्णाएँ दूर हो जाती हैं तथा चित्त शीघ्र ही शुद्ध होकर भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति कर लेता है, श्रीकृष्णके भक्तोंके प्रति मैत्री और सख्य-भाव स्थापित हो जाता है, ऐसी मधुर एवं मनोहारिणी भगवान्की कथाओंको सुननेका मुझे यदि अधिकारी समझते हैं, तो मुझपर अनुग्रहपूर्वक उनका वर्णन कीजिये॥ १-२ ॥

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम्।

मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्य-लोकमें अवतार लेकर मनुष्य-जातिके स्वभावका अनुकरण करते हुए पूतना-वधके अतिरिक्त जो दूसरी-दूसरी परम अद्भुत और मनोहर बाल्य-लीलाएँ की हैं, उनका भी वर्णन कीजिये॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच—

कदाचिदौत्थानिक कौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै—
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—परीक्षित्! अङ्ग परिवर्तन अथवा तिर्यक् भावसे शयन करनेकी चेष्टा अर्थात् करवट बदलनेको 'उत्थान' (श्रीकृष्णके संदर्भमें 'औत्थानिक महोत्सव') कहा जाता है। कोई शिशुके 'गृहनिष्क्रमणरूप संस्कार' को उत्थान कहते हैं। इस दिन यथा-विधि स्नानादि द्वारा पुत्रका अभिषेक करना चाहिये। अतः श्रीकृष्णके जन्मके तीन माह पश्चात् उत्थान सम्बन्धित अभिषेक-उत्सवका आयोजन हुआ। उस उत्सव-दिवसपर भी वही जन्मवाला रोहिणी नक्षत्र था। सती साध्वी यशोदादेवीने पुर-स्त्रियोंको न्योता दिया था। वे वाद्यादि यन्त्रोंके साथ मङ्गल गीत गा रही थीं। ब्राह्मणादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक बालकको आशीर्वाद प्रदान कर रहे थे। इस प्रकार यशोदाजीने अपने पुत्रका 'अभिषेक-कर्म' सम्पन्न किया ॥ ४ ॥

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं
विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः।
अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः
सज्जातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥

इसके बाद यशोदाने बालककी स्नानादि क्रियाएँ सम्पन्न कीं और स्वादिष्ट अन्न, सुन्दर वसन, मनोहर माल्य और उत्तम गौ-दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजाकर उनके द्वारा 'स्वस्त्ययन' (स्वस्ति वाचन) आदि माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करवाये। तदनन्तर नींदके कारण बालककी आँखें मुँदने लगीं, तब यशोदाने चुपचापसे उसे गोदमें ले जाकर अपने भवनके विशाल प्राङ्गणके एक कोनेमें छकड़ेके नीचे शय्यापर धीरेसे सुला दिया ॥ ५ ॥

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी
 समागतान् पूजयती ब्रजौकसः।
 नैवाश्रुणोद्वै रुदितं सुतस्य सा
 रुदन् स्तनार्थी चरणवुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

इधर यशोदा देवी 'उत्थान-उत्सव' में बड़ी उत्कण्ठाके साथ व्यस्त थीं। उनका हृदय भी बड़ा उदार था। मनस्विनी यशोदा महोत्सवमें आयी हुई सभी स्त्रियोंका वस्त्र, अलङ्कार, माला, गन्ध, चन्दन, तेल, सिन्दूर आदिसे स्वागत करनेमें तन्मय थीं। इधर श्यामसुन्दरकी आँखें खुलीं, तो वे स्तन्य-पानके लिए रोने लगे, किन्तु यशोदाजी ब्रजवासियोंके स्वागत आदि कार्य तथा सम्मानपूर्ण वार्त्तालापमें इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें पुत्रका रोना सुनायी नहीं पड़ा। तब बालगोपाल श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने चरणोंको ऊपरकी ओर उछालने लगे ॥ ६ ॥

अथःशयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
 प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्त्तत।
 विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं
 व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥

बाल श्रीकृष्ण जिस छकड़ेके नीचे सोये हुए थे, वह छकड़ा श्रीकृष्णके अत्यन्त छोटे एवं कोंपलके समान कोमल चरण (वामनावतारके समान बृहत् नहीं, नृसिंहावतारके समान कठोर नहीं) के आघातसे विपरीत दिशामें उलटकर गिर गया। उसके चक्र (पहिये), अक्ष (धुरे) अस्त-व्यस्त होकर चूर्ण-विचूर्ण हो गये। युगन्धर (जुआ) टूट गया और उसमें रखे हुए विविध रसोंसे भरे हुए काँसे आदिके बर्तन इधर-उधर बिखरकर टूट-फूट गये ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा ब्रजस्त्रिय
 औत्थानिके कर्मणि याः समागताः।

नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः

कथा स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥

यशोदा, रोहिणी आदि प्रधान ब्रजनारियाँ एवं उस उत्थान उत्सवके उपलक्ष्यमें भिन्न स्थानोंसे समागत अन्यान्य स्त्रियाँ, कुलाङ्गनाएँ, नन्दबाबा आदि गोप और वहाँ समुपस्थित सभी ब्रजवासी इस अद्भुत घटनाको (शकट-भञ्जनको) देखकर विस्मित रह गये और कहने लगे—अरे! यह क्या हुआ? यह छकड़ा अपने-आप कैसे उलट गया? ॥ ८ ॥

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ।

रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेत् न संशयः ॥ ९ ॥

सभी लोग संशयग्रस्त हो रहे थे—यह किसी दैत्यादिका कर्म है या किसी ग्रह इत्यादिका उत्पात है? तब वहाँ खेलते हुए बालकोंने गोप-गोपियोंसे कहा कि इस कृष्णने ही रोते-रोते अपने पदाघातसे (पैरकी ठोकरसे) इस छकड़ेको पलट दिया है—इसमें सन्देहकी बात नहीं है ॥ ९ ॥

न ते श्रद्धधिरे गोपाः बालभाषितमित्युत ।

अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥

नन्दादि गोपगण वात्सल्यप्रेमके मोहके कारण बालकके अप्रमेय बल (अनन्त शक्ति) के विषयमें कुछ नहीं जानते थे। इसलिए उन्होंने 'यह बालकोंका कहना है' ऐसा मानकर उन बालकोंकी बातोंपर विश्वास नहीं किया ॥ १० ॥

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ।

कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥

यशोदाजीको आशङ्का हुई कि बालकपर किसी ग्रह आदिका उत्पात है। अतः उन्होंने अपने रोते हुए लालको गोदमें ले लिया। ब्राह्मणोंसे बालककी रक्षाके लिए माङ्गलिक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करवाकर स्वस्त्ययन कर्म (शान्ति पाठ) करवाये। इसके बाद वे अपने लाड़लेको स्तन्य-पान कराने लगीं ॥ ११ ॥

पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम्।

विप्रा हुत्वारच्याञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२ ॥

अनन्तर बलवान् गोपोंने एक साथ मिलकर उस विशाल छकड़ेको उठाकर सीधा कर दिया एवं उसी स्थानपर उसे पूर्ववत् स्थापित कर दिया। उसके ऊपर सारी सामग्री भी यथावत् रख दी। ब्राह्मणोंने ग्रह-शान्तिके लिए पहले हवन किया और बादमें दहीसे युक्त अक्षत एवं कुशसे युक्त जल द्वारा छकड़ेकी पूजा की। छकड़ा ही गोपजातिका प्रधान आश्रय, सञ्चित धनका आस्पद और लक्ष्मीका अधिष्ठान है ॥ १२ ॥

येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ।

न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥

इति बालकमादाय सामर्ग्ययजुरुपाकृतैः।

जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः।

हुत्वा चार्णि द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥

नन्दबाबा जानते थे कि ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे ही मेरे बालककी कुशलता है। जो ब्राह्मण असत्य, असूया, दम्भ, ईर्ष्या, हिंसा, अभिमान इत्यादि दोषोंसे रहित हैं, उन सत्यशील ब्राह्मणोंके आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होते। इस अभिप्रायसे नन्दरायजीने अपने चित्तको स्थिरकर बालक कृष्णको गोदमें उठा लिया। उन्होंने उत्तम ब्राह्मणों द्वारा साम, ऋक् एवं यजुः वेदादि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित एवं पुण्य सर्वौषधिसे युक्त जलसे अपने वत्सका अभिषेक करवाया। तदुपरान्त ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन पाठ करके हवन किया। नन्दगोपने ब्राह्मणोंको उत्कृष्ट एवं सुस्वादु अन्नका भोजन कराया ॥ १३-१५ ॥

गावः सर्वगुणोपेता वासः स्रग्वक्ममालिनीः।

आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥

श्रीनन्दने अपने पुत्रके कल्याणके लिए दुधारू एवं सर्वगुणसम्पन्न बहुत-सी गौएँ ब्राह्मणोंको प्रदान कीं। वे सभी गौएँ वस्त्र, पुष्पमाल्य एवं सुवर्ण मालाओंसे विभूषित थीं। ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे और दान ग्रहण करने लगे॥ १६॥

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः।

ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम्॥ १७॥

मन्त्रज्ञ ब्राह्मण, योगी अर्थात् भगवद्भक्त और सदाचारी ब्राह्मण जो आशीर्वचन कहते हैं, वे कभी भी निष्फल नहीं होते, यह सुनिश्चित है॥ १७॥

एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती।

गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत्॥ १८॥

जब श्रीकृष्णकी उम्र एक वर्षकी हो गयी थी, तब किसी एक दिन यशोदा अपने लाड़ले लालको गोदमें लेकर दुलार कर रही थीं। वे कभी मुखका चुम्बन करतीं, कभी उसे हिलार्ती-डुलार्ती और कभी ऊपरकी ओर उछालतीं। इतनेमें ही बालक पर्वतके शिखरके समान भारी हो गया। माँ यशोदा उसके भारको सहन करनेमें असमर्थ हो गयीं। (ज्ञातव्य है कि तृणावर्त्त आकर माताके साथ ही बालकका हरण करेगा—यह जानकर श्रीभगवान्की ऐश्वर्य-शक्तिने उसे माताकी गोदसे हटानेके लिए चट्टानके समान भारी बना दिया।) भगवान्की भी इच्छा थी कि “मैं पक्षियोंकी भाँति आकाशमें विहार करूँ।” अतः श्रीहरिके इस अभिप्रायको जानकर उनकी सत्यकामता शक्ति ही घूर्णिवात (औंधी) के रूपमें तृणावर्त्त असुरको ले आयी॥ १८॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता।

महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु॥ १९॥

यशोदादेवी बालकके भारसे आक्रान्त होनेपर अत्यन्त विस्मित हो गयीं। वे बालक कृष्णको भूमिपर रखकर महापुरुष नारायणका

स्मरण करने लगीं। इसके बाद पुत्र-स्वस्त्ययनके लिए ब्राह्मणोंको बुलवाने आदि कार्योंमें तत्पर हो गयीं। बादमें व्यग्र-सी होकर पुत्रके उद्देश्यसे गृहस्थीके कार्योंमें लग गयीं। उन्हें बालकके भारका कारण समझमें नहीं आ रहा था—वे सोच रही थीं कि किसी बालग्रहके आवेशसे ही मेरा पुत्र भारी हो गया है अथवा कोई उत्पात तो नहीं होनेवाला है। इस आशङ्कासे वे भगवान् नारायणसे प्रार्थना करने लगीं—आपने यह बालक दिया है, आप ही रक्षा करें। प्रेमोन्मादके कारण वे यह नहीं जान सकीं कि कृष्णमें ही सारा जगत् निवास करता है॥ १९॥

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः।

चक्रवातस्वरूपेण

जहारासीनमर्भकम्॥ २० ॥

उसी समय कंसका अनुचर तृणावर्त नामका दैत्य अपने स्वामी कंससे प्रेरित होकर नन्द-गोष्ठमें घूर्णिवात (बवण्डर) के रूपमें आया और वहाँ बैठे हुए बालक श्रीकृष्णको उड़ाकर आकाशमें ले गया। (भगवान्‌के हरण-कालमें उनकी ऐश्वर्य-शक्तिने बालकके भारको हल्का कर दिया।)॥ २०॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षुषि रेणुभिः।

ईरयन् सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः॥ २१ ॥

उस दैत्यने ब्रजकी धूलिसे सारे गोकुलको समाच्छादित कर दिया और वहाँके निवासियोंकी दृष्टि-शक्तिका भी अपहरण कर लिया। आँखोंमें धूल भर जानेसे वे कुछ भी देखनेमें समर्थ नहीं हुए। उसके भयङ्कर शब्दसे दशों दिशाएँ काँप उठीं॥ २१॥

मुहूर्त्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम्।

सुतं यशोदा नापश्यत् तस्मिन् न्यस्तवती यतः॥ २२ ॥

सम्पूर्ण ब्रज-गोष्ठमें दो घड़ी तक धूलि और अन्धकार छाया रहा। भाराक्रान्त होकर यशोदाने अपने पुत्रको जहाँ बिठाया था, अब वह वहाँ दिखायी नहीं दे रहा था॥ २२॥

नापश्यत् कश्चनात्मानं परञ्चापि विमोहितः ।

तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥

उस समय तृणावर्तने बवण्डर रूप धारण करके सर्वत्र बालूका ऐसा साम्राज्य बिछा दिया था कि सभी लोग बेचैन और बेसुध-से होकर मोहग्रस्त हो गये। उन्हें अपना-पराया कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था ॥ २३ ॥

इति खरपवनचक्रपांशुवर्षे

सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।

अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोच-

द्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥

उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षामें यशोदाजीको अपने पुत्रका चिह्नमात्र भी दिखायी नहीं दे रहा था। दूँढ़नेसे भी बालक जब कहीं नहीं मिला, तो वे पृथ्वीपर इस प्रकार गिर पड़ीं, जिस प्रकार बछड़ेके मरनेपर गायकी दशा हो जाती है। वे अपने पुत्रको पुकारते हुए ऐसा विलाप करने लगीं, जिसे सुनकर लकड़ी, पत्थर और वज्र आदि भी चकनाचूर हो जाँएँ ॥ २४ ॥

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो

भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।

रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं

पवन उपारतपांशुवर्षवेगे ॥ २५ ॥

बवण्डरके शान्त होनेपर जब धूलि-वर्षणका वेग शान्त हो गया, तब गोपियाँ यशोदाके रोनेकी आवाज सुनकर वहाँ दौड़ी-दौड़ी आयीं। जब उन्होंने भी श्रीकृष्णको वहाँ नहीं देखा, तब उनका भी चित्त अतिशय दुःखी हो गया। आँसुओंकी धाराएँ बह चलीं। वे भी फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ २५ ॥

तृणावर्तः शान्तरयोवात्यारूपधरो हरन् ।

कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥

इधर चक्रवातरूपधारी तृणावर्त पहले तो श्रीकृष्णको सामान्य बालकके समान आकाशमें उठा ले गया और अत्यधिक ऊँचाई पर चला गया, किन्तु उनके अत्यधिक भारको सह न सका। भाराक्रान्तके कारण शिथिल होनेसे उसकी गति धीमी पड़ गयी और अब तो वह चलनेमें भी असमर्थ हो गया ॥ २६ ॥

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया।

गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥

श्रीकृष्णका भार इतना अधिक था कि तृणावर्तको प्रतीत हुआ मानो यह समुद्रकी शिला है अथवा नीलगिरिकी चट्टान। वह उन्हें अपनेसे अलग करना चाहता था, पर अलग न कर सका। जैसे कोई व्यक्ति बालकको उछाले, तो बालक भयसे उछालनेवालेके कण्ठको दोनों हाथोंसे पकड़ लेता है, उसी प्रकार लोकातीत श्रीकृष्णने लौकिक-बाललीलाका अनुकरण करते हुए अपने गिरनेके भयसे तृणावर्तके गलेको दोनों हाथोंसे दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया ॥ २७ ॥

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः।

अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥

भगवान् श्यामसुन्दरने उस दैत्यके गलेको इतनी जोरसे पकड़ रखा था कि वह असुर निष्क्रिय हो गया। उसका हाथ-पैर चलाना बन्द हो गया, दोनों आँखें बाहर निकल आयीं। मुखसे शब्द निकलने बन्द हो गये। अन्ततः उसके प्राण-पखेरु उड़ गये और वह बालक श्रीकृष्णके साथ ही ब्रज-भूमिमें गिर पड़ा ॥ २८ ॥

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां

विशीर्णसर्वावयवं करालम्।

पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं

स्त्रियो रुदत्यो ददृशः समेताः ॥ २९ ॥

उस समय सारी गोपियाँ एकत्र मिलकर जोर-जोरसे क्रन्दन कर रही थीं, तभी उन्होंने देखा कि तृणावर्तका विकराल शरीर

आकाशसे प्रस्तर-शिलापर गिर पड़ा है और उसके सारे अङ्ग इस प्रकार विध्वस्त (चकनाचूर) हो गये हैं, जिस प्रकार शिवजीके बाणोंसे आहत होनेपर त्रिपुरासुरके हो गये थे॥ २९॥

प्रादाय मात्रे प्रतिहत्य विस्मिताः
कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम्।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं
विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्।
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या
लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम्॥ ३०॥

बालक श्रीकृष्ण उस असुरके वक्षःस्थलपर लटके हुए थे। गोपियोंने अविलम्ब वहाँ जाकर बालकको उठा लिया और माताकी गोदमें दे दिया। बालकपर किसी भी प्रकारके कोई अमङ्गलका चिह्न न देखकर गोपियाँ विस्मित रह गयीं। आकाश-मार्गसे राक्षस आया था और बालकका हरण कर ले गया था। अहा! बालक मृत्यु-मुखसे सकुशल लौट आया। नन्द आदि प्रमुख गोप एवं गोपियाँ बालकृष्णको प्राप्त करके अति आनन्दित हो गये॥ ३०॥

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा
बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात् पुनः।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते॥ ३१॥

वे कहने लगे—अहो! यह सचमुच बड़े आश्चर्यकी बात है—यह बालक राक्षसके द्वारा मृत्युके मुखमें डाल दिया गया था, किन्तु यह सुप्तावस्थामें ही सकुशल लौट आया है। बड़ी अद्भुत घटना घटी है। हिंसक, दुष्ट व्यक्ति अपने पापके द्वारा ही नष्ट हो जाते हैं, जब कि साधु व्यक्ति सर्वत्र समदर्शनके कारण समस्त प्रकारके भयोंसे मुक्त रहते हैं। यह दैत्य निरपराध शिशुके हरणरूप अपने पापसे ही नष्ट हो गया है और साधु बालक

श्रीकृष्ण जो बालपनके कारण शत्रु और मित्र आदिमें समबुद्धि रखता है, समस्त आपदाओंसे बच गया ॥ ३१ ॥

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं
पूर्तैष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ।
यत् संपरेतः पुनरेव बालको
दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥

अहो! हमारा बड़ा सौभाग्य है! हमने ऐसी कौन-सी कठोर तपस्या अथवा भगवत्-आराधना की थी, प्राणियोंके हितके लिए बाबड़ी-निर्माण, कूप-खनन आदि पूर्त कर्म किये थे, यज्ञ, हवन, दान आदि इष्ट कर्म किये थे, जीवोंका उपकार किया था, जिसके फलस्वरूप यह बालक मृत्युके मुखसे निकलकर आत्मीयोंको एवं सुहृदोंको आनन्दित करनेके लिए लौट आया? इसके बिना तो हम मर ही जाते ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥

जब नन्दबाबाने देखा कि बृहद्वन (महावन) में बड़ी अद्भुत-अद्भुत घटनाएँ घट रही हैं और बालकके कार्य (लीला-चरित) भी बड़े अद्भुत हैं, तब वे आश्चर्यके साथ वसुदेवजीके वचनोंका बार-बार स्मरण करने लगे ॥ ३३ ॥

एकदार्भकमादाय स्वाङ्गमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥

एक दिन यशोदादेवी अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बिठाकर स्नेह-सिक्त होकर स्तन्य-पान करा रही थीं। पुत्रके प्रति वात्सल्यसे उनका हृदय इतना पिघल रहा था कि दूध स्वतः ही क्षरित हो रहा था ॥ ३४ ॥

पीतप्रायस्य जननी सुतस्य रुचिरस्मितम् ।
मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः
 सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुर्धोश्च ।
 द्वीपान् नगांस्तद्बुहितृर्वनानि
 भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥

हे राजन्! बाल-कृष्णका स्तन्य-पान प्रायः पूर्ण हो चला था। यशोदा उसके मनोहर, मन्द-मुसकानसे युक्त मुखकमलका चुम्बन आदि करती हुई उसे लाड़ लड़ा रही थीं, तभी श्रीकृष्णने आलस्यवश जँभाई ली। (भगवान्की माया-शक्तिने माँके समीप अहैतुकी ऐश्वर्य-शक्तिका प्रदर्शन किया।) इस जृम्भण-लीलामें यशोदादेवीने उसके मुखमें आकाश, स्वर्ग, मर्त्यलोक, ज्योतिर्मण्डल, सम्पूर्ण दिशाएँ, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन एवं स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त प्राणियोंको विद्यमान देखा ॥ ३५-३६ ॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् सञ्जातवेपथुः।
 सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे तृणावर्त्तमोक्षो नाम
 सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हे राजन्! मृगशावाक्षी यशोदादेवीने शिशुके मुखमें सम्पूर्ण विश्वका दर्शन किया, तो उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने आँखें मूँद लीं और आश्चर्यमें डूब गयीं। (भगवान्की ऐश्वर्य-शक्तिके प्रदर्शनसे यशोदाका वात्सल्य सङ्कुचित अथवा शिथिल नहीं होता।) ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सप्तम अध्यायका
 श्लोकानुवाद समाप्त।

अष्टमोऽध्यायः

नामकरण-संस्कार और बाल-लीलाएँ

श्रीशुक उवाच—

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः।

व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्! परम तपस्वी श्रीगर्गाचार्य यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे। वसुदेवकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दगोकुलमें पधारे।

(ज्ञातव्य—श्रीशुकदेव मुनि असुरोंकी सङ्गतिके क्रममें तृणावर्त्त-वध-लीलाका वर्णन कर ही रहे थे कि उन्हें प्राचीन नामकरणादि चरित्तोंका स्मरण हो गया।) ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।

आनर्चाधोक्षजधिया

प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥

महाराज नन्द उन्हें देखकर परम आनन्दित हुए। वे उन्हें देखकर उठ खड़े हुए। उन्होंने भगवत्-बुद्धिसे श्रीगर्गमुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और बादमें अर्चन आदि किये ॥ २ ॥

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सुनृतया मुनिम्।

नन्दयित्वाब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥

मुनिवर विधिपूर्वक आतिथ्य सत्कार प्राप्त करके जब सुखपूर्वक आसीन हो गये, तब नन्द महाराजने अतिशय विनीत वचनोंसे उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—हे मुनिवर! भगवत्-भक्तिके प्रभावसे आप पूर्णकाम हैं, इसलिए आपकी प्रीतिके लिए मैं क्या करूँ—यह समझ नहीं पा रहा हूँ ॥ ३ ॥

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम्।

निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥

हे भगवन्! आपके जैसे महापुरुष अपने स्वार्थके लिए अपने आश्रमका परित्याग करके कहीं नहीं जाते, बल्कि हमारे जैसे दीन चित्तवाले गृहस्थ मनुष्योंके परम मङ्गलके लिए ही आपलोगोंका आगमन होता है। दीन-हीन जनोंपर ही आप जैसे महत्-जन्योंकी अधिक कृपा होती है। इसके अतिरिक्त आपके आगमनका और कोई कारण नहीं है॥४॥

ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम्।

प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम्॥५॥

हे मुनिवर! ज्योतिषशास्त्रके द्वारा इन्द्रियातीत वस्तुका ज्ञान हो जाता है और यह शास्त्र आपके द्वारा ही प्रणीत है। मनुष्य इस ज्योतिषशास्त्रके आधारपर पूर्वजन्मकृत कर्म एवं वर्तमान जन्ममें उन कर्मोंके भावी फलको जान सकते हैं। (वार्द्धक्य अवस्थामें मुझे पुत्र प्राप्त हुआ है। पुत्रके जन्म-लग्नादिका विचार करके एवं हाथ-पैरोंके चिह्न देखकर शुभाशुभ बतलाइये।)॥५॥

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुमर्हसि।

बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः॥६॥

आप जैसे महानुभावका आगमन मेरे परम कल्याणके लिए है। आप ब्रह्मविदोंमें श्रेष्ठ एवं मन्त्रवित् हैं। अपने ऐहिक एवं पारलौकिक मङ्गलोंमें आज एक ऐहिक मङ्गलका विषय आपके श्रीचरणोंमें निवेदन कर रहा हूँ—आप मेरे इन दोनों पुत्रोंका नामकरणादि संस्कार कर दीजिये, क्योंकि ब्राह्मण जन्ममात्रसे ही मनुष्योंके गुरु होते हैं॥६॥

श्रीगर्ग उवाच—

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा।

सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम्॥७॥

श्रीगर्गाचार्यने कहा—हे नन्द! मैं यदुकुलका पुरोहित हूँ—यह जगत्में सर्वत्र प्रसिद्ध है। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार करूँगा,

तो कंस समझेगा कि यह देवकीका पुत्र है और यह बात छिपी भी न रह पायेगी ॥ ७ ॥

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।

देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥

इति सञ्चिन्तयन् श्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।

अपि हन्तागताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥

कंस बड़ा पापी है। उसने जबसे देवकीकी कन्यारूपिणी योगमाया द्वारा कहे गये “तुम्हें मारनेवाला कहीं और जन्म ले चुका है”—ये वचन सुने हैं, तबसे दिन-रात यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म नहीं हो सकता है। वसुदेवके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है—वह पापमति इसका भी ध्यान रखता है। वसुदेव-द्रोही होनेसे वह आपके साथ भी द्रोह कर सकता है। मेरे द्वारा किये गये पुत्रके नामकरण-संस्कारके चिह्नोंको देखकर उसकी शङ्का और भी अधिक दृढ़ हो जायेगी, तब वह इस बालकको वसुदेवका पुत्र समझकर यदि वध कर दे, तो मुझसे महा अनिष्ट हो जायेगा ॥ ८-९ ॥

श्रीनन्द उवाच—

अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोब्रजे ।

कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥

(श्रीनन्दने मन-ही-मन विचार किया आज भाग्यसे ऐसे आचार्य आये हैं, फिर कब आना होगा? वाद्य आदि तो फिर बज जायेंगे, अभी केवल शास्त्रीय आवश्यक कृत्य करा लेता हूँ।) श्रीनन्दमहाराजने गर्गमुनिसे कहा—आचार्यवर! यदि आपको कंससे इस बालकके अनिष्टकी आशङ्का है, तो स्थान-संस्कारकी कोई आवश्यकता नहीं है। गोशालामें एकान्त स्थान है—गोपालक दिनमें अपनी गायोंको वनमें ले जाते हैं। मेरे भाई आदि आत्मीय, स्वजन कोई भी इस बातको जान नहीं पायेगा। आप स्वस्तिवाचन

करके इन दोनों बालकोंका द्विजाति-जनोचित (क्षत्रिय एवं वैश्यके अनुरूप) नामकरण संस्कार मात्र कर दीजिये ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत्।

चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—गर्गाचार्यको यही अभिलषित था कि निर्जनमें ही नामकरण-संस्कार होना चाहिये। जब नन्दमहाराजने प्रार्थना की, तब उन्होंने उन दोनों बालकोंका एकान्त निर्जन स्थानमें अति गोपनरूपसे नामकरण संस्कार कर दिया ॥ ११ ॥

श्रीगर्ग उवाच—

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः।

आख्यास्यते राम इति बलाधिव्याद्वलं विदुः।

यदूनामपृथग् भावात् सङ्कर्षणमुशन्त्यपि ॥ १२ ॥

श्रीगर्गाचार्यने कहा—यह रोहिणीनन्दन अपने गुणोंसे स्वजनों एवं आत्मीयोंको रमण (आनन्दित) करनेके कारण 'राम' नामसे प्रसिद्ध होगा। अनन्त शारीरिक बलके कारण लोग इसे 'बल' के नामसे भी जानेंगे। यह यदुवंशीय वसुदेवादि और आपमें कोई पृथक् भाव नहीं रखेगा, कभी यादवोंके साथ विरोध भी हुआ, तो यह दोनोंका मिलन करायेगा, इसीलिए इसका एक नाम 'सङ्कर्षण' भी होगा। यह सभीकी प्रीतिका पात्र होगा। (यहाँ यह प्रकट नहीं किया गया है कि गर्भके आकर्षणके कारण उसका नाम सङ्कर्षण है।) ॥ १२ ॥

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥

और हे नन्दमहाराज! तुम्हारा यह पुत्र प्रत्येक युगमें अपनी श्रीमूर्तिको प्रकट करता है। पूर्व युगोंमें इसके शुक्ल, रक्त एवं पीत—तीन वर्ण प्रकटित हुए थे। (ये तीन वर्ण सत्य, त्रेता एवं कलिके हैं।) अब कृष्णवर्णमें प्रकटित हुआ है। अन्य द्वार

युगमें यद्यपि इसने शुक पक्षीके समान वर्ण धारण किया है, तथापि ये सभी युगावतार अब कृष्णताको प्राप्त हो गये हैं, अर्थात् ये सब जगत्-मोहनकारी श्रीकृष्ण-विग्रहमें (अंशीमें) समा गये हैं, इसलिए इसका नाम कृष्ण होगा ॥ १३ ॥

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।

वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

तुम्हारा यह परम सौन्दर्यमय पुत्र किसी कारणसे पहले कभी वसुदेवके पुत्रके रूपमें भी प्रकटित हुआ था। इस तत्त्वको जाननेवाले इसे 'श्रीमान् वासुदेव' भी कहेंगे। (तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण-नन्दके ही नित्य पुत्र हैं। किसी कारणसे नन्द-नन्दन ही वसुदेव-नन्दन रूपमें प्रकटित हुए थे।) ॥ १४ ॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।

गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥

तुम्हारे इस पुत्रके बहुत-से गुण और कर्म हैं, जिनके अनुसार इसके बहुत-से नाम और रूप हैं—उन्हें मैं भलीभाँति जानता हूँ, पर साधारण लोग यह सब नहीं जानते ॥ १५ ॥

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।

अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥

हे नन्दमहाराज! तुम्हारा यह बालक अनेक मङ्गलोंको साधित करेगा और गोपों एवं गायोंके कुलको आनन्दित करेगा। जब-जब तुमलोगोंके ऊपर विपत्तियाँ आवेंगी, तब-तब तुम्हारा यह पुत्र अपने प्रसादसे उन सब विपत्तियोंसे तुमलोगोंको सुगमतासे बचा लेगा। (इसमें तुम्हारे इष्टदेव नारायणका आवेश रहेगा।) ॥ १६ ॥

पुरानेन ब्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।

अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ १७ ॥

ब्रजराज! प्राचीन कालकी बात है। एक बार दैत्यों द्वारा इन्द्र पराजित हो गये थे। तब किसी भी राजाके न रहनेके कारण

अराजकता फैल गयी थी। इन्द्रकी पद-च्युतिके कारण दैत्य साधुजनोंको पीड़ित कर रहे थे। तब इसी बालक कृष्णने उन साधुओंकी रक्षा की थी। इससे ही बल प्राप्त करके साधुओंने उन दानवोंको पराजित कर दिया था॥ १७॥

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः।

नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः॥ १८॥

वे मनुष्य परम भाग्यवान् हैं, जो इस शिशुके साथ प्रीति करते हैं। असुर जिस प्रकार विष्णुपरायण भक्तोंको पराजित नहीं कर सकते, उसी प्रकार इससे प्रेम करनेवालोंको कंसादिके समान बाहरके शत्रु और अन्तर्मनके कामादि शत्रुओंको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो सकते॥ १८॥

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः।

श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः॥ १९॥

हे नन्द! (तुम्हारे इष्टदेव श्रीनारायणने ही परम सन्तुष्ट होकर तुम्हें अपने ही समान पुत्र प्रदान किया है।) चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुण, श्री (सम्पत्ति), कीर्ति एवं प्रभावमें यह श्रीनारायणके ही समान है। (श्लोकस्थ 'नारायण सम' कहनेसे गर्ग मुनिका तात्पर्य है कि इसमें दैत्योंको मोक्षप्रदत्व, भक्तजनोंको महाभाव-प्रदत्व, लक्ष्मीदेवीको दुर्लभ श्रीवक्ष-विहारीत्व आदि आत्यन्तिक सर्वोत्कृष्टता श्रीनारायणसे भी अधिक है।) अतः बड़े सावधान-चित्त और तत्परतासे इस शिशुका पालन करें॥ १९॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते।

नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम्॥ २०॥

श्रीशुकदेवने कहा—इस प्रकार नन्दको अच्छी तरह समझा-बुझाकर एवं आदेश देकर गर्गमुनि अपने आश्रमको लौट गये। उनकी बात सुनकर नन्दबाबा परम आनन्दित हुए और अपनेको समस्त मङ्गल आशिषोंसे परिपूर्ण अनुभव करने लगे॥ २०॥

कालेन व्रजतालपेन गोकुले रामकेशवौ।

जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजहतुः॥ २१॥

इसके कुछ समय बाद राम और कृष्ण दोनों ही घुटनों और हाथोंका सहारा लेकर रेंगते हुए व्रजमें विहार करने लगे॥ २१॥

तावद्ध्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ

घोष-प्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु।

तत्रादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं

मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः॥ २२॥

कृष्ण-बलराम व्रजकी कीचड़में घुटुअन चला करते थे। इस अपरूप रिङ्गण-लीलाका ध्यान-नेत्रसे दर्शन करते हुए श्रीशुकदेव गोस्वामी बतला रहे हैं—परीक्षित्! देखो! दोनों शिशु किस प्रकार चरणोंको घसीटते हुए सरीसृपके समान वक्रगतिसे चल रहे हैं। व्रजका सारा आङ्गन गोदुग्ध एवं गोवत्सके मूत्रादिसे सना पड़ा है। गोप-गोपियाँ हो-हो-हो—इस प्रकार मुखसे एवं ताली बजाकर आनन्द ध्वनि कर रहे हैं, जिससे कृष्ण-राम प्रसन्न हो रहे हैं। दोनों बालकोंके कटिभूषण, करभूषण एवं चरण-भूषणकी ध्वनिसे व्रज मुखरित हो रहा है—इस ध्वनिको सुनकर और भी बहुत-से लोग वहाँ आ गये हैं। उनमेंसे कोई “हे राम, हे कृष्ण!” पुकारता है, तो दोनों उसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। कभी व्रज-गोपियोंको माता मानकर कुछ दूर तक उनके पास जाते हैं, पर जब मुख परिचित दिखायी नहीं देता, तब डरे हुए-से और मोहित-से होकर अपनी माताओं—रोहिणी एवं यशोदाके समीप आ जाते हैं॥ २२॥

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ

पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगृह्य दोभ्याम्।

दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य

मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम्॥ २३॥

इन सब बाल्य-लीलाओंको देखकर अत्यन्त स्नेहमें निमग्न (सराबोर) यशोदा एवं रोहिणीदेवीके पयोधरोंसे दुग्ध स्वतः क्षरित

होने लगता। जब दोनों कीचड़रूप अङ्गरागसे लिपे हुए लौटते, तो उनकी शोभा और भी बढ़ जाती। माताएँ उन सुशोभन पुत्रोंको अपनी भुजाओंमें उठाकर गोदमें लेकर स्तन्य-पान कराने लगतीं। स्तन्य-पान करते समय दोनों बालक मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए जब माताओंकी ओर निहारते, तब माताएँ भी उनकी मधुर मुसकान, छोटी-छोटी दँतुलियों और भोली-भाली मुखाकृतिको देखकर अतिशय आनन्दित हो जातीं ॥ २३ ॥

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला-

वन्तव्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः।

वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ

प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४ ॥

राम और श्याम कुछ अधिक बड़े हुए, तो वे व्रजाङ्गनाओंके चित्तको आकर्षित करनेवाली व्रजके अन्तःपुरमें कौमार-लीला प्रकट करने लगे। व्रजाङ्गनाएँ इन दोनोंकी कौमार-क्रीड़ाको देखतीं, तो बस देखती ही रह जातीं और घरके कार्योंको भूलकर परम आनन्दमें ओतप्रोत रहतीं। कभी वे दोनों सोये हुए बछड़ेकी पूँछ पकड़ लेते, तो बछड़े डरे हुए-से इधर-उधर भागने लगते। जब वे बछड़ोंकी पूँछ और जोरसे पकड़ते, तो बछड़े उन्हें ही घसीटते हुए दौड़ने लगते ॥ २४ ॥

शृङ्ग्याग्निदंष्ट्र्यहिजलद्विजकण्टकेभ्यः

क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धम्।

गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ

शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

क्रमशः कृष्ण-बलराम अति चञ्चल होते जा रहे थे। विचित्र-विचित्र खेल उन्हें सूझा करते थे। कभी वे हिरन, गाय और बैल आदि सींगवाले पशुओंके पास दौड़ पड़ते, कभी धधकती आगके समीप पहुँच जाते, तो कभी दाँतोंसे काटनेवाले कुत्ते, बिल्ली आदिके सम्मुख आकर खड़े हो जाते, कभी कुएँ

या पोखरमें झाँकने लगते, तो कभी साँप आदिको पकड़नेके लिए दौड़ते, कभी पक्षियोंके पीछे-पीछे उड़नेकी कोशिश करते, तो कभी काँटोंकी झाड़ीमें उलझ जाते। यशोदा एवं रोहिणी उन्हें बहुत रोकतीं, पर वे उनकी पकड़में नहीं आते। उन दोनोंकी विपत्तियोंसे रक्षा करना तथा घरका काम करना—दोनों एक साथ सम्भव नहीं हो पाता था। अतः वे बड़ी अस्थिर हो जाती थीं और वात्सल्य-रस-पोषक 'चापल्य' नामक सञ्चारी भावको प्राप्त हो जाती थीं॥ २५॥

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले।

अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा॥ २६॥

हे राजर्षे! अल्पकालमें ही बलराम-कृष्णने घुटनुओंसे रिङ्गना छोड़कर अब चरणोंके द्वारा ही व्रज-गोष्ठमें विचरण करना प्रारम्भ कर दिया॥ २६॥

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैव्रजबालकैः।

सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन् मुदम्॥ २७॥

भगवान् श्रीकृष्ण-बलराम एवं अन्यान्य सखा गोपबालकोंके साथ व्रजमें विचरण करते और ऐसे खेल खेला करते, जो व्रजरमणियोंके हृदयोंको आनन्दसे सराबोर कर देते थे। वे महाभाग्यवती उनके क्रीड़ा-कौशलका अनुभव कर निहाल हो जाया करती थीं॥ २७॥

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम्।

शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः॥ २८॥

श्रीकृष्णकी बाल्य-चपलता इतनी मनोहर एवं अद्भुत थी कि समस्त गोपियोंका चित्त उनकी इन चञ्चलताओंमें ही लगा रहता था। एक दिन सब इकट्ठी होकर नन्दभवन जा पहुँचीं और वहाँ यशोदादेवीको उलाहने देती हुई उनके लाड़लेकी चपलताएँ (करतूत) कहने लगीं। (उपालम्भ-दानसे गोपियोंने यशोदाको परमानन्दित किया है।)॥ २८॥

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः
 स्तेयं स्वाद्वत्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
 मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
 द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्॥ २९ ॥

अरी सखि यशोदे! जरा अपने पुत्रकी चौर्य-चातुरीकी कथा तो सुनो। यह अपने मनमें पहलेसे ही निश्चित कर लेता है कि किस घरमें चोरी करनी है—इसके लिए यह असमय ही (गोदोहनके पहले ही) बछड़ोंको खोल देता है। जब गृहस्वामी उन बछड़ोंको पकड़नेके लिए इधर-उधर भागते हैं, तब यह अवसर पाकर सूने घरमें घुस जाता है और दधिकी चोरी करके भाग जाता है। घरमें घुस आनेपर जब हम पुकारती हैं कि—“अरे दधिचोर आया है, इसे बाँध लो”, तो यह सुनकर तुम्हारा लाड़ला ठठा-ठठाकर हँसता है। तब इसके महामादक हास्यको देखकर हम जड़ीभूत-सी हो जाती हैं। यह हमारे सामने ही दही-दूध खाता रहता है। इस दधि-लम्पटको चोरीसे अर्जित दधि ही रुचिकर लगता है, प्रदत्त वस्तु नहीं। (बछड़े खोलकर तो प्रत्यक्ष चोरी करता है और हँसकर परोक्ष।) कभी ढेला फेंककर मटका फोड़ता है और चोरीके नये-नये उपाय सोच लेता है। चोरी करके केवल स्वयं ही खाता हो, ऐसा नहीं है, वानरोंको भी खिलाता है। स्वयं भोजन करनेसे पहले वानरोंसे कहता है, यह तुम्हारा भाग है, यह तुम्हारा भाग है—इस प्रकार उन्हें बाँटता फिरता है। यदि पेट भरा होनेके कारण वानरोंकी खानेकी इच्छा नहीं होती, तो कहता है—“तुम्हारे बिना मेरा भोजन करनेका क्या प्रयोजन, मैं भी नहीं खाऊँगा”, और इस दुःखसे हमारे दधिसे भरे बर्तनोंको फोड़ डालता है। यदि किसी दिन सूने घरमें प्रवेश करनेपर दही-दूध नहीं मिलता, तो क्रोधित होकर घरमें पर्यङ्कपर सोते हुए बच्चोंको नखसे आघात करके रुलाकर भाग जाता है। गृहस्वामीके क्रोधित होनेपर जोर-जोरसे हँसता है। गाली तो इसे कोई लगती नहीं है॥ २९ ॥

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
 शिष्टद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिष्यभाण्डेषु तद्वित्।
 ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
 काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु व्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥

किसी दूसरे घरमें प्रवेश करनेपर जब तुम्हारे पुत्रको दुग्ध-दधिके भाण्ड छींकेपर रखे दिखायी देते हैं, तो वहाँ तक हाथ न पहुँचनेके कारण यह विविध चतुराईका सहारा लेता है। एक चौकीके ऊपर दो-तीन चौकी और रखकर उनपर चढ़ जाता है अथवा उलूखलपर चढ़ जाता है अथवा बालकोंके कन्धेपर चढ़कर उन बर्तनोंको गिरा देता है। उच्च स्थानपर रखे होनेपर भी भाण्डकी चिकनाई देखकर ही समझ जाता है कि उसमें क्या रखा है? इससे कुछ छिप नहीं सकता। यदि भाण्ड इसकी पहुँचसे बाहर होता है, तो छड़ीसे उसमें छिद्र कर देता है। छिद्रसे जैसे ही धारा नीचे गिरती है, तब यह 'हो' करके मुख फाड़ता है और स्वयं खाता है एवं दूसरे बालकोंको भी खिलाता है। अन्धकारमें भी चोरी करनेसे इसे कोई रोक नहीं सकता, क्योंकि इसकी श्यामल अङ्ग-कान्ति तो दीपकका कार्य करती है और तुमने जो इसे अत्युज्ज्वल चन्द्रकान्ति मणिमय अलङ्कार पहना रखे हैं, उनके प्रकाशसे इसके लिए सब उजागर हो जाता है। हम जब घरके कार्योंमें उलझी रहती हैं, तब तुम्हारा पुत्र नाना कौशलसे चोरी करके अपना कार्य साध लेता है। तुम्हारे पुत्रमें मन्द मुसकान, मधुर बोली, आकर्षक चलन, शरीरकी सुन्दरता आदि चोरी-विद्याएँ (हमारे चित्तको चुरानेवाली विद्याएँ) भरपूर हैं। कौन-सी वस्तु किस स्थानपर रखी है—यह जाननेके लिए अपने बाल-सखाओंको भेजकर क्षण-क्षण पूरी खोज-खबर रखता है ॥ ३० ॥

एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
 स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते।

इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥

इसकी ढिठाई देखो। यदि गृहस्थ इसके प्रति 'रे चोर' कहकर आक्रोश जताते हैं, तो तुम्हारा यह लाल "तुम ही चोर हो, मैं स्वयं गृहका स्वामी हूँ"—इस प्रकार गृहस्वामीसे कहकर बाचालता प्रकाशित करता है। हे यशस्विनी यशोदे! देवपूजाके लिए जब हम भूमिको परिष्कृत करती हैं, तो यह वहाँ आकर मल-मूत्रका त्याग कर देता है। न जाने कैसे-कैसे उपद्रव करता है—पुरन्ध्रियोंकी तो वेणी एवं उत्तरीय वस्त्रोंको खींच लेता है, उनके साथ विवाह करनेकी इच्छा व्यक्त करता है। देखो! चोरी करके अपना कार्य साधनेके बाद यह तुम्हारे सामने कैसे साधुके समान बैठा है? अरे! वाह रे! भोले-भाले साधु! श्रीकृष्णने सोचा कि अब माता मेरी प्रताड़ना करेगी—यह सोचकर उनके नेत्र भयसे विह्वल हो गये, जिससे उनका मुख अति शोभायमान हो गया—गोपियाँ तो उनके इन्हीं भावोंसे युक्त मुखकमलका दर्शन करना चाहती थीं। अपनी चपलताके विषयमें सुनकर श्रीकृष्णके मुखपर कैसे भाव प्रकट होते हैं—माँ यशोदा भी यही देखना चाहती थीं। उन्होंने अपने पुत्रको डाँटनेकी बात भी नहीं सोची। बालकृष्ण गोपियोंकी बात सुनकर माताके पास दौड़े चले आये और भयसे चकित उनके नेत्रोंसे आँसू छलछला आये। श्रीकृष्णके इस भाव-सौन्दर्यको देखकर सभीको परम हर्ष हुआ ॥ ३१ ॥

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः।

कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥

एक दिन बलराम आदि ग्वालबाल श्रीकृष्णके साथ खेल रहे थे। तभी उन्होंने यशोदाके समीप आकर सूचित किया—“अरी मैया! श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है ॥” ३२ ॥

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी।

यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥

पुत्रका हित चाहनेवाली माता यशोदाने श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया (कि कहीं यह भाग न जाय) और उसे डाँटने लगीं। उस समय श्रीकृष्णकी आँखें भयसे चकित होकर इधर-उधर देख रही थीं। (परमेश्वरकी भय-विह्वलता उनका भूषण है।) ॥ ३३ ॥

श्रीयशोदा उवाच—

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः।

वदन्ति तावका ह्येते कुमारस्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥

मैयाने डाँटते हुए पूछा—क्यों रे नटखट! ओ चञ्चल-चित्त! तुमने मुझसे छिपकर एकान्तमें मिट्टी क्यों खायी? हमारे घरमें मिश्री-खण्डोंकी कमी है क्या? तुम बहुत ढीठ हो गये हो। तुम्हारे सभी सखा यही कह रहे हैं। अच्छा, यदि वे तुम्हारे शत्रु हैं, तो तुम्हारे बड़े भैया बलदाऊ भी तो यही कह रहे हैं? ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे! मिथ्याभिशंसिनः।

यदि सत्यगिरस्तिर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्णने कहा—अरी मैया! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये सब मिथ्यावादी हैं। यदि तुम इन्हींकी बात सत्य मानती हो, तो अपनी आँखोंसे ही साक्षात् मेरा मुख देख लो ॥ ३५ ॥

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः।

व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥

यशोदाने कहा—यदि मिट्टी नहीं खायी है, तो मुख खोलो। माता यशोदाके इस प्रकार कहनेपर मनुष्य-बालकरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णने अपना मुख खोल दिया। परीक्षित्! भगवान्का ऐश्वर्य अबाध एवं अनन्त है। वे केवल लीलाके लिए ही मनुष्यके बालक जैसे बने हुए हैं। माधुर्य-लीलामें ऐश्वर्यका आदर न होनेपर भी यह ऐश्वर्य उपयुक्त कालमें स्वतः ही प्रकाशित होता है ॥ ३६ ॥

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः ।
 साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥
 ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च ।
 वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥

एतद्विचित्रं सह जीवकाल-
 स्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
 सूनुस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये
 व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ ३९ ॥

यशोदादेवीके कहनेसे कृष्णने मुख खोला, तो उन्हें कृष्णके जठरमें सम्पूर्ण विश्व दिखायी दिया। उसमें स्थावर, जङ्गम, अन्तरीक्ष लोक, दिशाएँ, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूतल, वायुका प्रवाह, अग्नि, चन्द्रमा, तारे, ज्योतिष्चक्र, जल, तेज, पवन, आकाश, अहङ्कारसे उत्पन्न समस्त भूत, समस्त इन्द्रियाँ, मन, तन्मात्राएँ, सत्त्व, रज, तम एवं जीव, काल, स्वभाव, कर्म, संस्कार और आशयकृत चराचर शरीर भेदसे युक्त यह विचित्र विश्व एक ही साथ मुखमें दिखायी दिये। उन्होंने स्वयंको, अपने पतिको एवं अपने पुत्रादिके साथ सम्पूर्ण व्रजमण्डलको एक साथ देखा। माँ यशोदाजी यह सब देखकर पुत्रके अनिष्टकी आशङ्कासे डर गयीं ॥ ३७-३९ ॥

किं स्वप्न एतदुत देवमाया
 किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
 अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य
 यः कश्चनौत्पत्तिकः आत्मयोगः ॥ ४० ॥

वे मन-ही-मन वितर्क करने लगीं कि यह स्वप्न है अथवा देवमाया? अथवा मेरी ही बुद्धिमें कोई भ्रम तो नहीं हो गया है? अथवा मेरे पुत्रमें ही कोई जन्मजात (स्वाभाविक) अचिन्त्य योगसिद्धि है? ॥ ४० ॥

अथो यथावन्नवितर्कगोचरं
 चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ।
 यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते
 सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥

चित्त, मन, कर्म एवं वाणीके द्वारा यथार्थरूपसे जो तर्कके विषय नहीं होते, जो सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं, जो इस जगत्के प्रेरक हैं और जिनकी सत्तासे इस जगत्के अस्तित्वकी प्रतीति अनायास ही होती है, मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। मैं उनका स्मरण, चिन्तन तथा ध्यान करनेमें असमर्थ हूँ, वे सम्पूर्ण रूपसे चिन्तनके परे हैं, सर्वथा अचिन्त्य हैं। वे मेरे पुत्रके अनिष्टको समस्त प्रकारसे प्रशमित करें ॥ ४१ ॥

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो
 ब्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।
 गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे
 यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥

“नन्द महाराज मेरे पति हैं, सम्पूर्ण ब्रजमण्डलका प्राणस्वरूप श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है, मैं ब्रजराजकी समस्त सम्पदाओंकी अधिष्ठात्री महिषी और रक्षाकर्त्री हूँ, गोधन-सहित गोपी, गोप, सब मेरे अनुगत हैं”, जिनकी मायासे मेरी ऐसी कुमति हो गयी है, वे ही भगवान् मेरे एकमात्र आश्रय हों ॥ ४२ ॥

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
 वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥

अब यशोदा श्रीकृष्णके यथार्थ स्वरूपके विषयमें जान गयीं। पारमार्थिक प्रसङ्गवश उनमें पुत्रके प्रति ममत्व-त्यागकी भावना जाग उठी। (श्रीकृष्ण सोचने लगे—मेरा लालन-पालन कौन करेगा?) तब उन्होंने स्वरूपशक्ति योगमाया द्वारा पुत्रस्नेहमयी यशोदाके हृदयमें पुत्र-मोहका सञ्चार करा दिया। यशोदा वात्सल्य-प्रेम-सागरमें डूबने-उतरने लगीं ॥ ४३ ॥

सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम्।

प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीत् यथा पुरा ॥ ४४ ॥

वे वैष्णवी मायाके सञ्चरित होनेपर तत्क्षण ही विश्वरूप-दर्शनकी घटनाको ऐसे भूल गयीं, जैसे कोई स्वप्नमें देखी वस्तुको भूल जाता है। उनके हृदय-सागरमें पहलेके ही समान अतिशय स्नेहकी तरङ्गें हिलोरें लेने लगीं। उन्होंने अपने लाड़ले लालको गोदमें उठा लिया ॥ ४४ ॥

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।

उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥

तीनों वेद यज्ञपुरुषके रूपमें, उपनिषद् ब्रह्मके रूपमें, सांख्य पुरुष-रूपमें, योग परमात्मा-रूपमें और सात्वत शास्त्र अर्थात् नारद पञ्चरात्र आदि भक्तियोगपरक शास्त्र भगवत्-रूपमें जिन श्रीहरिके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, यशोदा उन श्रीहरिको अपना पुत्र मानती थीं। उनके मनमें यही विचार आता था कि मेरे व्रत, नियम एवं निरन्तर पूजनादिसे तथा मेरे श्वसुर पर्जन्य महाराजकी तपस्यासे परम सन्तुष्ट होकर श्रीनारायणने मुझे ऐसा लोकोत्तर पुत्र प्रदान किया है ॥ ४५ ॥

श्रीराजोवाच—

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।

यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! नन्दबाबाने ऐसा कौन-सा मङ्गलमय साधन किया था, जिससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त हुए थे और महाभाग्यवती यशोदादेवीने भी ऐसी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भगवान्ने अपने मुखसे उनका स्तन्य-पान किया? ॥ ४६ ॥

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम्।

गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥

श्रीकृष्णका यह बाल-चरित कलि-कल्मषका नाश करनेवाला है। यह इतना पवित्र है कि त्रिकालदर्शी ज्ञानी पुरुष आज तक उसका श्रवण-कीर्तन करते रहते हैं। देवकी एवं वसुदेवजी भी श्रीकृष्णकी जिन उदार बाल्य-लीलाओंको देख तक न पाये, उसीका आस्वादन करके नन्द-यशोदा परम आनन्दको प्राप्त कर रहे हैं। यशोदाजी और नन्द महाराजने ऐसे कौन-से शुभ आचरण किये थे, जिनसे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए थे ? ॥ ४७ ॥

श्रीशुक उवाच—

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया भार्यया सह।

करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—नन्दबाबा पूर्वजन्ममें एक श्रेष्ठ वसु थे, उनका नाम द्रोण था और उनकी भार्याका नाम धरा था। उन्होंने ब्रह्माजीके आदेशका पालन करनेकी इच्छासे उनसे कहा— ॥ ४८ ॥

जातयोर्नो महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ।

भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥

हे देव! परवर्ती कालमें जब हम पृथ्वीपर जन्म-ग्रहण करें, तो समस्त ईश्वरोंके अधीश्वर, विश्वेश्वर, देवाधिदेव श्रीहरिके चरणोंमें हमें परमा भक्ति प्राप्त हो, जिस भक्तिके प्रभावसे जीव पृथ्वीपर अनायास ही समस्त दुःखोंको पार कर जाते हैं। (ऐसा वरदान दीजिये।) ॥ ४९ ॥

अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः।

जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥ ५० ॥

इसके बाद ब्रह्माने 'तथास्तु' कहकर वर प्रदान किया। महाभाग्यवान् द्रोण व्रजपुरमें महायशस्वी नन्दके रूपमें प्रसिद्ध हुए और उनकी पत्नी धराने यशोदादेवीके रूपमें जन्म लिया। (साधनसिद्ध धरा एवं द्रोण नित्यसिद्ध यशोदा एवं नन्दमें प्रविष्ट हो गये थे।) ॥ ५० ॥

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने।

दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

हे भरतकुल-तिलक परीक्षित्! तदनन्तर नन्द और यशोदाके पुत्रके रूपमें भगवान् जनार्दन प्रकट हुए। समस्त गोप-गोपियोंमें नन्द-यशोदाकी उनके प्रति अधिक भक्ति थी। वस्तुके स्वभावके कारण अन्यान्य सभी गोप एवं गोपियोंकी भी उनके प्रति भक्ति नन्द-यशोदाके आनुगत्यमें थी ॥ ५१ ॥

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः।

सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये

पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे

विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्रह्माजीके वरदानको सत्य करनेके लिए सर्वव्यापक स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ व्रजमें वासकर अपनी विविध मनोहर बाल-लीलाओंसे समस्त व्रजवासियोंको परम आनन्द प्रदान किया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके आठवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

नवमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी दाम-बन्धन लीला

श्रीशुक उवाच—

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि॥ १ ॥
यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—दीपमालिका महोत्सव था। जिनका एक कान श्याम रङ्गका था—अश्वके समान ऐसी दुष्प्राप्य ब्रजराज नन्दमहाराजकी असंख्य गायोंमें अति सुस्वादु दूध देनेवाली पयस्विनी तथा पद्मगन्धिनी सात-आठ गायें थीं। इनका दूध मेरे पुत्रको रुचिकर लगेगा (दूसरोंके घर चोरी नहीं करेगा)—यह विचार करके घरकी दासियोंको दूसरे कामोंमें नियुक्त करके नन्दरानी यशोदादेवी स्वयं दधि-मन्थन करने लगीं और मन्थन करती हुई श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका स्मरणपूर्वक गान करने लगीं॥ १-२ ॥

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पञ्च सुभ्रूः।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च
स्वित्रं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ॥ ३ ॥

सुन्दर भौंहोंवाली यशोदादेवी अपने स्थूल कटिभागमें काज्वीसे (सूतसे) बँधा हुआ सूक्ष्म पीले रङ्गका रेशमी लहङ्गा पहने हुए थीं। विशाल नितम्ब प्रान्तपर करधनी सजी हुई थी। दधिमन्थन करते हुए मन्थन-दण्डकी (मथानीकी) रस्सी खींचनेके कारण दोनों भुजाएँ थकी-सी हो रही थीं, जिनमें सुशोभित कङ्कणोंके परस्पर टकरानेसे खनखनाहटकी सुमधुर ध्वनि उत्पन्न हो रही थी। सर्वाङ्ग चालित होनेके कारण कानोंमें धारण किये हुए दोनों कुण्डल

दोलायमान हो रहे थे। पुत्र स्नेहकी अधिकतासे स्तनोंसे दूध स्वतः क्षरित हो रहा था। मुख-मण्डलपर पसीनेकी बूँदें झिलमिला रही थीं और चोटीमें गुँथे हुए मालतीके सुन्दर पुष्प ऐसे झड़ रहे थे, मानो जलकी बूँदें गिर रही हों॥ ३॥

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्यन्तीं जननीं हरिः।

गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन्॥ ४॥

उसी दिवसके प्रातःकालमें कृष्ण शय्यासे उठे और स्तन्य-पानकी अभिलाषासे दधि-मन्थनमें व्यस्त माताके समीप आये। प्रेम एवं आनन्दको बढ़ानेके लिए उन्होंने यशोदाजीकी मथानीको पकड़ लिया और उन्हें दधि-मन्थनसे रोक दिया॥ ४॥

तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं

स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम्।

अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया-

वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते॥ ५॥

श्रीकृष्ण माता यशोदाकी गोदीमें चढ़ गये। वात्सल्य स्नेहातिशयके कारण यशोदा मैयाके स्तनोंसे दूध स्वतः ही झर रहा था। वे उन्हें स्तन्य-पान कराने लगीं और मन्द-मन्द मुस्कानसे युक्त उनका मुख निहारने लगीं। इसी समय चूल्हेके ऊपर रखा हुआ दूध आगके तापके कारण उफनकर नीचे गिरने लगा। यह देखकर यशोदाजीने कृष्णको गोदीसे उतार दिया और दूध सँभालनेके लिए जल्दीसे दौड़ पड़ीं। श्रीकृष्ण अतृप्त ही रह गये॥ ५॥

सञ्जातकोपः स्फुरितारुणाधरं

सन्दश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम्।

भित्त्वा मृषाश्रुर्दूषदश्मना रहो

जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः॥ ६॥

इससे श्रीकृष्णको कुछ क्रोध आ गया। उनके लाल-लाल होंठ फड़कने लगे, जिन्हें दाँतोंसे दबाकर श्रीकृष्णने समीपस्थ लोढ़ेको उठाया और दधिके मटकेके निचले भागमें मारकर छेद कर

डाला, जिससे शब्द न हो। उन्होंने बनावटी आँसू आँखोंमें भर लिये तथा दूसरे कक्षमें जाकर अकेले ही नवनीत (ताजा माखन) खाने लगे ॥ ६ ॥

उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः
प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम्।
भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म त-
ज्जहास तज्वापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥

इधर यशोदादेवीने उफनते हुए दूधको चूल्हेसे नीचे उतारा और उसी मन्थन-स्थलीपर चली आयीं। उन्होंने देखा कि दधि-भाण्ड फूट गया है, और कृष्ण भी इधर दिखायी नहीं दे रहा है। तब वे बायें हाथकी तर्जनीको नाकके अग्रभागपर रखकर यह अनुमान करके हँसने लगीं कि यह मेरे लालाका ही कर्म है ॥ ७ ॥

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं
मर्कय कामं ददतं शिवि स्थितम्।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं
निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥

वे कृष्णको इधर-उधर ढूँढ़ने लगीं। जैसे ही उन्हें कृष्णके दधिसे संलग्न (सने) चरण-चिन्ह दिखायी दिये और उनकी किङ्किणीकी झङ्कार सुनायी दी, तब वे उस घरमें पहुँचीं, जहाँ श्रीकृष्ण उलटे रखे ऊखलपर खड़े थे और छींकेपर स्थित नवनीतको बन्दरोंके उद्देश्यसे भर-भर हाथ लुटा रहे थे। माखन-चोरी करनेके कारण कहीं कोई देख न ले, इस आशङ्कासे वे चौकन्ने होकर इधर-उधर ताकते भी जा रहे थे। उन्हें यह सब करते देख यशोदा पीछेसे धीरे-धीरे, चुप-चाप उनके समीप जा पहुँचीं ॥ ८ ॥

तामात्तयर्षिं प्रसमीक्ष्य सत्वर-
स्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत्।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां
क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णने माताको हाथमें छड़ी लिये वहाँ उपस्थित देखा, तो शीघ्र ही ऊखलसे कूद पड़े और भयभीतकी भाँति वहाँसे भागने लगे। हे परीक्षित्! समाधियुक्त योगीगण तपोबलसे प्रेरित चित्तमें ब्रह्ममें लीन होनेकी योग्यता होनेपर भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर पाते, उन्हीं पुत्र कृष्णको पकड़नेके लिए यशोदादेवी उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़ीं ॥ ९ ॥

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चल-

च्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा।

जवेन विस्त्रंसितकेशबन्धन-

च्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥

वे श्रीकृष्णके पीछे-पीछे दौड़ती जा रही थीं। नितम्बोंकी स्थूलताके कारण सुमध्यमा (पतली कमरवाली) यशोदाकी गति धीमी पड़ गयी। वेगसे दौड़नेके कारण उनकी वेणीकी गाँठ भी ढीली पड़ गयी। वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जातीं, त्यों-त्यों वेणीमें गूँथे हुए पुष्प झड़ते हुए उनका अनुगमन करते जाते थे। दौड़ते-दौड़ते अन्ततः उन्होंने कृष्णको पकड़ ही लिया ॥ १० ॥

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी

कषन्तमञ्जन्मसिनी स्वपाणिना।

उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं

हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥ ११ ॥

माँ यशोदाने अपराधी बालकका दायाँ हाथ पकड़ लिया, तो वह बायें हाथके पीछेके भागसे आँखोंको रगड़ने लगा। उसके नेत्रोंमें लगा हुआ अञ्जन आँसुओंके साथ मुखपर सर्वत्र फैल गया। यशोदाको देखकर उसके दोनों नेत्र भयसे विह्वल हो गये। यशोदाने उसका हाथ पकड़े हुए भय दिखानेके लिए छड़ी ऊपर उठायी और डाँटने लगी—अरे नटखट! वानरबन्धो! मटकी फोड़नेवाले! अब तू मक्खन कहाँसे लेगा? आज तुझे ऐसा बाँधूंगी कि न तू ग्वाल-बालोंके साथ खेल पायेगा और न ही माखन चुरा सकेगा ॥ ११ ॥

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला।

इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा॥ १२॥

कृष्णने कहा, “माँ, मुझे मत मार।” यशोदा बोली—“यदि पिटनेका इतना ही डर है, तो आज दधि-मटकी क्यों फोड़ी?” कृष्णने उत्तर दिया, “माँ, ऐसा कभी नहीं करूँगा, अपने हाथसे इस छड़ीको फेंक दे।” पुत्रके कातर वचनोंसे माताका हृदय विकल हो गया। “कहीं यह दुःखी मनके कारण वनमें चला गया तो...”—यह सोचकर उन्हें अटकाकर रखनेका कोई उपाय सोचने लगीं। पुत्र-वात्सल्यके कारण एवं उन्हें डरा हुआ देखकर माँने छड़ी फेंक दी और उन्हें रस्सीसे बाँधनेकी इच्छा करने लगीं। यशोदा-पुत्रके असीम प्रभावसे अज्ञात थीं। माधुर्य भावकी अतिशयताके सम्मुख कृष्णके ऐश्वर्यकी स्फूर्ति व्रजमें इसी प्रकार अदृश्य होती रहती थी॥ १२॥

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।

पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥ १३॥

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्।

गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥ १४॥

सर्वव्यापक होनेके कारण जिनमें न बाहर है, न भीतर। रस्सीके द्वारा सीमायुक्त वस्तुका बन्धन सम्भव है, किन्तु जो सर्वव्यापक हैं, उनपर कहाँ रस्सी रहेगी और कहाँ उनका आवरण होगा? पूर्व-पश्चात् कालका भी व्यवधान जिनमें नहीं है अर्थात् जो सर्वकाल (नित्य) विराजमान रहते हैं, जो जगत्के कार्य और कारण हैं—कार्य और कारणके अभेदसे जो जगत्स्वरूप हैं, अतः जगत्की अंशांशरूप सामान्य रस्सी उन्हें किस प्रकार बाँध सकती है? जो अव्यक्त हैं—प्रेमवश्यत्वके कारण जिनका महान् ऐश्वर्य प्रच्छन्न रहता है—उन्हीं अव्यक्त मनुष्याकृति श्रीकृष्णको अपना पुत्र मानकर यशोदा साधारण बालकके समान ऊखलसे बाँधना चाहती हैं! चित्-पुञ्जका बन्धन—अहो! माँ यशोदाका प्रेम!॥ १३-१४॥

तद्वाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः।

द्व्यङ्गुलोनमभूत् तेन सन्दधेऽन्यच्च गोपिका॥ १५ ॥

जब यशोदा मैया अपने नटखट और उपद्रवी (ऊधमी) पुत्रको बाँधने लगीं, तब बाँधनेकी रस्सी दो अङ्गुल परिमाणमें छोटी हो गयी। तब यशोदा उसके साथ दूसरी रस्सी जोड़ने लगीं। तभी श्रीकृष्णकी सत्यसङ्कल्पता शक्तिसे प्रेरित विभुता शक्ति शीघ्र ही उनकी देहमें प्रकट हो गयी॥ १५ ॥

यदाऽसीत् तदपि न्यूनं तेनान्यदपि सन्दधे।

तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम्॥ १६ ॥

वह रस्सी भी दो अङ्गुल छोटी पड़ गयी, तब उन्होंने पुनः उसके साथ दूसरी रस्सी जोड़ी, लेकिन वह भी छोटी पड़ गयी। इस प्रकार वे जितनी भी रस्सियाँ लेती गयीं और जोड़ती गयीं, वे सभी-की-सभी दो-दो अङ्गुल छोटी पड़ती गयीं॥ १६ ॥

एवं स्वगेहदामानि यशोदा सन्दधत्यपि।

गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत्॥ १७ ॥

यशोदाने अपने घरकी सारी रस्सियाँ जोड़ लीं और उन्हें बाँधनेका भरपूर प्रयास कर लिया, तब भी वे भगवान् श्रीकृष्णको बाँध न सकीं। यह देख पड़ोसिन गोपियाँ हँसने लगीं और यशोदाजी भी हँसती हुई आश्चर्यचकित हो गयीं। इसका मुड्डी भरका उदर और सौ हाथ लम्बी रस्सीसे बँधता नहीं! हर बार रस्सी दो अङ्गुल ही कम क्यों रह जाती है?॥ १७ ॥

स्वमातुः स्वित्रगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत् स्वबन्धने॥ १८ ॥

अत्यधिक श्रमके कारण यशोदाका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। पड़ोसिन गोपी उनसे कहने लगी कि मणिमय छोटी-सी करधनीसे तो इसकी कमर बँधी हुई है, पर घरकी सारी रस्सियाँ छोटी पड़ रही हैं? लगता है यशोदे! विधाताने इसके ललाटमें बन्धन लिखा ही नहीं है। यह तुम्हारे बालकका शुभलक्षण है।

यशोदा बोलीं—प्रातःकालसे सन्ध्याकाल तक गाँवकी समस्त रस्सियाँ जोड़कर इसके उदरकी सीमा जानना चाहती हूँ। अन्ततः भक्तके हठकी विजय हुई। भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि माता शिथिल हो रही है, चोटीमें संलग्न समस्त पुष्प भी झड़ रहे हैं, तो उन्होंने उनके प्रति अत्युज्ज्वल कृपा-वर्षण किया। विभुता ऐश्वर्यशक्ति वहाँसे अन्तर्धान हो गयी और श्रीकृष्ण पहली वाली रस्सीसे ही अर्थात् यशोदाकी केश-वेणीकी डोरीसे ही बँध गये॥ १८ ॥

एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता।

स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥ १९ ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र हैं। ब्रह्मा, शिव और इन्द्र आदिके साथ यह सम्पूर्ण जगत् उनके वशीभूत है, तथापि इस प्रकार बँधकर उन्होंने संसारको यह दिखला दिया कि वे अपने प्रेमी भक्तोंके वशीभूत हैं। (चित्-शक्तिके सार प्रेमके द्वारा कृष्णको अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। परम ऐश्वर्य विद्यमान रहनेपर भी प्रेमवश्यता भूषण है, दूषण नहीं। इस लीलामें बन्धनकी चमत्कारिता दिखलायी गयी है। आत्माराम होनेपर भी क्षुधा, पूर्णकाम होनेपर भी अतृप्ति, शुद्धसत्त्व होनेपर भी कोप, सर्वेश्वर्यसे पूर्ण होनेपर भी चौर्य, महाकाल एवं यमादिको भयप्रद होनेपर भी भय एवं पलायन, मनसे वेगवान होकर भी माता द्वारा बलपूर्वक ग्रहण, आनन्दमय होनेपर भी दुःखसे रोदन और सर्वव्यापक होनेपर भी बन्धन। दामोदर-लीला अद्भुत है।)॥ १९ ॥

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।

प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥ २० ॥

ग्वालिनी यशोदाने जगत्के मुक्तिदाता श्रीकृष्णसे जिस प्रकार अनुग्रह प्राप्त किया था, ब्रह्माजीने पुत्र और भक्तोंके आदिगुरु होकर भी, महेश्वरने परम आत्मीय एवं सर्वश्रेष्ठ वैष्णव होनेपर भी एवं भगवान्के वक्षःस्थलपर सर्वदा विलास करनेवाली अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीदेवीने भी ऐसा कृपा-प्रसाद प्राप्त नहीं किया था॥ २० ॥

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।

ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥

गोपिकासुत (यशोदा-दुलाल) भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके लिए जिस प्रकारसे सुलभ हैं, देहाभिमानी तपस्वियों अथवा ज्ञानियोंके लिए भी वे उस प्रकार सुलभ नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि तपस्वी अथवा ज्ञानी अति कष्टसे भगवान्को प्राप्त कर भी लें, परन्तु वे उनका असम्यक् अथवा आंशिक प्रभाव ही जान पाते हैं ॥ २१ ॥

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः।

अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२ ॥

इसके बाद नन्दरानी यशोदा तो घरके कामोंमें व्यस्त हो गयीं। तब मुक्तिप्रदाता, ब्रह्माण्डभाण्डोदर भगवान् श्यामसुन्दरने स्वयं बन्धनमें रहकर भी इस जन्ममें यमल-अर्जुन वृक्षमें परिणत यक्षराज कुबेरके पूर्वजन्मके दोनों पुत्रोंको बन्धनसे मुक्त करनेका विचार किया। देव-योनिविशेषमें जन्म लेनेके कारण इन्हें गुह्यक कहा गया है ॥ २२ ॥

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात्।

नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे उलूखलबन्धनं नाम

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

कुबेरके ये दोनों पुत्र पूर्वजन्ममें नलकूबर एवं मणिग्रीव नामसे विख्यात थे और बड़े सौभाग्यवान् थे। इनके पास धन, सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यकी पूर्णता थी। बादमें घमण्डके कारण इन्हें नारद मुनिने अभिशाप दे दिया था और ये वृक्ष हो गये थे ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके नवम अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

दशमोऽध्यायः

यमलार्जुनका उद्धार

श्रीराजोवाच—

कथ्यतां भगवन्नेतत् तयोः शापस्य कारणम्।

यत् तद् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥

महाराज परीक्षित्ने पूछा—हे परमाराध्य मुनिवर! आप यह बतलाइये कि देवर्षि नारदने इन दोनों कुबेर-पुत्रोंको किस कारणसे शाप दिया? उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था, जिससे परम शान्त देवर्षि नारदजीको भी क्रोध आ गया? ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ।

कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ।

स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चैरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्! ये दोनों धनाध्यक्ष कुबेरके बड़े लाड़ले पुत्र थे और रुद्रके अनुचरोंमें भी माने-जाने लगे थे, जिससे इन्हें बड़ा अभिमान हो गया था। ये अत्यन्त मदमस्त हो गये थे। एक दिन ये दोनों कैलाश पर्वतपर स्थित सुरम्य उपवनमें मन्दाकिनीके किनारे वारुणी मदिरा पीकर उन्मत्त-से होकर विचरण कर रहे थे, मदसे उनकी आँखें घूम रही थीं। वहींपर पुष्पोंसे सुशोभित वन था। बहुत-सी स्त्रियाँ भी वहाँपर गा-बजा रही थीं। ये भी उनके साथ गा रहे थे और उच्छृंखल होकर उनके साथ विहार कर रहे थे ॥ २-३ ॥

अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि।

चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥

वहाँ भगवती गङ्गाजी पद्मवनसे सुशोभित हो रही थीं। पद्मवनमें कमल-पुष्पोंकी क्यारियाँ उत्फुल्ल हो रही थीं अर्थात् पाँत-के-पाँत कमल खिले हुए थे। वे उन नवयुवतियोंको साथ लेकर गङ्गाजीके जलमें प्रवेश कर गये और उनके साथ तरह-तरहकी क्रीड़ा करते हुए इस प्रकार विहार करने लगे, जैसे उन्मत्त हाथी हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करता है॥ ४॥

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव।

अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत॥ ५॥

हे परीक्षित्! उसी समय परमपूज्य देवर्षि नारद संयोगवश उन दोनोंकी भक्ति-उन्मुखी किसी प्रकारकी सुकृतिके फलसे उधर ही आ निकले। वे इन दोनों यक्ष-कुमारोंको देखकर ही समझ गये कि मदिरापानके कारण ये उन्मत्त हैं। मदमत्त अवस्थामें मेरी कृपाका फल प्राप्त नहीं होगा, पहले मुझे इनकी मदमत्तता दूर करनी चाहिये॥ ५॥

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः।

वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ॥ ६॥

हे परीक्षित्! उस समय जैसे ही वस्त्रहीन देवकन्याओंने परम समर्थ नारदको देखा, तो वे लज्जित हो गयीं और अभिशापसे भयभीत होकर झटपट अपने-अपने कपड़े पहन लिये, किन्तु इन दोनों यक्षोंने नगनावस्था होनेपर भी वस्त्र धारण नहीं किये॥ ६॥

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ।

तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ॥ ७॥

जब देवर्षि नारदने देखा कि यक्षराज कुबेरके ये दोनों पुत्र ऐश्वर्य-मदसे अन्ध एवं मदिरासे मत्त हो रहे हैं, तब उन्होंने उनपर कृपा करनेके लिए शाप देते हुए उच्च स्वरसे कहा—॥ ७॥

श्रीनारद उवाच—

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः।

श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्री द्यूतमासवः॥ ८॥

श्रीनारदने कहा—जो पुरुष अपने प्रिय विषयोंके सेवनमें आसक्त रहते हैं, उनका धन-गर्व उनकी बुद्धिको नष्ट कर देता है। धन-सम्पत्तिका मद जिस प्रकार बुद्धिको भ्रष्ट करता है, कुलीनता, विद्या, नृत्य-गीत आदिसे बुद्धि उस प्रकार भ्रष्ट नहीं होती। धनका मद उत्पन्न होनेपर स्त्री-सम्भोग, जुआ एवं मद्यपानादि पाप-कृत्य निरन्तर चलते ही रहते हैं ॥ ८ ॥

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः।

मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥

जिन्हें ऐश्वर्यमद और श्रीमद हो जाता है, ऐसे अपनी इन्द्रियोंके वशीभूत, अजितात्मा, निर्दय, क्रूर व्यक्ति इस नश्वर देहको जरा एवं मृत्युसे रहित अजर-अमर मान लेते हैं तथा उपभोग एवं चित्त-विनोदनके लिए अपने ही जैसे शरीरवाले पशुओंकी हत्या करते हैं ॥ ९ ॥

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड् भस्मसंज्ञितम्।

भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ १० ॥

जीवित रहते समय जिस शरीरको देव, नरदेव, भूदेव इत्यादि देवता नामोंसे कहा जाता है, वही मृत्युके पश्चात् कृमि, विष्टा अथवा भस्मरूपमें परिणत हो जाता है। इस प्रकार नाशवान् शरीरकी तृप्तिके लिए जो व्यक्ति प्राणियोंकी हिंसा करते हैं अथवा उनसे द्रोह करते हैं, इससे उनका कौन-सा स्वार्थ सिद्ध होता है? प्राणी-हिंसाके कारण तो अन्तिम कालमें नरककी ही प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च।

मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥

जरा बतलाओ तो सही, यह शरीर किसकी सम्पत्ति है? अन्न देकर पालन-पोषण करनेवालेकी या गर्भाधान करनेवाले पिताकी? उसे नौ महीने गर्भमें धारण करनेवाली माताकी या विवाहके अवसर पर कन्यादान करनेवाले माताके भी जन्मदाता नानाकी,

मूल्य देकर बन्धक बना लेनेवाले खरीददारकी या बलपूर्वक ग्रहण करके अपना दास बना लेनेवालेकी, प्राणोंके अन्तमें जला देनेवाली अग्निकी या खा जानेवाले कुत्ते-सियारोंकी अथवा स्वयंकी—यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अतएव इस विषयमें अनेक संशय रहनेसे देहमें मैं-मेरा—इस प्रकारका अभिमान नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम्।

को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥

अव्यक्त अथवा प्रकृतिसे इस देहकी उत्पत्ति होती है एवं प्रकृतिमें ही इसका लय हो जाता है। यह देह अति साधारण भोग्य वस्तु है। इस जड़-देहको 'मैं' मानकर उसकी प्रीतिके लिए जीव-हिंसा करना, दूसरोंको कष्ट पहुँचाना आदि कार्य क्या दुर्जनों और पशुओंके अतिरिक्त कोई बुद्धिमान व्यक्ति कर सकता है ? ॥ १२ ॥

असतः श्रीमदान्धस्य दरिद्र्यं परमञ्जनम्।

आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥

धनके मदसे अन्ध दुर्जन व्यक्तिके लिए दरिद्रता ही सर्वश्रेष्ठ अञ्जन-स्वरूप है, क्योंकि दरिद्रता लोगोंके गर्वान्धभावको दूरकर आँखोंमें ज्योति (ऐश्वर्य-गर्व-रूप रोगके प्रतिकारके लिए यथार्थ दृष्टि) प्रदान करती है। दरिद्र व्यक्ति ही अच्छी तरहसे यह देख सकता है कि दूसरे प्राणी भी मेरे जैसे ही हैं ॥ १३ ॥

यथा कण्टक विद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम्।

जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाविद्धकण्टकः ॥ १४ ॥

जिसका शरीर स्वयं कभी काँटेसे बिद्ध हुआ हो, वही व्यक्ति दूसरेके मुखपर उदासी एवं मलिनताकी छाया देखकर समझ सकता है कि यह व्यक्ति भी उसी पीड़ासे व्यथित है। पूर्वानुभूत स्वयंकी व्यथाके अनुमानसे ही दूसरोंकी वेदनाको समझा जा सकता है। अतः काँटेसे बिंध जानेसे उत्पन्न व्यथा दूसरोंको भी

हो, वे ऐसी दुर्भावना कभी नहीं रखते। जिसे कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह दूसरेकी पीड़ाका अनुमान भी नहीं कर सकता। वस्तुतः दुःखकी पीड़ा सभीको समान होती है॥ १४॥

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह।

कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः॥ १५॥

अहङ्कार-रहित, समस्त प्रकारके उद्वण्डितापूर्ण भावोंसे मुक्त दरिद्र व्यक्ति इस लोकमें आहार एवं वस्त्रादिका स्वभावतः अभाव होनेके कारण कष्टका अनुभव करता है। उसकी इसी दारिद्र्य-दशामें मोक्ष-साधन-तपस्यादि स्वाभाविकरूपसे होते रहते हैं—उनके कष्ट ही परम तपस्या-स्वरूप हैं। सभीके द्वारा अपमानित होनेके कारण दरिद्रका सत्कुल, विद्या आदिका अभिमान नष्ट होता जाता है॥ १५॥

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः।

इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते॥ १६॥

दरिद्र व्यक्तिको सदैव अन्नकी इच्छा बनी रहती है, भूखके कारण उसका शरीर क्षीण होता जाता है, उसकी सारी इन्द्रियाँ उत्तेजनासे रहित होती हैं, कोई विषय-भोगकी इच्छा न होनेके कारण वे स्थिर हो जाती हैं। अतः वह अपने इन्द्रिय-तर्पणके लिए किसीकी भी हिंसा नहीं करता। (इसलिए दारिद्र्य वस्तुतः तपस्या-स्वरूप है।)॥ १६॥

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः।

सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति॥ १७॥

यद्यपि साधु समदर्शी होते हैं, फिर भी उनका मिलना दरिद्रके लिए सहज सुलभ है। दरिद्रताके कारण विषय-भोग तो पहलेसे ही छूटे हुए होते हैं। साधु-सङ्गसे, उनके साथ सम्भाषण आदिसे उसकी विषय-तृष्णाका भी क्षय हो जाता है तथा चित्त भी शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है॥ १७॥

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम्।

उपेक्षैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥

जिनका चित्त एकमात्र भगवान्‌के चरणकमलोंके मकरन्द रस-पानके लिए अभिलषित रहता है, ऐसे समदर्शी साधुओंको धनके गर्वीले, दुराचारियोंके साथ रहनेवाले, दुर्गुणोंकी खान, असत् धनवानोंसे क्या प्रयोजन है? धनिक तो साधुओंकी उपेक्षाके ही पात्र हैं ॥ १८ ॥

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः।

तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥ १९ ॥

इन दोनों यक्षोंने माध्वी वारुणी मदिराका पान कर रखा है। ये धनके गर्वसे अन्धे और मदिरा-पानसे मतवाले हो रहे हैं। विषयोंसे मदान्ध, स्त्री-लम्पट, इन्द्रियोंके अधीन रहनेवाले इन दोनोंके अज्ञान-जनित मदको मैं अभी चूर्ण-विचूर्ण कर देता हूँ ॥ १९ ॥

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ।

न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ २० ॥

अतोऽर्हतः स्थावरतां नैवं यथा पुनः।

स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥

वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते।

वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥

ये दोनों लोकपाल कुबेरके पुत्र होकर भी मदिरा-पान करके उन्मादित हो रहे हैं, गर्वकी अधिकता इतनी है कि इन्हें अपने शरीरकी नग्नताका भी भान नहीं हो रहा है। इस अपराधके कारण इन्हें निरावरणत्व एवं स्थावरत्व प्राप्त करना ही उपयुक्त है। स्थावरत्वकी प्राप्तिके पश्चात् ये दोनों पुनः ऐसे अपराध न करें; इसलिए मेरे अनुग्रहसे इनकी पूर्व स्मृति भी बनी रहेगी। दोनोंको वृक्षयोनि प्राप्त होनेपर शत दैव-वर्षोंकी आयुके पश्चात्

इन्हें श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त होगा। तब ये पुनः देवत्वको प्राप्त होंगे और कृष्ण-भक्तिपरायण होकर अपने लोकमें चले जायेंगे ॥ २०-२२ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम्।

नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—देवर्षि नारद इस प्रकार कहकर नर-नारायणके आश्रमकी ओर चले गये और नलकूबर एवं मणिग्रीव दोनों एक साथ ही निरावरणरूपसे स्थावरत्वको प्राप्त करके यमलार्जुन वृक्ष बन गये ॥ २३ ॥

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः।

जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण परम-भागवत श्रीनारद मुनिके वचनको सत्य करनेके लिए जिस स्थानपर यमलार्जुन वृक्ष थे, उधर ही ऊखल घसीटते हुए धीरे-धीरे चले ॥ २४ ॥

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ।

तत् तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥

देवर्षि नारद मेरे परम प्रिय भक्त हैं एवं ये दोनों भी मेरे ही भक्त कुबेरके पुत्र हैं। महामना नारदने पहले जैसा कहा था, मैं तदनुसार इनका उद्धार साधित करूँगा ॥ २५ ॥

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णास्तु यमयोर्ययौ।

आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन वृक्षोंके मध्यमें प्रविष्ट हो गये और दूसरी ओर निकल गये। उनके प्रवेश मात्रसे ही ऊखल टेढ़ा होकर वहीं अटक गया ॥ २६ ॥

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्

दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ।

निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेप-

स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥ २७ ॥

दामोदर भगवान्का उदर (कमर) तो रस्सीसे बँधा हुआ था। बालक श्रीकृष्णने जैसे ही अपने पीछे लुढ़कते हुए और दोनों वृक्षोंके मध्यमें अटके हुए ऊखलको तनिक बलके साथ खींचा, वैसे ही दोनों वृक्षोंकी जड़ें उखड़ गयीं। परम पुरुषके किञ्चित् विक्रमसे दोनों वृक्षोंके तने, शाखाएँ, पल्लव जोरसे काँप उठे और प्रचण्ड शब्द करते हुए भूमिपर गिर पड़े ॥ २७ ॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ

सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः।

कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं

बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥

तदनन्तर उसी समय दोनों वृक्षोंके अन्दर स्थित मूर्तिमान् अग्नितुल्य दो उज्ज्वल सिद्ध-पुरुष निकले। उनकी परम शोभासे दिक्मण्डल प्रकाशित हो उठा। उन्होंने मस्तक झुकाकर अखिल लोकोंके स्वामी श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया एवं हाथ जोड़कर तथा अहङ्कार-रहित होकर शुद्ध हृदयसे भगवान्की इस प्रकार स्तुति की ॥ २८ ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिस्त्वमाद्य पुरुषः परः।

व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥

उन्होंने कहा—हे श्रीकृष्ण! हे परम योगेश्वर श्रीकृष्ण! आपका प्रभाव अचिन्त्य है। (हमारे मोचनकर्त्ता आपके बन्धनका कारण तर्कातीत है।) आप परमपुरुष एवं जगत्के मूल निमित्त एवं उपादान कारण हैं। ब्रह्मविद्जन वेद-वाक्योंके आश्रयसे इस व्यक्त-अव्यक्त (स्थूल-सूक्ष्मात्मक) जगत्को आपके ही (प्राकृत) स्वरूपमें देखते हैं ॥ २९ ॥

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः।

त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी।

त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥

हे भगवन्! सभी प्राणियोंकी देह, प्राण, अहङ्कार एवं इन्द्रियोंके नियन्ता एकमात्र आप ही हैं। आप ही सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, अविनाशी ईश्वर-स्वरूप हैं। आप ही काल (निमित्त कारण) एवं त्रिगुणात्मिका सूक्ष्म प्रकृति (उपादान कारण) हैं। आप ही महत्-तत्त्व (कार्य-स्वरूप) हैं। आप ही अन्तर्यामी होनेसे समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणके ज्ञाता एवं पुरुष स्वरूप हैं। (तात्पर्य यह है कि वस्तु-भगवान्, वस्तुशक्ति-प्रकृति, वस्तुका अंश-पुरुष, वस्तुका कार्य-महत्-ये सभी शुद्धाद्वैत विचारसे वास्तव-वस्तु हैं। अतः वस्तु-तत्त्वके विचारसे ये सब अभिन्न हैं। गौड़ीय वैष्णवोंके विचारमें स्वरूप, तद्रूपवैभव, जीव एवं प्रधान-परतत्त्वसे स्वतन्त्र नहीं हैं।) ॥ ३०-३१ ॥

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः।

कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥

(“मैं ही सर्वस्व हूँ”—इससे घटादि प्राकृत-वस्तु-ज्ञानसे मद्विषयक ज्ञान होता है क्या? यदि होता, तो सभी ब्रह्मविद् हो जाते—इसी तत्त्वको परिपुष्ट करनेके उद्देश्यसे ही इस श्लोककी अवतारणा की गयी है) यदि आप दृष्ट-स्वरूप होते हो तो अपनी कृपासे ही, वास्तविकरूपसे तो आप अदृश्य ही हैं (आपका दर्शन सम्भव नहीं है)। दृश्य-स्वरूपमें वर्तमान रहनेपर भी आप प्रकृतिसे उत्पन्न बुद्धि, अहङ्कार एवं इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य नहीं हैं। इस संसारमें देहाश्रित गुणोंसे आबद्ध कोई जीव देह-उत्पत्तिके पहलेसे भी स्वतःप्रकाश एकरसस्वरूपमें विद्यमान आपको जाननेमें समर्थ हो सकता है क्या? स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरके आवरणसे ढका हुआ जीव आपकी तटस्था-शक्तिका विलास है—आप उस जीवके मूल कारण हैं। जीव आपकी भक्तिसे ही आपको जान सकता है ॥ ३२ ॥

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।

आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः॥ ३३॥

हे भगवन्! आपके स्वतः प्रकाशित गुणोंसे आपकी महिमा उसी प्रकारसे प्रच्छन्न रहती है, जिस प्रकार मेघोंसे सूर्य आच्छादित रहता है। आप प्राकृत सृष्टिके कर्ता—विश्वविधाता सङ्कर्षणस्वरूप स्वयं-भगवान्, वासुदेव (चतुर्व्यूहादि) एवं सर्वात्मक ब्रह्मस्वरूप हैं। आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३३॥

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः।

तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ३४॥

स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च।

अवतीर्णोऽंशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम्॥ ३५॥

आपका प्राकृत शरीर नहीं है, प्राकृत शरीरधारियोंके लिए यह समस्त अतुलनीय पराक्रम असम्भव है। कूर्म, मत्स्यादि विग्रहधारी प्राणियोंमें उन समस्त अनुपम गुणोंसे युक्त पराक्रमको देखकर आपके अवतारोंका ज्ञान हो जाता है। आप तो निश्चितरूपसे अवतारी हैं, क्योंकि सहस्र हाथियोंके द्वारा भी कठिनाईसे उखाड़े जाने योग्य, अर्जुनके समान तेजको धारण करनेवाले इन अर्जुन वृक्षोंको अपनी बाल्य-लीलामें प्रकटित सामान्य बलसे ही आपने उखाड़ डाला तथा रस्सी एवं ऊखलको भी वैसी सामर्थ्य दे दी। प्राकृत शरीररहित महापुरुषके आविर्भावका अनुमान ऐसे पराक्रमसे ही होता है। प्रभो! आप समस्त प्रकारकी उत्पत्ति एवं कल्याणोंके प्रदाता महापुरुष हैं। इस समय समस्त जीवोंको सम्पद् एवं मोक्ष प्रदान करनेके लिए आप पूर्णरूपसे अवतरित हुए हैं॥ ३४-३५॥

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल।

वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः॥ ३६॥

हे परम कल्याण (साध्य) स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे परम मङ्गल (साधन) स्वरूप! आपको हमारा बार-बार प्रणाम है।

हे परम शान्तस्वरूप! आपको नमस्कार है। सभीके हृदयमें विहार करनेवाले यदुवंश-शिरोमणि वासुदेव! आपको नमस्कार है॥ ३६॥

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करी।

दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात्॥ ३७॥

हे विश्वस्वरूप! हम आपके अनुचर महादेवजीके सेवक हैं। अब हमें जानेकी अनुमति प्रदान कीजिये। महर्षि नारदके अनुग्रहसे हमने आपके साक्षात् दर्शन प्राप्त किये हैं॥ ३७॥

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां

हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।

स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे

दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥ ३८॥

हे जगन्निवास! हमारी वाणी आपके मङ्गलमय गुणगानमें, कर्ण-युगल आपकी रसमयी कथाके श्रवणमें, दोनों हाथ आपकी प्रीतिपूर्वक सेवामें, मन आपके चरणकमलोंके स्मरणमें, मस्तक आपके द्वारा अधिष्ठित इस निखिल ब्रह्माण्ड विशेषतः नारदादि भक्तोंके प्रणाममें एवं नेत्र आपके मूर्ति-स्वरूप साक्षात् विग्रहोंमें और आपके प्रत्यक्ष शरीर-स्वरूप सन्तोंके दर्शनमें रत रहें॥ ३८॥

श्रीशुक उवाच—

इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः।

दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ॥ ३९॥

श्रीशुकदेव गोस्वामी कहते हैं—उनके द्वारा इस प्रकारसे स्तुति किये जानेपर सौन्दर्य-माधुर्य-निधि गोकुलेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जो स्वयं ऊखलसे बँधे हुए थे, मुस्कुराते हुए उन कुबेरके दोनों पुत्रों—नलकूबर और मणिग्रीवसे कहा—॥ ३९॥

श्रीभगवानुवाच—

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना।

यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः॥ ४०॥

श्रीदामोदर भगवान्ने कहा—तुम दोनों ऐश्वर्यमदसे उन्मत्त हो रहे थे। परम कारुणिक देवर्षि नारदने शापसे तुम्हें श्री एवं स्वर्गसे भ्रष्ट करके तुम्हारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है। यह मैं पहलेसे ही जानता था ॥ ४० ॥

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।

दर्शनात्रो भवेद्वन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥

सूर्यके दर्शनसे जिस प्रकार अन्धकार—आच्छन्नता दूर हो जाती है, उसी प्रकार जो मेरे प्रति एकान्त भक्ति-भावसे आसक्त हैं, जिनकी बुद्धि समभावसे युक्त है, जिनका हृदय मेरे प्रति समर्पित है और जो भागवत महापुरुषोंका साक्षात् दर्शन करते हैं, उन जीवोंका कोई बन्धन रहता नहीं ॥ ४१ ॥

तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम्।

सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ॥ ४२ ॥

हे नलकूबर! हे मणिग्रीव! मद्गतचित्त (मेरे परायण) तुम दोनों अपने-अपने घर जाओ। तुम दोनोंमें मेरे प्रति परम वाञ्छित और अभीष्ट भक्तिभावका अङ्कुर उत्पन्न हो गया है—इससे अब तुम दोनों कभी भी संसार-दशाको प्राप्त नहीं होओगे ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः।

बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे यमलार्जुनभञ्जनं नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवने कहा—जब भगवान्ने इस प्रकार कहा, तब उन दोनोंने ऊखलसे बँधे हुए श्रीकृष्णकी परिक्रमा की। उनसे अनुमति

माँगी, उन्हें पुनः-पुनः प्रणाम किया एवं संभाषण करते हुए उत्तर दिशाकी ओर चले गये ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके दशम अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

एकादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका दामबन्धन मोचन, फलक्रय-कथा, श्रीवृन्दावन
आगमन, वत्सपालन, वत्सासुर और बकासुरका विनाश

श्रीशुक उवाच—

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम्।

तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ! जब दोनों वृक्ष गिरे, तब ऐसा प्रचण्ड शब्द हुआ, जिसे सुनकर नन्द आदि गोपोंके मनमें आशङ्का हुई कि कहीं वज्रपात तो नहीं हो गया है। यह सोचकर सब-के-सब वृक्षोंके गिरनेके स्थानपर चले आये ॥ १ ॥

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ।

बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥

वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि दोनों अर्जुनके वृक्ष भूमिपर गिरे पड़े हैं। यद्यपि वृक्षोंके गिरनेका कारण सामने स्पष्ट दिखायी दे रहा था कि रस्सीमें बँधा हुआ बालक श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित है, परन्तु प्रेमातिशयताके कारण वे कुछ भी समझ नहीं पाये और भ्रमित हो गये ॥ २ ॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धञ्च बालकम्।

कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥

श्यामसुन्दर रस्सीमें बँधे हुए ऊखलको खींच रहे थे, फिर भी नन्द आदि गोपोंको सन्देह हुआ—किसने यह आश्चर्यजनक कार्य कर डाला? कहाँसे, किस कारणसे यह उत्पात उपस्थित हुआ है? भाग्यसे विधाताने इस बालककी रक्षा कर ली। वे अतिशय व्याकुल होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ३ ॥

बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम्।

विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥

वहींपर खेलते हुए प्रत्यक्षदर्शी कुछ गोपबालकोंने कहा—अरे, यह इसी कृष्णका तो काम है। यह दोनों वृक्षोंके बीचमें ऊखलको टेढ़ा करके खींच रहा था, इतनेमें ही ये वृक्ष गिर पड़े। इनमेंसे दो दिव्य पुरुष प्रकट हुए, यह हमने अपनी आँखोंसे देखा है। (सम्भ्रमके कारण यह नहीं कह पाये कि इसीसे दोनों वृक्ष उखड़े हैं।) ॥ ४ ॥

न ते तदुक्तं जगृहूर्न घटेतेति तस्य तत्।

बालस्योत्पाटनं तवोः केचित् सन्दिग्धचेतसः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णके प्रति अत्यधिक ममताके कारण स्निग्धचित्त नन्द आदि प्रमुख गोपोंने नन्हे-से बालकके द्वारा इस वृक्षोत्पाटन कार्यको असम्भव मानकर बालकोंकी बातोंपर विश्वास नहीं किया। वृक्षोंके उखड़नेके कारणको वे सत्य नहीं मान सके। उनमेंसे कोई-कोई ‘नारायण समोगुणः’ अर्थात् “यह बालक नारायणके समान गुणोंसे युक्त होगा”—इन वचनोंका स्मरण करके “ऐसा हो भी सकता है”—इस प्रकारसे सन्देह करने लगे ॥ ५ ॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम्।

विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥

नन्द महाराजने रस्सीसे बँधे हुए ऊखलको खींचनेवाले अपने प्राणोंसे प्यारे पुत्रके अङ्ग-प्रत्यङ्गको देखकर “मेरी गोदसे भी जिसकी गोदको तुम अति प्रिय मानते हो, उस तुम्हारी माताने आज अल्प अपराधके कारण ही तुम्हारा बन्धन कर दिया। मैं तुम्हें मुक्त कैसे करूँ?”—इस प्रकार उपालम्भ-द्योतक (उलाहना-सूचक) मुसकानके साथ उन्हें बन्धनसे मुक्त कर दिया ॥ ६ ॥

गोपीभिः स्तोर्भितोऽनृत्यद्भगवान् बालवत् क्वचित्।

उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ ७ ॥

कृष्ण! यदि तुम नृत्य करोगे, तो तुम्हें खाँड़का लड्डू दूँगी—आदि बातोंसे और कभी ताली बजाकर गोपियाँ श्रीकृष्णको उत्साहित करती थीं अर्थात् उन्हें फुसलाया करती थीं। तब वे अखिल ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् साधारण बालकके समान मुग्ध होकर नृत्य करने लगते थे। कभी भोले-भाले अनजान बालकके समान गाने लगते थे। इस प्रकार सूत्रमें ग्रथित कठपुतलीकी भाँति वे गोपियोंके वशीभूत होकर नाचते और गाते थे॥७॥

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम्।

बाहुक्षेपञ्च कुरुते स्वानाञ्च प्रीतिमावहन्॥८॥

कभी-कभी गोपियाँ आदेश देतीं—“कृष्ण! वह पादुका लाओ, कृष्ण! बटखरा (चावलादि मापनेका पात्र) लाओ। कृष्ण! पादुका-पीठ (पीढ़ी) लाओ।” कृष्ण उन वस्तुओंको हाथमें ही रखकर बैठ जाते या कभी अपने कोमल पेटके ऊपर रख लेते, जिससे यह प्रकाशित हो जाय कि वे इन सब वस्तुओंको लानेमें समर्थ नहीं हैं। कभी प्रेमी भक्तोंको आनन्दित करनेके लिए वे दोनों भुजाओंको उठाकर पुनः-पुनः पहलवानोंकी भाँति अपने पराक्रमका प्रदर्शन करते॥८॥

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम्।

व्रजस्योवाह वै हर्ष भगवान् बालचेष्टितैः॥९॥

इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् जगत्में अपनी बालकोचित लीलाओंसे व्रजवासियोंको आनन्दित किया करते तथा ऐश्वर्यज्ञान-परक ब्रह्मा आदि देवताओं और भक्तोंको अपना भृत्याधीन भाव (मैं अपने भक्तोंके अधीन हूँ) दिखलाते॥९॥

क्रोणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्त्वरमच्युतः।

फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः॥१०॥

एक दिन कोई फल बेचनेवाली गोकुलमें आकर ऊँचे स्वरसे पुकार रही थी—“हे व्रजजन! फल ले लो, फल ले लो।” यह सुनते ही सर्वफल-प्रदाता और सर्वार्थ-परिपूर्ण होकर भी अच्युत

बालक श्रीकृष्ण फल खरीदनेकी इच्छासे उसके मूल्य-स्वरूप अपनी छोटी-सी अञ्जुलिमें धान्य लेकर शीघ्र ही उसकी ओर दौड़ पड़े ॥ १० ॥

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम्।

फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥ ११ ॥

शीघ्र चलनेके कारण श्रीकृष्णके हाथोंसे प्रायः सारा अनाज पथमें ही गिर गया। तब भी फल-विक्रयिणीने उनके दोनों हाथोंको फलोंसे भर दिया और इधर साथ-ही-साथ इस फल-विक्रयिणीका फल-भाण्ड (टोकरी) भी रत्नोंसे पूर्ण हो गया ॥ ११ ॥

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत्।

रामञ्च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥ १२ ॥

इसके बाद एक दिन यमलार्जुन वृक्षोंके उत्पाटक (उखाड़नेवाले) श्रीकृष्ण एवं बलराम ग्वालबालोंके साथ खेलते-खेलते यमुना किनारे चले गये और वहाँ खेलमें ही मग्न हो गये, तब रोहिणीदेवी उन्हें पुकारने लगी—“ओ कृष्ण! ओ बलराम! शीघ्र आओ ॥” १२ ॥

नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ।

यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ १३ ॥

वे दोनों खेलनेमें इतने रम गये थे कि रोहिणीदेवीके पुकारनेपर भी नहीं आये। तब पुत्रवत्सला रोहिणीदेवीने अति वात्सल्यमयी यशोदाको उन्हें बुलानेके लिए भेजा ॥ १३ ॥

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम्।

यशोदाऽजोहवीत् कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १४ ॥

वात्सल्य स्नेहकी अधिकताके कारण यशोदादेवीके स्तनोंसे दूध क्षरित हो रहा था। श्रीकृष्ण और बलराम ग्वालबालोंके साथ बहुत देरसे खेल रहे थे। समीपमें जानेसे दोनों इधर-उधर भागेंगे,

इसलिए यशोदा जोर-जोरसे पुकारने लगीं—हे प्यारे कृष्ण! हे प्यारे बलराम! ॥ १४ ॥

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिव।

अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥ १५ ॥

हे नीलकमललोचन! हे प्यारे कन्हैया! हे पुत्र! हे प्रिय! मेरे पास आओ और माँका दूध पी लो। हे वत्स! अब तुम खेलनेसे थक गये होंगे, भूख लग रही होगी। देखो तो! भूखसे दुबले हो रहे हो। अब बस करो। और खेलनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १५ ॥

हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन।

प्रातरेव कृताहारस्तद् भवान् भोक्तुमर्हति ॥ १६ ॥

प्यारे बेटा बलदेव! हे कुलनन्दन (कुलके आनन्द-स्वरूप)! अपने छोटे भाईको साथ लेकर शीघ्र आ जाओ। आज तुमने बहुत सबेरे कलेवा कर लिया था, अब तो तुम्हें भोजन करना चाहिये ॥ १६ ॥

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो ब्रजाधिपः।

एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥ १७ ॥

हे बेटा बलराम! ब्रजेश्वर भोजनके लिए बैठ गये हैं। वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आओ और हम सबको आनन्दित करो। हे बालको! तुम सभी अपने-अपने घर जाओ ॥ १७ ॥

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह।

जन्मर्क्षं तेऽद्य भवति विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १८ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णसे कहा—पुत्र, देखो तो, तुम्हारे सारे अङ्ग धूलमें निमज्जित हो गये हैं। आओ, जल्दी-जल्दी स्नान कर लो। आज तुम्हारा जन्म-नक्षत्र है, अतः पवित्र हो जाओ और ब्राह्मणोंको गायें दान करो। (क्रीड़ाका उत्साह रोकनेके लिए दानका उत्साह दिया गया है।) ॥ १८ ॥

पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान् स्वलङ्कृतान्।

त्वञ्च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलङ्कृतः ॥ १९ ॥

देखो, देखो, श्यामसुन्दर! तुम्हारे सखाओंको देखो। उनकी माताओंने उन्हें स्नान करा दिया है और सुन्दर-सुन्दर आभूषणोंसे सुसज्जित कर दिया है। अब तुम भी स्नान कर लो, भोजन कर लो, अच्छे-अच्छे अलङ्कार पहन लो। उसके बाद खूब खेलो ॥ १९ ॥

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं

मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप।

हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं

नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ २० ॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण निखिल लोकोंके चूड़ामणि स्वयं-भगवान् हैं; यशोदा मैया उन्हें पुत्र समझकर उनके प्रति सर्वदा स्नेहसिक्त रहती थीं। उनके मन-प्राण-बुद्धि कृष्ण-प्रेम-बन्धनमें निरन्तर आबद्ध रहते थे। उन्होंने एक हाथसे बलरामको पकड़ा और दूसरे हाथसे श्रीकृष्णको पकड़कर अपने घर ले आयीं। तब उन्होंने उन्हें स्नान कराया, भोजन कराया और अलङ्करण आदि पहनाकर सारे माङ्गलिक कार्य सम्पन्न किये ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच—

गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने।

नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—अनन्तर नन्द आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने अनुभव किया कि महावनमें विविध प्रकारके उत्पात हो रहे हैं। एक दिन सब एकत्रित हुए और अब व्रजवासियोंका क्या कर्तव्य है, इस विषयपर परामर्श करने लगे ॥ २१ ॥

तत्रोपानन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोऽधिकः।

देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २२ ॥

नन्दमहाराजके ज्येष्ठ भ्राता उपानन्द उम्रमें तो बड़े थे ही, ज्ञानमें भी बड़े थे। वे राम-कृष्णका सदैव कल्याण चाहते थे।

उन्हें इस तत्त्वका भी ज्ञान था कि कब एवं किस स्थानपर कैसा व्यवहार करना चाहिये। वे ब्रजवासियोंसे कहने लगे— ॥ २२ ॥

उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः।

आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २३ ॥

हे गोपभाइयो! इस स्थानपर अब हमारा रहना गोकुलके हितकी दृष्टिसे उचित नहीं है। यहाँ सर्वदा ऐसे-ऐसे भयङ्कर उत्पात होते हैं, जो हमारे बलराम, कृष्ण आदि बालकोंके लिए प्राणोंका सङ्कट उत्पन्न कर देते हैं। मेरा विचार यह है कि जितनी जल्दी हो सके, हमें यहाँसे अन्यत्र चले जाना चाहिये ॥ २३ ॥

मुक्तः कथञ्चिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ।

हरेरनुग्रहान्नमनश्चोपरि

नापतत् ॥ २४ ॥

देखो! यह बालक श्रीकृष्ण भाग्यवश जैसे-तैसे बालघातिनी, कालस्वरूपिणी राक्षसी पूतनाके चङ्गुलसे बचा। इसके बाद एक दिन छकड़ा गिरा, परन्तु भगवान्की कृपासे इसका बाल भी बाँका न हुआ ॥ २४ ॥

चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत्।

शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥ २५ ॥

चक्रवातरूपधारी तृणावर्त नामका दैत्य जिस समय इसे आकाशमें ले गया था और यह मृत्युके मुखमें ही पड़ा था, तब भी अनायास ही वह वहाँसे एक बड़ी शिलाके ऊपर गिरा। उस समय हमारे कुलदेवता अच्युत विष्णु द्वारा प्रेरित पार्षदोंने अथवा स्वयं विष्णुने इसकी रक्षा की थी ॥ २५ ॥

यत्र म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः।

असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २६ ॥

उस दिन भी श्रीकृष्ण और कई बालक यमलाजुन वृक्षोंके बीचमें आ गये थे, तथापि उनके गिरते समय कोई भी मरा नहीं। अतः यही समझना चाहिये कि भगवान्की कृपासे बालकोंकी रक्षा होती रही ॥ २६ ॥

यावदौत्पातिकोऽरिष्टो ब्रजं नाभिभवेदितः।

तावद्वालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २७ ॥

अब इसके बाद दूसरा कोई अरिष्ट (मृत्युका कारण) आकर उपस्थित हो जाय, हमें और हमारे ब्रजको उत्पीड़ित कर डाले, उसके पहले ही हमें अपने बालकों और सहचरोंके साथ अन्यत्र चले जाना चाहिये ॥ २७ ॥

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।

गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर एवं महावनके मध्य वृन्दावन नामका एक वन है। वह वासके लिए उपयुक्त स्थान है। वह स्थान तृणादिसे समन्वित है, अतः गौ इत्यादि पशुओंके लिए हितकारी है। उस स्थानपर सुरम्य एवं नवीन वनराजियाँ (हरे-भरे वन) वर्तमान हैं। वह वन पवित्र पर्वत, हरी-भरी घास एवं लता-वनस्पति आदिसे भरपूर है। अतः गोप, गोपी एवं गायोंके लिए भी सुखदायक है ॥ २८ ॥

तत् तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्त मा चिरम्।

गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥ २९ ॥

इसलिए यदि तुम्हारी सम्पत्ति है, तो हम आज ही वहाँ चल पड़ेंगे। अब और विलम्ब करनेकी आवश्यकता नहीं है। तभी शीघ्र ही अपने-अपने छकड़ोंको जोत लें और हमारी एकमात्र सम्पत्ति गायोंको सबसे पहले वहाँ भेज दिया जाय ॥ २९ ॥

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्वतिवादिनः।

ब्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययुरूढपरिच्छदाः ॥ ३० ॥

उपानन्दके ये वचन सुनकर सभी गोपोंने एकमत होकर उनका समर्थन किया और एक साथ कहने लगे—साधु! साधु! सबने अपनी-अपनी गायों और इधर-उधर बिखरे द्रव्योंको इकट्ठा किया तथा उन्हें छकड़ोंपर लादकर वृन्दावनकी ओर प्रस्थान किया ॥ ३० ॥

वृद्धान् बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च।
 अनःस्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ३१ ॥
 गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः।
 तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३२ ॥

हे राजन्! ग्वालोंने यत्नपूर्वक बूढ़ों, बालकों, स्त्रियों एवं सब सामग्रियोंको छकड़ोंपर चढ़ा दिया तथा गायों एवं बछड़ोंको आगे कर दिया। धनुष-बाण धारणकर वे बड़ी सावधानीके साथ वृन्दावनकी यात्रापर चल दिये। पुरोहित उनके साथ-साथ चल रहे थे। उनकी भेरी एवं सींगीकी उच्च ध्वनिसे चारों दिशाएँ गूँज उठीं ॥ ३१-३२ ॥

गोप्यो रूढरथा नूत्न कुचकुङ्कुमकान्तयः।
 कृष्णलीला जगुः प्रीत्या निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ ३३ ॥

गोपियोंने अपने कुचोंपर नवीन कुङ्कुम (केसर) लगा रखा था, गलोंमें स्वर्ण हार धारण कर रखे थे और अत्यन्त सुन्दर एवं मनोरम वस्त्र पहन रखे थे। रथपर सवार हुई वे बड़ी प्रीतिके साथ कृष्ण-लीलाके गीत गाती जाती थीं ॥ ३३ ॥

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते।
 रेजतुः कृष्णारामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३४ ॥

यशोदादेवी एवं रोहिणीदेवी भी वैसे ही सज-धजकर एक ही रथपर सवार हो गयीं। बलराम और कृष्णके साथ उनकी अत्यधिक शोभा हो रही थी। दोनों अपने बालकोंकी सुमधुर, अस्फुट तोतली बोली सुनकर अघाती न थीं ॥ ३४ ॥

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम्।
 तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्द्धचन्द्रवत् ॥ ३५ ॥

वृन्दावनधाम बड़ा ही सुहावना एवं सर्वकाल सुखावह है, वहाँ सभी ऋतुओंमें आनन्द-ही-आनन्द है। उन्होंने वहाँ प्रवेश करके उस स्थानपर छकड़ोंको अर्द्ध-चन्द्राकार मण्डलके रूपमें बाँधकर

स्थित कर दिया तथा गायों और ब्रजवासियोंके रहनेयोग्य सुन्दर निवास-मण्डल बना लिया ॥ ३५ ॥

वृन्दावनं गोवर्द्धनं यमुनापुलिनानि च ।

वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीतिं राममाधवयोनृप ॥ ३६ ॥

हे राजन्! वृन्दावनके सुरम्य वन, अद्भुत छटासे युक्त गोवर्द्धन पर्वत एवं यमुनाके सुन्दर-सुन्दर पुलिनोंको देखकर कृष्ण एवं बलरामके मनमें अति प्रीतिका उदय हुआ ॥ ३६ ॥

एवं ब्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ।

कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३७ ॥

बलराम एवं कृष्ण दोनों अपनी बालकोचित क्रीड़ाओं एवं मधुर तोतली बोलीसे ब्रजवासियोंको आनन्दित करते रहते। समय आनेपर बलराम एवं कृष्ण बछड़ोंको चराने ले जानेमें (वत्स-पालनमें) समर्थ हो गये ॥ ३७ ॥

अविदूरे ब्रजभुवः सह गोपालदारकैः ।

चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३८ ॥

घरसे वे खेलनेके लिए अनेक प्रकारकी सामग्री ले लेते और दूसरे ग्वालबालोंके साथ मिलकर ब्रजभूमिके पास ही (गोष्ठके समीप ही) बछड़े चराया करते ॥ ३८ ॥

क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ।

क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३९ ॥

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।

अनुकृत्य रुतैर्जन्तुंश्चरेतुः प्राकृतौ यथा ॥ ४० ॥

किसी स्थानपर वे वंशी अथवा सींगा बजाते, कहींपर क्षेपण-यन्त्र अर्थात् ढेलवाँस या गुलेलसे ढेले या गोलियाँ फेंकते, कभी चरणोंके नूपुर बजाते हुए वे बेल और आँवलेके फलोंको फेंका करते, कहींपर बनावटी बैल और गायका रूप धारणकर क्रीड़ा करते और कहीं गोपबालकोंके साथ साँड़की तरह

ऊँचे शब्दके साथ हकड़ते हुए परस्पर बनावटी युद्ध करने लगते, तो कहीं कोयल, मोर और बन्दर आदि पशु-पक्षियोंकी बोलीका अनुकरण करते। परीक्षित्! इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् साधारण बालकोंके समान खेल खेला करते थे ॥ ३९-४० ॥

कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः।

वयस्यैः कृष्णबलयोजिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४१ ॥

एक दिनकी बात है, बलराम और कृष्ण अपने सखाओंके साथ यमुनाके तटपर वत्स-चारण कर रहे थे। उसी समय उन्हें मारनेकी इच्छासे एक दैत्य वहाँ आ पहुँचा ॥ ४१ ॥

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः।

दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४२ ॥

श्रीहरिने देखा कि वह दैत्य बनावटी बछड़ेका रूप धारणकर बछड़ोंके झुण्डमें मिल गया है। उन्होंने बलरामको भी नेत्रोंके सङ्केतसे यह दृश्य दिखाया और धीरे-धीरे उस असुरके समीप इस प्रकार पहुँचे, मानो वे दैत्यको पहचानते नहीं हों और उस सुन्दर सुडौल बछड़ेपर मुग्ध हो गये हों ॥ ४२ ॥

गृहीत्वापरपादाभ्यां सह लाङ्गुलमच्युतः।

भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम्।

स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्णने उस वत्सरूपधारी असुरके पिछले दोनों पैरोंके साथ उसकी पूँछ पकड़कर उसे आकाशमें घुमाया, बादमें उसके प्राण निकल जानेपर उसे कैथके वृक्षपर पटक दिया। (कैथके फल हमारे खिलौने हैं—उन्हींको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे असुर-देहको कैथके वृक्षपर फेंका है।) इस प्रकार उस विशालकाय दैत्यकी देह अपने भारसे बहुत-से कैथके वृक्षोंको गिराकर स्वयं भी भूमिपर गिर पड़ी ॥ ४३ ॥

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ।

देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४४ ॥

गोपबालक उस विशालकाय दैत्यको मरा हुआ देखकर 'वाह, वाह' कहकर श्रीकृष्णकी प्रशंसा करने लगे। देवता भी परम आनन्दित होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।

स प्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥ ४५ ॥

हे राजन्! जो सारे जगत्के रक्षक हैं, वे ही राम और कृष्ण इस समय वत्सपालक (चरवाहे) बने हुए हैं। वे प्रातःकाल ही कलेवा कर लेते (अथवा कलेवेकी सामग्री साथ ले लेते) और बछड़ोंको चराते हुए एक वनसे दूसरे वनमें घूमते ॥ ४५ ॥

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ।

गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४६ ॥

एक दिन सभी ग्वाल-बाल अपने-अपने बछड़ोंके झुण्डोंको जल-पान करानेके लिए जलाशयके तटपर ले गये और वहाँ पहले उन्हें जल पिलाया। इसके बाद स्वयं भी जलपान किया ॥ ४६ ॥

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ।

तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥ ४७ ॥

ग्वालबालोंने देखा कि उस जलाशयके समीप एक भीषण प्राणी बैठा है। उसे देखकर बालक डर गये। फिर ऐसा लग रहा था मानो इन्द्रके वज्रके आघातसे टूटकर अथवा पर्वतकी चोटीसे गिरकर कोई चट्टान पड़ी हुई हो ॥ ४७ ॥

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ।

आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४८ ॥

वस्तुतः वह एक 'बक' नामका महादैत्य था, जो बगुलेका रूप धारण करके आया था। उसकी चोंच बड़ी तीखी थी और वह बड़ा बलवान् था। उसने तुरन्त ही श्रीकृष्णको निगल लिया ॥ ४८ ॥

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ।

बभ्रूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४९ ॥

जब बलराम आदि बालकोंने देखा कि उस महाबकने श्रीकृष्णको निगल लिया है, तो उनकी दशा वैसी ही हो गयी, जैसी प्राणोंसे रहित इन्द्रियोंकी होती है। वे सब अचेत हो गये ॥ ४९ ॥

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्-

गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ।

चच्छर्द्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बक-

स्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ५० ॥

राजन्! श्रीकृष्ण तो जगद्गुरु ब्रह्माजीके भी पिता हैं। इस समय वे क्रीड़ा हेतु गोपबालक बने हुए हैं। जब बकासुरने उन्हें निगल लिया, तब वे उसके उदरस्थ होकर तालुके मूलमें अग्निके समान दाह उत्पन्न करने लगे, जिससे उस दैत्यने उसी क्षण श्रीकृष्णको उगल दिया। जब असुरने देखा कि श्रीकृष्ण अक्षत हैं (उनके अङ्गोंपर एक भी घाव नहीं है), तो वह अत्यन्त क्रोधित होकर अपनी कठोर चोंचसे उन्हें मार डालनेके लिए पुनः उद्यत हो गया ॥ ५० ॥

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयो-

र्दोभ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ।

पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया

मुदावहो वीरणवद्विवौकसाम् ॥ ५१ ॥

भगवान् कृष्ण भक्तोंके रक्षक हैं। कंसका अनुचर वह बकासुर भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णपर झपट ही रहा था कि उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसकी चोंचके दोनों भागों (ठोरों) को पकड़ लिया तथा गोपबालकोंके देखते-देखते खेल-ही-खेलमें उसे वैसी ही चीर डाला, जैसे कोई बालक ग्रन्थिशून्य वीरण-तृणको

(घासकी डण्ठलको) चीर डालता है। इससे देवताओंको भी बड़ा आनन्द हुआ ॥ ५१ ॥

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः
समाकिरन् नन्दनमल्लिकादिभिः ।
समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवै-
स्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५२ ॥

स्वर्गसे देवता लोग बक-विनाशक भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर नन्दन-वनजात मल्लिका, चमेली आदि पुष्पोंकी वर्षा करने लगे तथा नगारे, दुन्दुभि एवं शङ्खकी ध्वनि करते हुए स्तोत्र-गानके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे। यह देखकर गोपबालक विस्मित रह गये ॥ ५२ ॥

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका
रामादयः प्राणमिवैन्द्रियो गणः ।
स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः
प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥ ५३ ॥

जिस प्रकार प्राणोंके सञ्चार होनेपर इन्द्रियाँ अपने-अपने स्वरूप भावको प्राप्त होकर सचेतन एवं आनन्दमय हो जाती हैं, उसी प्रकार बकासुरके मुखसे निकलकर अपने समीप आये हुए श्रीकृष्णको देखकर बलराम आदि सभी ग्वालबाल परम आनन्दित हुए। उन्होंने श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया। तदनन्तर प्रसन्नचित्तसे बछड़ोंको एकत्र किया और उन्हें हाँकते हुए व्रजमें आये। वहाँ उन बालकोंने बकासुरके वधकी कथा सबको गा-गाकर सुनायी ॥ ५३ ॥

श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ।

प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥ ५४ ॥

परीक्षित्! व्रजमें सभी गोप एवं गोपियाँ बकासुरके वधकी कथा सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। वे श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रीतिके साथ देखने लगे। उन्हें प्रतीत हुआ मानो वे यमालयसे

लौटे हों। श्रीकृष्णको देख-देखकर उनके नेत्र तृप्त नहीं होते थे, हृदयकी तृष्णा शान्त नहीं होती थी, उत्कण्ठा बढ़ती ही जाती थी, श्रीकृष्णने भी दर्शन देकर उनका यथोचित समादर किया ॥ ५४ ॥

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन्।

अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५५ ॥

उस समय नन्द आदि गोपगण आपसमें कहने लगे—अरे! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आज तक इस बालकके लिए कितने ही मृत्युके कारण उपस्थित हुए, परन्तु जिन्होंने इसका अनिष्ट करना चाहा, उन्हींका अनिष्ट हुआ। अनिष्ट करनेवाले वे हिंसक हम निरपराधी लोगोंके लिए और हमारे बालकोंके लिए भय उत्पन्न करते हैं, बादमें वे ही विनष्ट होते हैं ॥ ५५ ॥

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः।

जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ५६ ॥

इन सभी दैत्योंकी आकृति बड़ी भयङ्कर थी, परन्तु वे बालकका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पाये। वे मार डालनेकी कामनासे कृष्णके समीप आये, परन्तु इसके तेजसे उनके प्राणोंका अन्त उसी प्रकार हो गया, जिस प्रकार अग्निके तेजसे जलकर पतिङ्गे स्वयं ही भस्म हो जाते हैं ॥ ५६ ॥

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित्।

गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥ ५७ ॥

अरे भाई! सत्य ही है! ब्रह्मवेत्ताके वचन किसी भी प्रकारसे मिथ्या नहीं हो सकते। बड़े आश्चर्यकी बात है—महात्मा गर्गमुनिने पहले जैसा कहा था, इस समय हमें उसीका अनुभव हो रहा है ॥ ५७ ॥

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा।

कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम् ॥ ५८ ॥

इस प्रकार नन्द आदि प्रमुख गोपगण बड़े आनन्दके साथ बलराम-कृष्णकी बातें करते रहते और इन बातोंमें इतने आसक्त हो जाते कि संसारके दुःख-सङ्कटोंकी उन्हें कुछ सुध ही न रहती ॥ ५८ ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्ब्रजे ।

निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धेवत्सबकवधो नाम
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार बलराम-कृष्ण कभी निलायन (लुका-छिपीका) खेल खेलते, कभी सेतु-निर्माण करते, कभी वानरोंके समान उछलते-कूदते और कभी किसी दूसरे विचित्र खेलमें रम जाते। इस प्रकार कुमार-अवस्थाकी क्रीड़ाओंमें मग्न रहते हुए बलराम-कृष्णने ब्रजमें कौमार-काल व्यतीत किया ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

द्वादशोऽध्यायः अघासुरका उद्धार

श्रीशुक उवाच—

क्वचिद्वनाशाय मनो दधद् ब्रजात्
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान्।
प्रबोधयन् शृङ्गरेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—महाराज परीक्षित्! एक दिन श्रीकृष्ण वनमें ही कलेवा (प्रातःकालीन भोजन) करनेकी अभिलाषासे प्रातःकाल ही जग गये और सींगीकी मधुर-मनोहर ध्वनिसे अपने साथी गोपबालकोंको भी नींदसे जगाया। उन्हें अपने मनकी बात बतलायी। सबने मिलकर बछड़ोंको आगे किया और ब्रजसे निकल गये ॥ १ ॥

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः
स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः।
स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्
वत्सान् पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥

श्रीकृष्णके सहस्रों प्रेमी सखा उस समय अपने सुरम्य छींके, बेंत, सींगी तथा वंशी लेकर और अपने-अपने सहस्राधिक बछड़ोंको आगे करके आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णके साथ ब्रजमण्डलसे बाहर चल पड़े ॥ २ ॥

कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान्।
चारयन्तोऽर्भलाभिर्विजहुस्तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥

बाल सखाओंने अपने-अपने बछड़ोंको श्रीकृष्णके अगणित बछड़ोंके साथ मिला दिया और सबके बछड़े चरने लगे। सभी

ग्वालबाल वन-प्रदेशमें यहाँ-वहाँ बालकोचित क्रीड़ाएँ करते हुए विहार करने लगे ॥ ३ ॥

फलप्रवालस्तवक सुमनःपिच्छधातुभिः ।

काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥

सभी बालकोंको यद्यपि उनकी माताओंने काँच (एक प्रकारकी मणि), गुञ्जा, मणि एवं स्वर्ण निर्मित आभूषणोंसे सुसज्जित किया था, तथापि उन बालकोंने पुनः अपने शरीरोंको लाल-पीले-हरे फलों, नवपल्लवों, गुच्छों, सुवर्ण पुष्पों, मोर-पंखों एवं गैरिक आदि धातुओंसे अलङ्कृत कर लिया ॥ ४ ॥

मुष्णन्तोऽन्योन्योशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च विक्षिपुः ।

तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥

ग्वालबाल एक-दूसरेके छींके, छड़ी, वंशी आदि चुरा लेते। यदि किसी वस्तुका स्वामी अपनी अपहृत वस्तुको जान लेता, तो उसके ग्रहण करनेसे पहले ही कोई दूसरा सखा उस वस्तुको उठाकर उसे दूर फेंक देता। जहाँ वह द्रव्य गिरता, वहाँसे कोई और उसे उठा लेता तथा अधिक दूर फेंक देता। इस प्रकार अपना द्रव्य प्राप्त न होनेपर द्रव्यका स्वामी बालक रोने लगता, तब बालक हँसते हुए उसे उसकी वस्तु प्रदान कर देते ॥ ५ ॥

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ।

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥

यदि कभी श्रीकृष्ण वनकी शोभा देखनेके लिए कुछ दूर चले जाते, तो “मैं पहले उसे छुऊँगा, मैं पहले उसे छुऊँगा” इस प्रकार होड़ लगाकर सब-के-सब सखा दौड़ पड़ते और उनका स्पर्श करके परम आनन्दित हो जाते ॥ ६ ॥

केचिद्वेणून् वादयन्तो ध्वान्तः शृङ्गाणि केचन ।

केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः।

बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥

विकर्षन्तः कीशबालान् आरोहन्तश्च तैर्द्रुमान्।

विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥

साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरितः स्रवसंप्लुताः।

विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥ १० ॥

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या

दास्यं गतानां परदैवतेन।

मायाश्रितानां नरदारकेण

साकं विजहुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥

उन बालकोंमेंसे कोई वंशी बजाता, तो कोई सींगीको बजाता, कोई भ्रमरोंके साथ गुनगुनाता और कोई कोयलके कुहू-कुहू स्वरके साथ स्वर मिलाकर कूजन करता, कोई आकाशमें उड़ते पक्षियोंकी छायाके साथ द्रुत गतिसे दौड़ लगाता, तो कोई हंसोंकी चालका अनुकरण करते हुए मनोरम भङ्गिमापूर्वक चलने लगता। कोई बगुलेका अनुकरण करके आँखें मूँदकर उसके पास बैठ जाता, तो कोई मोरोंके साथ उन्हींकी तरह नृत्य करने लगता, कोई वृक्षपर बैठे वानर-शिशुओंकी पूँछ खींच लेता, तो कोई उनके साथ इस वृक्षसे उस वृक्षपर चढ़ जाता और बन्दरोंकी भाँति मुख-भङ्गिमा बनाता तथा कोई उनके साथ एक शाखासे दूसरी शाखापर छलाङ्ग लगाता, कोई मेंढकके साथ झरनेकी छोटी जलधारा (कछार) में छपका खेल खेलता हुआ उछलता-कूदता, कोई जलमें अपना ही प्रतिविम्ब देखकर उसका उपहास करता, तो कोई अपनी ही प्रतिध्वनिको बुरा-भला कहता। भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानियोंके लिए ब्रह्मसुखकी साक्षात् अनुभूति हैं, दास्य भावसे युक्त भक्तोंके लिए परम ऐश्वर्यशाली हैं एवं माया-मोहित विषयान्धोंके लिए वे मनुष्य-बालक हैं—इन्हीं भगवान्के साथ वे महान् पुण्यात्मा गोपबालक विविध प्रकारसे विहार किया करते।

इन गोपबालकोंने प्रचुर पुण्य किया है अन्यथा श्रीकृष्णके साथ इनका विहार सम्भव नहीं है ॥ ७-११ ॥

यत्पादपांशुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो

धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः ।

स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः

किं वर्ण्यते दिष्टमतो ब्रजौकसाम् ॥ १२ ॥

बहुत जन्मों तक यम-नियमादि कष्टमय साधनोंसे जिन्होंने अपनी इन्द्रियों एवं अन्तःकरणको वशीभूत कर लिया है, वे योगी लोग भी भगवान्की चरण-रेणु प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं। अब वे ही भगवान् स्वयं ब्रजवासियोंकी आँखोंके सामने क्रीड़ाएँ कर रहे हैं, इनके अहोभाग्यका कहाँ तक वर्णन किया जाय ? ॥ १२ ॥

अथाघनामाभ्यपतन्महासुर-

स्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।

नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः

पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥ १३ ॥

हे राजन्! इसी समय 'अघ' नामक एक बड़ा असुर वहाँ उपस्थित हुआ। वह इतना भयङ्कर था कि अमृत पान करके अमर हुए देवता भी उससे भयभीत रहते थे तथा अपने जीवनकी रक्षाके लिए उसकी मृत्युकी कामना करते थे। उस ईर्ष्यालुसे श्रीकृष्ण और उनके सखाओंकी सुखमयी क्रीड़ा देखी नहीं गयी। उसके हृदयमें जलन होने लगी ॥ १३ ॥

दृष्ट्वार्भकान् कृष्णमुखानघासुरः

कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।

अयन्तु मे सोदरनाशकृत् तयो-

र्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥ १४ ॥

कंसकी आज्ञासे आया हुआ यह अघासुर पूतना एवं बकासुरका छोटा भाई था। वह श्रीकृष्ण, श्रीदामा आदि बालकोंको

देखकर मन-ही-मन सोचने लगा कि इसी कृष्णने ही मेरे सगे भाई एवं बहिनकी हत्या की है। अतः आज मैं अपने भाई एवं बहिनकी सन्तुष्टिके लिए इसे इसके सखाओंके साथ ही मार डालूँगा ॥ १४ ॥

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः
कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः।
प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता
प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥

इन्हें मारकर परलोकगत अपने भाई-बहिनकी तृप्तिके लिए यदि मैं इन्हें तिलाज्जलिरूपमें प्रस्तुत करूँगा, तो व्रजवासी स्वतः ही मृतवत् हो जायेंगे। प्राणोंके नष्ट होनेपर शरीरके नाशके लिए सोचना नहीं पड़ता। जीवलोकमें सन्तान ही प्राणोंके समान है। (सन्तानरूपी प्राणोंका विनाश होनेपर उनके विरहमें देहरूपी व्रजवासी अपने आप मर जायेंगे) ॥ १५ ॥

इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः
स योजनायाममहाद्रिपीवरम्।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा
पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६ ॥

ऐसा निश्चित करके वह दुष्ट असुर अजगरका रूप धारण करके मार्गमें ही लेट गया। वह बड़ा ही अद्भुत लग रहा था। उसका यह अजगर शरीर एक योजन लम्बे पर्वतके समान स्थूल एवं विशाल था। उसने गह्वर (गुफा) के समान मुख फाड़ रखा था, जिससे वह श्रीकृष्ण आदि बालकोंको ग्रास कर सके ॥ १६ ॥

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो
दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः।
ध्वान्तान्तरास्यो वितताध्वजिह्वः
परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥ १७ ॥

अघासुरका निचला होठ पृथ्वीसे एवं ऊपरी होठ आकाशसे संलग्न था। मुखके दोनों जबड़े पर्वतकी कन्दराके समान विशाल थे और मध्यके भागमें अन्धकार व्याप्त था। उसकी जिह्वा एक चौड़े एवं लाल पथके समान, साँसें प्रखर वायु (आँधी) के समान और दोनों आँखें दावानलके समान दहक रही थीं॥ १७॥

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम्।

व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया॥ १८॥

बालकोंने उस अजगररूपी दैत्यको देखकर ऐसा मान लिया कि यह वृन्दावनका कोई विशेष 'ऐश्वर्य' है। वे निर्भय होकर खेल-ही-खेलमें अनेक कल्पनाएँ करने लगे कि यह गुफा तो महासर्प (अजगर) के फैले हुए मुखके समान दिखायी देती है, "यह ठीक ऐसी ही दिखती है, इसी प्रकारकी ही है॥" १८॥

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरःस्थितम्।

अस्मत् संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा॥ १९॥

किसी बालकने कहा—हे बन्धुओ! जरा देखो तो सही, यह सामने पड़ी वस्तु किसी निश्चल प्राणीके समान दिख रही है या नहीं! इसने हमें निगल जानेके लिए ही किसी विशाल अजगरके समान मुख फाड़ रखा है या नहीं?॥ १९॥

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवदधनम् ।

अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ॥ २०॥

दूसरे बालकने अनुमोदन किया—हाँ, ठीक कह रहे हो। यह हमें ग्रास करनेके लिए ही यहाँ स्थित हो गया है। सूर्यकी किरणोंसे अनुरज्जित रक्तिम मेघमण्डल इसके ऊपरके होंठके समान प्रतीत हो रहा है और इन मेघोंकी परछाईसे लाल रङ्गकी भूमि इसके निचले ओष्ठके समान दिखायी दे रही है॥ २०॥

प्रतिस्पर्धते सृक्काभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे।

तुङ्गशृङ्गालयोऽप्येतास्तदंष्ट्राभिश्च पश्यत॥ २१॥

किसी अन्य गोपबालकने भी सहमत होकर कहा—हाँ, हाँ, इसकी बार्यी एवं दार्यी ओरकी दोनों गिरि-कन्दराएँ इसके दोनों होंठ-प्रान्त (जबड़ों) के समान लग रही हैं और उन्नत पर्वतकी ये ऊँची चोटियाँ इसकी तीक्ष्ण दाढ़ोंके समान प्रतीत हो रही हैं ॥ २१ ॥

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति।

एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥ २२ ॥

किसी अन्य बालकने कहा—यह लम्बा-चौड़ा लाल पथ भी अजगरकी जिह्वाके समान दीख रहा है और ऊँचे-ऊँचे पर्वतके शिखरके मध्य व्याप्त अन्धकार उसके मुखके गह्वरसे स्पर्धा कर रहा है (अर्थात् इसका मुख गह्वरके समान ही है) ॥ २२ ॥

दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत।

तद्गन्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥ २३ ॥

एक और बालकने कहा—देखो, इसकी साँसोंमें अजगरकी साँसोंके समान इतनी दाहकता है कि मानो वनमें आग लगी हो। इस दावानलसे दग्ध प्राणियोंकी दुर्गन्ध ऐसी जान पड़ रही है मानो अजगरके उदरमें स्थित प्राणियोंके मांसकी दुर्गन्ध हो ॥ २३ ॥

अस्मान् किमत्र ग्रसिता निविष्टान्

अयं तथा चेद् बकवद्विनङ्क्ष्यति।

क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं

वीक्ष्योद्धसन्तः कर्ताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥

उनमेंसे एकने कहा—इसके मुखमें प्रवेश करें, तो क्या यह हमें निगल लेगा? अरे! यदि निगलेगा तो उसका बचाव नहीं है, कृष्णने जिस प्रकार बकासुरको मार डाला था, उसी प्रकार इसे भी वह क्षणभरमें ही मार डालेगा। इस प्रकार वे ग्वालबाल बकारि श्रीकृष्णके कमनीय मुखका दर्शन करते हुए और उच्च हास्यके साथ ताली पीटते-पीटते उस अजगरके मुखमें प्रवेश कर गये ॥ २४ ॥

इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं
 श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ।
 रक्षो विदित्वाखिलभूतहृत्स्थितः
 स्वानां निरोद्धुं भगवान् मनो दधे ॥ २५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं। वे बालकोंकी एक-दूसरेके साथ ऐसी भ्रमपूर्ण बातोंको सुनकर सोचने लगे—“यह तो वास्तवमें राक्षस है, परन्तु सर्पके समान व्यवहार कर रहा है। मेरे ग्वाल-सखा इस तथ्यसे अनभिज्ञ हैं।” ऐसा निश्चय करके वे अपने सखाओंको उसके मुँहमें जानेसे मना करना चाहते थे ॥ २५ ॥

तावत् प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं
 परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ।
 प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं
 हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥

श्रीकृष्ण निषेध करते, इससे पहले ही सारे ग्वालबाल बछड़ोंके साथ असुरके उदरमें चले गये, किन्तु इस राक्षसने उस समय अपने भाई बकासुर और बहिन पूतनाके वधका स्मरण करके उन्हें निगला नहीं, (गलेसे नीचे नहीं उतारा) वह श्रीकृष्णके प्रवेशकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २६ ॥

तान् वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो
 ह्यनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् ।
 दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्
 घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७ ॥

सारे ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्णके ऐकान्तिक भक्त थे। वे उनके हाथसे दूर निकलकर मृत्यु-तुल्य अघासुरकी जठराग्निके ग्रास बन इस प्रकार जलने लगे, जैसे तिनका बाह्य-अग्निमें गिरकर जलने लगता है। दुरवस्थामें पड़े दीन बालकोंको देखकर

उनके एकमात्र रक्षक, अभयप्रदाता श्रीकृष्ण लीला-शक्तिके अनुकूल कालके विचित्र प्रभावको देखकर अत्यधिक आश्चर्यान्वित हो गये और कृपावश उनका हृदय द्रवीभूत हो गया ॥ २७ ॥

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं
न वा अमीषाञ्च सतां विहिंसनम्।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य
ज्ञात्वाविशत् तुण्डमशेषदृग्धरिः ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सोचने लगे कि इस सङ्कटमें अब मुझे क्या करना चाहिये? ऐसा कौन-सा उपाय है, जिससे इस दुष्टकी मृत्यु भी हो जाय और साधु-स्वभाववाले भोले-भाले बालकोंकी रक्षा भी हो जाय? पर ये दोनों कार्य एक ही साथ किस प्रकारसे साधित हों? अनन्तदर्शी अर्थात् भूत, भविष्य एवं वर्तमानको प्रत्यक्ष देखनेवाले श्रीकृष्णने इस विषयपर विचारकर एक युक्ति निश्चित की और तदनुसार उस असुरके मुखमें स्वयं प्रवेश कर गये ॥ २८ ॥

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः।
जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥ २९ ॥

उस समय श्रीकृष्णका अघासुरके मुखमें प्रवेश देखकर मेघोंकी आड़में छिपे हुए देवता भयसे हाहाकार कर उठे एवं अघासुरके बान्धव कंसादि राक्षस आनन्दित हो उठे ॥ २९ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् कृष्णस्त्वव्ययः सार्धवत्सकम्।
चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥

अघासुर बछड़ों एवं ग्वालबालोंके साथ भगवान् श्यामसुन्दरको अपनी दाढ़ोंसे चबाकर चूर्ण-विचूर्ण करना चाहता था, किन्तु उसी समय देवताओंका हाहाकार सुनकर साक्षात् अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण उस असुरके गलेमें अटककर बड़े वेगसे अपने शरीरको बढ़ाने लगे ॥ ३० ॥

ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो
 ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ।
 पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो
 मूर्धन् विनिर्भिद्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्णका शरीर बढ़ जानेके कारण उस विशालकाय दैत्यके कण्ठ आदि सारे रास्ते रूँध गये, आँखें बाहर निकल आयीं। वह व्याकुल होकर इधर-उधर छटपटाने लगा। उसके शरीरके सभी द्वारोंके रुक जानेसे श्वास-वायु परिपूर्ण होकर सारे शरीरमें भर गयी एवं ब्रह्मरन्ध्रको भेद करके बाहर निकल गयी ॥ ३१ ॥

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु
 प्राणेषु वत्सान् सुहृदः परेतान् ।
 दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुन-
 र्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान् विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥

मस्तकके उसी छिद्र-पथसे प्राणोंके साथ-साथ समस्त इन्द्रियाँ भी बाहर निकल आयीं। उसी समय भगवान् मुकुन्दने समस्त मृत गोवत्स एवं ग्वालबालोंको अपनी अमृतमयी दृष्टिसे पुनः जीवित कर दिया और स्वयं उन्हें साथ लेकर असुरके मुखसे बाहर निकल आये ॥ ३२ ॥

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं मह-
 ज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ।
 प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं
 विवेश तस्मिन् मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

उस विशाल सर्पकी देहसे एक अद्भुत महान् ज्योति निकली। उस समय उस महाज्योतिके प्रकाशसे दसों दिशाएँ दीप्त हो उठीं। वह श्रीकृष्णके बाहर आनेकी प्रतीक्षा करती हुई आकाशमें ही स्थित रही। थोड़ी ही देरमें जब श्रीकृष्ण बाहर निकल आये, तब देवताओंके सम्मुख ही वह ज्योति श्रीकृष्णके शरीरमें समा गयी ॥ ३३ ॥

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं
 पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।
 गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः
 स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥

उस समय अत्यधिक आनन्दसे ओतप्रोत होकर देवता पुष्पवर्षण करने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, सुगायक गन्धर्व आदि गान करने लगे, विद्याधरादि वादक वाद्य बजाने लगे, ब्राह्मण स्तुति करने लगे और जनदेवता (पार्षद) जय-जयकार करके भगवान् श्रीकृष्णका अभिनन्दन करने लगे। भगवान् ने अघासुरको मारकर उन सबकी इच्छाको पूर्ण किया ॥ ३४ ॥

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिका-
 जयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।
 श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्-
 दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥

अद्भुत स्तोत्रों, सुरम्य वाद्यों, स्वस्ति-गीतियों, जय-जयकार और आनन्दोत्सवोंकी मङ्गल-ध्वनि ब्रह्माजीके निजधाम ब्रह्मलोक तक पहुँची। उस मङ्गल-ध्वनिको सुनकर वे शीघ्र ही अपने वाहनपर वहाँ आये और श्रीकृष्णकी महिमाका दर्शन करके विस्मित हो गये ॥ ३५ ॥

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् ।
 व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥

हे राजन्! उस अजगरका शुष्क, अद्भुत चर्म बहुत समय तक वृन्दावनमें व्रजवासियोंके लिए खेलनेकी एक अद्भुत गुफाके रूपमें व्यवहृत होता रहा ॥ ३६ ॥

एतत् कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।
 मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥

श्रीहरिने कौमारावस्था (पाँचवें वर्षकी अवस्था) में उस मृत्युरूप अघासुरसे स्वयंको एवं ग्वालबालकोंको बचाया था तथा

सर्पको संसार-दशासे मुक्त किया था। ग्वालबाल यह देखकर विस्मित रह गये थे, परन्तु उन्होंने पौगण्ड अर्थात् छठवें वर्षकी अवस्थामें (पौगण्ड-लीला प्राकट्यके बाद) व्रजमें प्रवेश करनेपर इस आश्चर्यजनक घटनाका इस प्रकार वर्णन किया, जैसे यह घटना आज ही हुई हो॥ ३७ ॥

नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः
 परावराणां परमस्य वेधसः।
 अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः
 प्रापात्मसाम्यन्त्वसतां सुदुर्लभम्॥ ३८ ॥

कार्य-कारण, व्यक्त-अव्यक्त, उच्च-नीच जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे उन सबके अर्थात् समस्त जगत्के विधातास्वरूप हैं। नर-लीलामें अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्यको प्रकट करनेवाले, परम दयालु, परमपुरुष नन्दनन्दनके लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अघासुर मूर्तिमान अघ (पाप) ही था। उसने भगवान्‌के संस्पर्शसे निष्पाप होकर दुष्टोंके लिए दुर्लभ सारूप्य मुक्तिको प्राप्त किया था॥ ३८ ॥

सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता
 मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्।
 स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि-
 व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः॥ ३९ ॥

मात्र एक बार भी जिनकी मनोमयी (मनश्चिन्तित) अङ्ग-छविको अथवा उनकी भावनिर्मित प्रतिमाके किसी भी एक अङ्गको हृदयमें स्थापित कर लिया जाय, तो उसीसे वे जीवको परम गति प्रदान करते हैं। हे अङ्ग! भगवान् आत्मानन्दके नित्य साक्षात्कार स्वरूप हैं, उनसे ही समस्त जीवोंको सुखानुभूति होती है। माया जिनसे सम्पूर्णरूपसे दूर रहती है, उनके पास फटक तक नहीं पाती, ऐसे स्वयं अवतारी भगवान् जिस अघासुरके शरीरमें प्रवेश कर गये, क्या अब भी उसकी (अघासुरकी) सद्गतिके विषयमें सन्देह रह जाता है?॥ ३९ ॥

श्रीसूत उवाच—

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः
श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम्।
पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं
वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥

श्रीसूत गोस्वामीने कहा—हे शौनकादि ऋषियो! यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने विष्णुरात परीक्षितको प्राण-दान दिया था। इसलिए महाराज परीक्षित अपने रक्षक श्रीकृष्णकी इस विचित्र बाल्य-लीलाको सुनकर अत्यन्त विस्मित हो गये और उनके पुण्य-चरितके विषयमें पुनः प्रश्न करने लगे। भगवान्की अमृतमयी पावन लीलाओंने उनके चित्तको वशीभूत एवं संयत कर रखा था ॥ ४० ॥

श्रीराजोवाच—

ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत्।
यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥

महाराज परीक्षितने कहा—मुनिवर! आप कृपा करके यह बतलाइये कि किसी एक समयकी अनुष्ठित लीला किसी दूसरे समयमें कैसे हो सकती है? श्रीहरिने कौमारावस्थामें—पाँचवें वर्षमें जिस लीलाको प्रकट किया था, बालकोंने उसे पौगण्डलीलामें—छठे वर्षमें व्यक्त किया। उन्होंने उस लीलाका सद्य-घटितके रूपमें कैसे वर्णन किया? ॥ ४१ ॥

तद्ब्रूहि मे महायोगिन् परं कौतूहलं गुरो।
नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥

हे महायोगीवर गुरुदेव! आप इस विषयको मुझे बतलाइये, क्योंकि मुझे इसे जाननेके लिए अत्यन्त कौतूहल हो रहा है। निश्चितरूपसे यह हरिकी मायाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उनकी माया कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुम्में (करणीय-अकरणीय

और उन दोनोंके भी अतिरिक्त अन्यथा-करणीयमें) समर्थ अर्थात् विचित्र घटनाओंको घटित करनेमें समर्थ है ॥ ४२ ॥

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ।

वयं पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥

हे गुरुवर! मैं अधम क्षत्रिय हूँ, तथापि अत्यन्त धन्य हूँ कि निरन्तर आपके मुखारविन्दसे झरते हुए परम पवित्र मधुमय हरिकथामृतका पान कर रहा हूँ ॥ ४३ ॥

श्रीसूत उवाच—

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-

स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।

कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः

प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे अघासुरवधोनाम
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीसूतजीने कहा—हे भगवत्-भक्तवर शौनक! जब राजा परीक्षितने इस प्रकार प्रश्न किया, तब मुनिवर श्रीशुकदेवके हृदयमें श्रीकृष्ण-विषयक लीलाओंका स्मरण हो आया तथा उनकी समस्त इन्द्रियाँ एवं उनके अन्तःकरण अपहृत-से होकर भगवान्की नित्य लीलाओंकी ओर आकर्षित हो गये। कुछ समयके बाद धीरे-धीरे अति कष्टपूर्वक बाह्य ज्ञान होनेपर वे परीक्षितसे भगवान्की लीलाओंका वर्णन करने लगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बारहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

त्रयोदशोऽध्यायः

ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश

श्रीशुक उवाच—

साधुपृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम।

यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः॥ १ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे महाभाग परीक्षित्! तुम प्रेमी भक्तोंमें श्रेष्ठ हो। तुमने अति उत्तम प्रश्न किया है। यों तो तुम निरन्तर हरिकथा सुन रहे हो, फिर भी तुम उसके सम्बन्धमें प्रश्नकर उन्हें नव-नवायमान और सरसरूपमें अनुभव भी कर रहे हो॥ १ ॥

सतामयं सारभृतां निसर्गं

यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।

प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्

स्त्रियां विटानामिव साधु वार्त्ता॥ २ ॥

जिनके वाणी, अर्थ, कान एवं चित्तके विषय एकमात्र कृष्ण हैं, उन सब सारग्राही साधुओंका स्वभाव इसी प्रकारका होता है। इन रसिक साधुओंको भगवान् कृष्णकी कथाएँ क्षण-प्रतिक्षण नित्य-नूतनरूपमें ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे स्त्रैण व्यक्तिको स्त्री-सम्बन्धित चर्चा सदैव रसमयी प्रतीत होती है॥ २ ॥

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते।

ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत॥ ३ ॥

हे परीक्षित्! तुम एकाग्र चित्तसे सुनो। यह भगवान्की लीला अति रहस्यपूर्ण होनेपर भी मैं तुम्हारे लिए कह रहा हूँ, क्योंकि करुणामय गुरुजन अपने अनुगत प्रिय शिष्योंको अति रहस्यमय (गोपनीय) तत्त्व भी बतला दिया करते हैं॥ ३ ॥

तथाघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान्।

सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत्॥ ४ ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण मृत्युस्वरूप अघासुरके मुखसे बछड़ों एवं ग्वालबालोंकी रक्षा करके उन्हें यमुनाके पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे—॥ ४ ॥

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः

स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छबालुकम् ।

स्फुटत्सरोगन्धहतालिपत्रिक-

ध्वनि प्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥

हे प्रिय सखाओ! देखो, यह यमुना-पुलिन अतिशय रमणीय है। यहाँपर विकसित कमलोंकी गन्धसे आकृष्ट होकर समागत भ्रमरोंके गुञ्जार और पक्षियोंके कलरवकी प्रतिध्वनिसे तटपर स्थित समस्त वृक्ष प्रतिध्वनित हो रहे हैं। उन वृक्षोंकी सुन्दरता देखते ही बनती है। यह स्थल कोमल एवं निर्मल बालुकासे परिपूर्ण है। अतएव यह स्थान हमारी क्रीड़ाके लिए समस्त प्रकारके उपकरणोंसे (सामग्रियोंसे) भरपूर है ॥ ५ ॥

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः ।

वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥

यह स्थान हमारे भोजन करनेकी दृष्टिसे भी उचित है। इधर दिन भी बहुत चढ़ आया है और हम भूखसे कातर हो रहे हैं। बछड़े पानी पीकर निकट रहें और धीरे-धीरे घास चरते रहें ॥ ६ ॥

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्यशाद्वले ।

मुक्त्वा शिख्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥

ग्वालबालोंने श्रीकृष्णकी बात स्वीकार करते हुए एक स्वरसे कहा—“ठीक है, ठीक है।” उन्होंने बछड़ोंको जल पिलाकर हरी-भरी घासके मैदानमें छोड़ दिया (जिससे घासके लोभमें वे कहीं और न जा सकें)। तब वृक्षोंपर बैठे हुए अपने छींकोंको (जिन्हें अघके मुखमें प्रवेशके पहले ही खेलनेकी सुविधासे बाँध दिया था) खोलकर वे भगवान्‌के साथ आनन्दपूर्वक भोजन करने लगे ॥ ७ ॥

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलै-
 रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः।
 सहोपविष्टा विपिने विरेजु-
 श्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥

कमलके मध्यमें स्थित कर्णिकाके चारों ओर जिस प्रकार छोटी-बड़ी पँखुड़ियाँ सुशोभित होती हैं, ठीक उसी प्रकार वनभोजनके समय व्रजबालक वनमें श्रीकृष्णके चारों ओर बहुत-सी मण्डलाकार पंक्तियाँ बनाकर अविच्छेद्यरूपसे (एक-दूसरेसे सटकर) श्रीकृष्णके सम्मुख बैठ गये। “कृष्ण मेरी ओर ही दृष्टिपात कर रहे हैं”—इस कारण सभीके नेत्र आनन्दसे उत्फुल्ल हो रहे थे ॥ ८ ॥

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः।
 शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥

बालकोंमेंसे किसीने पुष्प, किसीने पत्ते, किसीने पल्लव, किसीने अङ्कुर, किसीने फल, किसीने छींका, किसीने वृक्षोंकी छाल और किसीने पत्थरको ही भोजनका पात्र बनाकर भोजन करना आरम्भ कर दिया ॥ ९ ॥

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक्।

हासन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजहुः सहेश्वराः ॥ १० ॥

श्रीकृष्णके साथ सारे ग्वालबाल अपने-अपने घरोंसे लाये हुए अन्न-व्यञ्जन आदिके रुचिपूर्ण स्वादको परस्पर पृथक्-पृथक् रूपसे दिखाते हुए अर्थात् “हे कृष्ण! हे सुबल! देखो! इस व्यञ्जनका स्वाद कितना मधुर है”—इस प्रकार एक-दूसरेको आस्वादन कराके स्वयं हँसते और दूसरेको भी हँसाते हुए भोजन करने लगे ॥ १० ॥

बिभ्रद्रेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
 वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु।
 तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः
 स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥

जो समस्त यज्ञोंके भोक्ता हैं, उन श्रीकृष्णने बालकके समान क्रीड़ा करते हुए कमरके फेंटेमें वंशी खोंस रखी थी, सींगी एवं बेंत बगलमें दबा लिये थे, बायें हाथमें स्निग्ध एवं मधुर दधिमिश्रित भातका कौर ले रखा था, समस्त अङ्गुलियोंकी सन्धियोंमें रुचिवर्द्धक फलोंके टुकड़े, अदरक, नींबू, टेंटी आदिके अचार-मुर्ब्बे रखे हुए थे। कमलकी कर्णिकाके समान कृष्ण सब ग्वालबालोंके मध्यमें बैठे हुए थे। वे अपने विनोदपूर्ण परिहास वचनोंसे अपने चारों ओर बैठे हुए मित्रोंको हँसाते हुए भोजन कर रहे थे। उस समय स्वर्गके देवता आकाशमें उनकी लीलाको देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे॥ ११॥

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु।

वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः॥ १२॥

हे भरतवंश-शिरोमणि परीक्षित्! इस प्रकार भोजन करते-करते गोवत्सपालगण भगवान्की इस रसमयी लीलामें पूर्णरूपसे विभोर हो गये और उधर बछड़े हरी-हरी घासके लोभसे सघन वनमें बहुत दूर निकल गये॥ १२॥

तान् दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तान् उचे कृष्णोऽस्य भीभयम्।

मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम्॥ १३॥

जब ग्वालबालोंने यह देखा, तब हिंसक जन्तुओं द्वारा अनिष्टकी आशङ्कासे वे बहुत डर गये। भगवान् श्रीकृष्ण विश्वके भी भयस्वरूप और मृत्युको भी भय प्रदान करनेवाले हैं। भोजनरत उन ग्वालोंके भयका निवारण करते हुए श्रीकृष्णने कहा—“हे प्यारे मित्रो! तुमलोग भोजनका परित्याग मत करो। मैं अभी बछड़ोंको यहाँ ले आता हूँ॥” १३॥

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।

विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणिकवलो ययौ॥ १४॥

ग्वालबालोंसे यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण दधि एवं भातसे मिश्रित कौरको हाथमें लिये हुए ही अपने तथा सहचरोंके

बछड़ोंको पर्वत, कन्दरा, गह्वर, कुञ्ज आदिमें सर्वत्र ढूँढ़ने लगे ॥ १४ ॥

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-
द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान्।
नीत्वान्यत्र कुरुद्वहान्तरदधात् खेऽवस्थितो यः पुरा
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ! जो पहलेसे ही आकाशमें उपस्थित होकर प्रभावशाली श्रीकृष्ण द्वारा सम्पादित अघासुरकी मोक्ष-लीलाका दर्शन करके परम विस्मित हो रहे थे, वे कमल-योनि ब्रह्मा इस समय उसी स्थानपर आये और बाल्य-लीला-परायण, स्व-ऐश्वर्यको प्रकट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी कोई और मनोहर महिमामयी लीला देखनेकी इच्छासे पहले तो उन्होंने बछड़ोंको और बादमें वहाँसे भगवान् श्रीकृष्णके वत्स-अन्वेषणके लिए चले जानेपर गो-पालकोंको भी अन्यत्र ले जाकर छिपा दिया और स्वयं भी अदृश्य हो गये ॥ १५ ॥

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान्।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥ १६ ॥

इसके बाद जब श्रीकृष्णको कहीं भी बछड़े दिखायी नहीं दिये, तो वे वहीं यमुनाके पुलिनपर लौट आये और देखा कि गोपबालक भी वहाँ नहीं हैं। तब तो वे वनमें यत्र-तत्र-सर्वत्र विचरण करते हुए बछड़ों और ग्वालबालोंको ढूँढ़ने लगे ॥ १६ ॥

क्वाप्यदृष्ट्वान्तिर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्ववित्।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह ॥ १७ ॥

जब वनमें कहीं भी गोपबालक और बछड़े दिखायी नहीं दिये, तो भगवान् श्रीकृष्ण तुरन्त ही जान गये कि यह सारा कार्य ब्रह्माका है, क्योंकि वे (कृष्ण) विश्ववित् अर्थात् विश्वका सर्वस्व जाननेवाले हैं ॥ १७ ॥

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातृणाञ्च कस्य च।

उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण विश्वके कर्ता, सर्वशक्तिमान, परमेश्वर श्रीकृष्ण ब्रह्माजी, बछड़ों और ग्वालबालोंकी माताओंके हृदयको आनन्दित करनेके लिए स्वयं ही गोपालक एवं गोवत्स बन गये ॥ १८ ॥

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं

यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिङ्गं यावद्विभूषाम्बरम्।

यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारदिकं

सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो भभौ ॥ १९ ॥

परीक्षित्! वे ग्वालबाल और बछड़े जितनी संख्यामें थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे, जैसे उनके सुकोमल अङ्ग और हाथ-पैर आदि उपाङ्ग थे, जैसे उनके यष्टि (छड़ियाँ), सींगी, वेणु और छींके थे, जैसे वस्त्र एवं अलङ्कार थे, जैसा शील, स्वभाव, गुण, नाम, आकृति एवं अवस्थाएँ थीं, जैसी क्रीड़ा, भङ्गी, आहार-विहार एवं चलन था, उन्होंने ठीक वैसे ही रूपों एवं भावोंको धारण कर लिया, जिससे “यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है”—यह वेद-वाणी साक्षात् मूर्तिमान् विग्रह-स्वरूपमें प्रकट हो गयी ॥ १९ ॥

स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान् प्रतिवार्यात्मवत्सपैः।

क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥

सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही बछड़े बन गये और स्वयं ही ग्वालबाल। आत्म-स्वरूप वत्सपालोंके द्वारा आत्म-स्वरूप बछड़ोंसे आवृत होकर आत्म-स्वरूप बालकोंके साथ वेणुवादन आदि नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने व्रजमें प्रवेश किया ॥ २० ॥

तत्तद्वत्सान् पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः।

तत्तदात्माभवद्राजस्तत्तत् सच्च प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥

हे राजन्! उस समय श्रीकृष्णने प्रत्येक गोपालकके जो-जो बछड़े थे, उन्हें विभाजित करके यथानिर्दिष्ट गोष्ठोंमें (गोशालाओंमें) प्रवेश कराके स्वयं उन-उन गोपालोंके रूपमें उनके भिन्न-भिन्न घरोंमें प्रवेश कर गये ॥ २१ ॥

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता
उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम्।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं
मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥

वंशीका स्वर सुनते ही उन गोपालोंकी माताएँ शीघ्र ही दौड़ी चली आयीं तथा ग्वालबाल बने हुए परब्रह्मरूपी श्रीकृष्णको अपना ही पुत्र जानकर उन्हें अपनी भुजाओंसे उठाकर एवं गोदीमें बिठाकर गाढ़ आलिङ्गन करने लगीं। अत्यन्त वात्सल्य-स्नेहसे उनके स्तनोंसे अमृतसे भी मधुर तथा मदिरासे भी मादक दूध झरने लगा, जिसे वे अपने बालकोंको पिलाने लगीं ॥ २२ ॥

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपना-
लङ्काररक्षातिलकाशनादिभिः ।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्
सायं गतो यामयमेन माधवः ॥ २३ ॥

हे राजन्! इसके बाद प्रतिदिन पहले जिस समय जो-जो क्रीड़ा होती, उसका उसी प्रकारसे निर्वाह करते हुए सन्ध्याकालमें श्रीकृष्ण उस-उस ग्वालबालके रूपमें वनसे लौट आते और पूर्व बालकोंके समान आचरण एवं वैसी ही बालसुलभ क्रीड़ाओं द्वारा माताओंको आनन्दित करते। वे माताएँ भी उन्हें तैल-मर्दन करतीं, उबटन लगातीं, स्नानादि करातीं, चन्दनादिका लेप करतीं, अच्छे-अच्छे वस्त्र एवं आभूषण पहनातीं, रक्षा-मन्त्र पढ़तीं, तिलकादि लगातीं, दोनों भौंहोंके मध्य काजलका डिठौना लगातीं, उन्हें भोजन करातीं तथा बड़े लाड़-प्यारसे उनका (वस्तुतः श्रीकृष्णका) लालन-पालन करतीं ॥ २३ ॥

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं
 हुङ्गारघोषैः परिहृतसङ्गतान्।
 स्वकान् स्वकान् वत्सतरानपाययन्
 मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥

गवालबालोंकी माताओंकी भाँति गौएँ भी जङ्गलोंसे चरकर शीघ्र ही गोष्ठमें आ जातीं और अपनी हुङ्गारसे बछड़ोंको पुकारतीं। उनकी हुङ्गार सुनकर बछड़े भी अपनी माताओंके समीप आ जाते। तब वे गौएँ अपने बछड़ोंको बार-बार जीभसे चाटतीं और स्नेहकी अधिकताके कारण थनोंसे स्वयं झरती हुई दूध-धाराओंका पान कराने लगतीं ॥ २४ ॥

गोगोपीनां मातृतास्मिन्नासीत् स्नेहर्धिकां विना।
 पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५ ॥

इन गोपियों और गायोंका मातृभाव पहले जैसा ही ऐश्वर्यज्ञानरहित और विशुद्ध था। पहले वे गोपियाँ अपने पुत्रोंसे अधिक श्रीकृष्णसे स्नेह करती थीं, किन्तु अब वैसा नहीं रहा अर्थात् अपने पुत्रों एवं श्रीकृष्णमें स्नेह समान हो गया। गोपियोंके प्रति श्रीकृष्णका मातृभाव पूर्ववत् ही रहा। पूर्वमें “यह मेरी माता है, मैं इसका पुत्र हूँ”—कृष्णका ऐसा भाव (ममत्व) नहीं था, किन्तु अब उनका भाव यथोचित हो गया था अर्थात् अब वे श्रीदाम, सुबल आदि असंख्य मूर्तियोंमें असंख्य गोपियोंके वात्सल्य-प्रेमोचित मुख-चुम्बन आदि ग्रहण करते थे—यही विशेषता थी। (कृष्ण सर्वदा प्रेमके अधीन रहते हैं, परन्तु प्रेम उनके अधीन नहीं होता। प्रेमके ऊपर अपना अधिकार न रहनेसे कृष्ण प्रेमको सङ्कुचित करनेमें असमर्थ हैं। प्रेमकी यह पराधीनता क्षण-क्षण कृष्णका आनन्द वर्द्धन करती है।) ॥ २५ ॥

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम्।
 शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥

व्रजवासी गोप एवं गोपियोंका यशोदानन्दन श्रीकृष्णके प्रति पहले अपने पुत्रोंसे अधिक स्नेह था, किन्तु अब कृष्ण बने हुए

अपने पुत्रोंके (श्रीदाम-सुबल आदिके) प्रति वही स्नेह-लतिका असीमितरूपसे एक वर्ष तक दिन-दुगुनी रात-चौगुनी बढ़ती रही ॥ २६ ॥

इत्थमात्माऽऽत्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः ।

पालयन् वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥

इस प्रकार सर्वात्मा श्रीकृष्ण गोपालक होकर वत्सपालकोंके मध्य रहकर स्वयं ही स्वयंका परिपालन करते हुए एक वर्ष तक वनमें और ब्रजमें अभिनव लीला (क्रीड़ा) विलास करते रहे ॥ २७ ॥

एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनमाविशत् ।

पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥

जब एक वर्ष पूर्ण होनेमें पाँच-छह रात्रियाँ बची हुई थीं, तब एक दिन श्रीकृष्ण बलदेवके साथ बछड़ोंको चराते हुए वनमें गये ॥ २८ ॥

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपब्रजम् ।

गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥

उस समय गायें गिरि गोवर्धनके उन्नत प्रदेशमें (शिखरपर) घास चर रही थीं। वहाँसे उन्होंने ब्रजके समीप ही चरते हुए बहुत-से बछड़ोंको देखा ॥ २९ ॥

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा

स गोब्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ।

द्विपात् ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छो-

ऽगाद्धङ्कृतैरासुपया जवेन ॥ ३० ॥

बछड़ोंको देखते ही स्नेहातिशयताके कारण गायें अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उनमें वात्सल्य भाव जाग उठा। उनके पालक ग्वालोंने उन्हें रोकनेका प्रयत्न किया, परन्तु वे उनकी उपेक्षा करके दुर्गम पथ इत्यादिको पार करती हुई वेगपूर्वक दौड़ पड़ीं।

उनकी गर्दन ककुद-स्थान (डील) पर सिकुड़कर स्कन्धसे लग गयी थी। वे मुख एवं पूँछको ऊपर उठाये हुंकार करती हुई इतनी तेजीसे दौड़ीं कि शीघ्र ही व्रजके समीप आ गयीं। उन्हें दौड़ते देखकर ऐसा लग रहा था, मानो उनके दो ही पैर हों। उस समय उनके स्तनोंसे दूध प्रचुर मात्रामें बह रहा था॥ ३० ॥

समेत्य गावोऽधो वत्सान् वत्सवत्योऽप्यपाययन्।

गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः॥ ३१ ॥

यद्यपि इस सुदीर्घकालमें गायोंने और भी बछड़ोंको जन्म दिया था, तथापि गोवर्धन पर्वतके नीचे बैठकर वात्सल्य स्नेहसे वे अपने पहले बछड़ोंके शरीरोंको चाटने लगीं और स्वयं ही बहते हुए दूधको पिलाने लगीं। उनकी उत्कण्ठा देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे बछड़ोंको निगलकर पुनः उदरमें रख लेना चाहती हों॥ ३१ ॥

गोपास्तद्रोधनायासमौध्यलज्जोरुमन्युना ।

दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान्॥ ३२ ॥

गोपोंने इन गायोंको रोकनेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो गया। उन्हें अपनी असफलतापर लज्जाका अनुभव हुआ एवं गायोंपर क्रोध आ गया। वे भी उस दुर्गम पथको पार करके वहाँ आ गये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि उनके बछड़ोंके साथ-साथ उनके बालक भी वहींपर हैं॥ ३२ ॥

तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया

जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान्।

उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि

घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते॥ ३३ ॥

अपने पुत्रोंको देखते ही गोपोंका हृदय स्नेह-रसमें प्लावित हो गया। उनके हृदयमें अपने पुत्रोंके प्रति अनुरागका प्लावन होने लगा। पहले जो रोष उनमें व्याप्त था, वह दूर हो गया। उन्होंने अपने-अपने पुत्रोंको गोदमें उठाया और दोनों भुजाओंमें भरकर

अपने हृदयसे लगा लिया। उनका मस्तक सूँघकर वे परम हर्षित हुए ॥ ३३ ॥

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः।

कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥

वयस्क गोप निज पुत्रोंका आलिङ्गन कर-करके परम आनन्दित हुए। अति कष्टसे आलिङ्गनादि वात्सल्यमयी चेष्टाओंसे वे धीरे-धीरे निवृत्त हुए। उस समय पुत्र-स्मृतिवश उनके नेत्रोंसे अश्रु-जल प्रवाहित हो रहा था ॥ ३४ ॥

व्रजस्य रामः प्रेमर्द्ध्वीक्ष्यौत्कण्ठयमनुक्षणम्।

मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥ ३५ ॥

उस समय बलदेवने देखा कि वयस अधिक हो जानेके कारण जिन्होंने अपनी माँका स्तन्य-पान करना छोड़ दिया है, उन बछड़ों और गोपबालकोंके प्रति गायों, व्रजवासी गोपों और ग्वालिनोंके स्नेह एवं उत्कण्ठा क्षण-प्रतिक्षण बढ़ते जा रहे हैं, वे इसका कारण समझ नहीं पाये और विचार करने लगे ॥ ३५ ॥

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि।

व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्द्धते ॥ ३६ ॥

यह बड़े आश्चर्यका विषय है कि सर्वात्मस्वरूप (अखिलात्मा) श्रीकृष्णके प्रति मेरा और व्रजवासियोंका जैसा अपूर्व प्रेम रहता था, आज इन गोपबालकों एवं बछड़ोंके प्रति भी इनका वैसा ही अपूर्व अनुराग संवर्द्धित हो रहा है ॥ ३६ ॥

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी।

प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥

यह कैसी माया है? यह कहाँसे आयी है? देव, मनुष्य अथवा असुर—यह कृत्य किसका है? परन्तु क्या ऐसा हो सकता है? नहीं, नहीं, सम्भवतः यह मेरे अधीश्वर श्रीकृष्णकी ही माया है? अन्य किसीकी माया तो मुझे मोहित करनेमें समर्थ नहीं हो सकती ॥ ३७ ॥

इति सञ्चिन्त्य दाशाहो वत्सान् सवयसानपि ।

सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥

बलदेवने इस प्रकार विचार करते हुए ज्ञान-दृष्टिके द्वारा देखा कि ये सभी सखा एवं गोवत्सगण श्रीकृष्णरूपमें ही प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ३८ ॥

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते

त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।

सर्वं पृथक् त्वं निगमात् कथं वदे-

त्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥

तब बलदेवने श्रीकृष्णसे कहा—हे प्रभो! श्रीकृष्ण! मैं पहले सोच रहा था कि ये सभी गोपाल देवश्रेष्ठ गरुड इत्यादिके स्वरूप हैं एवं गोवत्सगण नारदादि ऋषिस्वरूप हैं, परन्तु इस समय मुझे ऐसा दिखायी नहीं दे रहा है, ये सब पृथक् रूपमें प्रतीयमान हो रहे हैं—ग्वालबाल, वत्स, सींग, रज्जु सभी रूपोंमें मैं तुम्हें ही प्रकाशित देख रहा हूँ। अतः तुम इस विषयका विश्लेषण करते हुए सम्पूर्ण कथाको संक्षेपमें बतलाओ। बलदेवके इस प्रकार जिज्ञासा करनेपर श्रीकृष्णने सारा विवरण निरूपित कर दिया। (ब्रह्माजी कृष्ण-लीलाकी अवधि-दर्शन करना चाहते थे।) ॥ ३९ ॥

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ।

पुरोवदाब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥ ४० ॥

परीक्षित्! तब तक ब्रह्मा ब्रह्मलोकसे व्रजमें लौट आये। उनके अपने काल परिमाणमें त्रुटिमात्र समय (जितनी देरमें तीक्ष्ण सुईसे कमलपत्रमें छिद्र हो जाय) व्यतीत हुआ था, जब कि मानवके काल-परिमाणमें एक वर्ष व्यतीत हो गया था। उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने अंशरूपी ग्वालबाल और बछड़ोंके साथ एक वर्षसे पहलेकी भाँति ही क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४० ॥

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।

मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥

ब्रह्मा विचार करने लगे कि गोकुलमें जितने भी बालक थे, उन्हें तो मैं बछड़ोंके साथ माया-शय्यापर सुलाकर आया था। उस समय उन्हें मैंने अपनी मायासे उन्हें अचेत कर दिया था, तबसे वे आज तक उठे ही नहीं हैं॥ ४१ ॥

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे।

तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम्॥ ४२ ॥

तब मेरी मायासे मोहित बछड़ों एवं ग्वालबालोंके अतिरिक्त उनके ही समान संख्यामें ये सब ग्वालबाल और बछड़े यहाँ कहाँसे आ गये, जो एक वर्षसे श्रीकृष्णके साथ विहार कर रहे हैं?॥ ४२ ॥

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः।

सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन॥ ४३ ॥

ब्रह्माने गायों एवं बछड़ोंको एक ही साथ दोनों स्थानोंपर देखकर बहुत समय तक ध्यान करते हुए अपनी ज्ञान-दृष्टिसे इस रहस्यको उद्घाटित करना चाहा, परन्तु इन दोनोंमें कौन-से पहलेवाले (प्रकृत) ग्वालबाल हैं और कौन-से बादमें कृष्ण-रचित हैं, इनमें कौन सच्चे हैं और कौन बनावटी (असत्य)—यह बात वे किसी भी प्रकारसे समझ नहीं सके॥ ४३ ॥

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्।

स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः॥ ४४ ॥

भगवान्को माया स्पर्श नहीं कर सकती, उनकी मायासे ही सब मोहित हो रहे हैं। ग्वालबालोंको चुराकर ब्रह्मा भुवन-मोहन श्रीकृष्णको मोहित करने और उनपर अपनी मायाका विस्तार करने चले, परन्तु उन मायाधीशको मोहित करना तो दूर रहे, स्वयं-भगवान्की मायासे वे स्वयं मोहित हो गये। ब्रह्माने भगवान्के समक्ष अपना ऐश्वर्य प्रकट करनेकी इच्छा की, परन्तु वे स्वयं ही भ्रष्टतेज हो गये॥ ४४ ॥

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योताचिरिवाहनि ।

महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥ ४५ ॥

हिम (कुहरा) जनित अन्धकार जिस प्रकार तमोमयी रात्रिके घोर अन्धकारका विनाश न कर उसे और भी गाढ़ करता हुआ उसीमें लीन हो जाता है तथा जिस प्रकार दिनमें जुगनूका प्रकाश सूर्यके प्रकाशके सम्मुख तिरस्कृत हो जाता है, उसी प्रकार तुच्छ मायाका प्रयोग यदि महापुरुषोंपर किया जाय, तो वह उनकी तो कुछ क्षति नहीं कर पाती, बल्कि उनके ऐश्वर्यकी वृद्धि करते हुए प्रयोग करनेवालेकी सामर्थ्यका ही नाश कर डालती है ॥ ४५ ॥

तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।

व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी सोच-विचार कर ही रहे थे कि उनके देखते-ही-देखते उसी क्षण समस्त बछड़े एवं गोपबालक उन्हें श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़े। सब-के-सब नवीन जलधरके समान श्यामवर्णके थे तथा पीताम्बर धारण किये हुए थे ॥ ४६ ॥

चतुर्भुजाः शङ्खचक्र गदाराजीवपाणयः ।

किरीटिनः कुण्डलिनो हरिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥

श्रीवत्साङ्गददोरत्न-कम्बुकङ्कणपाणयः ।

नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुरीयकैः ॥ ४८ ॥

वे सभी चतुर्भुज थे। उनकी भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म सुशोभित थे। मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल, वक्षःस्थलपर हार एवं गलेमें मनोहर वनमालाएँ विराजित थीं। सभीके वक्षःस्थलोंके दक्षिण भागके (स्तनके) ऊपर दक्षिणावर्त्त रोमावलियाँ थीं अर्थात् श्रीवत्स चिह्न थे। कलाइयाँ त्रिरेखाङ्कित थीं, उनमें शङ्काकार रत्नोंसे जड़े कङ्कन थे, कण्ठोंमें कौस्तुभ मणि झिलमिला रही थीं। चरणोंमें नूपुर एवं पादवलय, कमरमें करधनी तथा अङ्गुलियोंमें अङ्गुठियाँ सुशोभित थीं ॥ ४७-४८ ॥

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसी नवदामभिः ।

कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥

उन्होंने नखसे लेकर शिख तक समस्त अङ्गोंमें प्रचुर पुण्यशील जनों (भजनपरायण भक्तों) द्वारा अर्पित सुकोमल एवं नवीन तुलसी-मालाओंको धारण कर रखा था ॥ ४९ ॥

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ।

स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥ ५० ॥

ज्योत्स्नाके समान निर्मल एवं शुभ्र मुसकानरूप सत्त्वगुणके द्वारा एवं अरुणवर्णके (रतनारे) नेत्रोंकी कटाक्षपूर्ण चितवनरूप रजोगुणके द्वारा वे अपने भक्तजनोंमें मनोवाञ्छाओंका सृजनकर उन्हें पूर्ण कर रहे थे ॥ ५० ॥

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।

नृत्यगीताद्यनेकाहैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥

ब्रह्मा यह भी देख रहे थे कि उनके जैसे दूसरे ब्रह्मादिसे लेकर तृण (स्तम्ब) पर्यन्त स्थावर-जङ्गम सभी जीव मूर्तिमान् होकर नृत्य-गीत-वाद्य आदि बहुत प्रकारके पूजा-उपचारोंके द्वारा पृथक्-पृथक् भावसे उन सभी रूपोंकी उपासना कर रहे थे ॥ ५१ ॥

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।

चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥ ५२ ॥

अणिमा-महिमा आदि ऐश्वर्यपरक सिद्धियाँ, माया-विद्या आदि विभूतियाँ एवं महत्-तत्त्व आदि चौबीस तत्त्व उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थे ॥ ५२ ॥

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।

स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥

भगवान्की महिमाके सम्मुख जिनकी स्वतन्त्र सत्ता एवं महत्ता अदृश्य हो चुकी थी (खो गयी थी), वे सभी काल, स्वभाव,

संस्कार, कामनाएँ, कर्म एवं गुण आदि पदार्थ मूर्तिमान् होकर भगवान्‌के प्रत्येक रूपकी उपासना कर रहे थे ॥ ५३ ॥

सत्यज्ञानानन्तानन्द-मात्रैकरसमूर्त्तयः ।

अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्माने यह भी देखा कि वे सभी अखण्ड, त्रिकालातीत, सत्य, स्वयं-प्रकाश-ज्ञान-स्वरूप, अनन्त, आनन्दमय एवं अद्वितीय विग्रह हैं। उनमें जड़ता अथवा चेतनताका भेदभाव नहीं है। वे सब-के-सब एकरस, एकरूप हैं। उपनिषद्‌वेत्ता और तत्त्वदर्शी उनकी अनन्त महिमाका स्पर्श भी नहीं कर सकते ॥ ५४ ॥

एवं सकृद्दशार्जः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।

यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥

जिनके प्रकाशसे यह समस्त चराचर विश्व प्रकाशित हो रहा है, ब्रह्माने उन्हीं परब्रह्म श्रीकृष्णका दर्शन किया और तदात्मक समस्त गायों, बछड़ों एवं गोपालोंमें भी एक साथ उनका ही दर्शन किया ॥ ५५ ॥

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्त्यस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।

तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥ ५६ ॥

अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्यको देखकर ब्रह्माजीका चित्त आन्दोलित होने लगा। आनन्दके कारण उनकी समस्त इन्द्रियोंकी वृत्ति स्तम्भित हो गयी। वे उन सब बछड़ों एवं बालकोंके तेजके प्रभावसे इस प्रकार निःशब्द होकर खड़े-से रह गये, जिस प्रकार बहुत लोगोंके द्वारा ग्रामके अधिष्ठातृ पूजनीय देवताके समीप मृत्तिका-निर्मित एक अपूज्या पुतली खड़ी हो ॥ ५६ ॥

इतीरेशोऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके

परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।

अनीशोऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति

चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७ ॥

परीक्षित्! भगवान् तर्कसे परे हैं, वे अपनी महिमामें प्रतिष्ठित हैं, वे स्वप्रकाश, आनन्द-स्वरूप और मायासे अतीत हैं। अस्थूल, अनणु, अहस्व आदि श्रुति-वाक्यों द्वारा वे 'अतत्' हैं अर्थात् वेदान्त भी उनकी असाधारण महिमाको साक्षात् रूपसे वर्णन करनेमें असमर्थ है। जड़-ज्ञानके निरस्त होनेपर वेदान्त उनसे भिन्नका निषेध करते हुए उनके सम्बन्धमें किञ्चित् ज्ञान-प्राप्तिका सङ्केत करता है, परन्तु साक्षात् रूपसे वर्णन नहीं कर सकता। सरस्वती-अधिपति ब्रह्मा प्रकृतिसे अतीत परमतत्त्व परब्रह्म श्रीकृष्णके दिव्य-स्वरूपके विषयमें 'यह क्या है' समझनेमें असमर्थ होकर मोहग्रस्त हो गये। उनके महिमामय स्वरूपके विषयमें कुछ भी नहीं जान पाये। उनकी आँखें मूँद गयीं। तब परमपुरुष श्रीकृष्णने ब्रह्माके मोह और असमर्थताको (अयोग्यताको) जानकर अपनी माया अथवा ऐश्वर्यका संवरण कर लिया॥ ५७॥

ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः।

कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टिराचष्टेदं सहात्मना॥ ५८॥

अब ब्रह्माको बाह्य-ज्ञान हुआ। वे मृत-व्यक्तिके समान मानो मरकर पुनः जी उठे। सचेत होकर बड़े कष्टसे उन्होंने अपनी मुँदी हुई आँखोंको खोला, तब कहीं वे स्वयंको (अहङ्कारास्पद स्वदेहको) और इस विश्वको देख सके॥ ५८॥

सपद्येवाभितः पश्यन् दिशोऽपश्यत् पुरःस्थितम्।

वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम्॥ ५९॥

उस समय जब वे चारों ओर दृष्टिपात कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि सम्मुख ही वृन्दावन धाम है, जहाँ जीविकाके साधन-स्वरूप फल-फूलों एवं हरित पल्लवोंसे परिपूरित वृक्षावलियाँ हैं। वृन्दावनस्थ तरु-कुल सभी ऋतुओंमें सुखदायक हैं और सभीको एक समान प्रिय हैं॥ ५९॥

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन् नृमृगादयः।

मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्-तर्षकादिकम् ॥ ६०॥

इस वृन्दावन धाममें स्वाभाविकरूपसे परस्पर शत्रुतासे युक्त मनुष्य एवं सिंह आदि प्राणी भी स्नेहशील मित्रके समान मिलजुलकर एक साथ रह रहे हैं। यह भूमि श्रीकृष्णकी लीला-विहारस्थली है, अतः क्रोध, लोभ आदि विकार यहाँसे पलायन कर गये हैं ॥ ६० ॥

तत्रोद्वहत् पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं
ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान् सखीनिव पुरा परितो विचिन्व-
देकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥

रमणीय वृन्दावन धामका दर्शन करनेके बाद परमेष्ठी ब्रह्माने देखा कि सर्वमूल-स्वरूप-अद्वितीय-परब्रह्म गोप-वंश बालकके समान अभिनय कर रहे हैं। अद्वितीय, अनन्त, नित्य, पूर्णज्ञानमय एवं श्रीबलदेवादि अवतारोंके लिए भी दुर्बोध्य वे परतत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण हाथमें दधि-मिश्रित भातका कौर लिये उस हरित भूमिमें पूर्ववत् अपने सहचर वत्सपालों एवं गोवत्सोंका सर्वत्र अन्वेषण कर रहे हैं ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य
पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य ।
स्मृत्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं
नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥

भगवान्को देखते ही स्वर्णवपु ब्रह्मा शीघ्र ही अपने वाहन हंससे उतरे और स्वर्ण-दण्डके समान पृथ्वीपर गिर पड़े। अपने मस्तकोंपर स्थित अपने चारों मुकुटोंके अग्रभागसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरण-युगलका स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया तथा आनन्दसे छलक आये आँसुओंसे उन पद-युगलका अभिषेक किया ॥ ६२ ॥

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनःपुनः ॥ ६३ ॥

वे भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्वदृष्ट महिमाका पुनः-पुनः स्मरण करते और उनके चरण-कमलोंमें गिर जाते। वे पुनः-पुनः उठते और गिरते। दीर्घकालतक इस प्रकार वे भगवान्‌के पादारविन्दोंमें ही पड़े रहे ॥ ६३ ॥

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने
मुकुन्दमुद्रीक्ष्य विनम्रकन्धरः।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः
सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अनन्तर वे धीरे-धीरे उठे एवं आँखोंसे आँसू पोंछे, भगवान् मुकुन्दको देखकर वे नतमस्तक हो गये। उनका शरीर काँपने लगा। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये तथा अत्यधिक विनीत भाव और स्थिर चित्तसे गद्गद वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तेरहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चतुर्दशोऽध्यायः

ब्रह्माजीके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति

श्रीब्रह्मोवाच—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥

श्रीब्रह्माने स्तुति करते हुए कहा—हे जगत्-पूज्य! हे प्रभो! आपका श्रीविग्रह घनश्याम अर्थात् वर्षाकालीन नवीन मेघके समान श्यामल एवं कान्तिमय है, इसपर आपने स्थिर विद्युतके समान ज्योतिर्मय पीताम्बर धारण कर रखा है। आपका श्रीमुखमण्डल गुञ्जा-विरचित कर्णभूषणसे एवं मस्तक मोरपंखके मुकुटसे शोभित हो रहा है। आपके गलेमें वृन्दावनके रङ्ग-विरङ्गे पत्र-पुष्पादिसे रचित वनमाला सुशोभित हो रही है, हाथोंमें दधिमिश्रित भातका कौर है, बगलमें बेंत, सिंगी (विषाण) और कमरकी फेंटमें वेणु सुशोभित हैं। आपके श्रीचरणयुगल कमलके समान अतिशय कोमल हैं। आप गोपराज नन्दके नित्य पुत्र हैं। मैं आपको स्तुति निवेदन (अर्थात् यशोगान) करता हूँ ॥ १ ॥

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण
साक्षात् तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥

हे स्वयं-प्रकाश परमात्मन्! भक्तोंकी वाञ्छाकी पूर्ति करनेवाले इस श्रीविग्रहको आपने स्वेच्छासे प्रकट किया है। हे कृपामय! यह मुझपर भी आपका अनुग्रह है। आपकी चिन्मयी इच्छाके मूर्तिमान-स्वरूप इस शुद्ध-सत्त्वात्मक नारायण नामक आपके

विग्रहकी महिमाको साक्षात् जाननेमें मैं तो क्या, कोई अन्य भी समर्थ नहीं हो सकता। चित्तवृत्तिका निरोध करके एवं समाधि लगाकर भी कोई आपके विराट् विग्रहकी महिमाको नहीं जान सकता, उसका वर्णन करना तो दूरकी बात है। भला स्वयं-रूप, आत्मसुखानुभव-स्वरूप, मूल-अवतारी, सच्चिदानन्दस्वरूप स्वयं-भगवान् आपकी महिमाको कोई कैसे जान सकता है? ॥ २ ॥

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥

इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञानके द्वारा भगवत्-स्वरूप, भगवत्-ऐश्वर्य एवं भगवत्-महिमाके चिन्तनके प्रयासका सब प्रकारसे परित्याग करके अपने-अपने आश्रममें रहकर अथवा साधुओंके निकट रहकर उन साधुओंके मुखसे स्वतः विगलित एवं उनके सान्निध्य मात्रसे स्वयं ही श्रवण-पथमें प्रविष्ट आपके नाम, रूप, गुण एवं लीलामय वचनोंका स्थिर चित्तसे श्रवण करते हैं अर्थात् जो तन, मन एवं वचनसे विनीत होकर आपके लीला-चरितोंका सेवन करते हुए जीवन धारण करते हैं, वे आपको ही अपना जीवन-सर्वस्व मानकर आपके बिना जी नहीं सकते। वस्तुतः वे आपकी कथाके श्रवण-कीर्तनके अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य नहीं करते। त्रिलोकीमें अन्यान्य व्यक्तियों द्वारा अजित होनेपर भी आप इन भक्तोंके द्वारा जीत लिये जाते हैं (अर्थात् इनके प्रेमके वशीभूत हो जाते हैं) ॥ ३ ॥

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥

हे प्रभो! आपकी भक्ति सब प्रकारके कल्याणका मूल-स्रोत है। ज्ञान-मार्गपर चलनेवाले जो व्यक्ति अपनी मङ्गल-प्राप्तिके पथ-स्वरूप भगवत्-भक्तिका परित्याग करके भक्ति-रहित केवल ज्ञानकी प्राप्ति हेतु कष्ट स्वीकार करते हैं, उन्हें अन्तःसार (धान्य कर्णों) से रहित थोथी भूसीको कूटनेवाले मनुष्यकी भाँति मात्र श्रमरूप क्लेश ही प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता (तात्पर्य है कि जब आप सत्सङ्ग द्वारा श्रवणमात्रसे ही प्राप्त हो जाते हैं, तब ज्ञान हेतु श्रम करनेसे क्या लाभ?) ॥ ४ ॥

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया
प्रपेदिरेऽब्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥

हे अखण्ड-स्वरूप! हे अच्युत! पूर्वकालमें भी इस लोकमें बहुत-से योगी पुरुष थे, किन्तु योगमार्गके द्वारा फल प्राप्त करनेमें अर्थात् आपको प्राप्त करनेमें वे असमर्थ रहे। तब उन्होंने अपने-अपने लौकिक एवं वैदिक कर्म आपको समर्पण कर दिये। इन कर्मोंके समर्पणके परिणाम-स्वरूप उन्हें आपकी लीला-कथा-श्रवणरूपी भक्ति प्राप्त हुई। भक्तिदेवीके प्रभावसे आत्म-तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हुआ और तब उन्होंने अनायास ही आपके परमपद (सामीप्यरूप उत्कृष्ट गति) को प्राप्त कर लिया ॥ ५ ॥

तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते
विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो
ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥

(पूर्व श्लोकमें ज्ञानके प्रयासोंका परित्याग करके भगवत्-गुणानुवादके श्रवणके द्वारा ही भगवत्-प्राप्ति होती है, भगवत्-प्राप्तिका अन्य कोई उपाय नहीं है—यह कहा गया और इस कथनके द्वारा

भगवान्के निर्गुण एवं सगुण—दोनों स्वरूपोंका ही दुर्ज्ञेयत्व निरूपित हुआ। भगवान्का स्वरूप दुर्ज्ञेय होनेसे निर्गुण स्वरूपकी उपलब्धि कभी हो भी जाय, किन्तु अचिन्त्यगुणसम्पन्न सगुण स्वरूपकी अनुभूति नहीं होती—इसी सिद्धान्तकी विवेचनाके लिए इस श्लोककी अवतारणा की गयी है।) हे भूमन्! (हे मधुररूप प्रकाशकारी!) आपके गुणातीत स्वरूपकी महिमा इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्त निर्मल अन्तःकरणसे ज्ञात हो सकती है, क्योंकि भगवत्-महिमा अर्थात् ब्रह्म-तत्त्वका साक्षात्कार “यह ब्रह्म है”, “मैं ब्रह्मको जानता हूँ”, “यह वही है”, “यह वही हो सकता है” इस प्रकारसे नहीं होता, किन्तु स्वतः-प्रकाश भावके द्वारा होता है। रूप, रस आदिसे रहित केवल निर्विशेष ब्रह्मका निर्मल हृदयमें ज्ञान-स्वरूपमें अनुभव होता है, परन्तु भक्तोंके हृदयमें अप्राकृत रूप, गुण, रस आदिसे युक्त सगुण ब्रह्म—भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं। भक्त भगवान्के उस स्वरूपको देखते हुए तथा सेवा करते हुए आनन्दित होते हैं॥६॥

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईश्वरेऽस्य।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-
र्भूपांशवः खे मिहिका द्युभासः॥७॥

हे देव! आप इस विश्वके मङ्गलके लिए अवतरित हुए हैं। आप महाश्चर्यजनक अप्राकृत गुणोंके अधिष्ठाता हैं। जो अति निपुण व्यक्ति हैं, वे बहुत जन्मों तक घोर परिश्रम करके पृथ्वीके धूलि-कणों, आकाशमें हिम-कणों (ओसकी बूँदों), नक्षत्र (तारों) आदिकी और सूर्यकी किरणोंमें स्थित परमाणुओंकी गणना कर सकते हैं, परन्तु आपके गुणोंको (माखन चोरी आदि अप्राकृत रसमयी लीलाओंको) गिननेमें समर्थ नहीं हो सकते, उनकी मधुरिमाका अनुभव होना तो दूरकी बात है॥७॥

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।

हृद्वाग्वपुर्भिविदधन्नमस्ते

जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥८॥

जो अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःखका निर्विकार एवं अनासक्त भावसे भोग कर लेता है, जो क्षण-क्षण आपकी करुणाकी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करता है, इसी प्रतीक्षामें जो पुलकित शरीर, प्रेमपूर्ण हृदय और गद्गद वाणीसे आपके चरणोंमें प्रणत होकर जीवन धारण करता है, वह व्यक्ति मुक्ति-पदका अधिकारी अर्थात् आपके चरणोंकी सेवाका वैसे ही अधिकारी हो जाता है, जैसे पुत्र अपने पिताकी सम्पत्तिका अधिकारी हो जाता है। पुत्रके पालन-पोषणके दायित्ववश पिताके जीवन-धारणका प्रयोजन है, उसी प्रकार भक्तिके वर्द्धन हेतु भक्तका जीवन होता है। हे भगवन्! आप विश्व-पिता हैं, जगत्के सभी जीव आपके पुत्र हैं। जो आपके चरणारविन्दके भजनमें अनुरक्त हैं, वे ही आपके चरणाश्रयरूप महासम्पद्की प्राप्तिके अधिकारी हैं। भक्ति-विमुख जीव मृत, पतित एवं माया द्वारा पोष्य होनेके कारण पितृ-सम्पद्-यथार्थ मुक्तिका (आपके चरणोंकी भक्तिका) अधिकारी नहीं है॥८॥

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये

परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि।

मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं

ह्यहं कियानैच्छमिवाचिरग्नौ॥९॥

हे प्रभो! कुटिलतासे भरपूर मेरे अन्यान्य आचरण तो देखिये, क्योंकि बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहमें डालनेवाले अनन्त आदिपुरुष परमात्मारूपी आपके प्रति मैं अपनी मायाका विस्तार करके आपके ऐश्वर्यको देखनेकी इच्छा कर रहा था। अहो! अग्निसे उत्पन्न चिनगारियाँ जिस प्रकार अग्निके प्रति अपने प्रभावका विस्तार नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार आपसे उत्पन्न मैं भी चिनगारीके समान आपके प्रति अपने प्रभावका विस्तार करनेमें तनिक भी समर्थ नहीं हुआ॥९॥

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो
 ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।
 अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष
 एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥ १० ॥

हे अच्युत ! मैं रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण स्वाभाविकरूपसे अज्ञानी हूँ और आपके स्वरूपको न जाननेके कारण स्वयंको स्वतन्त्र ईश्वर मान बैठा हूँ। मैं अजन्मा जगत्का सृष्टिकर्ता हूँ—इस मायाकृत मोहके घने अहङ्कारमें मैं अन्धा हो रहा था। अब आप “यह ब्रह्मा मेरी आज्ञाके अधीन है, मेरा सेवक होनेके कारण मेरी दयाका पात्र है”—यह मानकर मुझे क्षमा कर दीजिये ॥ १० ॥

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवाभूर्-
 संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
 क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
 वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥

हे भगवन् ! प्रकृति, महत्-तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं भूमिरूप आवरणोंके द्वारा परिवेष्टित ब्रह्माण्डरूपी घटमें रहनेवाला यह साढ़े तीन हाथके परिमाणका शरीरधारी ब्रह्मा कहाँ ठहर सकता है ? आपके रोमकूपरूप गवाक्ष-पथमें अनगिनत ब्रह्माण्ड परमाणुके समान विचरण करते हैं अर्थात् झरोखेकी जालीमेंसे जैसे सूर्यकी किरणोंमें रजके छोटे-छोटे अनगिनत परमाणु उड़ते-पड़ते रहते हैं, वैसे ही आपके एक-एक रोमके छिद्रमें असंख्य ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं। कहाँ ऐसी आपकी महिमा और कहाँ मैं ! अतः इस तुच्छका अपराध क्षमा करें ॥ ११ ॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
 किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
 किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
 तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥

हे अधोक्षज (प्राकृत ज्ञानके अतीत)! गर्भगत सन्तान जिस प्रकार माताके उदरमें रहकर अज्ञानतावश अपने हाथ-पैरोंको ऊपर फेंक-फेंककर उसे ताड़ित करती है, तो क्या माता उसे अपराध मानती है? उसी प्रकार हे अनन्त-ब्रह्माण्ड-भाण्डोदर! अपनी कोखमें चराचरको धारण करनेवाले आप माता-स्वरूप हैं। मैं आपकी सन्तानके समान हूँ, मेरे अपराधको ग्रहण मत कीजिये। इस ब्रह्माण्डमें भाव-अभाव, अस्ति-नास्ति (है, नहीं है), स्थूल-सूक्ष्म, कार्य-कारण आदि शब्दोंके द्वारा वाच्य (कहा गया) कोई भी पदार्थ आपके जठर (उदर या कोख) के बाहर है क्या? ॥ १२ ॥

जगत् त्रयान्तोदधिसंप्लवोदे
नारायणस्योदरनाभिनालात् ।
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा
किन्त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥

जिस समय प्रलयकालीन जलमें तीनों लोक डूब गये थे, उस समय उस प्रलय-सलिलमें अवस्थित नारायणके उदरस्थ नाभि-नालसे ब्रह्मा प्रकट हुआ था—पुराण-कर्त्ता ऋषियोंने ऐसा वर्णन किया है। उनका यह कथन वास्तवमें मिथ्या नहीं हो सकता। तो हे ईश्वर! क्या मैं आपसे बाहर (पृथक्) हूँ, आपका पुत्र नहीं हूँ? ॥ १३ ॥

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्
तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥

(वस्तुतः मैं आपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ) क्या आप नारायण नहीं हैं? आप ही नारायण हैं, क्योंकि आप ही समस्त जगत्के और सभी देहधारी जीवोंके आत्म-स्वरूप हैं। नार शब्दका अर्थ है जीवसमूह, उनका अयन (आश्रय) जो हैं—वे नारायण आप

ही हैं। हे अधीश! (आपके नारायण होनेके और भी कारण हैं कि) आप समस्त लोकोंके साक्षी हैं, इस प्रकार जो लोकोंको जानते हैं, वे ही नारायण हैं। नार अर्थात् जीव और अयन अर्थात् जाननेवाला। त्रिकालज्ञ नारायण भी आप ही हैं। नरसे उत्पन्न महदादि चौबीस तत्त्व और उनसे उत्पन्न नार—जल जिनका अयन—निवासस्थान है, वे नारायण भी आपके अङ्ग अर्थात् विलासमूर्ति हैं। (आप अखण्ड—अपरिच्छिन्न—स्वरूप हैं—जल आपका आश्रय किस प्रकारसे हो सकता है—इसके उत्तरमें कहते हैं—) आपका परिच्छिन्नत्व (सीमितत्व) सत्य नहीं है, परन्तु यह आपकी माया अर्थात् अचिन्त्यशक्तिका परिचय है कि आप असीम होते हुए भी सीमितके समान अवस्थित हैं। परम सत्य इस विराट् स्वरूपकी भाँति आपका नारायणरूप भी मायिक नहीं है ॥ १४ ॥

तच्चैज्जलस्थं तव सज्जगद्रूपः

किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव।

किंवा सुदृष्टं हृदि मे तदैव

किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥

हे भगवन्! जगत्का आश्रय—स्वरूप आपका यह विराट् शरीर प्रलयकालमें जलमें अवस्थित रहता है। यदि यह सत्य है, तो उस समय कमल—नालके अन्दर प्रवेशकर जब आपको मैं सौ वर्षों तक खोजता रहा, तो आपको क्यों देख नहीं सका? यदि कहा जाय कि आप अन्तःकरणके द्वारा देखे जाते हैं, तो मैं आपको अपने अन्तःकरणमें क्यों देख नहीं सका? फिर जब मैंने तपस्या की, तब उसी क्षण आपका भलीभाँति दर्शन किया। इसके बाद फिर कुछ ही क्षणोंमें वह रूप पुनः क्यों नहीं दिखायी दिया, अदृश्य (अन्तर्द्धान) क्यों हो गया? इसे आपकी माया ही तो कहा जायेगा। (आपकी इच्छासे ही यथासमय दर्शन एवं अदर्शन दोनों ही सम्भव होते हैं।) ॥ १५ ॥

अत्रैव मायाधमनावतारे
 ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिःस्फुटस्य।
 कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या
 मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते॥ १६ ॥

हे माया-निवारक प्रभो! इस अवतारमें भी आपने माता यशोदादेवीको इस समग्र दृश्यमान् जगत्को अपने उदरमें दिखलाया था और इस प्रकार आपने यह सम्पूर्ण विश्व केवल माया-ही-माया है—अपनी उस अचिन्त्यशक्तिको प्रकाशित किया था॥ १६ ॥

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्तमं भाति यथा तथा।
 तत् त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया विना॥ १७ ॥

हे भगवन्! आपके उदरमें आपके साथ परिदृश्यमान (आपकी माता द्वारा देखा गया) यह सम्पूर्ण जगत् जिस प्रकारसे प्रकाशित हो रहा था, बाहर दृश्यमान् जगत् भी उसी प्रकारसे प्रकाशित हो रहा था। यह आपकी माया अर्थात् आपके अचिन्त्य ऐश्वर्यके बिना क्या सम्भव है? उदरस्थ जगत्को बाह्य जगत्का प्रतिबिम्ब नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रतिबिम्बमें तो पदार्थ विपरीत (उल्टे) दिखायी पड़ते हैं। दर्पणमें जिस प्रकार दर्पण प्रतिबिम्बित नहीं होता, उसी प्रकार दर्पण (आदर्श) स्थानीय आपमें आपका प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता। (आपके उदरमें यह विश्व एवं आपकी मैया जैसे प्रकाश पा रहे थे, वैसे ही बाहरमें भी प्रकाशित थे। इसी प्रकार इस मायिक जगत्के मध्य में आपके उदरमें ही हूँ। इस सन्दर्भमें आपकी माताका अनुभव एवं मेरा अनुभव प्रमाण है।)॥ १७ ॥

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-
 मेकोऽसि प्रथमं ततो ब्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि।
 तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता-
 स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते॥ १८ ॥

हे भगवन्! क्या आपने केवल माताको ही इस प्रकारसे दिखलाया था, जो आज मुझे भी दिखलाया है? आज आपने अपने अतिरिक्त इस जगत्की भी अचिन्त्यता मेरे सामने प्रदर्शित की है। प्रथमतः मैंने एकमात्र आपके दर्शन किये थे। इसके बाद आप मुझे ब्रजबालक, बछड़ों, वेणुओं, छड़ियों और छीकोंके रूपमें दिखायी दिये। ये बछड़े एवं ब्रजबालक सभी चतुर्भुज थे और मेरे सहित अखिल तत्त्वादि इन सब रूपोंकी (चतुर्भुज स्वरूप बछड़ों एवे ब्रजबालकोंकी) उपासना कर रहे थे। जितनी संख्यामें चतुर्भुज बछड़े एवं गोपबालक थे, आपने उतनी ही संख्यामें अलग-अलग ब्रह्माण्डोंका रूप भी धारण किया था। अब आप अखण्ड अद्वय ब्रह्मरूपमें अवस्थान कर रहे हैं अर्थात् अब मेरे भाग्यवश योगमायाके द्वारा मेरी दृष्टि अनावृत होनेके कारण मात्र आप ही अवशेषरूपमें दिखायी दे रहे हैं॥ १८॥

अजानतां त्वत्पदवीमनात्म-
न्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम्।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान
इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः॥ १९॥

(गुणावतारके मूल श्रीविष्णुका इस श्लोकमें वर्णन हो रहा है) जो अज्ञानवश आपके स्वरूपसे अवगत नहीं हैं, उनके मतमें आत्म-स्वरूप आप ही प्रकृतिमें स्थित होकर स्वतन्त्ररूपसे मायाका विस्तार करके सृष्टि-कार्यमें ब्रह्माके समान, पालन कार्यमें विष्णुके समान और संहार कार्यमें शिवके समान प्रकाशित होते हैं॥ १९॥

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादःस्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च॥ २०॥

हे ईश! आप समस्त जगत्के विधाता और स्वामी हैं। आप वस्तुतः जन्मरहित हैं, तथापि देवता (वामनरूप), ऋषि (परशुरामरूप),

मनुष्य (रामचन्द्ररूप), तिर्यक् (गरुडरूप), कूर्म एवं मत्स्यादि जल-जन्तु रूपोंमें आपका आविर्भाव मात्र दुरात्माओंके गर्वका नाश करनेके लिए और साधुओंपर अनुग्रह करनेके लिए होता है ॥ २० ॥

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥

हे भूमन्! आप अनन्त, परमात्मा और योगेश्वर हैं। आप योगमायाका विस्तार करके कब, कहाँ, किस भावमें, किस प्रकार, किसलिए और कितने प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, अहो, त्रिभुवनमें ऐसा कौन है, जो आपकी समस्त लीलाओंको जान सके? ॥ २१ ॥

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं
स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते
मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥ २२ ॥

यह सम्पूर्ण जगत् अनित्य (सार्वकालिक सत्तारहित) है, इसलिए स्वप्नवत् अनित्य, ज्ञान-रहित, जड़ एवं अतीव दुःखप्रद है। आप सच्चिदानन्द-स्वरूप, परम ज्ञान-स्वरूप एवं अनन्त हैं। आपमें आश्रित अचिन्त्यशक्तिसे ही इसकी उत्पत्ति एवं विनाश होते हैं, तथापि आपकी सत्तासे यह आपमें सत्यके समान प्रतीत होता है। (अविद्याके द्वारा बुद्धिका लोप होनेसे यह जगत् अशेष दुःखप्रद एवं अमङ्गलमय प्रतीत होनेपर भी सत्यकी भाँति प्रतीत होता है।) ॥ २२ ॥

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥

आप ही एकमात्र सत्य हैं, क्योंकि आप ही सबके आत्मा—परमात्मा हैं। आप इस दृश्यमान जगत्से पृथक् हैं। आप जगत्के जन्मादिके मूल-कारण, त्रैकालिक सत्तायुक्त पुराण-पुरुष एवं सनातन हैं। आप पूर्ण, नित्यानन्दमय, कूटस्थ, विनाशरहित होनेके कारण अमृत-स्वरूप, विद्या एवं अविद्यारूप उपाधियोंसे मुक्त, निरञ्जन अर्थात् मायिक गुणरहित, विशुद्ध, अनन्त (अखण्ड), अनुपम, देश कालसे परे और अद्वय हैं॥ २३॥

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि

स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते।

गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा

ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम्॥ २४॥

जो महाजन गुरुरूपी सूर्यसे तत्त्वज्ञानरूप दिव्य-ज्ञानको (सुचक्षुओंको) प्राप्त करके समस्त जीवोंके आत्म-स्वरूप आपके परमात्मरूपका साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस 'मैं' और 'मेरा' मिथ्याभिमानरूप भवसागरसे पार हो जाते हैं॥ २४॥

आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां

तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम्।

ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते

रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा॥ २५॥

जिस प्रकार अज्ञानतासे उत्पन्न भ्रमके कारण रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है और ज्ञानोदय होनेपर यह भ्रम विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार परमात्म-स्वरूप आपको जो ज्ञानानन्द-स्वरूपमें नहीं जानते, उन्हें अज्ञानताके कारण ही नामरूपात्मक संसार-दशा प्राप्त होती है और ज्ञानका उदय हो जानेपर उसकी आत्यन्तिकी निवृत्ति हो जाती है॥ २५॥

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ

द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात्।

**अजस्रचित्यात्मनि केवले परे
विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥ २६ ॥**

वस्तुतः अज्ञानके दो नाम हैं—भव-बन्धन एवं उससे मोक्ष। ये दोनों ही संज्ञाएँ अज्ञानसे कल्पित हैं, इसलिए सत्यका ज्ञान इनसे भिन्न है। विचार करनेपर ज्ञात होता है कि सूर्यमें जिस प्रकार दिन और रात्रिका अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार माया-सम्बन्ध-रहित, अखण्ड-अनुभव-स्वरूप आत्म-तत्त्वमें ये दोनों ही (बन्धन एवं मोक्ष) नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि अनात्म धारणाके कारण ही इन दोनोंकी उत्पत्ति है और आत्म-ज्ञान-सम्बन्ध होनेपर ये दोनों मिथ्या हैं। नित्यशुद्ध, नित्यसिद्ध जीवात्माका न बन्धन है और न मोक्ष ॥ २६ ॥

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च।

आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥ २७ ॥

कैसा आश्चर्य है कि अज्ञ व्यक्ति आत्म-स्वरूप आपको अनात्म मानते हैं अर्थात् आपके श्रीविग्रहको मायिक देह एवं आपसे भिन्न जो अनात्म वस्तु है, उसे परमात्मा मानकर आपके चरणकमलोंका परित्याग करके पुनः कहीं और बाहरी विषयोंमें आत्म-तत्त्वरूप आपको ढूँढ़ने लगते हैं। अहो! अज्ञ (मूर्ख) व्यक्तियोंकी यह कैसी मूर्खता है? ये मूर्ख व्यक्ति परमात्म-स्वरूप आपको शुद्ध जीव मानकर पुनः अन्यत्र आत्मतत्त्वका अनुसन्धान करते हैं। तात्पर्य यह है कि विवर्तवाद और परिणामवाद इस मायिक जगत्में प्रवर्तित हैं, किन्तु पूर्णचित्-स्वरूप ब्रह्ममें इनका स्थान नहीं है। (इन दोनों वादियोंका विचार अति शोचनीय है, इसलिए ब्रह्माजीने विस्मय व्यक्त किया है कि श्रुति-स्मृति-दर्शनके अभावमें अन्धे होकर अन्ध-परम्पराका आश्रय लेनेवाले विवर्तवादियोंका सृजन मैंने क्यों किया?) ॥ २७ ॥

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव

ह्यतत् त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः।

असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण

सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥ २८ ॥

रस्सीमें प्रतीयमान मिथ्या सर्प-बुद्धिका परित्याग न करनेपर क्या रज्जु-बुद्धि अर्थात् यथार्थ-ज्ञान हो सकता है? इसीसे हे अनन्त! साधु पुरुष आपसे भिन्न प्रतीयमान जड़-विषयोंका परित्याग करके अपने हृदयमें ही आपको ढूँढते रहते हैं। आप सभीके हृदयमें विराजमान हैं ॥ २८ ॥

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-

प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो

न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥

हे स्वामिन्! आप भक्तोंके हृदयमें स्वयं ही प्रकाशित होते हैं। आपके ज्ञानके स्वरूप और माहात्म्यके प्रभावसे अज्ञान-कल्पित जगत्का नाश हो जाता है। हे देव! जो आपके चरणकमलोंकी करुणा-कण-मात्र प्राप्त कर लेता है, केवल वही आपके यथार्थ सच्चिदानन्दमय माहात्म्यको जान सकता है। इसके अतिरिक्त दीर्घकालतक शास्त्राभ्यासके द्वारा अथवा योग-वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्नसे कोई भी आपकी महिमाको तत्त्वतः नहीं जान सकता ॥ २९ ॥

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो

भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।

येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां

भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥

अतएव हे नाथ! इसी ब्रह्मा-जन्ममें हो, किसी दूसरे जन्ममें हो अथवा पशु-पक्षी आदिके रूपमें ही जन्म हो, मैं आपके अन्यतम भक्तके रूपमें जन्म-ग्रहणकर आपके पद-पल्लवोंकी सेवा कर सकूँ—ऐसा सौभाग्य मुझे प्राप्त हो ॥ ३० ॥

अहोऽतिधन्या ब्रजगोरमण्यः

स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।

यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना

यत्तृप्तयेऽद्याप्यथ न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥

हे विभो! सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर आज तक अनुष्ठित बड़े-बड़े यज्ञ जिन्हें पूर्णतः तृप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सके, अहो! वही आपने बछड़े एवं गोपबालक बनकर जिनके स्तनोंका दूध आनन्दपूर्वक प्रचुररूपसे पान किया है, वे ब्रजकी गायें एवं गोपियाँ अतीव धन्य हैं ॥ ३१ ॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।

यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२ ॥

परमानन्द-स्वरूप, पूर्णब्रह्म, सनातन आप जिनके सुहृद और सगे-सम्बन्धी हैं, उन नन्द गोपादि प्रमुख ब्रजवासियोंका अहो कितना महाभाग्य है! कितना धन्यभाग्य है ॥ ३२ ॥

एषान्तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-

मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः।

एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः

शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥ ३३ ॥

हे अच्युत! इस ब्रजके गोप, गोपी एवं गायोंके सौभाग्यकी महिमाका वर्णन करना तो दूरकी बात है, ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता चन्द्र आदि और मैं महाभाग्यवान हैं; क्योंकि हम ब्रजवासियोंके चक्षु, मन आदि ग्यारह इन्द्रियरूप पान-पात्रोंके द्वारा निरन्तर आपके चरणकमलोंके मधु-स्वरूप सर्वविस्मृति-कारक अमृतका (मधुर मकरन्द-तुल्य अमृतका) पान करते रहते हैं। जब हम एक-एक इन्द्रियसे पान करके धन्य-धन्य हो रहे हैं, तब समस्त इन्द्रियोंसे उसका सेवन करनेवाले ब्रजवासियोंकी तो बात ही क्या है? ॥ ३३ ॥

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां

यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।

यज्जीवितन्तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥

हे देवताओंके भी उपास्यदेव प्रभो! अनादिकालसे आज तक श्रुतियाँ जिनकी पदरजका अन्वेषण कर रही हैं, वे ही भगवान् मुकुन्द जिनके जीवन-प्राण एवं सर्वस्व हैं, उन गोकुलवासियोंमेंसे किसी एककी भी पदधूलि द्वारा मैं अभिषेकके योग्य बन सकूँ (किसी एककी भी पदरजसे मेरा मस्तक अभिषिक्त हो जाय) अथवा इस भौम-व्रजके वनमें अथवा विशेषरूपसे गोकुलमें किसी भी योनिमें मेरा जन्म हो जाय, तो यह बड़े सौभाग्यकी बात होगी ॥ ३४ ॥

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देवरातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥

हे देव! हृदयसे महान्-क्रूर पूतनाने साध्वी वेश धारण करके एवं साधुजनोंका अनुकरण करके, अघासुर, बकासुर आदि सगे-सम्बन्धियोंके साथ आपको प्राप्त किया है, किन्तु जिनके गृह, धन, सुहृद्, अपने प्रिय द्रव्य, देह, प्राण, मन, पुत्र सर्वस्व आपकी प्रीतिके लिए आपके चरणोंमें समर्पित हैं, उन व्रजवासियोंको आप इनकी सेवाके बदलेमें क्या प्रदान करेंगे, उनसे कैसे उद्धारण होंगे? आप सर्वफलात्मक अर्थात् समस्त फलोंके फल हैं, आपसे उत्कृष्ट फल कौन-सा है? यह विचार करके मेरा चित्त मोहग्रस्त हो रहा है ॥ ३५ ॥

तावद्गागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥

हे सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण! जब तक मनुष्य आपके प्रति अनुरागी नहीं होते, तभी तक रागादि चोरोंके समान, घर एवं सम्बन्धी कारागारके समान और मोह पैरोंकी बेड़ियोंके रूपमें उन्हें जकड़े रहते हैं ॥ ३६ ॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।

प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७ ॥

हे विभो! आप इस प्रपञ्चसे परे हैं, तथापि अपने शरणागत भक्तोंका आनन्द बढ़ानेके लिए आप भौम-व्रजमें प्रकट होकर प्रापञ्चिक लीला-विलासका अभिनय करते हैं ॥ ३७ ॥

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।

मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥

मेरे स्वामी! वाक्-आडम्बरकी आवश्यकता ही क्या है! पण्डिताभिमानी व्यक्ति मानते हैं कि वे आपकी महिमासे अवगत हैं—वे ऐसा समझते रहें, किन्तु आपका वैभव मेरे तन, मन एवं वचनके अगोचर है—वस्तुतः मैं आपकी महिमा जाननेमें असमर्थ हूँ ॥ ३८ ॥

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।

त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत् तवार्पितम् ॥ ३९ ॥

हे सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण! आप सर्वद्रष्टा हैं। आप सब कुछ जानते हैं। सम्पूर्ण प्रपञ्च आपमें ही स्थित है। आप सम्पूर्ण चराचर जगत्के एकमात्र ईश्वर हैं। अतः इस क्षुद्रका यह ममतास्पद विश्व और यह शरीर आपके प्रति समर्पित है। आप इन्हें स्वीकार कीजिये। और हे नाथ! मुझे अपने लोकमें जानेकी अनुमति दीजिये ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्

क्षमानिर्ज्वरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।

उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसधुग्-

आकल्पमार्कमहन् भगवन् नमस्ते ॥ ४० ॥

(स्तुतिको विश्राम देते हुए कहते हैं) सभीके हृदयोंको अपने रूप-माधुर्यसे आकर्षित करनेवाले श्रीकृष्ण! (सूर्य-स्वरूप दक्षिण नेत्रको लक्ष्य करके) आप यदुवंशरूप कमलको आनन्द प्रदान करनेवाले सूर्य हैं। (चन्द्र-स्वरूप वामनेत्रको लक्ष्य करके) आप

भूमि, देव, ब्राह्मण एवं धेनु—पशुसमूहरूपी समुद्रको बढ़ानेवाले चन्द्र हैं, पाखण्ड-धर्मरूपी रात्रिके अन्धकारको नाश करनेवाले आप सूर्य एवं चन्द्र दोनों हैं। पृथ्वीपर स्थित राक्षस जैसे लोग आपसे विद्वेष रखते हैं, इसलिए आप उनका नाश कर देते हैं। सूर्यादि समस्त देवताओंके पूजनीय हे भगवान्! आपको मैं महाकल्प तक अर्थात् जब तक जीवित रहूँ, तब तक प्रणाम करता रहूँ। (अर्कका पुष्प भगवत् सेवामें प्रयुक्त नहीं होता, अतः वैष्णवोंमें सम्माननीय नहीं है। परन्तु व्रजस्थ होनेके कारण अर्क जैसी क्षुद्र वस्तुको भी ब्रह्माने प्रणाम किया है) ॥ ४० ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यभीष्ट्य भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः।

नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माने इस प्रकारसे अपने अभीष्टदेव अखण्ड (अपरिच्छिन्न) भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की एवं तीन बार परिक्रमा करके भगवान्के चरण-युगलोंमें प्रणाम किया तथा निज धाम सत्यलोकको चले गये ॥ ४१ ॥

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान् स्वभुवं प्रागवस्थितान्।

वत्सान् पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥

भगवान्ने ब्रह्माको अपने लोकमें जानेकी अनुमति प्रदान कर दी। ब्रह्माके द्वारा एक वर्ष पूर्व चुराये गये बछड़े जो पूर्ववत् तृणादि-भक्षणमें रत थे, कृष्ण उन्हें उसी अपने भोजन-स्थान यमुना-पुलिनपर ले आये, जहाँ वे अपने सखाओंको बिठा गये थे ॥ ४२ ॥

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः।

कृष्णमायाहता राजन् क्षणाद्ध मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥

हे राजन्! ग्वालबालोंने अपने प्राणेश्वर, अपने जीवन-सर्वस्व श्रीकृष्णके बिना रहते हुए यद्यपि एक वर्ष बिता दिया था, किन्तु श्रीकृष्णकी विश्वमोहिनी मायासे मोहित होकर उन्हें वह समय आधे क्षणके समान ही प्रतीत हुआ ॥ ४३ ॥

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः।

यन्मोहितं जगत् सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥

मायासे मुग्ध व्यक्ति पुनः-पुनः शास्त्राचार्योंके द्वारा अपने स्वरूपके विषयमें समझाये जानेपर भी इस जगत्में कौन-सी वस्तुको भूल नहीं सकते? वे मायाके प्रभावसे मोहित होकर इस जगत्के व्यवहार और यहाँ तक कि अपने स्वरूपको भी बार-बार भूल जाते हैं। (गोपबालक योगमायाके प्रभावसे एक वर्षके कृष्ण-विरह-दुःखको भूल गये।) ॥ ४४ ॥

ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा।

नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥

हे राजन्! श्रीकृष्णको आते देखकर सखाओंने उनसे बड़ी उत्कण्ठासे कहा—अरे भाई! तुम तो बहुत शीघ्र ही लौट आये। कृष्ण! तुम ठीकसे तो आ गये न! स्वागत है बन्धु, स्वागत है। देखो! हमने तो इस बीच एक ग्रास भी ग्रहण नहीं किया। अब यहाँ आओ और आनन्दसे भोजन करो ॥ ४५ ॥

ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहाभर्कैः।

दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥ ४६ ॥

तब हँसते हुए हृषीकेश श्रीकृष्णने बालकोंके साथ भोजन किया और सायंकालको उन्हें अघासुररूप अजगरका चर्म दिखाते हुए वनसे व्रजमें लौट आये ॥ ४६ ॥

बर्हप्रसूनवनधातुविचित्रिताङ्गः,

प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।

वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्त्ति-

गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥

उस समय श्रीकृष्णकी अद्भुत छटा हो रही थी। मस्तकपर मनोहर मोर-पंख तथा घुँघराले केशोंमें सुगन्धित वन्य पुष्प गूँथे हुए थे। श्यामल श्रीअङ्गोंमें नवीन गैरिकादि धातुओंसे चित्रकारी

रचित थी। परम उत्साहरूप समृद्धिसे सम्पन्न होकर वे पथपर वेणु, सींगी आदिकी अत्युच्च ध्वनि करते हुए वाद्योत्सवमें मग्न थे। श्रीकृष्ण गोपियोंके नयनोंके उत्सव-स्वरूप थे, मार्गके दोनों ओर खड़ी गोपियाँ उन्हें देखते ही आनन्द-मुग्ध हो रही थीं। सखा उनकी निर्मल एवं लोकपावन कीर्तिका गान करते हुए पीछे-पीछे आ रहे थे। इस तरह वे गोपबालक आदरपूर्वक नाम ले-लेकर बछड़ोंको पुकारते हुए गोष्ठमें प्रवेश कर गये ॥ ४७ ॥

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना।

हतोऽविता वयञ्चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥ ४८ ॥

परीक्षित्! गोपबालक उस दिन व्रजमें आकर सबसे कहने लगे कि श्रीकृष्णने आज एक भीषण अजगरका वध करके उससे हमारे प्राणोंकी रक्षा की है ॥ ४८ ॥

श्रीराजोवाच—

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत्।

योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—हे ब्रह्मन्! व्रजवासियोंके लिए श्रीकृष्ण अपने पुत्र नहीं थे, दूसरेके पुत्र थे। फिर भी उनका श्रीकृष्णके प्रति वैसा विपुल प्रेम किस प्रकार हो गया? ऐसा प्रेम तो उनका अपने पुत्रोंपर भी पहले कभी नहीं हुआ था। कृपा करके यह बतलाइये कि इसका कारण क्या है ॥ ४९ ॥

श्रीशुक उवाच—

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः।

इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! अपनी आत्मा ही समस्त प्राणियोंको प्रिय होती है। आत्माके अतिरिक्त पुत्र, धन आदि पदार्थ आत्माको प्रिय तो होते हैं, किन्तु गौणरूपसे, साक्षात् प्रिय नहीं होते ॥ ५० ॥

तद्वाजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम्।

न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥

अतः हे राजेन्द्र ! यही कारण है कि सभी प्राणियोंका अपनी आत्माके प्रति जैसा स्नेह होता है, ममताके विषयास्पद अपने पुत्र, धन एवं गृहादिमें वैसा नहीं होता। अपनी अहङ्कारात्मक देहमें ही अधिक स्नेह रहता है ॥ ५१ ॥

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम।

यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥

हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! देहमें आत्म-बुद्धि रखनेवाले पुरुषोंको देह जिस प्रकारसे प्रिय होती है, देह सम्बन्धी गृह, स्त्री अथवा पुत्रादि उस प्रकारसे प्रिय नहीं होते ॥ ५२ ॥

देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः।

यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥

यद्यपि यह देह ममतास्पद होती है, तथापि यह आत्माके समान प्रिय नहीं होती। देहके जराग्रस्त होनेपर भी जीवनकी आशा अधिक बलवती होती जाती है। देहत्याग करनेमें आत्माको अतिशय कष्ट होता है। इसलिए कोई देहत्याग करना ही नहीं चाहता। आत्माके प्रति अधिक स्नेहके कारण जीवित रहनेकी आशा बनी रहती है ॥ ५३ ॥

तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।

तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥

अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्त प्राणियोंको अपनी ही आत्मा सर्वाधिक प्रियतम होती है। यह निखिल चराचर जगत् आत्माके सुखका कारण है ॥ ५४ ॥

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।

जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥

परीक्षित् ! तुम श्रीकृष्णको समस्त जीवोंका आत्मा-स्वरूप जानो। वे योगमायाका आश्रय लेकर जगत्के मङ्गलके लिए

अवतरित होते हैं और मायिक उपाधि अथवा भौतिक देहधारी रूपमें प्रतीत होते हैं। वे अधोक्षज भगवान् शरीर, वाणी और मनके अगोचर हैं, परन्तु साधारण मनुष्योंको कृपा करनेके लिए वे इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य स्थूल-देहधारीरूपमें प्रतीत होते हैं॥५५॥

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थासु चरिष्णु च।

भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्वह किञ्चन॥५६॥

वस्तुतः जो कृष्ण-तत्त्वसे यथार्थरूपसे अवगत हैं, उनके मतमें स्थावर-जङ्गमात्मक और उससे परे परमात्मा, ब्रह्म, नारायण आदि जो भगवत्-स्वरूप हैं, सभी श्रीकृष्ण-स्वरूप ही हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कृष्णरूप है। श्रीकृष्ण समस्त कारणोंके कारण हैं। कार्य एवं कारणसे अभिन्न श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई प्राकृत-अप्राकृत वस्तु है ही नहीं॥५६॥

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः।

तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम्॥५७॥

सभी वस्तुओंकी अन्तिम सत्ता (जो भावरूपसे अनुभवमें आती है) अर्थात् अस्तित्व तत्-सत्ताशय उपादान आदि कारणमें ही स्थित है, अतः प्रधानरूपसे यही निर्णय किया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ही उन कारणोंके कारण-स्वरूप हैं। कृष्ण-सम्बन्धसे रहित इस ब्रह्माण्डमें स्वतन्त्र सत्ताधारी कुछ है—यह नहीं कहा जा सकता॥५७॥

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद्विपदां न तेषाम्॥५८॥

जो व्यक्ति सत्पुरुषोंके सर्वस्व एवं शिव, ब्रह्मादि महत्-जनोंके आश्रय पुण्यकीर्ति मुकुन्द, मुरारि श्रीकृष्णकी पाद-पद्म-तरणी (नौका) का आश्रय ले लेते हैं, वे इस भव-समुद्रको गोष्पदके (बछड़ेके खुरसे बने गड्ढेके) समान अनायास ही पार कर लेते

हैं। उन्हें उस परमपदकी (वैकुण्ठकी) प्राप्ति हो जाती है, जहाँ किसी भी प्रकारकी विपत्ति नहीं है ॥ ५८ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्ठोऽहमिह त्वया।

यत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥

हे राजन्! पाँचवें वर्षमें श्रीकृष्णने जो लीलाएँ की थीं, बालकोंने उसे छठे वर्षमें कहा। इसका तुमने जो कारण पूछा था, उसका सारा रहस्य मैंने तुम्हारे लिए स्पष्ट कर दिया ॥ ५९ ॥

एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारे-

रघाईनं शाद्वलजेमनञ्च।

व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं

शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥

श्रीकृष्णकी सखाओंके साथ वन-क्रीड़ा, अघासुर विनाश, वनमें हरी-भरी घाससे युक्त भूमिके ऊपर भोजन करना, जड़-प्रपञ्चातीत अर्थात् शुद्धानन्दात्मक बछड़ों और ग्वालबालोंका प्रकट होना और ब्रह्मा-कृत महत्-स्तोत्र आदिका जो श्रवण और कीर्तन करता है, वह मनुष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष आदि सारे अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ६० ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।

निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीबलराम और श्रीकृष्णने इस प्रकार आँख-मिचौली, सेतुबन्धन एवं वानरोंके समान उछलना-कूदना आदि कौमारकालोचित क्रीड़ा-विहार करते हुए कौमार अवस्थाको व्रजमें बिता दिया ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौदहवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

पञ्चदशोऽध्यायः

धेनुकासुरका उद्धार, ग्वालबालोंको कालियनागके
विषसे बचाना

श्रीशुक उवाच—

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ ब्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदै-
वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे परीक्षित्! इसके बाद छठे वर्षमें प्रवेश करनेपर बलराम और श्रीकृष्णने बाल्यलीलासे अधिक रस प्रकटकारी पौगण्ड अवस्थामें प्रवेश किया (पौगण्ड वयसने उनकी सेवा प्रारम्भ की)। कार्तिक मासकी अष्टमीको उन्हें गायोंको चरानेकी स्वीकृति मिल गयी। वे दोनों समवयस्क सखाओंके साथ गोचारण करते हुए वृन्दावन जाने लगे और अपने ध्वज, वज्रादि पद-चिह्नोंसे समग्र वृन्दावनको सुशोभित करने लगे ॥ १ ॥

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो
गोपैर्गुणद्धिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्-
विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥

वृन्दावन पशुओंके लिए हितकारी था। यह हरी-हरी घाससे समृद्ध एवं विविध रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पोंसे सुशोभित था। श्रीकृष्णने बलदेवके साथ वेणु वादन करते हुए तथा अपने पशुओंको (गायोंको) आगे करते हुए विहारकी कामनासे उस वनमें इस प्रकारसे प्रवेश किया, जिस प्रकार वसन्त चारों दिशाओंसे प्रवेश करता है। गोपबालक उनका यशोगान करते हुए उन्हें घेरकर पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ २ ॥

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं
 महन्मनःप्रख्यपयःसरस्वता ।
 वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना
 निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ॥ ३ ॥

भगवान्ने देखा कि इस मनोहर वनमें कहीं भ्रमर मधुर गुञ्जार कर रहे हैं, कहीं झुण्ड-के-झुण्ड हिरन चौकड़ी भर रहे हैं तथा कहीं आकर्षक पंखोंसे युक्त पक्षी मधुर कलरव कर रहे हैं। महत्-जनोके हृदयके समान अत्यन्त पावन सलिलमय अभिराम सरोवरोंमें विकसित कमलोंके सौरभसे सुवासित होकर शीतल, मन्द और सुगन्धित वायुसे वन सेवित हो रहा है। परीक्षित्! वह वन इतना रमणीक था कि उसे देखते ही भगवान् माधवने उस वनमें विहार करनेकी अभिलाषा की ॥ ३ ॥

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया
 फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
 स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा
 स्मयन्निवाहाग्रजमादिपुरुषः ॥ ४ ॥

वन-प्रदेशमें सर्वत्र ही अरुणवर्णीय (नवीन कोंपलके लालिमामय) सौन्दर्यसे अलङ्कृत वनस्पतियाँ (छोटे-बड़े वृक्ष) भगवान्के चरणकमलोंका स्पर्श करनेके लिए फल एवं फूलोंके अधिक भारसे अपनी शाखाओंको अधोमुख होकर झुका रही थीं। यह देखकर आदिपुरुष श्रीकृष्ण आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। वे सख्यभाव-जनित ईषत् मुसकानके साथ अग्रज बलदेवसे कहने लगे— ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच—

अहो अमी देववरामरार्चितं
 पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम् ।
 नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-
 स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे देवशिरोमणे ! ये समस्त वृक्ष अपनी वृक्ष-योनिके मूल-कारण अपने अज्ञानके विनाश, आपके दर्शन एवं आपके यश-श्रवणके लिए अपनी-अपनी डालियोंमें पुष्प एवं फलरूप पूजाकी सामग्री धारण करके देवताओंके द्वारा पूजनीय आपके चरणकमलोंमें प्रणत हो रहे हैं। वस्तुतः इन वृक्षोंका जीवन धन्य है। (ब्रह्मादि देवताओं द्वारा प्रार्थनीय श्रीवृन्दावनीय तरु-जन्म किसी अपराधका फल नहीं है।) ॥ ५ ॥

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थ
गायन्त आदिपुरुषानुपथं भजन्ते।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ ६ ॥

हे आदिपुरुष ! हे अनघ (निष्पाप) ! ये भ्रमर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले आपका यशोगान करते हुए आपका अनुगमन कर रहे हैं। ये निश्चय ही आपके उपासकोंमेंसे श्रेष्ठ मुनिगण होंगे—मैं ऐसा समझता हूँ। ये अपने आराध्यदेव आपको वनमें एक क्षणके लिए भी छोड़ना नहीं चाहते। ये (भ्रमर) वनमें रहस्यपूर्ण लीलाके लिए (सुरभियुक्त माधुर्यके रसास्वादनके लिए) गोपनीय स्थान जो सखाओंके लिए भी अगम्य है, वहाँ भी आपका पीछा नहीं छोड़ते। (आप जिस प्रकार अपना ऐश्वर्य छिपाकर चरवाहेका वेश ग्रहण करके बाल-लीला करते हुए वनमें आये हैं, उसी प्रकार ये आपके उपासक मुनि भी भ्रमरका रूप धारण करके यहाँ चले आये हैं।) अन्य उपायकोंके लिए आपका यह रूप दुर्बोध्य है ॥ ६ ॥

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥ ७ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! आप ही परम स्तवनीय हैं। देखिये! वनमें आपके आगमनसे प्रसन्न होकर मयूर आनन्दपूर्वक नृत्य कर रहे हैं। हिरनियाँ गोपरमणियोंके समान तिरछी चितवनसे आपके प्रति प्रेम अभिव्यक्त कर रही हैं, कोयलें सुमधुर कुहू-कुहूकी मनोरम ध्वनिसे प्रसन्नता प्रकट करती हुई आपका स्वागत कर रही हैं। ये सभी वनवासी धन्य हैं—जो आपको अपनी प्रिय वस्तुएँ भेंट कर रहे हैं। घर आये अतिथिकी प्रसन्नताके लिए अपनी प्रियसे प्रियवस्तु भेंट करना ही सज्जनोंका स्वभाव है ॥७॥

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-

पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः।

नद्योऽद्रयः खगमृगाः सद्यावलोकै-

गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥८॥

इस पृथ्वीने पहले भी विविध अवतारोंमें (वराहादि) चरण-स्पर्श प्राप्त करके सौभाग्यको प्राप्त किया था और अब आपके स्वरूप अवतारके चरण-स्पर्शसे परम सौभाग्यवती हो गयी है। यहाँके तृण, वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ सभी आपकी अङ्गुलियोंके नखोंका स्पर्श प्राप्तकर अपना अहोभाग्य मान रही हैं। नदी, पर्वत एवं पशु-पक्षी आपका सकरुण कटाक्ष प्राप्तकर कृतार्थ हो रहे हैं और श्रीदेवी जिस वक्षःस्थलकी प्राप्तिके लिए लालायित रहती हैं, उसी वक्षःस्थलका स्पर्श प्राप्त करके यहाँकी गोपियाँ (श्यामलता आदि गोपियाँ) धन्य हो रही हैं ॥८॥

श्रीशुक उवाच—

एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून्।

रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधःसु सानुगः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! श्रीकृष्ण परम सुन्दर वृन्दावन-धामका अवलोकन करके बहुत आनन्दित हुए और प्रसन्न-चित्तसे गोवर्धनकी तराईमें, यमुना नदीके किनारेपर अपने

सखाओंके साथ गो-चारण करते हुए अनेक प्रकारसे लीला-विहार करने लगे ॥ ९ ॥

क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः।

उपगीयमानचरितः पथि सङ्कर्षणान्वितः ॥ १० ॥

अनुजल्पति जल्पन्तं कलवाक्यैः शुकं क्वचित्

क्वचित् सवल्लु कूजन्तमनुकूजति कोकिलम्।

क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम्

अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥ ११ ॥

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून्।

क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥

उस समय एक ओर ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंका मधुर स्वरसे गान करते, दूसरी ओर वनमाली श्रीकृष्ण बलदेवजीके साथ पथपर कहीं तो मदमस्त भ्रमरके सुमधुर गुञ्जार करनेपर स्वयं भी मधुर स्वरसे गुनगुनाने लगते, कहीं मधुर नादकारी तोतेकी अस्पष्ट मधुर ध्वनिका अनुकरण करते, कहीं सुमधुर कूजनपरायण कोयलके अनुरूप ही कूकने लगते, कहीं कलहंसके सुरीले कूजनका अनुकरण करते और कहीं अनुचरोंको हँसानेके लिए नृत्यशील मोरोंके साथ ठुमक-ठुमककर नृत्य करके मयूरोंको उपहासका पात्र बना देते, कहीं दूर गयीं गायोंको मेघके समान गम्भीर एवं आनन्ददायिनी वाणीसे श्यामली, धवली आदि नामोंसे अतिशय प्रीतिके साथ पुकारते। उनके कण्ठकी मधुर-ध्वनि सुनकर गायों और ग्वालबालोंका चित्त अपने वशमें नहीं रहता ॥ १०-१२ ॥

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः।

अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥

किसी स्थानपर चकोर (तीतर), क्रौञ्च (सारस), चक्रवाक (चकवा) एवं भारद्वाज (भरदूल या बगेरी) आदि पक्षियोंकी बोलीका अनुकरण करते हुए उनके जैसी बोली बोलते और कहीं

व्याघ्र तथा सिंहके समान गर्जना करते हुए हिरन आदि प्राणियोंको डराते और स्वयं भी भयभीत-से होकर पलायन करनेकी लीला करते ॥ १३ ॥

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।

स्वयं विश्रमयत्यार्य पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥

जब बलदेव खेलकर थक जाते, तब किसी गोपकी गोदरूप तकिये पर सिर रखकर लेट जाते, तब श्रीकृष्ण स्वयं पद-संवाहन (पैरोंको दबाना), व्यजन (पंखेसे हवा करना) आदि सेवाओंके द्वारा बड़े भाईकी थकावट दूर करते ॥ १४ ॥

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।

गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥

कभी ग्वालबाल नाचते-गाते, ताल ठोंकते और परस्पर कुश्ती लड़ते। तब बलराम एवं कृष्ण दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़कर 'वाह-वाह' करते हुए उनकी प्रशंसा करते एवं हँसने लगते ॥ १५ ॥

क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्ध श्रमकर्षितः ।

वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥ १६ ॥

कभी स्वयं श्रीकृष्ण भी ग्वालबालके साथ मल्ल-क्रीड़ा करते हुए क्लान्त हो जाते, तब किसी रमणीय वृक्षके नीचे पल्लव-रचित शय्यापर गोपबालकोंकी गोदरूप तकिये पर मस्तक रखकर लेट जाते ॥ १६ ॥

पादसंवाहनं चक्रुः केचित् तस्य महात्मनः ।

अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥

परीक्षित्! उस समय पुण्यके मूर्तिमान-स्वरूप ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके पाद-संवाहन करते और सेवा-विघ्नरूप पापसे नित्य मुक्त (ये गोपबालक अनादि कालसे ही कृष्णसेवाके अधिकारी हैं। उनकी कृष्णसेवामें कभी भी विघ्न नहीं आते हैं) कुछ बाल-सखा बड़े-बड़े पत्तों अथवा अँगोछियोंसे उनपर पंखा झलने लगते ॥ १७ ॥

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।

गायन्ति स्म महाराज स्नेहविलग्नधियः शनैः ॥ १८ ॥

हे महाराज ! किसी-किसीका चित्त स्नेहसे आर्द्र हो उठता, तब वह मधुर-मद्धिम स्वरमें उदार-शिरोमणि और परम मनस्वी श्रीकृष्णकी लीलाओंके अनुरूप तत्कालोचित, प्रीतिदायक एवं मनोहर गीतोंका गान करने लगता ॥ १८ ॥

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया

गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।

रेमे रमालालितपादपल्लवो

ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥

लक्ष्मीदेवी जिनके सुकोमल चरण-युगलकी आराधना करती हैं, वे ही भगवान् अपनी शक्ति-योगमायाके प्रभावसे अपने ऐश्वर्यमय स्वरूपको छिपाकर अपने आचरण द्वारा गोपबालकोंके समान माधुर्यमय भावको प्रकटित करते और प्राकृत बालकोंके समान बड़े प्रेमसे ग्रामीण खेल खेलते हुए विहार करते, तथापि बीच-बीचमें उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाएँ एवं भाव लक्षित हो ही जाते अर्थात् दिखायी दे ही जाते ॥ १९ ॥

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ।

सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥

तदनन्तर एक दिन बलराम और श्रीकृष्णके प्रधान सखा श्रीदाम नामक गोपाल, सुबल, स्तोककृष्ण आदि अन्यान्य गोप-बालकोंने श्याम और रामसे अति सौहार्द-प्रेमसे इस प्रकार कहा— ॥ २० ॥

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।

इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥ २१ ॥

हम सबको सर्वदा प्रसन्न करनेवाले हे बलराम ! आपकी भुजाओंका पराक्रम असीम है। हे महाबाहो श्रीकृष्ण ! दुष्टोंका दमन करना तो आपका स्वभाव ही है। इस स्थानसे थोड़ी दूरपर

ही (गोवर्द्धनकी तलहटीसे चार कोसकी दूरीपर) तालवृक्षोंसे परिपूर्ण एक महावन (एक बड़ा भारी वन) है ॥ २१ ॥

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च।

सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥ २२ ॥

वहाँ बहुत-से ताल-फल पककर गिरते रहते हैं और बहुत-से पहलेके भी गिरे हुए होंगे, परन्तु वहाँ एक धेनुक नामका दुरात्मा असुर रहता है, जिसने उन फलोंके बीनने अथवा तोड़नेपर रोक लगा रखी है ॥ २२ ॥

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक्।

आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिवृतः ॥ २३ ॥

भैया दाऊ और भैया कृष्ण! वह दैत्य गधेके रूपमें वहाँ रहता है और उसके अनेक बान्धव भी गधेके रूपमें उससे मिलकर वहीं रहते हैं। वह स्वयं तो अतिशय बलवान् है ही, उसके साथी भी उसके जैसे ही बलवान् हैं ॥ २३ ॥

तस्मात् कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन्।

न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥

हे शत्रुविनाशन श्रीकृष्ण! वह दैत्य मनुष्योंका मांस खाता है, उसने अब तक न जाने कितने मनुष्योंको मारकर खा डाला है। उससे भयभीत होकर मनुष्य, पशु और पक्षी—सभीने उस वनका परित्याग कर दिया है, कोई भी उस वनमें नहीं जाता ॥ २४ ॥

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च।

एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥

उस वनमें ताल फल हैं तो अतिशय सुगन्धित, परन्तु हमने उन्हें कभी खाया नहीं है। इन फलोंकी सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त हो रही है। किञ्चित् मात्र भी ध्यान देनेसे उस सुगन्धका अनुभव होने लगता है ॥ २५ ॥

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम्।

वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥ २६ ॥

हे कृष्ण! हमारे मनमें इस सुगन्धके प्रति बड़ा लोभ हो रहा है। अतः हमें ये फल अवश्य प्रदान करो। इन फलोंकी प्राप्तिकी हमें अत्यधिक लालसा हो रही है। हे बलराम! यदि तुम्हारी रुचि हो, तो वहाँ चला जाय ॥ २६ ॥

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया।

प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥

बलराम और कृष्ण अपने मित्रोंके इन वचनोंको सुनकर हँसे और उनकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेकी इच्छासे उन ग्वालबालोंको साथ लेकर हँसते हुए तालवनकी ओर चल दिये ॥ २७ ॥

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परिकम्पयन्।

फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥ २८ ॥

बलदेवने तालवनमें प्रवेश करते ही मदमस्त हाथीके बच्चेके समान अपनी भुजाओंके महाबलसे ताल-वृक्षोंको पकड़ लिया और उन्हें बड़े जोर-जोरसे हिलाकर बहुत-से फल भूमिपर गिरा दिये ॥ २८ ॥

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः।

अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥ २९ ॥

फल जब भूमिपर गिरने लगे, तब उसका शब्द सुनकर गंधेके रूपमें वह असुर पर्वतोंके साथ-साथ भूतलको भी कम्पित करता हुआ द्रुत गतिसे उनकी ओर दौड़ा ॥ २९ ॥

समेत्य तरसा प्रत्यगद्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली।

निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन् पर्यसरत् खलः ॥ ३० ॥

वह असुर बड़ा ही बलवान् तथा क्रूर स्वभाववाला था। वह बड़े वेगसे बलरामजीके निकट आया और उसने अपने पिछले पैरोंसे उनके वक्षःस्थलपर दुलत्ती मारी। उसके बाद वह दुष्ट

गधेके समान कर्कश शब्दसे रेंकता हुआ चारों ओर दौड़ने लगा ॥ ३० ॥

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः।

चरणावपरो राजन् बलाय प्राक्षिपद्गुषा ॥ ३१ ॥

राजन्! गर्दभाकृति वह असुर अति क्रोधित होकर पुनः रेंकता हुआ बलरामके पास पहुँचा और उनकी ओर पीठ करके बड़े क्रोधसे अपने पिछले पैरोंसे उनपर दुलत्ती चलायी ॥ ३१ ॥

स तं गृहीत्वा प्रपदोभ्रामयित्वैकपाणिना।

चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥

इस बार बलदेवने अपने एक ही हाथसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें घुमाने लगे। घुमानेके वेगसे ही उस असुरके प्राण-पखेरु उड़ गये। अनन्तर बलदेवने उसे तालवृक्षके ऊपर ही फेंक दिया ॥ ३२ ॥

तेनाहतो महातालो वेपमानो महच्छिराः।

पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥

उस असुरके शरीरके गिरनेके आघातसे वह महान् ताड़का वृक्ष—जिसका ऊपरी भाग बहुत विशाल था—स्वयं तो तड़तड़ाता हुआ गिर पड़ा, साथ ही पासमें सटे हुए दूसरे ताल-वृक्षोंको भी उसने कँपा दिया। एक कम्पमान वृक्षसे दूसरा वृक्ष गिरा, दूसरेसे तीसरा, तीसरेसे चौथा—इस प्रकार एक-दूसरेको गिराते हुए बहुत-से ताल-वृक्ष गिर पड़े ॥ ३३ ॥

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः।

तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४ ॥

बलरामके द्वारा खेल-ही-खेलमें फेंके हुए गर्दभाकार असुरके शरीरके प्रहारसे आहत होकर सारे ताल-वृक्ष क्रमपूर्वक इस प्रकार कम्पित होने लगे, मानो किसी प्रबल झंझावातने उन्हें प्रचण्डरूपसे झकझोर दिया हो ॥ ३४ ॥

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे।

ओतप्रोतमिदं यस्मिस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः॥ ३५ ॥

हे राजन्! तन्तुओंमें (सूतोंमें) जिस प्रकार वस्त्र ओतप्रोत रहता है, उसी प्रकार निखिल ब्रह्माण्ड जिनमें अनुस्यूत अथवा ओतप्रोत रहता है—ऐसे जगदीश्वर भगवान् अनन्तदेवके लिए ये वन-प्रकम्पनादि कार्य कुछ अद्भुत नहीं हैं॥ ३५ ॥

ततः कृष्णञ्च रामञ्च ज्ञातयो धेनुकस्य ये।

क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः॥ ३६ ॥

इसके बाद जो धेनुकासुरके बन्धु-बान्धव थे, वे अपने बान्धवोंकी मृत्युसे बड़े ही क्रोधित हो गये और क्रोधावेशमें आकर सभी-के-सभी बड़े वेगके साथ बलराम और कृष्णपर टूट पड़े॥ ३६ ॥

तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया।

गृहीतपश्चाच्चरणान् प्राहिणोत् तृणराजसु॥ ३७ ॥

हे राजन्! तब कृष्ण एवं बलराम दोनोंने ही अपने समीपमें आये हुए असुरोंके पिछले पैरोंको पकड़कर खेल-ही-खेलमें ताल-वृक्षोंके ऊपर फेंककर मार डाला॥ ३७ ॥

फलप्रकरसङ्कीर्णं दैत्यदेहैर्गतासुभिः।

रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम्॥ ३८ ॥

उस समय सारी भूमि टूटे हुए ताल-वृक्षों, ताल-फलोंके ढेरों एवं ताल-वृक्षोंके अग्रभागोंपर अटके प्राणहीन दैत्योंके शरीरोंसे पट गयी। उस समय उस भूमिकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो मेघमालाओंसे आकाश व्याप्त हो गया हो। (ताल-फल स्वाभाविक रूपसे काले होते हैं।)॥ ३८ ॥

तयोस्तत् सुमहत् कर्म निशम्य विबुधादयः।

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः॥ ३९ ॥

बलराम और श्रीकृष्णकी इस सुमहती एवं मङ्गलमयी लीलाको सुनकर देवगण पुष्प-वर्षण, वाद्य-वादन और स्तुति-स्तवन करने लगे ॥ ३९ ॥

अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः ।

तृणं च पशवश्चेरुहृतधेनुककानने ॥ ४० ॥

इसके पश्चात् उस वनमें जिस दिन धेनुकासुरका वध हुआ था, उसी दिनसे मनुष्य निर्भय होकर उस वनके स्वादिष्ट तालफल खाने लगे एवं गाय आदि पशु भी स्वच्छन्दतापूर्वक घास चरने लगे (ताल-फल-भक्षण पुलिन्द जाति द्वारा हुआ है, गर्दभके रक्तसे लिप्त होनेके कारण गोपबालकोंकी उसमें कोई रुचि न थी) ॥ ४० ॥

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।

स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो ब्रजमाव्रजत् ॥ ४१ ॥

जिनके वेणुगीतका श्रवण करनेसे कर्णपुट पवित्र हो जाते हैं, उन पुण्य-श्रवण-कीर्तन, कमलनयन श्रीकृष्णने अपने अग्रजके साथ ब्रजमें प्रवेश किया। उस समय उनके पीछे-पीछे चलती हुई गोपाल-मण्डली उनकी स्तुति कर रही थी ॥ ४१ ॥

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह-

वन्य प्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।

वेणुं क्वणन्तमनुगैरुपगीतकीर्त्ति

गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥ ४२ ॥

उस समय गायोंके खुरोंसे धूलिकर्णोंके उड़नेसे श्रीकृष्णके घुँघराले केश रञ्जित हो रहे थे। उन केशोंमें सुन्दर-सुन्दर वन्य-कुसुम गुँथे हुए थे और सिरपर मयूरपिच्छ था। उनके मुखपर सुरम्य मुसकान एवं नेत्रोंमें मनोहर चितवन थी। वे मधुर-मधुर वेणु बजाते हुए चले आ रहे थे। उनके अनुगमनकारी साथी ग्वालबाल उनके मधुर एवं लालित्यपूर्ण यशका गान कर

रहे थे। वंशीकी ध्वनि सुनते ही गोपियाँ उन्हें देखनेकी इच्छासे दल बनाकर आयी हुई थीं, न जाने कबसे श्रीकृष्णके दर्शनके लिए उनके नयन उत्सुक हो रहे थे॥ ४२ ॥

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गै-
स्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽहि।
तत् सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥ ४३ ॥

व्रजाङ्गनाओंने व्रजमें प्रवेश करते हुए श्रीकृष्णके मुख-कमलके मकरन्द-रसका (स्मितहास्यरूप मधुका) अपने भ्रमर-तुल्य नेत्रोंके द्वारा पान किया और सम्पूर्ण दिवसके विरह-जनित तापको शान्त किया। श्रीकृष्णने भी उनके सलज्ज हास्य एवं विनययुक्त कटाक्ष-दृष्टिरूप सत्कारको स्वीकार करते हुए गोष्ठमें प्रवेश किया (जब श्रीकृष्णने गोपियोंको देखा, तो गोपियाँ हँस पड़ीं और अपनी हँसीको छिपानेके लिए बायें हाथसे मुखको घूँघटसे ढक लिया, जिससे उनका विनय भाव प्रकाशित होने लगा) ॥ ४३ ॥

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥

माँ यशोदा और रोहिणीदेवीका हृदय वात्सल्य-स्नेहसे उमड़ रहा था। जैसे ही कृष्ण एवं बलराम घर पहुँचे, उसके पहलेसे ही उन्होंने प्रदोषकालोचित तथा पुत्रोंकी रुचिके अनुसार सोच-सँजोकर रखे हुए उत्तम-उत्तम भोज्य पदार्थोंका उन्हें भोजन कराया और यथासमय ही वसन एवं अलङ्कार धारण करा दिये ॥ ४४ ॥

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः।
नीर्वीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्नग्गन्धमण्डितौ ॥ ४५ ॥

माताओंने तेल-उबटन आदि लगाकर स्नान कराया। इससे वन-भ्रमणसे होनेवाली उनकी दिनभरकी थकावटको दूर किया, उन्हें सुन्दर वस्त्र पहनाये, दिव्य पुष्पोंसे निर्मित माला पहनायी तथा सुगन्धादिसे विभूषित किया ॥ ४५ ॥

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।

संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥ ४६ ॥

उसके बाद बलराम और श्रीकृष्णने माताओंके द्वारा परोसा हुआ स्वादिष्ट भोजन किया। ताम्बूल-अर्पण आदि द्वारा लाड़-प्यार करते हुए माताओंने दोनों भाइयोंको मनोरम शय्यापर सुलाया। राम और श्याम व्रजमें सुखपूर्वक सो गये ॥ ४६ ॥

एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।

ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिवृतः ॥ ४७ ॥

हे राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनमें विचरण करते हुए अनेक लीलाएँ करते। एक दिन वे अपने सखा ग्वालबालोंसे परिवेष्टित होकर यमुना-पुलिनपर गये, परन्तु उस दिन बलराम उनके साथ नहीं आये थे ॥ ४७ ॥

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।

दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्त्ता विषद्रूषितम् ॥ ४८ ॥

वहाँ ज्येष्ठ-आषाढ़ मासके अत्यधिक तापसे गौएँ एवं ग्वालबाल अति पीड़ित हो रहे थे। प्याससे उनका कण्ठ सूखा जा रहा था। तृषासे आर्त्त होकर उन्होंने कालिन्दीका विषैला जल पी लिया ॥ ४८ ॥

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।

निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरुद्वह ॥ ४९ ॥

हे कुरुवंशधर परीक्षित्! भगवान्की लीला-शक्तिके वैभवके द्वारा गोपों एवं गायोंकी बुद्धि लुप्त हो गयी थी। उन्हें हृदके विष-दोषका ध्यान ही नहीं रहा था। अतः गोप एवं गायें सभी विषाक्त जलका स्पर्श करते ही प्राणहीन होकर यमुनाजीके तटपर गिर पड़े ॥ ४९ ॥

वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।

ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत् ॥ ५० ॥

ब्रजस्थ प्राणियोंके स्वामी और सर्वस्व तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही थे। योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णने जब अपने आश्रितोंको इस प्रकारसे मृत देखा, तो अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिके द्वारा उन्हें पुनः जीवित कर दिया ॥ ५० ॥

ते सम्प्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात्।

आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥

वे यमुनाके तटपर उठ खड़े हुए। जैसे ही उन्हें पूर्वस्मृति प्राप्त हुई, वे अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरेका मुख देखने लगे—“अरे! हम तो मर गये थे, अब जीवित कैसे हो गये! हमें किसने किस ओषधि या मन्त्रसे जीवित कर दिया!”—वे इसी चिन्तनमें निमग्न हो गये ॥ ५१ ॥

अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम्।

पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे धेनुकवधो नाम

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

हे राजन्! तब उन्होंने यही निश्चय किया कि विषैला जल पीनेसे हमलोग मर चुके थे, परन्तु श्रीकृष्णकी ही अनुग्रहपूर्ण दृष्टिसे हमलोग पुनः जीवित हो गये हैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

षोडशोऽध्यायः

कालिय-दमन और नागपत्नियोंकी स्तुतिसे श्रीकृष्णकी
कालिय नागपर कृपा

श्रीशुक उवाच—

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः।

तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत्॥ १ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण सर्वव्यापक हैं। उन्होंने देखा कि कालिय नामक सर्पके विषके स्पर्शसे यमुनाका जल दूषित हो गया है, अतः उसकी शुद्धिकी कामनासे उन्होंने उस सर्पको वहाँसे निर्वासित कर दिया॥ १ ॥

श्रीराजोवाच—

कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद् भगवानहिम्।

स वै बहुयुगावासां यथासीद्विप्र कथ्यताम्॥ २ ॥

श्रीपरीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्णने किस प्रकारसे अगाध जलमें कालिय नागका दमन किया? जलचर जीव न होते हुए भी वह नाग किस प्रकार अनेक युगों तक वहाँ रहा? इसका कारण क्या था? कृपया यह सब आप मुझे बतलाइये॥ २ ॥

ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूमनः स्वच्छन्दवर्तिनः।

गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन्॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्ण स्वतन्त्र एवं अनन्त हैं। वे स्वेच्छापूर्वक लीला-विहार करते हैं। उनकी गो-गोप-गोपियोंकी रक्षारूप लीला अमृत-तुल्य सुखदायक है, उस लीला चरितके सेवनसे भला कौन तृप्त हो सकता है? बल्कि इन लीलाओंके सेवनकी इच्छा बढ़ती रहती है॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच—

कालिन्ध्यां कालियस्यासीद्हृदः कश्चिद्विषाग्निना।

श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—परीक्षित्! उस यमुना जलके बीचमें एक हृद था। कालियके विषाग्निकी ज्वालासे निरन्तर उसका जल खौलता रहता था। यहाँ तक कि उस हृदके ऊपर उड़नेवाले पक्षी भी उस विषके आकर्षणसे उसमें गिर जाते और प्राणोंको खो बैठते ॥ ४ ॥

विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिर्मर्शिताः।

म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥ ५ ॥

उस हृदके विषैले जलकी उच्च तरङ्गोंका स्पर्श करके तथा उनके नन्हे-नन्हे जल-कणोंको लेकर वायु बाहर आती, तो उस हृदके तटपर स्थित घास-पात, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी उस विषाक्त वायुके स्पर्शसे झुलस जाते और उसी समय प्राणोंका त्याग कर देते ॥ ५ ॥

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन

दुष्टां नदीञ्च खलसंयमनावतारः।

कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्ग-

मास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टोंका निग्रह करनेके लिए अवतरित होते हैं। जब श्रीकृष्णने विषके प्रचण्ड वेगसे युक्त कालियको एवं उसके द्वारा दूषित यमुना-जलको देखा, तो उन्होंने अपने कटिभूषण (फेंटे) को कमरमें कसकर बाँध लिया एवं तट-स्थित अति विशाल एवं उच्च कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये। उसी ऊँचे वृक्षसे भुजाओंसे ताल ठोकते हुए विषमय हृदमें कूद पड़े। (भविष्यमें श्रीकृष्णके चरण-कमलका स्पर्श प्राप्त करनेके लिए दहके किनारे यही वृक्ष हरा-भरा रह गया था। इसपर विषकी ज्वालाओंका असर नहीं हुआ था, क्योंकि गरुड अमृत-कलश ले

जाते समय इसी वृक्षपर बैठे थे। इसलिए भी यह सूखा नहीं था) ॥ ६ ॥

सर्पहृदः पुरुषसारनिपातवेग-
सङ्क्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्यक् प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मि-
र्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥

हे धीमन्! उस समय भगवान् किञ्चित् बल प्रकट करते हुए हृदमें कूदे। उनके इसी वेगसे क्षुब्ध सर्पोंकी विषराशिसे कषायित (रक्त-पीत वर्णीय अर्थात् लाल-पीले रङ्गकी) एवं भयङ्कर तरङ्गोंसे युक्त यह हृद-जल उछलता हुआ शत धनुष (चार सौ हाथ) तक फैल गया। अचिन्त्य, असीम विक्रमशाली भगवान्के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है ॥ ७ ॥

तस्य हृदे विहरतो भुजदण्डघूर्ण-
वार्धोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ।
आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य
चक्षुःश्रवाः समसरत् तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥

हे राजन्! जिस समय भगवान् कूदे, उस समय कालिय नाग हृदमें विहार कर रहा था। विक्रमशाली श्रीकृष्ण मत्त मातङ्गके समान उस हृद-जलमें क्रीड़ा करते हुए अपने हस्त-सञ्चालनसे उत्थित तरङ्गोंसे विचित्र जलवाद्यका महाशब्द करने लगे। अपने आवास-स्थलका ऐसा तिरस्कार चक्षुःश्रवा (आँखसे सुननेवाले) कालियको सहन नहीं हुआ और वह श्रीकृष्णके समीप उपस्थित हो गया ॥ ८ ॥

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं
श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं
सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥

कालियने देखा कि उसके समक्ष मनोहर, सुकुमार वर्षाकालीन जलदके समान उज्ज्वल कान्तिसे युक्त एक साँवला-सलोना श्यामल बालक है। उसने पीत-वसन धारण कर रखे हैं और वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिन्ह है। उसके सुरम्य मुखपर मन्द-मन्द, मनोरम मुसकान अठखेलियाँ करती हुई अत्यधिक सुशोभित हो रही है। उनके सुकोमल चरण कमल-तुल्य हैं। वह बिना किसी भयके उस विषाक्त जलमें आनन्दपूर्वक विहार कर रहा है। यह देखकर कालिय नागने क्रोधित होकर श्रीकृष्णके मर्मस्थानोंपर दन्ताघात करते हुए उन्हें अपने बन्धनमें जकड़ लिया ॥ ९ ॥

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट-

मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशात्ताः।

कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा

दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥

प्रिय परीक्षित्! जिन सखाओंने अपना शरीर, आत्मा, आत्मीय जन, धन, पत्नी, काम आदि सर्वस्व ही श्रीकृष्णको समर्पण कर रखे थे—वे सभी ग्वालबाल अपने प्यारे सखा श्रीकृष्णको नाग-पाशमें बँधा हुआ एवं निश्चेष्ट देखकर अतिशय आर्त हो गये। दुःख, पश्चात्ताप तथा भयसे हतबुद्धि होकर वे विह्वल हो गये और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। (मूर्च्छित न होनेपर तो सब-के-सब कालिय-हृदमें प्रवेश कर जाते। कृष्णका निश्चेष्ट होना कालियके उत्साह-वर्द्धनके लिए जानना चाहिये) ॥ १० ॥

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः।

कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥

गाय, बैल, बछड़े एवं बछिया अत्यन्त दुःखके कारण हाम्बा-रवसे आर्तनाद करने लगे। वे अपलक दृष्टिसे श्रीकृष्णको देखते रहे और अश्रुधारा प्रवाहित करते हुए निस्पन्द-से खड़े रहे ॥ ११ ॥

अथ ब्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ।

उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥

उस समय ब्रजभूमि काँपने लगी, आकाशमें उल्कापात होने लगे, प्राणियोंके शरीरोंके वाम भाग फड़कने लगे। इस प्रकारसे ये तीनों प्रकारके अति भयानक महा उत्पात निकटस्थ किसी अशुभ घटनाकी सूचना दे रहे थे ॥ १२ ॥

तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः ।

विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥

तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः ।

तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥

आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ।

निर्जग्मुर्गोकुलादीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥

जब नन्द आदि गोपोंने अचानक इन अमङ्गलसूचक उत्पातोंको देखा और बादमें यह पता चला कि “कृष्ण बलदेवको लिये बिना ही गोचारणके लिए चला गया है”, तब भयसे (यह आज कोई दुःसाहसपूर्ण कार्य करके विपत्तिमें फँस गया है) अत्यन्त व्याकुल हो गये। उन्हें सब प्रकारके अमङ्गलोंका हरण करनेवाले श्रीकृष्णके असीमित ऐश्वर्यका ज्ञान कहाँ था? वे तो (कृष्णके प्रति) माधुर्य-परायण, कृष्णगत-प्राण एवं कृष्णगत-चित्त थे। उन अशुभ लक्षणोंको देखकर उन्होंने कृष्णकी सम्भावित मृत्युका निश्चय कर लिया तथा दुःख, भय एवं शोकसे कातर हो गये। कृष्ण ही उनके प्राण-सर्वस्व थे। ब्रजके बाल, वृद्ध, वनिताएँ—सभीका अपने प्राणवल्लभ कृष्णके प्रति अगाध वात्सल्य था। सभी कृष्णको देखनेकी उत्कट लालसासे अपने-अपने घरसे निकलकर गिरते-पड़ते हृदकी ओर दौड़ पड़े ॥ १३-१५ ॥

तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः ।

प्रहस्य किञ्चिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥

मायाधीश श्रीबलराम अनुज कृष्णके प्रभाव अर्थात् उनके लीला-ऐश्वर्यको अच्छी तरहसे जानते थे। ब्रजवासियोंकी कातरता देखकर वे मन्द-मन्द मुसकराने लगे (कि कृष्णको मेरे स्वरूपभूत शेषनागके साथ क्रीड़ा करना रुचिकर नहीं लगता, किन्तु प्राकृत, क्षुद्र, अधम सर्पके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं—कैसी उनकी नरलीला है), परन्तु मुखसे कुछ बोले नहीं, मौन ही रहे ॥ १६ ॥

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः।

भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥

ब्रजवासी अपने प्रिय कृष्णको खोजने लगे। मार्गमें जहाँ भी यव, कमल, अङ्गुश, शङ्ख, चक्रादि चिह्नोंसे युक्त चरणोंकी छाप दिखायी देती, उनसे कृष्णके गन्तव्यकी सूचना मिलती जाती, वे उन्हीं चिह्नोंका अनुसरण करते हुए यमुना तटकी ओर जाने लगे ॥ १७ ॥

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनि-

ध्वजोपपन्नानि पदानि विश्रुतेः।

मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे

निरीक्ष्यमाणा ययुरङ्ग सत्त्वराः ॥ १८ ॥

हे राजन्! गन्तव्य मार्गमें गौओंके पद-चिह्नोंके बीच-बीचमें श्रीकृष्णके पद्म, यव, अङ्गुश, वज्र एवं ध्वजाके चिह्न दिखायी पड़ जाते थे, जिन्हें देखकर ब्रजवासीगण शीघ्रातिशीघ्र चलने लगते थे ॥ १८ ॥

अन्तर्हृदे भुजगभोगपरीतमारात्

कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते।

गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च

संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्त्ताः ॥ १९ ॥

उन्होंने दूरसे ही देखा कि कालिय दहमें कालिय सर्पकी देहसे लपेटे हुए कृष्ण अचेतन-से पड़े थे और दहके पास ही हतबुद्धि

ग्वालबाल भी अचेत पड़े थे। गोपोंका क्रन्दन चारों दिशाओंमें शब्दायमान हो रहा था। गायें, बैल, बछड़े आदि पशु भी अतिशय पीड़ित एवं मोहग्रस्त हो रहे थे। [ग्वालबालोंको हतबुद्धि कहा गया है, क्योंकि वे कृष्ण-विषयक किसी भी प्रश्नका (कृष्ण हृदमें क्यों गया, उसे हृदमें क्या कोई ले गया आदिका) उत्तर नहीं दे पा रहे थे।] ॥ १९ ॥

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते
तत्सौहृद स्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः।
ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः
शून्यं प्रियव्यतिहतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥

गोपियोंका चित्त परम सुन्दर, अनन्त गुणगणनिलय, प्रियतम श्रीकृष्णमें निरन्तर अनुरक्त रहता था। गोपियाँ अपने प्रति कृष्णके स्निग्ध प्रेम, मधुर स्मित, प्रणयात्मक अवलोकन एवं एकान्तमें रहस्यपूर्ण वार्त्तालापका क्षण-क्षण स्मरण करती रहती थीं। आज जैसे ही उन्होंने प्राण-प्रियतम कृष्णको इस अवस्थामें देखा, तो उनका हृदय पुत्रशोकसे सन्तप्त हो गया और उसके विरहमें उन्हें तीनों ही लोक सूने दिखायी देने लगे ॥ २० ॥

तां कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां
तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः।
तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्
कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥

अनन्तर वात्सल्य-भावमयी यशोदाकी व्यथामें समान व्यथावाली सभी मातृभावमयी (रोहिणी आदि) गोपियाँ पुत्र-शोकसे आतुर यशोदादेवीके समीप जाकर शोक व्यक्त करने लगी, व्रजमें कृष्ण द्वारा किये गये ऐश्वर्यपरक अति प्रिय वृत्तान्तोंका (पूतना-वध, तृणावर्त्त-वध आदिका) वर्णन कर सान्त्वना देने लगीं। सभीकी अपलक दृष्टि श्रीकृष्णकी ओर ही लगी हुई थी। अधिकांश तो मृतवत् (निर्जीव) पड़ी हुई थीं ॥ २१ ॥

कृष्णप्राणान् निर्विशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं हृदम्।

प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥

कृष्णैकजीवन नन्दबाबा आदि गोप भी श्रीकृष्णके लिए कालिय हृदमें प्रवेश करनेके लिए उद्यत हो गये। बलदेव कृष्णके पराक्रमसे अभिज्ञ थे। अतः उन्होंने किसीको मधुर वचनोंसे (आप इस कृष्णके द्वारा नाना प्रकारकी विपत्तियोंको पार कर जायेंगे—श्रीगर्गाचार्यकी यह वाणी कैसे भूल गये), किसीको अन्तःप्रेरणासे (कृष्णके निर्विघ्नरूपसे दहसे निकल आनेपर उसका पालन-पोषण कौन करेगा) तथा किसीको बलपूर्वक हाथोंसे पकड़कर (वस्तुतः सैकड़ों रूप धारण करके) रोक दिया ॥ २२ ॥

इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य

सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ।

आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्त्तमानः

स्थित्वा मुहूर्त्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥ २३ ॥

कृष्णने जब देखा कि 'गोकुलवासियोंकी मैं ही एकमात्र गति हूँ, मैं ही इनका रक्षक हूँ, मेरे अतिरिक्त इनका कोई दूसरा नहीं है, ये सभी स्त्री एवं पुत्रादिके साथ अति दुःखी होकर क्रन्दन कर रहे हैं', तब वे मर्त्यलीलाका अनुकरण करते हुए क्षणभरके लिए उसी अवस्थामें (सर्प-शरीरके बन्धनमें अचेतन अवस्थामें) रहकर कालियके फँटेसे बाहर निकल आये (क्षणभर रहनेका कारण था कि उन्होंने कालियसे कहा—तूने अपना सारा पराक्रम मुझे दिखाया है, अब इस गोपबालकका किञ्चित् मात्र परिश्रम देखना।) ॥ २३ ॥

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोग-

स्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्ग।

तस्थौ श्वसन् श्वसनरन्ध्रविषाम्बरीष-

स्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥

अनन्तर भगवान् अपने शरीरके भारको क्रमशः बढ़ाने लगे, तो कालियका शरीर पीड़ासे अत्यन्त ढीला पड़ गया और उसने श्रीकृष्णको छोड़ दिया। क्रोधावेशसे अपने फन ऊँचे करके वह लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगा तथा टकटकी बाँधकर श्रीकृष्णको देखते हुए स्थिर खड़ा रहा। उसके नासान्ध्रोंसे विषमयी उत्तप्त साँसें निकल रही थीं, उसकी आँखें भट्टीपर रखे पात्रके (घड़ेके) समान तप्त हो रही थी एवं दृष्टि स्तब्ध थी। उसका मुख अङ्गारके (प्रज्वलित अग्निकणोंके) समान दहक रहा था॥ २४॥

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं
द्वे सूक्वणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम्।
क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो
बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥ २५ ॥

कालिय नाग प्रत्येक मुखमें दो-दो भागोंमें विभक्त अपनी जीभोंको लपलपाता हुआ अपने होठोंके दोनों किनारोंको चाट रहा था और अति उग्र विषानल-युक्त दृष्टिसे आग उगल रहा था। श्रीकृष्ण गरुडके समान क्रीड़ापूर्वक पैतरा बदलते हुए कालियके चारों ओर भ्रमण कर रहे थे। वह साँप भी उन्हें डँसनेकी प्रतीक्षासे पैतरे बदल रहा था। श्रीकृष्णके फुर्तीले वेगके कारण कालियको घातका अवसर ही नहीं मिल रहा था॥ २५॥

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांस-
मानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः।
तन्मूर्द्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त्त ॥ २६ ॥

पुनः-पुनः पैतरा बदलते रहनेसे कालिय शिथिल एवं निस्तेज हो गया। उसका बल क्रमशः क्षीण हो गया। उन्नत फणवाले उस सर्पके फणको बायें हाथसे किञ्चित् झुकाकर भगवान् उसके विशाल मस्तकपर चढ़ गये। श्रीकृष्ण समस्त कारणोंके कारण हैं।

वे विभिन्न नृत्य-गीत-कलादिके आदि प्रवर्तक (गुरु) हैं। कालिय नागके फणोंपर बहुत-सी मणियाँ थीं, जिनके कठोर स्पर्शसे उनके सुकुमार चरणकमलोंकी स्वाभाविक लालिमा और भी बढ़ गयी ॥ २६ ॥

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीय-
गन्धर्वसिद्धमुनिचारणदेववध्वः ।
प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीत
पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥

उस समय श्रीकृष्णको नृत्य करनेके लिए उद्यत देखकर उनके अनुरागी भक्त, गन्धर्व, सिद्ध, मुनि, चारण और अप्सराएँ बड़े आनन्दके साथ मृदङ्ग, ढोल, दुन्दुभि, नगारे आदि बाजे बजाते हुए मनोहर गीत गाने लगे। पुष्प-वर्षण एवं स्तव-पाठ करते हुए तथा अपने आपको समर्पण करते हुए वे उपहारोंके साथ कृष्णके समीप आ गये ॥ २७ ॥

यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्ण-
स्तत्तन्ममर्द्ध खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ।
क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ्-
नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥

हे राजन्! मृतप्राय होकर भी शतशीर्ष (सौ प्रधान मस्तकधारी) कालिय पैतरे बदल ही रहा था। वह सहस्रफणधारी जिस भी मस्तकको नहीं झुकाता था, प्रचण्ड-दण्डधारी, दुष्टदमनकारी श्रीकृष्ण नृत्य-छलसे चरणाघात करके उस मस्तकका मर्दन कर देते। इससे आहत होकर कालिय मुख एवं नासिकासे प्रचुर रक्त उगलने लगा और मूर्च्छितप्राय हो गया ॥ २८ ॥

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्रमतः शिरःसु
यद्यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव
पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥ २९ ॥

कालिय क्रोधपूर्वक लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ रहा था और नेत्रोंसे विष उगल रहा था। वह अपने जिस-जिस भी फनको ऊपर करता, कृष्ण उस-उसे अपने चरणाघातसे रौंद डालते। इसी अवसर पर गन्धर्वादि देवताओंने पुराण-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी पुष्पों द्वारा पूजा की। कृष्ण उस समय शेषशायी नारायणके समान सुशोभित हो रहे थे। भगवान्ने सभीके हितके लिए कालियके गर्वको चूर्ण-विचूर्ण किया था (भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर जो रक्तकी बूँदें पड़ रही थीं, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो लाल पुष्पों द्वारा उनकी पूजा हो रही हो) ॥ २९ ॥

तच्चित्रताण्डवविरुग्नफणासहस्रो

रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भगगात्रः ।

स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं

नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके इस विचित्र ताण्डव-नृत्यके वेगसे उसके सभी एक हजार फण कुचलकर टूट गये। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढीले पड़ गये। वह अपने सभी मुखोंसे प्रचुर मात्रामें रक्त उगलने लगा। उसने मन-ही-मन चराचरके आदि-गुरु पुराण-पुरुष भगवान् नारायणका स्मरण किया (मेरे मस्तकपर आपने श्रीचरण अर्पण किये हैं—इस प्रकार गुरुके रूपमें मुझपर कृपा की है) और उनके शरणागत हो गया ॥ ३० ॥

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं

पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्नफणातपत्रम् ।

दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य

आर्त्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥ ३१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपने उदरमें धारण करते हैं। इसलिए उनके अत्यधिक भारसे कालिय अवसादको प्राप्त हो रहा था। कृष्णकी एड़ियोंके प्रहारसे उसके छत्रके समान फण क्षत-विक्षत हो गये थे। यह देखकर कालियकी पत्नियाँ अत्यधिक

दुःखी हो गयीं और अति विकल भावसे पुराण-पुरुष भगवान्की शरणमें आयीं। भयके कारण उनके वसन, आभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे और केश-बन्धन ढीले पड़ गये थे॥ ३१॥

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृताभार्ताः
कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः।
साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तु-
मौक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः॥ ३२॥

उस समय उन साध्वी नागपत्नियोंका चित्त बड़ा विचलित हो रहा था। उन्होंने अपने बालकोंको आगे किया और हाथ जोड़ते हुए श्रीकृष्णके निकट उपस्थित हुईं। भगवान् समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी एवं शरणागत-वत्सल हैं—यह जानकर अपने पापी पतिकी मुक्तिकी कामनासे वे भगवान्के शरणागत हो गयीं और उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किया॥ ३२॥

नागपत्न्य ऊचुः—

न्यायो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिं-
स्तवावतारः खलनिग्रहाय।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टि-
र्धत्से दमं फलमेवानुशंसन्॥ ३३॥

नागपत्नियोंने कहा—हे देव! दुष्टोंके दमनके लिए ही आप इस पृथ्वीपर अवतरित हुए हैं। इसलिए हमारे इस पापाचारी पतिके लिए यह दण्ड सर्वथा उचित ही है। आप तो शत्रु एवं पुत्र—दोनोंके प्रति समदर्शी हैं। आप तो पापोंका प्रायश्चित्त कराने और भविष्यमें परम मङ्गलका विचार करके ही दण्ड विधान करते हैं॥ ३३॥

अनुग्रहोऽयं भवताः कृतो हि नो
दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः।
यद्वन्द्वशूकत्वममुष्य देहिनः
क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव सम्मतः॥ ३४॥

यह निश्चित है कि पापियोंके पापोंके नाशके लिए ही आपकी दण्ड व्यवस्था है, दण्डरूपमें यह आपका हमपर अनुग्रह अर्थात् कृपा-प्रसाद है। विशेषतः हमारा यह पति जो पापके कारण सर्पयोनिको प्राप्त हुआ है, उसके पापोंका नाश करनेके लिए आपका यह क्रोध हमपर अनुग्रह ही है—हम तो ऐसा समझती हैं॥ ३४॥

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं
निरस्तमानेन च मानदेन।
धर्मोऽथवा सर्वजनानुकम्पया
यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः॥ ३५॥

आप समस्त जीवोंके जीवन-स्वरूप हैं। (अब इस कालियको चरणोंके प्रहारसे रक्ताक्त मत कीजिये) जो सम्मानादि प्रदान करके दूसरोंको सन्तुष्ट करते हैं, उनसे आप प्रसन्न होते हैं। हमारे इस स्वामीने अवश्य ही अपने पूर्व जन्ममें विनीत (मानरहित) रहकर दूसरोंका सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की होगी अथवा इसने समस्त जीवोंके कल्याणकी कामनासे किसी धर्मका आचरण किया होगा, जिसके कारण आप इसके प्रति सन्तुष्ट हुए हैं॥ ३५॥

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत् तपो
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता॥ ३६॥

हे देव ! जिस पद-रेणुकी प्राप्तिकी आशासे आपकी अर्द्धाङ्गिनी परम सुन्दरी लक्ष्मीजीने समस्त विषय-भोगका परित्याग करके बहुत दिनों तक व्रत-नियमोंका धारण करते हुए तपस्या की थी, यह कालिय आपकी उसी चरण-रेणुका अधिकारी किस प्रकार बन गया? हमारी समझमें नहीं आ रहा कि उसने कौन-सा पुण्य किया है—जिसके प्रभावसे उसे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है

(लक्ष्मीजी आपकी नारायण-मूर्तिकी तो सेवा करती हैं, किन्तु गोपाल-विग्रहके चरण-स्पर्शका अधिकार उन्हें नहीं है) ॥ ३६ ॥

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

जिन्होंने आपकी चरण-रजकी प्रप्ति कर ली है, वे स्वर्गलोकका राज्य, पृथ्वीका चक्रवर्ती साम्राज्य, ब्रह्मपद, रसातलका आधिपत्य, असीम वर्चस्व अणिमादि योगसिद्धि अथवा मोक्ष (अपुनर्भव)—इनमेंसे किसीकी भी कामना नहीं करते ॥ ३७ ॥

तदेष नाथाप दुरापमन्यै-
स्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो
यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥

हे प्रभो! जिस पद-रजकी कामनामात्रसे ही संसारचक्रमें भ्रमणशील भौतिक इच्छाओंवाले जीव वाञ्छित सम्पदकी तो बात ही क्या, मोक्ष जैसे उत्कृष्ट फलकी भी प्राप्ति कर लेते हैं, वह परम पवित्र पद-रज इस क्रोधी और तमोगुणी योनिमें उत्पन्न सर्पराज कालियको किस प्रकार प्राप्त हो गयी? यह तो ब्रह्मादिके लिए भी दुर्लभ है ॥ ३८ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
भूतवासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥

हे स्वामी! आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यादि समस्त गुणोंके आधार हैं। आप सभी जीवोंके अन्तर्यामी, सर्वव्यापक एवं आकाशादि समस्त पदार्थों एवं सभी जीवोंके आश्रय-स्वरूप हैं। आप आकाशादि पञ्च महाभूतोंकी सृष्टिसे पहलेसे ही विद्यमान हैं। आप सर्वकारण-स्वरूप होकर भी समस्त कारणोंसे अतीत

तुरीय वस्तु अर्थात् स्वयं परमात्मा हैं। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ३९ ॥

ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।

अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥

आप प्राकृत गुणोंसे रहित निर्गुण हैं, आपमें प्राकृत कोई विकार न होनेके कारण आप निर्विकार हैं। आप भौतिक प्रकृतिके आदि प्रवर्तक एवं चिन्मात्र ब्रह्म-स्वरूप हैं। आप अनन्त महिमा एवं अचिन्त्यशक्तिसे युक्त हैं। आप परमात्मा-स्वरूप और ज्ञान-विज्ञानकी निधि हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४० ॥

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।

विश्वाय तदुपद्रष्टे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥

अनन्त शक्तित्वके कारण आप काल-स्वरूप, सृष्टि आदिके कारण एवं काल-शक्तिके आश्रय हैं। आप ही कालके क्षण, कल्प आदि समस्त अङ्गोंके साक्षी हैं। आप विश्वरूप होनेपर भी उससे अलग इस दृश्य विश्वके द्रष्टा हैं। द्रष्टा ही नहीं, अपितु कर्त्ता भी हैं। हे प्रभो! आप ही समस्त कारणोंके कारण हैं ॥ ४१ ॥

भूतमात्रेन्द्रियप्राण मनोबुद्ध्याशयात्मने ।

त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥

नमोनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।

नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥

हे भगवन्! पञ्च महाभूत, पञ्च तन्मात्राएँ, दस इन्द्रियाँ, दस अथवा पञ्च प्राण, मन, बुद्धि और अहङ्कार—इन सब स्थूल एवं जड़-वस्तुओंको चैतन्य प्रदान करनेवाले अर्थात् उनका प्रवर्तन करनेवाले भी आप ही हैं। त्रिगुणात्मक अभिमानके द्वारा आप स्वांशभूत चेतन जीवोंके लिए अपने स्वरूपकी अनुभूतिको

आच्छादित करके रखते हैं। आप देश, काल एवं वस्तुओंकी सीमासे अतीत, अनन्त एवं अखण्ड हैं। आप दृश्य वस्तुओंमेंसे अन्यतम न होनेके कारण 'दुर्ज्ञेय' हैं और विकार-रहित होनेके कारण कूटस्थ, एकरस और सर्वज्ञ हैं। आप अपनी बहिरङ्गा माया शक्तिके द्वारा 'अस्ति'—'ईश्वर' हैं और 'नास्ति'—ईश्वर नहीं है—आदि अनेक प्रकारके सत् एवं असत् सिद्धान्तोंके प्रकाशक हैं, आप नाना मतभेदोंके अनुसार उन मतवादियोंको उन-उन रूपोंमें दर्शन देते हैं। शब्दोंके अर्थके रूपमें तो आप हैं ही और शब्दोंके रूपमें भी आप ही हैं। आप शब्द एवं अर्थका संयोग करानेवाली विविध प्रकारकी अभिधा, लक्षणा एवं व्यञ्जनाके मूलकारणरूपमें भी प्रतीयमान होते रहते हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४२-४३ ॥

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये।

प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४ ॥

आप चक्षु आदि समस्त इन्द्रियोंके इन्द्रिय-स्वरूप एवं स्वतःसिद्ध ज्ञान-स्वरूप हैं। आप ही आधिकारिक प्रमाणके लिए श्रीमद्भागवत-स्वरूप एवं भागवत-प्रकाशक वेदव्यास-स्वरूप हैं। आपसे सम्पूर्ण शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है। आप ही शास्त्रयोनि अर्थात् समस्त शास्त्रोंके मूल उद्गम स्थान हैं। आप ही भौतिक जगत्में प्रेरित करनेवाले और उससे विराग उत्पन्न करनेवाले प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमूलक निगम शास्त्र-स्वरूप हैं। शास्त्रोंके मूल वेद भी आप हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥

आप शुद्धसत्त्वमय वसुदेवके पुत्र वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इस प्रकार चतुर्व्यूहके रूपमें भक्तों और यादवोंके (पर्जन्य आदिके) स्वामी सात्वतपति हैं। हे श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४५ ॥

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च।

गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

आप बुद्धि आदिके अधिष्ठातृ देवता-स्वरूप, सङ्कर्षण आदि चार मूर्तियोंमें चित्त आदि और उनकी वृत्तियोंके प्रकाशक हैं। आप उपासकोंकी प्रतीतिके अनुसार अनेक प्रकारके फल प्रदान करनेके लिए स्व-स्वरूपको आच्छादित करके नाना रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। चित्तादिकी चेतना, अध्यवसाय आदि वृत्तियोंके द्वारा ही आपके स्वरूपका कुछ-कुछ अनुमान होता है। आप उन गुणोंके साक्षी, प्रत्यक्षादि ज्ञानके अगोचर एवं स्वयंप्रकाश हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४६ ॥

अव्याकृत विहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये।

हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥

आपकी महिमा (लीला-माधुरी) तर्कसे परे है। जगत्के समस्त कार्योंकी उत्पत्ति एवं प्रकाशके हेतुके रूपमें आपका केवल अनुमान मात्र किया जाता है (साक्षात्कार नहीं)। हे हृषीकेश! आप भक्ति-तत्त्वसे रहित मुनियोंके लिए मौन-स्वरूप एवं आत्माराम हैं। आपको नमस्कार है (ऐसे मुनियोंको आप न तो सुख प्रदान करते हैं और न ही उनका दुःख दूर करते हैं) ॥ ४७ ॥

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः।

अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्टेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥

आप स्थूल-सूक्ष्म सभी प्राणियोंकी गतियोंको जाननेवाले (अतः सबसे अनासक्त रहनेवाले) तथा सबके साक्षी हैं। आप नामरूपात्मक विश्व-प्रपञ्चके निषेधकी अवधि 'अविश्व' अर्थात् विश्वके तत्त्वोंसे न बने होनेपर भी सर्वाधिष्ठाता (मूलाधार) होनेके कारण 'विश्वरूप' हैं। पण्डित 'यह नहीं, यह नहीं' कहकर 'अतत्' को निरस्त करते हुए अवशेषमें 'तत्-स्वरूप' में आपको प्राप्त करते हैं। आप विश्वके 'अध्यास' (अवस्तुमें वस्तुका आरोप यथा रज्जुमें सर्पका आरोप) तथा 'अपवाद' (अनित्य

मानकर कार्यका मिथ्यात्व एवं कारणका नित्यत्व) के साक्षी-स्वरूप हैं। अज्ञानके द्वारा इस विश्वके सत्यत्वकी भ्रान्ति एवं स्वरूप-ज्ञानके द्वारा अज्ञानकी आत्यन्तिक निवृत्तिके आप ही कारण-स्वरूप हैं। आपको हमारा नमस्कार है। पुनः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह परिदृश्यमान विश्व ही ब्रह्म है—इस प्रकार विवर्तवादियोंके द्वारा अतत्-स्वरूप विश्वको तत्स्वरूप ब्रह्म मान लेना (अर्थात् जो वस्तु जैसी नहीं है, उसीको वही मानकर सिद्धान्त बना लेना) विवर्त है। भगवान् इसी अज्ञानकी निवृत्तिके कारण-स्वरूप हैं ॥ ४८ ॥

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् विभो

गुणैरनीहोऽकृत कालशक्तिधृक्।

तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः

समीक्षयामोघविहार

ईहसे ॥ ४९ ॥

प्रभो! आप वस्तुतः निरीह (सृष्टि, स्थिति और संहार आदिके अकर्तृत्वकी अपेक्षासे रहित) एवं निष्क्रिय हैं। गुणोंका कर्तृत्व आपमें न होनेके कारण आप कोई भी कर्म नहीं करते, तथापि अनादिसिद्धा कालशक्तिको स्वीकार करके प्रधान (प्रकृति) के प्रति ईक्षणकर गुणोंके द्वारा पूर्व कल्पान्तमें लयको प्राप्त विश्वगत जीवोंके शान्त, घोर, मूढ़ आदि पूर्व संस्काररूपसे आच्छादित स्वभावोंको अपनी दृष्टिसे जाग्रत करके इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं संहारादि करते हैं। प्रकृति-ईक्षणरूप आपकी लीला अव्यर्थ एवं अमोघ है ॥ ४९ ॥

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां

शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः।

शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनावितुं सतां

स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥ ५० ॥

त्रिलोकीमें वर्तमान ये शान्त, अशान्त एवं मूढ़ आदि सभी (सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक) योनियाँ आपके ही शरीरके

अंशके रूपमें विद्यमान हैं। इनमें आपको शान्त स्वभाववाले मनुष्य ही प्रिय होते हैं। (यह घोर स्वभाव कालिय अपनी स्वाभाविक क्रूरताका त्याग कैसे कर सकता है? अभी तो यह आपके शरणागत प्रतीत हो रहा है) इस समय आप धर्मकी रक्षा एवं विस्तारके लिए चेष्टारहित तथा सज्जनोंके पालनके लिए अवतरित होकर अपनी लीलाएँ कर रहे हैं ॥ ५० ॥

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः।

क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५१ ॥

हे शान्तात्मन्! आप हमारे पालक हैं और यह आपके पुत्रके समान आपका पाल्य है। इस सर्पने जो अपराध किया है, उसे एक बार सहन कर लीजिये। यह मूढ़ (तमोस्वभावके कारण ज्ञानहीन) आपके प्रभावको जानता नहीं है, इसके अपराधको क्षमा कीजिये ॥ ५१ ॥

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः।

स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५२ ॥

हे भगवन्! अनुग्रह कीजिये। आपके भारसे निपीड़ित होकर यह सर्प मरने ही वाला है। साधु पुरुष सदैव अबलाओंपर अनुकम्पा करते हैं। अतः आप हमें हमारे प्राण-स्वरूप पतिको प्राणदान दे दीजिये (यह अब परम वैष्णव हो जानेके कारण हमारे लिए प्राणोंके समान प्रिय हो गया है) ॥ ५२ ॥

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया।

यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥

आपके आदेशसे जीव श्रद्धापूर्वक जिस कर्मका अनुष्ठानकर सारे भयोंसे मुक्त हो जाता है, आपकी दासी-स्वरूप हमें वैसा कर्म करनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ॥ ५३ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः।

मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—प्रिय परीक्षित्! भगवान्ने अपने पाद-प्रहारोंसे कालिय नागके फणोंको चूर्ण-विचूर्ण कर डाला था, वह मूर्च्छित-सा हो रहा था। उसकी पत्नियोंने जब भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब श्रीकृष्णने दया करके उसे छोड़ दिया ॥ ५४ ॥

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम्।

कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥

कालिय अति दुर्बलताका अनुभव कर रहा था। अब क्रमशः उसकी इन्द्रियों एवं प्राणोंमें कुछ-कुछ शक्तिका सञ्चार होने लगा, जिससे उसमें कुछ चेतना आ गयी। उसने बड़े कष्टसे निःश्वास छोड़ते हुए हाथ जोड़े और श्रीकृष्णसे अति दीनतापूर्वक कहने लगा— ॥ ५५ ॥

कालिय उवाच—

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः।

स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ ५६ ॥

हे नाथ! हम सर्प जाति हैं। हम जन्मसे ही दुष्ट, तमोप्रकृति एवं क्रोधपरायण होते हैं। हमारे जैसे प्राणियोंका आग्रह असत्-वस्तुओंमें होता है, अतः हमारे लिए उसे छोड़ना अत्यन्त कठिन होता है ॥ ५६ ॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम्।

नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥

हे विधाता! आपने ही इस जगत्में गुणजात विभिन्न स्वभाव (शान्त, उग्र आदि), वीर्य (देहशक्ति, इन्द्रियशक्ति), बल, योनि (मातृशक्ति, पितृशक्ति), आशय (वासना) एवं आकृतियोंकी सृष्टि की है ॥ ५७ ॥

वयञ्च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः।

कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥

हे भगवन्! आपकी इस विचित्र सृष्टिमें हमारी जो सर्पजाति है, वह जन्मसे ही अतिशय क्रोधी स्वभावकी होती है। हे सर्वमय! हमारा चित्त तो वैसे ही मायासे मोहित रहता है, फिर हम अपने प्रयत्नसे किस प्रकार इस दुस्त्यज मायाका परित्याग कर सकते हैं? ॥५८॥

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः।

अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥५९॥

माया-मोह छूटनेके विषयमें भी आप ही एकमात्र कारण हैं, आपकी कृपाके बिना हम कभी भी मायाको छोड़नेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतः अब आप हमारे प्रति अनुग्रह या निग्रह जो भी ठीक समझें, वैसा कीजिये ॥५९॥

श्रीशुक उवाच—

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः।

नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम्।

स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी ॥६०॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! नर-लीलाके द्वारा मनुष्यरूपमें प्रतीयमान भगवान् श्रीकृष्णने कालिय नागकी बात सुनकर कहा—हे सर्प! अब तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिये, तुम शीघ्र ही अपने जाति-भाई, स्त्री, पुत्रोंके साथ समुद्रमें चले जाओ। अबसे गौएँ एवं मनुष्य इस यमुना-जलका उपभोग सदा-सदाके लिए करें। नदीके किनारे तृण, पत्र, फल आदि उनका भोजन हैं ॥६०॥

य एतत् संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम्।

कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥६१॥

जो मनुष्य प्रातःकाल एवं सायंकाल तुम्हारे प्रति दिये गये मेरे इस आदेश-वचनका स्मरण एवं कीर्तन करेगा, वह सर्प-जातिसे कभी भी भयभीत नहीं होगा ॥६१॥

योऽस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवार्दीस्तर्पयेज्जलैः।

उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥

यह कालिय दह मेरा विहार-स्थान हो गया है। जो इस हृदमें स्नान करके इसके जलसे देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करेगा और उपवास रखकर मेरा स्मरण एवं पूजन करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायेगा (तुम्हारे यहाँ रहनेसे यह सब सम्भव न हो सकेगा) ॥ ६२ ॥

द्वीपं रमणकं हित्वा हृदमेतमुपाश्रितः।

यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यन्मत्पादलाञ्छितम् ॥ ६३ ॥

जिन गरुडके भयसे तुमने रमणक द्वीपको छोड़ करके इस दहमें आश्रय लिया था, वे गरुड तुम्हारे मस्तकपर अङ्कित मेरे पद-चिह्नोंको देखकर न तो तुमसे शत्रुता रखेंगे और न ही तुम्हारा भक्षण करेंगे ॥ ६३ ॥

श्रीऋषिरुवाच—

मुक्तो भगवता राजन् कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।

तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार बड़ी अद्भुत लीलाएँ किया करते हैं। (इस लीलामें उन्होंने हिंस्य और हिंसक अर्थात् व्रजस्थित जीवों एवं हिंसक कालियका कल्याण किया है। नाग-पत्नियोंके अनुरोधसे कालियके अपराधको दूर करके उसे वैष्णव बनाया है।) भगवान्की ऐसी आज्ञा पाकर उनके द्वारा मुक्त कालिय नाग एवं उसकी पत्नियोंने बड़े आदरपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ ६४ ॥

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः पराङ्घ्रैरपि भूषणैः।

दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥ ६५ ॥

पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम्।

ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्यतम् ॥ ६६ ॥

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ।
 तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ।
 अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे कालियनिर्याणं नाम
 षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

उन्होंने दिव्य वस्त्र, पुष्प-माला, मणि, उत्तम आभूषण, दिव्य गन्ध, चन्दन एवं उत्तम नीलकमलोंकी माला द्वारा गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्णका अर्चन करके उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद बड़ी प्रीति और आनन्दसे उनकी परिक्रमा की, वन्दना की एवं आदेश प्राप्त किया। इसके बाद वह अपनी पत्नियों, मित्रों तथा पुत्रोंको साथ लेकर समुद्रके मध्य स्थित रमणक द्वीपकी ओर चला गया। लीला-मनुष्य-विग्रह भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रहसे यमुनाजीका जल विषहीन ही नहीं हुआ, बल्कि अमृतके समान मधुर एवं सुस्वादु हो गया।

इस प्रसङ्गमें जानने योग्य तथ्य यह है कि 'मणि' शब्दसे यहाँ कौस्तुभ मणिको जानना होगा। नरलीलामें ऐश्वर्य-भावका गोपन करनेके लिए भगवान्की इच्छासे यह मणि कालियके कोषागारमें थी। नाग-पत्नियाँ यह नहीं जानती थीं, उन्होंने इसे रत्नके रूपमें श्रीकृष्णको प्रदान कर दिया ॥ ६५-६७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सोलहवें अध्यायका
 श्लोकानुवाद समाप्त ।

सप्तदशोऽध्यायः

रमणक द्वीपको छोड़कर कालियके यमुना-दहमें आनेकी
कथा तथा भगवान्‌के द्वारा ब्रजवासियोंकी
दावानलसे रक्षा

श्रीराजोवाच—

नागालयं रमणकं कथं तत्याज कालियः।

कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम्॥ १ ॥

श्रीपरीक्षित् महाराजने कहा—हे मुनिवर! कालिय नागने किस
कारणसे सर्पोंके निवासस्थान रमणक द्वीपका परित्याग किया था
और उसने अकेले ही गरुडका कौन-सा अप्रिय कार्य (अपराध)
कर दिया था, यह बतलाइये॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः।

वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः॥ २ ॥

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि।

गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने॥ ३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे महाबाहो! पूर्वकालमें रमणक
द्वीपमें गरुड द्वारा भक्षण किये जानेसे बचनेके लिए सर्पोंने उनसे
एक समझौता कर लिया था। तदनुसार प्रत्येक मासमें अश्वत्थ
(पीपल) आदि निर्दिष्ट वृक्षोंके नीचे गरुडको एक सर्पकी भेंट दी
जाती थी। इस नियमके अनुसार नाग आत्म-रक्षणके लिए
अपने-अपने अंशको प्रत्येक पूर्णिमा अथवा अमावस्याको महात्मा
गरुडको प्रदान कर दिया करते थे॥ २-३ ॥

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः।

कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम्॥ ४ ॥

उन नागोंमेंसे कद्रुका पुत्र कालिय अपने विष एवं पराक्रमके बलसे बड़ा गर्वीला (मतवाला) हो रहा था। वह गरुडका तिरस्कार करके स्वयं बलि देना तो दूर रहे—दूसरे सर्प जो गरुडको बलि (भक्ष्योपहार) देते थे, उसे भी खा लिया करता था ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन् भगवान् भगवत्प्रियः ।

विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

हे राजन्! भगवान्‌के प्रिय पार्षद महाशक्तिशाली गरुडने जब यह सुना, तो वे बड़े क्रोधित हो उठे और कालिय नागको मार डालनेकी इच्छासे अति वेगपूर्वक दौड़ पड़े ॥ ५ ॥

तमापतन्तं तरसा विषायुधः

प्रत्यभ्ययादुत्थितनैकमस्तकः ।

दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्वदायुधः

करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥

गरुडको आक्रमण करनेके लिए वेगपूर्वक आते देखकर महाविषधर कालियने बड़ी तीव्रतासे अपने सहस्र फण ऊपर कर लिये तथा कराल जिह्वासे गहरी-गहरी निःश्वास छोड़ने लगा। उसके उग्र लोचन और भी विकराल हो गये। वह गरुडके पास पहुँचा और क्रूर दृष्टिसे उन्हें देखते हुए अपने विषायुध अर्थात् दन्तरूप अस्त्रसे उन्हें डँसने लगा ॥ ६ ॥

तं ताक्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्

प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ।

पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा

जघान कद्रुसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥

महाविक्रमशाली कश्यपनन्दन गरुड भगवान्‌ मधुसूदनके वाहन हैं। (उनके पृष्ठदेशपर भगवान्‌का आसन अवस्थित है।) क्रोधाविष्ट होकर उन्होंने कद्रुपुत्र कालियके वारको निरस्त कर दिया और

स्वर्णकान्तिमय अपने बायें पंखके द्वारा उसपर अति पराक्रमयुक्त प्रहार किया ॥ ७ ॥

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः।

हृदं विवेश कालिन्ध्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥

कालिय गरुडके पंखके प्रहारसे आहत होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा और वहाँसे भागकर यमुनाके इस कुण्डमें चला आया। यमुनाका यह हृद गरुडके लिए अगम्य एवं दुर्प्रवेश्य था। (जल अगाध था, अतः दूसरे प्राणी भी प्रवेश नहीं कर सकते थे।) ॥ ८ ॥

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम्।

निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥

एक बार गरुड क्षुधासे आतुर हो रहे थे। उन्होंने इसी यमुना-हृदमें सौभरि मुनिके द्वारा मना किये जानेपर भी अपने अभीष्ट प्रधान मत्स्योंमेंसे किसी एकको बलपूर्वक पकड़ लिया और भक्षण कर लिया ॥ ९ ॥

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते।

कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥

अपने स्वामी मत्स्यराजका गरुड द्वारा अपहरण एवं भक्षण कर लिये जानेपर अन्यान्य दुर्बल मत्स्य अतिशय दुःखी एवं विकल हो गये। यह देखकर सौभरि मुनिको बड़ी दया आयी और उन्होंने उस हृदवासी जलचरोंके मङ्गलके आशयसे गरुडको शाप देते हुए कहा— ॥ १० ॥

उत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति।

सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥

सौभरि मुनिने कहा—गरुड यदि किसी समय पुनः इस हृदमें प्रवेश करके मछलियोंका भक्षण करेंगे, तो उसी समय उन्हें अपने प्राणोंका त्याग करना पड़ेगा—मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ।

(भगवान्के प्रिय भक्त गरुडको शाप देनेसे सौभरि मुनिका अपराध हुआ, जिसके फलस्वरूप मत्स्य-सङ्गसे उनकी दुर्वासना जाग उठी और नारकीय विषयानन्दमें डूबकर चिरकालीन तपस्यासे प्राप्त ब्रह्मानन्दको लुप्त कर बैठे। अपराधका भोगकाल समाप्त होनेपर ऋषिको पुनः वृन्दावन-वास मिला) ॥ ११ ॥

तत् कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः।

अवात्सीदगरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥

परीक्षित्! मुनिके इस शापके विषयमें केवल कालिय ही जानता था, अन्य कोई सर्प नहीं। इसलिए वह गरुडके भयसे इस स्थानपर आकर रहने लगा था। अब भगवान्ने उसे निर्भयकर वहाँसे निकाल दिया ॥ १२ ॥

कृष्णं हृदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रगन्धवाससम्।

महामणिगणाकीर्णं जाम्बुनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥

उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः।

प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याभिरिभरे ॥ १४ ॥

प्रिय परीक्षित्! इधर भगवान् श्रीकृष्ण दिव्यमाला, गन्ध, वस्त्र, महामूल्यवान् मणियों एवं स्वर्णिम आभूषणोंसे विभूषित होकर उस हृदसे बाहर निकल आये। गोप उन्हें देखकर ऐसे उठ खड़े हुए, मानो निर्जीव इन्द्रियोंमें प्राणोंका सञ्चार हो गया हो। अत्यधिक हर्षसे ओतप्रोत होकर वे प्रेममें सराबोर हो गये और परम आनन्दित चित्तसे श्रीकृष्णका आलिङ्गन करने लगे। (ज्ञात होता है कि कृष्ण कालियके किसी सेवकके ऊपर चढ़कर आये, क्योंकि उनके वस्त्र, भूषण आदि भीगे नहीं थे।) ॥ १३-१४ ॥

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव।

कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसन् शुष्का नगा अपि ॥ १५ ॥

हे कुरुवंशी! माता यशोदा, रोहिणी, नन्द, गोपियाँ, गोप और यहाँ तक कि सूखे वृक्ष भी श्रीकृष्णको प्राप्त करके पुनर्जीवित

हो उठे। सबके मनोरथ सफल हुए (यमुना तटके दूर स्थित वृक्ष कृष्णको न देखनेके कारण शुष्क हो गये थे, परन्तु कृष्णको देखनेके बाद अङ्कुर, पल्लव एवं पुष्पोंसे युक्त होकर पुनः हरे-भरे हो गये थे) ॥ १५ ॥

रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित्।

प्रेम्णातमङ्गमारोप्य पुनः पुनरुदैक्षत।

गावोवृषावत्सतयौ लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥

बलदेव तो अच्युत श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे। वे अपने भैया श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर हँसने लगे। उन्होंने अनुरागवश श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बिठा लिया और बार-बार उनके मुखमण्डलको देखने लगे (कि कहीं कृष्ण क्षत-विक्षत तो नहीं हैं)। गाय, बैल, बछड़े-बछिया सभी परमानन्दित हो रहे थे ॥ १६ ॥

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः।

ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥

गोपोंके कुलगुरु और ब्राह्मण अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आये और नन्दमहाराजको बधाई देने लगे—तुम्हारे पुत्रको कालियने ग्रस लिया था, परन्तु दैव-कृपासे अब वह मुक्त हो गया है—यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ १७ ॥

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे।

नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदादिशत् ॥ १८ ॥

कृष्णकी नागसे मुक्तिके उपलक्ष्यमें आप ब्राह्मणोंको धनादि दान करें। हे राजन्! ब्राह्मणोंकी इन बातोंको सुनकर नन्दराज परम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने ब्राह्मणोंको स्वर्ण, धेनु एवं भूमि भेंट-स्वरूप प्रदान किये ॥ १८ ॥

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती।

परिष्वज्याङ्गमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९ ॥

महाभाग्यवती यशोदादेवीने अपने नष्टप्राय (मृत्युके मुखसे लौट आये) पुत्रको पुनः प्राप्त करके उसे अपने हृदयसे लगा लिया और गोदीमें बिठाकर बार-बार आलिङ्गन करने लगीं। अत्यन्त आनन्दके कारण उन साध्वीकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग रही थी॥ १९॥

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः।

ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्ध्या उपकूलतः॥ २०॥

हे नृपश्रेष्ठ! ब्रजवासी और गौएँ सब क्लान्त थे, साथ ही भूख-प्याससे कातर हो रहे थे। अतः ब्रजमें न जाकर वहीं कालिन्दीसे कुछ दूर वनमें जाकर उन्होंने वह रात बितायी (सबने यह भी सोचा कि एकत्र रहनेसे कृष्ण-दर्शनमें व्यवधान नहीं आएगा और कालिय यदि आया भी, तो उसे लाठियोंसे मार डालेंगे)॥ २०॥

तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो ब्रजम्।

सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदधुमुपचक्रमे॥ २१॥

हे राजेन्द्र! उस समय ग्रीष्मकाल था। प्रचण्ड गर्मीके भीषण प्रभावसे वन सूख गये थे। मध्य रात्रिमें उस शुष्क वनमें दावाग्नि भड़क उठी। उसने सोये हुए ब्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया और उन्हें जलाने लगी॥ २१॥

तत उत्थाय संभ्रान्ता दह्यमाना ब्रजौकसः।

कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम्॥ २२॥

उस विशाल अग्निसे सन्तप्त होनेपर ब्रजवासी उठ खड़े हुए और माया-मानव-विग्रह (लीला-मनुष्य) भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आ गये (कृष्ण 'माया' नामक अपनी स्वरूपशक्तिसे सदा युक्त रहते हैं, इनमें नारायणका आवेश रहता है, ये हमें बचायेंगे ही। गर्गाचार्यजीने भी यही कहा है)॥ २२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम।

एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः॥ २३ ॥

ब्रजवासी कहने लगे—हे महाभाग श्रीकृष्ण! हे प्यारे श्यामसुन्दर! देखो! हे अनन्त-विक्रम बलराम! देखो! यह भयङ्कर दावानल तुम्हारे स्वजनों और सम्बन्धियोंको ग्रस लेना चाहता है॥ २३ ॥

सुदुस्तरात्रः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो।

न शक्नुमस्त्वच्चरणं सन्त्यक्तुमकुतोभयम्॥ २४ ॥

हे प्रभो! तुमलोग सर्व-समर्थ हो। इस दुरतिक्रम कालाग्निसे अपने सुहृदोंकी रक्षा करो। हम तुम्हारे अभय-चरणारविन्दका त्याग करनेमें असमर्थ हैं अर्थात् मृत्यु हो जानेपर हमें तुम्हारे चरणोंसे अलग होना पड़ेगा, जो हमारे लिए असह्य है। अतः इस भयङ्कर अग्निसे हमें बचाओ॥ २४ ॥

इत्थं स्वजनवैकल्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः।

तमग्निमपिबत् तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक्॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे दावाग्निमोचनं

नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त शक्तियोंको धारण करनेवाले हैं। सर्वत्र स्वतः-प्रकाशमान-विग्रह भगवान् जगदीश्वरने (सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामीने) आत्मीय जनोंके इस प्रकारके कातर भावको देखकर उस भयङ्कर दावाग्निका पान कर लिया॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सत्रहवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

अष्टादशोध्यायः

प्रलम्बासुरका उद्धार

श्रीशुक उवाच—

अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः।

अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! इसके बाद आनन्दित चित्तसे बन्धु-बान्धव, सगे-सम्बन्धी श्रीकृष्णका यशोगान करने लगे। उन सबसे परिवेष्टित होकर और अपनी कीर्तिका गान सुनते हुए श्रीकृष्णने गोकुल (गायोंके झुण्ड) से परिशोभित गोष्ठ (व्रज) में प्रवेश किया ॥ १ ॥

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्यमायया।

ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयान् शरीरिणाम् ॥ २ ॥

इस प्रकार बलराम एवं श्रीकृष्ण योगमायाका आश्रय लेकर ग्वालबाल-सा वेष बनाकर गो-पालनके छलसे लोक-वञ्चना करते हुए व्रजमें आनन्दपूर्वक विहार (गेंद, कुश्ती आदि खेल तथा गिरि-कन्दराओं और कुञ्जोंमें व्रजाङ्गनाओंके साथ क्रीड़ा-विलास) कर रहे थे कि तभी ग्रीष्म ऋतुका आगमन हुआ, जो प्राणियोंको किञ्चित् भी प्रिय नहीं होती ॥ २ ॥

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः।

यत्रास्ते भगवान् साक्षाद् रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥

वृन्दावनमें श्रीकृष्ण बड़े भाई बलदेवके साथ साक्षात् रूपसे वास कर रहे थे। अतः वृन्दावनके स्वाभाविक दिव्य गुणोंके प्रभावसे ग्रीष्मकाल भी वसन्तकालके समान सुहावना लगने लगा ॥ ३ ॥

यत्र निर्झरनिर्हाद निवृत्तस्वनझिल्लिकम्।

शश्वत्तच्छीकरज्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥

उस समय वहाँ झरनोंकी मधुर 'झर-झर' ध्वनिसे कठोरभाषी झींगुरोंकी तीखी झङ्कार भी आच्छन्न हो गयी थी (अर्थात् दब गयी थी)। उन झरनोंसे शीतल जलकण सदा-सर्वदा फुहारोंके रूपमें उड़ा करते थे, जिनके संस्पर्शसे तरुमण्डल स्निग्ध हो रहे थे। इन हरे-भरे तरुओंके कारण चहुँ दिशि व्याप्त हरियाली वृन्दावन-भूमिको मण्डित कर रही थी॥ ४ ॥

सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना
कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ।
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो
निदाघवहन्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥

जिधर देखो, वृन्दावनकी भूमि अतिशय हरित वर्णकी घाससे हरी-भरी हो रही थी। सरोवरोंकी लहरों, नदियोंकी तरङ्गों एवं झरनोंकी फुहारोंका स्पर्श प्राप्त करती हुई तथा लाल-पीले-नीले, सद्यः विकसित और देरके खिले हुए कल्हार, पद्म, उत्पल आदि कमल एवं कमलिनियोंके पराग-कणोंको वहन करती हुई वायु वृन्दावनको सुगन्धित एवं सुशीतल कर रही थी। अतः वृन्दावन-वासियोंको ग्रीष्मकालीन सूर्यके प्रचण्ड निदाघ (भीषण गर्मी) और ऋतु सम्बन्धित दावाग्निके तापको नहीं सहना पड़ता था॥ ५ ॥

अगाधतोयहृदिनीतटोर्मिभि-
द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा
भुवो रसं शाद्वलितञ्च गृह्णते॥ ६ ॥

वृन्दावनकी नदियों एवं तालाबोंमें अगाध जल भरा हुआ था। उनकी उच्छलित तरङ्गें तटोंका स्पर्श करती हुई पुलिनोंसे टकरातीं और उस स्थानकी पङ्कस्थलीको आर्द्र (गीली) कर जातीं। अतः निदाघकालीन सूर्यकी विषके समान अत्यन्त उग्र एवं तीक्ष्ण रश्मियाँ भी वहाँकी भूमि एवं हरी-भरी घासकी शीतलताको सुखा

नहीं सकती थीं और न ही उस हरियालीके रसत्वका हरण कर सकती थीं ॥ ६ ॥

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ।

गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥

उस समय वृन्दावनकी वनराजियाँ कुसुमोंसे परिपूरित वृक्षावलियोंसे अतिशय शोभायमान हो रही थीं। रङ्ग-बिरङ्गे पंखोंसे युक्त पक्षी मधुर कलरव कर रहे थे, मयूर अपनी केकाध्वनिसे और भ्रमर अपने अनुपम गुञ्जारसे वातावरणको सङ्गीतमय बना रहे थे। कोयलका कूजन तो निराला था ही, सारस भी अपना राग अलाप रहे थे। हिरनोंका चौकड़ी भरना भी अत्यधिक आकर्षक था ॥ ७ ॥

क्रीडिष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः ।

वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥

हरियाली और सौन्दर्यके इस साम्राज्यमें श्रीकृष्ण और बलरामकी क्रीड़ा-विहार करनेकी इच्छा हुई। अतः श्रीकृष्णने आगे-पीछे गायों और ग्वालबालोंसे परिवेष्टित होकर बड़े भाई बलरामके साथ वेणु-वादन करते हुए वृन्दावनकी वनस्थलीमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥

प्रवालबर्हस्तवक स्रग्धातुकृतभूषणाः ।

रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥

वहाँ बलराम, श्रीकृष्ण और उनके ग्वालबाल मित्रोंने प्रवालोंने (नव-पल्लवों), मयूर-पिच्छों, पुष्पोंके गुच्छों, पुष्प-मालाओं एवं गैरिक आदि धातुओंके द्वारा अपनेको सजा लिया। इस प्रकार वे कभी आनन्दमें मग्न होकर नृत्य करते, कभी ताल ठोककर परस्पर मल्ल युद्ध करते और कभी मधुर राग अलापने लगते ॥ ९ ॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादनम् ।

वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥

जब श्रीकृष्ण नाचते, तब कुछ गोपबालक गाने लगते और कुछ बाँसुरी और सींगी बजाने लगते, कोई करताल बजाते तो कोई 'साधु! साधु!' कहकर उनकी प्रशंसा कर उनका उत्साह-वर्द्धन करते ॥ १० ॥

गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणम् ।

ईडिरे कृष्णरामं च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥

हे राजन्! उस समय नट जिस प्रकार अपने नायककी प्रशंसा करते हैं, उसी प्रकार ग्वालबालोंका रूप धारण करके देवतागण वहाँ आते और गोपजातिमें अवतरित (जन्म लेकर छिपे) हुए श्रीकृष्ण एवं बलरामकी स्तुति करते हैं (शङ्कर, नारद आदि भक्त भी उनकी लीलाका आस्वादन करनेके लिए गोपरूप धारण करते थे और प्रशंसा भी करते थे) ॥ ११ ॥

भ्रमणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।

चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२ ॥

बलराम एवं श्रीकृष्ण कभी-कभी घुँघराले केशोंसे युक्त वेणी धारण करते, कभी कुम्भकारके चाककी तरह एक-दूसरेका हाथ पकड़कर भ्रमण करते (घूमरी-परेता खेलते), कभी लङ्घन करते (एक-दूसरेसे अधिक फाँद जानेकी इच्छासे कूदते), कभी क्षेपण करते (गेंद या डेले-कंकरी जैसी वस्तुओंको स्पर्धा करते हुए उछालते), कभी आस्फोटन करते (ताल ठोकते), नियुद्ध करते (एक-दूसरेको भुजाओंमें जकड़कर दूर पटक देते) और कभी आकर्षण करते (एक-दूसरेको घसीटते अथवा एक-दूसरेके विपरीत रस्सी पकड़कर खींचते) ॥ १२ ॥

क्वचित्रृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ।

शशंसतुर्महाराज साधु साध्वितिवादिनौ ॥ १३ ॥

हे महाराज! कभी-कभी अन्य गोपबालक नाचने लगते, तो श्रीकृष्ण और बलराम गायक बन जाते और कभी वादक बनकर

बाँसुरी, सींगी आदि वाद्योंको बजाते और कभी-कभी वे दोनों भाई साधु-साधु शब्दोंके द्वारा उनकी प्रशंसा भी करते ॥ १३ ॥

क्वचिद् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्वचामलकमुष्टिभिः ।

अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः

क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥

कभी दोनों भाई बेल फल, कभी जायफल (कुम्भफल) अथवा आँवलेके फलोंको मुट्ठीमें लेकर परस्पर आघात कराते हुए दूर फेंक देते, कभी अस्पृश्यत्व अर्थात् एक-दूसरेको छू न पायें—इसलिए दूर-दूर तक दौड़े चले जाते, छू लेनेपर जय और न छू सकनेपर पराजय होती, कभी छलपूर्वक आँख-मिचौली खेलते, आँख बन्द करनेवाले सखाको पहचाननेपर जय और न पहचाननेपर पराजय होती और कभी बैलोंका युद्ध देखकर परस्पर सिरसे सिर भिड़ाकर युद्ध करते, तो कभी तोते-कोयल आदि पक्षियोंकी मधुर ध्वनियोंका अनुकरण करते। सभी खेलोंमें मुरली, लकुटि आदिको दाँवपर लगाया जाता ॥ १४ ॥

क्वचिच्च

दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।

कदाचित् स्यन्दोलिकया कर्हिचित्रपचेष्टया ॥ १५ ॥

कभी मेंढकोंके समान फुदक-फुदक कर चलते, तो कभी अनेक प्रकारकी मुखाकृतियाँ बनाकर एक-दूसरेका परिहास करते, कभी (श्रावण मासमें) वृक्षोंपर रस्सियाँ डालकर झूला करते, कभी दो बालकोंको खड़ा करके उनकी बाहोंपर ही झूलने लगते और कभी किसी राजाके समान (दानघाटी आदि) लीलाओंका अभिनय करते हुए घूमा-फिरा करते ॥ १५ ॥

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चैरतुर्वने ।

नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरःसु च ॥ १६ ॥

इस प्रकारसे बलराम एवं श्रीकृष्ण साधारण बालकोंके समान लौकिक खेलोंमें निमग्न रहते और वृन्दावनके नदी, पर्वत, गह्वर (घाटी), कुञ्जवन एवं सरोवर सभी स्थानोंपर विहार करते ॥ १६ ॥

पशूंश्चारयतो गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः।

गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥

एक बार बलराम एवं श्रीकृष्ण अपने सखा ग्वालबालोंके साथ उसी वनमें गौएँ चरा रहे थे, तभी उन दोनोंका अपहरण करनेकी इच्छासे प्रलम्ब नामका असुर गोप-वेश धारण करके उनके बीचमें घुस आया (जो गोप उस दिन नहीं आया था, प्रलम्बासुरने उसीका रूप धारण किया था) ॥ १७ ॥

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः।

अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥ १८ ॥

दशार्ह-वंशज यादव-श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण सर्वदर्शन हैं। वे उस असुरको देखते ही पहचान गये और उसका उद्देश्य भी जान गये। उन्होंने उसका वध करनेकी इच्छासे उसके बन्धुत्वके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया ॥ १८ ॥

तत्रोपाहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित्।

हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण क्रीड़ा-रसज्ञ (खेलोंके आचार्य) हैं। उन्होंने ग्वालबालोंको बुलाकर कहा—हे प्रिय गोपसखाओ! हम दो दलोंमें बैठ जाते हैं और यथोचितरूपसे खेल खेलते हैं ॥ १९ ॥

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनाईनौ।

कृष्णसङ्घट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ॥ २० ॥

इसपर ग्वाल-सखाओंने क्रीड़ाके लिए बलराम एवं श्रीकृष्णको दोनों पक्षोंके नायकके रूपमें चुन लिया। कुछ मित्र बलरामके पक्षमें और कुछ श्रीकृष्णके पक्षमें हो गये ॥ २० ॥

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः।

यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥ २१ ॥

बालकोंने वाह्य-वाहकरूपमें तरह-तरहके ऐसे खेल खेले, जिस खेलमें विजेता पराजितोंके कन्धोंपर चढ़ जाते थे और पराजित उन्हें वहन करते हुए एक निर्दिष्ट स्थानपर ले जाते थे ॥ २१ ॥

वहन्तो बाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।

भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥

इस प्रकारसे कृष्णके पक्षके गोपोंमेंसे कुछ वाहक रूपमें और कुछ अन्यो द्वारा वाहित होकर अर्थात् एक दूसरेकी पीठपर चढ़ते-चढ़ाते तथा गायोंको चराते हुए भाण्डीर नामक सर्वमङ्गलमय वट-वृक्षके मूल तक पहुँच गये ॥ २२ ॥

रामसङ्घट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ।

क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥

हे राजन्! एक बार बलरामजीके पक्षवाले श्रीदाम, वृषभ आदि ग्वालबाल खेलमें जीत गये। तब श्रीकृष्ण आदि गोपबालक विजयी खिलाड़ियोंको वहन करने लगे ॥ २३ ॥

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ।

वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥

खेलमें पराजित भगवान् श्रीकृष्ण श्रीदामाको, भद्रसेन वृषभको और प्रलम्बासुर रोहिणीसुत बलरामको पीठपर चढ़ाकर वहन करने लगे ॥ २४ ॥

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ।

वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५ ॥

दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब श्रीकृष्णको दुःसह (अपराजेय) मानकर उनके ही पक्षमें हो गया। वह बलदेवजीको वहन करते हुए द्रुतगतिसे भागा और निर्दिष्ट स्थानसे आगे बहुत दूर ले जाने लगा, जहाँ किसीकी दृष्टि न जा सके ॥ २५ ॥

तमुद्रहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं
 महासुरो विगतरयो निजं वपुः।
 सः आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ
 तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥

परन्तु वह बड़ा बलवान् दैत्य सुमेरु पर्वतके समान भारी बोझवाले धरणी-धरण बलदेवको अधिक दूरतक वहन नहीं कर सका, उसकी चाल थम गयी। उसने अपना स्वाभाविक दैत्यरूप धारण कर लिया। उसका काला शरीर सोनेके आभूषणोंसे दीप्त हो रहा था। बलदेवजीको धारण करनेके कारण उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजलीसे चमकता काला बादल चन्द्रमाको धारण किये हुए हो ॥ २६ ॥

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत्
 प्रदीप्तदृग्भूकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।
 ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डल-
 त्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७ ॥

उस समय उसके दोनों नेत्र अङ्गारके समान दहक रहे थे, उग्र दाढ़ें भौंहों तक फैली हुई थीं और लाल-लाल बाल जलती हुई आगकी लपटोंके समान जान पड़ते थे। उसके हाथ एवं पैरोंमें कड़े, सिरपर किरीट और कानोंमें कुण्डलोंकी प्रभा भी आश्चर्य-जनक थी। उस आकाशचारी भयानक दैत्यको वेगपूर्वक आकाशमें जाते देखकर बलदेवजी कुछ भयभीत-से हो गये (कृष्ण अपने बड़े भैया बलरामको प्रलम्बके कन्धेपर बैठकर चन्द्रलोक जाते देखना चाहते थे—इसी कौतुक सिद्धिके लिए उन्होंने अपनी योगमायाके द्वारा बलदेवजीके ऐश्वर्य-ज्ञानको आवृत कर दिया) ॥ २७ ॥

अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो
 विहाय सार्थमिव हरन्तमात्मनः।

रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना
सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥

परन्तु तत्क्षण ही बलदेवजीको अपने स्वरूपका स्मरण हो आया कि मेरा अवतार तो दैत्योंके वधके लिए ही हुआ है। इन्द्र जिस प्रकार वज्रके वेगसे पर्वतपर प्रहार करते हैं, इसी प्रकार बिना किसी भय एवं शङ्काके उन्होंने अपने अपहरणकारी असुरके मस्तकपर मुष्टिकासे दृढ़तापूर्वक प्रहार किया ॥ २८ ॥

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको
मुखाद्वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः।
महारवं व्यसुरपतत् समीरयन्
गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥

उस मुष्टिका-आघातसे असुरका सिर एक क्षणमें ही चकनाचूर हो गया। उसकी स्मृति (चेतना) लुप्त हो गयी। वह मुखसे रक्त उगलने लगा। महा भयङ्कर शब्द करते हुए वह प्राणरहित हो गया तथा पृथ्वीपर ऐसे गिर पड़ा, मानो इन्द्रके वज्रसे आहत होकर कोई पर्वत धराशायी हुआ हो ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना।
गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्वितिवादिनः ॥ ३० ॥

ग्वालबाल परम बलशाली बलरामके द्वारा प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर बड़े आश्चर्यचकित हो गये और 'वाह-वाह' कहकर प्रसन्नतासे चिल्ला उठे ॥ ३० ॥

आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम्।
प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥

ग्वालबालोंका चित्त प्रेमसे विभोर हो गया। बलदेवने प्रशंसनीय कार्य किया था, अतः सब उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सबने उन्हें हृदयसे इस प्रकार लगाया, मानो वे यमालयसे लौटे हों। ग्वालबालोंने बलरामजीको प्रचुर आशीर्वाद दिये ॥ ३१ ॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ।
अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये
पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे
प्रलम्बवधोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

प्रलम्बासुर मूर्तिमान् पाप था। उसकी मृत्युसे देवताओंका चित्त स्वस्थ एवं प्रसन्न हो गया। वे नन्दनवनसे बलरामजी पर पुष्प-मालाओंकी बरसात करने लगे। देवतागण “वाह, वाह, बहुत-बहुत अच्छा किया”—कहकर बलदेवका हार्दिक अभिनन्दन कर रहे थे ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अष्टारहवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

एकोनविंशोऽध्यायः

गायों और ग्वालबालोंको दावानलसे बचाना

श्रीशुक उवाच—

क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः।

स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम्॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे परीक्षित्! एक दिन ग्वालबाल खेलनेमें इतने आसक्त हो गये कि उनकी गायें स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करती हुई बहुत दूर एक सघन वनमें प्रवेश कर गयीं। अधिक घासका लोभ तो उन्हें था ही और कोई रोकनेवाला भी न था॥ १ ॥

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम्।

इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः॥ २ ॥

उनकी बकरियाँ, गायें और भैंसें एक वनसे दूसरे वनमें प्रवेश करती हुई मूँजसे आच्छादित (सरकण्डोंके) वनमें घुस गयीं। वे ग्रीष्मकालीन सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त होकर क्रन्दन कर रही थीं॥ २ ॥

तेऽपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्णरामादयस्तदा।

जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम्॥ ३ ॥

जब श्रीकृष्ण, बलराम आदि अन्यान्य ग्वालबालोंने अपने पशुओंको आस-पास कहीं नहीं देखा, वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे। वे दुःखी मनसे उन्हें चारों ओर खोजते रहे, पर उनका कहीं कोई पता न लगा (गायोंमें अति आसक्तिके कारण उनकी यह दशा हो गयी थी अर्थात् उनकी समझनेकी शक्ति क्षीण हो गयी थी)॥ ३ ॥

तृणैस्तत्खुरदच्छित्रैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ।

मार्गमन्वगमन् सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥

अपनी जीविकाके साधन-स्वरूप पशुओंके विनष्ट होनेकी आशङ्कासे सारे गोपबालक बड़े व्याकुल हो गये। वे उन पशुओंके खुरों एवं दाँतोंसे कटे घासके तिनकों तथा भूमिपर अङ्कित खुरोंके चिह्नोंको देखते हुए उनके मार्गका अनुसरण करने लगे ॥ ४ ॥

मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम्।

सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥ ५ ॥

अन्ततः गोपोंने देखा कि गौएँ रास्ता भूलकर मुञ्जाटवीमें आर्त्तनाद कर रही हैं। अपनी गो-सम्पत्ति प्राप्त करके वे उसे लौटानेकी चेष्टा करने लगे। उस समय वे भी भ्रमण-श्रमके कारण श्रान्त, क्लान्त एवं तृषार्त्त (थके-प्यासे) हो रहे थे ॥ ५ ॥

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा।

स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥

गायोंकी यह दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण मेघके समान गम्भीर वाणीसे नाम ले-लेकर उन्हें पुकारने लगे। अपने-अपने नामोंकी ध्वनि सुनकर गायें अत्यधिक हर्षित हो गयीं और स्वयं भी प्रत्युत्तरमें रँभाने एवं हँकारने लगीं ॥ ६ ॥

ततः समन्ताद्भवधूमकेतु-

र्यदृच्छयाभूत् क्षयकृद्वनौकसाम्।

समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकै-

र्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान् महान् ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण इन गायोंको पुकार ही रहे थे कि वनवासियोंका विनाश करनेवाली कालस्वरूप विशाल दावाग्नि प्रकट हो गयी। सारथिके समान वायुके द्वारा सञ्चालित होकर यह प्रचण्ड दावाग्नि उल्काओंके समान अपनी भयङ्कर ज्वालाओंसे स्थावर-जङ्गम (चर-अचर) सभी प्राणियोंको दग्ध (जलाकर भस्म) करती हुई

चारों दिशाओंमें प्रज्ज्वलित हो उठी। (कुछ विद्वान् इस दावानलको प्रलम्बासुरके सखाकी माया मानते हैं) ॥ ७ ॥

तमापतन्तं परितो दावाग्निं
गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ।
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना
यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥

परीक्षित्! मृत्युके भयसे आक्रान्त व्यक्ति जिस प्रकार श्रीहरिके शरणागत होता है, उसी प्रकार चारों दिशाओंसे प्रज्ज्वलित भीषण दावानलको देखकर भयभीत गाय आदि पशु कृष्ण-बलरामकी शरणमें पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे— ॥ ८ ॥

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामोघविक्रम ।
दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ ९ ॥

“हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महावीर! हे अमोघविक्रम बलराम! हम आपके शरणागत हैं। इस दावाग्निसे हम जल ही जायेंगे! अपने आश्रितोंकी रक्षा करो ॥ ९ ॥

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसादितुम् ।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥

हे सर्वधर्मोंके ज्ञाता श्रीकृष्ण! हम तुम्हारे ही बन्धु-बान्धव हैं। अतः हम किसी भी प्रकारसे विनाशके योग्य नहीं हैं। केवल तुम्हीं हमारे रक्षक एवं प्रभु हो। तुम्हारे अतिरिक्त हमारा कोई अन्य आश्रय नहीं है ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच—

वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः ।
निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—अपने ग्वालबाल सखाओंके करुणार्द्र वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे ग्वालबाल सखाओ!

डरो मत! सभी अपनी आँखें बन्द कर लो (स्नेहपरायण सखा कृष्ण द्वारा दावानलका पान नहीं देख सकते थे) ॥ ११ ॥

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ।

पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥

ग्वालबालोंने श्रीकृष्णके कथनानुसार 'बहुत अच्छा' कहकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। महायोगेश्वर महैश्वर्यशक्तिसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णने अपने मुखके द्वारा उस उग्र दावानलको पान कर लिया और इस प्रकार भीषण सङ्कटसे गायों और ग्वालबालोंकी रक्षा की (ग्वालबालोंके आँखे मूँदते ही यह दावाग्नि उनसे भयभीत होकर उसी क्षण शीतल, सुगन्धित, मधुर-रसके रूपमें श्रीकृष्णके करकमलोंमें मात्र चुल्लूभर रह गयी, जिसे योगमायाने बलपूर्वक लेकर स्वयं ही पान कर लिया था) ॥ १२ ॥

ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ।

निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभरमें ही उन सबको पुनः भाण्डीरवट वृक्षके नीचे ले आये। जब ग्वालबालोंने अपनी आँखें खोलीं, तो अपने आपको एवं गायोंको दावानलसे मुक्त और भाण्डीरवटकी सुशीतल छायामें अवस्थित देखा, तो अतिशय चमत्कृत हो उठे ॥ १३ ॥

कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायानुभावितम् ।

दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥

ग्वालबाल श्रीकृष्णकी योगमायाके प्रभावका अनुभवकर बड़े विस्मित हुए। उनकी योगसिद्धि एवं दावानलसे अपनी रक्षा देखकर उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्ण कोई देवता हैं (वे ही उन्हें भाण्डीरवटके नीचे ले आये हैं) ॥ १४ ॥

गाः सन्निवर्त्य सायाहे सहरामो जनार्दनः ।

वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥

इसके बाद सायंकालमें बलरामके साथ श्रीकृष्णने गौएँ लौटार्यीं और उन्हें अपने आगे किया। स्वयं उनके पीछे-पीछे वंशीको विशेष रीतिसे वादन करते हुए ब्रजकी ओर चले। उस समय चारों दिशाओंसे ग्वालबाल उनकी स्तुति कर रहे थे॥ १५ ॥

गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने।

क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत्॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे दावाग्निपानं
नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

उधर ब्रजमें कृष्ण-विरहमें गोप-गोपियोंको क्षणमात्रका समय भी शत-शत युगके समान प्रतीत होता था। जब गोविन्द ब्रजमें लौटे, तब उनका दर्शन करके वे परमानन्दित हो गयीं॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

विंशोऽध्यायः

वर्षा और शरद् ऋतुका वर्णन

श्रीशुक उवाच—

तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ।

गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! इसके बाद समस्त ग्वालबालोंने घर पहुँचकर दावानलसे अपने रक्षण एवं प्रलम्बासुर-वधरूप कृष्ण एवं बलरामकी अद्भुत लीलाओंके विषयमें ब्रजकी गोपियोंको (अपनी माताओं और बहनोको) बतलाया ॥ १ ॥

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ।

मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ ब्रजं गतौ ॥ २ ॥

वृद्ध गोप एवं गोपियोंने भी जब यह वर्णन सुना, तो वे भी विस्मित-से रह गये। उन सबने यह निर्णय कर लिया कि बलराम एवं श्रीकृष्णके रूपमें दो प्रधान देवता ब्रजमें अवतरित हुए हैं ॥ २ ॥

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ।

विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥

हे राजन्! ग्रीष्म ऋतुके समाप्त होनेपर समस्त प्राणियोंके उत्सव तथा जीवन-स्वरूप वर्षा ऋतुका शुभागमन हुआ। इस ऋतुमें समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति एवं वृद्धि होने लगती है। नभमण्डलमें मेघ गर्जन करने लगते हैं। दिशाएँ विद्युत्-मालाओंसे सुशोभित होने लगती हैं और सूर्य एवं चन्द्रमा पर आलोकमय मण्डल बनने लगते हैं ॥ ३ ॥

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।

अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥

आकाश घने एवं नीले मेघोंसे समाच्छादित रहने लगा, बिजली कौंधने लगी एवं बार-बार गर्जनाएँ होने लगीं। बादलोंसे ढके रहनेके कारण सूर्य, चन्द्रमा और तारोंका प्रकाश धूमिल रहने लगा। अतः आकाश और उसकी प्राकृतिक ज्योति उसी प्रकार ढक गयी, जिस प्रकार त्रिगुणात्मिका प्रकृति समष्टि सगुण ब्रह्मको (ब्रह्मके अंश जीव चैतन्यको) आवृत कर लेती है। (प्रस्तुत प्रसङ्गमें आकाशकी तुलना निर्लेप ब्रह्मसे, विद्युत्-ज्योतिकी तुलना सत्त्व गुणसे, मेघ गर्जनकी तुलना रजोगुणसे एवं मेघों द्वारा आच्छादित होनेकी तुलना तमोगुणसे की गयी है) ॥ ४ ॥

अष्टौ मासान् निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु।

स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥

सूर्यदेवने अपनी किरणोंसे आठ मास पर्यन्त पृथ्वीरूप प्रजासे जलरूपमें जिस धनको करके रूपमें ग्रहण किया था, अब उचित समय अर्थात् वर्षाकाल आनेपर उस सञ्चित सम्पत्तिको वे अपने किरणरूपी करोंसे भूतलवासियोंके उपकारके लिए वितरित करने लगे ॥ ५ ॥

तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः।

प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥

परदुःखकातर साधु (रन्तिदेव, दधीचि आदि) जिस प्रकार आर्त जनोके दुःखोंको देखकर दयार्द्र हो जाते हैं और उनके उपकारके लिए अपने प्राणोंका विसर्जन तक करनेको तत्पर हो जाते हैं, उसी प्रकार घनघोर मेघमण्डल भी विद्युतरूप नेत्रोंके द्वारा जगत्के तापको देखकर दयार्द्र हो जाते हैं और प्रबल वायुके द्वारा सञ्चालित होकर जगत्के उपकारके लिए सबके जीवन-स्वरूप जल-धाराओंकी वृष्टि करते हैं ॥ ६ ॥

तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही।

यथैव काम्यतपसस्तनुः सम्प्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥

सकाम तपस्वीका शरीर जिस प्रकार तपस्याके कारण क्षीण हो जाता है और काम्य फलकी प्राप्ति हो जानेपर पुनः हृष्ट-पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ग्रीष्मकालके कारण कृश-काया पृथ्वी भी मेघ-वर्षणके सिञ्चनसे सिक्त हो गयी और पुनः हरी-भरी होकर पुष्ट होने लगी॥७॥

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः।

यथा पापेन पाषण्डा न हि वेदाः कलौ युगे॥८॥

वर्षाकालमें सन्ध्याके समय बादलोंमें घना अन्धकार छा जानेपर जुगनुओंकी तो शोभा होती है, परन्तु चन्द्र-नक्षत्रादि ग्रह प्रकाशित नहीं होते, उसी प्रकार कलियुगमें पापोंकी प्रबलता होनेपर पाखण्ड मत एवं नास्तिक शास्त्र छा जाते हैं और वेदोंके यथार्थ ज्ञानकी शोभा लुप्त हो जाती है॥८॥

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका ससृजुर्गिरः।

तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये॥९॥

जो मेंढक चुपचाप सो रहे थे, अब वे मेघोंकी गड़गड़ाहटको सुनते ही टर्रांना आरम्भ कर देते हैं, जिस प्रकारसे नित्य-कर्माँकी समाप्तिपर ब्राह्मण-विद्यार्थी अपने गुरुका आह्वान-शब्द ("वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करो") श्रवण करते ही वेद-पाठ करना आरम्भ कर देते हैं॥९॥

आसन्नृत्पथगामिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।

पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः॥१०॥

ग्रीष्म ऋतुके कारण शुष्क छोटी-छोटी नदियाँ वर्षाकालमें वर्षाके जलसे उमड़ती-घुमड़ती अपने मर्यादित मार्गको छोड़कर उसी प्रकार उत्पथगामिनी हो जाती हैं, जिस प्रकार अजितेन्द्रिय पुरुषोंके शरीर एवं धनसम्पत्तिका असत्-कार्योंमें दुरुपयोग होने लगता है॥१०॥

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिता।

उच्छिलीन्धकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत्॥११॥

उस समय पृथ्वी कोमल हरी-भरी घास द्वारा मरकत-बिसातके समान प्रतीत हो रही थी। यत्र तत्र इन्द्रगोप कीटों (लाल रङ्गके बरसाती कीट अर्थात् बीरबहूटियों) की लालिमामयी और कहीं कहीं छत्राकार उद्भिदों (बरसाती छत्ते अथवा सफेद कुकुरमुत्तों) के द्वारा श्वेताभ एवं छायामयी होकर राजाकी रङ्ग-बिरङ्गी (लाल, नीली, हरी, सफेद ध्वजाओं एवं वस्त्रोंसे युक्त) सेनाके समान प्रतीत हो रही थी॥ ११॥

क्षेत्राणि शस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।

मानिनामनुतापं वै दैवाधीनमजानताम्॥ १२॥

वर्षाकालमें वसुधापर शस्य-सम्पत्ति एवं लहलहाते खेत किसानोंको अतिशय आनन्द प्रदान कर रहे थे, किन्तु जो कृषि-कार्यको तुच्छ (निकृष्ट) तथा स्वयंको प्रतिष्ठित मानकर कृषि-कार्यसे विरत हो गये थे—ऐसे धनाभिमानी इन भरे-पूरे खेतोंको देखकर अनुताप करने लगे (हाय! यदि हम भी कृषि-कार्य करते, तो ऐसा अनाज हमें भी प्राप्त होता)। आनन्द और अनुताप सभी दैवाधीन हैं—वे यह नहीं जानते थे॥ १२॥

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया।

अबिभ्रन् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया॥ १३॥

जल और स्थलके सभी प्राणी वर्षाके नवीन जलके सेवनसे उसी प्रकार मनोज्ञ (सुन्दर, निर्दोष एवं आकर्षक) रूप प्राप्त करने लगे, जिस प्रकार हरिकी सेवा करनेसे आन्तरिक (परमसुख) एवं बाह्य रूपसे (रुचिर शोभासे युक्त) उत्तम फल प्राप्त होते हैं॥ १३॥

सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षोभ श्वसनोर्मिमान्।

अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा॥ १४॥

वर्षाकालमें वायुके वेगसे उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त उच्छलित नदियोंके यहाँ-वहाँसे समुद्रमें मिलित होनेके कारण समुद्र उसी प्रकार क्षुब्ध होने लगता है, जिस प्रकार अपरिपक्व योगीका

कामासक्त (भोगवासनायुक्त) चित्त कामसे अनुरज्जित विषयोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण चञ्चल हो जाता है॥ १४॥

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।

अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः॥ १५॥

वर्षाकी प्रचण्ड धाराओंकी मारसे आहत होनेपर भी पर्वत उसी प्रकार तनिक भी व्यथित नहीं होते थे, जिस प्रकार भगवत्-भक्त विपत्तियोंके द्वारा बार-बार आक्रान्त होनेपर किञ्चित् मात्र भी व्यथित नहीं होते॥ १५॥

मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः।

नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालेन चाहताः॥ १६॥

वर्षाकालमें सारे पथ घास-पत्तोंसे आच्छादित एवं अपरिष्कृत हो जानेसे लोगोंके लिए सन्देहास्पद हो गये कि “पथ ठीक है या नहीं”, जैसे कि द्विजोंके द्वारा अभ्यास न किये जानेपर कालक्रमसे श्रुतियाँ लुप्तप्रायः हो जाती हैं और लोकमें संशय होने लगता है कि “वेद हैं अथवा नहीं”॥ १६॥

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।

स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव॥ १७॥

चपला-विद्युत् लोक-बन्धु (जन-हितैषी अथवा लोकप्रिय) बादलोंमें उसी प्रकारसे स्थिर भावसे नहीं रह रही थी (एक मेघसमूहसे दूसरे मेघमण्डलमें जा रही थी), जिस प्रकारसे वार-वनिताओंका चञ्चल चित्त गुणवान् पुरुषोंके प्रति स्थिरभावसे आसक्त नहीं रहता॥ १७॥

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणञ्च गुणिन्यभात्।

व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा॥ १८॥

गुणहीन (प्रत्यञ्चासे रहित) इन्द्रधनुष गुणयुक्त (गर्जन आदि शब्दोंसे युक्त) आकाशमें उसी प्रकारसे प्रकाशित होने लगे, जिस प्रकार निर्गुण मायातीत पुरुष सत्त्व, रजादि गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न विश्व-प्रपञ्चमें प्रकाशित होते हैं॥ १८॥

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्धनैः ।

अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥

चन्द्रमा जिन तुषारमय मेघोंको अपनी ज्योत्स्नासे प्रकाशित करता है, वर्षाकालमें उन्हीं मेघोंसे आच्छन्न होकर वह वैसे ही प्रकाशित नहीं हो रहा था, जैसे शुद्ध जीवात्मा स्व-चैतन्यसे प्रकाशित होनेपर भी मिथ्या अहङ्कारके आवरणसे आच्छन्न होनेके कारण अप्रकाशित रहती है ॥ १९ ॥

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ।

गृहेषु तप्तनिर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥ २० ॥

मयूर मेघोंके शुभागमनरूप महोत्सवसे आनन्दित होकर उनका अभिनन्दन करते हुए अपनी मनोरम 'के-का' ध्वनि एवं नृत्यके द्वारा अपना हर्ष वैसे ही प्रकट कर रहे थे, जिस प्रकार संसारके तापसे सन्तप्त हुए जीव भागवत-जनोंके शुभागमनपर हर्षोल्लसित हो उठते हैं ॥ २० ॥

पीत्वापः पादपाः पद्मिरासत्रानात्ममूर्तयः ।

प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ॥ २१ ॥

पूर्व ग्रीष्मकालमें जो वृक्ष प्रायः क्षीणकाय एवं श्रान्त हो गये थे, अब वे वर्षाकालमें अपनी जड़ोंसे जल-पान करके नवाङ्कुर, पत्र, पुष्प एवं पल्लवादि नाना रूपोंसे उसी प्रकार विभूषित हो गये, जैसे पूर्वकालमें सकामभावसे तपस्या करनेवाला क्षीण एवं श्रान्त योगसाधक योगैश्वर्य प्राप्त होनेपर काय-व्यूह-रचनाके बलसे अभिलषित भोजन, रमण आदिके द्वारा नानाविध स्वभावयुक्त सुन्दर रूप धारण करता है ॥ २१ ॥

सरः स्वशान्तरोधःसु न्युषुरङ्गापि सारसाः ।

गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥

हे राजन्! कीचड़-कण्टकमय तटोंसे युक्त सरोवरोंके किनारे चक्रवाक (सारस) पक्षी आसक्तिपूर्वक वैसे ही निवास करने लगे,

जैसे दुर्वासनाओंसे ग्रस्त विषयी पुरुष शान्ति-रहित अनेक प्रकारके कर्मकाण्डके उत्पत्ति-स्थान घरोंमें ही पड़े रहते हैं॥ २२॥

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे।

पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा॥ २३॥

वर्षा ऋतुमें इन्द्रके द्वारा प्रेरित मेघोंके अतिशय वर्षणरूप उपद्रवके (मूसलाधार वर्षाके) फलस्वरूप जल-प्लावनके वेगसे नदियोंके बाँध और खेतोंकी मेड़ें उसी प्रकार टूट गये हैं, जिस प्रकार कलियुगमें नास्तिकोंके कुतर्कोंसे वैदिक मार्गकी मर्यादाएँ अनेक मतवादोंमें छिन्न-भिन्न हो जाती हैं॥ २३॥

व्यमुञ्चन् वायुर्भिर्नुन्नाभूतेभ्यश्चामृतं घनाः।

यथाशिषो विट्पतयः काले काले द्विजेरिताः॥ २४॥

इस वर्षा ऋतुमें वायु द्वारा परिचालित होकर मेघ-पुञ्ज प्राणियोंके मङ्गलके लिए अमृतमय जलका उसी प्रकार वर्षण करने लगे, जिस प्रकार पुरोहितोंके उपदेशोंसे परिचालित होकर राजा समय-समयपर दानादिके द्वारा प्रजाकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं॥ २४॥

एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखजूरजम्बुमत्।

गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः॥ २५॥

इस प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्यका अधिष्ठाता वृन्दावन वर्षाके प्रभावसे समृद्ध एवं पके हुए जामुन तथा खजूर आदि फलोंसे और भी शोभायमान हो उठा। भगवान् श्रीकृष्ण अपनी गौओं और ग्वाल-बालोंसे घिरकर एवं श्रीबलरामके साथ उस वनमें बिहार करनेके लिए प्रविष्ट हुए॥ २५॥

धेनवो मन्दगामिन्य उधोभारेण भूयसा।

ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनाः॥ २६॥

अपने थनोंके भारसे मन्द-गतिसे चलनेवाली पयस्विनी गौएँ भगवान्‌के द्वारा नाम ले-लेकर पुकारे जानेसे द्रुत गतिसे दौड़ने

लगीं। उस समय अत्यन्त आनन्दके कारण उनके थनोंसे दूधकी धाराएँ गिरती जाती थीं॥ २६॥

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः।

जलधारा गिरेर्नादादासन्ना ददृशे गुहाः॥ २७॥

उस वनमें प्रवेशकर श्रीकृष्णने देखा कि पुलिन्द (भील और भीलनियाँ) आदि वनवासी वहाँ आनन्दपूर्वक रह रहे हैं, वनराजियाँ (वृक्षोंकी पंक्तियाँ) मधु-धाराएँ क्षरण कर रही हैं, पर्वतोंसे झर-झरका निनाद करते हुए स्रोत (झरने) प्रवाहित हो रहे हैं, इन जल-धाराओंकी प्रतिध्वनिसे यह भी सूचित हो रहा था कि समीपमें बहुत-सी कन्दराएँ भी हैं, जिनमें वर्षा होनेपर छिपा जा सकता है॥ २७॥

क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायाञ्चाभिवर्षति।

निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः॥ २८॥

जब भी वर्षा आरम्भ होती, श्रीकृष्ण किसी वृक्षकी कोटर या खोड़में छिप जाते अथवा पर्वतोंकी गुफाओंमें घुस जाते। वनमें वे कन्दमूल भोजन करते और अपने ग्वालबाल-सखाओंके साथ क्रीड़ा किया करते॥ २८॥

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके।

सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्वितः॥ २९॥

कभी श्रीकृष्ण और बलराम स्वजातीय ग्वालबालोंके साथ सरोवर आदिके जलके पास ही किसी विशाल शिलापर बैठ जाते और घरसे अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा लाये हुए दधि-मिश्रित भातका अचार, मुरब्बा आदिके साथ भोजन करते॥ २९॥

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान्।

तृप्तान् वृषान् वत्सतरान्गाश्च स्वोदोभरश्रमाः॥ ३०॥

प्रावृट् श्रियञ्च तां वीक्ष्य सर्वकालसुखावहाम्।

भगवान् पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम्॥ ३१॥

भगवान् हरी-भरी घासके ऊपर बैठे हुए तृप्त बैल, बछड़ों एवं स्तन-भारसे आक्रान्त गौओंको देखते कि वे नयन मूँदकर तृणादि चर रहे हैं (जुगाली कर रहे हैं)। बादमें उन्होंने अपनी अन्तरङ्गा-शक्ति द्वारा परिवर्धित आनन्दके शाश्वत स्रोत वृन्दावनमें सर्व-काल सुखजनक वर्षाके सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यका दर्शनकर उसका अभिनन्दन किया (कृष्णकी वर्षा-विहारकी इच्छाको जानकर उनकी लीलाशक्ति श्रीवृन्दावनकी भूमिको सुसज्जित एवं विभावित कर देती है) ॥ ३०-३१ ॥

एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ।

शरत् समभवद्व्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥

व्रजमें बलराम और श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे वास कर रहे थे कि वर्षा-ऋतु बीत गयी और शरत्-ऋतुका आगमन हो गया। अब जल निर्मल हो गया, वायु धीरे-धीरे प्रवाहित होने लगी और आकाश मेघ-रहित हो गया ॥ ३२ ॥

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।

भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥

वर्षाकालीन कलुषित (मटमैला) जल शरत्-कालमें जल-पद्मोंकी पुनः उत्पत्तिके कारण स्व-भाव-सम्पत्ति अर्थात् अपनी स्वाभाविक निर्मलताको उसी प्रकार प्राप्त कर लेता है, जिस प्रकार योगभ्रष्ट मनुष्योंका चित्त भक्तियोगचर्या द्वारा रजोगुणसे रहित होकर पुनः शान्त हो जाता है ॥ ३३ ॥

व्योम्नोऽब्ध्रं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।

शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ॥ ३४ ॥

जैसे कृष्ण-भक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियोंके समस्त प्रकारके अशुभोंको (महाकष्टमय फल देनेवाले कर्मोंको) एवं व्याधियोंको शीघ्र ही हर लेती है, उसी प्रकार शरत्-ऋतुने उपस्थित होकर आकाशके मेघोंकी सघनताको, पशुओंकी बहुलताको,

प्राणियोंकी सङ्कीर्णताको (वर्षाकालमें विचलित होकर झुण्डके रूपमें ठसठसकर बैठनेवाले जीव-जन्तु अपने-अपने स्थानोंपर चले जाते हैं), पृथ्वीकी पंकिलता (कीचड़) को एवं जलकी मलिनताको दूर कर दिया ॥ ३४ ॥

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।

यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥

बादल इस कालमें अपनी जल-सम्पत्तिरूप सर्वस्वका परित्याग करके उसी प्रकार शुभ्रवर्णीय उज्ज्वल-कान्ति-विशिष्ट हो गये, जिस प्रकार निष्पाप मुनि पुत्र, वित्त एवं परलोककी वासनाओंका त्याग करके परम शान्त भावसे रहते हैं ॥ ३५ ॥

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।

यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥

इस कालमें पर्वत किसी स्थानपर झरनोंके रूपमें कल्याणकारी जल प्रवाहित करते हैं और किसी स्थानपर नहीं भी करते, जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष योग्य शिष्यको भगवत्-तत्त्वोपदेशरूप ज्ञानामृतका दान करते हैं, अयोग्य शिष्यको नहीं ॥ ३६ ॥

नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ।

यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥

छोटे-छोटे गड्ढों और पोखरोंमें अत्यल्प जल रहता है, इसमें रहनेवाले मत्स्यादि जलचर क्रमशः सूखते जा रहे उस जलके विषयमें उसी प्रकार नहीं जान पाते, जिस प्रकार पुत्र-कलत्रादिके भरण-पोषणमें आसक्त मूर्ख मानव क्षण-क्षण क्षीण होनेवाली आयुके विषयमें नहीं जान पाते ॥ ३७ ॥

गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम् ।

यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥

अल्प जलमें स्थित प्राणी शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उत्पन्न प्रखर तापका वैसे ही अनुभव कर रहे थे, जैसे कुटुम्बका

पालन-पोषण करनेवाला अजितेन्द्रिय (इन्द्रियोंके वशीभूत), दीन (कृपण), दुःखी एवं दरिद्र व्यक्ति धनोपार्जनके लिए संसारमें विविध प्रकारके कष्टोंका अनुभव करता रहता है ॥ ३८ ॥

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामञ्च वीरुधः ।

यथाहं ममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥

स्थलोंके विभिन्न भागोंने क्रमशः अपनी पङ्किलताका (कीचड़का) एवं लताओंने अपनी अपक्वताका (कच्ची अवस्थाका) वैसे ही परित्याग कर दिया, जैसे भक्तजन आत्मासे पृथक् शरीरादि बाह्य अनात्म विषयोंमें अहं-मम भावका क्रमशः परित्याग कर देते हैं ॥ ३९ ॥

निश्चलाम्बुरभूत् तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।

आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥

शरत्-कालके आगमनसे समुद्रका जल सम्यक् रूपेण स्थिर, गम्भीर और शान्त हो गया, जिस प्रकार आत्माके (मनके) सम्पूर्णरूपेण भौतिक कार्योंसे विरत एवं निष्क्रिय हो जानेपर मुनिजन कर्मकाण्डपरक वैदिक पाठसे निवृत्त हो जाते हैं (श्रीवृन्दावन धाममें समुद्रके न रहनेपर भी श्रीमथुरा-मण्डलकी पश्चिम सीमामें वर्तमान मानस-गङ्गासे उत्पन्न 'कोटर' नामका महासरोवर विद्यमान है) ॥ ४० ॥

केदारभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ।

यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥

किसान शालिक्षेत्रोंसे (धान्यके खेतोंसे) बहते जलको दृढ़ सेतु-बन्धन (खेतकी मेड़) द्वारा उसी प्रकार रोकने लगे, जिस प्रकार योगी इन्द्रियोंके क्षोभसे विषयोंकी ओर विगलित होते ज्ञानको योग द्वारा प्रत्याहार करके अन्तर्मुखताकी ओर आकर्षित करते हैं ॥ ४१ ॥

शरदर्काशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत् ।
देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो ब्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥

शरत्-कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे दिनके समय प्राणियोंको बहुत सन्ताप होता है, परन्तु रात्रिके समय चन्द्रमा उस सारे सन्तापको उसी प्रकार हर लेता है, जिस प्रकार आत्मज्ञान देहाभिमान-जनित तापको और श्रीकृष्ण ब्रज-सुन्दरियोंके भगवत्-विरहरूप सन्तापको हरण कर लेते हैं ॥ ४२ ॥

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥

शरद्कालीन मेघोंके आवरणसे रहित एवं विमल तारका-मालाओंकी दीप्तिसे विभूषित आकाश उसी प्रकार शोभा प्राप्त करने लगा, जिस प्रकार जैमिनिकृत पूर्व-मीमांसा एवं व्यासदेवकृत उत्तर-मीमांसा अथवा वेदान्त-दर्शन आदि निर्णीत तत्त्वोंका प्रदर्शक सत्त्वगुण-युक्त मन आध्यात्मिक प्रकाशसे सुशोभित होता है ॥ ४३ ॥

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ।
यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥

परीक्षित्! जिस प्रकार पृथ्वीतलपर वृष्णिवंशीय जनोंसे परिवृत होकर यदुपति श्रीकृष्ण शोभा प्राप्त कर रहे थे, उसी प्रकार इस शरत् ऋतुमें पूर्ण चन्द्रमा भी आकाशमें तारोंसे वेष्टित होकर शोभा प्राप्त करने लगे ॥ ४४ ॥

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ।
जनास्तापं जहूर्गोप्यो न कृष्णहतचेतसः ॥ ४५ ॥

पुष्प-वनमें सञ्चरित होनेवाली समशीतोष्ण (न अधिक गर्म और न अधिक शीतल) वायुके स्पर्शसे मनुष्य रवि-जनित सन्ताप तो दूर करने लगे, परन्तु कृष्णगतप्राणा (कृष्णहतचेता) विरहिणी गोपियोंका चित्त उस वायुके संस्पर्शसे और भी सन्तप्त होने लगा। उनका हृदय तो चित्तचोर श्रीकृष्णके पास था (जिसे वे आलिङ्गन द्वारा भी लौटा नहीं पाती थीं) ॥ ४५ ॥

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन्।

अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥

हे राजन्! निष्काम भगवत्-उपासना जिस प्रकार वैकुण्ठ-प्राप्ति आदि विशेष फलोंसे युक्त होकर समस्त भोग एवं सम्पद्को देनेवाली होती है, उसी प्रकार शरत् ऋतुमें गौ, मृगी, पक्षिणी एवं नारियाँ ऋतुमती हो गयीं और अपनी इच्छा न रहने पर भी अपने-अपने पतियोंसे मिलित होकर गर्भधारण करने लगीं ॥ ४६ ॥

उदहृष्यन् वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुदिना।

राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ॥ ४७ ॥

हे राजन्! सुयोग्य राजाके रहनेपर जिस प्रकार चोर-डाकुओंके अतिरिक्त दूसरे सभी निर्भय हो जाते हैं, उसी प्रकार शरत्-कालीन सूर्यके उदित होनेपर कुमुदिनीके अतिरिक्त कमल आदि सभी प्रकारके जलज पुष्प खिल गये ॥ ४७ ॥

पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च

महोत्सवैः।

बभौ भूः पक्वशस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥

उस समय पुर (बड़े-बड़े शहर) और ग्राम—सभी स्थानोंपर (नवान्नका स्वागत करनेके लिए) वैदिक अग्नि-यज्ञ एवं स्थानीय परम्पराओंकी लीकपर लौकिक महोत्सव (इन्द्रयागादि, अन्नप्राशनादि) सम्पन्न होने लगे। खेतोंमें अनाज पक गये। पृथ्वी शस्य-श्यामला दिखने लगी। बलराम एवं श्रीकृष्णकी विद्यमानताके कारण उनके अंशसे उत्पन्न पृथ्वी और भी सुशोभित होने लगी ॥ ४८ ॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे।

वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे शरद्वर्णन नाम

विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

सिद्धि-काल प्राप्त होनेपर भक्तादि सिद्धजन (भक्ति-साधना करके सिद्ध हुए जन) जिस प्रकार पार्षदादि देहको प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार वर्षाकालमें एक स्थानपर रुके हुए वणिक्, मुनि, राजा एवं स्नातक अपने-अपने स्थानसे (घरोंसे) बाहर निकल आये और वाणिज्य, स्वाच्छन्द्य (स्वतन्त्र विचरण), दिग्विजय एवं विद्या आदि अपने-अपने अभीष्ट कार्योंमें लग गये॥ ४९॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकविंशोऽध्यायः

शरत्-ऋतुमें श्रीकृष्णका रम्य वृन्दावनमें प्रवेश
एवं वेणुगीत

श्रीशुक उवाच—

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना।

न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे परीक्षित्! सुहावनी शरत्-ऋतुकी छटासे वन रमणीयताको प्राप्त हो रहा था। सरोवरोंका जल निर्मल था और उनमें विकसित कमलोंकी सुगन्धसे सुवासित, सुशीतल समीर मन्द-मन्द प्रवाहित हो रहा था। अच्युत भगवान् श्रीकृष्णने गायों और ग्वालोंके साथ उस वृन्दारण्यमें प्रवेश किया ॥ १ ॥

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्ग-

द्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।

मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः

सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

वृन्दावन सरोवरों, नदियों और पर्वतोंसे परिपूर्ण था। वहाँकी हरी-भरी वृक्षावलियाँ सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे लदी हुई थीं, जिनपर उन्मत्त भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। विविध पक्षियोंका सुमधुर कलरव चहुँ दिशि गूँज रहा था और उसकी गूँजसे सरोवर, नदियाँ और पर्वत सब-के-सब निनादित एवं प्रतिध्वनित हो रहे थे। मधुपति श्रीकृष्णने बलदेव एवं ग्वालबालोंके साथ गोचारण करते हुए इस वनमें प्रवेश किया एवं अपनी वंशीपर हृदयाकर्षक मधुर तान छोड़ दी। (ज्ञातव्य है कि गोचारणके समय बलदेव साथ थे, वंशीवादनके समयमें नहीं, अन्यथा लीला असङ्गत हो जाती) ॥ २ ॥

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।

काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णकी उस मधुर वंशीध्वनिको सुनते ही व्रजवनिताओंके हृदयमें प्रेमभावका उदय हो गया अर्थात् श्रीकृष्णसे मिलनेकी आकाङ्क्षा जाग उठी। वे एकान्तमें (श्रीकृष्णके अगोचर होकर) अपनी-अपनी सखियोंसे उनके रूप, गुण और वंशीध्वनिके प्रभावका वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥

तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम्।

नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥

हे राजन्! जैसे ही व्रजवनिताओंने वंशीध्वनिके माधुर्यका आपसमें वर्णन करना आरम्भ किया, वैसे ही उनके स्मृति-पटलपर श्रीकृष्णकी मधुर चेष्टाएँ, प्रेमपूर्ण चितवन, भौहोंके सङ्केत तथा मधुर मुसकान आदि भाव-भङ्गिमाएँ उदित हो गयीं, उनका चित्त कन्दर्पवेगसे अर्थात् श्रीकृष्णसे मिलनेकी अत्यधिक उत्कण्ठासे व्याकुल हो गया और वे कुछ भी वर्णन नहीं कर पायीं ॥ ४ ॥

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं

बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीञ्च मालाम्।

रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-

वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्त्तिः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णकी जिस रूप-स्मृतिने उन्हें कामोन्मत्ता कर दिया था, वह उनके हृदय-पटलपर अङ्कित थी, वे भावपूर्ण नेत्रोंसे देखती हुई वर्णन करने लगीं—श्रीकृष्णका मस्तक मोर-पंखके मुकुटसे मण्डित है, कानोंमें पीत वर्णका कनेर पुष्प विभूषित है, श्यामल विग्रहपर सुनहरे वर्णके वसन सुशोभित हैं, गलेमें पाँच वर्णोंके सुगन्धित वन्य-पुष्पोंसे ग्रथित वैजयन्ती-माला अलङ्कृत है। इस प्रकार नटवर वेशमें अपने अधरामृत द्वारा वंशीके छिद्रोंको पूर्ण करते हुए वे शङ्ख, चक्रादि चिह्नधारी चरण-कमलोंसे रास-लास्य करते हुए स्वपदाङ्कित रमणीय वृन्दावनमें ग्वालबालोंके साथ

प्रवेश कर रहे हैं। ग्वालबाल उनकी पवित्र कीर्तिका गान करते हुए उनका अनुगमन कर रहे हैं॥५॥

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्।

श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे॥६॥

हे राजन्! व्रजवनिताओं ने जड़, चेतन समस्त प्राणियों के मनों को हरण करनेवाली वंशीकी ध्वनिको सुना और सुनने के बाद उसके प्रभावका वर्णन करने लगीं। वर्णन करते-करते वे इतनी तन्मय हो गयीं कि मन-ही-मन परमानन्द-विग्रह श्रीकृष्णका आलिङ्गन करने लगीं। सभी व्रजतरुणियोंको समान अनुभव हो रहा था, इसलिए वे परस्पर भी उसी भावसे आलिङ्गन कर रही थीं कि तुम जो कह रही हो, वही मेरे हृदयकी भी दशा है, मैं भी वही कहना चाहती थी॥६॥

श्रीगोप्य ऊचुः—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः

सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।

वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं

यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥७॥

गोपियाँ एक दूसरेसे वार्त्तालाप करती हुई कहने लगीं—अरी सखियो! हम तो ऐसा मानती हैं कि नेत्रवान् व्यक्तियों के नेत्रोंका यह प्रिय-दर्शन ही यथार्थ फल है कि नन्दमहाराजके दोनों पुत्र बलराम एवं श्रीकृष्ण ग्वालोंके साथ गौओंको आगे करके उन्हें चरानेके लिए वन ले जा रहे हों अथवा वहाँसे उन्हें लौटाकर व्रजमें ला रहे हों, उस समय वे अधरोंपर मुरली धारणकर उसे बजा रहे हों, अनुरागमय, स्निग्ध कटाक्षोंका अपने अनुरक्त जनोंपर वर्षण कर रहे हों—सखी! इसी मुखारविन्दकी माधुरीका दर्शन करनेसे नेत्रोंकी सार्थकता है, इसके अतिरिक्त दूसरा फल हम नहीं जानती हैं॥७॥

चूतप्रवालबर्हस्तवकोत्पलाब्ज-
 मालानुपृक्तपरिधानाविचित्रवेशौ ।
 मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
 रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥

अन्य अनुरागवती गोपियोंने कहा—एक दिन इन बलराम एवं श्रीकृष्णने सुबल, श्रीदामा आदि सखाओंकी गोष्ठीमें त्रिभुवन, अभिनव, मनमोहक नटवर वेश धारण कर रखा था। बलरामने अपने गोरे शरीरपर सुरम्य नीलाम्बर और कृष्णने अपने श्यामल शरीरपर रमणीय पीताम्बर पहन रखा था। उन्होंने परिधानके बीच-बीचमें आम्रके नूतन पल्लव, सिरपर मोरपंख एवं पुष्प-गुच्छोंके द्वारा रचित मुकुट, कानोंमें उत्पल-रचित कुण्डल, दाहिने हस्तमें लीला कमल एवं गलेमें पुष्पोंकी कलियोंकी बनी आकर्षक मालाएँ धारण कर रखी थीं। रङ्ग-स्थलपर जिस प्रकार श्रेष्ठ नटवर-युगल गान-नर्तन करते हुए शोभा पाते हैं, उसी प्रकार सखाओंके द्वारा गीत गाने और वाद्य बजानेपर वे कभी नृत्य कर रहे थे और कभी स्वयं गा रहे थे। हम तो दूरसे ही सौन्दर्यामृत एवं गीतामृतका आस्वादन कर रही थीं ॥ ८ ॥

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
 र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
 भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं हृदिन्यो
 हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः ॥ ९ ॥

दूसरी गोपियोंने कहा—अरी सखियो! पुरुष (स्थावर) जातिमें उत्पन्न होनेपर भी इस वेणुने पूर्व जन्मोंमें न जाने कौन-सा पुण्याचरण किया था, जिसके कारण आज यह केवल हम गोपियोंकी अपनी सम्पत्ति (गोपियों द्वारा उपभोग्य)—श्रीकृष्णके अधरामृतका प्रचुररूपमें स्वतन्त्रभावसे इस प्रकार पान कर रहा है कि अब इस वेणुमें नाममात्रका ही रस बचा होगा। और देखो, जिनका रस पान करके यह वेणु वृक्ष पुष्ट हुआ था—मातृ-तुल्य

वे ही नदियाँ आज इसके सौभाग्यको देखकर कितनी रोमाञ्चित हो रही हैं—उनमें आनन्दके कारण कमल-कमलिनियाँ विकसित हो रही हैं। प्रिय सखि! और भी देखो, कुलके वृद्धजन जिस प्रकार अपने वंशमें भगवत्-भक्त-सन्तानको देखकर रोमाञ्चित होकर आनन्दपूर्वक अश्रु विसर्जित करते हैं, उसी प्रकार जिनके वंशमें इस वेणुने जन्म-ग्रहण किया है, वे ही वृक्ष आज मधु-धारा-वर्षणके छलसे आनन्दाश्रु बहा रहे हैं॥ ९॥

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्ववरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥

कोई दूसरी व्रजरमणी कहने लगी—अरी सखी! यह वृन्दावन इस समय श्रीकृष्णके पाद-पद्म-युगलके चिह्नोंसे चिह्नित होकर परम शोभाको प्राप्त हो रहा है। जब गोविन्द अपनी मुनिजनमोहिनी बाँसुरी बजाते हैं, तब उसे मेघ-गर्जन समझकर मोर मतवाले हो जाते हैं और उस वंशीकी ध्वनिके लय-तालपर नृत्य करने लगते हैं। इस अद्भुत दृश्यको देखकर पर्वतकी चोटियोंपर विचरण करनेवाले कृष्णसार मृग इत्यादि पशु एवं कपोतादि सारे पक्षी आनन्दके कारण खड़े-के-खड़े रह जाते हैं। प्रिय सखी! इस समय तो यह वृन्दावन वैकुण्ठसे भी अधिक पृथ्वीकी कीर्त्तिका विस्तार कर रहा है॥ १०॥

धन्याः स्म मूढगतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥

दूसरी व्रजनारियोंने कहा—अहो! वनमें विचरनेवाली ये मूढमति हरिणियाँ निम्न योनिकी होनेपर भी धन्य हैं। जब प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेश धारणकर बाँसुरी बजाते हैं, तब ये उस

वंशीकी तान सुनकर अपने पतियों कृष्णसार मृगोंके साथ मनोहरवेशधारी नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी ओर दौड़ी चली आती हैं और प्रणयमयी दृष्टिसे उन्हें निहारा करती हैं। अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखोंके द्वारा श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें पूजा अर्पण करती हैं और श्रीकृष्णकी प्रेममयी चितवनको अपने अभिनन्दनके रूपमें स्वीकार करती हैं ॥ ११ ॥

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविविक्तगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥

अन्य गोपियोंने कहा—अरी सखियो! आकाशचारिणी देवाङ्गनाएँ भी जब कामिनियोंको आकर्षित करनेवाले और उनके नयनोत्सव-स्वरूप मोहन-रूप एवं स्वभावसे सम्पन्न श्रीकृष्णका दर्शन करती हैं, तथा उनके द्वारा निनादित वेणुका मधुर एवं असङ्कीर्ण सङ्गीत (चित्र-विचित्र-आलाप) सुनती हैं, तब विमानपर ही उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र लालसा जाग उठती है। मिलन-इच्छासे ही उनका धैर्य टूट जाता है और वे मोहित-सी होकर अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं। उस समय उनके वेणी-बन्धनमें गुँथे हुए पुष्प गिरने लगते हैं और कटि-प्रदेशसे वस्त्र-ग्रन्थियाँ भी खिसकने लगती हैं ॥ १२ ॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥ १३ ॥

दूसरी गोपियोंने कहा—अरी सखियो! इधर देखो! गौओं एवं मातृ-स्तनोंसे क्षरित दुग्ध-पानमें रत बछड़ोंको तो देखो! ये बछड़े अपने कानोंके दोनोंको खड़ा करके श्रीकृष्णके मुखसे निर्गत वंशी-सङ्गीत-सुधाका पान कर रहे हैं। गायोंके थनोंसे दूध अपने

आप क्षरित हो रहा है, परन्तु सङ्गीत-परायण ये बछड़े मुखमें लिये दूधके घूँटको न तो उगल पा रहे हैं और न ही निगल पा रहे हैं। गौएँ एवं वत्स—दोनों ही अपनी-अपनी दृष्टि द्वारा श्रीकृष्णको अपने हृदयमें उतारकर मन-ही-मन आलिङ्गन कर रहे हैं। अत्यन्त आनन्दसे उनके नेत्रोंसे आँसू छलछला रहे हैं ॥ १३ ॥

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णोक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

दूसरी गोपियोंने कहा—ओ माँ! हे अम्ब! इस वनमें ये जो पक्षी वास कर रहे हैं, वे सम्भवतः ऋषि-मुनि ही हैं। मुनि जैसे ही श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, वैसे ही वेदोक्त कर्म-फलोंका त्याग कर देते हैं और वेद-तरुकी शाखाओंपर आरूढ़ होकर सुरम्य एवं रुचिर प्रवालरूप-कौपलरूप (सुन्दर पल्लवों द्वारा मण्डित वृक्षकी शाखाओंमें भी वेणुनाद-श्रवणसे अङ्कुर आदि विकासरूप दर्शन हो रहा है) समस्त स्थानीय कर्मोंको (सेवा-कर्मोंको) ग्रहण करके सुखपूर्वक मात्र श्रीकृष्ण-गीतका (वंशीके त्रिभुवनमोहन सङ्गीतका) श्रवण करते हैं। इसी प्रकार ये सारे पक्षी भी कृष्णका दर्शन करने हेतु वृक्षोंकी शाखाओंपर आरूढ़ हो गये हैं। अन्य ध्वनियोंसे विमुख होकर इन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये हैं और मात्र कृष्ण-कृत वेणु-सङ्गीत ही सुन रहे हैं और उन्हें ही अपलक दृष्टिसे देख रहे हैं। इस समय वेणुनादकी तरङ्गोंसे वृक्षोंकी टहनियाँ भी भाव-विभोर हो रही हैं (पक्षियोंका वनवास, नेत्र मूँदना, मौन एवं स्थैर्य आदि गुण महामुनियोंके ही समान हैं) ॥ १४ ॥

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्त्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।

आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुखरे-

गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥

दूसरी गोपियोंने कहा—अरी सखी! चेतन हरिनियों, गौओं और पक्षियोंकी तो बात ही जाने दो, ये अचेतन नदियाँ जब श्रीकृष्णकी वंशीका सङ्गीत सुनती हैं, तो कामवेगसे इनका जल क्षुब्ध (भङ्ग-प्रवाह) हो जाता है और तरङ्गोंके भँवरके रूपमें इनके हृदयमें प्यारे श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र लालसा (कामकी तीव्रता) स्पष्ट ही लक्षित हो रही है। कामके वशीभूत हो जानेके कारण इनका प्रवाह खण्डित हो रहा है। ये अपनी तरङ्गोंरूप भुजाओं द्वारा कमलोंको उपहाररूपमें धारण करके श्रीकृष्णके श्रीचरण-युगलमें समर्पण कर रही हैं और इस तरह हे सखी! मानो ये अपना हृदय ही समर्पण कर रही हैं अथवा ये भगवान्‌के पदयुगलका आलिङ्गन कर रही हैं। देखो! श्रीकृष्णके चरण-कमलोंको इन्होंने पुष्पोंसे समाच्छादित कर रखा है ॥ १५ ॥

दृष्ट्वातपे व्रजपशून् सह रामगोपैः

सञ्चारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् ।

प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः

सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥

अन्य गोपियोंने कहा—यह देखो! इस मेघमण्डलको देखो! सखि! जब व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण बलदेवजी एवं ग्वालबालोंके साथ चिलचिलाती धूपमें व्रज-पशुओंको चराते हुए क्षण-क्षण वंशीवादनमें रत रहते हैं, तब उन्हें देखकर इन मेघोंके हृदयमें प्रेम उमड़ पड़ता है; और ये आकाशमें उदित होकर उनके ऊपर मँडराने लगते हैं। इतना ही नहीं, नन्हे-नन्हे श्वेत कुसुमोंके समान हिम-वर्षणके रूपमें नन्ही-नन्ही फुहारें बरसाते हैं तथा अपने सखा घनश्यामपर छाया करनेके लिए वे श्यामरङ्गके मेघ अपने शरीरको ही छाता बनाकर तान देते हैं। इस तरह ये बादल श्रीकृष्णका सम्पूर्णरूपसे सुख विधान करते हैं ॥ १६ ॥

पूर्णाः पुलिन्द उरुगायपदाब्जराग-
 श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
 तद्वर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
 लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥

(राधाजीका मादन भाव—) प्यारी भटू! वस्तुतः वृन्दावनकी भीलनियाँ अथवा पुलिन्द कन्याएँ (शबर कामिनियाँ) ही आज धन्य और कृतार्थ हुई हैं। हमारे प्रियतम श्रीकृष्णकी प्रियाओंके वक्षःस्थलपर अनुरञ्जित कुङ्कुम रतिकालमें उनके पद-युगलका स्पर्शकर वैसा ही सौन्दर्य प्राप्त करता है, जैसे श्रीकृष्णके चरण-तलकी अरुणिमा। जब कृष्ण वृन्दावनमें भ्रमण करते हैं, तब यह कुङ्कुम-केसर तृणोंमें संलिप्त हो जाता है। इसे देखकर पुलिन्द-कन्याओंमें काम-व्यथा उदित हो जाती है। तब वे सौभाग्यवती पुलिन्द कन्याएँ इस कुङ्कुमको तृण-तृणसे छुड़ाकर अपने मुख एवं स्तनोंपर लेपन करके अपने हृदयकी काम-व्यथाको शान्त करती हैं ॥ १७ ॥

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
 यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।
 मानं तनोति सहगोणयोस्तयोर्यत्
 पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ १८ ॥

अरी अबलाओ! आहा! यह गिरिराज गोवर्धन धन्यातिधन्य है। यह हरिभक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ है। इसकी क्या प्रशंसा की जाय! यह गोवर्धन पर्वत नयनाभिराम बलराम और प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके अति आनन्दित हो रहा है। (इसकी शिलाएँ शीतकालमें उष्ण एवं ग्रीष्मकालमें शीतल होकर अति सुखदायी हो जाती हैं) यह उन्हें पानीय (झरनोंका जल), उनकी गौओंके लिए हरित, पुलकित एवं उत्तम तृण (घास), उनके विश्रामके लिए कन्दराएँ और भोजनके लिए कन्द-मूल आदि अर्पण करता है तथा बलराम, गौओं एवं ग्वालबालोंके साथ

श्रीकृष्णका बड़ा ही पूजा-सत्कार करता है। यथार्थमें यही अतिशय धन्य है! ॥ १८ ॥

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

अरी सखियो! क्या कहूँ! ये बलराम (गौरसुन्दर) और श्यामसुन्दर जब अपने गोपाल-सखाओंके साथ गायोंके पैरोंको बाँधनेवाली रस्सी—नोवनाको (इस रस्सीके दोनों अग्रभागोंमें मुक्ताकी लड़ियाँ लटकी होती हैं, जो पगड़ीकी भाँति प्रतीत होती है) सिरपर लपेटकर एवं पाशको (फंदा—भागनेवाली गौओंको पकड़नेके लिए रस्सी) कन्धोंपर धारणकर एक वनसे दूसरे वनमें गोचारण कराते हुए मधुर पदोंसे युक्त उदार (सभी जीवोंके लिए परमानन्ददायी) वंशीकी मधुरातिमधुर तान छोड़ते हैं, तब व्रजवासियोंकी बात तो दूर रहे, शरीरधारियोंमें जो चेतन पशु-पक्षी आदि गतिवान हैं, वे निस्पन्द होकर (चित्र लिखित-से होकर) निश्चलत्व (स्थावर-धर्म) को धारण कर लेते हैं एवं जो स्थावर-पर्वत, तरु, नद-नदियाँ इत्यादि हैं, उनमें रोमाञ्च हो आनेके कारण जङ्गम (चलन) धर्म उपस्थित हो जाता है अर्थात् वृक्षोंमें पुलक आदि उत्पन्न हो जाते हैं—यह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ १९ ॥

एवम्विधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे वेणुगीतं
नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

परीक्षित्! गोपियाँ इस प्रकार एक वनसे दूसरे वनमें विचरण करनेवाले वृन्दावनविहारी भगवान् श्रीकृष्णकी विहार-क्रीड़ाओं एवं

अन्यान्य लीलाओंका वर्णन करतीं और तन्मय हो जातीं (परम प्रेमवती गोपियोंका यह पूर्वराग अतीव विचित्र एवं परम मधुर है) ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

द्वाविंशोऽध्यायः

गोप-कन्याओंका कात्यायनी-व्रत, श्रीकृष्ण द्वारा उनका
चीर-हरण तथा वरदान

श्रीशुक उवाच—

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।

चेरुहविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! अब हेमन्त ऋतुका आगमन हुआ। इस ऋतुके प्रथम मासमें अर्थात् अग्रहायणमें नन्द-गोकुलकी गोपकुमारियोंने कात्यायनी देवीकी विधिवत् पूजा एवं व्रत किये। इन दिनों वे केवल हविष्यान्न (बिना हल्दीकी खिचड़ी) ही भोजन करती थीं (कात्यायनी देवी भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्त शक्तिसे सम्पन्न शक्ति-विशेष हैं। इस स्थलपर गोपकुमारियोंके पूर्वागका वर्णन किया जा रहा है) ॥ १ ॥

आप्लुत्याम्भसि कालिन्ध्या जलान्ते चोदितेऽरुणे।

कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥ २ ॥

गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः।

उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥

हे राजन्! वे अरुणोदय-कालमें ही यमुना-स्नान कर लेतीं और जलके समीप तट-प्रान्तमें बालुकामयी कात्यायनीकी प्रतिमाका निर्माण करके सुगन्धित चन्दन, पुष्प-माल्य, धूप, दीप, पूजाके विविध प्रकारके उपकरण, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, पल्लव, फल, तण्डुल एवं नाना प्रकारके उपहारों (वस्त्राभूषण) द्वारा देवीकी पूजा करतीं ॥ २-३ ॥

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।

नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।

इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ ४ ॥

ये कुमारियाँ कात्यायनी देवीको (भगवान्की पराशक्ति योगमायाको) सम्बोधन करते हुए कहतीं—“हे महामाये (भगवान्की महाशक्तिस्वरूपा)! हे महायोगिनी (दुर्लभ वस्तुकी प्राप्तिके समाधानमें परम-समर्था)! हे अधीश्वरी (आपसे बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है)! हे कात्यायनी देवी! आप नन्दनन्दन श्रीकृष्णको हमारा पति बना दीजिये। आपके चरणोंमें हमारा नमस्कार है।” अपनी आराधनामें वे इसी मन्त्रका जप करती थीं ॥ ४ ॥

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः।

भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥ ५ ॥

इन कुमारियोंका चित्त सदा-सर्वदा श्रीकृष्णमें ही लीन रहता था। उन्होंने इस सङ्कल्पके साथ कि “नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही हमारे पति हों” एक महीने तक व्रत रखा और वृन्दादेवी द्वारा निर्दिष्ट विधिके अनुसार कार्तिक पूर्णिमाके दूसरे दिनसे ही भद्रकालीकी (गोकुलेश्वरी दुर्गाकी) भलीभाँति पूजा की ॥ ५ ॥

ऊषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः।

कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्ध्यां स्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥

ये कुमारियाँ प्रतिदिन उषाकालमें (सूर्योदयके चार दण्ड पहले) ही शय्या त्याग कर देतीं और एक-दूसरेका नाम ले-लेकर पुकारते हुए यमुना-स्नानके लिए चल देतीं। जाते समय रास्तेमें परस्पर हाथ पकड़कर उच्च स्वरसे श्रीकृष्णकी लीला-कथाओं और नामोंका सङ्कीर्तन करतीं ॥ ६ ॥

नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत्।

वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजहुः सलिले मुदा ॥ ७ ॥

एक बार मासके अन्तिम दिन पूर्णिमापर उन्होंने अन्यान्य दिवसोंके समान अपने पहने हुए वस्त्रोंको उतारा और यमुना नदीके किनारे रखा। अनन्तर कृष्ण-चरितका गान करती हुई वे बड़े आनन्दपूर्वक जलमें विहार करने लगीं ॥ ७ ॥

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।

वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ ८ ॥

परीक्षित्! नारद, शङ्करादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण इन व्रजकुमारियोंकी अभिलाषाओंको अच्छी तरह जानते थे। वे अपने सखा (दाम, सुदाम, वसुदाम और किङ्किणी नामक) ग्वालबालोंके साथ उनकी साधनाका फल प्रदान करनेके अभिप्रायसे यमुना-तटपर पहुँचे। (यद्यपि गोपकुमारियोंने श्रीकृष्णको पतिरूपमें पानेके लिए कात्यायनी देवीकी अर्चना की थी एवं कात्यायनी देवी ही उनकी पूजाकी फलदात्री हैं, तथापि समस्त कर्मोंके फलदाता एवं उनकी पूजाके प्रत्यक्ष फलस्वरूप परमेश्वर श्रीकृष्ण स्वयं ही उन्हें फल प्रदान करनेके लिए उनके निकट उपस्थित हुए।) ॥ ८ ॥

तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः।

हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह ॥ ९ ॥

उन्होंने इन कुमारियोंके सारे वस्त्रोंको उठा लिया और बड़ी फुर्तीके साथ तटपर स्थित एक कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये। यह देख सखा जोर-जोरसे हँसने लगे और वे स्वयं भी हँसते हुए उन कुमारियोंसे परिहासपूर्ण वचन कहने लगे—(बाल्य स्वभाववश अकारण हास्यके द्वारा गोपियोंको अपनी उपस्थितिका ज्ञान कराया है) हे अबलाओ! इस कदम्बकी शाखाओंपर कौन इन वस्त्रोंको बाँध गया है? क्या तुम उसे जानती हो? मुझे दूरसे प्रतीत हुआ कि कदम्बवृक्षपर विचित्र फल लगे हैं, इसलिए मैं देखने यहाँ चला आया ॥ ९ ॥

अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम्।

सत्यं ब्रुवाणि नो नर्म यद्ययं व्रतकर्षिताः ॥ १० ॥

अरी कुमारियो! तुम यहाँ आकर इच्छा हो, तो अपने-अपने वस्त्र ले जाओ। तुम व्रत करनेके कारण परिश्रान्त एवं कृश

(दुबली) हो गयी हो। मैं इसलिए तुम सबसे सत्य बात कह रहा हूँ, परिहास नहीं कर रहा (तुम्हारे यहाँ आनेपर मैं तुम्हारे वस्त्र दे दूँगा) ॥ १० ॥

न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः।

एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवेति सुमध्यमाः ॥ ११ ॥

हे क्षीण-कटिवाली तरुणियो! मैंने पहले कभी झूठी बात नहीं कही है और अभी भी झूठ नहीं कह रहा हूँ। मेरे ये सखा ग्वालबाल भी यह जानते हैं कि मैं कभी झूठ नहीं बोलता। इसलिए अकेली एक-एक करके आओ अथवा सब मिलकर यहाँ आओ और अपने वस्त्र ले जाओ, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है ॥ ११ ॥

तस्य तत् क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः।

व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ १२ ॥

रसिक-चूडामणि श्रीकृष्णके इस परिहासको देखकर गोप-कुमारियोंका हृदय प्रेम-रसमें सराबोर हो गया। वे लज्जासे सकुचाती हुई एक-दूसरीकी ओर देखने और मुसकराने लगीं, परन्तु जलसे बाहर नहीं निकलीं ॥ १२ ॥

एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणाक्षिप्तचेतसः।

आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥

जब श्रीकृष्णने इस प्रकार विनोदपूर्ण रीतिसे (हँसी-हँसीमें) बार-बार यही बात कही, तब उनके परिहासमय वचनोंसे कुमारियोंका मन उनकी ओर और भी मुग्ध हो गया। वे शीतल जलमें आकण्ठ निमग्न थीं और शैत्यके कारण थर-थर काँप रही थीं। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा— ॥ १३ ॥

माऽनयं भोः कृथास्त्वान्तु नन्दगोपसुतं प्रियम्।

जानीमोऽङ्गं व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥

हे प्यारे श्रीकृष्ण! ऐसा अनुचित आचरण करना तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। हम जानती हैं कि तुम नन्दबाबाके लाड़ले पुत्र हो, बड़े विख्यात हो। व्रजमण्डलमें सभी तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। तुम हमें भी बहुत प्रिय हो। हमें हमारे वस्त्र दे दो। देखो, हम शीतसे काँप रही हैं ॥ १४ ॥

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम्।

देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवाम हे ॥ १५ ॥

प्यारे श्यामसुन्दर! हम तुम्हारी दासी हैं। अतः तुम जो भी कहोगे, हम उन वचनोंका पालन करेंगी। तुम तो धर्मको भलीभाँति जाननेवाले हो। हमें हमारे वस्त्र दे दो, कष्ट मत दो। अन्यथा नन्दबाबाके पास जाकर तुम्हारे इस अनीतिपूर्ण व्यवहारके (स्त्रीधन-हरण) विषयमें हम सब बतला देंगी ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ।

अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छत शुचिस्मिताः।

नोचेन्नाहं प्रदास्ये किं क्रुद्धो राजा करिष्यति ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे अबलाओ! तुम्हारी मुसकान शुभ, पवित्र और प्रेमसे भरी है। (धर्म परीक्षामें मुख मलिन होता देखकर) सुनो, यदि तुमलोग मेरी दासी हो और मेरी आज्ञाओंका पालन करती हो, तो यहाँ प्रसन्नचित्तसे आओ और अपने-अपने वस्त्र ग्रहण करो, अन्यथा मैं इन वस्त्रोंको दूँगा नहीं। महाराज नन्द क्रोधित हो भी जाएँ, तो मेरा क्या कर लेंगे? (प्रेमवश कुछ भी नहीं कहेंगे।) ॥ १६ ॥

ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः।

पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥

परीक्षित्! गोपियाँ ठण्डसे ठिठुर रही थीं। व्रतके कारण उनकी काया भी क्षीण (कमजोर) हो गयी थी। भगवान्‌के वचन सुनकर

वे दोनों हाथोंसे अपने गुप्त अङ्गोंका आच्छादन करती हुई यमुना-जलसे बाहर निकलीं ॥ १७ ॥

भगवानाहता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ।

स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥

गोपियोंके इस प्रकारके शुद्ध-भावको देखकर भगवान् बड़े प्रसन्न हो गये। लज्जाके कारण उन्हें मृतप्राय देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उनके वस्त्रोंको अपने कन्धेपर रख लिया और हँसते हुए प्रेमपूर्वक बोले ॥ १८ ॥

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता

व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।

बद्धाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेऽहसः

कृत्वा नमोऽथो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥

हे कुमारियो! तुमने व्रतका अवलम्बन करके जो वैदिक अनुष्ठान किया है, उसे तो ठीकसे निभाया है, किन्तु विवस्त्र होकर स्नान करनेके कारण देव-अवज्ञारूप अपराध अर्थात् जलके देवता वरुण एवं यमुनाजीके प्रति अपराध कर बैठी हो। इस पापके निवारणके लिए मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करो, तत्पश्चात् तुम अपने-अपने परिधेय वस्त्रोंको ले सकती हो ॥ १९ ॥

इत्यच्युतेनाभिहितं ब्रजाबला

मत्वा विवस्त्राप्लवनं ब्रजच्युतिम् ।

तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां

साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥

श्रीकृष्णकी बात सुनकर ब्रजकुमारियोंने मान लिया कि वस्तुतः नग्न-स्नानके कारण हमारे व्रतमें त्रुटि हुई है। अतः मनोकामनाकी पूर्णताके लिए और व्रतकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए उन्होंने उस व्रतके तथा समस्त पुण्य कर्मोंके साक्षात् फलस्वरूप

श्रीकृष्णको ही प्रणाम कर लिया क्योंकि श्रीकृष्ण ही समस्त त्रुटियों, अपराधों एवं पापोंका मार्जन करनेवाले हैं ॥ २० ॥

तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः।

वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत् करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥

यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अपनी आज्ञानुसार कुमारियोंको प्रणाम करते देखकर बड़े सन्तुष्ट हुए। उनके हृदयमें उन ब्रजकुमारियोंके प्रति करुणाका उद्रेक हो गया और उन्होंने उनके परिधेय वस्त्रोंको उन्हें प्रदान कर दिया ॥ २१ ॥

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः

प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः।

वस्त्राणि चैवापहतान्यथाप्यमुं

ता नाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥ २२ ॥

प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने “हे कुमारियो! निर्वस्त्र होकर स्नान करना अपराध है” आदि वचनोंसे उन्हें छला, “यहाँ आकर निज-निज वस्त्र ग्रहण करो” द्वारा उनकी शील-लज्जाका अपनोदन (विदूरित) किया, “मैं सत्य बोलता हूँ, परिहास नहीं करता” आदि वचनोंसे उनका उपहास किया, “हाथ जोड़कर प्रणाम करो” आदि वचनोंसे उन्हें कठपुतलियोंके समान नचाया, यहाँ तक कि उनके वस्त्र भी हरण कर लिये। इस प्रकारका आचरण किये जानेपर भी गोपियोंने उनके प्रति किञ्चित् भी दोष-दृष्टि नहीं रखी, न ही रुष्ट हुई, बल्कि अपने प्रियतमके सङ्गका अवसर प्राप्त करके वे और भी प्रसन्न हुईं। उन्होंने उन्हें न तो दोष दृष्टिसे देखा और न ही कोई असूया व्यक्त की ॥ २२ ॥

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गमसज्जिताः।

गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिन् लज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥

परीक्षित्! प्रियतमके सङ्गसे वशीभूत कुमारियोंने वस्त्र तो पहन लिये, परन्तु उनके चित्त श्रीकृष्णके द्वारा सम्पूर्णरूपसे आकृष्ट कर लिये गये थे। अतः वे वहाँसे एक पग भी नहीं चल सकीं। अपनी लजीली-रसीली चितवनसे श्रीकृष्णको निहारती हुई वहीं-की-वहीं खड़ी रह गयीं ॥ २३ ॥

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया।

धृतव्रतानां सङ्कल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥

कुमारियोंने पत्नीके रूपमें श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शकी कामनासे ही कात्यायनी व्रत किया था—भगवान् दामोदर श्रीकृष्ण उनके इस सङ्कल्पको भलीभाँति जानते थे। अतः उनसे कहने लगे— ॥ २४ ॥

सङ्कल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम्।

मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥

हे साध्व्यो! तुम सबने जो अर्चनरूप सङ्कल्प किया था, वह मेरी पूजाके लिए ही था, उसे तुम लज्जाके कारण कह नहीं रही हो—यह मैं जानता हूँ। मैं तुम्हारे इस सङ्कल्पका अनुमोदन करता हूँ। यह सङ्कल्प अवश्य ही सत्य होगा ॥ २५ ॥

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।

भर्जिता क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेशते ॥ २६ ॥

हे कुमारियो! भुने हुए एवं उबाले हुए जौ आदि धान्य जिस प्रकार पुनः अङ्कुर उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, उसी प्रकार जिन्होंने मेरे प्रति अपने प्राण और चित्त समर्पित कर रखे हैं, उनमें वासना एवं काम सांसारिक भोगोंके लिए नहीं हुआ करते (उनका चित्त तो मुझमें आविष्ट रहता है) ॥ २६ ॥

याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः।

यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ ॥

हे अबलाओ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया है। अब तुम व्रजमें लौट जाओ। हे सतियो! तुम सबने जिस फलके उद्देश्यसे

इस कात्यायनी-पूजा-व्रतका पालन किया था, उसीकी सिद्धिके लिए आगामी शरत्-ऋतुकी रात्रियोंमें तुम सब मेरे साथ विहार करोगी ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ।

ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रात्रिर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकारसे आदेश दिया, तब पूर्णकामा कुमारियाँ श्रीकृष्णके पादपद्म-युगलका ध्यान करती हुई जानेकी इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्टसे व्रजमें चली गयीं ॥ २८ ॥

अथ गोपैः परिवृतो भगवान् देवकीसुतः ।

वृन्दावनादगतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥

प्रिय परीक्षित्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण बलराम और ग्वालबालोंसे परिवेष्टित होकर गोचारण कराते हुए वृन्दावनसे बहुत दूर चले गये ॥ २९ ॥

निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ।

आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥

उस समय ग्रीष्म ऋतु थी। सूर्यकी किरणें प्रखर हो रही थीं, वृक्ष अपनी छाया प्रदानकर छत्रका काम कर रहे थे। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्णने ग्वालबालोंसे कहा— ॥ ३० ॥

हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन ।

विशालवृषभौजस्विन् देवप्रस्था वरूथप ॥ ३१ ॥

पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान् ।

वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ॥ ३२ ॥

हे स्तोककृष्ण! हे अंशु! हे श्रीदाम! हे सुबल! हे अर्जुन! हे विशाल! हे ऋषभ! हे तेजस्विन्! हे देवश्रेष्ठ! हे वरूथप! तुमलोग इन वृक्षोंको देखो। ये महाभाग्यवान् हैं। एकमात्र

परोपकारके लिए ही ये जीवन धारण करते हैं। ये स्वयं आँधी, वर्षा, धूप एवं पाला सहन करते हैं और उनसे उत्पन्न होनेवाले कष्टोंसे हमारी रक्षा करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।

सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥ ३३ ॥

सुनो! ये वृक्ष समस्त जीवोंके ही जीविका-स्वरूप हैं, इसलिए इनका जीवन अति धन्य है। सत्पुरुषोंके पाससे याचक जिस प्रकार कभी खाली हाथ नहीं लौटते, उसी प्रकार इन वृक्षोंके पाससे भी कोई निराश नहीं लौटता ॥ ३३ ॥

पत्रपुष्पफलच्छाया मूलवल्कलदारुभिः।

गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ॥ ३४ ॥

प्रिय सखाओ! ये पत्र, पुष्प, फल, छाया, जड़, वल्कल (छाल), लकड़ी, पुष्पादिकी गन्ध, निर्यास (गोंद), राख, कोयला, पल्लव आदिके अङ्कुर (कोंपल) प्रदान करके सभीकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।

प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय आचरणं सदा ॥ ३५ ॥

प्यारे सखाओ! इस लोकमें अपने प्राण, धन, बुद्धि एवं वाणी द्वारा सदैव प्राणियोंका मङ्गल करना चाहिये। इसीमें मनुष्यके जन्मकी सफलता मानी जाती है ॥ ३५ ॥

इति प्रवालस्तबक फलपुष्पदलोत्करैः।

तरूणां नम्रशाखानां मध्यतो यमुनां गतः ॥ ३६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार वृक्षोंका अभिनन्दन करते हुए श्रीकृष्ण नयी-नयी कोंपलों, गुच्छों, फल, पुष्प एवं पत्तोंके कारण झुकी हुई शाखाओंसे युक्त वृक्षोंके इधर-उधर विचरण करते रहे और उन्हींके बीचमेंसे निकलकर यमुनाकी ओर निकल आये ॥ ३६ ॥

तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः।

ततो नृपः स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम्॥ ३७ ॥

हे राजन्! यमुनाका जल सुपरिष्कृत, शीतल एवं हितकारी था। उन्होंने पहले गौओंको जल-पान कराया और बादमें स्वयं भी उस जलको पिया। साथमें गोपोंने भी प्रचुर मात्रामें उस सुस्वादु-जलका पान किया॥ ३७ ॥

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून् नृप।

कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन्॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे यमुनागमनं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

हे राजन्! जिस समय श्रीकृष्ण और बलरामके सखा ग्वालबाल यमुनाके समीपस्थ वनमें स्वच्छन्दरूपसे पशुओंको चरा रहे थे, तभी उन्हें भूख लग गयी। अतः वे बलराम और श्रीकृष्णके पास आये और कहने लगे—॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बाईसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

त्रयोविंशोऽध्यायः

यज्ञपत्नियोंपर कृपा

श्रीगोपा ऊचुः—

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण।

एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥

ग्वालबालोंने कहा—हे महाबाहो बलराम! हे दुष्टदमन श्रीकृष्ण! हम भूखसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं, तुमलोग इसकी शान्तिका कुछ उपाय करो ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः।

भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णने जब ग्वालबालोंकी इस प्रार्थनाको सुना, तो वे मथुराकी भक्तिमती ब्राह्मण-पत्नियोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे इस प्रकार कहने लगे— ॥ २ ॥

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः।

सत्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे प्रिय ग्वालबालो! समीपमें ही वेदज्ञ ब्राह्मण स्वर्गकी कामनासे आङ्गिरस नामक यज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं। तुम उसी यज्ञस्थलीपर चले जाओ ॥ ३ ॥

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः।

कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥

हे गोपसखाओ! मैं ही तुमलोगोंको वहाँ जानेके लिए प्रेरित कर रहा हूँ। अतः तुम्हारे लिए लज्जाका कोई भी कारण नहीं है। मेरे बड़े भाई पूज्यपाद भगवान् बलदेवजीका एवं मेरा नाम

कहनेपर वे तुम्हें दानके अयोग्य नहीं समझेंगे। तुमलोग वहाँ जाओ और उनसे भोजनकी प्रार्थना करो॥ ४॥

इत्यादिष्टा भगवता गत्वायाचन्त ते तथा।

कृताञ्जलिपुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि॥ ५॥

ग्वालबाल भगवान्के आदेशसे उस यज्ञस्थलीपर पहुँचे और बलराम और श्रीकृष्णका नाम लेकर अन्नके लिए निवेदन किया। पहले उन्होंने पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत्-प्रणाम किया और हाथ जोड़कर ब्राह्मणोंसे इस प्रकार प्रार्थना की—(ये याज्ञिक ब्राह्मण हमारे व्रजस्थित ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ हो सकते हैं। इसलिए विनय भाव प्रकाश किया है)॥ ५॥

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः।

प्राप्तान् जानीत भद्रं वो गोपान् नो रामचोदितान्॥ ६॥

हे पृथ्वीके मूर्तिमान् देवताओ! कृपया हमारी बात ध्यानसे सुनें। हम ग्वालबाल हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा और बलदेवजीकी प्रेरणासे हम यहाँ आपके पास आये हैं। यह जान लीजिये। आपका मङ्गल हो॥ ६॥

गाश्चारयन्तावविदूर ओदनं

रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ।

तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि

श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः॥ ७॥

हे ब्राह्मणो! भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए समीपमें ही आये हैं। उन्हें इस समय भूख लगी है, इसलिए आपसे कुछ अन्न चाहते हैं। आप धर्मका रहस्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। उन अन्नप्रार्थी बलराम-कृष्णके प्रति यदि आपकी श्रद्धा हो, तो कुछ अन्न दान करें॥ ७॥

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः।

अन्यत्र दीक्षितस्यापि नात्रमशनन् हि दुष्यति॥ ८॥

(दीक्षितोंका अन्न नहीं खाना चाहिये—अतः हमारा अन्न ग्रहण करनेसे दोष होगा—ब्राह्मणोंको यह संशय हो सकता था, इसलिए स्वयं ही कहने लगे—) हे सज्जनश्रेष्ठ ब्राह्मणो! यज्ञ-दीक्षा आरम्भ करके अग्निसोमीय यज्ञमें पशु-वधसे पूर्व दीक्षितका अन्न ग्रहण करनेमें दोष होता है। आपके यज्ञमें यह कार्य पूर्ण हो चुका है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रोंमें और इन्द्र देवताके सौत्रामणि यज्ञ (इन्द्र देवताको प्रसन्न करनेवाला यज्ञ) के अतिरिक्त अन्य यज्ञमें दीक्षित व्यक्तिका अन्न भोजन करनेसे निश्चय ही दोष नहीं होता, इसलिए उन्होंने आपसे अन्नके लिए प्रार्थना की है॥ ८ ॥

इति ते भगवद् याच्यां शृण्वन्तोऽपि शुश्रुवुः।

क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः॥ ९ ॥

परन्तु इन ब्राह्मणोंने ग्वालबालोंके मुखसे भगवान्के लिए अन्नकी प्रार्थनाको सुनकर भी अनसुना कर दिया। वे स्वर्गादि क्षुद्र फलोंकी आशासे बड़े कष्टमय यज्ञादि विस्तृत अनुष्ठानोंमें उलझे हुए थे। वस्तुतः वे ज्ञानकी दृष्टिसे निरे बालक (मूर्ख) ही थे, परन्तु अपनेको बड़ा बुद्धिमान पण्डित समझ रहे थे॥ ९ ॥

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रत्विजोऽनयः।

देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः॥ १० ॥

तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम्।

मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे॥ ११ ॥

परीक्षित्! देश, काल, चरु, अनेक प्रकारकी सामग्रियाँ, पुरोडाश आदि (आहुतिके) द्रव्य, विभिन्न कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, तन्त्र (अनुष्ठानकी पद्धति), पुरोहित, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ एवं धर्म—ये सभी जिन भगवान्के ही स्वरूप हैं, दुर्बुद्धि ब्राह्मणोंने उन परब्रह्मरूपी साक्षात् भगवत्-विग्रह अधोक्षज वस्तु श्रीकृष्णको साधारण ग्वाल-बालक समझा और उनका सम्मान नहीं किया॥ १०-११ ॥

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप।

गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥ १२ ॥

हे शत्रुदमन राजन्! जब उन ब्राह्मणोंने अन्न-दानके लिए स्वीकार सूचक 'हाँ' या अस्वीकार सूचक 'ना' कुछ भी नहीं कहा, तब ग्वालबाल निराश होकर लौट गये और बलराम-कृष्णके पास जाकर उन्हें सब कुछ बतला दिया ॥ १२ ॥

तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः।

व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥

उनकी बात सुनकर सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे और उन्हें लौकिक रीतिसे समझाने लगे—“इस संसारमें किसी कार्यको साधनेके इच्छुक व्यक्तिको कभी भी निराश नहीं होना चाहिये। यदि असफलता मिले, तो भी याचकको निरुत्साहित न होकर पुनः प्रयत्न करना चाहिये।” उन्होंने आगे कहा— ॥ १३ ॥

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससङ्कर्षणमागतम्।

दास्यन्ति काममन्त्रं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥

हे गोपगण! तुमलोग एक बार पुनः वहाँ जाकर उन ब्राह्मणोंकी पत्नियोंसे निवेदन करो कि बलदेव और श्रीकृष्ण गोचारणके लिए यहाँ उपस्थित हुए हैं और कुछ भोज्य-सामग्रीके लिए प्रार्थना कर रहे हैं। ब्राह्मणपत्नियोंका मन सदैव मुझमें ही स्थित रहता है और मेरे प्रति उनका स्वभावतः स्नेहपूर्ण भाव है। अतएव तुम जितना चाहोगे, वे उतना अन्न प्रदान कर देंगी ॥ १४ ॥

गत्वाथ पत्नीशालायां दृष्ट्वासीनाः स्वलङ्कृताः।

नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥

अतः इस बार ग्वालबाल ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके घर गये और देखा कि वे वस्त्र एवं आभूषणोंसे समलङ्कृत होकर बैठी हैं। (वे सभी कृष्णचर्चामें निरत थीं) उन्होंने उन द्विजपत्नियोंको

प्रणाम किया और उन्हें सम्बोधन करते हुए विनयपूर्वक कहने लगे— ॥ १५ ॥

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ।

इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥

हे विप्रपत्नियो! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप कृपया हमारी बात सुनें। श्रीकृष्ण भ्रमण करते हुए इस स्थानके समीप ही पहुँचे हैं और उन्होंने हमें आपके पास भेजा है ॥ १६ ॥

गाश्चारयन् स गोपालैः सरामो दूरमागतः ।

बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण एवं बलदेव ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए व्रजसे बहुत दूर (यमुना तट स्थित अशोक-काननमें) चले आये हैं। उन्हें और उनके सखाओंको थकानके कारण बड़ी भूख लगी है। आप उनके लिए कुछ भोजन प्रदान कीजिये ॥ १७ ॥

श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ।

तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥ १८ ॥

परीक्षित्! वे ब्राह्मणपत्नियाँ बहुत दिनोंसे श्रीकृष्णकी मनोहर लीलाओंको सुनती रहती थीं। अतः उनका मन कृष्ण-लीलाओंमें ही आसक्त रहता था। उन्हें उनके दर्शनकी सदैव तीव्र उत्कण्ठा रहती थी। श्रीकृष्णके समीप आनेकी बात सुनते ही वे अति व्यग्र हो गयीं ॥ १८ ॥

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।

अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥

इन विप्र-पत्नियोंने स्वादिष्ट, हितकारी आदि बहुत-से गुणोंसे युक्त चर्व्य, चोष्य, लेह्य एवं पेय-चारों प्रकारकी भोजन-सामग्री पात्रोंमें रख ली और प्रियतम श्रीकृष्णके पास जानेके लिए एक साथ मिलकर ठीक उसी प्रकार निकल पड़ीं, जिस प्रकार नदियाँ समुद्रसे मिलनेके लिए उसकी ओर प्रवाहित होती हैं ॥ १९ ॥

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।

भगवत्युत्तमः श्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥

यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ।

विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥

अहो ! ऐसा क्यों न हो; वे बहुत समयसे पवित्रकीर्ति श्रीकृष्णके रूप, गुण, लीला, सौन्दर्य आदि दिव्य गुणोंके विषयमें सुनती आ रही थीं, जिसके कारण उनका हृदय श्रीकृष्णके प्रति पूर्णरूपेण आसक्त था। उनके पति, पिता, भाइयों एवं बन्धुओंने उन्हें जानेसे बहुत रोका, परन्तु वे वहाँसे चली ही गयीं। वहाँ जाकर विप्रपत्नियोंने देखा कि अशोक वृक्षके नव पल्लवोंसे सुशोभित यमुनाके उपवनमें बलरामके साथ श्रीकृष्ण ग्वालबालोंसे परिवेष्टित होकर इधर-उधर विचरण कर रहे हैं ॥ २०-२१ ॥

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-

धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।

विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं

कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥

द्विजपत्नियोंने देखा कि श्रीकृष्णके साँवले सलोने शरीरपर सुनहरा पीताम्बर सुवर्णजड़ित नीलमणिकी शोभाको भी पराजित कर रहा है। वक्षःस्थलपर वनमाला दोलायमान हो रही है। उन्होंने मस्तकपर मोरपंख धारण कर रखा है, अङ्ग-प्रत्यङ्गपर खनिज धातुओंकी चित्रकारी कर रखी है और शरीरपर नये-नये प्रवाल्लोंके गुच्छे लगा रखे हैं। इस तरह उन्होंने नटवरका-सा वेश बना रखा है। उनका एक हाथ सखाके कन्धेपर रखा हुआ है और दूसरे हाथसे लीला-कमलको घुमा रहे हैं। कानोंमें कमलके कुण्डल, नीलमणिके दर्पणको भी तुच्छ करनेवाले दोनों कपोलोंपर घुँघराली अलकावली लटक रही है एवं मुखकमल सुमधुर मन्द-मन्द हास्य-रेखासे सुशोभित हो रहा है ॥ २२ ॥

प्रायःश्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरै-

र्यस्मिन्निगमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ।

अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं

प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुररेन्द्र ॥ २३ ॥

द्विजपत्नियोंने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण और लीला-माधुरी आदिकी उत्कर्षताका बार-बार श्रवणकर अपनी श्रवणेन्द्रियोंको सार्थक कर लिया था। श्रवणमात्रसे ही वे कृष्ण-प्रेममें सराबोर हो चुकी थीं और उनका चित्त श्रीकृष्णमें आविष्ट हो गया था। अब इस समय उन्हें अपने समक्ष पाकर नयन-पथसे उनको हृदयमें प्रवेश कराके मन-ही-मन बहुत देर तक उनका आलिङ्गन करती रहीं। उन्होंने अपने हृदयके तापको इस प्रकार शान्त किया, जिस प्रकार जाग्रत एवं स्वप्नकी 'मैं' और 'मेरी' आदि अहम् वृत्तियाँ सुषुप्ति अवस्थामें तदभिमानी प्राज्ञका (सुषुप्तिके साक्षी जीवात्माका) आलिङ्गन करके उसमें लीन हो जाती हैं, उस समय अहङ्कारादि बाह्य ज्ञान नहीं रहते हैं। 'प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्त न बाह्य किञ्चन वेद' अर्थात् परमात्मा द्वारा आलिङ्गित होनेपर आनन्दमयी जीवात्माको बाहरकी कोई सुध-बुध नहीं रहती। (श्रीजीव गोस्वामी पाद कहते हैं कि बद्ध जीव जब किसी परमभागवत प्राज्ञका अपने नेत्रों द्वारा आलिङ्गन करते हैं, तो उनके भी समस्त पाप दूर हो जाते हैं) ॥ २३ ॥

तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ।

विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥

प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सभीकी बुद्धियोंकी वृत्तियोंके साक्षी हैं तथा सबके हृदयकी बात जानते हैं। भगवान् जानते थे कि ये ब्राह्मणपत्नियाँ सभी विषयोंकी लालसाका परित्याग करके (पति, पिता, पुत्रादि परिजनोंके द्वारा रोके जानेपर भी) मेरे दर्शनकी अभिलाषासे मेरे अनुरागके प्रबल स्रोतमें बहती हुई यहाँ आयी हैं। देववन्दित श्रीकृष्णके मुखपर स्मित-किरणें विकीर्ण हो

रही थीं। वे अपना मनोरथ पूर्ण करनेके लिए उनसे कुछ कहने लगे— ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच—

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम्।

यत्रो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे महाभाग्यवती देवियो! तुमलोग सुखपूर्वक आयी हो न! तुम्हारा स्वागत है! तुमलोग आओ, अब तुम्हारे लिए क्या करें, यहाँ कुछ समय तक बैठो। आदेश करो—हम तुम्हारा क्या स्वागत करें? तुमलोग जो शत-शत विघ्न-बाधाओंको पार करके मेरे दर्शनके लिए यहाँ उपस्थित हुई हो—वह तुम्हारे जैसे स्नेहपूर्ण हृदयवालोंके लिए उचित ही है ॥ २५ ॥

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शिनः।

अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥

निश्चय ही जो कुशल एवं विवेकी पुरुष अपना स्वार्थ ठीकसे देख सकते हैं, वे अपनी आत्माके समान मुझे साक्षात् अपना प्रियतम मानते हैं। उनकी मेरे प्रति सांसारिक कामना-वासना रहित अहैतुकी (फलाभिसन्धान-रहित) और नैरन्तर्यमयी (अविच्छिन्न) निर्मल भक्ति होती है ॥ २६ ॥

प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः ।

यत्सम्पर्कात् प्रिया आसंस्ततः कोऽन्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥

आत्माके सम्बन्धके कारण ही प्राण, बुद्धि, मन, आत्मीय, देह, स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन आदि समस्त सांसारिक वस्तुएँ प्रिय लगती हैं। उस आत्माके भी आत्मा—परमात्मा मुझ श्रीकृष्णसे अधिक प्रिय वस्तु और क्या हो सकती है? (इस जगत्में सभी अपना हित चाहते हैं, किन्तु वे विविध कामना-वासनाओंके जालमें फँसकर स्त्री, पुत्र, परिजन तथा विषय-वैभवमें आसक्त

होकर जन्म-मृत्यु एवं सुख-दुःखके अधीन हो जाते हैं। अतः जगत्के सभी जीव आत्म-हिताकाङ्क्षी होनेपर भी यथार्थ हितके स्थानपर अहितको ही हित समझते हैं। जो हिताहित विचार करनेमें समर्थ हैं, वे मनमोहक विषयोंका भोग परित्यागकर मुझसे ही प्रेम करते हैं) ॥ २७ ॥

तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः।

स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥

इसलिए तुम्हारा यहाँ आना यथार्थ ही है। तुमलोग मेरा दर्शन करके कृतार्थ हो गयी हो। अतः अब यज्ञस्थानपर लौट जाओ। तुम्हारे पति ब्राह्मण हैं, गृहस्थ-परायण हैं। तुम्हारे साथ ही वे अपने-अपने यज्ञका सम्पादन कर सकेंगे। अतः उनपर अनुग्रह करनेके लिए अब तुम्हारा लौटना उपयुक्त है। (यह ठीक है कि मुझसे प्रेम करनेवालोंकी घरमें आसक्ति नहीं रहती, परन्तु अब यज्ञानुष्ठानका समय प्रायः व्यतीत हो रहा है। यज्ञमें पूर्णाहुति देनेके लिए तुम्हारा यज्ञस्थलीमें शीघ्र पहुँचना आवश्यक है) ॥ २८ ॥

श्रीपत्न्य ऊचुः—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं

सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम्।

प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं

केशैर्निर्वोदुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥ २९ ॥

विप्रपत्नियोंने कहा—हे विभो! आपको इस प्रकार निष्ठुर बातें नहीं कहनी चाहिये। अब तो आप “जो परमात्माको प्राप्त हो जाता है, उसे पुनः संसारमें लौटना नहीं पड़ता”, इन सब श्रुतिवचनों एवं “मेरा भक्त कभी भी नष्ट नहीं होता” आदि अपनी प्रतिज्ञाओंको सत्य कीजिये। हम तो पति, पुत्रादि सभी बन्धु-बान्धवोंको छोड़ करके आपके चरणकमलोंमें इसलिए उपस्थित हुई हैं कि आपके इन पदारविन्दोंमें अवज्ञापूर्वक भी अर्पित

(प्रेयसियोंके द्वारा आलिङ्गित होनेपर शय्याके नीचे गिरी हुई)
तुलसी-मालाको आपकी दासी बननेके लिए अपने केशोंपर धारण
कर सकें ॥ २९ ॥

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा
न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ।
तस्माद् भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो
नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥ ३० ॥

प्रभो! विशेषतः अब हमारे पति, पिता, माता, पुत्र, भाई,
जाति, बान्धव कोई भी हमें अङ्गीकार नहीं करेगा, फिर दूसरोंकी
तो बात ही क्या कहें! हे अरिन्दम! (हे शत्रुदमन! आपकी
प्राप्तिके प्रतिबन्धकके रूपमें जितने भी अनर्थरूपी शत्रु हैं—आप
उनका विनाश करें) हम आपके चरणोंमें आ पड़ी हैं, हमारी
अन्य कोई गति नहीं है। आप हमें अपना आश्रय दीजिये, अपना
दास्य प्रदान कीजिये। हम किसी दूसरेकी शरणमें न जाएँ, ऐसी
व्यवस्था कीजिये ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच—

पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ।
लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे विप्रपत्नियो! मेरी प्रेरणासे तुम्हारे
पति, पिता, भ्राता, पुत्र आदि कोई भी बन्धु-बान्धव तुम्हारा
तिरस्कार नहीं करेंगे, साधारण व्यक्ति भी तुम्हारे ऊपर दोषारोपण
नहीं करेगा। उनकी तो बात ही क्या, मेरी कृपा-पात्री होनेसे सारा
जगत् तुम्हारा सम्मान करेगा, क्योंकि अब तुम मुझसे युक्त हो
गयी हो। देखो, मेरी सर्वेश्वरताके कारण देवता भी मेरा अनुमोदन
करेंगे। इसमें किसीकी भी असहमति नहीं होगी ॥ ३१ ॥

न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ।
तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मावाप्स्यथ ॥ ३२ ॥

देवियो ! इस लोकमें मात्र मेरा अङ्ग-सङ्ग ही मानवोंमें सुख अथवा मेरे प्रति अनुरागकी उत्पत्तिका कारण नहीं होता। (मेरे प्रति विरहजनित उत्कण्ठासे ही मेरे प्रति अतिशय अनुराग बढ़ता है) अतः अब तुम लौट जाओ और अपना मन मुझमें निविष्ट कर दो। इस प्रकार तुम शीघ्र ही मुझे प्राप्त कर सकोगी॥ ३२॥

श्रवणाद्दर्शनाद्भयानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात्।

न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान्॥ ३३॥

और भी देखो, मेरे गुणोंके विषयमें सुननेसे, मेरे श्रीअर्चा-विग्रहका दर्शन करनेसे, मेरे रूपका चिन्तन करनेसे एवं मेरे नाम-गुण-कीर्तनसे जिस प्रकारसे मुझमें आसक्ति होती है, निकटमें रहनेसे वैसी नहीं होती। अतः घर लौट जाओ॥ ३३॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्त्वा द्विजपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः।

ते चानसूयवस्ताभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन्॥ ३४॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर द्विजपत्नियाँ पुनः यज्ञशालामें लौट आयीं। उनके पतियोंने उनपर किञ्चित् मात्र भी दोष-दृष्टि नहीं रखी और अपनी इन पत्नियोंके साथ यज्ञको सम्पूर्ण किया॥ ३४॥

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम्।

हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम्॥ ३५॥

वहाँ द्विजालयमें एक ब्राह्मणी अपने पति द्वारा घरमें ही बलपूर्वक रोक लिये जानेके कारण श्रीकृष्णके समीप नहीं जा सकी। उसने कृष्णकी जिस रूप-माधुरीके विषयमें श्रवण किया था, उसीका ध्यान करते हुए मन-ही-मन आलिङ्गन किया और कर्मबन्धन-स्वरूप देहका परित्याग कर दिया। इस प्रकार अपने शुद्धसत्त्वमय अप्राकृत शरीरसे (प्रेमानुबन्धन-रूप चिन्मय देहसे) उसने भगवान्‌के सान्निध्यको प्राप्त कर लिया॥ ३५॥

भगवानपि गोविन्दस्तेनैवात्रेन गोपकान्।

चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयञ्च बुभुजे प्रभुः ॥ ३६ ॥

इधर प्रभु (भगवान्) गोविन्दने उन ब्राह्मणियोंके द्वारा लाये हुए चारों प्रकारके स्वादिष्ट अन्नसे पहले ग्वालबालोंको भोजन कराया (ग्वालबालोंकी संख्या बहुत थी एवं भोजन कम था, परन्तु श्रीकृष्ण प्रभु हैं अर्थात् सर्वसमर्थ हैं—इसलिए श्रीकृष्णने उस अन्नके द्वारा ही सबका पेट भर दिया) और फिर स्वयं भी भोजन किया ॥ ३६ ॥

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन्।

रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतैः ॥ ३७ ॥

परीक्षित्! लीलामय नराकृति भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकारसे मनुष्योंके समान अभिनय करते हुए अपने निरुपम सौन्दर्य, माधुर्य, मधुरवचन एवं अद्भुत कार्योंके द्वारा गौओं, ग्वालबालों, गोपियों एवं गोपोंको आनन्द प्रदान करते हुए और स्वयं भी अलौकिक प्रेमरसका आस्वादन करते हुए विहार करने लगे ॥ ३७ ॥

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन् कृतागसः।

यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः ॥ ३८ ॥

परीक्षित्! जब इन ब्राह्मणोंको अन्तःचेतना हुई, तब वे बहुत अनुताप करने लगे—अरे! हमसे यह क्या हो गया? लौकिक लीला-विस्तारकारी विश्वेश्वर स्वयंविग्रह बलराम और कृष्ण तो छद्म-मनुष्यके रूप धारण किये हुए हैं। उनके अन्न-प्रार्थनाकी रक्षा न कर पानेके कारण हम बड़े अपराधी हो गये हैं। अरे! हमने भगवान्की ही आज्ञाका उल्लङ्घन कर डाला ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम्।

आत्मानञ्च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥ ३९ ॥

ये ब्राह्मण अपनी पत्नियोंकी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अलौकिक भक्ति एवं स्वयंकी भक्ति-हीनता देखकर बहुत पछताने लगे।

अपनेको धिक्कारते हुए अपनी निन्दा करने लगे—ओह! कृष्ण-भक्ति जगत्‌में अति विरल या असम्भव है॥ ३९॥

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् यत्तद्विगृह्यतं धिग्बहुज्ञताम्।

धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे॥ ४०॥

वे कहने लगे—हाय! हाय! हम अधोक्षज भगवान्‌से ही विमुख हैं। हाय! हाय! हमें धिक्कार है। हमारे शौक्र (ऊँचे कुलमें जन्म लेना), सावित्र्य (ब्राह्मण-दीक्षा) तथा दैक्ष्य (वैदिक यज्ञ करते समय दीक्षा) तीनों ही प्रकारके जन्मोंको धिक्कार है। हमारे ब्रह्मचर्यादि व्रत, बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान, कुलीनता और कर्म-काण्डोंमें निपुणताको हाय! धिक्कार है! धिक्कार है! ये स्त्रियाँ कृष्णानुरागिणी होनेके कारण सदैव आदरणीया हैं, हमारी गुरु हैं। हम तो अन्धकूपके समान संसारमें ही पड़े रह गये। इन्हें तो मनके द्वारा भी भार्या या पत्नी समझना उचित नहीं है॥ ४०॥

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी।

यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थं मुह्यामहे द्विजाः॥ ४१॥

अरे भाई! भगवान्‌की माया बड़े-बड़े योगियोंको भी मोहमें डाल देती है। यही कारण है कि हम मनुष्य-लोकमें श्रेष्ठ-जाति ब्राह्मण और लोगोंके गुरु होकर भी अपने परमार्थ-विषयमें मोहित हो गये। अपना सच्चा स्वार्थ ही भूल बैठे॥ ४१॥

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ।

दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान्॥ ४२॥

अहो! जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें जिस अगाध प्रेम और अखण्ड अनुरागका उदय होनेपर 'गृह' नामक मृत्युपाश छिन्न-भिन्न हो जाता है, कितने आश्चर्यकी बात है कि इन स्त्रियोंकी उनके प्रति वैसी भक्ति है, वैसा ही प्रेम है—देखो तो सही॥ ४२॥

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि।

न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः॥ ४३॥

तथापि ह्युत्तमःश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।

भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४४ ॥

इन स्त्रियोंका न तो द्विज-योग्य कोई उपनयन संस्कार हुआ है, न ही उन्होंने गुरु-गृहमें वास किया है, न ही तपस्या की है और न ही आत्म-मीमांसा, न इन्होंने शौचका अनुष्ठान किया है और न ही मङ्गलदायक सन्ध्या-वन्दनादि कुछ भी किया है, तथापि उत्तमश्लोक महायोगी श्रीकृष्णके प्रति इनमें दृढ़ भक्तिका उदय हुआ है। और हम, हमारे तो उपनयनादि समस्त संस्कार हुए हैं, हमने सारी विधियाँ और अनुष्ठान यथारीति सम्पन्न किये हैं, तब भी हममें ऐसी भक्तिका उदय नहीं हुआ ॥ ४३-४४ ॥

ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया।

अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४५ ॥

हाय! हम आसक्तिके कारण सदा-सर्वदा घरके कार्योंमें ही उलझे रहे और परमार्थसे नितान्त विमुख होकर विपथ हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण सज्जनोंके आश्रय हैं। अहो, उन्होंने गोपोंके मुखसे अन्न-प्रार्थनाके द्वारा हमें परमार्थका स्मरण कराया! देखो, कैसा आश्चर्य है? भक्तवत्सल भगवान्की कैसी अद्भुत कृपा है! ॥ ४५ ॥

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्यद्याशिषां पतेः।

ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥ ४६ ॥

कैवल्यादि सम्पूर्ण मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले पूर्णकाम, सर्वमङ्गल-विधाता भगवान्को हम जैसे मनुष्योंसे—जो सम्पूर्णतः उनके वशीभूत हैं—प्रार्थना करनेकी क्या आवश्यकता थी? हमपर अहैतुकी दया करनेके उद्देश्यसे ही उन्होंने याचनाका लीलाभिनय मात्र किया था। (अपने अधीन जनोंसे अन्नकी भिक्षा करना अतिशय विडम्बना मात्र है।) ॥ ४६ ॥

हित्वान्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयासकृत्।

स्वात्मदोषापवर्गेण तद्याच्चा जनमोहिनी ॥ ४७ ॥

स्वयं लक्ष्मीजी भी जिनके चरण-कमलोंके स्पर्शकी कामनासे अन्य देवताओंका परित्याग करके गर्व, चञ्चलता आदि दोषोंका परिहार करके स्थिर भावसे नित्य-निरन्तर उनकी सेवा करती रहती हैं—ऐसे उन भगवान्का हमलोगोंसे अन्न माँगना हम लोगोंको मोहित करनेके अतिरिक्त और किसलिए हो सकता था? ॥ ४७ ॥

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रविवर्जितोऽन्यः।

देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४८ ॥

स एव भगवान् साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः।

जातो यदुष्वित्याश्रमं ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४९ ॥

यज्ञसे सम्बन्धित शुभ स्थान एवं मुहूर्त, विविध द्रव्य, उन-उन कर्मोंसे नियुक्त वैदिक मन्त्र, पुरोहित, यज्ञ-अग्नियाँ, देवता, यजमान, यज्ञ, हवि एवं यज्ञसे उत्पन्न शुभ फल जिनके स्वरूपभूत हैं, जो महायोगियोंके भी अधिपति हैं, वे विष्णुरूपी साक्षात् भगवान् ही यदुकुलमें अवतरित हुए हैं—इस विषयमें सुनकर भी अपनी अज्ञानताके कारण हम उन्हें पहचान नहीं पाये ॥ ४८-४९ ॥

तस्मै नमो भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे।

यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥ ५० ॥

भगवान् अचिन्त्य और अनन्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं। उनकी माया-शक्तिसे हमारा चित्त मोहित हो गया है और हम इन यज्ञ-यागादि कर्म-मार्गमें भटक रहे हैं। जिनका ज्ञान कदापि नष्ट नहीं होता, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णको हम पुनः-पुनः प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम्।

अविज्ञातानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥

हमें धिक्कार है! हम उनकी ही मायासे मुग्ध होकर उनके भगवत्-प्रभावको जान नहीं पाये। वे आदि-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण निश्चय ही हमारे इस अपराधको क्षमा कर देंगे ॥ ५१ ॥

इति स्वाधमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः।

दिदृक्षवो व्रजमथ कंसाद्धीता न चाचलन्॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीयज्ञपत्न्युपचर्याग्रहणं
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

परीक्षित्! श्रीकृष्णकी अवज्ञा करनेवाले ये ब्राह्मण अपने पूर्वोक्त अपराधका स्मरण कर-करके बहुत पछताते रहे। उनके हृदयमें भगवान्‌के दर्शनकी अभिलाषा हो रही थी, परन्तु कंससे भयभीत होनेके कारण व्रजमें जानेका साहस न कर सके। कहा जाता है कि कंसके भयसे उन्होंने अपने घरोंमें ही श्रीकृष्णकी पूजा की। भक्त-चूड़ामणि ब्राह्मणियोंकी कृपासे याज्ञिक ब्राह्मणोंका महागर्वरूपी पर्वत चूर्ण हो गया और वे भक्ति-सागरमें डुबकियाँ लगाने लगे॥५२॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तेईसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चतुर्विंशोऽध्यायः

इन्द्रयज्ञका निवारण और गोवर्धन-यज्ञका प्रवर्तन

श्रीशुक उवाच—

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ।

अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण बलदेवके साथ वृन्दावनमें रहते हुए अनेक लीलाएँ कर रहे थे। एक दिन उन्होंने देखा कि सारे गोप इन्द्र-यज्ञका आयोजन कर रहे हैं ॥ १ ॥

तदभिज्ञोऽपि भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।

प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वन्द्वान् नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सर्वान्तर्यामी एवं सर्वसाक्षी हैं। वे सब जानते थे, तब भी इन्द्र-यज्ञकी प्रस्तुतियाँ (तैयारियाँ) देखकर नन्द बाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंके पास गये और नम्रतापूर्वक पूछने लगे ॥ २ ॥

कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः ।

किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥

पिताजी! यह सब प्रस्तुति किसलिए हो रही है? कोई बड़ा भारी यज्ञ या महोत्सव आ पहुँचा है क्या? आप यदि यज्ञ कर रहे हैं, तो किस उद्देश्यसे कर रहे हैं, इस यज्ञका फल क्या है? इसका देवता कौन है और कौन इसका अधिकारी है? इन सामग्रियोंके द्वारा यज्ञ कौन करेगा? ये सारी बातें मुझे बतलाइये ॥ ३ ॥

एतद्बूहि महान् कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ।

नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ।

अस्त्यस्वपरदृष्टीनामभिप्रोदास्तविद्विषाम् ॥ ४ ॥

इस विषयको जाननेके लिए मुझमें परम कौतूहल हो रहा है। मैं सब सुनना चाहता हूँ। इसके बाद भी जब उन्होंने देखा कि पिताजी मौन धारण किये हुए हैं, तो वे पुनः कहने लगे—जो सर्वत्र आत्मदृष्टिसे सम्पन्न रहते हैं, अपने-परायेका भेद नहीं रखते, सभीको अपना मानते हैं, मैत्री, उदासीनता अथवा विद्वेषके भावसे रहित हैं—ऐसे साधुस्वभाववाले मनुष्य जगत्में किसी बातको छिपाते नहीं है ॥ ४ ॥

उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत् सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥

जो भेददृष्टिसे युक्त हैं, वे यद्यपि उदासीन पुरुषोंका शत्रुकी भाँति वर्जन करते हैं, अर्थात् उन्हें मन्त्र आदि रहस्यकी बातें नहीं बतलाते, तथापि वे सुहृद् जनोंको अपना मानकर उनपर विश्वास करते हैं और उन्हें रहस्यपूर्ण बातें भी बतला दिया करते हैं। मैं तो आपका पुत्र हूँ, सुहृद् हूँ, आत्मतुल्य हूँ, विश्वसनीय हूँ, अतः मुझसे रहस्य छिपाना उचित नहीं ॥ ५ ॥

ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ।

विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥

जगत्में कुछ लोग अपने कर्तव्य कर्म और उसके फलादि जितने भी विषय हैं, उन्हें तो जानते हैं, परन्तु उन कर्मोंका अनुष्ठान किस प्रकार किया जाय—इस तत्त्वको भली भाँति नहीं जानते। जो सम्पूर्णरूपसे समझ-बूझकर कर्म करते हैं, उनके कर्म जिस प्रकारसे सुसम्पन्न होते हैं, बिना सोच-विचारकर कर्म करनेवालोंकी उस प्रकारसे फलकी सिद्धि नहीं होती। आपको भी गतानुगतिक (लौकिक परम्पराके) मार्गपर न चलकर सुहृदोंके साथ विचार-विमर्शकर कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ६ ॥

तत्र तावत् क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ।

अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥

मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप इस यज्ञ-कार्यका अनुष्ठान शास्त्र-सम्मत विचारसे कर रहे हैं अथवा केवल लौकिक-विचार-परिपाटी मात्रसे कर रहे हैं। मुझे स्पष्टरूपसे युक्तिके साथ बतलाइए ॥ ७ ॥

श्रीनन्द उवाच—

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः।

तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥

श्रीनन्दमहाराजने कहा—वत्स! भगवान् इन्द्रदेव पर्जन्यरूप (वर्षा-रूप) हैं और मेघ उनकी अपनी प्रिय मूर्ति-स्वरूप हैं। वे मेघोंके द्वारा स्थावर-जङ्गमादि सभी प्राणियोंको तृप्त करनेवाला एवं मृतप्रायः तृणादिमें प्राणोंका सञ्चार करनेवाला जल बरसाते हैं ॥ ८ ॥

तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम्।

द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥

हे वत्स! हम और दूसरे लोग भी मेघाधिपति ईश्वर इन्द्रदेवकी यज्ञोंके द्वारा आराधना करते हैं और इन यज्ञोंके लिए जिन धान्यादि द्रव्योंका उपयोग किया जाता है, वे उनके द्वारा की गयी शक्तिशाली वृष्टिसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे।

पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥

इन यज्ञोंका सम्पादन करनेके बाद जो अन्न अवशिष्ट रहता है, उसीके द्वारा ही हम सब जीवन धारण करते हैं और त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म एवं काम) की सिद्धि कर पानेमें सक्षम होते हैं। यदि कहो कि खेती आदि संसारकी जीविकाके साधन हैं, तो भी मेघ ही इन खेती आदि कर्मोंका फल प्रदान करते हैं ॥ १० ॥

य एनं विसृजेद्धर्मं पारम्पर्यागतं नरः।

कामाद्वेषाद्भयाल्लोभात् स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥

प्रिय तात ! जो व्यक्ति कामवश (स्वेच्छासे), लोभ (द्रव्य-व्यय होनेके डरसे), भय (विरोधी लोगोंके भयसे) अथवा द्वेष-वश (देवता-विषयक द्वेष) के कारण कुलपरम्पराके वृद्ध जनों द्वारा प्रवर्तित इन धर्मोंका परित्याग कर देता है, उसका निश्चय ही लोकमें अथवा परलोकमें कभी मङ्गल नहीं होता ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच—

वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम्।

इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—भगवान् केशवने नन्दमहाराज एवं अन्यान्य व्रजवासियोंकी इस प्रकारकी बातें सुनकर इन्द्रको क्रोधित करने एवं उसके गर्वको धराशायी करनेके उद्देश्यसे नन्द महाराजसे कहा ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच—

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।

सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पिताजी ! इस लोकमें जीव कर्मोंके अधीन होकर जन्म-ग्रहण करते हैं और कर्मोंके आधारपर ही उनकी मृत्यु होती है। कर्मोंसे ही वे सुख-दुःख, भय एवं शुभोंके साधनोंको (निमित्तोंको) प्राप्त करते हैं ॥ १३ ॥

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम्।

कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥

यद्यपि सभीको कर्मोंका फल प्रदान करनेवाले एक ईश्वर ही सबके नियन्ता हैं, तो भी जिन्होंने कर्म आदिका अवलम्बन किया है, ईश्वरको उन कर्म करनेवालों पर आश्रित रहना पड़ेगा, तभी वे उन्हें कर्मोंका फल प्रदान कर सकते हैं। कर्मरहित अर्थात् अकर्ता व्यक्तिको फल-दान कदापि नहीं देखा जाता ॥ १४ ॥

किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम्।

अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥

इस लोकमें जीवमात्र अपने-अपने कर्मोंका फल भोग रहा है। उनके पूर्व-पूर्व जन्मोंमें किये हुए संस्कारोंसे उत्पन्न भाग्यको बदलनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है। अतः इन्द्रसे तब क्या प्रयोजन है? ॥ १५ ॥

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्त्तते।

स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥

जीवमात्र ही स्वभाव (पूर्व-संस्कारों) के अधीन है और वह अपने उसी स्वभावका अनुसरण करता है। देव, असुर और मनुष्य आदिके साथ निखिल ब्रह्माण्ड ही स्वभावमें अवस्थित है। (अपने-अपने स्वभावके अनुसार जीव कर्ममें स्वयं ही प्रवर्त्तित होता है, इसमें अन्तर्यामीकी क्या आवश्यकता है?) ॥ १६ ॥

देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा।

शत्रुमित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥

जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही देव, तिर्यक् आदि विविध देहोंको प्राप्त होता है और कर्मोंकी अधीनतासे ही पुनः उनका त्याग कर देता है। कर्मोंके अनुसार ही जीव किसीको शत्रु, किसीको मित्र और किसीको उदासीन मानता है। कर्म ही साक्षी है, कर्म ही गुरु है और कर्म ही ईश्वर है। (ईश्वर मानकर इन्द्र आदि भिन्न-भिन्न देव-देवियोंकी उपासना निरर्थक है। जो कर्म-परतन्त्र नहीं हैं और निग्रह-अनुग्रह करनेमें समर्थ स्वतन्त्र भगवान् हैं, उन्हींकी सेवा, पूजा या आराधना सर्वशास्त्र-सम्मत है।) ॥ १७ ॥

तस्मात् सम्पूजयेत् कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत्।

अञ्जसा येन वर्त्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥

इसलिए हे पिताजी! पूर्व संस्कारोंके अनुसार ब्राह्मणादि वर्णों एवं ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंमें रहता हुआ मनुष्य अपने-अपने वर्णों और आश्रमोंमें विहित धर्मोंका पालन करता हुआ कर्मकी ही आराधना करे। जिसके आश्रयसे सुखपूर्वक जीविकाका निर्वाह होता है, वही मनुष्योंका इष्ट-देवता है (प्रत्येक व्यक्तिको

अपने-अपने स्वभावके अनुसार कर्म करते हुए कर्मको सम्मान देना चाहिये) ॥ १८ ॥

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति।

न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारान्नार्यसती यथा ॥ १९ ॥

असती (व्यभिचारिणी) नारी जिस प्रकार अपने पतिके आश्रयमें रहकर भी गोपनरूपसे पर-पुरुषकी सेवा करके कभी भी कल्याणको प्राप्त नहीं करती, उसी प्रकार मानव भी एक वस्तुको जीवनके निर्वाह-स्वरूपमें स्वीकारकर किसी दूसरी वस्तुकी सेवा करता है, तो वह कल्याणका भागी नहीं बनता। (एक देवकी आराधनासे तृप्त न होनेपर दूसरे देवकी आराधनासे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। पिता द्वारा इन्द्रकी आराधना शास्त्र-सम्मत न होनेके कारण श्रीकृष्ण क्रोधाविष्ट हुए हैं) ॥ १९ ॥

वर्तेत ब्राह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः।

वैश्यस्तु वार्त्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥

ब्राह्मण वेदोंके पठन-पाठन द्वारा, क्षत्रिय पृथ्वी-पालनके द्वारा, वैश्य कृषि, वाणिज्य एवं पशुपालन द्वारा और शूद्र द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) की सेवाके द्वारा जीवन निर्वाह करें। (कोई भी विपत्ति आनेपर हम कृषि या वाणिज्य आदि वृत्तियोंको स्वीकार नहीं करते हैं। ब्राह्मणोंके देवता वेदशास्त्र हैं, क्षत्रियोंके लिए पृथ्वी देवता है, वैश्योंके देवता कृषि, वाणिज्य इत्यादि हैं तथा शूद्रके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ही देवता हैं) ॥ २० ॥

कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते।

वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥

कृषि, वाणिज्य, गो-रक्षा एवं व्याज लेना—ये चार वैश्योंकी जीविका होनेपर भी हमलोग उनमेंसे सर्वदा केवल गोपालनको ही अपनी जीविकाका साधन बनाते चले आये हैं (हमारे लिए गायें ही देवता होनेके कारण हमारी पूज्या हैं) ॥ २१ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः।

रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत्॥ २२ ॥

सत्त्व, रज एवं तमोगुण जगत्की स्थिति, सृष्टि एवं विनाशके कारण हैं। रजोगुणसे यह विश्व उत्पन्न होता है और स्त्री-पुरुषके संयोगसे विविध प्राणियोंकी सृष्टि होती है॥ २२ ॥

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः।

प्रजास्तैरेव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति॥ २३ ॥

इसी रजोगुणसे मेघ सञ्चालित होकर सर्वत्र जल वर्षण करते हैं और इसी जल द्वारा अन्नकी उत्पत्ति होती है और इस अन्नसे ही प्रजा जीवन धारण करती है। प्रजा-रक्षणमें इन्द्रका क्या लेना-देना? वह तो प्रजाकी रक्षाके लिए कुछ भी (उपकार या अपकार) नहीं करता है॥ २३ ॥

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्।

वनौकसस्तात नित्यं वनशैलनिवासिनः॥ २४ ॥

हे पिताजी! हमारे लिए नगर, जनपद, गाँव अथवा घर कुछ भी तो मङ्गलदायी नहीं है। वन-वनमें गोचारण करानेके कारण हम वनवासी हैं, इसलिए सदा-सर्वदा ही वन एवं पर्वतोंमें ही रहते आये हैं। गायोंकी वृद्धि गोवर्द्धनके अधीन है, इसलिए हमारे लिए गिरिराज गोवर्द्धन (पर्वत) ही पूज्य हैं॥ २४ ॥

तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः।

य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः॥ २५ ॥

अतः हम गाय (जीविकाके लिए प्रधान उपाय-स्वरूप), ब्राह्मण (इनका आशीर्वाद हमारे लिए प्रत्यक्ष फल देनेवाला) एवं पर्वतोंके (गायोंके लिए तृण, जल आदि प्रदान करनेके कारण परम उपकारी) उद्देश्यसे यज्ञ आरम्भ करें। इन्द्र-यज्ञके लिए जो सामग्रियाँ एकत्रित की गयी हैं, उन्हींके द्वारा इस यज्ञका अनुष्ठान किया जाय॥ २५ ॥

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ।

संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥

खीरसे आरम्भ करके मूँगकी दाल तक, गेहूँसे प्रस्तुत पीठे, पुआ, पूरी, पापड़ आदि पकवान बनवाये जायँ एवं समस्त ब्रजवासी गायोंका दोहन करके दूध, दही आदि संग्रह करके यहाँ ले आये (खीर शीतल होनेपर ही स्वादिष्ट होती है। इसलिए सर्वप्रथम खीर ही बनायी जाए) ॥ २६ ॥

हूयन्तामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।

अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥

वेदपारङ्गत ब्राह्मण यज्ञ-अग्निमें यथोचितरूपसे होम करें। इन ब्राह्मणोंको बहुत-से गुणोंसे युक्त उत्तम अन्न एवं धेनुएँ दक्षिणामें दी जायँ ॥ २७ ॥

अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डाल-पतितेभ्यो यथार्हतः ।

यवसञ्च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥

कुत्ते, चाण्डाल और पतित व्यक्तियोंको भी यथायोग्य दान दिया जाय। गायोंको चारा दिया जाय और तब गिरिराज गोवर्धनकी बड़े आदरपूर्वक पूजा करते हुए नैवेद्यकी सामग्री समर्पण कर भोग लगाया जाए ॥ २८ ॥

स्वलङ्कृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ।

प्रदक्षिणाञ्च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥ २९ ॥

तदनन्तर सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने जायँ, मनोरम अलङ्कार धारण किये जायँ, चन्दनादिका अनुलेपन किया जाय और तब गायों, ब्राह्मणों, अग्नियों एवं गोवर्धन पर्वतकी प्रदक्षिणा की जाय ॥ २९ ॥

एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ।

अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यञ्च दयितो मखः ॥ ३० ॥

पिताजी ! मेरा यह विचार यदि आपलोगोंको रुचिकर लगे, तो इसी प्रकारसे अनुष्ठान प्रारम्भ किया जाय। ऐसा यज्ञ गो, ब्राह्मणादि एवं गिरिराजको अत्यन्त प्रिय होगा और मेरे लिए भी प्रीतिजनक होगा (प्रत्यक्षरूपसे उपकार करनेवाले इन सबका परित्याग करके स्वर्गवासी देवराज इन्द्रकी पूजा करना मेरे बाल-मतमें किसी भी प्रकारसे युक्ति-युक्त नहीं है। अब आप जैसा उचित समझें, वैसा ही अनुष्ठान करें)॥ ३० ॥

श्रीशुक उवाच—

कालात्मना भगवता शक्रदर्प जिघांसया।

प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—कालस्वरूप भगवान्ने इन्द्रके मिथ्या गर्वको खण्डित करनेकी इच्छासे जब इस प्रकारसे कहा, तो नन्द बाबा आदि गोपोंने उनके प्रस्तावको “यह उत्तम है, यह उत्तम है” कहकर बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया॥ ३१ ॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः।

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान्॥ ३२ ॥

उपहृत्य बलीन् सम्यगादृता यवसं गवाम्।

गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम्॥ ३३ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्णने जैसा कहा था, उसीके अनुसार गोपोंने सारा अनुष्ठान किया। सर्वप्रथम ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराया गया। तत्पश्चात् इन्द्रके उद्देश्यसे प्रस्तुत सामग्रीयोंको गिरिराज गोवर्धनको अर्पण किया गया और उसी सामग्रीमेंसे ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें भेंटें दी गयीं। गायोंको बड़े आदरके साथ हरी-भरी घासका चारा दिया गया। स्वयं भी प्रसाद ग्रहण करके गाय-बछड़े एवं बैलोंको आगे करके नन्दबाबा आदि सभी गोपोंने गिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा की॥ ३२-३३ ॥

अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वल्ङ्कृताः।

गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्भिजाशिषः॥ ३४ ॥

ब्राह्मणोंका प्रचुर शुभाशीर्वाद प्राप्तकर गोपोंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और उत्तम अलङ्कार पहन लिये और गोपियाँ भी भली भाँति सजधजकर वृषभ-वाहित शकटों पर (बैल-गाड़ियोंपर) आरूढ़ होकर भगवान् श्रीकृष्णका माहात्म्य एवं गोवर्धन-धारण आदि लीलाओंका गान करती हुई परिक्रमा देने लगीं ॥ ३४ ॥

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ।

शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरिबलिमादद्बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥

उस समय श्रीकृष्ण गोपोंको विश्वास दिलानेके लिए गिरिराज पर्वतके ऊपर एक और विशाल आकार धारण करके प्रकट हो गये तथा 'मैं गिरिराज पर्वत हूँ', 'मैं इस देशका अधिपति हूँ', 'तुम लोगोंकी भक्तिसे प्रसन्न होकर आज मैं प्रकट हो गया हूँ', 'मुझसे वर माँगो'—इस प्रकार कहते हुए समर्पित नैवेद्यको सहस्र हाथोंसे प्रचुर मात्रामें ग्रहण करने लगे ॥ ३५ ॥

तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रे आत्मनात्मने ।

अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने व्रजवासियोंके साथ अपने उस दूसरे विशाल स्वरूपको (स्वयंको) प्रणाम किया और फिर वे गोपोंसे कहने लगे—यह देखो! गिरिराज गोवर्धनका हमारे ऊपर कितना अनुग्रह है! ये तो साक्षात् रूपमें प्रकट हो रहे हैं। कैसा आश्चर्य है! ॥ ३६ ॥

एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ।

हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥ ३७ ॥

ये गोवर्धन अपनी इच्छानुसार गाय, मयूर, सर्पादि विविध रूप धारण कर सकते हैं। जो वनवासी जीव इनका अनादर करते हैं, ये उनका विनाश कर डालते हैं। आओ, हम सब अपने एवं गायोंके कल्याणके लिए इन्हें प्रणाम करें ॥ ३७ ॥

इत्यद्रिगोद्विजमखं

वासुदेवप्रचोदिताः ।

यथा विधाय ते गोपा सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे इन्द्रमखभङ्गो
नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने इस प्रकार गोवर्धन पर्वत, गौओं एवं ब्राह्मणोंके पूजन-यज्ञको सम्यक् रूपेण सम्पन्न किया और श्रीकृष्णके साथ व्रजमें लौट आये (इस प्रसङ्गमें मीमांसा-मत ग्रहण करके कर्मका जो प्राधान्य दिखाया गया है—वह इन्द्रका क्षोभ बढ़ानेके लिए है, यथार्थतः यह अभीष्ट नहीं है। गोवर्धन-यागके प्रवर्तनके लिए ही कृष्णने इन मतोंकी अवतारणा की है। श्रीगोवर्धन पर्वत कृष्णदासवर्य हैं। जिन वैष्णवोंके लिए कार्तिक मासकी शुक्ल-प्रतिपदामें गोवर्धनकी पूजा-अर्चना सम्भव नहीं हो पाती, वे गोबर द्वारा गोवर्धन गिरिका स्वरूप निर्माण करके उनका महा-अर्चन—महाभिषेक करें) ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौबीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

क्रोधित इन्द्रका मुसलाधार वारि-वर्षण एवं वज्रपात तथा
श्रीकृष्णका गोवर्धनधारण

श्रीशुक उवाच—

इन्द्रस्तदाऽत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप।

गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप ह ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! इन्द्रको जब यह पता चला कि “मेरी परम्परागत पूजा कहीं और समर्पित हो गयी है”, तब वे श्रीकृष्णको ही अपना सर्वस्व एवं रक्षक माननेवाले नन्दबाबा आदि गोपोंके प्रति क्रोधित हो गये ॥ १ ॥

गणं सांवर्त्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम्।

इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यञ्चाहेशमान्युत ॥ २ ॥

इन्द्रको मिथ्याभिमान था कि “मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ।” उन्होंने अत्यन्त क्रोधित होकर सांवर्त्तक नामक प्रलयकारी मेघोंको ब्रजपर आक्रमण करनेकी आज्ञा देते हुए कहा— ॥ २ ॥

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम्।

कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥

अहो! इन वनवासी गोपोंमें यह कैसा धनका गर्व जन्मा है? अहे! इन्होंने साधारण-से मनुष्य श्रीकृष्णके बलपर मेरे यज्ञका वर्जन कर दिया। भला देखो तो! मुझ देवराजके प्रति ही अपराध कर डाला ॥ ३ ॥

यथाऽदृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः।

विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४ ॥

इस जगत्में बहुत-से अज्ञ व्यक्ति जिस प्रकारसे आत्मानुसन्धानरूप आत्मविद्याको छोड़कर अदृढ़ (टूटी-फूटी), कर्मजात नाममात्रकी

यज्ञरूप नौका द्वारा भवसागरको पार करनेकी इच्छा करते हैं, उसी प्रकारसे ये गोप भी ब्रह्मविद्याका परित्याग करके श्रीकृष्णका आश्रय लेकर कर्ममय यज्ञोंके द्वारा भव-समुद्रको पार करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम्।

कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुःप्रियम् ॥ ५ ॥

अरे! यह कृष्ण वाचाल, शिशु-स्वभाव, अभिमानी, अविनीत, और मूर्ख है; तो भी अपने-आपको पण्डित मानता है। इन गोपोंने ऐसे साधारण-से कृष्णके बलपर मुझ देवदलनकी अवहेलना की है ॥ ५ ॥

एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मापितात्मनाम्।

धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून् नयत सङ्क्षयम् ॥ ६ ॥

ये गोप धनके गर्वसे बड़े मतवाले हो रहे हैं और दूसरा कृष्णसे इन्हें और बढ़ावा मिल रहा है। अतः तुम सब जाओ और इनके धनके घमण्डको ध्वस्त कर दो, इनके पशुओंका विनाश कर डालो और इनकी ठसक (हेकड़ी) को धूलिसात् कर दो ॥ ६ ॥

अहञ्चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम्।

मरुद्गणैर्महावेगैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥

और मैं भी नन्दगोपके गोष्ठको विध्वंस करनेके लिए ऐरावत हाथीपर चढ़कर प्रचण्ड वेगशाली और महापराक्रमी मरुद्गणोंके साथ तुम्हारे पीछे-पीछे ही आ रहा हूँ ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः।

नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—इन्द्रने मेघोंको इस प्रकार आदेश दिया तथा क्रोधवश विवेकशून्य होकर प्रलयङ्कारी मेघोंके बन्धन खोल

दिये (सांवर्त्तक मेघोंका बन्धन प्रलय-कालमें ही खोला जाता है)। तब वे बड़े वेगके साथ मूसलाधार वर्षाके द्वारा नन्दगोपके गोकुलको उत्पीड़ित करने लगे॥ ८ ॥

विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः।

तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुत्रा ववृषुर्जलशर्कराः॥ ९ ॥

इन बादलोंके बीच-बीचमें बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल स्वयं आपसमें टकराकर वज्रपात करते हुए भयङ्कर गर्जनाएँ करने लगे। महाप्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बादल व्रज-प्रदेशमें शिलाखण्डों (ओलों) की बरसात करने लगे॥ ९ ॥

स्थूणास्थूलावर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वमीक्षणशः।

जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम्॥ १० ॥

इस प्रकार दल-के-दल मेघ लगातार खम्भोंके समान मोटी-मोटी जल-धाराओंके द्वारा वर्षा करने लगे। सम्पूर्ण व्रज-भूमि जलसे प्लावित हो गयी। भूमि कहाँ ऊँची है, कहाँ नीची है—कुछ दिखायी नहीं दे रहा था॥ १० ॥

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः।

गोपा गोप्यश्च शीतार्त्ता गोविन्दं शरणं ययुः॥ ११ ॥

इस प्रकार विकट जलधाराओं एवं प्रचण्ड झञ्झावातके असह्य वेगसे पशु ठिठुरने और काँपने लगे तथा गोप-गोपियाँ भी प्रचण्ड शीतसे आर्त्त एवं व्याकुल हो गये। तब वे सब श्रीकृष्णकी शरणमें पहुँचे॥ ११ ॥

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः।

वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः॥ १२ ॥

मूसलाधार वर्षासे पीड़ित एवं कम्पित पशुओंने अपने सिरों एवं अपने बच्चोंको अपने शरीरोंसे यत्नपूर्वक आच्छादित कर रखा था और वे भी काँपते-काँपते भगवान्के चरणोंमें उपस्थित हुए॥ १२ ॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो।

त्रातुमर्हसि देवात्रः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥

गोप, गोपी सभी ब्रजवासी श्रीकृष्णसे कहने लगे—हे महाभाग श्रीकृष्ण! यह समस्त गोकुल-धाम और हम सभी तुम्हारे ही अधीन हैं। हे भक्तवत्सल! अब तो इन्द्रके कोपसे तुम ही हमारी रक्षा कर सकते हो ॥ १३ ॥

शिलावर्षातिवातेन हन्यमानमचेतनम्।

निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥

ब्रजवासियोंके इस निवेदनसे पहले ही भगवान्ने देख लिया था कि ओलोंकी बरसात एवं प्रबल आँधीके प्रहारोंसे सब गोकुलवासी अचेत हो रहे हैं। तभी उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि यह समस्त कार्य (उपद्रव) इन्द्रका ही है। उन्होंने ही क्रोधवश ऐसा किया है ॥ १४ ॥

अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम्।

स्वयागे विहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण मन-ही-मन कहने लगे—हमने इन्द्रका यज्ञ बन्द कर दिया है, इसीसे वे हमारे विनाशके लिए असमयमें (बिना ऋतुके ही) प्रचण्ड झञ्झावातों और ओलोंके साथ मूसलाधार वर्षा कर रहे हैं ॥ १५ ॥

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये।

लोकेशमानिनां मौढ्याद्धनिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥

अच्छी बात है, मैं अपनी सामर्थ्यके अनुसार (योगमायाके द्वारा) इसका यथोचित प्रतिकार करूँगा। मूर्खताके कारण ये इन्द्रादि लोकपाल स्वयंको ईश्वर मान लेते हैं। अब मैं इनके ऐश्वर्य-मद और तमोगुणको (अज्ञानको) धराशायी कर डालूँगा ॥ १६ ॥

नहि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः।

मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥

देवताओंको सात्त्विक होना चाहिये। उनके लिए इस प्रकारसे ऐश्वर्य एवं पदका मिथ्या अभिमान करना उचित नहीं है। अतः अब मैं ही इन सत्त्वगुण-रहित दुर्बुद्धियोंके मदको चूर्ण-विचूर्ण करूँगा। इससे अन्तमें उन्हें भी शान्ति प्राप्त होगी (देवताओंके गर्वको चूर्ण करना ही उनके इस गर्वरूपी रोगकी उपशान्ति अर्थात् ओषधि है) ॥ १७ ॥

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्।

गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥

ये सारे ब्रजवासी मेरे अधीनस्थ होकर मेरे संरक्षणमें हैं। मैं ही इनका एकमात्र रक्षक हूँ। ब्रज मेरा गोष्ठ है और यहीं मेरे प्रेयजन (राधा, ललिता) निवास करते हैं। सभी ब्रजवासी मेरे परिवारीजन (माता, पिता) हैं। मैं अपनी अलौकिक शक्तिसे इनकी रक्षा करूँगा। भक्तोंकी रक्षा करना तो मेरा व्रत है ॥ १८ ॥

इत्युक्तवैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्।

दधार लीलया विष्णुश्छत्राकमिव बालकः ॥ १९ ॥

श्रीकृष्णने यह विचारकर अनायास ही एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्धन पर्वतको उठाकर इस प्रकार धारण कर लिया, जिस प्रकार बालक खेल-ही-खेलमें छत्राक (बरसाती छत्तेके पुष्प) को उखाड़कर हाथमें धारण कर लेता है (श्रीकृष्ण गिरिराज उठानेके लिए जब घरसे तीव्र गतिसे निकले, उस समय योगमायाकी अंशस्वरूपा संहारिका शक्तिने आकाशमें वर्षणका ऐसा शोषण कर लिया था कि कृष्णके वस्त्र किञ्चित् मात्र भी नहीं भीगे थे) ॥ १९ ॥

अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात ब्रजौकसः।

यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥

तब भगवान्ने गोपोंसे कहा—हे माताजी! हे पिताजी! हे ब्रजवासियो! तुमलोग समस्त गोधन और सभी सामग्रियोंके साथ

इस पर्वतके गह्वरमें (गड्ढेमें) प्रवेश करो और सुखपूर्वक आसीन हो जाओ (गोवर्धन पर्वतको वज्रपात पुष्प-वर्षणकी भाँति प्रतीत हो रहा था। इसका विस्तार इतना अधिक हो गया था कि व्रज तो क्या त्रिलोकीकी भी रक्षा की जा सकती थी। वर्षण इसके नितम्ब-प्रदेश पर हो रहा था। अतः इसके ऊपर विचरनेवाले हिरण, वराह आदि पशु एवं पक्षी इसके शिखर पर सुखपूर्वक पहुँच गये थे) ॥ २० ॥

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातनात्।

वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥

देखो, मेरे हाथसे यह पर्वत गिर जायेगा—ऐसी आशङ्का मत करना। इस पर्वतके गह्वरमें प्रवेश करनेपर तुमलोगोंको आँधी अथवा वर्षाजनित कोई भय नहीं रहेगा। तुम्हारी रक्षाके लिए ही मैंने यह उपाय किया है ॥ २१ ॥

तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाशवासितमानसः।

यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने जब सबको इस प्रकारसे सान्त्वना दी, तब सब-के-सब गोप आश्वस्त-चित्त होकर उनके आदेशानुसार अपने-अपने गोधन, छकड़ों, आश्रितों, भृत्यों एवं पुरोहित आदिके साथ गिरिराज गोवर्धनके गह्वरमें सुखपूर्वक प्रवेश कर गये ॥ २२ ॥

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः।

वीक्ष्यमाणो दधारार्द्रि सप्ताहं नाचलत् पदात् ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण भूख-प्यासकी यन्त्रणा एवं अपने समस्त प्रकारके सुखोंको भुलाकर सात दिनों तक लगातार गोवर्धन पर्वतको धारण किये रहे, अपने स्थानसे किञ्चित् मात्र भी इधर-उधर नहीं हुए। व्रजवासी विस्मयके साथ यह सब देख रहे थे ॥ २३ ॥

कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः।

निस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥ २४ ॥

श्रीकृष्णकी योगमाया शक्तिके स्वाभाविक प्रभावको देखकर इन्द्र अतिशय विस्मित रह गये। उनका सारा सङ्कल्प भ्रष्ट हो गया और मिथ्या घमण्ड भी धरा-का-धरा रह गया तथा आश्चर्य एवं भयके कारण वे विस्मित-से रह गये। इसके बाद उन्होंने स्वयं ही मेघोंको रुक जानेका आदेश दे दिया॥ २४॥

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षञ्च दारुणम्।

निशम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत्॥ २५ ॥

जब गोवर्धनधारी श्रीकृष्णने देखा कि आकाश मेघ-रहित हो गया है, वहाँ सूर्य उदित हो रहा है, भयङ्कर आँधी, विकराल तूफान और घनघोर वर्षा सब शान्त हो गये हैं, तब उन्होंने गोपोंसे कहा— ॥ २५ ॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः।

उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः॥ २६ ॥

हे मेरे प्यारे गोपजनो! अब अपने स्त्री, पुत्र, धन, गोधन आदि लेकर तुमलोग गिरि-कन्दरासे बाहर निकल आओ। अब और भय करनेकी आवश्यकता नहीं है। आँधी वर्षा सब रुक गये हैं। बाढ़-ग्रस्त नदियोंका जल भी अब उतर गया है॥ २६ ॥

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम्।

शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः॥ २७ ॥

श्रीकृष्णके आदेशानुसार गोपोंने सारी सामग्रियोंको छकड़ोंपर लाद दिया और अपनी गौएँ समेटकर बाहर निकलने लगे। बादमें उनके पीछे स्त्रियाँ, बालक एवं वृद्धगण भी धीरे-धीरे बाहर आने लगे॥ २७ ॥

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः।

पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया॥ २८ ॥

सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णने सभी लोगोंके देखते-ही-देखते अनायास ही गिरिराज गोवर्धनको उसी स्थानपर स्थापित कर दिया, जहाँ वह पहले विराजमान थे॥ २८ ॥

तं प्रेमवेगात्रिभृता ब्रजौकसो
 यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ।
 गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन् मुदा
 दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥

उस समय ब्रजवासियोंका हृदय प्रेमके आवेगसे अभिभूत हो रहा था। पर्वतको रखते ही वे भगवान् श्रीकृष्णके समीप दौड़कर आ गये और अपने-अपने सम्बन्धोंके अनुसार आलिङ्गन आदिसे उनका अभिनन्दन करने लगे। बड़ी-बूढ़ी गोपियोंने स्नेहसे परिपूर्ण होकर बड़े आनन्दसे दही, अक्षत (अखण्डित कच्चे चावल) और जल आदिसे उनका मङ्गल-तिलक किया और उन्हें प्रचुर आशीर्वाद (तुम दुष्टोंका दमन करो, भक्तोंकी रक्षा करो, माता-पिताको आनन्द प्रदान करो, धन-वैभवसे समृद्ध रहो) प्रदान किये ॥ २९ ॥

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ।
 कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥

मैया यशोदा, रोहिणी, नन्द बाबा एवं महाबलवानोंमें श्रेष्ठ बलराम भी उस समय स्नेहातिशयताके कारण विह्वल हो रहे थे। उन्होंने भी श्रीकृष्णको हृदयसे लगाया और प्रचुर आशीर्वाद दिये ॥ ३० ॥

दिवि देवगणाः सिद्धाः साध्या गन्धर्वचारणाः ।
 तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥

परीक्षित्! उस समय स्वर्गस्थ देव, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व एवं चारण भी बड़े आनन्दित हो रहे थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका यशोगान करते हुए स्तुति की और उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥ ३१ ॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रचोदिताः ।
 जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥

हे राजन्! देवतागण स्वर्गमें शङ्खनाद एवं दुन्दुभि-नाद करने लगे। तुम्बुरु आदि गन्धर्वराजने कृष्ण-लीलाका गान आरम्भ कर दिया ॥ ३२ ॥

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो
राजन् स्वगोष्ठं सबलोऽब्रजद्धरिः।
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका
गायन्त्य ईयुर्मुदिताहृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे गोवर्धन-धारणं
नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

हे राजन्! इसके बाद श्रीकृष्ण बलराम एवं प्रेमी ग्वालबालोंसे घिरकर निज गोष्ठकी ओर चल दिये। गोपिकाएँ भी हृदयको आकर्षित करनेवाले श्रीकृष्णकी उस आश्चर्यजनक गोवर्धन धारण आदि लीलाओंका गान करती हुई आनन्दपूर्वक ब्रजमें लौट आयीं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पच्चीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

षड्विंशोऽध्यायः

नन्दबाबाका श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावको देखकर
उसका गोपोंसे वर्णन

श्रीशुक उवाच—

एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते।

अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! ब्रजके गोप भगवान् श्रीकृष्णके इस अद्भुत पराक्रमको नहीं जानते थे। अतः गोवर्धन-धारणादि उनके अद्भुत कार्योंको देखकर वे अतीव विस्मित हो गये। वे सब एकत्रित हुए और नन्दगोपके सभा-भवनमें पहुँचकर उनसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ १ ॥

बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै।

कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥

गोपोंने कहा—हे ब्रजराज! हमें तो तुम्हारे पुत्रके बड़े-बड़े अलौकिक कार्य दिखायी दे रहे हैं। अतः हमारी समझमें यह नहीं आ रहा है कि इस बालकने हमारे जैसे गँवार गोपवंशमें ग्वालेके रूपमें जन्म क्यों ग्रहण किया? यह तो बड़ी निन्दास्पद बात है। भला यह इस वंशके योग्य कैसे हो सकता है? ॥ २ ॥

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया।

कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥

अरे! इस नन्हेसे सात वर्षके बालकने न जाने किस शक्तिके बलसे अनायास ही गोवर्धन पर्वतको उखाड़कर एक हाथमें ऐसे धारण कर लिया, जैसे महागजराज कमलको सूँड़से उखाड़कर उसे अपने ऊपर धारण कर लेता है ॥ ३ ॥

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः।

पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥

इसने जन्म लिया ही था कि महाबलशालिनी भयङ्कर पूतना राक्षसी आयी। यह अपनी आँखे मूँदे ही रहा और उस राक्षसीका स्तन्य-पान करते हुए उसने उसके प्राण वैसे ही पी लिये, जैसे काल प्राणियोंके शरीरसे उनकी आयु एवं यौवनका पान करता रहता है ॥ ४ ॥

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक्।

अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥ ५ ॥

तुम्हारा यह बालक उस समय मात्र तीन मासका रहा होगा, तब यह छकड़ेके नीचे सोया हुआ था। इसने रोते-रोते पाँवोंको ऊपरकी ओर इस प्रकार उछाला कि इसके पाँवोंके अग्रभाग—अँगूठेकी ठोकरसे वह बड़ा भारी छकड़ा उलटकर गिर गया ॥ ५ ॥

एकहायन आसीनो हियमाणो विहायसा।

दैत्येन यस्तृणावर्तमहन् कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥

जब इसकी आयु मात्र एक वर्षकी ही रही होगी, यह चुपचाप बैठा था कि तभी आकाशचारी तृणावर्त नामका राक्षस बवण्डरके रूपमें आया और इसे आकाशमें उड़ा ले गया। तब इसने उस राक्षसके गलेको ऐसे दबाया कि भयङ्कर पीड़ासे उस असुरने अपने प्राण छोड़ दिये ॥ ६ ॥

क्वचिद्भयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उदूखले।

गच्छत्रर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥

एक बार जब इसने माखनकी चोरी की, तब माता यशोदाने इसे ऊखलसे बाँध दिया था। उस समय भी यह घुटनोंके बल रेंगता हुआ यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें घुस गया और उन्हें उखाड़ दिया। भला देखो तो, इसकी भुजाओंके आघात मात्रसे ही वे दोनों अर्जुन वृक्ष भूमिपर गिर पड़े ॥ ७ ॥

वने सञ्चारयन् वत्सान् सरामो बालकैर्वृतः।

हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥

जब यह बलराम और ग्वालबालोंके साथ वनमें बछड़ोंको चरा रहा था, उसी समय इसे मार डालनेकी इच्छासे बकासुर नामका दैत्य बगुलेके रूपमें आया। तब भी तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्णने उस शत्रुकी चोंचके दोनों ठोरोको दोनों हाथोंसे पकड़कर मुखसे लेकर पूँछ तकके सारे शरीरको तिनकेकी भाँति विदीर्ण कर (चीर) डाला ॥ ८ ॥

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया।

हत्वा न्यपातयत् तेन कपित्थानि च लीलया ॥ ९ ॥

वत्सासुर भी इसे मारनेकी इच्छासे बछड़ेका वेश बनाकर आया और बछड़ोंके झुण्डमें मिल गया, तब इसने (श्रीकृष्णने) उस असुरका वध कर डाला और उसकी देहको उठाकर अनायास ही इस प्रकारसे कैथके वृक्षोंपर पटक दिया कि वनमें स्थित कैथके सारे वृक्ष नीचे भूमिपर गिर गये ॥ ९ ॥

हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः।

चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥

और फिर बलदेवके साथ मिलकर इसने गधेके रूपमें रहनेवाले धेनुकासुर एवं उसके भाई-बान्धवोंको मार डाला और पके हुए फलोंसे युक्त तालवनको सबके लिए उपयोगी, सुरक्षित, निर्भय और मङ्गलमय बना दिया ॥ १० ॥

प्रलम्बं घातयित्वाग्रं बलेन बलशालिना।

अमोचयद्ब्रजपशून् गोपांश्चारण्यवहितः ॥ ११ ॥

इसीने ही बलशाली बलदेवके द्वारा अति उग्र प्रलम्ब नामक असुरको मरवा डाला तथा ब्रजके पशुओं और ग्वालबालोंकी दावानलसे रक्षा की ॥ ११ ॥

आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं हृदात्।

प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥

क्रूर कालियनाग अत्युग्र विष धारण करनेवाला था। कृष्णने उसके भी गर्वको चूर्ण-विचूर्ण करते हुए उसके फनोंको रौंद डाला और अपने बलके प्रभावसे उसे हृदसे निकाल करके यमुनाके जलको सदाके लिए विषरहित कर दिया॥ १२॥

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो ब्रजौकसाम्।

नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम्॥ १३॥

हे नन्द! तुम्हारे इस पुत्रके प्रति हम सभी ब्रजजनोंके हृदयमें दुस्त्यज्य अनुराग है (हम इस अनुरागका कभी त्याग नहीं कर सकते)। हम सभी देख रहे हैं कि हमारे प्रति भी इसका स्वाभाविक (औत्पत्तिक) स्नेह है। इसका क्या कारण हो सकता है? (परमात्मा होनेपर हम सभी वनवासी ब्रजवासियोंके प्रति इसका वैसा अनुराग कैसे सम्भव है? आत्माराम होनेके कारण परमात्मा तो सर्वत्र उदासीन रहते हैं) महाराज! क्या यह बालक सभीका आत्मस्वरूप है?॥ १३॥

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम्।

ततो नो जायते शङ्का ब्रजनाथ तवात्मजे॥ १४॥

हे ब्रजेश्वर! कहाँ तो यह सात वर्षका छोटा-सा बालक और कहाँ गोवर्द्धन जैसे विशाल पर्वतको सात दिनों तक एक हाथपर धारण करना? हमें तो तुम्हारे इस पुत्रके सम्बन्धमें शङ्का हो रही है॥ १४॥

श्रीनन्द उवाच—

श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके।

एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह॥ १५॥

श्रीनन्द महाराजने कहा—हे गोपजनों! महामुनि गर्गने इस बालकके विषयमें जो पहले मुझसे कहा था, उसे सावधानीपूर्वक सुनो, जिससे तुम सबकी शङ्का अवश्य ही दूर हो जायेगी॥ १५॥

वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥

गर्गाचार्यने कहा था—तुम्हारा पुत्र प्रत्येक युगमें विविध शरीर धारण करता है। अब तक यह विभिन्न युगोंमें शुक्ल, रक्त एवं पीत वर्ण धारण कर चुका है। अब द्वापरमें यह कृष्ण वर्णको प्राप्त हुआ है ॥ १६ ॥

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।

वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १७ ॥

नन्द! तुम्हारे इस पुत्रने पहले कभी वसुदेवके घरमें भी जन्म लिया था। इसीलिए इस तत्त्वको जाननेवाले इसे वासुदेव भी कहते हैं ॥ १७ ॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।

गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥

इसके अतिरिक्त तुम्हारे इस पुत्रके गुण एवं कर्मोंके अनुरूप बहुत-से नाम एवं रूप हैं। यह सब मैं तो जानता हूँ, परन्तु साधारण लोग इस बातको नहीं जानते ॥ १८ ॥

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ।

अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥

तुम्हारा यह पुत्र गौओं एवं गोपोंको अतीव आनन्द प्रदान करेगा और तुमलोगोंका भी परम कल्याण करेगा। तुमलोग इसकी सहायतासे समस्त विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे ॥ १९ ॥

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।

अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ २० ॥

हे व्रजराज! पहले भी एक बार अराजकताकी स्थिति आ गयी थी। कोई राजाके न रहनेपर चोर-डाकुओंका उत्पीड़न बढ़ चला था। तब भी इसने साधुजनोंकी रक्षा की थी और उन सत्पुरुषोंने इसके बलसे उद्दीप्त होकर दस्युओंको पराजित किया था ॥ २० ॥

य एतस्मिन् महाभागे प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः।

नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥

हे नन्द महाराज! वे सभी मनुष्य बड़े भाग्यशाली हैं, जो इस सर्वमङ्गलमय तुम्हारे श्यामल पुत्रसे अनुराग रखते हैं। जिस प्रकार आन्तरिक एवं बाहरी असुर विष्णुपरायण भक्तोंको पराजित नहीं कर सकते (विष्णुके करकमलोंकी छत्र-छायामें रहनेवाले देवताओंको असुर पराजित नहीं कर सकते), उसी प्रकार शत्रु भी उन कृष्णानुरागियोंको परास्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ २१ ॥

तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः।

श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥

अतः नन्दजी! आपका यह बालक श्रीकृष्ण कीर्ति, प्रभाव एवं अन्यान्य गुणोंमें भगवान् नारायणके ही समान है। अतएव इसके अद्भुत कर्मोंको देखकर किसी भी प्रकारका विस्मय नहीं करना चाहिये। (यह नारायणके समान है, नारायण नहीं। अतः इस बालकको अपने वात्सल्य एवं आशीर्वादोंसे वञ्चित मत करना। पूर्वजन्मकृत किसी सुकृतिशाली महापुरुषने हमारे गोकुलके भूषणके रूपमें जन्म लिया है।) ॥ २२ ॥

इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते।

मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥

हे गोपजनो! इस प्रकार गर्गमुनि साक्षात् रूपसे मुझे इस प्रकार बतलाकर अपने घर चले गये। अब मैंने यह निश्चय कर लिया है कि हम सबको क्लेशोंसे मुक्त रखनेवाले अलौकिक एवं परमसुखदायी इस मेरे बालकमें नारायणकी शक्तिका आवेश है ॥ २३ ॥

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः।

मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णञ्च गतविस्मयाः ॥ २४ ॥

नन्द महाराजके मुखसे गर्गमुनिके इन वचनोंको सुनकर व्रजवासी गोप परम आनन्दित हुए। उनका सारा विस्मय दूर हो

गया। वे नन्द महाराज एवं श्रीकृष्णका आनन्दपूर्वक वस्त्र, रत्नादि उपहारोंसे अभिनन्दन करने लगे और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ २४ ॥

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्समयन्।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयात्र इन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीनन्दगोपसंवादो
नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

तदनन्तर वे सब स्तुति करते हुए कहने लगे—अपना यज्ञ भङ्ग हो जानेपर क्रोधाविष्ट देवराज इन्द्र मुसलाधार वर्षा, वज्रपात, प्रचण्ड आँधी और ओलोंकी बौछार करने लगे। उस समय अपने आश्रित गोष्ठके पशु, पशुपालक एवं अबलाओंको उससे अत्यन्त पीड़ित देखकर जिनका हृदय करुणासे द्रवित हो गया और जिन्होंने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए खेल-ही-खेलमें गोवर्धन पर्वतको उखाड़कर एक हाथसे इस प्रकार धारण कर लिया, जिस प्रकार एक नन्हा-सा बालक उच्छिलीन्ध्र अर्थात् बरसाती छत्रक (कुकुरमुत्ते) को उखाड़कर धारण कर लेता है और इन्होंने इस प्रकार समस्त व्रजवासियोंकी रक्षा की। ऐसे इन्द्रके गर्वको हरण करनेवाले, गौओंके स्वामी गवेन्द्र—गोविन्द हम सबपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके छब्बीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

सप्तविंशोऽध्यायः

सुरभि और इन्द्रदेवके द्वारा श्रीकृष्णका अभिषेक

श्रीशुक उवाच—

गोवर्द्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे।

गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने गिरिराज गोवर्द्धनको धारण करके घनघोर वृष्टिपातसे व्रजमण्डलको बचा लिया, तब (प्राकृत) गोलोकसे गो-माता सुरभि और स्वर्गसे देवराज इन्द्र श्रीकृष्णके समीप आये। [श्रीकृष्णके प्रति किये गये अपने अपराधसे भयभीत होकर इन्द्र ब्रह्माजीके निकट गये थे एवं ब्रह्माजीके आदेशानुसार भौम गोलोकसे (सुरभि लोकसे) सुरभिको साथ लेकर श्रीकृष्णके समीप आये थे। अप्राकृत गोलोकमें निवास करनेवाली सुरभिका सङ्ग लाभ करना भौतिक जगत्के इन्द्रके लिए सम्भव नहीं है।] ॥ १ ॥

विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडितः कृतहेलनः।

पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका अनादर करनेके कारण इन्द्र बहुत लज्जित हो रहे थे। इसलिए जब भगवान् श्रीकृष्ण गोवर्द्धन पर्वतके निकट एकान्तमें बैठे थे, वे उनके समीप आये और सूर्यके समान तेजस्वी अपने मुकुटसे भगवान्के पादारविन्दोंका स्पर्श किया ॥ २ ॥

दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः।

नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥

इन्द्रने परम तेजस्वी श्रीकृष्णके प्रभावको ब्रह्माजीके मुखसे सुन रखा था, लेकिन जब उन्हें गोवर्द्धन धारण करते हुए प्रत्यक्ष ही देख लिया, तो “मैं ही त्रिलोकीका अधिपति हूँ” इस प्रकारका

उनका सारा गर्व विदूरित हो गया। वे हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे— ॥ ३ ॥

श्रीइन्द्र उवाच—

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं
तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम्।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो
न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥

इन्द्रने कहा—हे देव! आपका स्वरूप अपरिवर्तनशील, ज्ञानमय, रजो एवं तमोगुणके सम्पर्कसे रहित, विशुद्ध एवं अप्राकृत सत्त्वमय है। गुणोंके प्रवाहके रूपमें प्रतीत होनेवाला यह प्रपञ्च मायामय है। अज्ञानानुबन्धके कारण अर्थात् आपका स्वरूप न जाननेके कारण ही यह संसार आपमें विद्यमान प्रतीत होता है, पर है नहीं ॥ ४ ॥

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता
लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः।
तथापि दण्डं भगवान् बिभर्ति
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥

हे प्रभो! जब आपका अज्ञान एवं इससे उत्पन्न होनेवाली देहसे कोई सम्बन्ध है ही नहीं, तो देहसे सम्बन्धित प्राणियों और दूसरी देहोंकी उत्पत्तिके मूल कारणस्वरूप लोभादि दोषोंकी सम्भावना आपमें किस प्रकारसे हो सकती है? लोभ, काम, क्रोध एवं ईर्ष्यादि तो अज्ञानियोंके लक्षण हैं। इसपर भी हे परमेश्वर! आप धर्मकी रक्षा एवं दुष्टोंके दमनके लिए दण्डका विधान करते हैं (आपके द्वारा मेरे प्रति दण्ड-विधान आपकी कृपा ही है) ॥ ५ ॥

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो
दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः।

हिताय चेच्छातनुभिः समीहसे
मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥

आप जगत्के पिता, गुरु, परम नियन्ता एवं अधीश्वर भी हैं। आप दुर्लभ कालके रूपमें शासनभार स्वीकार कर दण्ड धारण करते हैं और स्वेच्छाचारियोंको नियन्त्रित करते हैं। जो हमारी तरह अपनेको ईश्वर मान बैठते हैं, आप उनके गर्वके विनाश एवं अपने भक्तोंके मङ्गल तथा उनकी अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिए अनेक लीलावतार प्रकट करते हैं ॥ ६ ॥

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिन-
स्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम्।
हित्वार्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया
ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥

हे प्रभो! मेरे जैसे मूर्ख अपनेको ईश्वर मानकर अभिमान करते हैं, पर जब वे भयके अवसरोंमें भी आपको निर्भय देखते हैं, तो अपना अभिमान त्याग देते हैं और निरहङ्कार होकर आर्यजनोंके द्वारा सेवित भक्तिपथका आश्रयकर आपके भक्त बन जाते हैं। आपकी यह गोवर्द्धन-धारणादि लीला खल व्यक्तियोंके लिए शिक्षा-स्वरूप है ॥ ७ ॥

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य
कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम्।
क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो
मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥

हे प्रभो! मैं आपकी अलौकिक शक्ति एवं आपके दिव्य प्रभावको नहीं जानता था, इसलिए ऐश्वर्य-मदमें डूबा हुआ मैं आपके प्रति अपराध कर बैठा। मेरे इस अज्ञान-जनित दोषको आप क्षमा कीजिये। हे परमेश्वर! ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी इस प्रकारकी दुर्मति पुनः कभी न हो ॥ ८ ॥

तवावतारोऽयमधोक्षजेह
 भुवोभराणामुरुभारजन्मनाम् ।
 चमूपतीनामभवाय देव
 भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥

हे देव ! हे स्वयंप्रकाश ! हे इन्द्रियातीत परमात्मन् ! दैत्य-सेनाके सेनापतिगण पृथ्वीके लिए बड़े भारी भारका कारण बन रहे हैं और अनेक उत्पात मचा रहे हैं। आपने इनका विनाश करके उन्हें मोक्ष प्रदान करनेके लिए और अपने चरणाश्रित भक्तोंके मङ्गलविधानके लिए इस मर्त्यधाममें अवतार लिया है। (राजन्यवर्ग एवं भक्त—इन दोनोंमेंसे मैं कोई भी नहीं हूँ। अतएव मेरा विनाश भी नहीं है और मङ्गल भी नहीं है। आप मेरे प्रति उदासीन ही बने हुए हैं। अतएव मुझे धिक्कार है।) आप इस सेवकके अपराधको क्षमा कर दीजिये ॥ ९ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।

वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥

हे भगवन् ! हे श्रीकृष्ण (सबके चित्तका आकर्षण करके परमानन्द प्रदान करनेवाले) ! आपको नमस्कार है। आप सर्वान्तर्यामी और सर्वव्यापक हैं। आप सभीके हृदयोंमें निवास करनेवाले हैं। हे वासुदेव ! आप सात्वतोंके (यदुवंशियोंके) एकमात्र अधिपति (स्वामी) हैं। मैं आपको पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ।

सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥

आपने अपने भक्तोंकी इच्छासे ही अपनी श्रीमूर्तिको स्वयं ही इस प्रपञ्चमें प्रकट किया है। आप सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं। आपका यह श्रीविग्रह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है। आप अपनी अचिन्त्यशक्तिके कारण इस जगत्के निमित्त एवं उपादान कारण हैं। आप ही सर्वरूप, समस्त पदार्थोंके मूल कारण और समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार है ॥ ११ ॥

मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ।

चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥

हे भगवन्! आपने मेरे यज्ञका (पूजा-अर्चनका) जब निवारण किया, तो मुझे भयङ्कर क्रोध आ गया। मुझे अपने ईश्वर होनेका मिथ्या अभिमान तो था ही, अतः घनघोर वर्षा एवं प्रचण्ड आँधीके द्वारा सारे व्रजका विनाश करनेकी कुचेष्टा करने लगा ॥ १२ ॥

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः ।

ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥

परन्तु हे ईश! आपने मेरा सारा प्रयास व्यर्थ करके मुझपर बड़ा अनुग्रह किया है। इससे मेरा मिथ्या घमण्ड भी चकनाचूर हो गया। अब तो आप ही मेरे ईश्वर, मेरे गुरु और मेरी आत्मा हैं। मैं आपके शरणागत हूँ। इस महापराधी जीवाधमको चिर-कृतार्थ करें ॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं सङ्कीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ।

मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—इन्द्रने जब भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने मन्द-मन्द हास्यके साथ मेघके समान गम्भीर वाणीसे इन्द्रको सम्बोधन करके कहा ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच—

मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णात ।

मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रिया भृशम् ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे मघवन्! स्वर्गके आधिपत्यको प्राप्त करके तुम ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके मदसे अत्यन्त मतवाले हो रहे थे। अतः तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए ही मैंने तुम्हारे यज्ञका निवारण किया है। अब तुम्हें विशेषरूपसे मद्विषयक स्मृति बनी रह सकती है ॥ १५ ॥

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति।

तं भ्रंशयामि सम्पद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम्॥ १६ ॥

जो अपने ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिसे मदान्ध हो जाता है, वह मुझे देख नहीं पाता कि मैं कालरूप परमेश्वर हाथमें दण्ड लेकर सब समय उसके सिरपर सवार हूँ। मैं जिसपर अनुग्रह करता हूँ, उसे ऐश्वर्य एवं धन-सम्पत्तिसे भ्रष्ट कर देता हूँ॥ १६ ॥

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम्।

स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः॥ १७ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम अब अपने स्थानपर (अपनी राजधानी अमरावतीमें) जाओ और मेरे आदेशका पालन करो। अब कभी गर्व मत करना। अपने अधिकारमें ही रहकर उचित रीतिसे मर्यादाका पालन करना॥ १७ ॥

अथाह सुरभिः कृष्णमभिवन्द्य मनस्विनी।

स्वसन्तानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम्॥ १८ ॥

हे परीक्षित! उसी समय मनस्विनी (प्रशान्तचित्तवाली) कामधेनु सुरभिने अपनी सन्तानों—गौओंके साथ गोपवेशधारी भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और उन्हें सम्बोधनकर कहने लगी॥ १८ ॥

श्रीसुरभिरुवाच—

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव।

भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत॥ १९ ॥

कामधेनु सुरभिने कहा—हे महायोगी! हे विश्वान्तर्यामी! हे विश्वसम्भव! हे अच्युत! हे सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! हे जगत्पति! आपके द्वारा ही हम सब गौएँ संरक्षित हैं। अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे गिरिराजको उठाकर आपने मेरी सन्तानों—गायोंकी रक्षा की है, जिससे हम सनाथ हुई हैं अर्थात् हम आपकी आश्रिता हैं। मेरी सन्तानोंका विनाश करनेकी इच्छा रखनेवाले इन्द्रके प्रभुत्वकी हमें आवश्यकता नहीं है॥ १९ ॥

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते।

भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥

हे जगत्-स्वामिन्! आप हमारे परमपूज्य आराध्य देवता हैं। आप ही साधुओं, गौओं, ब्राह्मणों एवं देवताओंके मङ्गलके लिए इन्द्र बन जाइये (इन्द्र त्रिलोकीके भले ही इन्द्र हुआ करें, परन्तु हमारे इन्द्र तो आप ही हैं) ॥ २० ॥

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा चोदिता वयम्।

अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥

हे विश्वात्मन्! आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिए ही अवतरित हुए हैं। ब्रह्माके द्वारा प्रेरित होकर हम गौएँ आज आपका राज्याभिषेक करेंगी, क्योंकि हे गोपराजनन्दन! आप ही हमारे स्वामी (इन्द्र) हैं ॥ २१ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः।

जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धतैः ॥ २२ ॥

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं चोदितो देवमातृभिः।

अभ्यसिञ्चत दशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! कामधेनु सुरभिने इस प्रकार कहकर अपने दूधसे एवं अदिति आदि देवमाताओंकी प्रेरणासे स्वयं देवराज इन्द्रने ऐरावतकी सूँड द्वारा लाये हुए रत्नकलशमें भरे हुए मन्दाकिनीके (आकाश-गङ्गाके) जलसे देवता एवं देवर्षियोंके साथ दशार्ह वंशज यदुनाथ भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया एवं उनका 'गोविन्द'—यह नामकरण किया ॥ २२-२३ ॥

तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो

गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।

जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः

सुराङ्गनाः संनृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥

तुम्बुरु, नारद आदि देवर्षि तथा गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध एवं चारण वहाँ पहलेसे ही विद्यमान थे। वे भगवान् श्रीहरिके पाप-ताप-भञ्जक (संसारके समस्त पापको मिटा देनेवाले) एवं लोककल्मषापह (सभी लोकोंके कल्मषको विदूरित करनेवाले) यशका गान करने लगे। अप्सराएँ अति प्रसन्नतासे उनके साथ नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥

तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो
ह्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ।
लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो
गावस्तदा गामनयन् पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥

प्रमुख-प्रमुख देवता श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए नन्दनवनके पारिजात पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। उस समय तीनों लोकोंमें शान्ति एवं आनन्दका साम्राज्य व्याप्त हो गया। गौओंके थनोंसे अपने आप इतना दूध झरने लगा कि उससे सम्पूर्ण पृथ्वी अभिसिञ्चित हो गयी ॥ २५ ॥

नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः ।
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रनुन्मणीन् ॥ २६ ॥

नदियाँ क्षीरवाहिनी हो गयीं अर्थात् नदियोंमें दूध आदि विविध स्वादिष्ट रस प्रवाहित होने लगे, वृक्षोंसे मधुधाराएँ बरसने लगीं, बोये-जोते बिना ही पृथ्वी परिपक्व अन्न एवं ओषधियोंसे परिपूर्ण हो गयी और पर्वतोंके गर्भगत हुए मणि-माणिक्य स्वयं ही बाहर प्रकाशित होने लगे ॥ २६ ॥

कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सर्वाणि कुरुनन्दन ।
निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥

हे वत्स परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक होनेपर स्वभावतः हिंस्र स्वभावको धारण करनेवाले समस्त प्राणी शत्रु भावको भूल गये। उनमें परस्पर मित्रता हो गयी, क्योंकि वह स्थान परमानन्दकी रङ्गभूमि बन गया था ॥ २७ ॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः।
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां श्रीकृष्णाभिषेको
नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इन्द्रने इस प्रकार गौ और गोकुलपति गोविन्दका अभिषेक
करके उनकी आज्ञा प्राप्त की तथा देवता, गन्धर्वों आदिसे
परिवेष्टित होकर स्वर्गकी ओर प्रस्थान किया ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सत्ताईसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

वरुणलोकसे नन्दजीको मुक्त करना और गोपोंको
वैकुण्ठ दर्शन कराना

श्रीबादरायणि उवाच—

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।

स्नातुं नन्दस्तु कालिन्ध्यां द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! एक बार परमभागवतोंमें अग्रणी श्रीनन्दमहाराजने कार्तिक शुक्लपक्षकी एकादशीका उपवासकर भगवान् जनार्दनकी सम्यक् रूपेण अर्चना की एवं अर्द्धकलामात्र (तीन पल) अवशिष्ट द्वादशीमें अपने उपवासका पारण करनेके लिए अरुणोदयसे पहले ही [शास्त्रोंकी आज्ञानुसार निश्चितकाल (मध्यरात्रि) के पूर्व भी मध्याह्नपर्यन्तकी सभी क्रियाओंको किया जा सकता है] स्नान करनेके लिए यमुना-जलमें प्रवेश किया ॥ १ ॥

तं गृहीत्वानयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम्।

अवज्ञायासुरीं बेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥

परन्तु उस समय आसुरी बेला थी—शास्त्र निषिद्ध समय था। नन्दबाबा इस समयको ठीकसे समझ नहीं पाये थे, अतः रात्रिमें ही जलमें प्रवेश करनेके कारण वरुणका सेवक कोई एक असुर उन्हें पकड़कर अपने शासक जलाधिपति वरुणके समीप ले गया। वस्तुतः वरुणका यह असुर-सेवक भगवत् धर्म (शास्त्राज्ञा) से अवगत न था। अतः श्रीनन्दमहाराजकी अवज्ञा कर बैठा ॥ २ ॥

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः।

भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम्।

तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥ ३ ॥

नन्द बाबाके साथ गये हुए उनकी रक्षामें नियुक्त गोपोंने देखा कि वे जलसे बाहर नहीं निकले हैं, तब वे “हे कृष्ण! हे बलराम!” अब तुम्हीं लोग अपने पिताको ला सकते हो, इस प्रकार ऊँचे स्वरसे उन्हें पुकारने लगे। परीक्षित्! भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले सर्वव्यापक श्रीहरि कोस भर दूर शयन कर रहे थे, तब भी उनकी पुकारको ऐसे सुना, जैसे वे लोग समीपमें ही हों। सारी स्थिति देखकर वे समझ गये कि वरुणके किसी सेवकने ही उनके पिताका अपहरण किया है। अतः श्रीकृष्णने छलाङ्ग लगायी और जलमग्न होकर शीघ्र ही वरुणके समीप पहुँच गये॥ ३॥

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया।

महत्या पूजयित्वाह तद्दर्शनमहोत्सवः॥ ४॥

लोकपाल वरुणने हृषीकेश श्रीकृष्णको अपने लोकमें देखा, तो वे उनके दर्शन-महोत्सवसे अतीव आनन्दित हो गये और उनकी विशेष पूजा सामग्रियोंसे अर्चना करने लगे। इसके बाद वरुणने भगवान्से निवेदन किया। (वरुण स्वयं अपने मस्तकपर स्वर्ण-सिंहासन उठाकर लाये एवं उन्होंने अखिल ब्रह्माण्डपति श्रीकृष्णको उसपर बिठाकर अपने हाथोंसे उनके चरण धोये एवं चरणोदकका पानकर उसे अपने मस्तकपर धारण किया। इसके बाद वरुणने गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति की।)॥ ४॥

श्रीवरुण उवाच—

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो।

त्वत्पादभाजो भगवान्नवापुः पारमध्वनः॥ ५॥

वरुणने कहा—हे प्रभो! आज मेरा देह धारण करना सार्थक हुआ। आज मैंने परम धन (पुरुषार्थ) प्राप्त कर लिया है। समस्त रत्नाकरोंका अधीश्वर होनेपर भी मैंने पहले इतना धन कभी प्राप्त नहीं किया है। आज मुझे आपके श्रीचरणोंकी सेवाका सुअवसर प्राप्त हुआ है। आपके श्रीचरणोंकी सेवा करनेवाले

सहज ही भवसागर पार कर लिया करते हैं। अतएव मुझे भी अपना सेवक समझिये। मैं भी आपके चरणकमलोंकी कृपासे वैसी ही गतिकी आकाङ्क्षा करता हूँ॥५॥

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने।

न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना॥६॥

हे देव! आप परम ऐश्वर्यशाली, जीव-नियन्ता एवं परिपूर्ण-स्वरूप हैं। भक्तिके द्वारा भगवान्‌के रूपमें, ज्ञानके द्वारा ब्रह्मके रूपमें एवं योगके द्वारा आप परमात्मा स्वरूपमें प्राप्य हैं। श्रुतियाँ कहती हैं कि देवता, मनुष्य आदि लोकसृष्टि-विधायिनी माया आपका स्पर्श भी नहीं कर सकती। आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है॥६॥

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना।

आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति॥७॥

यह मेरा मूर्ख सेवक बिना समझे-बूझे ही आपके पिताजीको यहाँ ले आया है। यह अपने कर्त्तव्य-विषयसे अनभिज्ञ है। आप इसके अपराधको क्षमा कर दीजिये। (द्वादशीका समय अति अल्प रहनेपर अरुणोदयसे पहले ही जलमें प्रवेश करना चाहिये—भक्तिशास्त्रके इन नियमोंको न जानकर मेरे दासने जो अपराध किया है, वह यथार्थतः मेरा ही अपराध है।)॥७॥

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्त्तुमर्हस्यशेषदृक्।

गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल॥८॥

हे सर्वान्तर्यामी! हे सर्वदर्शिन् (सबके साक्षी)! हे गोविन्द! मैं जानता हूँ कि आप अपने पिताके प्रति बड़ा प्रेम रखते हैं। ये आपके पिताजी अपने इष्टदेवताका स्मरण करते हुए रत्नमय पर्यङ्कपर विराजमान हैं। आप इन्हें ले जाइये। परन्तु हे विश्व-मोहन! श्रीकृष्ण! हे कृपासिन्धु! आप मुझ दासपर भी कृपा कीजिये॥८॥

श्रीशुक उवाच—

एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः।

आदायागात् स्वपितरं बन्धूनाञ्चावहन् मुदम् ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—श्रीकृष्ण ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। वे वरुणदेवकी स्तुति सुनकर अतीव प्रसन्न हुए और पिता नन्दजीको लेकर व्रजमें चले आये। उन्हें देखकर उनके सभी व्रजवासी एवं आत्मीय बन्धु परम आनन्दित हुए। वरुणदेव भी श्रीकृष्णकी अहैतुकी कृपाका स्मरण करते हुए अपने लोकमें अवस्थान करने लगे ॥ ९ ॥

नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम्।

कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

लोकपाल वरुणका ऐसा अदृष्टपूर्व एवं अलौकिक ऐश्वर्य तथा अपने पुत्र श्रीकृष्णके प्रति उन वरुणलोकवासियोंका विनयपूर्वक झुक-झुककर नमस्कार करना—आदि देखकर नन्दबाबा विस्मित रह गये। उन्होंने व्रजमें आकर अपने बन्धुओंको सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १० ॥

ते चौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम्।

अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥

हे राजन्! यह सब वृत्तान्त सुनकर श्रीकृष्णके प्रेमी गोपोंका चित्त उत्सुकतासे ओतप्रोत हो गया। उन्होंने यह समझ लिया कि कृष्ण स्वयं-भगवान् हैं। तब वे मन-ही-मन चिन्तन-मनन करने लगे कि क्या हमारे अधीश्वर श्रीकृष्ण हमारे लिए दुर्बोध्य एवं दुर्ज्ञेय हैं? क्या वे हमें भी अपना वह मायातीत स्वधाम, जहाँ केवल इनके प्रेमी भक्त ही पहुँच सकते हैं, दर्शन करायेंगे? ॥ ११ ॥

इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम्।

सङ्कल्पसिद्ध्ये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सर्वदर्शी हैं। वे स्वयं ही गोपोंकी यह अभिलाषा जान गये। उनके मनोभीष्टकी पूर्तिके लिए और उनपर अपना अनुग्रह करनेके लिए वे इस प्रकार विचार करने लगे ॥ १२ ॥

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।

उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥

ये सब ब्रजवासी मेरे निज जन हैं। ये प्रपञ्चमें अवतीर्ण होकर मेरी माधुर्यमयी लीलामें आविष्ट हो गये हैं और आत्मस्वरूपको भूल गये हैं। इस संसारमें अविद्याजनित काम्य कर्मके फलस्वरूप सभी जीवोंका देव, तिर्यक् आदि उच्च-नीच योनियोंमें जन्म होता है, उसी प्रकार ये मेरे आत्मीय बन्धु उन-उन जन्मोंको प्राप्त जीवोंके समान स्वयंको भी मान बैठे हैं और अपनी गतिको जानते नहीं हैं। दूसरोंके लिए अत्यन्त दुर्लभ अपनी पदवीको पहचान नहीं पा रहे हैं। वरुणलोककी सम्पदा देखकर (तथा मनुष्योंकी ऐश्वर्य-हीनता एवं तिर्यक् आदि प्राणियोंका दुःख देखकर) स्वयंको सामान्य संसारी व्यक्ति मान बैठे हैं। ब्रह्मा आदि देवताओंके लिए भी पूज्य होनेपर मेरे पिता स्वयंको अति सामान्य वरुणदेवसे भी निकृष्ट समझ रहे हैं। ये मुक्ति एवं वैकुण्ठ लोकको अधिक श्रेष्ठ समझ रहे हैं—अरे! ये जानते ही नहीं हैं कि मुक्ति एवं वैकुण्ठ मेरे अधीन हैं और मैं केवल प्रेमाधीन हूँ ॥ १३ ॥

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।

दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार विचार करके परम करुणामय विभु श्रीकृष्णने उन गोपोंको प्रकृतिसे (भौतिक अहङ्कारसे) अतीत ब्रह्मस्वरूप अपने वैकुण्ठ लोकका दर्शन कराके उनकी उत्कण्ठा दूर की ॥ १४ ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।

यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥

भगवान्ने पहले उन गोपोंको अपने त्रैकालिक सत्य, चिन्मय, अखण्ड, स्वप्रकाश, नित्य और ज्योतिस्वरूप ब्रह्मका (ब्रह्मधामका) दर्शन कराया, जिसका मुनिगण गुणातीत होनेपर समाधिमें दर्शन कर पाते हैं अथवा ब्रह्म-ज्योतिका दर्शन कर पाते हैं॥ १५ ॥

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः।

ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा॥ १६ ॥

प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने पहले अक्रूरको जिस जलाशयमें (अक्रूर-तीर्थमें) डुबकी लगवाकर ब्रह्मरूपका दर्शन करवाया था, उसी ब्रह्मस्वरूप ब्रह्म-हृदमें वे नन्दादि गोपोंको भी ले आये। इन गोपोंने इसी स्थानपर डुबकी लगाकर ब्रह्मके स्वरूपका दर्शन किया। इसके बाद नराकृति परब्रह्म श्रीकृष्ण उन्हें वहाँसे निकाल लाये और उन सभीको अपने गोलोक नामक परम धामका दर्शन करवाया॥ १६ ॥

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः।

कृष्णञ्च तत्र छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीनन्दमोक्षणं
नाम अष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८ ॥

नन्द महाराज एवं अन्य गोपोंने उस दिव्य भगवत्स्वरूप गोलोक-धाममें देखा कि वेद मूर्तिमान होकर श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं। यह देखकर वे अतिशय विस्मित हो गये और परमानन्दमें निमग्न हो गये। वृन्दावन (गोकुलके एक प्रकाश-विशेष) से बढ़कर कोई रमणीय स्थान नहीं है, अतः प्रभु अपने वन्धु-वर्गको भौम-गोकुलमें (वृन्दावनमें) ले आये॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अष्टाईसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

रास-विहारार्थं गोपियोंके साथ उक्ति-प्रत्युक्ति एवं
रासारम्भमें अन्तर्धानरूप कौतुक

श्रीबादरायणिरुवाच—

भगवानपि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः।

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! श्रीकृष्णने वस्त्र-हरणके समय ब्रजकुमारियोंके निकट स्वीकार किया था कि “हे अबलाओ! तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी है। अब अपने-अपने घर जाओ। आगामी रात्रियोंमें तुम सब मेरे साथ विहार करोगी।” सम्प्रति शरद्-ऋतु समुपस्थित है। मल्लिका, बेला आदि सुगन्धित कुसुमोंसे विभूषित इन सङ्केतित रात्रियोंने पुञ्जीभूत होकर पदार्पण किया है। इन समुल्लसित रात्रियोंको परिव्याप्त होते देखकर स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अघटन-घटन-पटीयसी (माया) शक्तिका आश्रय लेकर रसमय रास-विहार करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥

तदोदुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।

स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

दीर्घ प्रतीक्षाके बाद समागत पति जिस प्रकार अपने हाथोंसे कुङ्कुम राग द्वारा प्रियाके मुखको अनुरञ्जित कर देता है, उसी प्रकार चन्द्रदेव पूर्व-दिशा-स्वरूपिणी प्रियाके मुखमण्डलपर अपनी शीतल एवं सुखद कररूपी किरणों द्वारा अरुण रागसे (लालरङ्गसे) अनुलेपन करने लगे। जो प्राणी इन चन्द्रमाके उदयका दर्शन करते हैं, उनका शरद्-कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उत्पन्न सन्ताप दूर हो जाता है ॥ २ ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं

रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम्।

वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

उस समय पूर्णिमा थी। गगनमें चन्द्रका मण्डल भी परिपूर्ण एवं अखण्ड (सोलह कलाओंसे युक्त) था। जिस प्रकार रमादेवीका मुखमण्डल नव-कुङ्कुम-रागसे सुरञ्जित रहता है, उसी प्रकार चन्द्रमा भी उदयकालीन अरुणछटासे आरक्तिम दिखायी दे रहे थे। कुमुद-श्रेणीको विकसित करनेमें निपुण चन्द्रमाने अपनी स्निग्ध एवं पीयूषवर्षिणी किरणोंसे वनभूमिको अनुरागमयी बना दिया था। इस प्रकार दिव्य उन्नतोज्ज्वल रसके उद्दीपक पदार्थोंको चहुँ ओर व्याप्त देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी नित्य सङ्गीनी वंशीपर गोपाङ्गनाओंके मनोको आकर्षित करने वाली 'क्लीँ' की सङ्गीतमयी, मधुर एवं अस्पष्ट ध्वनि छोड़ दी ॥ ३ ॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं

व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।

आजगुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः

स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥

गोपाङ्गनाओंने जब वंशीका अनङ्गवर्द्धक सुमधुर सङ्गीत सुना, तो उनके हृदयमें श्रीकृष्णके प्रति पहलेसे ही विद्यमान काम उद्दीप्त हो उठा। उनका मन तो पहले ही श्रीकृष्णके द्वारा वशीभूत कर लिया गया था और अब वंशीनादरूपी महाचोरके द्वारा उनके कपाट-रहित कर्णोंमें प्रवेश कर लेनेपर उनकी धैर्य, लज्जा, भय, विवेकादि महानिधि भी अपहृत कर ली गयी। गोपियाँ अपनी मिलनकी चेष्टाओंको छिपाती हुई वहाँ चल दीं, जहाँ (रासौलीमें) उनके प्रिय कान्त श्रीकृष्ण खड़े थे। प्रिय परीक्षित्! उनकी गति इतनी तीव्र थी कि उनके कुण्डल, कङ्कण, किङ्किणी सब आभूषण आन्दोलित होने लगे ॥ ४ ॥

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।

पयोऽधिश्चित्य

संयावमनुद्रास्यापरा

ययुः ॥ ५ ॥

उस समय जो गोपिकाएँ दुग्ध-दोहन कर-करा रही थीं, वे कृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर परमोत्कण्ठावश उस दोहन-कार्यका परित्याग करके चल पड़ीं। कुछने चूल्होंपर दूध रखा था, वे दूध उतारनेकी प्रतीक्षा किये बिना ही चल पड़ीं और जो गेहूँका दलिया या लपसी बना रही थीं, वे उसे चूल्हेपर ही छोड़कर चल दीं ॥ ५ ॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः।

शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदशनन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥

कोई गोपाङ्गना बन्धु-बान्धवोंके लिए भोजन परोस रही थी, कोई शिशुको स्तन्य-पान करा रही थी, कोई पतिकी सेवा कर रही थी (अर्थात् पानी गरम करना इत्यादि), तो कोई अपने शरीरपर कुङ्कुम आदि अङ्गराग लगा रही थी, कोई उबटन-चन्दनसे अपने शरीरका मार्जन कर रही थी तो कोई आँखोंमें अञ्जन लगा रही थी। किसीने विशेष अनुरागवशतः वस्त्र एवं आभूषणोंको उल्टे-सीधे धारण कर रखा था। जो जिस अवस्थामें थी, उसी अवस्थामें ही श्रीकृष्णके समीप चल पड़ी ॥ ६-७ ॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥

उनके पति, पिता, भाई एवं बन्धु आदि सम्बन्धियोंने जानेसे उनका विरोध किया, पर वे लौटी नहीं। उनके तो मन, प्राण, यहाँ तक कि आत्मा सब श्रीगोविन्दके द्वारा अपहृत हो चुके थे। वे तो मोहित-सी, उन्मादिता-सी एवं सूत्र-सञ्चालित पुतली-सी कृष्ण-आवेशमें विभोर होकर चली गयीं। (इन गोकुलकन्याओंके साथ श्रीकृष्णका रमण अनादि कालसे चल रहा है। श्री अष्टादशाक्षर मन्त्रमें 'गोपीजनवल्लभ' पदसे इन गोपियोंका ही निर्देश किया गया है) ॥ ८ ॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।

कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

कोई-कोई गोपाङ्गनाएँ घर पर ही रह गयीं, वे बाहर निकलनेकी कोई युक्ति न निकाल सकीं। उनका चित्त कृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य एवं लीलाओंके चिन्तनमें सर्वदा आसक्त रहता था। अतः उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये और कृष्ण-ध्यानमें डूब गयीं। (आचार्यगण कहते हैं कि इन गोपियोंको नित्यसिद्धा गोपियोंके सङ्गरूप सौभाग्य-प्राप्तिके अभावसे सम्पूर्ण प्रेम प्राप्त न होनेके कारण अदग्ध कषाय अवस्थामें रहना पड़ा अर्थात् उनकी गुणमयता सम्पूर्णरूपसे तिरोहित नहीं हुई।) ॥ ९ ॥

दुःसहप्रेष्टविरह तीव्रतापधुताशुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः ।

जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥

हे राजन्! गृहोंमें आबद्ध इन गोपाङ्गनाओंके प्रियतमकी दुःसह विरह-व्यथाके तीव्र ताप द्वारा सभी अशुभ विनष्ट हो गये और साथ ही उनके ध्यानमें प्रकट होनेवाले अच्युत भगवान् श्रीकृष्णके आलिङ्गनके सुख-भोगसे मङ्गल-बन्धन भी क्षीण हो गये। अतः पूर्व सञ्चित शुभाशुभ बन्धनोंका नाश हो जानेपर उन्होंने जार (औपपत्य) बुद्धिसे श्रीकृष्णका ध्यान किया और उसी समय अभिमानरहित होकर त्रिगुणमयी देहका परित्याग कर दिया। उन्हें अब चिन्मय शरीरकी प्राप्ति हो गयी ॥ १०-११ ॥

श्रीपरीक्षिदुवाच—

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।

गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥ १२ ॥

श्रीपरीक्षित् महाराजने कहा—हे मुनिवर! ये गोपियाँ तो श्रीकृष्णको अपने परम प्रियतमके रूपमें जानती थीं, उन्हें श्रीकृष्णके ब्रह्मरूपका पता ही नहीं था। उनका चित्त तो गुणमय

विषयोंमें ही आसक्त था, फिर उन्हें गुणोंके प्रवाहरूप इस संसारमें मुक्तिकी प्राप्ति किस प्रकार हुई? [कहा गया है 'आत्मानमात्मात्मतया विचक्षते' अर्थात् सभी जीवोंके आत्मस्वरूप आपको जो परमात्माके रूपमें दर्शन करते हैं, वे मुक्त होते हैं। (श्रीमद्भा० १०/१४/२४)] ॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच—

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः।

द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! चेदिराज शिशुपाल श्रीकृष्णके प्रति शत्रुताका भाव रखता था, तो भी उसे परमपद प्राप्त हुआ था; यह मैंने तुम्हें पहले भी बतलाया था। पुनः जिनकी श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रीति है, यदि उन अप्राकृत इन्द्रियमयी कृष्णवल्लभाओंको सिद्धिकी प्राप्ति हो जाती है, उसमें सन्देह क्या है? ॥ १३ ॥

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण अचिन्त्य, अनन्त, प्राकृतगुणरहित चिदानन्दमय गुणोंके समुद्र हैं। अतः वे अव्यय (वृद्धि-विनाशसे रहित), अप्रमेय (प्रमाण-प्रमेयसे रहित) हैं अर्थात् उन्हें कोई परिच्छिन्न अथवा परिमित नहीं कर सकता। वे अखिल-कल्याण-गुणमय हैं—षडैश्वर्यादि अप्राकृत गुण उनके स्वरूपभूत हैं। मनुष्योंके मङ्गलके लिए ही उनका आविर्भाव होता है ॥ १४ ॥

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।

नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥

इस प्रकार जो अच्युत श्रीकृष्णके साथ सदा-सर्वदा काम (गोपियोंका), क्रोध (शिशुपालका), भय (कंसका), स्नेह (श्रीनन्दादिका), निर्विशेष ऐक्य (आत्मारामगणोंका), सौहार्द (वृष्णिजन एवं पाण्डवोंका)

और भक्ति (सभी शुद्धसत्त्वविशेष भक्तों) मेंसे किसी एक भी भाव-सम्बन्धका अवलम्बन कर लेता है, वह निश्चितरूपसे तन्मयता (भगवन्मयता) को प्राप्त कर लेता है ॥ १५ ॥

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे।

योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते ॥ १६ ॥

हे राजन्! तुम्हें योगेश्वरोंके भी ईश्वर, महायोगीवर, षडैश्वर्यशाली, अजन्मा श्रीकृष्णके विषयमें और उनके अद्भुत कार्योंके सम्बन्धमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। (आप जब माताके गर्भमें थे, तभीसे आप श्रीकृष्णकी महिमाको जानते हैं। गोचारण करनेपर भी वे भगवान् हैं, देवकी पुत्र होनेपर भी अजन्मा हैं, गोपस्त्रियोंके लम्पट होनेपर भी योगेश्वरोंके ईश्वर हैं। अतः शङ्का करनेका कोई कारण नहीं है।) अरे, मनुष्य तो बहुत दूरकी बात है, वे स्थावरादि पदार्थोंको भी मुक्ति प्रदान करते हैं ॥ १६ ॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् ब्रजयोषितः।

अवदद् वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥

वाग्मि-प्रवर (परम रसिक वक्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ) श्रीकृष्णने जैसे ही गोपियोंको अपने सम्मुख उपस्थित देखा, वैसे ही अपने वाणी-विलाससे विनोदपूर्ण अभिव्यक्तिके साथ उन्हें मोहित करते हुए कहने लगे ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच—

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।

ब्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे महाभाग्यवतियो! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारा यहाँ आगमन सुखपूर्वक हुआ है न? मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिए क्या प्रिय कार्य करूँ? ब्रजमें सब कुशलसे तो हैं न? तुम्हारे यहाँ आगमनका क्या कारण है, बतलाओ तो? ॥ १८ ॥

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता।

प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥

हे सुमध्यमाओ! यह रात्रि है, अति भयङ्कर समय है, क्योंकि लताओंके मूल एवं पल्लव आदिमें सर्प, बिच्छू वास करते हैं। इसमें बाघ आदि भीषण हिंसक प्राणी विचरण करते रहते हैं। तुम्हारे जैसी स्त्रियोंका इस स्थानमें रहना उचित नहीं है। जाओ, तुम सब व्रजमें शीघ्र ही लौट जाओ ॥ १९ ॥

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः।

विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृद्वं बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥

तुम्हारी माताएँ, पिता, पति एवं पुत्र तुम्हें यथास्थान न देखकर निश्चय ही खोज रहे होंगे। अतएव यहाँ रहकर स्व-बन्धुओंमें, स्वयंमें और मुझमें भी भय उत्पन्न मत करो।

यह श्रीकृष्णकी परिहासोक्ति है। इसका तात्पर्य है कि तुम सब बन्धु-बान्धवोंसे भयभीत मत होना, क्योंकि वे इस गभीर वनमें तुम्हें खोजनेपर भी देख नहीं पायेंगे। अतः स्वच्छन्दतापूर्वक मेरे साथ रात्रिमें यहाँ विहार करो ॥ २० ॥

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम्।

यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥

तद्यात माचिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः।

क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥

हे रमणियो! यमुनाकी तरङ्गोंके स्पर्शसे युक्त शीतल वायुकी मन्द-मन्द गतिसे विकम्पित तरुके पल्लवों एवं पुष्पोंसे यह वन कुसुमित एवं सुगन्धित हो रहा है, पूर्णचन्द्रकी स्निग्ध किरण-मालाएँ अपने ही करोंसे इसे सुरञ्जित कर रही हैं, इस प्रकार तुम सबने वनकी अभिलषित सुन्दरताको देख ही लिया है। अतः हे सतियो! अब शीघ्र ही व्रज लौट जाओ। वहाँ जाकर अपने पतियोंकी शुश्रूषा करो। बछड़े और तुम्हारे बच्चे वहाँ क्रन्दन कर रहे होंगे।

अतः जाओ, उन्हें दुग्धपान कराओ और गायोंका दोहन करो ॥ २१-२२ ॥

अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।

आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ २३ ॥

अथवा यदि मेरे प्रति अनुरागके कारण तुम सबका चित्त मेरे वशीभूत हो गया है, तो यह भी युक्तिसङ्गत ही है, क्योंकि इस संसारमें सभी जीव सहज भावसे मेरे प्रति प्रीतियुक्त रहते हैं। तुम तो परम भाववती हो ॥ २३ ॥

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।

तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥

हे कल्याणियो! स्त्रियोंका परम धर्म यही है कि वे निष्कपट भावसे पतिकी एवं उसके बान्धवोंकी सेवा करें तथा सन्तानका भलीभाँति पालन करें। (वस्तुतः जो वर्णाश्रम आदि समस्त धर्मोंका त्यागकर मेरा भजन करता है, वही उत्तम भक्त है) ॥ २४ ॥

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।

पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥

पति यदि चोरी आदि अवैध कार्योंमें रत हो, बुरे-स्वभाववाला, भाग्यहीन, वृद्ध, कर्मशक्तिरहित, महारोगग्रस्त अथवा निर्धन ही क्यों न हो, यदि वह पापी (भजन-मार्गसे पतित) नहीं है, तो इस लोक और परलोककी (पतिलोककी) आकाङ्क्षा करनेवाली स्त्रियोंको उसका परित्याग नहीं करना चाहिये। (गोपियाँ तो पहलेसे दोनों लोकोंको जलाज्जलि देकर कृष्णके माधुर्य-समुद्रमें निमग्न हो रही थीं। अभिप्राय यह है कि पतियोंका त्याग उन्होंने पहलेसे ही कर रखा था।) ॥ २५ ॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।

जुगुप्सितं च सर्वत्र ह्यौ औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥

कुलीन स्त्रियोंके लिए उपपत्तिका सेवा-सुख स्वर्गका विरोधी, नरककी प्राप्ति करानेवाला, यशको नष्ट करनेवाला, तुच्छ, दुःखोंका हेतु, भयप्रद एवं सर्वत्र निन्दनीय माना गया है। श्रीगर्गाचार्य मुनिके अनुसार 'मैं नारायणके समान हूँ', तो ऐसा होनेपर तुम लोगोंका मेरे प्रति औपपत्य भाव किसी भी प्रकारसे निन्दनीय नहीं, अपितु प्रशंसनीय ही है ॥ २६ ॥

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात्।

न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥

विशेषरूपसे मेरी कथा सुननेसे, मेरे श्रीविग्रहके दर्शनसे, मेरे ध्यानसे एवं नित्य-निरन्तर नाम सङ्कीर्तनसे मेरे प्रति जैसा अमिट प्रेम उत्पन्न होता है, मेरे समीपमें रहनेसे वैसा नहीं होता। अतः तुम अपने-अपने घरोंको लौट जाओ। (इस प्रकार परम कौतुकी रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्णने नर्म रसालापके छलसे व्रजरमणियोंके समक्ष भङ्गिपूर्वक ऐसे अभिनव भावोंका प्रकाश किया, जिसमें कभी उनके सान्निध्यकी श्रेष्ठता और कभी श्रवण-कीर्तनकी श्रेष्ठता दिखायी दी।) ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम्।

विषण्णा भग्नसङ्कल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—गोपियोंने जब श्रीकृष्णके ऐसे अप्रिय वचन सुने, तो वे सभी विषाद-ग्रस्त और खिन्न हो गयीं। उनके सारे मनोरथ ध्वस्त हो गये। वे अथाह एवं अपार चिन्ताके सागरमें डूब गयीं कि क्या सचमुच ही हम कृष्ण-सेवाके लिए अयोग्य हैं अथवा उन्होंने हमारी उपेक्षा कर दी है ॥ २८ ॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्-

बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः।

अस्रैरुपात्तमसिभिः

कुचकुङ्कुमानि

तस्थुर्मज्जन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥

प्रचुर दुःखके कारण निकलनेवाले गहरे निःश्वासोंसे उनके बिम्बफलके समान लाल-लाल अधर सूख गये, वे मुख नीचे झुकाकर अपने पैरोंके अँगूठेके नखसे भूमिको कुरेदने लगीं। काजलसे संश्लिष्ट अश्रुधाराओंके प्लावनसे उनके वक्षःस्थलपर अङ्कित कुङ्कुम (केसर) धुलने लगा। अत्यधिक दुःखके भारसे वे आक्रान्त हो गयीं। कुछ बोल नहीं पायीं, मौन होकर पुतलीकी भाँति खड़ी रह गयीं॥ २९॥

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं

कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः।

नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किञ्चित्-

संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

इन कामिनियोंका हृदय तो सम्पूर्णरूपेण श्रीकृष्णके प्रति अनन्य अनुरागमें आसक्त था एवं कृष्ण-प्राप्तिके लिए ही वे सम्पूर्ण इच्छाओंका परित्याग करके यहाँ आयी थीं। भगवान् श्रीकृष्णके निष्ठुर एवं अप्रिय वचनोंको सुनकर वे रोने लगीं। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे धैर्य धारण किया और रोते-रोते अपने हाथोंसे अपनी लाल-लाल अन्धप्राय आँखोंसे आँसू पोंछने लगीं। ईषत् प्रणय-कोपके आवेशसे उनकी वाणी गद्गद हो गयी। वे प्रियतम श्रीकृष्णसे क्षोभ-युक्त वचन कहने लगीं॥ ३०॥

श्रीगोप्य ऊचुः-

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं

सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।

भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्

देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥ ३१ ॥

गोपियोंने कहा—हे विभो (आप सर्वव्यापी हैं और हमारे हृदयकी बात जानते हैं)! प्यारे श्रीकृष्ण! आपके लिए इस प्रकारके निष्ठुर वचन कहना उचित नहीं है। समस्त विषय-कामनाओंका त्याग करके हम केवल आपके चरणोंकी ही सेवा

करती हैं, अतः हमें अङ्गीकार कीजिये। हे कृपा-पराङ्मुख ! हमारा परित्याग मत कीजिये। आदिपुरुष भगवान् नारायण जिस प्रकार मुमुक्षु व्यक्तियों पर अनुग्रह-वर्षण करते हैं, आप भी उस प्रकारसे हमारे ऊपर अनुग्रहकी वृष्टि कीजिये। हे दुरवग्रह (हठीले) ! हमें स्वीकार कीजिये। हे दुरवग्रह ! (हे विषवर्षणकारी स्वेच्छाचारिण मेघ !) हमलोग चातकियाँ हैं और आप मेघस्वरूप हैं। चातकियोंसे दूर रहनेपर भी मेघ ही उनकी प्यास बुझानेके कारण उनके बन्धुस्वरूप होते हैं। हम विषका पान करके मृत्युको भले ही स्वीकार कर लें, परन्तु निकटस्थ पतिरूप जलाशयका जल पान नहीं करेंगी ॥ ३१ ॥

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग

स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।

अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे

प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥ ३२ ॥

हे प्रिय कृष्ण ! आप धर्मज्ञ हैं। आपने जो हमें उपदेश दिया कि पति, पुत्र एवं बन्धुओंकी निष्ठापूर्वक सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है, तो हे श्यामसुन्दर ! आप ही समस्त उपदेशोंके चरम विषय हैं और आप ही साक्षात् ईश्वर हैं। आपके इन वचनोंसे तो आपकी सेवा ही प्रमाणित होती है। आप ही समस्त प्राणियोंके घनिष्ठतम प्रियतम, आत्मा एवं बन्धुस्वरूप हैं। (स्वयं ईश्वर जब उपदेष्टा अथवा गुरु हो, तब उनका भजन करनेपर अन्य किसी पतिकी अपेक्षा रह जाती है क्या ?) ॥ ३२ ॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्

नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्त्तिदैः किम्।

तत्रः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या

आशां धृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥

हे आत्मरूपिन् ! आत्म-हितमें निपुण व्यक्ति आपकी ही भक्ति करते हैं, क्योंकि आप ही सच्चिदानन्दमय एवं शाश्वत प्रियतम

हैं। अनित्य पति, पुत्र इत्यादिकी सेवासे क्या प्रयोजन? वे तो सेवित होनेपर भी नित्य-निरन्तर विविध पीड़ाएँ प्रदान करते हैं। हे कमललोचन! हे वरद! हे ईश्वर! आपका सान्निध्य प्राप्त करनेके लिए हम चिरकालसे आशाका पोषण करती आ रही हैं। आप हमारी इस आशारूप कल्पलताका छेदन मत कीजिये। हे अरविन्दलोचन! आपने ही हमारे हृत्-क्षेत्रमें कमलनयन-दृष्टिके द्वारा इस आशा-लताका रोपण किया है। कोई भी सदाचारयुक्त व्यक्ति अपने हाथोंसे रोपित वृक्षका छेदन नहीं करता॥ ३३॥

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥ ३४॥

हे चित्त-मोहन! आपके वेणुनाद द्वारा जो अपहृत हमारा चित्त है, वह अब तक सुखपूर्वक घरके कार्योंमें ही मग्न रहता था। अब तो गृहस्थीके कर्मोंमें संलग्न हमारे हाथोंका भी आपने हरण कर लिया है। अब ये दोनों हाथ घरकी सेवामें नियुक्त नहीं होते। हे भुवनमोहन! हमारे दोनों पैर किसी मोहन-मन्त्रसे बँधे हुए-से आपके ही चरणारविन्दोंकी ओर उन्मुख होकर गति करते हैं, वहाँसे किसी अन्य स्थानपर चलना नहीं चाहते। बतलाइये! चित्तके बिना अब हम किस प्रकारसे व्रजमें जाएँ और वहाँ जाकर क्या करें?॥ ३४॥

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते॥ ३५॥

हे श्रीकृष्ण! आपकी मधुर-मदिर मुसकान, प्रणय-पूर्ण चितवन एवं मनोहर सङ्गीतसे हमारे हृदयोंमें कामाग्नि प्रज्वलित हो गयी है, अब तो यह आपकी अधरामृत-धारा द्वारा ही बुझायी जा

सकती है। हे सखे! यदि यह सम्भव नहीं है, तो हम विरहानलमें इन शरीरोंको दग्ध कर डालेंगी और हे अपरिणामदर्शिन्! योगियोंके समान आपके चरण-युगलोंका ध्यान करती हुई आपके समीप ही उपस्थित हो जायेंगी। (आपने ही अवलोकनरूप घी एवं हास्यरूप मधु डालकर कलगीतरूप वायुके द्वारा इस कामको उद्दीप्त किया है और आपके अधरोंकी रसधारा ही इसे बुझा सकती है। ये दोनों ही वस्तुएँ आपके श्रीमुखचन्द्रमें वर्तमान हैं।) ॥ ३५ ॥

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य।
अस्म्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमञ्जः
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥

हे अम्बुजाक्ष! आप वनवासियों (गोपों) से बड़ी प्रीति रखते हैं और उनके भी आप अत्यन्त प्रिय हैं। (हम भी गोप जातिकी हैं, इसलिए आपकी चरणधूलि प्राप्त करनेकी योग्यता हममें भी है) आपके चरण-तलकी सेवा लक्ष्मीदेवीको भी उत्सव प्रदान करती है। (आपके चरण रमादेवीके वाञ्छित होनेपर भी वृन्दावनवासियोंकी अपनी निजस्व सम्पदा हैं) हमने जिस समयसे क्षणकालके लिए भी इन चरण-तलका साक्षात् स्पर्श किया है, उस समयसे ही उस आनन्दमें निमग्न रहती हुई पति इत्यादि किसीके भी सामने ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं ॥ ३६ ॥

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम्।
यस्याः स्ववीक्षण उतान्यसुरप्रयास-
स्तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

ब्रह्मादि देवता जिनकी वात्सल्यरसमयी कृपा-दृष्टिकी प्राप्तिके लिए प्रयास करते रहते हैं, वे ही लक्ष्मीदेवी श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर अनुपम (प्रतिद्वन्दिता-रहित) स्थान प्राप्त करके भी आपके चरणयुगलकी रज-प्राप्तिके लिए प्रार्थना करती हैं। हे

स्वामी ! आपके चरणकमलोंकी इसी रजकी प्राप्तिके लिए तुलसीदेवी भी सदैव लालायित रहती हैं और सभी भक्त भी इसीकी लालसासे आपके इन चरणारविन्दोंकी सेवा करते हैं। हम भी इसी तरह आपकी चरणरेणुकी प्राप्तिके लिए आपकी शरणमें आयी हैं ॥ ३७ ॥

तत्रः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं

प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।

त्वत्सुन्दरस्मितनिरिक्षणतीव्रकाम-

तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥

हे दुःखहारिन् ! आप तो अपने शरणागत भक्तोंके सब कष्टोंको हर लेते हैं। अतः हम भी घर-कुटुम्बका परित्याग करके आपके शरणापन्न हुई हैं। आपकी सेवाकी ही अपेक्षा रखती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ ! हमारे प्रति प्रसन्न हो जाइये। हे पुरुषरत्न ! आपके सुन्दर हास्ययुक्त कटाक्ष भू-भङ्गीसे हम कामसे सन्तप्त हो रही हैं। अतः हे पुरुषभूषण ! हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कीजिये तथा अपनी सेवाका अवसर प्रदान कीजिये। (हे परममोहन शिरोमणे ! हम गौराङ्गी हैं तथा आप हमारे समस्त अङ्गोंके इन्द्रनीलमणिमय अलङ्कारस्वरूप हैं।) ॥ ३८ ॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-

गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।

दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य

वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥

हे प्रभो ! आपकी घुँघराली अलकावलियोंसे आवृत परमसुन्दर मुखमण्डल, कुण्डल-द्वयके सौन्दर्यसे विभूषित कमनीय कपोल, साक्षात् सुधाको भी तिरस्कृत करनेवाला आपका मधुर अधरामृत, मन्द-मुसकानसे युक्त नयन-कमल, मनोहारी अनुपम चितवन, भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली विशाल भुजाएँ एवं लक्ष्मीजीके एकमात्र रमण-स्थल आपके वक्षःस्थलका दर्शन करके हे धार्मिक-चूड़ामणि ! हमने आपके दास्यका आश्रय लिया है ॥ ३९ ॥

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतवेणुगीत
 सम्मोहिताऽऽर्यचरितात्र चलेत् त्रिलोक्याम्।
 त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
 यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यविभ्रन् ॥ ४० ॥

हे कृष्ण! आपके सुमधुर पद एवं आरोह-अवरोह क्रमसे विविध एवं दीर्घ मूर्च्छनाओंसे युक्त वेणुके अमृतमय सङ्गीतको सुनकर तीनों लोकोंमें ऐसी कौन-सी कामिनी है, जो मोहित होकर अपने आर्य-धर्मसे, नारी-धर्मसे तथा लोक-लज्जासे विचलित न हो जाय। तीनों लोकोंके मनोंको मोहित करनेवाले और उन्हें मङ्गलमय बनानेवाले आपके रूपका दर्शन करके गाय, पशु, पक्षी एवं वृक्ष भी पुलकित एवं रोमाञ्चित हो जाते हैं। (तीनों लोक एवं वैकुण्ठादि लोकोंमें जो सौन्दर्य है, वह कृष्णके सौन्दर्य-सिन्धुका कणमात्र है।) ॥ ४० ॥

व्यक्तं भवान् ब्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
 देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता।
 तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो
 तप्तस्तनेषु च शिरःसु च किङ्करीणाम् ॥ ४१ ॥

आदिपुरुष विष्णु जिस प्रकार सुरलोकमें देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी निश्चितरूपसे ब्रजके भय एवं दुःखोंके विनाशके लिए आविर्भूत हुए हैं। अतः हे आर्तजनशरण! अपनी इन दासियोंके काम-सन्तप्त वक्षःस्थल एवं मस्तक पर अपना कोमल कर-कमल स्थापित कर उनमें प्राण-शक्तिका सञ्चार कीजिये ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः।

प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण सनक एवं शिवादि महायोगियोंके भी अधीश्वर हैं। श्रीकृष्णने जब

गोपियोंके इस प्रकारकी विलाप-व्यथा और आकुल-वाणीको सुना, तो उनका हृदय दयासे आर्द्र हो गया। वे हँसने लगे और स्वयं नित्य-तृप्त (आत्माराम) होकर भी उन गोपियोंके साथ रमण-क्रीड़ा (रास-विहार) करने लगे। श्रीकृष्णने अनुरागवती व्रजदेवियोंके प्रेमके प्रभावसे अपनी आत्मारामताको छिपाया और प्रेमकी अधीनताको स्वीकार करते हुए उस प्रेमकी विजय-वार्ताकी घोषणा की। गोपियाँ श्रीकृष्णकी ह्लादिनीशक्तिकी वृत्ति होनेके कारण भगवान्की आत्मस्वरूपा हैं ॥ ४२ ॥

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः

प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।

उदारहासद्विजकुन्ददीधिति-

र्व्यरोचतैणाङ्ग इवोडुभिर्वृतः ॥ ४३ ॥

उस समय अच्युत (अपने स्वरूपमें एकरस रहनेवाले) भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाव-भङ्गिमाओं एवं चेष्टाओंको गोपियोंके लिए अनुकूल बना दिया, परन्तु वे अपने सच्चिदानन्द स्वभावसे क्षुब्ध नहीं हुए। जब वे खुलकर हँसे, तब कुन्द-कुसुमके समान शुभ्र एवं उज्ज्वल दन्त-पंक्ति और अनुरागपूर्ण चितवनको देखकर गोपियोंके मुखकमल प्रफुल्लित हो गये। गोपियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। उत्फुल्ल तारिकाओंसे घिरा चन्द्रमा जिस प्रकार शोभा प्राप्त करता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी प्रफुल्लित मुखवाली गोपियोंसे घिरकर सुशोभित होने लगे ॥ ४३ ॥

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ।

मालां बिभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥ ४४ ॥

शत-शत रमणियोंके यूथपति श्रीकृष्ण पञ्चवर्णीय पुष्पोंसे ग्रथित वैजयन्ती माला पहनकर वन भूमिको विभूषित करते हुए विचरने लगे। वे रास-क्रीड़ा करते हुए गोपियोंके प्रेम एवं सौन्दर्यका प्रतिपादन करनेवाले गीत गाने लगे—“वदनं मधुरिमसदनं चलनं दलनं करीन्द्रकीर्तिनाम्। हसितं सुदृगभिलषितं तव सवयः

पातु मामनिशम्॥” (अर्थात् जिनका मुख समस्त माधुर्यका निकेतन है, श्रेष्ठ हाथीकी कीर्तिको भी चूर्णित करनेवाला है। जिनका हास्य सुलोचनाओंका अभिलषित है, तुम्हारा वह कैशोर वयस मेरी निरन्तर रक्षा करे)। श्रीराधा, चन्द्रावली आदि कामिनियाँ भी श्रीकृष्णके माहात्म्यके गीत गाने लगीं—“कान्ते त्व दास्योदयदत्तमिन्दुर्भृगच्छलस्दुर्यश एव धत्ते। जनोपहासा सह नोऽथवा किं द्विजोऽपि मूढो गरलं जघास” इति। (अर्थात् आपके मुख-चन्द्रके उदयसे आकाशका चन्द्र मृगलाञ्छनके दुर्यशको प्राप्त होकर हमारे साथ अन्य लोगोंके लिए भी उपहासका पात्र हो रहा है अथवा हे कान्त! मूढ़ चन्द्रने भी क्या गरल पान किया है?) इत्यादि ॥ ४४ ॥

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।

जुष्टं तत्तरलानन्दिकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-

नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।

क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-

मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुना-पुलिनकी ओर पदार्पण किया, जो पावन यमुनाकी तरङ्गोंका स्पर्श करनेके कारण, शैत्य एवं मन्दताके गुणोंसे युक्त, विकसित कुमुद पुष्पकी सुगन्धसे युक्त समीरसे सेवित होकर अति आनन्दप्रद हो रहा था। उसके शीतल बालुकाके कण कपूरके समान दीप्त हो रहे थे। वहाँ भगवान्ने भुजा प्रसारण, आलिङ्गन, हस्त निपीड़न, अलकावली-उरु-नीवी-स्तन-स्पर्शन, नखाघात, क्रीड़ामयी चितवन एवं मनोहर स्मितके द्वारा गोपियोंके काम भावको उद्दीप्त करते हुए उनके साथ रमण करते हुए महारासोत्सव मनाया। श्रीभगवत्-मूर्तिकी भाँति श्रीवृन्दावन भूमि भी विभु वस्तु है। इसी विभुताके कारण तिलमात्र सीमित स्थानका विस्तार एवं लीलाके अन्तमें सङ्कुचन

संभव होता है, भगवान्ने अकेले ही शत कोटि गोपियोंके साथ योगमाया द्वारा रचित विविध कुज्जोंमें विहार किया ॥ ४५-४६ ॥

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः।

आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽधिकं भुवि ॥ ४७ ॥

उदारचेता, महात्मा भगवान् श्रीकृष्णने जब गोपियोंके मनोरथोंको इस प्रकारसे पूर्ण किया, तब प्रत्येक गोपीके मनमें अभिमान हो आया और हर कोई गोपी यही सोचने लगी कि पृथ्वीपर समस्त कामिनियोंमें वही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्णके द्वारा सम्मान प्राप्त करके हरेक गोपी श्रीकृष्णके प्रति मानिनी एवं अन्यान्य रमणियोंके प्रति गर्विता हो गयी ॥ ४७ ॥

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्यमानञ्च केशवः।

प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीकृष्णने भी जब इनका सौभाग्यजनित गर्व एवं (राधाजीका) मान देखा, तो वे उसके निवारणके लिए एवं उनपर कृपा करनेके लिए यमुना-पुलिनमें उनके मध्यमें ही अदृश्य हो गये अर्थात् ब्रजसुन्दरियोंके सौभाग्य-मद एवं श्रीवृषभानुकुमारी श्रीराधिकाके मान-प्रसादनके लिए भगवान् केशव अन्तर्धान हो गये ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उनतीसवें अध्यायका श्लोकानुवाद समाप्त।

त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा

श्रीशुक उवाच—

अन्तर्हिते भगवति सहसैव ब्रजाङ्गनाः ।

अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण जब इस प्रकारसे अचानक अदृश्य (अन्तर्धान) हो गये, तब उन्हें वहाँ न देखकर ब्रजनारियाँ उस प्रकार विरह-सन्तापसे ग्रस्त हो गयीं, जिस प्रकार यूथपति गजराजको न देखकर हथिनियाँ सन्तप्त हो जाती हैं। (गोपियोंके हृदयमें विरहकी ज्वाला प्रज्वलित हो गयी) ॥ १ ॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-

र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।

आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-

स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥

ये रमणियाँ श्रीकृष्णकी मदोन्मत्त गजराजकी-सी गति-भङ्गिमा, अनुरागमयी मन्द-मन्द मुसकान, विलासपूर्ण चितवन, मनोरम प्रेमालाप, विहार एवं शृङ्गार-रसमयी कौतुक-क्रीड़ाओंसे अत्यन्त आकृष्ट एवं अभिभूत हो गयी थीं। कृष्ण-विरहमें वे सब कृष्णगतहृदय हो गयीं और उनके द्वारा विहित लीला-चेष्टाओं (कार्यकलापों) का अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु

प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्त्तयः ।

असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका

न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

उस समय कृष्ण-प्रिया गोपियोंने श्रीकृष्णके समान मूर्ति धारण कर ली और उनके समान ही विहार करने लगीं—वही सुललित पद-विन्यास (चाल-ढाल), वही मन्द मुस्कान, वही विक्रम चितवन, वही प्रेमालाप, वही मति, वही भाव-भङ्गिमा। विभ्रम-दशाको प्राप्त होकर वे स्वयंको सर्वथा भूल गयीं और कृष्णात्मिका भावसे लीलाभावका अनुकरण करती हुई परस्पर इस प्रकार कहने लगीं—“मैं ही वही कृष्ण हूँ॥”३॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्क्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम्।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि-
भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्॥४॥

विशेषरूपसे वे सभी मिलकर उच्च स्वरसे कृष्णके नाम एवं गुणोंका गान करने लगीं और उन्मत्त-सी होकर एक वनसे दूसरे वनमें उन्हें ढूँढ़ने लगीं। जो आकाशके समान चराचर, अन्तर एवं बाहर सर्वत्र स्थित हैं, उन्हीं श्रीकृष्णका समाचार वृक्षादि वनस्पतियोंसे पूछने लगीं। (श्रीकृष्ण सर्वमुख्यतमा नायिका श्रीराधिकाके साथ रमणमें रत रहनेपर भी समस्त भूतोंके भीतर एवं बाहर अपनी विद्यमानताके कारण उन-उन स्थानोंमें भी अलक्षितरूपसे गोपियोंके उन्माद-युक्त प्रश्नोंको श्रवण कर रहे थे।)॥४॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः।

नन्दसूनुर्गतो हत्वा प्रेमहासावलोकनैः॥५॥

(गोपियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंसे पूछा—) हे अश्वत्थ! हे प्लक्ष (पीलू वृक्ष)! हे बरगद! श्रीकृष्ण अपनी प्रेममयी मुसकानसे विलसित महामोहन चितवनके द्वारा हमारे चित्तरूपी रत्नको चुराकर भाग गये हैं, तुमने उन्हें जाते हुए देखा है क्या? (अहो! अशुद्ध अन्तःकरणवाले क्षुद्रफलधारी ये वृक्ष परोपकार-धर्मको नहीं जानते, अतः इन वृक्षोंसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है)॥५॥

कच्चित् कुरुवकाशोकनागपुत्रागचम्पकाः ।

रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥

(अनन्तर उद्यानमें प्रवेश करके पूछने लगीं—) हे कुरुवक (सदाबहार), अशोक, नाग, पुत्राग, चम्पक! अपनी सुनिपुण एवं विलक्षण मुसकानसे मानिनियोंके दर्पको हर लेनेवाले बलरामके छोटे भाई श्रीकृष्ण यहाँसे होकर गये थे क्या? (इन कठोर पुरुष जातिके वृक्षोंसे पूछनेपर हमें फल प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं है। अतः आगे चल पड़ीं) ॥ ६ ॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।

सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

(बड़े-बड़े वृक्षोंसे उत्तर न मिलनेपर वे दयाकी आकाङ्क्षासे स्त्री जातिके वृक्षोंसे पूछने लगीं—) हे गोविन्दचरण-प्रिये तुलसी! श्रीकृष्ण तुमसे भी तो बहुत स्नेह रखते हैं, हे कल्याणी! तुम दयालु हो, सभीका मङ्गल विधान करती हो। हे तुलसीदेवी! भ्रमर जिसपर मँडराते रहते हैं, ऐसी तुम्हें वे सदा धारण करते हैं, क्या तुमने उन अतिशय प्रियतम श्रीकृष्णको इधरसे जाते देखा है क्या? (तुलसीका श्रीकृष्णके साथ कभी विच्छेद नहीं है। इसीसे उसका सौभाग्य अधिक है। शत-शत भ्रमरोंके उद्वेगको सहन करके भी वे उसे अपने वक्षःस्थलपर धारण करते हैं। तुलसीमें सौरभ भी अधिक है) ॥ ७ ॥

मालत्यर्दशि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ।

प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

हे मालति! हे मल्लिके! हे जाति! हे यूथिके! अपने कोमल करारविन्दके स्पर्शसे तुम्हें पुलकित करते हुए हमारे प्यारे माधवको तुमने कदाचित् यहाँसे जाते देखा है क्या? ॥ ८ ॥

चूतपियालपनसासनकोविदार-

जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।

येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः

शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

हे रसाल! हे पियाल (शाल)! हे पनस (कटहल)! हे आसन (पीतशाल)! हे कोविदार (कचनार)! हे जम्बू (जामुन)! हे आक! हे बिल्व (बेल)! हे बकुल (मौलसिरी)! हे आम्र! हे कदम्ब! हे नीप (धूलिकदम्ब)! हे परहितके लिए अपना जीवन अर्पण करनेवाले यमुनातटके अन्यान्य वृक्षो! हमें वह मार्ग बतला दो, जहाँसे कृष्ण गये हैं। कृष्ण-विरहमें हमारा चित्त शून्य होकर मूर्च्छित-सा हो रहा है। यमुनाके तटपर वास करनेके कारण तुम सब तीर्थवासी हो। परहितके लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम अवश्य ही बतलाओगे ॥ ९ ॥

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-

स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।

अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा

आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥ १० ॥

हे पृथ्वीदेवी! तुमने कौन-सी तपस्या की थी, जिसके कारण श्रीकृष्णके चरण-स्पर्श-जनित आनन्दसे तुम्हारा रोम-रोम (तृण, लतादिके रूपमें) पुलकायमान होकर सुशोभित हो रहा है। तुम्हारा यह आनन्दोत्सव अभी-अभी उनके चरण-स्पर्शके कारण है या पहले त्रिविक्रम (वामन) के रूपमें जब उन्होंने तुम्हें अपने चरणोंसे परिमित किया था, उस कारणसे है अथवा वराह अवतारमें उनके आलिङ्गनके कारण उत्पन्न हो रहा है? हे भगवत्-प्रेयसी! जिस किसी भी रूपमें तुमने निश्चित ही उनका दर्शन किया हो, हमें भी उनके मार्गका कुछ निदर्शन करो। (गोपियोंने निश्चय किया कि वृक्ष विष्णुकी समाधिमें मग्न होनेके कारण हमारा प्रश्न सुन नहीं रहे हैं और फिर ये तीर्थवासी कठोर स्वभावके होते हैं। अतः पृथ्वीसे ही पूछना चाहिये कि वह किस

तपश्चर्याके कारण श्रीकृष्णके विरहको प्राप्त नहीं होती और स्वाधीन-भर्तृका बनी रहती है) ॥ १० ॥

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-

स्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।

कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः

कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् हरिणियोंकी प्रसन्न दृष्टिको देखकर “इन्होंने कृष्णका दर्शन किया है”—इस संभावनासे कहने लगीं—हे सखियो! हे हरिणियो! श्रीकृष्ण अपने सुन्दर मुख, बाहु इत्यादि अङ्गोंके द्वारा तुम्हारे नयनोंको आनन्दित करते हुए अपनी प्रियाके साथ यहाँ आये थे क्या? देखो तो, गोपी-कुल-पति श्रीकृष्णके कण्ठमें स्थित उसी कुन्द-पुष्पोंसे ग्रथित मालाकी सुगन्ध आ रही है जो कान्ताके अङ्ग-सङ्ग कालमें उसके कुच-कुङ्कुमसे रञ्जित रहती है। (अपने नयनोंके आनन्दके लोभसे हिरनियाँ श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चलती हैं, इसलिए इनकी दृष्टिसे कृष्ण कभी विच्युत नहीं होते।) ॥ ११ ॥

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो

रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।

अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं

किंवाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥

पुनः फलोंके भारसे अवनत वृक्षोंको देखकर ऐसा मानने लगीं कि श्रीकृष्णको देखकर ये वृक्ष प्रणामकी मुद्रामें स्थित हैं। अतः वे इन वृक्षोंसे पूछने लगीं—हे तरुवरो! अपनी प्रेयसीके कन्धेपर एक हाथ रखे और दूसरे हाथमें लीला-कमलको धारण किये हुए बलरामके छोटे भाई श्रीकृष्ण इधरसे गये थे क्या? उनके गलेमें स्थित तुलसी-मालाकी अप्रतिम सुगन्धसे मतवाले होकर गन्धके लोभी भ्रमर उस पर मँडराते रहते हैं, उन श्रीकृष्णने जहाँसे विचरण करते हुए अपनी प्रणयमयी चितवनसे तुम्हारे वन्दनका

अभिनन्दन किया था या नहीं? (वृक्ष तो सात्त्विक साधु हैं—इनके प्रति प्रीतिपूर्वक अवलोकन करनेका उन्हें अवकाश ही नहीं मिला होगा। वे तो लीला-कमलके द्वारा प्रियाके मुखके सौरभसे आकृष्ट होकर मँडराते भ्रमरोंको दूर करनेमें रत होंगे) ॥ १२ ॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः।

नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥

कोई-कोई ब्रजाङ्गना कहने लगी—हे सखियो! इन लताओंने निश्चय ही कृष्णका सङ्ग प्राप्त किया है—इसलिए उनके पास ही चलकर पूछते हैं। अहो! इनका कितना सौभाग्य है कि ये अपने पति-वृक्षोंको भुजपाशमें आलिङ्गन किये हुए हैं, पर तो भी क्या, इनमें जो रोमाञ्च और पुलक दिखायी दे रहे हैं, वे तो निश्चय ही अच्युत श्रीकृष्णके नख-स्पर्शके कारण ही हैं ॥ १३ ॥

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः।

लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ १४ ॥

कृष्णको ढूँढ़ती-ढूँढ़ती उन्मत्त वचन बोलती हुई मतवाली गोपियाँ किंकर्तव्यविमूढ़-सी, कातर-सी होकर उनकी प्रसिद्ध लीलाओंका अनुकरण करने लगीं। गाढ़ आवेशके कारण वे कृष्णात्मभावको प्राप्त हो गयी थीं और उनकी बाह्य दृष्टि लुप्त हो गयी थी ॥ १४ ॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्।

तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्चकटायतीम् ॥ १५ ॥

एक गोपी कृष्णके समान लीला करती हुई पूतनाके समान बन गयी और दूसरी बाल-कृष्णके समान गोपीका स्तन-पान करने लगी। अन्य कोई गोपी शकटासुर बन गयी, तो दूसरी कृष्णके बाल-भावको धारण कर रोदन करने लगी और पैरोंके प्रहारसे शकटासुरको ठोकर मारने लगी ॥ १५ ॥

दैत्यायित्वा जहाराण्यामेका कृष्णार्भवावनाम्।

रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥ १६ ॥

कोई गोपी स्वयं तृणावर्त दैत्यके समान बन गयी और कृष्णके बाल्य-रूपका अनुकरण करते हुए दूसरी गोपीको हर ले गयी। कोई गोपी भूमिपर घुटनेके बल रेंगने लगी और पायजेबोंकी रुनझुन ध्वनि करते हुए क्रीड़ा करने लगी ॥ १६ ॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन।

वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥

एक गोपी बन गयी बलराम और दूसरी बन गयी कृष्ण। अन्य कुछ ब्रजाङ्गनाओंने गोपोंके भावोंको धारण कर लिया। वत्सासुर वध लीलाका अभिनय करते हुए एक गोपी बन गयी वत्सासुर और दूसरीने कृष्ण बनकर वध करनेका अभिनय किया। इसी प्रकार एक ब्रजसुन्दरी बकासुरके रूपमें प्रस्तुत हो गयी और दूसरी कृष्णके समान वध लीलाका अनुकरण करने लगी ॥ १७ ॥

आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुकुर्वतीम्।

वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥

एक अन्य गोपी कृष्णके समान वनमें जाकर दूर गयी हुई गायोंको बुलानेके लिए कृष्णका अनुकरण करते हुए वंशी बजाने लगी तथा क्रीड़ा-विहारमें निरत दूसरी गोपीकी 'साधु-साधु' कहकर प्रशंसा करने लगी ॥ १८ ॥

कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु।

कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥

एक ब्रजसुन्दरी श्रीकृष्णको अपने मनमें स्थिर कर कृष्णमयी होकर दूसरीके कन्धेपर अपनी भुजा रखकर श्रीकृष्णकी भाँति मधुर गतिसे चलती हुई कहने लगी—हे गोपियो! मैं कृष्ण हूँ! यह देखो, मेरी मनोरम गति-भङ्गिमा ॥ १९ ॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्राणं विहितं मया।

इत्युक्तवैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम्॥ २० ॥

एक गोपीने कहा—हे व्रजजन! इन्द्र द्वारा की हुई आँधी एवं वर्षासे तुमलोग भय मत करो। मैं इससे तुम्हारी रक्षाका उपाय करता हूँ। यह कहकर उसने गोवर्धन-धारण लीलाका अभिनय करते हुए बड़े यत्नके साथ अपनी ओढ़नीको ऊपरकी ओर ताना मानो गोवर्धन धारण कर रही हो॥ २० ॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापारं नृप।

दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक्॥ २१ ॥

अन्य एक गोपी कालिय नाग बनी दूसरी व्राजाङ्गनाके कन्धेके ऊपर चढ़कर उसे दण्डित करनेके लिए उसके मस्तक पर पदाघात करते हुए कहने लगी, “हे दुष्टनाग! कालिय! इस हृदसे कहीं और प्रस्थान कर जा। मैं दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए ही अवतरित हुआ हूँ॥” २१ ॥

तत्रैकोवाच हे गोपा दावार्गिन् पश्यतोल्बणम्।

चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा॥ २२ ॥

इतने ही में उन्मादकी प्रबलतासे एक गोपीने कहा—“हे प्रिय ग्वालबालो! जङ्गलमें लगे इस अति उग्र दावानलको देखो! तुम शीघ्र ही अपनी-अपनी आँखें मूँद लो। मैं सत्य ही तुम्हारे कल्याणका उपाय करता हूँ॥” २२ ॥

बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले।

वध्नामि भाण्डभेत्तारं हैयङ्गवमुषन्तिवति।

भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम्॥ २३ ॥

एक गोपी यशोदा बन गयी और “इस भाण्डभेदीने मक्खनका भाण्ड तोड़ डाला है, इस नवनीत-चोरको आज बाँध देती हूँ”—यह कहकर एक उलूखल बनी गोपीसे उस कृष्ण बनी गोपीको पुष्पोंकी मालाके द्वारा बाँध दिया। जिस गोपीको बाँधा

गया, वह कृशाङ्गी, सुलोचना भयके कारण मुख ढककर डरे हुए कृष्णका अभिनय करने लगी ॥ २३ ॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून्।

व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥

प्रिय परीक्षित! इस प्रकार गोपियाँ कृष्ण-लीलाका अनुकरण करती रहीं और वृन्दावनके तरुवरों एवं लताओंसे श्रीकृष्णके विषयमें पूछती रहीं कि तभी उन्हें वन-प्रदेशमें एक कोणमें श्रीकृष्णके चरणचिह्न दिखायी दिये ॥ २४ ॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः।

लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५ ॥

उन पदचिह्नोंको देखकर वे कहने लगीं—ये पदचिह्न तो निश्चय ही महात्मा नन्द-तनयके ही हैं, क्योंकि इनमें ध्वज, पद्म, वज्र, अंकुश और यव आदिके चिह्न स्पष्टरूपसे दिखायी दे रहे हैं। (तन्मयताकी उन्माद दशा शिथिल होनेपर गोपियोंको कुछ आत्मानुसंधान हुआ और वे पुनः श्रीकृष्णका अन्वेषण करने लगीं) ॥ २५ ॥

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः।

वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् उन पदचिह्नोंका पीछा करती हुई वे अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके जानेका मार्ग अन्वेषण कर ही रही थीं कि उन्होंने देखा—उदार-शिरोमणि व्रजवल्लभ श्रीकृष्णके पदचिह्नोंके साथ किसी व्रजवधूके चरणचिह्न संयुक्त प्रतीत हो रहे हैं। इन चरणचिह्नोंको देखकर वे अत्यन्त आर्त हो गयीं और परस्पर कहने लगीं ॥ २६ ॥

कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना।

अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥

गजराजके साथ जिस प्रकार हथिनी चलती है, उसी प्रकार इस बड़भागिनीकी भुजाको अपने कन्धेपर रखकर नन्दनन्दन श्यामसुन्दर

चले होंगे। उसके चरणचिह्नोंकी झलक स्पष्ट दिखायी दे रही है ॥ २७ ॥

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।

यत्रो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥ २८ ॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण निश्चय ही उस भाग्यवतीके (श्रीवृषभानु-नन्दिनीके) द्वारा भली-भाँति आराधित हुए होंगे, क्योंकि उन्होंने इससे सन्तुष्ट होकर हमारा परित्याग कर दिया है और उसे एकान्तमें ले गये हैं। (श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा यत्नपूर्वक राधाका नाम गोपन रखे जानेपर भी श्रीराधाकी कृपासे सौभाग्यरूपी दुन्दुभि बजानेके लिए उनके मुखचन्द्रसे श्रीराधाका नाम स्वयं ही निकल गया) ॥ २८ ॥

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः।

यान् ब्रह्मेशौ रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥

हे सखियो! श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका स्पर्श करके रज भी अतिशय पवित्र एवं धन्य हो जाती है। ब्रह्मा, महादेव एवं लक्ष्मी देवी भी अपने अशुभोंके नाशके लिए इस रजको अपने मस्तकोंपर धारण करते हैं। श्रीकृष्णके सहचर गोपबालकोंने अपनी आँखोंसे देखा कि श्रीकृष्ण जब गोष्ठमें आगमन करते हैं, तब मार्गमें ब्रह्मादि देवगण उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं और इस चरण-रजको मस्तकपर धारणकर विरह-दुःखको दूर करते हैं ॥ २९ ॥

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत्

यैकापहत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम्।

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः

खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निये प्रेयसी प्रियः ॥ ३० ॥

सखी! उस सौभाग्यशालिनीके पदचिह्न तो हमें बड़ा विचलित कर रहे हैं। वह सुभगा समस्त गोपियोंके धनस्वरूप श्रीकृष्णकी

अधर-सुधाको अपहृत कर अकेले ही पान कर रही है। तत्पश्चात् थोड़ी दूर चलनेपर उसके पदचिह्न दिखायी नहीं दिये, तो वे फिर कहने लगीं—हे सखियो! यहाँ अब उस प्रेयसीके पदचिह्न दिखायी नहीं दे रहे। निश्चय ही तृणांकुरों (घासकी नोकों) से उसके सुकोमल चरणतल व्यथित हो रहे होंगे, इसलिए श्रीकृष्णने अपनी उस प्रेमिकाको अपने कन्धेपर धारण कर लिया होगा ॥ ३० ॥

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम्।

गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः।

अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ ३१ ॥

अरी गोपियो! इस विषयमें अब कोई सन्देह नहीं है। जरा देखो! इस स्थानपर प्रियतमाको कन्धेपर वहन करनेके कारण भारी बोझसे दबे-दबे कामी श्रीकृष्णके चरणचिह्न इस बालुकामयी भूमिपर और भी अधिक धँसे हुए दिखायी दे रहे हैं। थोड़ी दूर और चलनेपर कहने लगीं—यहीं अति चतुर परमप्रेमी श्रीकृष्णने पुष्पचयनके लिए अपनी प्रियाको भूमिपर उतारा होगा ॥ ३१ ॥

अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः।

प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥ ३२ ॥

यहींपर अशोक वृक्षकी शाखासे ही ब्रजराजनन्दन प्रिय श्रीकृष्णने प्रियाके प्रसाधन हेतु पुष्प-चयन किये होंगे (यहाँकी शाखाओंमें खिले हुए पुष्प नहीं दीख रहे हैं), क्योंकि यह देखो! उस समय पैरोंके अग्रभाग—पञ्जों द्वारा वे विदग्ध-शिरोमणि उचक-उचक कर फूलों तक पहुँचे होंगे, तभी उन महात्माके पञ्जोंके चिह्न तो दिखायी दे रहे हैं, पर एड़ीके चिह्न दिखायी नहीं दे रहे ॥ ३२ ॥

केशप्रसाधनं ह्यत्र कामिन्याः कामिना कृतम्।

तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् भूमिपर श्रीकृष्णकी जानु (घुटने) के ऊपर प्रियाके बैठे जानेके चिह्नोंको देखकर बोलीं—इस स्थानपर निश्चय ही कामी श्रीकृष्णने उस कामिनीके केश सँवारे होंगे और यहीं पर अपनी कान्ताकी वेणीमें चयन किये हुए फूलोंको ग्रथित करनेके लिए बैठे रहे होंगे॥ ३३॥

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः।

कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम्॥ ३४॥

परीक्षित्! श्रीकृष्ण स्वयंमें ही सन्तुष्ट एवं पूर्ण (अखण्ड) हैं। वे स्वयंमें ही क्रीड़ापरायण (आत्माराम) हैं एवं स्त्री-विभ्रममें (स्त्रियोंके सौन्दर्य एवं विलासमें) उनका कोई आकर्षण न होते हुए भी कामियोंकी दीनता (स्त्री-परवशता) एवं स्त्रियोंका दौरात्म्य (कुटिलता) प्रदर्शन करनेके लिए ही उन्होंने उस कामिनीके साथ निर्जनमें विहार किया था॥ ३४॥

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः।

यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने॥ ३५॥

सा च मेने तदाऽऽत्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम्।

हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः॥ ३६॥

इस प्रकार गोपियाँ विवेकरहित होकर एक-दूसरेको भगवान्के चरणचिह्न दिखलाती हुई वन-वन भटक रही थीं। इधर, श्रीकृष्ण अन्य गोपियोंका परित्याग करके जिस भाग्यवती गोपीको निर्जन वनमें ले गये थे—उसे मान हो गया था, वह अपने मनमें सोचने लगी कि श्रीकृष्ण केवल मुझसे ही प्रेम करते हैं। तभी तो वे कामवेगसे पधारिँ गोपियोंका परित्याग करके मुझे इतना सम्मान दे रहे हैं। इस प्रकार उसने निर्धारण कर लिया कि वही सर्वश्रेष्ठ गोपी है॥ ३५-३६॥

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत्।

न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः॥ ३७॥

जब वे दोनों वृन्दावनमें एक प्रान्तमें विचरण कर रहे थे, तब सौभाग्य-गर्वसे मतवाली-सी होकर वह श्रीकृष्णसे कहने लगी—
“हे प्रिय कान्त! मुझसे अब और चला नहीं जाता। मेरे सुकोमल चरण थक गये हैं। अतः तुम मुझे अपनी इच्छासे जहाँ चाहो, वहाँ पहलेकी ही भाँति अपने कन्धेपर चढ़ाकर ले चलो ॥” ३७ ॥

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।

ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥

तब भगवान् केशव (शङ्कर, ब्रह्मा आदिके भी शासक) ने अपनी प्रियासे कहा—हे प्रियतमे! तुम मेरे कन्धेपर चढ़ो। वह सौभाग्यशालिनी गोपी जैसे ही भगवान्‌के कन्धेपर चढ़नेके लिए उद्यत हुई, वे स्वयं वहाँसे अन्तर्हित हो गये। उनके विलुप्त होनेपर वह ब्रजाङ्गना विरह-तप्त होकर पश्चात्ताप करने लगी ॥ ३८ ॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।

दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥

हा नाथ! हा रमण! हा प्रेष्ठ! हा महाभुज! तुम कहाँ हो! कहाँ हो! हे सखे! मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ। इस बेचारीको अपने सान्निध्यकी अनुभूति कराओ, अपने दर्शन दो। मैंने जो तुमसे स्कन्धपर आरूढ़ कराके ले चलनेके लिए कहा था, वह इसलिए कि मैं वन-भ्रमणसे क्लान्त, विलास-श्रमसे निद्राभिभूत एवं आलस्यसे शिथिल हो गयी थी, अतः इस सुदीना दासीको क्षमा करो ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच—

अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः ।

ददृशुः प्रियविश्लेषान्मोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! उसी समय गोपियाँ भगवान्‌के चरणचिह्नोंसे अङ्कित मार्गका अनुसरण करते-करते वहाँ

पहुँचीं, जहाँ विद्युत् तुल्य उज्ज्वल-कान्तिसे युक्त उनकी प्रिय सखी प्रियतम-विरहसे मोहग्रस्त होकर अचेत-सी हो रही थी ॥ ४० ॥

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ।

अवमानं च दौरात्म्याद् विस्मयं परमं ययुः ॥ ४१ ॥

जब गोपियाँ उस सखीके समीप पहुँचीं, तब उसने कृष्णके द्वारा प्राप्त विशिष्ट प्रेम एवं मान-प्राप्तिकी बातें बतलायीं और अभिमानके कारण अपने व्यवहारकी कुटिलताका भी वर्णन किया, जिससे उसे यह अपमान झेलना पड़ा। गोपियाँ यह सुनकर अतिशय आश्चर्यचकित हो गयीं। (सखियोंके विस्मयका कारण है कि महारसिकशेखर महाप्रेमिक दयानिधि राधाजीको इस प्रकार छोड़कर अन्तर्धान हो गये। यहाँ दौरात्म्यका अर्थ कृष्ण-विच्छेद है, क्योंकि आत्मा-प्राण-कृष्ण दूर हैं) ॥ ४१ ॥

ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद् विभाव्यते ।

तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

अब वनमें जहाँ तक चन्द्र-ज्योत्स्ना फैली हुई थी, गोपियाँ उतनी दूर तक कृष्णको खोजनेके लिए प्रवेश कर गयीं। आगे जानेपर उन्होंने देखा कि वनमें घोर अन्धकार व्याप्त है, तब वे वहाँसे लौट आयीं। (गोपियाँ जहाँ-जहाँ जातीं, वहाँ-वहाँसे कृष्ण चले जाते, अतः उन्हें और श्रम न देनेके कारण गोपियाँ लौट आयीं) ॥ ४२ ॥

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।

तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥ ४३ ॥

परीक्षित्! गोपियाँ कृष्णगतप्राणा थीं। उनके विरहमें उनके ही विचारोंमें लीन होकर उनके ही विषयमें वार्त्तालाप कर रही थीं, कोई और चर्चा नहीं थी। वे रोम-रोमसे तदात्मिका हो उनके ही गुण एवं लीलाओंका उच्च स्वरसे गान कर रही थीं। वे इतनी तन्मय हो गयी थीं कि अपने घरके सम्बन्धमें सब कुछ भूल

गयीं, अपना भी ध्यान न रहा। वस्तुतः उन्हें कृष्णके अतिरिक्त और कोई सुध-बुध न थी ॥ ४३ ॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्ध्याः कृष्णभावनाः।

समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां
दशमस्कन्धे रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् वे कालिन्दीके पावन पुलिन—रमणरेती पर आ गयीं और कृष्ण-ध्यानमें निमग्न हो गयीं। वहाँ बैठकर ये विरहिणियाँ उनके आगमनकी बलवती आशासे एक साथ मिलकर उच्च स्वरसे कृष्णके गुणोंका गान करने लगीं। (भगवान्की करुणा उनके नाम-सङ्कीर्तनसे ही प्राप्त होती है) ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकत्रिंशोऽध्यायः

गोपीगीत

श्रीगोप्य ऊचुः—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

(प्रस्तुत अध्याय श्रीकृष्णरूप भ्रमरको भी आकर्षित करनेवाला प्रेमरूपी मधुसे परिपूर्ण एवं स्वर-तालादिरूपी सौरभसे युक्त गोपी-गीत रूपी कमल-श्रेणीसे सुशोभित हुआ है। गोपियाँ निराश होकर पुनः यमुना-पुलिन पर लौट आयीं तथा श्रीकृष्णके आगमनके लिए उनका प्रार्थनामूलक गुणगान करने लगीं।)

गोपियाँ गाने लगीं—हे दयित! आपके आविर्भावसे यह व्रजमण्डल वैकुण्ठसे भी अधिक जययुक्त हो गया है। स्वयं महालक्ष्मी वैकुण्ठधामका परित्याग करके इस स्थानको अलङ्कृत करती हुई यहाँ सदैव विराजमान रहती हैं। यह व्रजधाम महा-आनन्दसे परिपूर्ण हो रहा है और यहाँ हम आपकी प्रेयसियाँ आपके ही निमित्त प्राण धारण किये हुए हैं, चारों दिशाओंमें आपको खोजती हुई अतीव कातर हो पड़ी हैं। अब तो दर्शन दीजिये ॥ १ ॥

शरदुदाशये साधुजातसत्-
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

हे प्रेमरसाधीश्वर श्रीकृष्ण! हम आपकी बिना मोलकी दासी हैं। (आपने न तो हमें मूल्य देकर खरीदा है और न ही विवाह

करके हमें स्वीकार किया है।) आप शरदकालीन जलाशयमें सुजात एवं सुविकसित कमल-गर्भ (कमलकी कर्णिका) के सौन्दर्यके गर्वको हरण करनेवाले अपने नेत्रोंसे हमारा वध कर चुके हो। [वरद दृष्टिसे अभीष्ट सुख भी दे रहे हो और उसी अनिवर्चनीय मोहक-उन्मादक दृष्टिसे प्रेमानल-पुञ्जमें (प्रेमकी आगकी लपटोंमें) प्रक्षेपित करके क्या हमारा वध नहीं कर रहे हो?] हे अभीष्टोंको प्रदान करनेवाले प्राण-वल्लभ! जरा बतलाओ तो, क्या शस्त्रके द्वारा वध करना ही वध है, नेत्रोंसे वध करना वध नहीं होता? ॥ २ ॥

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-
ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! कालिय-हृदके विषैले जलका पान करके समस्त प्राणी मृतप्राय हो गये थे। आपने हम ब्रजवासियोंका उससे, मनुष्यभक्षी भयङ्कर अघासुरसे, इन्द्रके कोप-वर्षण—आँधी-बिजलीसे, तृणावर्त्तसे, अरिष्ठासुर, व्योमासुरसे एवं विश्वगत विभिन्न भीतियोंसे पुनः-पुनः रक्षा की है। प्यारे! जिनकी रक्षा की जाय, क्या उनका वध करना उचित है? (अरिष्ठासुर एवं व्योमासुरका वध भविष्यकी घटनाएँ होनेपर भी ब्रजदेवियोंने गर्गाचार्य एवं भागुरि मुनिके मुखसे निःसृत इस वृत्तान्तको परम्परा-क्रमसे सुन रखा था।) ॥ ३ ॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्
अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

हे सखे! आप केवल यशोदानन्दन ही नहीं हैं, अपितु समस्त विश्वके प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं। (विश्व-पालक होनेके कारण आप विश्वके अन्तर्गत हमारा भी पालन करें।) ब्रह्माजीकी

प्रार्थनासे विश्वकी रक्षा करनेके लिए आप सात्वत-कुलमें अवतरित हुए हैं। सर्वान्तर्यामी होनेपर भी आप जीवोंका दुःख देखकर सुखपूर्वक बैठे हैं ॥ ४ ॥

विरचिताभयं वृष्णिधूर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥

हे यदुकुल-शिरमणे ! संसार-भयसे डरकर समस्त प्राणी आपके चरणकमलोंके शरणागत होते हैं और आप अपने हस्त-कमलोंकी छत्र-छायासे उन्हें अभय प्रदान करते हैं। हे प्रिय ! आपने अपने इन्हीं करकमलों द्वारा लक्ष्मीके कर-द्वयको ग्रहण किया है। अतः हे अभीष्टप्रद ! इन्हीं कर-पद्मोंको हमारे सिर पर भी रख दीजिये ॥ ५ ॥

व्रजजनार्त्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥

हे वीर-शिरमणे ! आप व्रजजनोंकी विरह-जनित आर्त्तिका विनाश करनेवाले हैं। आपके निज-जनोंमें जो सौभाग्य-प्राप्तिसे उत्पन्न गर्व और तज्जनित वाम्य लक्षणयुक्त मान है, वह तो आपकी मुसकान मात्रसे नष्ट हो जायेगा। हे प्रिय सखा ! हम तो आपकी किङ्करियाँ हैं। अपने मनोरम एवं सुखवासस्वरूप मुख-कमलका हमें एक बार दर्शन तो दीजिये। अपने चरणोंकी सेवा प्रदानकर हमारे सभी मनोरथोंको पूर्ण कीजिये ॥ ६ ॥

प्रणतदेहिनां पापकर्षणं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७ ॥

(हे प्रणतजनोंके पापनाशन! आपके चरणकमल शरणागत देहधारियोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं।) आपके ये चरणकमल तृणचर पशुओंका अनुगमन करते हैं, ये ही चरणकमल लक्ष्मीदेवीके दिव्य निकेतन (आश्रय) स्वरूप हैं, इन्हीं चरणोंको आपने कालिय सर्पके फणोंपर अर्पण किया था। हे प्रेयस्! इन्हीं पदारविन्दोंको आज आप हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हमारी काम-व्यथाको (हृदयकी ज्वालाको) प्रशमित कीजिये ॥ ७ ॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥ ८ ॥

हे पद्मलोचन! मनोहर शब्दोंसे युक्त आपकी पदावली द्वारा बड़े-बड़े विदग्ध (रसिक) पण्डितोंके चित्त आकर्षित हो जाते हैं। आपकी उसी विचित्र-अर्थ-प्रकाशिनी सुमधुर वाणीसे हम भी मोहित हो गयी हैं। हे दानवीर! हम आपकी किङ्करी हैं। हमें भी अपना अधरामृत प्रदान कर सञ्जीवित कीजिये, हमें जीवन-दान दीजिये ॥ ८ ॥

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

हे स्वामी! आपकी लीला-कथाएँ अमृतस्वरूप हैं। ये आपके विरहसे व्यथित लोगोंके लिए जीवनस्वरूप हैं। प्रह्लाद, ध्रुव इत्यादि विज्ञ भक्त इन कथाओंका गान करके आपका स्तव करते रहते हैं। इस कथामृतसे प्रारब्ध एवं अप्रारब्ध समस्त पापोंका विनाश हो जाता है। यह कथामृत श्रवणमात्रसे ही मङ्गल प्रदान करनेवाला, प्रेमकी अतुल सम्पत्तिको देनेवाला और कीर्तनकारियोंके द्वारा विस्तारको प्राप्त होनेवाला है। अतः जो व्यक्ति इस भूलोकमें कथामृतका कीर्तन करते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ प्रचुर-दाता हैं ॥ ९ ॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं
 विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।
 रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
 कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥

हे कपटी! आपकी मधुर-मन्द-मुसकान, प्रीतिपूर्ण कटाक्ष, हम सखियोंके साथ विविध क्रीड़ाएँ, वंशीनादके माध्यमसे एकान्तमें किया जानेवाला हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक प्रेमालाप—इनका ध्यान परम मङ्गलप्रदायक तो है, परन्तु हे प्रिय! वही आज हमारे हृदयमें क्षोभ उत्पन्न कर रहा है ॥ १० ॥

चलसि यद् ब्रजाच्चारयन् पशून्
 नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
 शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
 कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥

हे नाथ! हे कान्त! जब आप पशु चरानेके लिए ब्रजसे गमन करते हो, तब आपके कमलके समान सुकोमल चरण धान्य-कणिश अर्थात् शस्यके सूक्ष्म अग्रभागोंकी चुभनसे, तृण-कुश-काँटोंसे, अङ्कुरित पौधों और कङ्कड़ोंसे अति कष्ट पाते होंगे—यह सोच-सोचकर हमारा हृदय अति व्यथित होता है ॥ ११ ॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
 र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्।
 घनरजस्वलं दर्शयन् मुहु-
 र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥

हे प्रणय-वीर! सन्ध्याकालमें वनसे लौटते समय गोधूलिसे धूसरित एवं नीलकुन्तलोंसे आच्छादित मुख-कमलकी माधुरीको पुनः-पुनः दिखाकर आप हमारे मनमें मदन-पीड़ाका सञ्चार करते हो। उन्मादित करके और वनमें लाकर अब हमें इस प्रकार रुला रहे हो? ॥ १२ ॥

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
 धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
 चरणपङ्कजं शन्तमं च ते
 रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥

हे मनोदुःखविनाशन (मनकी आधिका हरण करनेवाले)! पद्मयोनि ब्रह्मा आपके चरणकमलोंकी नित्य-निरन्तर अर्चना करते रहते हैं। इन चरणोंके ध्यानमात्रसे ही आपत्तियोंका निवारण हो जाता है। हे सर्वसुखप्रद! इनकी सेवासे परम सुखकी प्राप्ति होती है और सम्पूर्ण मनोकामनाओंकी पूर्ति होती है। हे रमण! आपके चरणकमल पृथ्वीके भूषणस्वरूप हैं। आप इन चरणकमलोंको हमारे वक्षःस्थलपर रख दीजिये ॥ १३ ॥

सुरतवर्द्धनं शोकनाशनं
 स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
 इतररागविस्मारणं नृणां
 वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥

हे वीर! आपका अधरामृत सम्भोग-रसकी आकाङ्क्षाका वर्धन करनेवाला एवं विरहके दुःख-तापका नाश करनेवाला है। आपके द्वारा ध्वनित वेणु द्वारा सुष्ठुरूपसे चुम्बित यह अधरामृत मनुष्यमात्रकी अन्यान्य आसक्तियोंको विस्मृत करानेवाला है। आप इस अधरामृतका वितरण कीजिये और हमें भी इसका पान कराइये। (कृष्णके रमणोत्सवमें धन-जन-कुटुम्बादिके प्रति आसक्ति कुपथ्य स्वरूप है—ऐसे कुपथ्यसेवीको अधरामृत देना वृथा है, इस सुरत-पुष्टिकारक महौषधिको तो हमें प्रदान कीजिये) ॥ १४ ॥

अटति यद्भवानहि काननं
 त्रुटि युगायते त्वामपश्यताम्।
 कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
 जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥ १५ ॥

हे प्रिय! दिनके समय जब आप व्रजसे वनमें विहार करनेके लिए चले जाते हैं, तब आपको न देखकर एक क्षणका समय भी हमारे लिए एक युगके समान प्रतीत होता है और जब दिनके अन्तमें (सन्ध्याकालमें) आप गोष्ठकी ओर लौटते हैं, तब हम घुँघराली अलकावलियोंसे युक्त आपके श्रीमुखमण्डलको देखती हैं, तो पलक गिरनेमात्रका व्यवधान भी हम सहन नहीं कर पातीं। हमें तो वह विधाता विवेकहीन (मूर्ख) ही प्रतीत होता है, जिसने इन पलकोंको बनाया है ॥ १५ ॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्

अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।

गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः

कितव योषितः कस्त्यजेत्रिशि ॥ १६ ॥

हे अच्युत! हम अपने पति, पुत्र, आत्मीय, स्वजन, पुत्र, भाई-बन्धुओंकी आज्ञाओं एवं इच्छाओंका अतिक्रमण करके आपके पास आयी हैं। हे कितव (कपटी)! आप अच्छी तरहसे जानते हैं कि हम आपकी वंशीके उच्च गीतसे मोहित-सी तथा विवेकशून्य-सी होकर यहाँ आयी हैं। हे अच्युत! यह सब जानकर भी आपके अतिरिक्त कौन ऐसा निष्ठुर एवं कपटी होगा, जो अर्धरात्रिमें आयी नवयौवनाओंका इस प्रकारसे परित्याग करेगा? ॥ १६ ॥

रहसि संविदं हृच्छयोदयं

प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।

बृहदुरःश्रियो वीक्ष्य धाम ते

मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥

हे नाथ! आपका एकान्तमें किया गया सम्भाषण, कामको उद्दीप्त करनेवाली ठिठोलियाँ, मधुर मुसकानसे युक्त मुखमण्डल, प्रेमपूर्ण चितवन एवं लक्ष्मीके निकेतन—समस्त शोभाके आश्रयस्वरूप आपके विशाल वक्षःस्थलका बार-बार स्मरण करके हमारे हृदयमें

मिलनकी अतिशय गहन स्पृहा उत्पन्न हो रही है तथा हमारा चित्त अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है ॥ १७ ॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्गुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

हे कृष्ण! आपका प्राकट्य व्रजवासियोंके दुःखोंका नाश करनेवाला एवं विश्वका मङ्गल-विधायक है। हे बन्धु! आपके सान्निध्यके लिए हमारी अत्यन्त लालसा हो रही है। हे नाथ! कृपणताका परित्यागकर हमें किञ्चित् ऐसी ओषधि दे दीजिये, जो आपके इन निज-जनोंके हृद्रोग (काम-व्यथा) का विनाश कर सके ॥ १८ ॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां
दशमस्कन्धे गोपीगीतं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

हे प्रिय! हम बहुत डरती हुई आपके जिन सुकुमार पाद-पद्मोंको अपने कर्कश स्तनोंपर धीरे-धीरे स्थापित करती हैं, उन्हीं कोमल चरणोंसे आप इस रात्रिकालमें वन-वनमें भटक रहे हैं। इन चरणकमलोंको तीक्ष्ण एवं नुकीले पत्थरोंसे कष्ट नहीं होता है? आप हमारे जीवनस्वरूप हैं, आपके विषयमें सोच-सोचकर तो हमारा चित्त अत्यधिक व्यथित हो रहा है। हे प्राण! हम आपकी दासी हैं और आप हमारे जीवन-स्वरूप हैं।

व्रजगोपियोंका श्रीकृष्णके प्रति अनुराग किसी कामके वशीभूत नहीं, अपितु विशुद्ध प्रेमके वशीभूत है, जिसका एकमात्र प्रयोजन

केवल श्रीकृष्णको सुख प्रदान करना है। इसलिए गोपीगीतके अन्तमें वे कहती हैं कि हम आपकी दासी हैं, अतः अपनी आयु आपको अर्पण करते हैं, आप इस आयुके द्वारा चिरकाल तक व्रजमें क्रीड़ा करें। गोपियोंके ये भाव सहृदय तदेकप्राण रसिक भक्तोंके लिए स्वानुभव-गम्य हैं ॥ १९ ॥

श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके इकतीसवें
अध्यायका श्लोकानुवाद समाप्त ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना देना

श्रीशुक उवाच—

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।

रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! गोपियाँ कृष्ण-दर्शनकी लालसासे बड़ी व्याकुल थीं। वे अपने हृदयकी भावनाओंको अत्याकर्षक ढंगसे (स्वर-आरोहण एवं मूर्च्छना तथा ताल आदिके द्वारा) गा रही थीं। विरहावेशके कारण प्रलाप तो कर ही रही थीं, दर्शन न मिलनेपर सुमधुर स्वरमें फूट-फूटकर रोने लगीं। (भक्तोंका दैन्य ही श्रीहरिकी प्रसन्नताका साधन है) ॥ १ ॥

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।

पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥

गोपियाँ रोदन कर रही थीं कि उनके मध्य श्रीकृष्ण आविर्भूत हो गये। उनके मुखमण्डलपर (गोपियोंको प्रसन्न करनेवाली) मधुर मुसकान थी, पीताम्बरके अग्रभागको कन्धेके ऊपरी भागसे दोनों ओर लटकाकर अपने हाथोंमें धारण किये हुए थे, गलेमें गोपियों द्वारा पहनायी हुई वही वनमाला सुशोभित हो रही थी। अपने पुष्पशरसे सभीके मनोंको मथनेवाले साक्षात् कामदेवको भी मोहित करनेके लिए उनका महामोहन स्वरूप प्रकट हो रहा था ॥ २ ॥

तं विलोक्यागतं प्रेष्टं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः।

उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥

सर्वप्रिय प्राणवल्लभ परम प्रियतम कृष्णको देखकर गोपियोंके चक्षु प्रेम एवं आनन्दसे उत्फुल्ल हो गये। वे सब एक ही साथ एक ही समय ऐसे उठ खड़ी हुई, मानो उनकी अचेतन देहोंमें

प्राणोंका सञ्चार हो गया हो और उनके हाथ-पैर आदि अङ्ग-प्रत्यङ्गमें सहसा नवीन स्फूर्ति आ गयी हो॥ ३॥

काचित् कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा।

काचिद् दधार तद्बाहुमंसे चन्दनभूषितम्॥ ४॥

किसी गोपीने (चन्द्रावलीने) प्रेम एवं आनन्दके साथ अपनी अञ्जलिमें श्रीकृष्णके दाहिने करकमलको धारण कर लिया और किसीने (श्यामलाने) चन्दनलेपसे अलङ्कृत उनकी भुजाको (विशाल बायीं भुजाको) अपने कन्धेपर रख लिया॥ ४॥

काचिदञ्जलिनागृह्णात्तन्वी ताम्बूलचर्वितम्।

एका तदङ्घ्रिकमलं सन्तप्ता स्तनयोरधात्॥ ५॥

किसी तन्वीने (शैव्याने) अपनी कराञ्जलिमें कृष्ण द्वारा चर्वित ताम्बूलको ले लिया, तो किसी रमणीने (पद्माने) विरहानलमें दग्ध होनेके कारण कृष्णके पदकमलोंको अपने वक्षःस्थलपर रख लिया॥ ५॥

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला।

घनन्तीवैक्षत् कटाक्षपैः संदष्टदशनच्छदा॥ ६॥

और कोई एक गोपी (राधाजी) प्रणय-कोपसे विह्वल होकर भ्रुकुटिको तानती हुई तथा दाँतोंसे होठोंको दबाती हुई अपने कटाक्ष-बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल-सी करती हुई उनकी ओर देखने लगी॥ ६॥

अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम्।

आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा॥ ७॥

एकमात्र प्रीतिभक्तिनिष्ठ भक्तगण जिस प्रकार श्रीकृष्णके चरणोंकी बार-बार सेवा करके भी कभी सन्तुष्टिको प्राप्त नहीं करते, उसी प्रकार कोई एक गोपी (ललिता) निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान् कृष्णके मुख-कमलके मधुर मकरन्दका सम्यक् रूपसे पान करती हुई तृप्त नहीं हो रही थी॥ ७॥

तं काचित्रेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च।

पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ॥ ८ ॥

कोई एक गोपी (विशाखा) अपनी आँखोंके रन्ध्रोंके द्वारा श्रीकृष्णको हृदयमें ले गयी और वहाँ उन्हें स्थापित कर उसने आँखें मूँद लीं। अब हृदयमें ही उनका आलिङ्गन करने लगी, जिससे उसका शरीर पुलकित होने लगा। इस प्रकार वह सिद्ध योगीके समान परमानन्दमें निमग्न हो गयी ॥ ८ ॥

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः।

जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

[इन आठों (चन्द्रावली, श्यामला, शैव्या, पद्मा, श्रीराधा, ललिता और विशाखा एवं भद्रा) के अतिरिक्त अन्य] सभी गोपियाँ भगवान् केशवकी झलक मात्र प्राप्त करके ही उसी प्रकार परमोत्सवमें मत्त हो गयीं, जिस प्रकार मुमुक्षु जीव ईश्वरके द्वारा आलिङ्गित होनेपर सांसारिक कष्टोंसे अव्याहति (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है। हे तात! कृष्ण-दर्शनसे गोपियोंका विरह-जनित ताप दूर होने लगा ॥ ९ ॥

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः।

व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥

हे प्रिय परीक्षित्! परमात्मा ज्ञान, बल और ऐश्वर्यादि स्वरूपशक्तियोंसे परिवृत होकर जिस प्रकार सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार समस्त ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण भी विगत-शोक (विरह-शोकसे मुक्त) गोपियोंसे परिवेष्टित होकर और भी शोभायमान हो रहे थे ॥ १० ॥

ताः समादाय कालिन्ध्या निर्विशय पुलिनं विभुः।

विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥

शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम्।

कृष्णाय हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् सर्वव्यापी भगवान् एक होकर भी सबके हाथ पकड़कर कालिन्दीके पुलिनकी ओर चल दिये। यमुनाजीने अपने हस्तरूपी तरङ्गोंसे पुलिनकी बालूको विस्तृत, कोमल, समतल एवं शीतलताके गुणोंसे युक्त सुखप्रद बना रखा था। वहाँ विकसित कुन्द एवं मन्दार पुष्पोंके सौरभसे सुवासित और शीतल पवन प्रवाहित हो रहा था, जिससे आकर्षित होकर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। शरत्कालीन चन्द्रदेव अपनी उज्ज्वल ज्योत्स्नाका विस्तार करते हुए अन्धकारका चिह्न मात्र भी दूर कर रहे थे। सर्वत्र माङ्गलिक वातावरण था। इस प्रकार यमुना-पुलिन रासक्रीड़ाके लिए सब प्रकारसे सुन्दर (उपयुक्त) हो गया था॥ ११-१२॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो

मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः।

स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्गितै-

रचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥

प्रिय राजन्! श्रुतियाँ (महा उपनिषद्गण) जिस प्रकार तपस्या करके गोपी-भावको प्राप्त होकर पूर्ण-मनोरथ हो गयी थीं और कृष्ण-दर्शन-जनित आनन्द एवं उल्लाससे उनके मनकी समस्त व्यथा दूर हो गयी थी, उसी प्रकार आज भी समस्त गोपियाँ पूर्ण-काम हो रही थीं। आनन्दोल्लाससे उन्होंने कुच-कुङ्कुमसे चिह्नित अपने उत्तरीय वसन (ओढ़नी) को स्वयंसे भी अधिक प्रियतम आत्मबन्धु श्यामसुन्दरके विराजनेके लिए आसन बनाकर बिछा दिया॥ १३॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो

योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः।

चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्घित-

स्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४ ॥

सिद्ध योगी साधनभूत हृदय-पुण्डरीकमें जिनके आसनकी कल्पना करते हैं, वे सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोकोंके

सौन्दर्यके आश्रयास्पद कलेवरको विभिन्न स्वरूपोंमें प्रकटित करते हुए गोपियों द्वारा प्रदत्त उत्तरीयासनोपर अलक्षितरूपसे युगपत् बहुसंख्यक रूपोंमें विराजित हो गये। गोपी-परिषद्में प्रेमोपकरणोंसे पूजित भगवान् परम शोभायमान हो रहे थे॥ १४॥

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं
सहासलीलेक्षणविभ्रमध्रुवा ।
संस्पर्शनेनाङ्गकृताङ्घ्रिहस्तयोः
संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे॥ १५॥

भगवान् श्रीकृष्णका सौन्दर्यामृत अनङ्गको दीप्त करनेवाला है। गोपियाँ अपनी मन्द-मन्द मुसकान, विलासपूर्ण चितवन और विभ्रमसे सुशोभित वक्रिम भौंहों द्वारा उनका सम्मान करने लगीं। किसीने उनके चरणोंको अपनी गोदीमें रख लिया, तो किसीने उनके हाथोंको। वे पुनः-पुनः उनका स्पर्श करतीं और संस्पर्श-सुखके अनुभवमें निमग्न हो जातीं। तत्पश्चात् श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेके कारण उनके प्रति क्रोध अभिव्यक्त करते हुए गोपियाँ कहने लगीं—॥ १५॥

श्रीगोप्य ऊचुः—

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥ १६॥

गोपियोंने कहा—प्रिय कृष्ण! एक श्रेणीके व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो स्नेह करनेवालोंके प्रति स्नेहवान् होते हैं अर्थात् जो जैसा प्रेम करता है, वे भी उसीके अनुसार प्रेम करते हैं। इसके विपरीत दूसरी श्रेणीके व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो प्रेमकी अपेक्षा किये बिना ही प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं और एक अन्य प्रकारके व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो प्रेम करें अथवा प्रेम न करें—दोनोंमेंसे किसीको भी प्रेम नहीं करते। श्यामसुन्दर! इनमेंसे कौन श्रेष्ठ है और कौन नहीं—आप हमें यह बतलाइये॥ १६॥

श्रीभगवानुवाच—

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते।

न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे प्रिय सखियो! जो प्रत्युपकारकी आशासे परस्पर प्रेम करते हैं, उनका सारा उद्यम तो एकमात्र स्वार्थसे ही बँधा हुआ है। वे तो वस्तुतः लाभकी आशासे ही प्रेम करते हैं, इसके अतिरिक्त उनका और कुछ लेना-देना नहीं है। इस तथाकथित प्रेममें न सच्चा भाव होता है और न ही धर्मकी परिपाटीका पालन होता है ॥ १७ ॥

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरौ यथा।

धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

हे सुमध्यमाओ! माता-पिता और दयालु सज्जन जिस प्रकार प्रेम न करनेवाले पुत्रादिसे भी प्रेम करते हैं, इसी प्रकार जो प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करते हैं, वे निश्चय ही करुणापूर्ण हैं। इस प्रकारके निःस्वार्थ प्रेममें त्रुटिरहित धर्मके सिद्धान्तका पालन भी है और सौहार्द भी। ऐसे निरपेक्षजनोंका ही प्रेम सत्य एवं हितैषितासे पूर्ण है (वस्तुतः तुमलोग ही इसका उदाहरण हो) ॥ १८ ॥

भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः।

आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥

प्रिय गोपियो! कोई-कोई तो ऐसे होते हैं, जो प्रेम न करनेवालोंकी बात तो बहुत दूर रहे, प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते। इनका स्वभाव चार भागोंमें विभाजित है—आत्माराम, आप्तकाम, अकृतज्ञ एवं गुरुद्रोही। [जो आत्माराम हैं, वे परमात्माके साथ ही क्रीड़ारत रहते हैं। ये बाह्य प्रवृत्तिसे रहित और अन्तर्मुखी होते हैं। आप्तकाम व्यक्ति विषय दिखायी देनेपर भी पूर्णकामत्वके कारण भोगेच्छाओंसे दूर रहते हैं। अकृतज्ञ दूसरोंसे उपकारकी आशा तो करते हैं, किन्तु किये हुए

उपकारको भुला देते हैं और जो गुरुसे (माता, पिता, जीविका वृत्तिके विधाता, प्राणदाता, एवं ज्ञानदातासे) द्रोह करनेवाले हैं, वे पातकी अथवा पाषण्डी बिना किसी हेतुके विश्वासघात किया करते हैं। इस प्रकार चतुर-शिरोमणि, वचन-कलाकुशल श्रीकृष्णने गोपियोंके वाक्-जालकी तीनों ग्रन्थियोंसे अपनेको मुक्त कर लिया। मानव प्रकृतिके साथ उनका कोई सादृश्य है भी नहीं] ॥ १९ ॥

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
 भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
 यथाधनो लब्धधने विनष्टे
 तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥

सुनो सखियो! मैं तो प्रेम करनेवालोंसे वैसा ही प्रेम प्रकट नहीं करता। देखो, जिस प्रकार निर्धन पुरुष प्राप्त धनके नष्ट हो जानेपर उसकी चिन्तामें ही सर्वदा व्यथित रहता है, उसे भूख-प्यास कुछ भी नहीं लगती, उसी प्रकार मैं भी ध्यानकी निरन्तरता बनाये रखनेके लिए और उनकी (साधकोंकी) चित्तवृत्तिको अपनेमें लगाये रखनेके लिए तत्क्षण स्नेहका अभिव्यञ्जन नहीं करता। जो व्यक्ति प्रेम-अनुरागकी कठोरतम परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं, वे ही मुझे चिरकालके लिए प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
 स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
 मया परोक्षं भजता तिरोहितं
 मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

हे अबलाओ! तुम सब मेरे लिए लौकिक (उचित-अनुचितकी पर्यालोचना न कर) एवं वैदिक धर्म (धर्म-अधर्मकी विवेचना न कर) तथा आत्मीयोंके साथ सम्बन्ध छोड़-छाड़कर चली आयी हो, किन्तु मैं तुम सबके ध्यानकी निरन्तरताको बनाये रखनेके लिए ही तिरोहित (अन्तर्धान) हो गया था और परोक्षरूपसे

तुम्हारे प्रेमालापोंका श्रवण कर रहा था। मैं तुम्हारा प्रिय हूँ और तुम सब मेरी प्रिय हो। अतः मेरे प्रति किसी प्रकारकी दोष-दृष्टि अथवा दुर्भावना मत रखो ॥ २१ ॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां
दशमस्कन्धे गोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

हे वल्लभाओ! मेरे साथ तुम्हारा जो संयोग है, वह निर्मल, निर्दोष एवं विशुद्ध प्रेममय है। तुमलोगोंने दुर्जय गृह-शृंखलाका छेदनकर मुझसे प्रेम किया है; इसके लिए मैं देवताओंके समान दीर्घायु प्राप्त करके भी उसका प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तुम्हारे साधु-कृत्य एवं सौम्य स्वभाव मुझे उन्नत कर सकते हैं, पर मैं तो तुम्हारे इस प्रेमका सर्वदा ऋणी ही हूँ। (इस प्रकार जो मेरा जैसा भजन करता है, मैं भी उसका वैसा ही भजन करता हूँ—ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने ब्रजगोपियोंके प्रेमके निकट अपनी पराजय स्वीकार कर ली। गोपियोंकी भजन-परिपाटीके सम्मुख वे ऋणी बनकर ही रह गये) ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके बत्तीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका गोपियोंके साथ महारास

श्रीशुक उवाच—

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः।

जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

[श्रीमद्भागवतमें रासलीलाके पाँचों अध्यायोंके (२९-३३) प्रारम्भमें 'श्रीबादरायणिरुवाच' कहकर श्रीरासलीलाके वक्ता श्रीशुकदेव गोस्वामीका परिचय प्रदान किया है, किन्तु प्रस्तुत अध्यायके प्रारम्भमें जो 'श्रीशुक उवाच' कहा, उसका कारण इस प्रकार है—श्रीनारायण अवतार महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने बदरिकाश्रममें रहकर श्रीगोविन्दके चरणारविन्दका ध्यान करते हुए समय व्यतीत किया, इसलिए वे बादरायण नामसे प्रसिद्ध हुए। सर्वश्रेष्ठ तीर्थ इस बदरिका आश्रममें ही निवास करते हुए उन्होंने श्रीभगवान्की अपार करुणास्वरूप परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। इसलिए श्रीशुकदेव बादरायण नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रीशुकदेव अर्थात् श्रीबादरायणिका हृदय स्वाभाविकरूपसे ही श्रीकृष्ण-प्रेममें रत रहता है, वे श्रीगोविन्दलीलाके तत्त्वज्ञानियोंके शिरोमणिके स्वरूपमें सुशोभित हैं। अतएव इस परम रहस्यमयी सर्वलीला-शिरोमणि रासलीलाके वर्णनका अधिकार एक मात्र उन्हींके पास सुरक्षित है।]

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! सौन्दर्य-माधुर्य-निधि श्रीकृष्णके इस प्रकारके मनोरम एवं सुमधुर वचनोंको सुनकर तथा उनके कर-चरणादिके स्पर्श और आलिङ्गनादि प्राप्त करके गोपियाँ पूर्ण-मनोरथ हो गयीं। उनका कृष्ण-विरह-जनित ताप भी दूर हो गया ॥ १ ॥

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः।

स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

तत्पश्चात् रसिक-शिरोमणि भगवान् गोविन्दने यमुनाके तटपर अत्यन्त प्रीतिवश एक-दूसरेके हाथोंकी शृंखलामें आबद्ध होकर अर्थात् एक-दूसरेकी बाँहमें बाँह डाले स्त्री-रत्नों एवं अपने ही समान रसज्ञा गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा आरम्भ कर दी। (नृत्य, गीत-चुम्बन-आलिङ्गनादि रससमूह ही 'रास' है तथा 'तन्मयी' अर्थात् जिस क्रीड़ामें यह रससमूह प्रचुररूपसे वर्तमान रहता है, उसीका नाम रासक्रीड़ा है) ॥ २ ॥

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥

प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।

यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशतसङ्कुलम्।

दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अचिन्त्यशक्तिसे दो-दो गोपियोंके बीचमें अपनी एक-एक मूर्ति प्रकट कर दी एवं उनके बीचमें प्रवेश करते हुए उनके कण्ठदेशमें अपने हाथ रख दिये। सभी गोपियाँ मनमें यही सोचने लगीं कि कृष्ण उसके ही पास हैं। जिस समय गोपियोंके गोलाकार मण्डलमें स्वयं भी मण्डित होकर कृष्ण रासोत्सवमें प्रविष्ट हुए [श्रीकृष्णकी गति या वेग अलातचक्र (किसी जलती हुई लकड़ीको अत्यधिक वेगपूर्वक घुमानेसे बन जाने वाला घेरा अलातचक्र कहलाता है) से और भी अधिक है, क्योंकि उस समय समस्त गोपियोंने श्रीकृष्णको एक ही समयमें मण्डलीके मध्यमें एवं मण्डलस्थ प्रत्येक गोपीके बीचमें दर्शन किया था], उसी समय चित्तमें अति उत्कण्ठा होनेपर पत्नियोंके साथ देवतादि (जो स्वभावसे ही आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं) भी आ गये और आकाश शत-शत विमानोंसे भर गया। (रासलीलामें स्वर्गके पुरुष देवता केवल श्रीकृष्णका ही

दर्शन कर रहे थे, उन्हें गोपियोंका दर्शन नहीं हुआ। योगमायाने गोपियोंको देवताओंकी दृष्टिसे आच्छादित करके रखा था, इसलिए गोपियाँ देवताओंको दृष्टिगोचर नहीं हुईं॥ ३॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।

जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्॥ ४॥

आकाशमें दुन्दुभियाँ अपने आप बज उठीं और फूलोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्वगण अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आनन्दघनमूर्ति श्रीकृष्णके निर्मल यशका गान करने लगे॥ ४॥

वलयाणां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्।

सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले॥ ५॥

अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ रासमण्डलमें गोपियाँ नृत्य करने लगीं, जिससे उन असंख्य गोपियोंके कङ्कन, नूपुर एवं करधनीके छोटे-छोटे घुँघरु एक साथ तुमुल (ऊँची) ध्वनि करने लगे (रासलीला-यज्ञके अङ्गके रूपमें इस मङ्गलमय ध्वनिकी भी सार्थकता है)॥ ५॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः।

मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा॥ ६॥

रासमण्डलमें गोपियोंसे घिरे हुए यशोदानन्दन श्रीकृष्ण इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो असंख्य स्वर्ण-मणियोंके मध्य महामरकत नीलमणि शोभित हो रही हो (गोपियोंके द्वारा रचित रासमण्डलीके केन्द्रस्थलमें भी श्रीकृष्ण राधालिङ्गित विग्रहरूपमें विराजमान हैं। प्रेमभक्ति-भावित चित्तमें ही इस अद्भुत छटाका दर्शन हो सकता है। विषयासक्त बहिर्मुख व्यक्ति इस अप्राकृत आनन्दकी अनुभूति नहीं कर सकते। श्लोकस्थ 'देवकीसुतः' से तात्पर्य है 'यशोदानन्दन'। पद्मपुराणमें उल्लिखित है द्वे नाम्नी नन्दभार्यायाः यशोदा देवकीति च' अर्थात् नन्दकी पत्नीके दो नाम थे—एक यशोदा और दूसरा देवकी)॥ ६॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
 र्भज्यन्मध्येश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
 स्विद्यन्मुख्यः कबररसनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
 गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥७॥

गोपियाँ कलात्मकता तथा शालीनताके साथ बहुत ही आकर्षक ढंगसे पगोंको आगे-पीछे धरतीं, गानकी लय-तालके अनुसार कभी धीमी गतिसे, कभी तीव्र वेगसे और कभी चाकके समान घूम जातीं, विशिष्ट भावोंको अभिव्यक्त करनेके लिए विभिन्न मुद्राएँ बनाते हुए कर सञ्चालित करतीं, कभी सुमधुर मुसकानके साथ भौहोंको विलासपूर्ण नर्तन करातीं। नृत्य करते समय स्वाभाविक कृशताके कारण उनकी कमर ऐसी लचकती मानो ईषत् (थोड़ी) टूट गयी हो। नृत्यकी विविध गतियोंके कारण उनके स्तनोंमें कम्पन होता और वस्त्र इधर-उधर फहराने लगते, दोलायमान कुण्डलोंसे उनके कपोलोंपर विशेष कान्ति दीप्त हो उठती और इस प्रकार नाचनेके परिश्रमसे उन परमकला-निपुणा कृष्ण-कामिनियोंके मुख-कमलपर स्वेद-कण (पसीनेकी बूँदें) कुहरेकी बिन्दुओंके समान प्रकाशित होने लगते। नर्तन करते हुए उनके केशोंकी वेणियाँ और नीवीकी गाँठें शिथिल होने लगतीं। वे नृत्यके साथ-साथ प्राणगोविन्द श्रीकृष्णका गुणगान करती हुई ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो मेघचक्र (बहुत-से श्यामल श्रीकृष्णोंके मेघमण्डल) में बिजलियाँ चमक रही हों॥७॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः।

कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्रीतेनेदमावृतम्॥८॥

परीक्षित्! गोपियाँ रासरसिक नटनागर श्रीकृष्णके प्रति सम्पूर्ण रूपसे अनुरक्त थीं। उनके कण्ठ भी विविध राग-रागिनियोंसे अनुरज्जित थे। भगवान् श्रीकृष्णके अङ्ग-संस्पर्शसे अत्यधिक आनन्दित होकर वे नृत्य करती हुई नाना रागोंको उच्च एवं मधुर स्वरसे गा रही थीं। उनके गानसे सारा ब्रह्माण्ड ही परिव्याप्त एवं

प्रेमसिक्त हो गया था (श्लोकस्थ 'यद्गीतेनेदमावृतम्' पदसे यह भी सूचित होता है कि आज भी सारे विश्वमें भक्तगण गोपियोंका अनुकरण करते हुए कृष्णकी महिमाका गान कर रहे हैं। गोपियों द्वारा गायी हुई राग-रागिनियोंकी संख्या १६००० बतलायी जाती है) ॥ ८ ॥

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः।

उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति।

तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्ददात् ॥ ९ ॥

कोई गोपी परमानन्द-निकेतन रासबिहारी भगवान् मुकुन्दके साथ स्वर-से-स्वर मिलाकर गा रही थी कि उनके साथ स्वर मिलाना छोड़कर वह और भी ऊँचे षडजादि स्वरसे रमण-रस उद्दीपक सङ्गीतका आलाप करने लगी। उसके उत्तमोत्तम एवं विलक्षण आलापसे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण 'साधु, साधु' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। दूसरी एक गोपीने उसी स्वरालापको ध्रुपद अथवा ध्रुव तालमें परिणत करके गाया। श्रीकृष्णने रत्नमाला, पदक आदि प्रदान करके उसका भी बहुत सम्मान किया (इन दोनों गोपियोंको विशाखा एवं ललिता जानना चाहिये। ध्रुपद सङ्गीतमें ललिताजीने विशाखाजीसे भी अधिक पारदर्शिता प्राप्त की है, इसलिए श्रीकृष्णने उनका अधिक सम्मान किया है) ॥ ९ ॥

काचिद् रासपरिश्रान्ता पाशर्वस्थस्य गदाभृतः।

जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ १० ॥

कोई गोपी रास-नृत्य-गीतादिके परिश्रमसे अत्यन्त थक गयी। उसके केशोंकी वेणीमें लगे मल्लिका (बेला) के फूल एवं कलाइयोंके कङ्कन ढीले होकर खिसकने लगे। उसने पासमें ही खड़े भगवान् गदाधर (गदाकी भाँति लठिया या वंशी धारण करनेवाले) श्रीकृष्णके कन्धेपर अपनी बाहुको रखकर उनका आलिङ्गन किया ॥ १० ॥

तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।

चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ ११ ॥

उनमेंसे कोई एक गोपी (श्यामला) अपने कन्धेपर रखे हुए प्राणप्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णकी नीलकमलकी सुगन्ध और चन्दन-चर्चित बाहुका आघ्राण करती हुई अर्थात् उनके भुज-स्पर्श एवं दिव्य-अङ्ग गन्धसे अत्यन्त पुलकित हो गयी और उसने उस बाँहका चुम्बन कर लिया ॥ ११ ॥

कस्याश्चित्राट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ।

गण्डं गण्डे सन्दधत्याः प्रादात्ताम्बूलचर्वितम् ॥ १२ ॥

कोई नाट्यकला-विशारदा गोपी नृत्य कर रही थी। नृत्य-विलासके कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, जिनकी कान्तिसे एवं चन्द्रदेवके प्रतिबिम्बसे उसके कपोल सुशोभित हो रहे थे। उसने (शैव्याने) अपने कपोलको भगवान् श्रीकृष्णके कान्तिमय कपोलसे संयुक्त कर दिया। श्रीकृष्णने उसके मुखमें चर्वित, अधरराग-रञ्जित ताम्बूल प्रदान किया (यह ताम्बूल-प्रदान लीला लोकोत्तर घनीभूत प्रेमविलासकी आनुषङ्गिक अभिव्यक्ति है) ॥ १२ ॥

नृत्यती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला ।

पाश्वर्स्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम् ॥ १३ ॥

कोई गोपी (भद्रा) नाचते-गाते अपने नूपुर एवं करधनीके घुँघरुओंकी झङ्कार कर रही थी। अन्ततः जैसे ही वह क्लान्त हो गयी, उसने बगलमें खड़े श्रीकृष्णके कर-कमलोंको अपने स्तनोंके ऊपर धारण कर लिया ॥ १३ ॥

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ।

गृहीतकण्ठ्यस्तद्वोभ्यां गायन्त्यस्तं विजहिरे ॥ १४ ॥

परीक्षित्! अन्यान्य गोपियाँ लक्ष्मीजीके परम प्रियतम नवकिशोर, रसिकशेखर श्रीकृष्णको अपने प्रिय कान्तके रूपमें प्राप्त करके आनन्दपूर्वक विहार करने लगीं। अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण अपनी

दोनों भुजाओंसे उनका आलिङ्गन किये हुए थे और वे कृष्ण-कीर्तन कर रही थीं ॥ १४ ॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्म-
वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेश-
स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १५ ॥

हे वत्स! रासस्थलीमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ जब गोपियाँ समवेतरूपसे नृत्य कर रही थीं, तब उनके कङ्कन, किङ्किणी एवं नूपुर मधुरिम सङ्गीत-ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे और भौरे ताल-सुरमें स्वर मिलाकर गायककी भूमिका सम्पन्न कर रहे थे। उस समय गोपियोंके कानोंके उत्पल, अलकावलियोंसे अलङ्कृत कपोल, पसीनेकी झिलमिलाती बूंदोंसे मण्डित उनका मुख-मण्डल और वेणियोंसे झड़ते पुष्प एक अपूर्व एवं विलक्षण शोभाको धारण कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे श्रीकृष्णके चरणोंमें पुष्प-वर्षण कर रहे हों। इस रास-सभामें भ्रमर भी गुञ्जार कर रहे थे ॥ १५ ॥

एवं परिष्वङ्गराभिमर्श-
स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥ १६ ॥

बालक जिस प्रकार अपने प्रतिबिम्बके साथ क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार लक्ष्मीके अधिपति रमारमण श्रीकृष्ण गोपियोंका आलिङ्गन करते, कभी हाथोंसे उनका अङ्ग-स्पर्श अथवा कर-मर्दन करते, कभी स्निग्ध दृष्टिसे देखते, कभी उद्दाम विलास करते और कभी उन्मुक्तरूपसे हँसते। इस प्रकार भगवान् ब्रजगोपियोंके (अपनी ही स्वरूपशक्तिके) साथ आनन्दपूर्वक विहार कर रहे थे ॥ १६ ॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः

केशान् दुकुलं कुचपट्टिकां वा।

नाञ्जः प्रतिव्योदुमलं व्रजस्त्रियो

विस्रस्तमालाभरणाः कुरुद्रह ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे कुरुवंशावतंस महाराज परीक्षित् ! आनन्दके महाजलधिस्वरूप कृष्णके अङ्ग-सङ्गजनित परमानन्दसे गोपियोंकी समस्त इन्द्रियों विह्वल एवं अभिभूत हो गयीं। उनके केशोंमें गूँथे हुए फूल झड़ने लगे, केश भी खुलने लगे। वे अपने पहननेके वस्त्र कञ्चुकी, ओढ़नी आदि उत्तरीय वस्त्रोंको यथोचित रीतिसे धारण करनेमें समर्थ नहीं हुई ॥ १७ ॥

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः।

कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १८ ॥

कृष्णकी रास-क्रीड़ाके दर्शनसे स्वर्गमें देवाङ्गनाएँ काम-बाणोंसे पीड़ित होकर मोहित हो गयीं (पुरुष भावसे रासलीलाका दर्शन करना असम्भव है, अतः देवताओंकी दृष्टि योगमाया द्वारा आच्छादित थी) नक्षत्रों एवं तारागणोंके साथ चन्द्रमा भी इस क्रीड़ाको देखकर विस्मित हो गये। (जो चन्द्रदेव गुरु-पत्नी ताराको देखकर कामके प्रभावसे अपनेमें खो गये थे, वे निशानाथ चन्द्रदेव भी कामकी गन्धसे ही इस पवित्र रासलीलामें मदनको विमोहित देखकर परम विस्मयमें आविष्ट हो गये। अपनी गतिको भूलकर वहीं स्थित हो गये) ॥ १८ ॥

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।

रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ १९ ॥

अचिन्त्य परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। तो भी उन्होंने गोपियोंकी जितनी संख्या थी, खेल-ही-खेलमें उतनी ही संख्यामें रूप धारण करके उन गोपियोंके साथ विहार किया (भगवान् श्रीकृष्णने प्रत्येक गोपीके साथ पृथक्-पृथक् कुञ्जमें रासलीला की) ॥ १९ ॥

तासाम् रतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः।

प्रामृजत् करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग पाणिना ॥ २० ॥

हे राजन्! जब गोपियाँ नृत्य, गान एवं माधुर्यमयी क्रीड़ा-विहारसे परिश्रान्त हो गयीं, तब परम कृपामय भगवान् श्रीकृष्णने अपने सुखकारी हस्तकमलोंसे उनके मुखमण्डल पर उदित पसीनेकी बूँदोंको बड़े प्रेमके साथ पोंछा। (भक्तोंके दुःख, कष्ट एवं श्रमको दूर करनेके लिए भगवान् अपने हाथोंसे सेवा करनेमें दुविधाका बोध नहीं करते। पसीना पोंछकर उन्होंने अपनी भक्ताधीनताका प्रकाश किया है, इसीसे वे भक्ताधीन एवं भक्तवत्सल कहे जाते हैं) ॥ २० ॥

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विङ्-

गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन।

मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि

पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २१ ॥

श्रीकृष्णके कर एवं नखोंके स्पर्शसे गोपियोंको परमानन्द हुआ। उन्होंने हिलते हुए सोनेके कुण्डलोंकी आभासे, कुन्तलोंकी कान्तिसे दीप्तिमान कपोलोंके सौन्दर्यसे तथा अमृतसे भी अधिक मधुर मुसकानपूर्ण चितवनसे जगत्पति श्रीकृष्णका सम्मान किया और उनकी परम पवित्र लीलाओंका गान करने लगीं। (वे समस्त स्वाधीनकान्ता ब्रजसुन्दरियाँ अपने प्राणकान्त श्रीकृष्णके द्वारा पहनाये हुए रत्न अलङ्कारोंसे अलङ्कृत होकर अपने-अपने निकुञ्जसे बाहर निकलकर एक स्थानपर एकत्र हुई और रासोत्सवकी समाप्तिसूचक मङ्गलगान करने लगीं) ॥ २१ ॥

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-

घृष्टस्रजः स कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः।

गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः

श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २२ ॥

गजराज जिस प्रकार थकान मिटानेके लिए किनारोंको (अथवा पत्थरके सेतुको) तोड़ता हुआ श्रान्त एवं परिक्लान्त हथिनियोंसे घिरा हुआ जलमें प्रवेशकर क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार लोक एवं वेदकी मर्यादाका अतिक्रमण करते हुए गोपियोंके साथ भगवान्ने जल-विहारके लिए यमुनामें प्रवेश किया। भगवान्के वक्षःस्थलपर गोपियोंके कुच-कुङ्कुमसे रञ्जित एवं उनके अङ्ग-सङ्गसे मर्दित माला सुशोभित हो रही थी। भ्रमर मालाके चारों ओर मण्डराते हुए इस प्रकार भगवान्का अनुगमन कर रहे थे, जिस प्रकार श्रेष्ठ गन्धर्वराज भगवान्की कीर्तिका गान करते हुए उनके पीछे-पीछे चल रहे हों ॥ २२ ॥

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः

प्रेम्णोक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग।

वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो

रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २३ ॥

हे राजन्! प्रेमपूर्ण चितवनसे भगवान्को देखती हुई गोपियाँ हास-परिहासके साथ उनके ऊपर चारों ओरसे जलकी फुहारें बरसाने लगीं। इस कामगन्धविहीन एवं निर्दोष जलविहारको देखकर विमानोंपर विराजमान देवता फूलोंकी वर्षा करते हुए कृष्णकी स्तुति करने लगे। प्रिय तात! आत्माराम होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णने गजराजके समान उन प्रमदा गोपियोंके साथ जलविहार किया ॥ २३ ॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-

प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।

चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो

यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥ २४ ॥

(जल-विहार समाप्त होनेपर वनदेवताके द्वारा लाये हुए तत्कालोचित वस्त्र एवं अलङ्कारोंसे विभूषित होकर भगवान् यमुना-तट पर स्थित सहस्र कुञ्जोंसे युक्त कृष्ण-उपवनमें गये।

इस उपवनमें सर्वत्र जल एवं स्थल पर उगनेवाले सुगन्धित पुष्प खिल रहे थे। इन फूलोंकी सुगन्धको वहन करते हुए मन्द समीर प्रवाहित हो रहा था।) भगवान् गीति-कुशल गन्धर्वपतिकी भौँति कर्ण-रसायन सङ्गीतकी रचना करनेवाले मधुकर-गणों और ब्रज-तरुणियोंसे घिरकर उस उपवनमें इस प्रकार विहार करने लगे, जिस प्रकार मदस्त्रावी (मदोन्मत्त) हाथी प्रमदा हथिनियोंके साथ वनमें विचरण करता है। (अनन्तर श्रीवृन्दादेवी श्रीराधागोविन्दको भोजन-आनन्द-कुटीरमें ले आयीं। सखियों द्वारा आनीत रस, मधु, फलादि विविध सामग्रीको मधुरभाषिणी ललिताजीने परोसा। भोजनके पश्चात् श्रीराधा एवं गोविन्द दोनोंने कर्पूर-सुवासित जल पान किया। अन्तमें ताम्बूल-वीटिकाको विभागकर दोनों आधा-आधा भोजन करने लगे) ॥ २४ ॥

एवं शशाङ्कंशुविराजिता निशाः

स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।

सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः

सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २५ ॥

(गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अत्यन्त अनुरक्त थीं। शरदुकी इस पूर्णिमाकी रात्रिमें समस्त रात्रियाँ पुञ्जीभूत थीं। काव्यमें इस शरत्कालीन ऋतुकी जितनी भी रस-सामग्रीका वर्णन मिलता है, यह रात्रि उन-सबकी आश्रयीभूता थी।) भगवान् श्रीकृष्ण सत्यकाम (जिनका काम विलास प्राकृत नहीं होता, उन्हें सत्यकाम कहते हैं) और सत्यसङ्कल्प हैं। उन्होंने हृदयमें सुरत (प्रेम) सम्बन्धित हाव, भाव (विव्वोक, किलकिञ्चित्) स्थापनकर चन्द्रकिरणोंसे सुशोभित इस रात्रिका स्वकीय चिन्मय विलासके लिए सेवन अर्थात् उपभोग किया। (परीक्षित्! भगवान्के चिन्मय स्वरूपके समान ही भगवान्की रासलीला भी चिन्मयी है। कामभाव एवं कामचेष्टाएँ साक्षात् मन्मथमन्मथ भगवान्के सर्वथा अधीन हैं) ॥ २५ ॥

श्रीराजोवाच—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।

अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २६ ॥

स कथं धर्मसेतुनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता।

प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥ २७ ॥

महाराज परीक्षित्ने पूछा—हे ब्रह्मन्! भगवान् जगदीश्वर श्रीकृष्ण सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामी हैं। उन्होंने धर्मकी पुनर्स्थापना एवं अधर्मके विनाशके लिए स्वांश बलरामके साथ अवतार लिया था। हे भगवन्! भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं ही धर्म-मर्यादाके संरक्षक, वक्ता और स्वयं ही उसका अनुष्ठान (पालन) करनेवाले हैं, तब किस प्रकार उन्होंने नैतिक नियमोंका उल्लंघन करते हुए परदारा (परायी स्त्री) आदिका आलिङ्गन आदि विपरीत आचरण किया? परीक्षित्-सभामें तार्किक, मीमांसक एवं शुष्क-ज्ञानयोगी आदि बैठे थे तथा बादमें सामान्य बुद्धिवाले अनादि बहिर्मुखजनोंके हृदयमें अज्ञानतावश यह प्रश्न उठ सकता है, इसी कारण महाराज परीक्षित्ने सभीकी जिज्ञासा-प्रशमन हेतु यह प्रश्न प्रतिध्वनित किया है। दूसरी बात यह भी है कि परीक्षित्की रक्षाके लिए भगवान्ने उनकी माताके गर्भमें प्रवेश किया है, अतः हो सकता है पुनः उनकी रक्षाके लिए भगवान् स्वयं आविर्भूत हों। उनका दर्शनकर हम कृतकृतार्थ होंगे, इस आशासे अनगिनत व्यक्ति उस सभामें एकत्रित हुए थे ॥ २६-२७ ॥

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।

किमभिप्राय एतत् नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २८ ॥

हे सुव्रत! यदुपति भगवान् कृष्ण पूर्णकाम हैं। तब उनके मनमें ऐसा क्या अभिप्राय था, जिसके कारण उन्होंने ऐसा लोक-निन्दित आचरण किया? इस विषयमें मुझे सन्देह हो रहा है, आप कृपा करके मेरा यह संशय मिटाइये ॥ २८ ॥

श्रीशुक उवाच—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।

तेजीयसां न दोषाय वहेः सर्वभुजो यथा॥ २९॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! अग्नि सर्वभोक्ता है, सब कुछ खा जाता है, फिर भी वह किसी पदार्थके दोषका भागी नहीं होता। उसी प्रकार सामर्थ्यवान तेजस्वी पुरुषोंका इस प्रकारसे धर्म-मर्यादाका साहसपूर्ण उल्लङ्घन एवं स्त्री-सन्दर्शन आदि देखा जाता है, परन्तु वे कभी दोषके योग्य नहीं होते॥ २९॥

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।

विनश्यत्याचरन्मौढ्याद् यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्॥ ३०॥

परीक्षित्! ईश्वरके अतिरिक्त इस प्रकारका शास्त्र-विरुद्ध आचरण किसीको कभी भी मनके द्वारा भी नहीं करना चाहिये। रुद्र भगवान्के अतिरिक्त यदि कोई समुद्रसे उठता हुआ हलाहल विषपान करे, तो अवश्य ही उसका विनाश हो जायेगा। उसी प्रकार अपनी मूर्खतावश यदि कोई ईश्वर-लीलाका अनुकरण करनेका प्रयास भी करे, तो उसका विनाश अनिवार्य है। (गोपियाँ अपनी निर्मल प्रेम-साधनासे उस वेगवान् प्रेमधारामें बह गयी थीं, जिसमें लौकिक धर्मादि विलीन हो जाया करते हैं। उन्होंने साधनाके उस स्तरको प्राप्त कर लिया था, जिसमें लौकिक धर्म, कर्तव्यादि तुच्छ हो जाते हैं। सत्य यही है कि पाप-पुण्यसे परे और वेदातीत श्रीभगवान्को वेदातीत होकर ही प्राप्त किया जा सकता है, जो गोपियोंने किया है। वेदातीतका अभिप्राय वेदोंका उल्लङ्घन नहीं, अपितु वेद-मर्यादाओंसे भी ऊपरके आचरणको प्राप्त करना है)॥ ३०॥

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।

तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत्॥ ३१॥

जिस प्रकार ज्ञान-वैराग्यसे युक्त सामर्थ्यवान् पुरुषोंके वचन सत्य होते हैं, उसीके अनुरूप उनके आचरण भी सत्यस्वरूप होते हैं। अतः जो कार्य उनके वचनोंके अविरुद्ध है अर्थात् जो उनके उपदेशके अनुकूल है, बुद्धिमान् व्यक्ति उन्हें ही अपना आदर्श मानकर उनका पालन करें। (बुद्धिमान् व्यक्ति विशेष विचार करके देखेंगे कि ईश्वर (महत् पुरुषों द्वारा) आचरित कर्म, उनकी उपदेश-वाणीके अनुकूल है या नहीं। यदि उनकी वाणीके अनुकूल है, तब उसका अनुसरण करेंगे, किन्तु जहाँ ईश्वरका (महत् पुरुषोंका) आचरण उनकी उपदेश-वाणीका विरोधी है, तब उसका आचरण वर्जित है। अतः जो विचारपूर्वक आचरण नहीं करते, उनका विनाश अवश्यम्भावी है) ॥ ३१ ॥

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते।

विपर्ययेण वानर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो ॥ ३२ ॥

परीक्षित्! ऐसे सामर्थ्यवान् पुरुष अहङ्कारसे रहित होते हैं। वे लोकसंग्रहके लिए जो धर्मानुष्ठान आदि शुभ कर्म करते हैं, उनके द्वारा वे कोई स्वार्थ नहीं साधा करते। यदि वे धर्म-विपर्यय अर्थात् धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन भी करते हैं, तो उनका किसी प्रकारसे अनर्थ या अशुभ नहीं होता (जो अहङ्कारसे रहित हैं, उन्हें पाप-पुण्यका फल भोगना नहीं पड़ता। इन भावोंके अभावमें उनका चित्त कर्मोंमें लिप्त नहीं होता। तब उनके नरकादि गमनकी क्या बात की जाय? मनुष्यमात्रको ही कर्मसे स्वतन्त्र होना चाहिये) ॥ ३२ ॥

किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम्।

ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३३ ॥

जब ईश्वरके अधीन रहनेवाले निरहङ्कारी (अहंभाव-रहित) जीवोंका पाप-पुण्यसे कोई सम्बन्ध नहीं होता, तो पक्षी, मनुष्य,

देवता एवं समस्त प्राणियोंके नियन्ता भगवान् श्रीकृष्णके विषयमें क्या कहा जा सकता है? भला, उनका पाप-पुण्यसे क्या सम्बन्ध है? ॥ ३३ ॥

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता

योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।

स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-

स्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३४ ॥

जिनके पादपद्मोंकी रजके निरन्तर सेवनसे भक्त परम तृप्त रहते हैं, जिनके साथ योग प्राप्त करके योगी योगशक्तिके आधार पर सम्पूर्ण कर्म-बन्धनोंके फलोंसे मुक्त हो जाते हैं और जिनका तत्त्व प्राप्त करके ज्ञानी बन्धनको प्राप्त नहीं होते, वे भगवान् स्वेच्छासे अप्राकृत श्रीविग्रहको प्रकट करते हैं। परीक्षित्! स्वतन्त्र लीलापरायण स्वयं-भगवान् कृष्णमें कर्म-बन्धनकी कल्पना किस प्रकार की जा सकती है? भगवान्में उत्कट काम, मोह, श्रम आदि अठारह दोष नहीं होते। प्राकृतके अनुकरणमें अप्राकृत मोह, तन्द्राके द्वारा उनकी लीला-परिपाटी प्रकाशित होती है (भगवान्के चरणकमलोंकी कान्ति-परमाणुके एकान्त सेवनके द्वारा अर्थात् निरन्तर ध्यानरूप अनुशीलनके द्वारा भक्त भक्तियोगके प्रभावसे अखिल कर्मबन्धनसे मुक्त होकर स्वच्छन्द विहार करते हैं और अपने दर्शनकारियोंके कर्म-बन्धनका खण्डन करते हैं। निरङ्कुश स्वेच्छासे श्रीलीलाविग्रह धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके अपने स्वरूपमें ही यह समस्त कृष्णात्मा-परस्त्री-शरीर स्वीकृत हैं) ॥ ३४ ॥

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।

योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३५ ॥

गोपियोंके, उनके पतियोंके और समस्त प्राणियोंके हृदयोंमें जो अन्तर्यामीरूपसे विद्यमान हैं, जो सबकी बुद्धि आदिके साक्षी हैं,

उन्हीं श्रीकृष्णने ब्रजवधुओंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए अपने चिन्मय कलेवरको प्रकट किया है। रासलीला भगवान् श्रीकृष्णका अपने साथ अपना ही लीलाविलास है ॥ ३५ ॥

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः ।

भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके प्रति अनुग्रह करनेके लिए ही स्वयंको मनुष्यरूपमें प्रकट करते हैं। उन्होंने ही मणि-मन्त्र महौषधिकी भाँति मधुररसमयी गोलोकगत रासलीलाको प्रपञ्चमें प्रकट किया है, जिससे आकृष्ट होकर देहधारी जीवमात्र ही भगवत् सेवापरायण हो जाएँ ॥ ३६ ॥

नासूयन् खलु कृष्णाय

मोहितास्तस्य मायया ।

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान्

स्वान् स्वान् दारान् ब्रजौकसः ॥ ३७ ॥

कृष्णकी अघटन-घटन-पटीयसी मायासे मोहित होकर ब्रजगोपियोंके पति, पिता आदि आत्मीयोंने अपनी-अपनी पत्नियों, कन्याओंको अपने-अपने पास ही स्थित माना। श्रीकृष्णके प्रति उनका किञ्चित् मात्र भी असूया-दोष-दृष्टिका भाव न था (गोपगण श्रीकृष्णकान्ताओंके समान गोपीमूर्तियोंके साथ-अपनी अपनी पत्नियोंके साथ ही भोजन, पानादि करते थे, इसलिए श्रीकृष्णके विषयमें दोष-दर्शनका उन्हें अवकाश नहीं था) ॥ ३७ ॥

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ।

अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥ ३८ ॥

ब्रह्माकी रात्रिके बराबर वह रात्रि भी बीत गयी। ब्राह्ममुहूर्त्त उपस्थित होनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसियोंको घर जानेका आदेश दिया। प्रियतमका विरह असहनीय होनेपर भी गोपियाँ अनिच्छाके साथ अपने-अपने घर चली गयीं ॥ ३८ ॥

विक्रीडितं ब्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
 श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
 भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
 हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां दशमस्कन्धे
 रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

परीक्षित्! जो धैर्यवान् व्यक्ति ब्रजयुवतियोंके साथ श्रीकृष्णकी रासलीलाको श्रद्धापूर्वक सुनकर निरन्तर उसका गान अथवा श्रवण करता रहता है, वह शीघ्र ही भगवान्की पराभक्तिको प्राप्त करके हृद्रोग कामसे अविलम्ब मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

[द्रष्टव्य है कि जिस लीलाकथाके ज्ञान-विज्ञानके प्रदीप्त भास्कर श्रीवेदव्यास जैसे रचयिता, आजन्म वैरागी, ब्रह्मानन्द निमग्न हृदय, भक्तयोगी परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवजी जैसे वक्ता, विप्र-अभिषप्त अनुत्तम-चित्त आसन्न-मृत्यु भगवत्-सेवा-अभिलाषी परीक्षित् एवं समस्त लोकोंसे आये हुए अनगिनत राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि जैसे श्रोतागण विद्यमान हैं—ऐसे परिवेशमें परिवेशित अप्राकृत परमतत्त्व रसिकेन्द्र-चूड़ामणि, आनन्द एवं प्रेमके अधिनायक भगवान् श्रीकृष्णकी श्रीरासलीला प्रेमी एवं रसिक भक्तोंके अनुसन्धान एवं ग्रहणका विषय है।

विभिन्न पुराणोंमें शृङ्गाररसमयी इस लीलाकथाके श्रवण एवं कीर्तनके निम्नलिखित फल बतलाये हैं—

(१) यह लीला सर्वविस्मरिणी श्रीकृष्ण-विषयिणी प्रेमाभक्तिका एक उज्ज्वल उदाहरण है।

(२) इसके चिन्तनसे समस्त संशय दूरीभूत हो जाते हैं।

(३) हृदय युगल-उपासनाके लिए श्रद्धासे परिपूर्ण हो जाता है।

(४) कोटि-कोटि कर्णयुक्त होकर उस लीलाकथाके श्रवणकी अभिलाषा चित्तमें उदित हो उठती है।

(५) वेदरूप विशाल ज्ञान-भण्डारका द्वार उन्मुक्त हो जाता है।

(६) पुराणरूपी किरण मञ्जुषाका विस्तार प्राप्त होता है।

(७) जीव आधि-व्याधि आदि दुःखमय संसार-चक्रसे मुक्त हो जाता है।

(८) यह ब्रह्मज्ञानरूप अमोघ अस्त्रका सन्धान है।

(९) आनन्दघन भगवान् श्रीकृष्णने जगत्के कल्याणके लिए एवं विशेषकर अपने प्रेमी रसिक भक्तजनोंके परम आनन्द वर्द्धनके लिए स्वयं आत्माराम होकर भी इस धराधाममें इस लीलाको प्रकटित किया है। अतः इससे भक्तोंका कल्याण एवं आनन्द वर्द्धन होता है।

(१०) इस लीलामें प्रवृत्तिके आवरणमें निवृत्तिका अद्भुत अलौकिक नन्दनकानन सुशोभित है। अतः भक्त निवृत्तिपरायण आनन्दको प्राप्त होते हैं।

(११) उसमें भगवत्-प्रेमकी परमास्वादनीय अमृत-धारा प्रवाहित हो रही है। इसे श्रवणकर भक्त अभयत्व, अशोकत्व एवं अमृतत्वको प्राप्त कर लेते हैं।

(१२) इस लीलाके पुनः-पुनः श्रवणसे धीरत्वकी प्राप्ति एवं हृदयकी निष्ठुर काम-व्याधि चिरकालके लिए समाप्त हो जाती है। यह परम पवित्र कथा कामहत जीवोंके लिए कामजय करनेका सिद्धमन्त्र है।

(१३) इस रासलीलाके कीर्तन एवं श्रवणसे जीव अप्राकृत कामदेव मदनमोहनके विलाससे आकर्षित होकर परमानन्दमें निमग्न होनेका सौभाग्य प्राप्त करता है।

संक्षेपतः श्रीरासलीलाकथाके उत्स (उत्पत्ति-स्थल) से जिस भक्ति सुरधुनी (गङ्गा) का प्रवाह होता है, उसकी पुण्य पावन धारामें जीवका समस्त कलिकल्मष चिरकालके लिए विधौत हो जाता है। भक्तके परम विशुद्ध अन्तःकरणमें भक्ति लहरीका स्पर्श प्राप्त होनेपर उसका हृदय अनन्त अपार लीला विलास

माधुरीसे परिपूर्ण हो जाता है। वह उस आनन्दमें विभोर होकर श्रीराधामाधव माधुरीके आस्वादनसे, सेवानन्दसे नित्य तृप्त हो जाता है।] ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके तैंतीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चतुर्स्त्रिशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा सुदर्शन और शङ्खचूड़का उद्धार

श्रीशुक उवाच—

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः।

अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! एक समय देवयात्रा अर्थात् शिव-रात्रिके उपलक्ष्यमें नन्दादि गोप बड़े आनन्द एवं कौतूहलके साथ भगवान् शिवकी पूजाके लिए वृषभचालित शकटोंपर सवार होकर अम्बिकावनमें गये ॥ १ ॥

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्।

आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीञ्च नृपतेऽम्बिकाम् ॥ २ ॥

हे राजन्! उन सबने वहाँ सरस्वती नदीमें स्नान किया और बड़े भक्तिभावसे सदाशिव (विष्णु-तत्त्व गोपेश्वर शिव) एवं अम्बिका देवीकी विविध सामग्रियों द्वारा आराधना की ॥ २ ॥

गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः।

ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् गोपोंने 'देवाधिदेव महादेव हमपर प्रसन्न हों' इस प्रकारकी कामना रखकर आदरके साथ ब्राह्मणोंको गौएँ, सुवर्ण, वस्त्र, मधु एवं मधुमिश्रित स्वादिष्ट पकवान प्रदान किये ॥ ३ ॥

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य यतव्रताः।

रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥

इस अवसरपर महाभाग्यवान् नन्द, सुनन्द आदि गोपोंने उपवास कर रखा था। इसलिए रात्रिको मात्र जल पीकर वे सब वही सरस्वती नदीके किनारे सो गये ॥ ४ ॥

कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः ।

यदृच्छयागतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥

उस अम्बिकावनमें एक बड़ा भारी अजगर रहता था। वह भूखसे अत्यधिक व्याकुल हो रहा था। उस रात दैववश वह सबसे अलक्षित होकर उस वनमें उधर ही आ गया और निद्रामग्न नन्द महाराजको निगलने लगा ॥ ५ ॥

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ।

सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥

उस विशाल अजगरके द्वारा पकड़ लिये जानेपर (श्रीकृष्ण तुमलोगोंका समस्त विपदाओंसे उद्धार करेंगे—गर्गाचार्यजीके इस वचनका स्मरणकर) नन्द महाराज चिल्लाने लगे—“हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे पुत्र! दौड़ो, दौड़ो! मुझे यह भयङ्कर सर्प निगल रहा है। मैं तुम्हारे शरणागत हूँ। मुझे इस सङ्कटसे बचाओ ॥” ६ ॥

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ।

ग्रस्तञ्च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥

नन्दजीकी चीत्कार ध्वनिको सुनकर सारे गोप शीघ्र ही उठ खड़े हुए और उन्हें अजगरसे ग्रस्त देखा। यह देखकर वे सब बड़े व्याकुल हो गये और उन्होंने जलती हुई लकड़ियोंसे उस अजगरको (पूँछकी ओरसे) मारना आरम्भ कर दिया (शीत-निवारणके लिए लकड़ियाँ पहलेसे जलाकर रखी गयी थीं) ॥ ७ ॥

अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत् तमुरङ्गमः ।

तमस्पृशत् पदाभ्येत्य भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ८ ॥

अधजली लकड़ियों द्वारा आहत किये जानेपर भी अजगरने नन्द महाराजको छोड़ा नहीं। तब भक्तवत्सल यदुपति भगवान् श्रीकृष्ण उनके समीप गये एवं अपने चरणोंसे उस अजगरका स्पर्श किया ॥ ८ ॥

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ।

भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधराचितम् ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके श्रीचरणोंका स्पर्श होते ही अजगरके सारे अशुभ नष्ट हो गये और वह उसी क्षण सर्प-देह छोड़कर विद्याधरोंके द्वारा पूजित परम रूपवान् शरीरके रूपमें प्रकट हो गया ॥ ९ ॥

तमपृच्छद्दृषीकेशः प्रणतं समवस्थितम् ।

दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥

उस पुरुषके गलेमें स्वर्ण-माला थी और उसके शरीरसे उज्ज्वल ज्योति प्रकट हो रही थी। वह भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख हाथ जोड़कर प्रणत भावसे खड़ा हो गया। तब भगवान् दृषीकेशने उससे पूछा ॥ १० ॥

को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ।

कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने पूछा—देखनेमें बड़े अद्भुत परम सौन्दर्यवान् आप कौन हैं? किस कारणसे आप इच्छा न रहनेपर भी इस निन्दनीय सर्पगतिको प्राप्त हुए हैं? ॥ ११ ॥

सर्प उवाच—

अहं विद्याधरः कश्चित् सुदर्शन इति श्रुतः ।

श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरन् दिशः ॥ १२ ॥

ऋषीन् विरूपानङ्गिरसः प्राहसे रूपदर्पितः ।

तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥ १३ ॥

तब अजगरके शरीरसे निकले दिव्य पुरुषने कहा—मैं सुदर्शन नामसे प्रसिद्ध एक विद्याधर हूँ। मैं अतिशय रूपवान् और प्रचुर सम्पत्तिवान् था। एक बार मैं विमानमें चढ़कर दिग्दिगन्तमें भ्रमण कर रहा था कि मैंने अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न कुरूप ऋषियोंको देखा। अपने सौन्दर्यसे मदोन्मत्त होकर मैं उनका उपहास करने

लगा। मेरे इस उपहासरूप अपराधके फलस्वरूप उन ऋषियोंने मुझे सर्पयोनि-प्राप्तिका शाप दे दिया॥ १२-१३॥

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः।

यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः॥ १४॥

अब देख रहा हूँ कि वे ऋषि वस्तुतः बड़े कृपालु थे। मुझपर अनुग्रह करनेके लिए ही उन्होंने इस प्रकारका शाप मुझे प्रदान किया, जिसके कारण आज तीनों लोकोंके गुरु आपने अपने श्रीचरणोंके स्पर्शसे मुझे पाप-मुक्त किया है॥ १४॥

तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम्।

आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन्॥ १५॥

हे दुःखविनाशन! जो इस संसारसे भयभीत होकर आपकी शरण ग्रहण करते हैं, आप उन्हें सम्पूर्ण भयोंसे मुक्त कर देते हैं। हे प्रभो! आपके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके मैं शापसे मुक्त हो गया हूँ। अब अपने लोकमें जानेके लिए आपसे अनुमतिकी प्रार्थना करता हूँ॥ १५॥

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते।

अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर॥ १६॥

हे महायोगेश्वर (अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न) महापुरुष! हे सत्पते! (हे भक्तोंके स्वामी)! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे इन्द्रादि समस्त लोकाधिपतियोंके ईश्वर! हे परमात्मन्! आप मुझे अनुमति प्रदान करें॥ १६॥

ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युतदर्शनात्।

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतृनात्मानमेव च।

सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते॥ १७॥

हे अच्युत! मैं आपके दर्शन करके ब्रह्मशापसे अविलम्ब ही मुक्त हो गया हूँ। मनुष्य जिनके नामके उच्चारणसे स्वयं पवित्र होते हैं और समस्त श्रोताओंको पवित्र करते हैं—ऐसे आपके

श्रीपदारविन्दोंका स्पर्श प्राप्त करके आज मैं जो पवित्र हुआ हूँ—इस विषयमें कहना ही क्या है!॥ १७॥

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च।

सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रात्रन्दश्च मोचितः॥ १८॥

हे राजन्! इस प्रकार परम सुन्दर सुदर्शन नामक इस विद्याधरने भगवान् श्रीकृष्णकी वन्दना की, तत्पश्चात् उनकी परिक्रमा करके उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया, उनसे अनुमति ली और स्वर्गकी ओर चला गया। महाराज नन्द भी श्रीकृष्णके द्वारा इस सङ्कटसे मुक्त हो गये॥ १८॥

निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं

ब्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः।

समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्ब्रजं

नृपाययुस्तत् कथयन्त आदृताः॥ १९॥

हे राजन्! ब्रजवासी गोप श्रीकृष्णके इस अद्भुत प्रभावको देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने उसी अम्बिकावनमें 'त्रिरात्रवास' आदि नियमोंका पालन करते हुए व्रत समाप्त किया। इसके बाद वे सभी आदरके साथ श्रीकृष्णकी महिमाका गान करते हुए पुनः ब्रजमें लौट आये॥ १९॥

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः।

विजहतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ ब्रजयोषिताम्॥ २०॥

हे राजन्! एक बार अद्भुत विक्रमशाली भगवान् श्रीगोविन्द एवं बलराम होलीकी पूर्णिमा तिथिमें रात्रिकालमें ब्रजसुन्दरियोंके साथ वनविहार कर रहे थे॥ २०॥

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः।

स्वलङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरौ॥ २१॥

उस समय श्रीकृष्ण एवं श्रीबलराम दोनों अति अपूर्व सौन्दर्यसे सुशोभित हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने पीताम्बर और श्रीबलरामजीने

नीलाम्बर धारण कर रखा था। दोनोंके परम रमणीय श्रीविग्रह चन्दन और सुगन्धित अङ्गरागसे चर्चित तथा विभिन्न अलङ्कारोंसे विभूषित थे। कण्ठ सुवासित पुष्पहारोंसे सुसज्जित थे। रसिकशिरोमणि श्रीगोविन्द एवं अद्भुतविक्रम श्रीबलरामजीकी प्रेयसियाँ सुमधुर स्वरसे लालित्यमय सङ्गीतके द्वारा (होली-लीलाकी प्रचलित रीतिके अनुसार) गुणगान करते हुए उन दोनोंका आनन्दवर्द्धन करने लगीं। कृष्ण एवं बलराम दोनोंका ही प्रेयसी-वर्ग पृथक्-पृथक् विभाजित था, जिनसे परिवेष्टित होकर कृष्ण एवं रामने रङ्ग-क्रीड़ा क्षेत्रमें लीला-विलास करना प्रारम्भ कर दिया ॥ २१ ॥

निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम्।

मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥

पूर्णमाके प्रदोषकालमें असंख्य तारोंसे परिवेष्टित पूर्णचन्द्र अपनी अपूर्व शोभासे युक्त होकर आकाशमण्डलमें उदीयमान हो रहे थे। मधुलोभी भ्रमर-कुल मल्लिकाके कुसुमोंकी सुगन्धसे मतवाला हो रहा था। कुमुदिनीकी सुगन्धसे युक्त मन्द-मन्द समीर प्रवाहित हो रहा था। इस प्रकार श्रीवृन्दावनके कुञ्ज-निकुञ्जमें एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य शोभा प्रस्फुटित हो रही थी। श्रीकृष्ण एवं बलरामजी दोनोंने ही इस कालकी प्रशंसा करते हुए इसका सम्मान किया ॥ २२ ॥

जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम्।

तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥ २३ ॥

इसके बाद कृष्ण एवं बलराम दोनों एक समयमें ही एक साथ स्वरोंकी मूर्च्छना अर्थात् आरोहण एवं अवरोहणकी युगपत् (एक ही साथ) सृष्टि करते हुए इस प्रकार गान करने लगे, जिसकी कल्पना करना भी असम्भव है। उनका गान सम्पूर्ण प्राणियोंके लिए हृत्-कर्ण-रसायन एवं मङ्गल-विधायक था ॥ २३ ॥

गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्वृप।

स्रंसद्बकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥

हे राजन्! श्रीबलराम और श्रीकृष्णकी प्रेयसियाँ उक्त सङ्गीतको सुनकर मूर्च्छित हो गयीं। उनके शरीरसे जो वस्त्र खिसक गये थे एवं केशपाशसे जो पुष्पमालाएँ गिर गयी थीं—वे इस विषयमें कुछ जान ही नहीं पायीं॥ २४॥

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः सम्प्रमत्तवत्।

शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात्॥ २५॥

श्रीकृष्ण एवं बलरामजी स्वाधीन भावसे क्रीड़ा-विहार कर रहे थे और उन्मत्तकी भाँति गान कर रहे थे। उसी अवसरपर शङ्खचूड नामका एक प्रसिद्ध यक्ष असत् अभिप्रायसे वहाँ उपस्थित हो गया। वह कुबेरका अनुचर था॥ २५॥

तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम्।

क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः॥ २६॥

हे राजन्! बलरामजी एवं श्रीकृष्ण दोनों उसे देख ही रहे थे कि उनके सम्मुख ही शङ्खचूड़ निःशङ्क होकर उनके द्वारा संरक्षित गोपाङ्गनाओंको (लाठी दिखाकर डराते हुए) उत्तर दिशाकी ओर ले जाने लगा। श्रीकृष्ण और बलरामजी जिनके स्वामी हैं, वे गोपियाँ उस समय उन्हें पुकार-पुकारकर रोने लगीं॥ २६॥

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम्।

यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम्॥ २७॥

दोनों भाइयोंने देखा कि उनकी प्रेयसियाँ “हे कृष्ण! हे राम!” कहती हुई विलाप कर रही हैं, तो वे उनके पीछे इस प्रकारसे दौड़ने लगे, जिस प्रकार गोरक्षक दस्यु द्वारा अपहृत गौओंको मुक्त करानेके लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ता है॥ २७॥

मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ।

आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम्॥ २८॥

तत्पश्चात् ‘डरो मत, डरो मत’ इस प्रकार अभयवाणी कहते हुए दोनों भाई शाल-वृक्षोंको हाथमें लेकर अति वेगसे दौड़ते हुए पल भरमें ही उस अधम यक्षके पास पहुँच गये॥ २८॥

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन्।

विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥

साक्षात् काल एवं काल प्रेरित मृत्युके समान दोनों भाइयोंको समीपस्थ यमके समान देखकर शङ्खचूड़ भयभीत हो गया। वह मूर्ख स्त्रियोंको वहीं छोड़कर अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए भागा ॥ २९ ॥

तमन्वधावद्गोविन्दो यत्र यत्र स धावति।

जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥

बलदेवजी तो स्त्रियोंकी रक्षाके लिए वहीं रह गये, आगे नहीं बढ़े, परन्तु जहाँ-जहाँ शङ्खचूड़ भागा, श्रीकृष्णने उसके सिरकी मणिको निकालनेकी उत्सुकतासे वहाँ-वहाँ उसका पीछा किया ॥ ३० ॥

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः।

जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥

हे राजन्! थोड़ी ही दूर जानेपर श्रीकृष्णने उसे पकड़ लिया और उस असुरके मस्तकपर मुष्टिकासे प्रहार किया तथा उसके चूड़ेमें स्थित मणिके साथ उसके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ॥ ३१ ॥

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम्।

अग्रजायाददात् प्रीत्या पश्यन्तीनाञ्च योषिताम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे शङ्खचूडवधो नाम

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण शङ्खचूड़का वध करके उस दीप्तिशाली मणिको लेकर लौट आये और गोपियोंके सामने ही प्रसन्नतापूर्वक इस मणिको बड़े भाई बलरामजीको प्रदान कर दिया ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौतीसवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

युगलगीत

श्रीशुक उवाच—

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्भुतचेतसः ।

कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण दिनमें गोचारणके लिए प्रतिदिन वनमें चले जाते थे। गोपियोंका चित्त भी श्रीकृष्णका अनुगमन करता हुआ उनके साथ वनमें ही चला जाता था। वे कृष्ण-चिन्तनमें डूबी हुई कृष्णलीलाका गान करतीं और बड़े कष्टसे दिन बिताया करतीं ॥ १ ॥

श्रीगोप्य ऊचुः—

वामबाहुकृतवामकपोलो

वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।

कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं

गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥

व्योमयानवनिताः सह सिद्धै-

र्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।

काममार्गणसमर्पितचित्ताः

कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥

गोपियाँ दूसरी गोपियोंसे कहतीं—अरी सखियो ! मुकुन्द श्रीकृष्ण जिस समय अपनी बायाँ भुजाके मूलपर वाम कपोलको स्थापितकर अपनी भौंहोंको नचाते हुए एवं अपनी कोमल अँगुलियोंको छिद्रोंपर रोक-रोककर अपने अधरोंसे स्पर्श कराकर जब वंशी बजाते हैं, तब गगन-विहारिणी सिद्ध वनिताएँ अपने-अपने देवपतियोंके साथ होनेपर भी पहले तो वे उस वंशीकी ध्वनि सुनकर चकित और विस्मित हो जाती हैं, बादमें उनका चित्त

ऐसा वशीभूत हो जाता है कि उन्हें अपने (कटि-प्रदेशके) वस्त्रोंकी गाँठें खुल जानेकी भी सुधि नहीं रहती और न ही अपने केश-बन्धन शिथिल होने की। पतियोंके पास रहनेसे उन्हें लज्जा तो आती है, पर काम-बाणोंसे बिंधी हुई-सी वे मोहित हो पड़ती हैं। वे यही सोचती रहती हैं कि त्रिभङ्ग-ललित श्रीकृष्णका विरह हम किस प्रकार सहन कर पायेंगी? ॥ २-३ ॥

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं
 हारहास उरसि स्थिरविद्युत्।
 नन्दसूनुरयमार्त्तजनानां
 नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥
 वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो
 वेणुवाद्यहतचेतस आरात्।
 दन्तदष्टकवला धृतकर्णा
 निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥

हे अबलाओ! एक और आश्चर्यकी बात सुनो! श्रीकृष्णका शुभ्र हास्य समुज्ज्वल मुक्ताहारके समान दीप्त प्रतीत होता है और उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सकी विशिष्ट सुनहरी रेखा श्याम मेघपर स्थिर विद्युत्के समान जान पड़ती है। जिस समय ये नन्दजीके पुत्र विरहिणियोंको सुख प्रदान करनेके लिए वंशी बजाते हैं, तब उस भुवनविमोहनकारी वंशीनादसे आकर्षित होकर व्रजके बैल, गाय, हिरण एवं अन्यान्य पशु झण्ड-के-झण्ड दौड़कर उनके समीप आ जाते हैं और वंशीकी स्वरलहरियोंसे ऐसे मोहित हो जाते हैं कि दाँतोंसे दबाये हुए घासके कौरको केवल मुखमें ही रखे रहते हैं; न निगल पाते हैं और न उगल पाते हैं। सखी, ये पशु कानोंको ऊँचा करके इस प्रकार स्थिर खड़े हो जाते हैं कि मानो सो गये हों अथवा किसी अद्भुत चित्रकारने आकाशपटलमें चित्र अङ्कित कर दिया हो ॥ ४-५ ॥

बर्हिणस्तबकधातुपलाशै-
 बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
 कर्हिचित् सबल आलि स गोपै-
 गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥
 तर्हि भग्नगतयः सरितो वै
 तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
 स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः
 प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

अरी भट्ट! जिस समय श्यामसुन्दर अपनी घुँघराली अलकावलियोंमें फूलोंके गुच्छे खोंस लेते हैं, सिरपर मयूरपङ्कको मुकुटके रूपमें धारण करते हैं, गैरिकादि रङ्ग-बिरङ्गी धातुओं एवं नवीन पल्लवोंसे अपने अङ्गोंको सुसज्जितकर मल्लवेशका अनुकरण करते हुए जिस स्थानपर बलरामजी तथा ग्वालबालोंके साथ वंशीके नादसे 'हिही', यमुने, कालिन्दी, गङ्गे, सरस्वती आदि नामोंसे गायोंको पुकारते हैं, तब वंशीकी ध्वनि सुनकर गायोंके आह्वानको अपने लिए समझकर अचेतन नदियोंकी गति भी स्तम्भित हो जाती है। ये नदियाँ चाहती हैं कि श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंकी रज अनुकूल पवन द्वारा उड़कर हमें प्राप्त हो जाये, परन्तु वे भी हमारे ही समान अल्पपुण्यवती (मन्दभागिनी) हैं, क्योंकि उन्हें अपना वाञ्छित श्रीकृष्णका पादपद्मराग पुनः-पुनः प्राप्त नहीं हो पाता। प्रेमसे सराबोर होनेके कारण इन नदियोंकी तरङ्गरूपी भुजाएँ कम्पित तो होती हैं, किन्तु इनकी जलराशि अतिशय आनन्दके कारण ज्यों-की-त्यों निश्चल रहती है अर्थात् जड़ता धारण किये रहती है ॥ ६-७ ॥

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य
 आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
 वनचरो गिरितटेषु चरन्ती-
 र्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
 व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
 प्रणतभारविटपा मधुधाराः
 प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म ॥ ९ ॥
 दर्शनीयतिलको वनमाला-
 दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
 अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट-
 माद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः ॥ १० ॥
 सरसि सारसहंसविहङ्गा-
 श्चारुगीतहतचेतस एत्य ।
 हरिमुपासत ते यतचित्ता
 हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ ११ ॥

प्रिय सखीगण! जिस प्रकार देवता आदिपुरुष नारायणकी शक्तियों एवं विक्रमका निरन्तर वर्णन करते हैं, उसी प्रकार कृष्णभक्त गोपगण भगवान् श्रीकृष्णकी अचिन्त्य, अनन्त एवं अचल श्री-सम्पत्ति एवं शक्ति आदिका अनुक्षण निरूपण करते हैं। अरी भट्ट! वनवासी वेशमें माधुर्यघनतम श्रीकृष्ण जब गिरिराज गोवर्द्धनकी तराईमें विहार करते हुए वंशीके सुमधुर स्वरसे गौओंको धवली, श्यामली, पिङ्गला, अरुणी, चित्रिता, मल्लिका, मालती आदि पृथक्-पृथक् नाम ले-लेकर पुकारते हैं, तब वनके वृक्ष तो पल्लव-फल-फूलोंसे भरकर आत्मस्थित हो जाते हैं और भारवाही शाखाओंसे युक्त वनलताएँ धरतीकी ओर झुक जाती हैं, मानो उन्हें दण्डवत्-प्रणाम कर रही हों। यह देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्ष एवं लताएँ अपने भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजमान विष्णु-तत्त्वको सूचित करते हुए प्रेमसे पुलकित हो रहे हैं, उनका रोम-रोम प्रसन्नता व्यक्त कर रहा है और वे अश्रुधाराओंके समान मधुधाराओंका वर्षण करके श्रीकृष्णका अभिषेक कर रहे हैं। हे सखियो! सुरम्य पुरुषोंमें दर्शनीय तिलक

अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हमारे मनमोहन श्रीकृष्णके साँवले ललाटपर केसरका तिलक कितना सुन्दर लगता है? जब वे घुटनों तक लटकी हुई वनमाला पहनते हैं, तब उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध एवं मधुर मधुपानसे मतवाले भ्रमर मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुञ्जार करते हैं, तब उन ब्राह्मणोंके कलगानको (मिलित झंकारको) बड़े आदरके साथ स्वीकार करके श्रीकृष्ण उन्हींके स्वरमें स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी बजाने लगते हैं। सखी, यह कैसा आश्चर्य है कि उस सुमधुर वंशीकी मुनिजनमोहिनी ध्वनिसे आकृष्ट होकर सरोवरमें अवस्थित सारस, हंस आदि पक्षियोंका झुण्ड उनके समीप चला आता है और वे जलचर उनके ही समीप बैठकर, चित्तको एकाग्र करके, मौन धारण करके एवं आँखोंको निमीलित (आधी मूँदी) करके उनकी आराधना करने लगते हैं, मानो वे जलचर नहीं, परमहंस मुनि ही हों॥ ८-११॥

सहबलः स्रगवतंसविलासः
 सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः।
 हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण
 जातहर्ष उपरम्भति विश्वम्॥ १२॥
 महदतिक्रमणशङ्कितचेता
 मन्दमन्दमनु गर्जति मेघः।
 सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभि-
 श्छायया च विदधत् प्रतपत्रम्॥ १३॥

हे व्रज-ललनाओ! श्रीकृष्ण जब पुष्पोंसे बने कर्णाभूषणोंसे (कुण्डलोंसे) कानोंको विभूषित कर बलदेवके साथ गिरिराज पर्वतकी तलहटी पर खड़े होकर प्रसन्नचित्तसे अपनी वंशीकी मोहिनी ध्वनिसे विश्वको आनन्दसे परिपूर्ण करते हैं, तब मेघ-मालाएँ इस आशङ्कासे अग्रसर नहीं होतीं कि कहीं श्रीकृष्णका अतिक्रमण न हो जाय अथवा सुर कहीं वंशीध्वनिके विपरीत न हो जाय। प्रिय सखी! आकाश भी उच्च स्वरसे गर्जना नहीं

करता, अपितु वहीं स्थिर होकर जलदगम्भीर वेणु-रवसे ध्वनित मल्हार रागका अनुसरण करता हुआ अपनी मन्द-मन्द गर्जनासे जगत्के तापको हरता है। वह श्रीकृष्णको अपना सुहृद्-सखा (परम-बान्धव) मानकर धूपसे उनकी रक्षाके लिए छत्रकी रचना करके उनके प्रीति-विधान हेतु छाया करता है और कभी तो नन्हे-नन्हे हिमकणोंके रूपमें ऐसे बरसता है, मानो पुष्प-वर्षण कर रहा हो ॥ १२-१३ ॥

विविधगोपचरणेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥ १४ ॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः
शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।
कवय आनतकन्धरचित्ताः
कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥

(अनन्तर अपराह्णमें कुछ गोपियाँ किसी बहानेसे श्रीब्रजेश्वरीके घरमें उपस्थित हुई और कहने लगीं—) हे यशोदे! गोपगणोचित गोचारण (एवं गौओंका दोहन, वशीकरण) आदि नानाविध कलाओंमें निपुण तुम्हारा लाड़ला जब बिम्बफलके समान अपने लाल-लाल अधरोंपर वंशी धारणकर बिना किसीसे शिक्षण प्राप्त किये ही, स्वयं ही उच्च-मध्यम-निम्न आरोह-अवरोह आदि आलापोंसे सङ्गीतकी ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी विविध राग-रागिनियाँ बजाते हुए, कई शैलियोंका आविष्कार कर लेता है, तब इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, चतुःसन, रुद्र सहित कात्यायनी, नारद आदि मन्द-मध्यम-तार भेदसे अपूर्व निपुणताके साथ बजाये गये इसके स्वरालापोंको सुनते तो हैं, परन्तु पण्डित होनेपर भी उनका सार नहीं निकाल पाते अर्थात् वंशीके राग, ताल और स्वरूप आदिका निश्चय करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। वे मुग्ध-से होकर अपनी

ग्रीवा एवं चित्तको झुकाकर श्रवणमें ही तन्मय हो जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-
 नीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ।
 व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं
 वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥
 व्रजति तेन वयं सविलास-
 वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
 कुजगतिं गमिता न विदामः
 कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥ १७ ॥

अरी सखी! श्रीकृष्णके रमणीय पदकमल ध्वज, वज्र, अङ्कुश एवं पद्म आदि विचित्र तथा सुन्दर चिन्होंसे युक्त हैं। जब व्रजभूमि गौओंके खुरोंके खुदनेसे पीड़ित होने लगती है, तब उसकी वेदनाको शान्त करनेके लिए वे वेणुध्वनि करते हुए गजराज-सी मन्थर एवं मदमस्त गतिसे चलते हैं। अरी वीर! उस समय उनकी वह वंशीध्वनि, वह मदमस्त गति, वह विलासभरी चितवन हमारे चित्तमें कामवेगको और बढ़ा देती है। हम उस समय मोहित-सी होकर वृक्षके समान जड़-दशाको प्राप्त हो जाती हैं। हमें यह आभास तक भी नहीं होता कि हमारे केशबन्धन खुल रहे हैं और परिधेय वसन स्खलित हो रहे हैं ॥ १६-१७ ॥

मणिधरः क्वचिदागणयन् गा
 मालया दयितगन्धतुलस्याः ।
 प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे
 प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥
 क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः
 कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।
 गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो
 गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥

अरी भटू! श्रीकृष्णके गलेमें लड़ियोंकी बनी हुई माला बहुत ही सुन्दर लगती है। अतिशय प्रिय गन्धमयी तुलसीकी माला भी उनके वक्षःस्थलपर सदैव विभूषित रहती है, क्योंकि इसमें उनकी प्रियाकी भी दिव्य सुगन्ध बसती है। जब वे मालामें पिरोयी हुई मणियोंके द्वारा गौओंके अरुणि, गङ्गे, हंसी, मुक्ते, चन्दनी, श्यामले, यमुने, चित्रतिलके, कुङ्कुमी, सरस्वती, धवले, गीते, पिङ्गले, दीर्घतिलके, मृदङ्गमुखी और सिंहमुखी आदि नामोंको ले-लेकर गिनती करते हुए किसी प्रेमी सखाके कन्धेपर अपनी भुजा रखकर भावोंको व्यक्त करते हुए वेणुनाद करते हैं, तब उस वेणुकी सुर-झङ्कारको (स्वर-मूर्च्छनाको) श्रवण करके कृष्णसार-रमणी हरिणियोंका चित्त अपहृत हो जाता है। जिस प्रकार हम गोपियाँ घर-बारकी आशाको छोड़कर गुणसिन्धु नन्दनन्दनको घेरे रहती हैं, उसी प्रकार वे भी उनके मार्गका अनुसन्धान करती हैं और वहाँसे लौटनेका नाम भी नहीं लेतीं ॥ १८-१९ ॥

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो
 गोपगोधनवृतो यमुनायाम्।
 नन्दसूनुरनघे तव वत्सो
 नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥
 मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं
 मानयन् मलयजस्पर्शेन।
 वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये
 वाद्यगीतबलिभिः परिवब्रुः ॥ २१ ॥

(श्रीकृष्णके आगमनमें विलम्ब होनेके कारण चिन्तित यशोदाको गोपियाँ सान्त्वना देते हुए कहती हैं—) हे शुद्धशीले (पुण्यचरिते)! यशोदे! तुम्हारे लाड़लेलाल निज वयस्य सखाओंके साथ परिहास क्रीड़ा इत्यादिके द्वारा सुखदायी खण्डन-मण्डन करते हुए उनका मनोरञ्जन करते हैं। जब नन्दनन्दन कुन्द-कुसुमकी माला धारणकर कौतुकमय नटनागर आदि वेशोंमें सजते हैं और गौओं एवं

ग्वालबालोंसे परिवेष्टित प्रेमीजनोंको आनन्दित करते हुए यमुनातट स्थित उपवनमें विहार करनेके लिए चल देते हैं, तब वहाँ मन्द-मन्द बहता हुआ समीर मलय-चन्दनके समान सुरभित एवं सुशीतल स्पर्शसे तुम्हारे पुत्रका अभिनन्दन करते हुए अनुकूल भावसे वीजन-सञ्चालन करता है। गन्धर्वादि उपदेवता गायन, वादन, यशोगान आदि उपहारोंसे उसको सन्तुष्ट करते हुए उस पवनकी आराधना करते हैं ॥ २०-२१ ॥

वत्सलो व्रजगवां पदगध्रो,
वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते
गीतवेणुरनुगेडितकीर्त्तिः ॥ २२ ॥
उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना-
मुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक्।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष
देवकीजठरभूरुडुराजः ॥ २३ ॥

(माता यशोदाके द्वारा प्रेरित वृन्दावनकी अटारीपर खड़ी हुई गोपियाँ श्रीकृष्णको आते हुए देखकर परमानन्दसे ओतप्रोत होकर कहने लगती हैं—) सखी! श्यामसुन्दरने गोवर्द्धन धारण क्यों किया था, इसलिए कि वे गोपोंके (एवं अनुकम्पा योग्य हमारे भी) बड़े हितैषी हैं। वे गायोंसे भी बड़ा प्रेम करते हैं। देखो, अब सायंकाल हो चला है। वे समस्त गौओंको एकत्रित करके वंशीका सङ्गीत छेड़ते हुए उनके पीछे-पीछे आते ही होंगे। (गन्धर्वों द्वारा प्रदत्त सम्मानमें उनका इतना आकर्षण नहीं है—गायोंकी ही चिन्ता है) अरी वीर! देखो, देखो! सुहृदोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिए वे व्रजकी ओर ही चले आ रहे हैं। मार्गमें ब्रह्मादि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि ज्ञानवृद्ध उनकी चरण-वन्दना कर रहे हैं, ग्वालबाल उनके गुणोंका गान कर रहे हैं—इसीलिए उनके आनेमें विलम्ब हो रहा है। देखो वे आ ही गये! उनके गलेकी वनमाला गौओंके

खुरोंसे उठी धूलिकी परतोंसे अनुरञ्जित हो रही है। प्रिय वीर! यशोदाकी कोखसे उत्पन्न गोकुलचन्द्र यद्यपि इस समय परिश्रान्त (थक गये) हैं, फिर भी अपनी श्रमयुक्त आभाके द्वारा हम सभीके नयनानन्दोत्सवको वर्द्धित कर रहे हैं ॥ २२-२३ ॥

मदविघूर्णितलोचन ईषत्
 मानदः स्वसुहृदां वनमाली।
 बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं
 मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४ ॥
 यदुपतिर्द्विरदराजविहारो
 यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते।
 मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं
 मोचयन् ब्रजगवां दिनतापम् ॥ २५ ॥

ब्रज-विभूषण श्रीकृष्णको समीपमें आते देखकर किसी गोपीने सम्भ्रमपूर्वक कहा—हे सखियो! यह देखो, प्यारे आ ही गये। नवतारुण्यमयी चञ्चलताके कारण आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं और कुछ ऐसे घूर्णित हो रही हैं, जैसे मदोन्मत्त हों, गलेमें वनमाला धारण किये हुए हैं, सुवर्ण-कुण्डलोंकी कान्ति सुकोमल कपोलोंको और भी अलंकृत कर रही है, मुखमण्डल बदरी-फलके समान पाण्डु (सफेद-पीले) वर्णके सौन्दर्यसे और भी निखर आया है। यदुपति श्रीकृष्ण सायंकालमें समुदित चन्द्रमाके समान अपने सुहृदोंको सम्मान देने हेतु तथा ब्रजमें रहनेवाली गौओंका और हमलोगोंके दिनभरका दुरन्त एवं असह्य विरह-ताप मिटाने हेतु गजेन्द्रके समान मन्थर मदभरी चालसे हमारे ही समीप आ रहे हैं ॥ २४-२५ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं ब्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीलानु गायतीः।

रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीवृन्दावनक्रीडायां
श्रीयुगलगीतवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्! इन अति सौभाग्यशालिनी गोपियोंका चित्त श्रीकृष्णमें ही लगा रहता था। वे कृष्णमयी हो गयी थीं। दिनके समय ये स्त्रियाँ श्रीकृष्णके विरह-दुःखमें तन्मनस्का होकर कृष्ण-लीलाका गान किया करतीं और उन्हींके चिन्तनमें अवगाहन करती हुई तन्मय भावसे उनमें रमण किया करती थीं ॥ २६ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पैंतीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका अक्रूरजीको
व्रजमें भेजना

श्रीबादरायणिरुवाच—

अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः।

महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम्॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! प्रदोषका समय था। श्रीकृष्ण भोजनादि समाप्तकर रासके लिए शयनगृहसे बाहर गोष्ठमें आ ही रहे थे कि महाभयानक विशालकाय वृषाकृति अरिष्ट नामक असुर महाप्रमत्त होकर खुरोंसे भूमिको खोदता हुआ तथा वज्रके समान उच्च गर्जनसे आकाशको कँपाता हुआ व्रजभूमिमें उपस्थित हुआ॥ १ ॥

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीम्।

उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन्।

किञ्चित् किञ्चित् शकृन्मुञ्चन् मूत्रयन्स्तब्धलोचनः॥ २ ॥

अरिष्टासुर वृषभके समान कर्कश शब्द करता हुआ बड़े जोरसे हँकड़ रहा था। अपने पदाघातसे व्रजभूमिको जर्जरित करता हुआ वह अपनी तीक्ष्ण पूँछको क्रोधवश ऊपरकी ओर उछाल रहा था तथा सींगोंके अग्रभागसे पर्वतके शिखरों, खेतोंकी मेंडों, बाँधों एवं दीवारोंको तोड़ता जा रहा था। पैरोंसे धूल उछालता हुआ वह बीच-बीचमें मल-मूत्र भी त्यागता जाता था। अपनी कराल आँखें फाड़ते हुए वह इधर-उधर दौड़ रहा था॥ २ ॥

यस्य निर्हादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम्।

पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै॥ ३ ॥

निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्घचलशङ्कया।

तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्रीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः॥ ४ ॥

हे राजन्! उस असुरके जोरसे हँकड़नेसे (निष्ठुर गर्जनसे) डरकर असमयमें ही गौओं एवं नारियोंके गर्भपात होने लगे। मेघ उसके ककुदको पर्वत समझकर वहीं ठहरने लगे। गोप-गोपियाँ उस असुरके डरावने सींगोंको देखकर अति भयभीत हो गये ॥ ३-४ ॥

पशवो द्रुवुभीता राजन् सन्त्यज्य गोकुलम्।

कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ५ ॥

हे राजन्! गाय, बैल आदि पशु उस अरिष्ठासुरको देखकर भयभीत हो गये और गोकुलभूमिका त्याग करके भागने लगे। अनन्तर वे सभी “हे कृष्ण! हे कृष्ण! हमारी रक्षा करो”—यह कहते हुए भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत हो गये ॥ ५ ॥

भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम्।

मा भैष्टेति गिराश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

भगवान्ने सम्पूर्ण गोकुलको भयविह्वल देखा, तो “तुमलोगोंको भयभीत होनेकी कोई बात नहीं है”—इस प्रकारसे अभयवाणी द्वारा सभीको आश्वस्त किया और वृषभासुरको ललकारते हुए कहा ॥ ६ ॥

गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम।

मयि शास्तरि दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे दुरात्मा! हे दुष्टाग्रगण्य! हे मूर्ख! इन ग्वालबालों एवं पशुओंको डराकर तुझे क्या मिलेगा? देख, तेरे जैसे दुष्टों एवं दुरात्माओंके बलका घमण्ड चूर्ण-विचूर्ण कर देनेवाला मैं यहाँ हूँ ॥ ७ ॥

इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन्।

सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अक्षर हैं, पर दूसरोंका संहार करनेवाले हैं। वे अपनी बाहुसे आस्फोट करते (ताल ठोकते) हुए उस असुरको अधिक क्रोधित करनेके लिए सुबलसखाके कन्धेपर अपनी सर्पाकार भुजा रखकर खड़े हो गये ॥ ८ ॥

सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन्।

उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥

तब अरिष्टासुर श्रीकृष्णकी इस चुनौतीसे आग-बबूला हो उठा और अपने खुरोंसे भूमिको जोर-जोरसे खोदने लगा। तत्पश्चात् अपनी पूँछको उठाकर मेघोंको तितर-बितर करते हुए वह भगवान् श्रीकृष्णकी ओर झपटा ॥ ९ ॥

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम्।

कटाक्षिप्याद्रवत् तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥

उस समय वह अपने दोनों सींगोंके अग्रभागको सम्मुख रखे था, उसकी दोनों आँखें स्तब्ध एवं रक्तवर्णकी थीं। तिरछी दृष्टिसे अच्युत श्रीकृष्णको देखते हुए वह इन्द्रके द्वारा चलाये वज्रकी भाँति उनकी ओर दौड़ने लगा। (वृषभासुरका आक्रमण देखकर श्रीकृष्ण किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए, इसलिए शुकदेव गोस्वामीने उन्हें अच्युत कहा है) ॥ १० ॥

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वा अष्टादश पदानि सः।

प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥

तब श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों सीङ्गोंको पकड़ लिया और उसे अठारह पग पीछे विपरीत दिशाकी ओर इस प्रकार धकेलकर गिरा दिया, जिस प्रकार हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथीको पीछेकी ओर ठेलकर गिरा देता है ॥ ११ ॥

सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः।

आपतत् स्वित्रसर्वाङ्गो निःश्वसन् क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा इस प्रकारसे आहत किये जानेपर भी वह पुनः उठ खड़ा हुआ। उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो रहा था और वह क्रोधसे अचेत-सा होकर लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ रहा था। वृषभासुर पुनः भगवान् पर झपटा ॥ १२ ॥

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः
 पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले।
 निष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं
 कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥

जैसे ही वह श्रीकृष्णके समीप आया, उन्होंने उसके दोनों सींगोंको पकड़ लिया और लात मारकर भूमिपर गिरा दिया। इसके बाद पैरोंसे दबाकर उसे इस प्रकार कुचल दिया, जिस प्रकार कोई गीले वस्त्रोंको निचोड़ता है। तत्पश्चात् उसका सींग उखाड़ लिया और उसीसे उस असुर पर अतिशय प्रहार किये, जिससे वह भूमिपर गिर गया ॥ १३ ॥

असृग्बमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन्
 क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः।
 जगाम कृच्छ्रं निःश्रुतेरथ क्षयं
 पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥

हे परीक्षित्! भूमिपर गिरते ही वह मुँहसे रक्त उगलने लगा और विष्ठा एवं मूत्रको त्यागते हुए पैरोंको इधर-उधर पटकता रहा, उसकी आँखें उलट गयीं। बड़े ही कष्टके साथ उसने प्राणवायुका त्याग किया। उसके यमालय पहुँचनेपर देवतालोग हर्षपूर्वक पुष्प-वर्षण करते हुए दुष्टदलनकारी एवं शिष्टजन-पालनकारी भगवान् श्रीकृष्णकी बार-बार स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥

एवं ककुब्धिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः।
 विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ १५ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार वृषभके रूपमें आये हुए अरिष्ठासुरका वध किया। सभी ग्वालबाल उनकी प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने बलदेवके साथ गोपियोंके नयनानन्द-उत्सवके रूपमें गोष्ठमें प्रवेश किया (पुराणोंमें अरिष्ठासुर वधके उपरान्त राधा-कृष्णके नर्म-परिहासमें ही राधाकुण्ड और श्यामकुण्डके प्राकट्यका वर्णन हुआ है) ॥ १५ ॥

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।

कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥ १६ ॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके चरित्र बड़े अद्भुत हैं। जब श्रीकृष्णने अरिष्टासुरका वध कर दिया, तब एक दिन भगवान्‌का दर्शन करा देनेवाले 'देवदर्शन' देवर्षि नारद कंसके पास आये और उससे कहने लगे ॥ १६ ॥

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च।

रामञ्च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता।

न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ १७ ॥

नारद मुनिने कंससे कहा—राजन्! देवकीके अष्टम-गर्भके रूपमें जो कन्या प्रसिद्ध है, वह तो यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी और जो यशोदाके पुत्ररूपमें है, वस्तुतः वह देवकीका पुत्र है। जो रोहिणीका पुत्र राम नामसे प्रसिद्ध है, वह देवकीकी सप्तम सन्तान है। वसुदेवने तुम्हारे भयसे अपने दोनों पुत्रोंको नन्दको सौंप रखा है। वे ही दोनों तुम्हारे द्वारा भेजे हुए अनुचर दैत्योंका वध कर रहे हैं ॥ १७ ॥

निशम्य तद्भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः।

निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ १८ ॥

नारदके इन वचनोंको सुनते ही भोजपति कंस अत्यन्त क्रोधित हो उठा। उसकी एक-एक इन्द्रिय विचलित होने लगी। वसुदेवको मार डालनेके लिए उसने तीक्ष्ण तलवार उठा ली (दुराचारी कंसके अत्याचारसे यादव-गण अतिशय उत्पीड़ित हैं एवं देवता भी उद्विग्न हैं। इस अत्याचारी कंसका शीघ्र ही विनाश हो और पृथ्वीदेवी भार-मुक्त हो—इस उद्देश्यसे त्रिकालज्ञ ऋषि नारदजीने इस निगूढ़ संवादको कंसके निकट पहुँचाया है) ॥ १८ ॥

निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः।

ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ १९ ॥

तब नारदने कहा—हे भोजपति ! आप यदि इस समय वसुदेवकी हत्या करेंगे, तो 'राम-कृष्ण' कहीं भाग जायेंगे। अतः इस समय वसुदेवका वध युक्तियुक्त नहीं है। (कारागारमें डालना उचित है) परीक्षित ! यह कहकर नारदने कंसको रोक लिया। जब कंसको यह ज्ञात हो गया कि वसुदेवके पुत्र ही मेरी मृत्युके कारण हैं, तब उसने वसुदेव और देवकी दोनोंको ही लोहेकी हथकड़ियों और बेड़ियोंसे जकड़कर पुनः कारागारमें बन्द कर दिया (नारदकी यह प्रेरणा वसुदेव-देवकीकी प्रसन्नताके लिए है, क्योंकि शीघ्र ही पुत्रका दर्शन होगा—नारदको अनेक आशीर्वाद प्राप्त होंगे) ॥ १९ ॥

प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम्।

प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ २० ॥

जब देवर्षि नारद वहाँसे चले गये, तब कंसने केशी नामक दैत्यको बुलाया और 'तुम व्रजमें जाकर राम-कृष्णका वध कर डालो'—यह कहकर उसे व्रजमें भेज दिया ॥ २० ॥

ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान्।

अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् कंसने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोषल आदि पहलवानों, मन्त्रियों एवं हस्तिपालकों (महावतों) को बुलाया और इस प्रकार कहा— ॥ २१ ॥

भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ।

नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ॥ २२ ॥

रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निर्दिशितः।

भवद्भ्यामिह सम्प्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ २३ ॥

कंसने कहा—हे वीरवर चाणूर ! हे महावीर मुष्टिक ! तुम मेरी बात सुनो। वसुदेवके पुत्र राम-कृष्ण नन्दव्रजमें वास कर रहे हैं। उनके ही द्वारा मेरी मृत्युका सङ्केत हुआ है। अतः

जब वे यहाँ आयें, तब मल्लयुद्धके छलसे तुम उन्हें मार डालना ॥ २२-२३ ॥

मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः।

पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥ २४ ॥

अब तुमलोग मल्लयुद्धके लिए चारोंओर विविध मञ्चोंका निर्माण करा दो, जिससे पुरवासी एवं दूसरे ग्रामवासी सभी बैठकर इस स्वच्छन्द (खुले) दङ्गलको (अखाड़ेको) देखें। मल्लयुद्धमें यथार्थ बाहुबल और युद्ध कौशलकी परीक्षा होगी। तुम्हारे समान शक्तिशाली वीरोंके बाहुबलके सामने उन दोनों बालकोंका पराभव सुनिश्चित है। मल्लयुद्धमें उनके निहत होनेपर कोई भी हमपर दोषारोपण नहीं कर सकेगा ॥ २४ ॥

महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम्।

द्विपः कुवल्यापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ २५ ॥

इसके बाद कंसने हस्तिपाल अर्थात् महावतसे कहा—हे भद्र! तुम तो बहुत चतुर हो, बड़े योग्यपात्र हो। तुम इस रङ्ग-भूमिके (दङ्गल क्षेत्रके) द्वारदेशपर ही कुवल्यापीड नामक मतवाले हाथीको रखना। जैसे ही मेरे शत्रु वहाँ आवें, तुम उसके द्वारा उन दोनोंको मरवा डालना ॥ २५ ॥

आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि।

विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥

इसी चतुर्दशी तिथिको विधिपूर्वक धनुष-यज्ञका शुभारम्भ कर दो एवं वरदाता भूतनाथ (भूतेश्वर) की प्रीतिके लिए बहुत-से पवित्र पशुओंकी बलि चढ़ाओ ॥ २६ ॥

इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम्।

गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥

कंस राजनीति-विशारद था। (वह द्वितीय पुरुषार्थ अर्थशास्त्रमें ही निपुण था, धर्म एवं मोक्षको नहीं जानता था।) वह अपना

स्वार्थ-साधन अच्छी प्रकारसे जानता था। अपने मन्त्रियों, पहलवानों, महावतों आदिको आदेश देकर उसने यदुश्रेष्ठ अक्रूरको बुलवाया और अपने हाथोंमें उनका हाथ लेकर कहने लगा ॥ २७ ॥

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः।

नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥

हे अक्रूरजी! हे वदान्यप्रवर दानपते! मैं आपका बड़ा आदर करता हूँ। आपको मेरे लिए मित्रोचित कुछ कार्य करना होगा। भोजवंश एवं वृष्णिवंशमें आपके अतिरिक्त न तो कोई मेरा हितकारी है और न ही कोई मुझसे अनुराग रखता है ॥ २८ ॥

अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम्।

यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥

अतएव हे सौम्य! अपने बड़े भारी प्रयोजनके उद्देश्यसे मैं आपका आश्रय उसी प्रकार ले रहा हूँ, जिस प्रकार इन्द्र समर्थ होनेपर भी विष्णुका आश्रय लेकर असुरोंका विनाश एवं राज्य-प्राप्ति आदि अपने स्वार्थोंको साधा करता है ॥ २९ ॥

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः।

आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥ ३० ॥

आप अभी नन्दरायके गोकुलमें जाइये। वहाँ वसुदेवके दोनों पुत्र हैं। उन दोनोंको इसी (अङ्गुलीके द्वारा कोई नया विचित्र अलङ्कारोंसे सुसज्जित रथ दिखाते हुए) रथमें ले आइये। इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये ॥ ३० ॥

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः।

तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥

विष्णुके संरक्षणमें रहनेवाले देवताओंने उन दोनों बालकोंको मेरी मृत्युके रूपमें सृजन किया है। आप उन दोनों बालकोंको यहाँ ले आइये, साथ ही नन्दादि गोपोंको भी उपहारोंके साथ इसी स्थानपर ले आइये (धनुषयज्ञमें प्रचुर मात्रामें दूध, दही, घी आदि

सामग्रीकी आवश्यकता थी, इसलिए कंसने करके रूपमें लानेके लिए नन्दादि गोपगणोंको बुलानेका आदेश दिया है) ॥ ३१ ॥

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना।

यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥

जब वे दोनों बालक यहाँ आ जायेंगे, तब साक्षात् यमके समान कुवलयापीड़ हाथीसे मैं उन्हें मरवा डालूँगा। भाग्यसे कहीं वे उस हाथीसे बच भी गये, तो वज्रके समान अपने चाणूर, मुष्टिकादि पहलवानोंसे (मल्लोंसे) उन्हें मरवा दूँगा ॥ ३२ ॥

तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान्।

तद्वन्धून् निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥

जब वे दोनों मर जायेंगे, तब वसुदेवादि प्रमुख वृष्णि, भोज एवं दशार्ह वंशमें उत्पन्न उनके सभी बन्धु शोकसन्तप्त हो जायेंगे, मैं उनका भी वध कर डालूँगा ॥ ३३ ॥

उग्रसेनञ्च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम्।

तद्भ्रातरं देवकञ्च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥

मेरे पिता यद्यपि वृद्ध हैं, तो भी उन्हें राज्यकी चाह अभी भी बनी हुई है। उनका, उनके भाई देवकका और जो भी मेरे शत्रु हैं, मैं उन सबका भी वध कर दूँगा ॥ ३४ ॥

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका।

जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥

इसके बाद हे बन्धुवर! यह पृथ्वी शत्रुओंसे रहित हो जायेगी, मेरा साम्राज्य निष्कण्टक हो जायेगा। प्रबल पराक्रमी जरासन्ध मेरे श्वसुर (पितृतुल्य) हैं और वानरराज द्विविद मेरा प्यारा सखा है, दोनों मेरे शुभचिन्तक हैं ॥ ३५ ॥

शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः।

तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥

शम्बरासुर, नरकासुर और बाणासुर आदि राजा मेरे सृहद् हैं, मुझसे बड़ी मित्रताका भाव रखते हैं। मैं इन सबकी सहायतासे उन सभी राजाओंको भी मार दूँगा, जो देवताओंके पक्षधर हैं। यह सब करनेके बाद मैं सम्पूर्ण पृथ्वीका भोग करूँगा ॥ ३६ ॥

एतज्ज्ञात्वानय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्षकौ।

धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥

अक्रूर! अब तो मैंने सभी गोपनीय बातें आपको बतला दी हैं। आप भी मेरे आन्तरिक प्रयोजनको जान गये हैं। (इस रहस्य तत्त्वको आप बाहर प्रकाश मत करना) अब आप शीघ्र-से-शीघ्र उन दोनों बालकोंको धनुष-यज्ञ एवं यदुओंकी राजधानी-यदुपुरकी शोभा दिखानेके छलसे यहाँ ले आइये ॥ ३७ ॥

श्रीअक्रूर उवाच—

राजन् मनीषितं सध्रक् तव स्वावद्यमार्जनम्।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्यादैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥

श्रीअक्रूरने कहा—हे महाराज! आपने अपनी मृत्युके निवारणका उपाय ठीक ही सोच-विचार लिया है। मनुष्यका यह कर्त्तव्य है कि वह अभीष्टकी सफलता और असफलताके विषयमें समान भाव रखकर अपना कार्य करता रहे। फल तो दैवके हाथोंमें ही निहित है ॥ ३८ ॥

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि।

युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥

मनुष्य बड़े-बड़े मनोरथ रखता है और उनकी पूर्तिके लिए बहुत प्रयत्न भी करता है, परन्तु दैवने उन्हें पहलेसे ही नष्ट कर रखा है। इसीलिए इन मनोरथोंको पूरा होते देख कभी वह प्रसन्न होता है और पूरा न होनेपर दुःखी। तो भी, मैं आपके आदेशका निश्चित ही पालन करूँगा (परमानन्द-स्वरूप भगवान्‌के चरणारविन्दका दर्शन प्राप्त होगा एवं भगवान्‌को भी कंस-वध करनेका अवसर

प्राप्त होगा—अतः आज्ञा-पालनकी बात कही गयी है—इस प्रकार यह दैववाणी भी फलीभूत होगी। अतः अक्रूर आज्ञा-पालनके लिए उद्यत हो गये) ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः।

प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदक्रूरसम्प्रेषणं नाम
षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—अक्रूरको इस प्रकार आदेश देकर कंसने मन्त्रियोंको विदा किया। इसके बाद वह स्वयं महलमें चला गया और अक्रूर भी अपने भवनकी ओर लौट आये ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके छत्तीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

केशी दैत्य एवं व्योमासुरका उद्धार तथा
देवर्षि नादरजीके द्वारा स्तुति

श्रीशुक उवाच—

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं
महाहयो निर्जरयन् मनोजवः ।
सटावधूताभ्रविमानसङ्कुलं
कुर्वन् नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥
तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं
तद्धेषितेर्वालविघूर्णिताम्बुदम् ।
आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणी-
रुपाह्वयत् स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—जिस केशी नामक दैत्यको कंसने (राम एवं कृष्णका वध करनेके लिए) भेजा था, वह विशाल घोड़ेकी मूर्ति धारणकर मनकी गतिके समान वेगपूर्वक दौड़ता हुआ ब्रजमें गोपपल्ली अर्थात् गोपोंके गाँवकी ओर दौड़ता हुआ आ रहा था। वह अपने खुरोंके आघातसे ब्रजधराके ऊपरी भागको चूर्ण-विचूर्ण करता आ रहा था। उसकी कर्कश हिनहिनाहटसे समस्त प्राणी भयभीत होकर काँप रहे थे। गर्दनके बालोंके सञ्चालनसे आकाश स्थित मेघमालाएँ एवं विमान तितर-बितर हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि यह असुर अपनी हिनहिनाहटकी भीषण ध्वनिसे सारे गोकुलको भयभीत कर रहा है, पूँछको घुमा-घुमाकर बादलोंको तितर-बितर किये दे रहा है और युद्धके लिए उन्हें ढूँढ़ रहा है, तो वे स्वयं ही अग्रसर होकर उसके समक्ष खड़े हो गये। भगवान् ललकारते हुए जब उसका आह्वान करने लगे, तब उत्तरमें वह सिंहके समान गर्जना करने लगा ॥ १-२ ॥

स तं निशाम्याभिमुखो मुखेन खं
 पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ।
 जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं
 दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥ ३ ॥

भगवान्को अपने सामने देखते ही वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और उसने अपने मुँहको विशालरूपसे इतना फैलाया मानो आकाशको निगल ही लेगा। परीक्षित्! केशी असुर अपराजेय एवं दुर्धर्ष था। प्रचण्ड वेगसे दौड़ते हुए उसने कमलनयन भगवान् पर अपने पीछेके दोनों पैरोंसे दुलत्ती झाड़नेका प्रयास किया ॥ ३ ॥

तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा
 प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ।
 सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे
 यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ४ ॥

तब अधोक्षज (इन्द्रियातीत) भगवान् श्रीकृष्णने उसके द्वारा किये गये पद-प्रहारोंसे अपने आपको बचा लिया और क्रोधाविष्ट होकर अपने दोनों हाथोंसे उसके फैले हुए पिछले दोनों पैरोंको पकड़ लिया। उसके बाद आकाशमें उसे घुमाते हुए बड़े तिरस्कारके साथ चार सौ हाथकी दूरीपर इस प्रकार फेंक दिया, जिस प्रकार गरुड सर्पको खेल-ही-खेलमें दूर फेंक डालते हैं। परीक्षित्! भगवान् स्वयं स्थिर खड़े रहे ॥ ४ ॥

स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा
 व्यादाय केशी तरसापतद्धरिम् ।
 सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्
 प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ५ ॥

थोड़ी देरके बाद केशीको जब चेतना आयी, तब वह पुनः उठ खड़ा हुआ। क्रोधसे तिलमिलाते हुए उसने अपना मुख फैलाया और आक्रमण करनेके लिए बड़े वेगसे भगवान्की ओर झपटा। श्रीकृष्ण उसे देख मुसकराते हुए कहने लगे—“अरे दुष्ट !

मुझे खानेके लिए आया है”—यह कहकर उन्होंने उसके मुखके गह्वरमें अपने बायें हाथको ऐसे डाल दिया, जैसे सर्प निडर होकर दूसरेके बिलमें घुस जाता है ॥ ५ ॥

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृश-
स्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशो यथा ।
बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो
यथामयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

केशी दैत्य भगवान्की सुकोमल भुजाको अपने दाँतोंमें चबा डालना चाहता था, पर जैसे ही उसने अपने दाँतोंसे भगवान्की भुजाका स्पर्श किया, वह तो मानो तपे हुए लोहेकी छड़ीको ही छू बैठा। उसके सारे दाँत टूट-टूटकर गिर पड़े। जिस प्रकार उपेक्षा कर देनेसे जलोदर रोग असाध्य हो उठता है, उसी प्रकार केशी दैत्यके मुखके अन्दर भगवान्का हाथ उपेक्षित जलोदर रोगकी भाँति तीव्रतासे बढ़ने लगा (श्रीभगवान्की भुजा नीलकमलकी भाँति सुकुमार-सुशीतल होनेपर भी केशीने दाँतोंके स्पर्शसे उसे अत्यन्त तपे हुए वज्रकी भाँति अनुभव किया था, क्योंकि पित्त रोग होनेपर जिह्वा कड़वी होनेसे मधुर मिश्री भी कड़वी लगती है) ॥ ६ ॥

समेधमानेन स कृष्णबाहुना
निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।
प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः
पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः ॥ ७ ॥

जैसे-जैसे अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णका हाथ फैलता गया, वैसे-वैसे केशीकी प्राणादि वायुका सञ्चार-मार्ग भी अवरुद्ध होने लगा। मृत्यु यन्त्रणासे व्याकुल होकर वह इधर-उधर पैर पटकने लगा। उसका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। आँखें फट गयीं। मल-मूत्र त्याग करने लगा। अन्ततः निष्प्राण होकर वह भूमिपर गिर पड़ा ॥ ७ ॥

तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्
 व्यसोरमाकृष्य भुजं महाभुजः।
 अविस्मितोऽयत्नहतारिकः सुरैः
 प्रसूनवर्षैर्विवर्षद्भिरीडितः ॥ ८ ॥

केशी दैत्यका शरीर फूला हुआ तो था ही, गिरते ही पकी ककड़ीके समान विदीर्ण हो गया। तब महाभुज श्रीकृष्णने अपनी बाँहको उसके मुखसे बाहर खींच लिया। परीक्षित्! यद्यपि शत्रुका वध अनायास (मुहूर्तभरमें) ही हुआ था, तथापि भगवान्को अपने इस कार्यपर किसी प्रकारका गर्व नहीं हुआ। देवता अवश्य ही आश्चर्यचकित होकर उनके ऊपर पुष्प बरसाने लगे और उनकी स्तुति करने लगे (केशीका वध किसी कल्पमें ब्रजभूमिके गोप-गाँवमें हुआ है और किसी कल्पमें यमुनाके किनारे) ॥ ८ ॥

देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरे नृप।
 कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥

हे राजन्! इसके बाद भागवत-प्रवर, भक्ति-रसिक, भक्तितत्त्वके प्रचारक देवर्षि नारद कंससे बातें करके बिना प्रयासके अद्भुत लीला करनेवाले अक्लिष्टकर्मा भगवान् श्रीकृष्णके पास आये और उनसे एकान्तमें इस प्रकार कहने लगे ॥ ९ ॥

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर।
 वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥
 त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम्।
 गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥

हे अखण्ड-स्वरूप! हे अचिन्त्यप्रभाव! हे समस्त ब्रह्माण्डोंके ईश्वर! हे वासुदेव! हे समस्त जगत्के आधार! हे यदुश्रेष्ठ! हे श्रीकृष्ण! हे प्रभो! जिस प्रकार एक ही अग्नि समस्त लकड़ियोंमें गूढरूपसे विद्यमान रहती है, उसी प्रकार आप सभी प्राणियोंके हृदयोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित रहते हैं। आप आत्मस्वरूप हैं—आत्मस्वरूप होनेपर भी आप अतिशय गूढ़ हैं, क्योंकि

गुहाशयके रूपमें आप अन्तःकरणरूप गुफाके भीतर स्थित रहते हैं। हे स्वामी! आप बुद्धिसे परे, सर्वसाक्षी, सर्वनियन्ता और अप्रतिहत योगबलके कारण महापुरुष (पुरुषोत्तम) स्वरूप हैं ॥ १०-११ ॥

आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान्।

तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥

आप सबकी आत्माके आश्रय परन्तु स्वयं अधिष्ठान-रहित स्वतन्त्र पुरुष हैं। आपने सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी मायाशक्तिके द्वारा महदादि गुणोंकी सृष्टि की और पुनः उन्हीं गुणोंके द्वारा आप इस परिदृश्यमान् विश्वकी सृष्टि, संहार एवं पालन करते हैं। जगत्के लोग आपकी ही प्रेरणासे अपना-अपना कार्य करते हैं। (आपकी प्रेरणासे ही मैं आपके निकट निवेदन कर रहा हूँ) आप सत्यसङ्कल्प (आपका सङ्कल्प कभी व्यर्थ नहीं होता) और सर्वशक्तिमान् हैं ॥ १२ ॥

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम्।

अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥

वही आप इस पृथ्वीपर राजाओंका वेश धारण करनेवाले दैत्यों, प्रमथों एवं राक्षसोंके विनाशके लिए तथा साधु पुरुषोंकी रक्षाके लिए इस धरा-धाममें, यदुवंशमें अवतरित हुए हैं ॥ १३ ॥

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः।

यस्य हेषितसन्त्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥

भयानक घोड़ेका रूप धारण करनेवाले जिस केशी दैत्यकी हिनहिनाहटसे भयभीत होकर देवता भी स्वर्गका राज्य छोड़कर भाग जाते थे, हमारे सौभाग्यसे आपने खेल-ही-खेलमें उस असुरको मार डाला ॥ १४ ॥

चाणूरं मुष्टिकञ्चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम्।

कंसञ्च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥

तस्यानु शङ्ख्यवनमुराणां नरकस्य च।
 पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम्॥ १६ ॥
 उद्धाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम्।
 नृगस्य मोक्षणं शापाद्द्वाराकायां जगत्पते॥ १७ ॥
 स्यमन्तकस्य च मणोरादानं सह भार्यया।
 मृतपुत्रप्रदानञ्च ब्राह्मणस्य स्वधामतः॥ १८ ॥
 पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याश्च दीपनम्।
 दन्तवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ॥ १९ ॥
 यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान्।
 कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि॥ २० ॥

हे सर्वव्यापक प्रभो! अब मैं परसों आपके द्वारा चाणूर, मुष्टिक एवं दूसरे पहलवानोंको तथा साथ ही कुवलयापीड़ हाथी और स्वयं कंसको भी मरते देखूँगा। हे जगन्नाथ! तत्पश्चात् शङ्खासुर, कालयवन, मुर एवं नरकासुरका वध, स्वर्गसे बलपूर्वक पारिजात वृक्षका हरण, इन्द्रकी पराजय, वीरतारूप शुल्कादिके विनिमयमें वीर राजाओंकी कन्याओंके साथ विवाह, द्वारकामें विप्र-गो-हरणके कारण विप्रोंके शापसे नृगराजाका उद्धार, जाम्बवतीके साथ-साथ स्यमन्तक मणिको ग्रहण करना, यमपुरसे ब्राह्मणके मृतपुत्रको लौटा लाना, पौण्ड्रकासुरका वध, काशीपुरीका दहन, दन्तवक्र वध, राजसूय यज्ञमें शिशुपाल वध आदि लीलाएँ देखूँगा। अनन्तर द्वारकामें रहकर आप अन्यान्य जो भी अद्भुत कर्म करेंगे, उन सबको भी मैं देखूँगा। कविगण इस भूतलपर आपके इन समस्त लीला-आख्यानोका गुणगान करेंगे॥ १५-२० ॥

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै।

अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः॥ २१ ॥

इसके पश्चात् विश्व-विनाशक कालरूपी आप अर्जुनके सारथिके रूपमें कुरुक्षेत्रकी अनेक अक्षौहिणी सेनाओंका वध करेंगे। इन लीलाओंको भी मैं देखूँगा॥ २१ ॥

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया
समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ।
स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमाया-
गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥ २२ ॥

हे भगवन्! आप विशुद्ध-ज्ञानमूर्ति-स्वरूप हैं। आप अपने मूलस्वरूप परमानन्दमें सम्यक् रूपसे स्थित रहते हैं। आपको समस्त अभीष्ट वस्तुएँ नित्य प्राप्त हैं। आपकी वाञ्छाएँ अमोघ हैं—उन्हें व्यर्थ नहीं किया जा सकता। आपके भक्तोंके अभिलषित विषय कभी व्यर्थ नहीं होते। आपकी चित्-शक्तिके द्वारा मायिक गुणोंका प्रवाह यह संसार-चक्र आपके सम्मुख नित्य ही निरस्त रहता है। आप अतुलनीय ऐश्वर्यसम्पन्न हैं। मैं आपके शरणागत हूँ ॥ २२ ॥

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया
विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं
नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णि सात्वताम् ॥ २३ ॥

आप सबके ही नियन्ता हैं, इसलिए परम स्वतन्त्र हैं। जीव, काल, कर्म कोई भी आपको वशीभूत नहीं कर सकता। इस प्रपञ्चमें जो भाव-अभाव, भेद-विभेद आदि असंख्य वैचित्र्य कल्पित होते हैं अथवा चित्-शक्तिगत वैकुण्ठादि वैचित्र्य हैं—यह सब व्यवस्था आपकी शक्तिके प्रभावसे रचित है। आप यदु, वृष्णि एवं सात्वत कुलोंके वीरोंमें परम शिरोमणि हैं। आपने अपनी लीला प्राकट्यके लिए अपना नर-वपु प्रकट किया है। अब आप कंसादिके साथ नरोचित युद्ध-क्रीड़ाको स्वीकार कीजिये। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ।
प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! भक्त-प्रवर देवर्षि नारदने यदुपति श्रीकृष्णकी इस प्रकारसे स्तुति की और सिर झुकाकर प्रणाम किया। भगवान्‌के दर्शनसे वे परम आनन्दित हो रहे थे। उन्होंने श्रीकृष्णसे अनुमति प्राप्त की और अपने धाममें चले गये ॥ २४ ॥

भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे।

पशूनपालयत् पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २५ ॥

इधर व्रजसुखप्रद भगवान् श्रीगोविन्द युद्धमें केशी दैत्यका वध करके प्रसन्न मनके साथ अपने सखाओं ग्वालबालोंके साथ पशुपालनमें लग गये। इस प्रकार उन्होंने व्रजवासियोंको परम आनन्द प्रदान किया ॥ २५ ॥

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु।

चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २६ ॥

परीक्षित्! एक बार ग्वालबाल पर्वतकी चोटियोंपर गोचारण करते हुए चोर एवं रक्षकका अभिनय करते हुए 'निलायन' (चौर्य वस्तुका संगोपनरूप) अर्थात् लुका-छिपीका खेल खेल रहे थे ॥ २६ ॥

तत्रासन् कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचित्रप।

मेषायिताश्च तत्रैके विजहुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥

हे राजन्! इस लुका-छिपीके खेलमें कुछ ग्वालबाल चोर, कुछ रक्षक और अन्यान्य भेड़ बन गये तथा निर्भय होकर (सभी सखा ही हैं, इस विश्वाससे) खेल खेलनेमें रम गये ॥ २७ ॥

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक्।

मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २८ ॥

उसी समय मायावियोंके आचार्य मय नामक दैत्यका पुत्र जो स्वयं भी अतिशय माया-निपुण था, ग्वालबालका वेश धारण करके वहाँ आ गया। व्योमासुर नामका यह असुर बार-बार

चोरका अभिनय करता और भेड़का आचरण करनेवाले बहुत-से बालकोंको उठा-उठा कर दूर ले जाकर छिपा आता ॥ २८ ॥

गिरिदर्या विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः।

शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥ २९ ॥

यह महादैत्य व्योमासुर द्वारा चुराये हुए गोपबालकोंको एक पर्वतकी गुफामें रख देता और बड़े शिलाखण्डसे उस गुफाके मुखको ढक देता। इस प्रकार क्रीड़ा-स्थलपर भेड़ बने हुए केवल चार-पाँच बालक ही बचे रह गये ॥ २९ ॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम्।

गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥

साधुओंके आश्रयदाता भक्तवत्सल भगवान् श्रीश्यामसुन्दर उस असुरके इस कृत्यको समझ गये। जब वह ग्वालबालोंका अपहरण कर उन्हें ले जा रहा था, तभी भगवान् श्रीहरिने बलपूर्वक उसे इस प्रकार धर दबोचा, जैसे सिंह भेड़ियेको आसानीसे दबोच लेता है ॥ ३० ॥

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली।

इच्छन् विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥

उस समय महाबली व्योमासुर गोपवेशका परित्याग करके अपना असली रूप प्रकटकर एक बलवान् विशाल पर्वतके समान बन गया। वह स्वयंको छुड़ानेके लिए भरसक चेष्टा करने लगा, परन्तु श्रीकृष्णकी मजबूत पकड़से वह दुर्बल पड़ गया और अपनेको छुड़ा न पाया ॥ ३१ ॥

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले।

पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥

तब भगवान् अच्युत श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे उस दैत्यको जकड़कर पृथ्वीपर गिरा दिया और पशुके समान उसका गला घोटकर उसका वध कर डाला। स्वर्गस्थ देवता विमानोंपर

चढ़कर भगवान्की इस अद्भुत लीलाको देखकर आनन्दित हो रहे थे ॥ ३२ ॥

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छृतः ।

स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे व्योमासुरवधो नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इसके बाद पर्वतकी गुफाके मुखपर स्थित शिला-आच्छादनको चूर्ण-विचूर्ण करके भगवान्ने उस कष्टदायक स्थानसे ग्वालबालोंको बाहर निकाला और गोकुल लौट आये। उस समय भूतलपर अनुचर ग्वालबाल और आकाशमें अनुचर देवतागण भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सैंतीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अक्रूरकी व्रजयात्रा तथा राम-कृष्णके द्वारा उनका सत्कार

श्रीशुक उवाच—

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः।

उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! महामति अक्रूरने वह रात्रि मथुरामें ही बितायी। दूसरे दिन प्रभात होते ही रथपर सवार होकर वे नन्दके गोकुलकी ओर चल दिये ॥ १ ॥

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे।

भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥

परम भाग्यवान् अक्रूरजी मार्गमें जाते समय पद्मलोचन भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम भक्तिसे पूर्ण हो गये। वे इस प्रकार सोचने लगे ॥ २ ॥

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः।

किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥

मैंने ऐसे कौन-से सत्कर्म किये हैं, ऐसी कौन-सी कठिन तपस्या की है, ऐसी किस पूजाका अनुष्ठान किया है अथवा किसी सत्पात्रको ऐसा कौन-सा विशेष दान दिया है, जिससे आज मुझे भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन होगा? ॥ ३ ॥

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमःश्लोकदर्शनम्।

विषयात्मनो यथा ब्रह्म-कीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥

मेरा चित्त तो सदैव विषय-भोगोंमें मग्न रहता है, मेरे लिए उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन उसी प्रकार अत्यन्त दुर्लभ है, जिस प्रकार शूद्रोंके लिए वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण ॥ ४ ॥

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम्।

हियमाणः कालनद्या क्वचित् तरति कश्चन॥५॥

अधम होनेपर भी श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त करना मेरे लिए असम्भव नहीं है, क्योंकि नदीके प्रवाहमें बहते हुए तृणोंमेंसे कोई एक तृण जिस प्रकार एक किनारेसे दूसरे किनारेपर लग ही जाता है, उसी प्रकार कर्मवश कालके द्वारा प्रेरित बद्ध जीवोंमेंसे कोई एक जन संसार-समुद्रसे पार हो सकता है (भगवान्की अहैतुकी कृपासे उनके श्रीचरणोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हो सकता है)॥५॥

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।

यत्रमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम्॥६॥

अवश्य ही आज मेरे सारे अशुभ (अमङ्गल) नष्ट हो गये। आज मेरा जन्म लेना सार्थक हो गया। आहा, आज मैं भगवान् श्रीकृष्णके उन चरणकमलोंमें प्रणत हो सकूँगा, जिनका बड़े-बड़े योगी ध्यान किया करते हैं॥६॥

कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं

द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः।

कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः

पूर्वेऽतरन् यत्रखमण्डलत्विषा॥७॥

कितने आश्चर्यकी बात है कि अतिशय दुष्ट होनेपर भी कंसने आज मेरा परम उपकार किया है, क्योंकि उसके द्वारा ही प्रेरित होकर मैं धराधामपर अवतीर्ण भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंका दर्शन कर सकूँगा। अम्बरीष आदि पूर्ववर्त्ती महापुरुषोंने केवल एक बार ही इन पादपद्मोंकी नख-किरणकी छटाकी स्फूर्ति प्राप्त की थी और दुस्तर संसार-सागरको पार कर लिया था॥७॥

यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः

श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः।

गोचारणायानुचरैश्चरद्वने

यद्गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥ ८ ॥

जिन पादपद्मोंकी परम ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा, महेश्वर आदि देवता, परम सौभाग्यवती लक्ष्मीजी और परम-पुरुषार्थस्वरूप प्रेमी भक्तोंके साथ मुनिगण सेवा करते हैं, वही सुर-मुनि-वन्दित परम करुणामय (कृपालु) चरणकमल गोचारणके लिए वनमें विचरण करते हैं, उस समय उनके अनुचर ग्वालबाल उनकी सेवा करते हैं। और भी, प्रेम-मात्रसे सुलभ ये ही चरणकमल गोपियोंके कुच-कुङ्कुम द्वारा अनुरञ्जित रहते हैं (दास्य-रसके भक्त होनेपर भी अक्रूरजी अपने ही हृदयमें त्रिभुवन-मोहनकारी श्रीकृष्ण विषयक शृङ्गार-रसका आस्वादन कर रहे हैं) ॥ ८ ॥

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं

स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।

मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं

प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥ ९ ॥

निश्चितरूपसे मैं मुक्ति और प्रेमप्रदाता भगवान् श्रीकृष्णके मुखमण्डलका दर्शन कर सकूँगा। उनके कपोल सुरम्य और नासिका सुघड़ है। दोनों नेत्र अरुण कमलके समान रतनारे हैं, प्रेमभरी चितवन मन्द हास्यसे विभूषित है, कपोलोंपर घुँघराली अलकें समाच्छन्न हैं। तभी उन्हें शुभ-सूचक लक्षण दिखायी दिये—हिरन उनकी परिक्रमा करके उनकी दायीं ओरसे निकल रहे थे। अब तो वे अतिशय प्रसन्न हो गये और मन-ही-मन कहने लगे—मेरे मनोरथ अवश्य ही सफल होंगे ॥ ९ ॥

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो

भारावताराय भुवो निजेच्छया ।

लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं

मह्यं न न स्यात् फलमञ्जसा दृशः ॥ १० ॥

आहा, भगवान् विष्णु विशेषरूपसे पृथ्वीका भार उतारनेके लिए स्वेच्छासे हमारे वैवस्वत मनुके वंशमें आविर्भूत हुए हैं। वे लावण्यकी मूर्तिमान् निधि हैं। आज श्रीहरिका साक्षात् दर्शन प्राप्त होगा। अतः आज मुझे नेत्रोंका यथार्थ फल अवश्य प्राप्त होगा या नहीं? अवश्य ही होगा ॥ १० ॥

य ईक्षिताहंरहितोऽप्यसत्सतोः

स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः ।

स्वमाययात्मन् रचितैस्तदीक्षया

प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥

जो कार्य एवं कारणके द्रष्टास्वरूप होकर भी अहङ्काररहित हैं, जो चित्-शक्तिके प्रभावसे अज्ञान एवं उसके द्वारा किये गये भेद एवं भ्रमके अन्धकारको दूर करते हैं, जो अपनी माया-शक्तिके प्रभावसे भ्रूविलास (ईक्षण) द्वारा जीवोंकी रचना करते हैं और जीव जिनका अपने प्राण, इन्द्रिय एवं बुद्धि द्वारा अनुमान मात्र ही करते हैं, साक्षात्कार नहीं। (तात्पर्य यह है कि दृश्य वस्तु द्वारा द्रष्टाका अनुमान मात्र किया जाता है, साक्षात् नहीं किया जाता। जड़-जगत्, जीव-देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार इत्यादिके द्वारा इन सबके परिचालकरूपमें एकमात्र चेतन वस्तुका अनुमान ही किया जाता है। क्षुद्र चेतनकी अनुभूतिमें बृहत् चैतन्यकी अनुमिति अवश्यम्भावी है। इस प्रकार व्याप्ति (सर्वत्र अवस्थिति) के ज्ञान द्वारा परतत्त्वका अनुमान होता है, साक्षात्कार नहीं) ॥ ११ ॥

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-

र्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ।

प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगत्

यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥

वे समस्त पापोंके नाशक एवं सुमङ्गलदायक हैं। उनके गुण, अवतार एवं लीलादिकी कथाओंसे युक्त वाणियाँ सम्पूर्ण जगत्को

सज्जीवित, शोभित और पवित्र करती हैं, परन्तु जो वाणियाँ छन्द और अलङ्कारोंसे युक्त होनेपर भी भगवान्‌के गुणादिसे रहित हैं, वे तो वस्त्रादिसे अलंकृत शवतुल्य ही हैं—यही सज्जनोंका मत है ॥ १२ ॥

स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये
स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ।
यशो वितन्वन् व्रज आस्त ईश्वरो
गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥ १३ ॥

जो श्रीहरि अपने द्वारा रचित वर्णाश्रमादि धर्मकी मर्यादाओंके पालन एवं देवताओंके सुख तथा कल्याणके लिए यदुवंशमें अवतरित हुए हैं, वे व्रजमें रहकर ईश्वरीय यशका विस्तार कर रहे हैं। भगवान्‌का यश सम्पूर्णरूपसे मङ्गलकारी है। देवता सर्वदा इसका गान किया करते हैं ॥ १३ ॥

तन्त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं
त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं
द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥

आज मैं निश्चय ही उन्हें देखूँगा। वे साधु-महात्माओंके आश्रयदाता और गुरुस्वरूप हैं। उनके रूपकी रमणीयता तीनों लोकोंको मोहित करनेवाली है। जिनके नेत्र हैं, उनके लिए वे महोत्सवरूप हैं अर्थात् उन्हें महानन्द देनेवाले हैं। विष्णुके वक्षःस्थलपर विलास करनेवाली लक्ष्मीजीके भी वे अभिलषित आश्रय मूर्तिमान्-स्वरूप हैं। आज तो प्रभात कालसे ही मुझे मङ्गल शकुन दिखायी दे रहे हैं ॥ १४ ॥

अथावरूढः सपदीशयो रथात्
प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ।
धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं
नमस्य आभ्याञ्च सखीन् वनौकसः ॥ १५ ॥

जैसे ही वे मुझे दिखायी देंगे, मैं उसी समय रथसे उतर जाऊँगा। आत्म-साक्षात्कारके लिए पुरुषश्रेष्ठ बलराम और कृष्णके जिन चरणकमलोंको बड़े-बड़े योगी हृदयमें धारण करते हैं, मैं उन चरणोंको साक्षात् प्राप्त करके उनपर निश्चय ही प्रणत हो जाऊँगा। मैं उन दोनों महात्माओंके साथ वनमें विहार करनेवाले एक-एक गोपबालकोंको भी प्रणाम करूँगा ॥ १५ ॥

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः
शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ।
दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा
प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥

जब श्रीकृष्ण मुझे अपने श्रीचरणकमलोंमें प्रणत होते हुए देखेंगे, तब वे सर्वशक्तिमान् प्रभु मेरे सिरपर अपना करकमल रख देंगे। इन्हीं करकमलोंसे वे कालसर्पके अत्यधिक वेगसे उद्विग्न एवं भयभीत शरणागत मनुष्योंको अभय प्रदान करते हैं ॥ १६ ॥

समर्हणं यत्र निधाय कौशिक-
स्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् ।
यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं
स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७ ॥

इन्द्र एवं राजा बलिने भगवान् श्रीकृष्णके इन करकमलोंमें पूजाकी सामग्री (दान-सङ्कल्प-जल) भेंट करके तीनों लोकोंका आधिपत्य—इन्द्र-पद प्राप्त कर लिया था तथा इन्हीं दिव्य (मानसरोवरमें खिलनेवाले) सुवासित पुष्पके समान अपने सुगन्धित करकमलोंके स्पर्शसे उन्होंने रासविहार करते हुए व्रजकामिनियोंकी विहार-जनित थकानको दूर किया था ॥ १७ ॥

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं
क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥

यद्यपि मैं कंसका दूत हूँ और उसीके द्वारा भेजा जा रहा हूँ, तथापि अच्युत भगवान् मुझे अपना शत्रु नहीं समझेंगे, क्योंकि वे समदर्शी हैं, सर्वज्ञ हैं, चित्तके अन्दर भी हैं और बाहर भी हैं। वे सभीके अन्तर्यामी हैं। क्षेत्रज्ञरूपमें वे अपनी निर्मल दृष्टिके द्वारा सभीके कार्योंको प्रत्यक्षरूपसे देखा करते हैं (बाहरसे कंसके अनुसार चलनेपर भी हृदयमें तो मैं श्रीकृष्णका ही अनुवर्तन करता हूँ। अतएव हृदयमें स्थित भगवान् श्रीकृष्ण मेरे समस्त कार्यकलापोंको जानते हैं) ॥ १८ ॥

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं
मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा।
सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो
बोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥

जब वे अपने चरणोंमें पड़े हुए और हाथ जोड़े हुए मुझे देखेंगे, तब वे कृपामृतसिक्त चितवनसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखेंगे, उसी समय मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे और मैं निर्भय हो जाऊँगा। निर्भय होकर सदैवके लिए परमानन्दमें निमग्न जाऊँगा ॥ १९ ॥

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं
दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम्।
आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे
बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥

तत्पश्चात् जब वे बान्धव-श्रेष्ठ (घनिष्ठ मित्र) स्व-कुटुम्बी और एकमात्र अपने ही सेवकके रूपमें मुझे पहचानकर अपनी विशाल भुजाओंसे मेरा आलिङ्गन करेंगे, उसी क्षण मेरी देह अत्यन्त पवित्र हो जायेगी और मेरे कर्मजनित समस्त बन्धन शिथिल पड़ जायेंगे ॥ २० ॥

लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं
मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततैत्युरुश्रवाः।

तदा वयं जन्मभृतो महीयसा
नैवाद्गतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥

विपुलकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णका यश सर्वत्र व्यापक है। जब वे मेरा आलिङ्गन कर चुके होंगे, तब मैं उनके समक्ष हाथ जोड़कर प्रणत होकर खड़ा हो जाऊँगा। उस समय वे 'हे अक्रूर! हे चाचा! हे तात!' इस प्रकारसे मुझे सम्बोधित करेंगे, तब मेरा जन्म सार्थक हो जायेगा। मैं अहोभाग्य हो जाऊँगा। भगवान् श्रीकृष्णने जिसे अपनाया नहीं, आदर नहीं दिया, सम्भाषण नहीं किया, उसका तो जन्म निष्फल ही है, उसके जीवनको धिक्कार है ॥ २१ ॥

न तस्य कश्चिद्वियतः सुहृत्तमो
न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२ ॥

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णके लिए न कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय, न उनका कोई सुहृद् है और न शत्रु, उनके लिए कोई भी तिरस्कार अथवा उपेक्षाके योग्य नहीं है, तथापि जो कल्प-वृक्षसे जिस प्रकारकी कामना करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको जो जिस प्रकारसे भजता है, उसी रूपमें वे उन्हें प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

किञ्चाग्रजो मावनतं यदूत्तमः
स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ।
गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं
सम्प्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥

यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णके बड़े भाई बलदेव भी जब मुझे विनीत भावसे हाथ जोड़कर खड़ा हुआ देखेंगे, तब मन्द-मन्द मुसकानके साथ मुझे हृदयसे लगा लेंगे और मेरे जुड़े हुए हाथोंको पकड़कर घरके भीतर ले जायेंगे। घरमें आसनादि प्रदानकर सब प्रकारसे

मेरा सत्कार करेंगे। इसके बाद मुझसे पूछेंगे कि “हमारे आत्मीय वसुदेवजी आदिके साथ कंस किस प्रकारका व्यवहार करता है?” ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि।

रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! रथारूढ़ श्वफल्क-पुत्र अक्रूर मार्गमें इस प्रकार श्रीकृष्णका गहन चिन्तन करते-करते गोधूलिकी शुभ लग्नमें नन्दगाँव पहुँचे। उस समय सूर्यदेव अस्ताचलकी ओर जा रहे थे ॥ २४ ॥

पदानि तस्याखिललोकपाल-

किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।

ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि

विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥ २५ ॥

हे राजन्! जिनके चरणकमलोंकी विमल रेणुको सभी लोकपाल अपने-अपने किरीटोंके द्वारा सेवन करते हैं, अक्रूरजीने गोष्ठमें (ब्रजमें) श्रीकृष्णके पद्म-यव-अङ्कुश आदि चिह्नोंसे युक्त चरणोंसे अङ्कित उस रेणुको देखा। इन विलक्षण चिह्नोंको देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पृथ्वीने आभूषण धारण किये हों अथवा मानो ब्रज पृथ्वीकी सर्वश्रेष्ठ शोभाका आश्रय हो ॥ २५ ॥

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः

प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।

रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत

प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥ २६ ॥

इन चरणचिह्नोंके दर्शनसे अक्रूरजीके हृदयमें आनन्द इतना अधिक बढ़ गया कि उनमें सम्भ्रम उपस्थित हो गया अर्थात् वे अपनेको सँभाल न सके। प्रेमके कारण उन्हें रोमाञ्च हो आया

और विह्वलतावश आँखोंसे आँसू प्रवाहित होने लगे। वे उसी समय रथसे कूदकर भूमिपर उतर आये और “अहो! यह वही मेरे प्रभुके श्रीपादपद्मोंसे स्पृष्ट धूलि-रेणु है”—गद्गदस्वरसे यह कहकर उस चरण-धूलिमें बार-बार लोटने लगे ॥ २६ ॥

देहं भृत्यामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम्।

सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥

हे राजन्! कंसके आदेशसे आरम्भ करके भगवान् कृष्णके श्रवण एवं दर्शन पर्यन्त अक्रूरजीके चित्तकी जैसी अवस्था रही है, यही जीवोंके देह-धारणका परम लाभ है। जिस प्रकारसे वे दम्भ, भय और शोकका त्याग करके श्रीचरण-चिह्नित व्रज-रजमें लोटपोट हुए हैं, वही जीवमात्रका परम पुरुषार्थ है ॥ २७ ॥

ददर्श कृष्णं रामञ्च व्रजे गोदोहनं गतौ।

पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ।

सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥

ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ।

शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ।

पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥

प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती।

अवतीर्णौ जगत्पथे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥

दिशो वित्तिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया।

यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥

इसके बाद अक्रूरजीने व्रजमें पहुँचकर गोदोहनके स्थानपर निखिल सौन्दर्यके आश्रय श्रीकृष्ण एवं बलरामको देखा। भगवान् श्रीकृष्णने पीताम्बर धारण कर रखे थे और बलरामने नीलाम्बर। उनके नेत्र शरत्कालीन प्रस्फुटित कमलके समान थे। दोनोंने

अभी किशोरावस्थामें प्रवेश किया था। एक श्यामसुन्दर थे तो दूसरे गौरसुन्दर। दोनों ही परम सौन्दर्यके आधार थे। उनकी भुजाएँ घुटनोंका स्पर्श कर रही थीं, मुखमण्डलपर प्रसन्नताकी छटा थी। उनकी गति गज-शावकके समान मदमस्त थी। वे ध्वज, वज्र, अङ्कुश एवं पद्मसे चिह्नित श्रीचरणोंके द्वारा व्रजभूमिको सुशोभित कर रहे थे। दोनों ही महापुरुष थे और उनकी चितवन भी कृपा बरसा रही थी। मन्द-मन्द मुसकान उनके अधरोंपर सुशोभित हो रही थी। दोनों ही परम उदार एवं मनोरम विलासोंसे परिपूर्ण थे। उनके गलेमें वनमालाएँ और मणिजड़ित रत्नमालाएँ विभूषित हो रही थीं। दोनोंके ही श्रीअङ्ग पवित्र चन्दन, अङ्गराग आदि द्रव्योंसे अनुलिप्त थे। उन्होंने अभी-अभी स्नानकर निर्मल वस्त्र पहने थे। वे जगत्के आदिकारणस्वरूप एवं समस्त ब्रह्माण्डोंके अधिपति तथा प्रधान पुरुष थे। मात्र पृथ्वीके भार हरणके लिए वे मूर्तिभेदसे श्रीबलदेव एवं श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। हे राजन्! उस समय दोनों अपनी अद्भुत कान्तिसे दिग्मण्डलके अन्धकारको दूर करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सुवर्णसे परिव्याप्त मरकत पर्वत और रौप्य पर्वत प्रकाशित हो रहे हों ॥ २८-३३ ॥

रथात् तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः।

पपात चरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥

बलरामजी और श्रीकृष्णको देखते ही अक्रूरजी स्नेहसे विह्वल हो गये और रथसे शीघ्र ही नीचे कूद पड़े। उन्होंने उन दोनोंके चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया ॥ ३४ ॥

भगवद्दर्शनाद्बाष्पपर्याकुलेक्षणः

।

पुलकाचिताङ्ग औत्कण्ठ्यात् स्वाख्याने नाशकवृत् ॥ ३५ ॥

हे राजन्! भगवान्के दर्शनसे अक्रूरजीको इतना आनन्द हुआ कि उनके दोनों नेत्र आँसुओंसे भर गये। उनका रोम-रोम खिल उठा। उत्कण्ठासे अभिभूत होनेके कारण वे अपने नामतकका भी

उल्लेख नहीं कर पाये अर्थात् “मैं अक्रूर आपको प्रणाम करता हूँ”—इस प्रकारसे कहनेमें समर्थ नहीं हो पाये ॥ ३५ ॥

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना ।

परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥

प्रसन्न एवं प्रणतवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरके मनके भावको जान गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे चक्र-चिह्नित अपने हाथोंसे उन्हें उठाया और उन्हें आलिङ्गन-पाशमें बाँध लिया ॥ ३६ ॥

सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ।

गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥

पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।

प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥

तदनन्तर जब महामति अक्रूर विनीत भावसे परम मनस्वी बलरामके सम्मुख प्रणत होकर एवं अपने दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये, तब बलरामने उन्हें अपने हृदयसे लगाया। इसके बाद दोनों भाई उनके दोनों हाथोंको पकड़कर उन्हें घरके अन्दर ले गये। घरमें ले जाकर उनका स्वागत किया, उनसे सम्भाषण किया, कुशल-क्षेम पूछा। उत्तम आसन प्रदान किया और शास्त्रोचित (सर्वदेवमयोऽतिथिः) विधिके अनुसार पाद-प्रक्षालन करके उन्हें मधुपर्क (शहदमिश्रित दही) प्रदान किया ॥ ३७-३८ ॥

निवेद्य गाञ्चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ।

अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने अतिथि अक्रूरको बड़े आदरके साथ एक गाय प्रदान की तथा पाद-संवाहन आदि कार्योंके द्वारा उनकी थकानको दूर किया। इसके बाद परम श्रद्धाके साथ उत्तम गुणोंसे युक्त पवित्र और स्वादिष्ट अन्नका भोजन कराया ॥ ३९ ॥

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ।

मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः ॥ ४० ॥

जब अक्रूर भोजन कर चुके, तब परम धर्मज्ञ बलदेवने उन्हें प्रीतिके साथ ताम्बूल, इलायची आदि सुगन्धित मुखवास और गन्धमाला आदि द्रव्य प्रदान किये। इस सत्कारसे अक्रूर परम आनन्दित हुए ॥ ४० ॥

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे।

कंसे जीवति दाशार्हं शौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥

आतिथ्य सत्कार हो जानेके बाद नन्दबाबाने अक्रूरसे पूछा—हे दशार्ह-वंशज अक्रूर! आप क्रूर कंसके जीवित रहते हुए वहाँ कैसे रह पाते हैं? आपकी दशा तो पशुघातक (कसाई) के संरक्षणमें पालित भेड़ जैसी है (न जाने वह किस दिन आपकी हत्या कर देगा) ॥ ४१ ॥

योऽवधीत् स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः।

किन्नु स्विन्वत् तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥

आत्मतृप्तिमें ही लगे हुए उस दुष्ट स्वार्थी और पापीने अपनी रोती-बिलखती बहनकी उपस्थितिमें ही उसके बच्चोंको मार डाला, आप उसीकी प्रजा हैं। आपके कुशल-मङ्गलकी सम्भावना भी कैसे की जा सकती है—मैं यही विचार कर रहा हूँ ॥ ४२ ॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः।

अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदक्रूरागमनं नाम

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

महाराज नन्दरायके इस प्रकारके आतिथ्य, मधुर वाणी द्वारा सत्कार एवं कुशल-मङ्गलके प्रश्नालापोंसे अक्रूरके पथकी सारी थकान दूर हो गयी ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अड़तीसवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी मथुरा-यात्राके समय गोपियोंकी खेदोक्ति और कालिन्दी जलमें अक्रूरका विष्णुलोक दर्शन

श्रीशुक उवाच—

सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ।
लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! तदनन्तर अक्रूरने बलराम तथा श्रीकृष्ण द्वारा भी यथेष्ट सम्मान प्राप्त किया। इसके बाद वे सुखपूर्वक पर्यङ्कपर बैठ गये। मार्गमें आते समय उन्होंने जो भी मनोरथ किये थे, वे सब पूर्ण हो गये ॥ १ ॥

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथापि तत्परा राजन् नहि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥ २ ॥

हे महाराज! निखिल सम्पत्तियोंके निधान-स्वरूप भगवान्‌के स्वयं प्रसन्न हो जानेपर लोकमें ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्राप्त न हो सके? तथापि उनके ऐकान्तिक प्रेमी भक्त उनसे कुछ भी कामना नहीं करते (अक्रूरने भगवान्‌से अनन्य भक्तिकी कामना की) ॥ २ ॥

सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः ।
सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने सायंकालीन भोजन समाप्त किया और बादमें अक्रूरके पास गये। उन्होंने अपने बन्धु-बान्धवों तथा सुहृदोंके प्रति कंसके व्यवहार एवं उसकी आगेकी योजनाओंके सम्बन्धमें पूछताछ की ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच—

तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः ।
अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने पूछा—हे तात! आप कुशलतापूर्वक तो आये न? मार्गमें आपकी यात्रा सुखद रही न? मैं आपके लिए मङ्गल-कामना करता हूँ। हे सौम्य! हमारे आत्मीय सुहृद्, बन्धु-बान्धव एवं कुटुम्बी सुखी एवं स्वस्थ तो हैं न? ॥४॥

किन्तु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये।

कंसे मातुलनामन्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥५॥

इस विषयमें आपसे और प्रश्न पूछना मेरे लिए युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि हे अक्रूर चाचा! कंस तो हमारा नामके लिए मामा है। वह हमारे वंशके लिए भयङ्कर व्याधि-स्वरूप कुलाङ्गार ही है। इस समय तो उसकी अति वृद्धि हो रही है। उसके रहते अपने वंशवालों (जातीय) बन्धुओं, आपकी और प्रजाओंके मङ्गलकी क्या बात पूछें? ॥५॥

अहो अस्मदभूद्भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः।

यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥६॥

अहो! मेरे कारण निरपराध मेरे पूज्य पिताजी एवं माताजीको अनेक दुःख भोगने पड़े। मेरे ही कारण उनके पुत्रोंकी अकाल मृत्यु हुई और मेरे ही कारण शृंखलाओं (जञ्जीरों) से बँधकर उन्हें कारागारमें बन्द होना पड़ा ॥६॥

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम्।

सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥७॥

हे चाचा! मैं बहुत दिनोंसे अपने किसी आत्मीय-सुहृद्से साक्षात् मिलना चाहता था। सौभाग्यसे आज मेरा अभीष्ट पूर्ण हुआ। अब आप यह बतलाइये कि आपका यहाँ शुभागमन किस कारण हुआ? ॥७॥

श्रीशुक उवाच—

पृष्टो भगवता सर्व वर्णयामास माधवः।

वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥८॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर मधुवंशी अक्रूरने निष्कपटरूपसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया कि किस प्रकार कंस यदुवंशियोंके प्रति सदैव शत्रु-भाव ठाने रहता है और किस प्रकार वसुदेवजीको मार डालनेकी चेष्टामें लगा रहता है ॥ ८ ॥

यत्सन्देशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम्।

यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥

अक्रूरने निवेदन किया कि धनुर्यज्ञके निमन्त्रणरूप कपट-संवादको देनेके लिए कंसने उन्हें दूत बनाकर भेजा है। चाणूर, मुष्टिक आदि योद्धागण यद्यपि धनुर्यज्ञ सभामें मल्ल-क्रीड़ाके छलसे सम्मिलित होंगे, किन्तु उद्देश्य होगा श्रीकृष्ण एवं बलरामका वध—इस कूटचक्रको भी अक्रूरने श्रीकृष्णके समक्ष प्रकाशित कर दिया। देवर्षि नारदने वसुदेवसे बलराम एवं श्रीकृष्णके जन्मका विवरण कंसको बतलाया था, उसका भी श्रीकृष्णके निकट यथारूप उल्लेख कर दिया ॥ ९ ॥

श्रुत्वाक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा।

प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञा दिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥

अक्रूरके इन वचनोंको सुनकर महाबलशाली शत्रुविनाशन श्रीकृष्ण और बलराम हँसने लगे। उन्होंने अपने पिता नन्द महाराजको राजा कंसके आदेशके बारेमें बतला दिया (परन्तु उसके दुष्ट अभिप्रायको उनके समक्ष व्यक्त नहीं किया) ॥ १० ॥

गोपान् समादिशत् सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः।

उपायनानि गृहीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥ ११ ॥

तब नन्द महाराजने गोपोंको आदेश दिया—तुमलोग दूध, दही और घृत एकत्र करो, उत्तम भेंटोंकी विविध सामग्रियाँ भी ले लो और अपने-अपने छकड़े जोत लो ॥ ११ ॥

यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान्।

द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल।

एवमाघोषयत् क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥

हम कल मथुरा जायेंगे। वहाँ घृतादि द्रव्योंको कर-स्वरूप राजा कंसको प्रदान करेंगे। इसके बाद वहाँ होनेवाले धनुर्यज्ञ महोत्सवको देखेंगे। देशकी सारी प्रजा उस महोत्सवको देखने जा रही है। इस प्रकार महाराज नन्दने अपने गाँवके कोतवालके (रक्षक पुरुषोंके) द्वारा सारे व्रजमें यह घोषणा करा दी ॥ १२ ॥

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम्।

रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥

जब कृष्णगतप्राणा गोपियोंने यह समाचार सुना कि राम-कृष्णको मथुरा ले जानेके लिए अक्रूर व्रजमें आये हैं, तब वे अतिशय सन्तप्त हो गयीं (गोपियाँ श्रीकृष्ण एवं श्रीबलरामके किसी अनिष्टकी आशङ्कासे भयभीत नहीं हैं, उनका सन्ताप कृष्ण विरहके कारण है) ॥ १३ ॥

काश्चित् तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः।

संसददुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४ ॥

इस समाचारसे भद्रा आदि गोपियोंके हृदयमें इतना ताप हुआ कि वे जोर-जोरसे निःश्वास छोड़ने लगीं। उनकी मुखश्री मलिन हो गयी। श्यामला आदि गोपियाँ इतनी शोकविह्वल हो गयीं कि उनके वस्त्र, कङ्कन, जूड़े सभी शिथिल पड़ गये और उन्हें इसका पता भी नहीं चला ॥ १४ ॥

अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः।

नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥

चन्द्रावली आदि गोपियों द्वारा श्रीकृष्णका स्मरण (निरन्तर ध्यान) होनेके कारण उनकी चित्तवृत्तियाँ एवं चक्षु आदि इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्योंसे निवृत्त हो गयीं। उन्हें मुक्तजनोंके समान इस

संसारका अथवा देहका कुछ भी ज्ञान न रहा। वे जैसे समाधिस्थ हो गयी थीं ॥ १५ ॥

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ।

हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥

राधा आदि गोपियोंको श्रीकृष्णका अनुराग, उनका मन्द मधुर हास्य, उस हास्यसे प्रकाशित स्नेह, प्रेमभरी चित्तवन, विचित्र पदोंसे अलंकृत वाणी, हृदयको स्पर्श करनेवाले वचनोंका स्मरण होने लगा, जिसके कारण वे मुग्ध-सी होकर अचेत हो गयीं ॥ १६ ॥

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ।

शोकापहानि नर्माणि प्रोद्धामचरितानि च ॥ १७ ॥

चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः ।

समेताः सङ्ग्रहः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥

कृष्णगत हृदयवाली दूसरी गोपियाँ मन-ही-मन भगवान्की सुललित गति, भाव-भङ्गिमा, स्निग्ध हास्यके साथ मधुर चित्तवन, शोक-सन्तापको दूर करनेवाले परिहासपूर्ण वचन, हँसी-ठिठोलियाँ, उदार आचरण और वीरतापूर्ण कार्य आदिका स्मरण करती हुई श्रीकृष्णके विरहके भयसे कातर हो गयीं। विरह-व्यथासे भयभीत होनेके कारण उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उनका मन सदैव भगवान् अच्युतमें ही लीन रहता था। वे दल-की-दल बाँधकर नन्दबाबाके गृहमें उपस्थित होकर एक साथ मिलकर इस प्रकार कहने लगीं ॥ १७-१८ ॥

श्रीगोप्य ऊचुः—

अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया

संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।

तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं

विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥

गोपियोंने कहा—हाय विधाता ! तुम्हारे हृदयमें दयाका लेश भी नहीं है। पहले तो तुम मित्रता एवं स्नेहके द्वारा जगत्के प्राणियोंको परस्पर मिला देते हो, परन्तु अभी उनकी इच्छाएँ पूर्ण भी नहीं हो पातीं, वे तृप्त भी नहीं हो पाते कि आप व्यर्थ ही उनका वियोग करवा देते हो। तुम्हारा यह भ्रमपूर्ण खेल बालकोंकी चेष्टाके समान निरर्थक ही है। भला, ऐसे विच्छेदसे तुम्हारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है? ॥ १९ ॥

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं
मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नमम् ।
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं
करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥

हे विधाता ! तुमने सुरम्य कपोल, काले घुँघराले केश, सुघड़ एवं उन्नत नासिका और मन्द-मन्द हास्यसे विभूषित मुकुन्द श्रीकृष्णका सर्वसन्तापहारी मुखकमल हमें एक बार दिखलाया और अब उसे हमारी आँखोंसे ओझल करना चाहते हो। अरे विधना ! तुम्हारा यह कार्य अतिशय निन्दनीय नहीं तो और क्या है? ॥ २० ॥

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म न-
श्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं
त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥

अरे विधाता ! यह कितने दुःखकी बात है, हम तो इन आँखोंसे मधुसूदनके शरीरके एक-एक अङ्गमें—चाहे वे नेत्र हों या मुखमण्डल—तुम्हारी सृष्टिकी निपुणता देखा करती थीं। आज अतिशय क्रूर तुम ही 'अक्रूर' इस छद्म नामको धारणकर यहाँ आये हो। तुमने हमें जो आँखें दीं, उन्हें ही दत्तापहारीके (दान देकर वापस लेनेवालेके) समान हर लेना चाहते हो। तुम महाविज्ञ हो, हमारे सारे रहस्योंको जानते हो, फिर भी कृष्णसे वियोग करवाकर अज्ञके (मूर्खके) समान हमें नेत्रहीन बनाना चाहते हो।

उनके अतिरिक्त हम और क्या देखेंगी? अतएव हम निश्चय ही अन्धी हो जायेंगी ॥ २१ ॥

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः
समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत।
विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पती-
स्तद्वास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥

विधाताको उलाहना देना छोड़कर परस्पर कहने लगीं—हे सखियो! हमलोग तो अपने घर-द्वार, स्वजन, पुत्र, पति सब कुछ छोड़कर उनकी दासी बनीं और इन्हींके लिए आज हम शोकातुर हो रही हैं। हाय! वे नन्दनन्दन जिन्होंने हमारे हृदयोंको अपनी मधुर मुस्कान आदिसे वशीभूत कर लिया था, आज हमारी ओर देखना भी नहीं चाहते। सखी! उनका सौहार्द ऐसा ही था, जो क्षणभरमें नष्ट हो गया। अथवा उन नन्दपुत्रके लिए ऐसा करना विचित्र बात नहीं है, क्योंकि वे तो नित्य नूतन प्रेमियोंसे ही नेह लगाया करते हैं। हाय! हम तो अब दोनों लोकोंसे भ्रष्ट हो गयीं ॥ २२ ॥

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः
सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम्।
याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः
पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥

वे ईर्ष्या भावसे कहने लगीं—सखियो! आजकी रात्रिका प्रातःकाल मथुराकी रमणियोंके लिए निश्चितरूपसे बड़ा ही मङ्गलमय होगा। उनके प्रति ब्राह्मणोंका आशीर्वाद आज सत्य और सफल हो जायेगा। जब हमारे व्रजराज नन्दनन्दन कृष्ण अपनी तिरछी चितवन और मन्द-मधुर मुसकानसे युक्त मुखारविन्दका उत्कलित आसव अर्थात् निःसृत मादकमधु वितरण करते हुए मथुरापुरीमें प्रवेश करेंगे, तब वे उसका पानकर धन्य-धन्य हो जायेंगी ॥ २३ ॥

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितै-
 र्गृहीतचित्तः परवान् मनस्वी अपि ।
 कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला
 ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥

देखो मुग्धा सखियो! श्रीकृष्ण यद्यपि पिता नन्दबाबा आदि गुरुजनोंके अनुगत हैं और धीर स्वभावसे युक्त हैं, तथापि मथुरापुरीकी नारियाँ अपने सुकोमल एवं मधुरसे भी मधुरतर मनोहर वचनोंसे उनके चित्तको वशमें कर लेंगी और अपनी आकर्षक एवं सलज्ज हास्य-विलाससे उन्हें मुग्ध (विभ्रान्त) कर लेंगी। तब वे हमारी जैसी कला-विलास एवं छल-भङ्गिमासे रहित गँवार ग्वालिनोंके पास क्यों लौटने लगे? वे वहाँ जाकर सब कुछ भूल जायेंगे ॥ २४ ॥

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते
 दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ।
 महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं
 द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥

आज मथुरामें समस्त दाशार्ह, भोज, अन्धक एवं यदुवंशी (सात्वतगण) देवकीनन्दन श्रीकृष्णका दर्शन कर धन्य एवं कृतकृतार्थ हो जायेंगे। मार्गमें जाते समय अन्यान्य जो लोग रमारमण (सौभाग्यकी अधिष्ठात्री स्वयं लक्ष्मीजीके प्रिय), गुणसागर, नटनागर, श्यामसुन्दरका दर्शन करेंगे, उनके भी नेत्रोंके लिए निश्चय ही आज बड़ा महोत्सव होगा ॥ २५ ॥

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भू-
 दक्रूर इत्येतदतीवदारुणः ।
 योऽसावनाशवास्य सुदुःखितं जनं
 प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥

व्रजगोपियाँ अक्रूरके प्रति आक्रोश भावसे कहने लगीं—जो व्यक्ति ऐसा निष्ठुर हो, 'अक्रूर' नाम उसे शोभा नहीं देता। जिसके

हृदयमें तनिक भी दया न हो, वह तो निश्चय ही क्रूर है। अरे! यह अकरुण है कि हम अबलाओंके प्रति कोमलतापूर्ण आश्वासन वचन भी नहीं कहता। यह प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हमारे प्राणनाथ श्यामसुन्दरको हरणकर बहुत दूर अगम्य स्थानपर ले जा रहा है। जो निष्ठुर कंसका दूत है, वह तो अवश्य ही निष्ठुर होगा—इसमें क्या आश्चर्य है? ॥ २६ ॥

अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं,
तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः।
गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं
दैवञ्च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥

तदनन्तर अपने जीवनको धिक्कारती हुई कहने लगीं—हाय! हाय! श्रीकृष्णका चित्त भी बड़ा निष्ठुर है। हमें रोते हुए देखकर भी ये रथपर चढ़ ही गये। ये दुर्मद (मूर्ख) श्रीदाम आदि गोपगण भी छकड़ोंपर चढ़कर उनके साथ चलनेके लिए कितने आतुर हो रहे हैं! हमारे बड़े-बूढ़े भी इन्हें जानेसे न रोककर—इस विषयकी उपेक्षा कर रहे हैं। भाग्य भी हमारे प्रतिकूल ही आचरण कर रहा है। दैव यदि हमारे अनुकूल होता, तो किसी-न-किसी विघ्नके द्वारा इनके जानेमें बाधा उत्पन्न करता ॥ २७ ॥

निवारयामः समुपेत्य माधवं
किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः।
मुकुन्दसङ्गात्रिमिषाद्धदुस्त्यजाद्-
दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥

पुनः परस्पर परामर्शकर साहसका अवलम्बन करके कहने लगीं—सखी, चलो, हम स्वयं ही हस्त, चरण अथवा वस्त्रोंको पकड़कर प्राणप्यारे श्यामसुन्दरको रोकेंगी। कुलके बड़े-बूढ़े एवं बान्धव भला हमारा क्या कर लेंगे? हमलोग आधे क्षणके लिए भी प्राण-प्रियतम नन्दनन्दनका सङ्ग छोड़नेमें असमर्थ थीं, किन्तु दैवने हमारे चित्तको प्राणवल्लभसे वियोग करवाके हमें नितान्त

दीन बना दिया है। ब्रजजीवन श्रीकृष्णके बिना हमें मृत्युसे भी क्या भय है! ॥ २८ ॥

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र-

लीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम् ।

नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं

गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥ २९ ॥

हे गोपियो! श्रीकृष्णकी अनुरागभरी मन्द-मधुर मुसकान, विलासपूर्ण तिरछी चितवन, सङ्केतकी मधुर-मदिर वार्त्ताओंसे युक्त राससभाकी वे आलिङ्गनमयी विशाल रात्रियाँ—जिन्हें हमने उनके साथ क्षणभरके समान ही बिता दी थीं, अब उनके बिना इस दुष्पार विरह-व्यथाको हम एक क्षणके लिए भी किस प्रकार सह पायेंगी? ॥ २९ ॥

योऽहः क्षये ब्रजमनन्तसखः परीतो

गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ।

वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन

चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥

जो प्रतिदिन सायंकालमें अनन्त भगवान् बलदेवके साथ गायोंके खुरोंसे उठी, धूलि-रञ्जित अलकावलियों एवं वनमालासे अलंकृत होकर तथा ग्वालबालोंसे घिरकर मधुरातिमधुर वेणु-ध्वनि करते हुए ब्रजमें प्रवेश करते थे, तब मन्दहास्यपूर्ण मनमोहक कटाक्षोंसे हमारे हृदयोंको चुरा लेते थे। अब उन प्राण-प्रियतमके बिना हम कैसे जीवन धारण कर सकेंगी? ॥ ३० ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं बुवाणा विरहातुरा भृशं

ब्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।

विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं

गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! इस प्रकारसे परस्पर वार्त्तालाप करनेके बाद गोपियाँ आसन्न विरहसे अत्यधिक आतुर हो गयीं। इन व्रजनारियोंके मन, प्राण और हृदय सभी कृष्णगत थे। वे लोकलज्जाको परित्यागकर “हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव”—इस प्रकार जोर-जोरसे सुललित स्वरसे पुकारती हुई रोने लगीं ॥ ३१ ॥

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ।

अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार गोपियाँ रातभर रोती-कराहती रहीं। अनन्तर सूर्योदय हुआ। अक्रूर सन्ध्या-वन्दनादि नित्य कर्मके उपरान्त रथपर सवार हुए और रोती बिलखती गोपियोंकी ओर किञ्चित् मात्र भी दृष्टि न डालकर रथको हाँक ले चले। (गोपियोंके इसी अनादरके कारण अक्रूरको स्यमन्तक मणिके प्रसङ्गमें श्रीकृष्णसे विच्छेद दुःख, द्वारका त्याग, अप-यश एवं वाराणसी-वास आदि भोगने पड़े थे। यशोदाको बताया गया था कि कृष्ण एक दिनमें लौट आयेंगे—इसलिए उनके किसी कष्टका वर्णन नहीं हुआ है) ॥ ३२ ॥

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः।

आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससम्भृतान् ॥ ३३ ॥

नन्दादि गोपोंने घृतादिसे भरे हुए बहुत-से कुम्भोंको (कलशोंको) राजा कंसके लिए उपहारस्वरूप ले लिया और उन्हें छकड़ोंपर डालकर श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चल दिये ॥ ३३ ॥

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुव्रजिताः।

प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥

गोपियाँ भी अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके रथके पीछे-पीछे चलती हुई उनके पास पहुँचीं। वे उनकी चितवन एवं अनुरागपूर्ण मुसकानसे तनिक-सी आनन्दित हुई और उनके प्रत्यादेश (सन्देश) की आकाङ्क्षा करती हुई वहीं खड़ी हो गयीं, हिली-डुली नहीं

(गोपियोंको नयनोंसे तो आश्वासन प्राप्त हुआ है कि “मैं तुम्हारे समीप जल्दी ही चला आऊँगा”, परन्तु वचनकृत प्रत्युत्तर नहीं प्राप्त हुआ है) ॥ ३४ ॥

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ।

सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥

यदुवंश-शिरोमणि श्रीकृष्णने देखा कि गोपियाँ उनके मथुरा-प्रस्थानसे अतिशय सन्तप्त हो रही हैं। तब प्रेमपूर्ण वचनरूपी दूतके द्वारा “मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा”—इस प्रकार प्रेममय सन्देश देकर उन्हें सान्त्वना देनेका प्रयास किया। श्रीकृष्णको भी तीव्र विरह-वेदना हो रही थी, परन्तु उन्होंने उसे अपने गाम्भीर्यगुणसे छिपा लिया ॥ ३५ ॥

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ।

अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥

गोपियोंको जब तक रथकी ध्वजा और रथके पहियेसे उठी धूल दीखती रही, तब तक वे चित्रलिखित-सी कठपुतलीके समान उसी स्थानपर ज्यों-की-त्यों खड़ी रहीं, परन्तु श्रीकृष्णके अनुरागमें रङ्गा हुआ उनका मन तो प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके साथ ही चला गया ॥ ३६ ॥

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्त्तने ।

विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥

अभी भी उनके मनमें आशा थी कि शायद श्रीकृष्ण कुछ दूर जाकर लौट आयें, किन्तु जब नहीं लौटे, तब वे निराश हो गयीं और अपने-अपने घर चली आयीं। अब गोपियाँ सदा सर्वदा रात-दिन शोक-सन्तप्त रहा करती थीं। वे नन्दगाँवके निकट स्थित उद्धव-क्यारी नामक वनमें विरह-सन्तापग्रस्त होकर प्राणवल्लभ श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करती हुई किसी प्रकार अपने शोक-सन्तापको हलका करती थीं ॥ ३७ ॥

भगवानपि सम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप।

रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥

हे राजन्! इधर बलरामजी एवं अक्रूरके साथ श्रीकृष्ण वायुके समान चलनेवाले रथसे शीघ्र ही पापनाशिनी यमुनाजीके किनारे पहुँचे ॥ ३८ ॥

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम्।

वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥

वहाँ उन्होंने यमुनाके जलसे आचमन किया और स्फटिक मणि एवं अमृतके समान स्वच्छ, स्वादु, अमृतोपम जलका पान किया। बादमें वृक्षोंके झुरमुटके निकट स्थित रथपर पुनः बलदेवजीके साथ सवार हो गये ॥ ३९ ॥

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि।

कालिन्द्या हृदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥

अक्रूरका हृदय शत्रु-भयसे आशङ्कित हो रहा था। उन्होंने बलराम एवं श्रीकृष्णको रथमें बिठाकर उनसे आज्ञा ली और ब्रह्महृदमें (यमुना-कुण्डमें) जाकर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार स्नान करने लगे ॥ ४० ॥

निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम्।

तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥

उस कुण्डमें स्नान-आचमनके पश्चात् वे जलमें डुबकी लगाकर सनातन वेद-मन्त्रोंका (गायत्रीका) जाप करने लगे। वे जप कर ही रहे थे कि उन्होंने उस यमुनाके जलके भीतर राम-कृष्णको मिलित विग्रहके रूपमें अर्थात् एक-साथ बैठे हुए देखा (व्रजमें अपने मन्त्रके ध्येयरूप [श्रीनारायण] से भी अति अद्भुत श्रीकृष्णके रूपका दर्शनकर अक्रूरकी उनके उस रूपमें ही निष्ठा हो गयी थी, किन्तु अब श्रीकृष्णने व्रजवासियोंके मनःक्षोभके कारण अपने उस रूपको विस्मृत कराकर पुरातन श्रीनारायणरूपमें

ही निष्ठा स्थापितकर उन्हें ब्रह्मलोक अर्थात् वैकुण्ठका दर्शन कराया) ॥ ४१ ॥

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः।

तर्हि स्वित् स्यन्दने नस्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥

तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः।

न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥

आनकदुन्दुभि वसुदेवजीके दोनों पुत्र तो रथके ऊपर बैठे थे, फिर वे यहाँ कहाँसे आ गये! क्या वे रथपर नहीं बैठे हैं? यह क्या हो गया! इस प्रकार शङ्कित-चित्तसे अक्रूरजी जलसे ऊपर उठे, तो देखा कि वे तो पूर्ववत् रथमें ही बैठे हुए हैं। वे सोचने लगे कि जलमें जो मैंने देखा था, क्या वह मिथ्या है अथवा मेरा भ्रम है। अतः पुनः निश्चय करनके लिए उन्होंने जलमें डुबकी लगायी (इस बार वे श्रीकृष्ण एवं बलरामकी माधुर्यमयी युगलमूर्ति नहीं देख पाये। गोपियोंके प्रति अवज्ञारूप अपराधके कारण उन्हें श्रीकृष्णके मधुर स्वरूपकी उपलब्धि नहीं हुई है) ॥ ४२-४३ ॥

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम्।

सिद्ध-चारण-गन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥

सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम्।

नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥

पुनः ब्रह्महृदमें डुबकी लगानेपर अक्रूरने फिर देखा कि सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं असुरगण सिर झुकाकार स्तुति कर रहे हैं, उनके सम्मुख अनन्त शेष विराजमान हैं। उनके सहस्र सिर—सहस्र फण हैं, प्रत्येक फणपर किरीट सुशोभित हो रहे हैं। उनका कमलनालके समान श्वेत वर्ण है और उज्ज्वल देहपर नीलाम्बर धारण कर रखा है। उन्हें (अनन्तको) देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो सहस्रों शिखरोंसे युक्त श्वेतगिरि कैलाश हो ॥ ४४-४५ ॥

तस्योत्क्षेपे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
 पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥
 चारुरप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ।
 सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥
 प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ।
 कम्बुकण्ठं निम्ननार्भि वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥
 बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ।
 चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥
 तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ।
 नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥ ५० ॥
 सुमहार्हमणिव्रात-किरीटकटकाङ्गदैः ।
 कटिसूत्र-ब्रह्मसूत्र-हार-नूपुर-कुण्डलैः ॥ ५१ ॥
 भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
 श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ५२ ॥
 सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ।
 सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥
 प्रह्लादनारदवसु-प्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ।
 स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥
 श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्यया ।
 विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥
 विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ।
 हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥
 गिरा गद्गदयास्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ।
 प्रणम्य मूढ्न्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदक्रूरप्रतियानं नाम
 एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

प्रिय परीक्षित्! अक्रूरने देखा कि उन सर्पराज अनन्त शेषकी गोदमें एक चतुर्भुज पुरुष विराजमान हैं। उनकी कान्ति नवीन जलधरके समान है। उन्होंने पीतवर्णके रेशमी वस्त्रोंको धारण कर रखा है। उनके नेत्र कमलपत्रके समान अरुण वर्णके हैं और स्वभाव अतिशय सौम्य एवं शान्त है। उनका मुखमण्डल अतीव मनोरम एवं आह्लादमय है। चितवनसे मधुर मुसकान झलक रही है, भ्रू-युगल अति सुन्दर हैं, नासिका सुघड़ एवं उन्नत है, दोनों कान सुचारुरूपसे गठित हैं, कपोलोंकी छटा निराली है, अधरोंपर अरुणिमा छा रही है। भुजाएँ घुटनों तक लम्बी एवं स्थूल हैं। स्कन्ध उन्नत एवं अत्याकर्षक हैं। वक्षःस्थल लक्ष्मीजीका निवास-स्थान है। कंठ शङ्खके समान त्रिवलीसे विभूषित हो रहा है। नाभि सुगभीर एवं त्रिवलीसे युक्त तथा उदर अश्वत्थ-पत्रके समान शोभायमान है। उन चतुर्भुज पुरुषका कटि-प्रदेश स्थूल एवं श्रोणिदेश (नितम्ब) विशाल है। दोनों जंघाएँ हाथीकी सूँडके समान सुगठित एवं बृहत् हैं, पिंडलियाँ एवं घुटने बड़े रमणीय हैं। दोनों पद-पङ्कज समुन्नत, गुल्फ (एड़ीके ऊपरकी गाँठें) और अरुण वर्णकी नखोंकी ज्योतिर्मय किरणोंसे समावृत हैं। चरणोंकी कोमल अङ्गुलियाँ और अङ्गुष्ठ नवीन और कोमल पंखुड़ियोंकी शोभाका तिरस्कार कर रहे हैं। उनके श्रीविग्रहपर महामूल्य मणियोंसे जड़ित किरीट, बाजुबन्द, वलय, करधनी, हार, नूपुर एवं कुण्डल तथा यज्ञोपवीत अनुपम शोभाको प्राप्त कर रहे हैं। उन्होंने श्रीकरकमलोंमें पद्म, शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण कर रखे हैं। विशाल वक्षःस्थल श्रीवत्स मणि एवं कण्ठ कौस्तुभ मणिसे समलंकृत हैं। उन्होंने मणियोंसे पिरोयी हुई माला धारण कर रखी है। सुनन्द, नन्दादि प्रमुख पार्षद, सनकादि ब्रह्मर्षि, ब्रह्मा, रुद्र आदि सुरेश्वर, मरीचि आदि नवसंख्यक ब्राह्मण-श्रेष्ठ-प्रजापति, प्रह्लाद, नारद आदि भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त, आठों वसु आदि उत्तम भक्तजन भिन्न-भिन्न भावोंसे निर्दोष एवं उत्तम वेद वाणी सम्मत रचनावलियों द्वारा उनकी स्तुति कर रहे हैं। श्री, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति,

कीर्ति, तुष्टि (अर्थात् ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश एवं वैराग्य— ये षडैश्वर्यरूप शक्तियाँ), इला (सन्धिनीरूप पृथ्वी शक्ति), ऊर्जा (अन्तरङ्ग लीलाशक्ति), विद्या-अविद्या (जीवोंकी मुक्ति और बन्धनमें कारणरूपा बहिरङ्गाशक्ति), ह्लादिनीशक्ति (अन्तरङ्गाशक्ति), तटस्था जीवशक्ति एवं माया आदि शक्तियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। भगवान्की इस अलौकिक झाँकीको देखकर अक्रूर परमानन्दमें निमग्न हो गये। उनके हृदयमें परम भक्तिका उद्रेक हो आया। शरीर रोमाञ्चित हो उठा, उनके समस्त अङ्ग कदम्ब-केशरकी भाँति पुलकित हो गये। भावाभिभूत होनेके कारण आर्द्र आँखोंसे आँसू प्रवाहित होने लगे, बड़ी सावधानीसे अर्थात् सत्त्वगुणका आश्रय लेकर (अथवा सात्त्विक भावोंके उदय होनेसे) वे सिर झुकाकर एवं हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने प्रणाम किया और धीरे-धीरे गद्गद वाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे।

भक्तके प्रति अनुग्रह भावसे भक्ताधीन भगवान् श्रीकृष्णने ऐसी अद्भुत लीला की कि यमुनाके जलमें अक्रूरने अति ऐश्वर्यमय वैकुण्ठका दर्शन किया, जिससे यह घाट 'अक्रूर तीर्थ' के रूपमें चिरकालके लिए प्रसिद्ध हो गया। अक्रूरने विचार किया कि जो श्रीकृष्ण हैं, वही नारायण हैं और जो नारायण हैं, वही श्रीकृष्ण हैं ॥ ४६-५७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उनतालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चत्वारिंशोऽध्यायः

अक्रूरके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

श्रीअक्रूर उवाच—

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोषाद्—
ब्रह्माविरासीदद्यत एष लोकः ॥ १ ॥

श्रीअक्रूरने कहा—हे प्रभो! आप चराचर समस्त जगत्के एकमात्र कारण हैं। आप सभीके आदि, अविनाशी, महापुरुष, नारायण-स्वरूप (परव्योमके अधिपतिरूपमें विराजमान) हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके नाभिस्थानसे उत्पन्न पद्मकोषसे सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे और उन्हींसे इस दृश्यमान् जगत्की रचना हुई है ॥ १ ॥

भूस्तोयमग्निः पवनः खमादि—
र्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे
ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥ २ ॥

हे देव! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्-तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, दस इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय और इनके अधिष्ठातृ देवता, जो चराचर विराट् जगत्के कारणस्वरूप हैं, वे सभी पदार्थ आपके ही चिदानन्दमय श्रीअङ्गसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते
ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया
गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥

हे भगवन्! प्रधान, काल, कर्म आदि मायिक वस्तुएँ जड़-इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य होती हैं, अतः अनात्मवस्तु होनेके कारण इन जड़-इन्द्रियोंके द्वारा आत्मस्वरूप आपको जाना नहीं जा सकता। यद्यपि ब्रह्मा जड़ेन्द्रिय-ग्राह्य अनात्म वस्तु नहीं हैं, तथापि मायाके रजस् गुणसे युक्त होनेके कारण आपके प्रकृति एवं गुणोंसे परे गुणातीत स्वरूपका अनुभव करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। ब्रह्मा स्वयं प्रकृतिके गुणों (रजोगुण) के द्वारा आच्छादित हैं, फिर अन्य क्षुद्र जीवोंकी तो बात ही क्या!॥ ३॥

त्वां योगिनो यजन्त्यद्वा महापुरुषमीश्वरम्।

साध्यात्मं साधिभूतञ्च साधिदैवञ्च साधवः॥ ४॥

पहले सांख्य एवं योग मार्गका वर्णन कर रहे हैं—हे प्रभो! ब्रह्मादि (हैरण्यगर्भ आदि), साधु योगीगण आपकी महापुरुषकी ईश्वररूपमें, आध्यात्मिकरूपमें (अर्थात् हृदय आदिमें अवस्थितरूपमें), आधिभौतिक (समस्त शरीरोंमें वर्तमानरूपमें) एवं आधिदैविक (समस्त पदार्थोंके साक्षीरूपमें) तथा आदित्य आदि देवताओंके अन्तर्यामी स्वरूपमें निश्चितरूपसे आपकी आराधना करते हैं। आप ही सर्वदेवमय एवं सर्वेश्वरेश्वर हैं॥ ४॥

त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः।

यजन्ते

विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया॥ ५॥

(कर्ममार्गका निरूपण करते हैं) बहुत-से कर्मयोगी ब्राह्मण कर्मकाण्डमयी वेदविद्या द्वारा विविध रूपोंमें विस्तृत यज्ञोंके द्वारा वज्र, हस्त, सप्तार्चि आदि अनेक रूपधारी तथा इन्द्र, अग्नि एवं वरुण आदि विभिन्न नामधारी देवताओंके नामोंसे जो यज्ञाराधना करते हैं, उन नाम एवं रूपोंके द्वारा वस्तुतः आपकी ही उपासना की जाती है। कर्मकाण्डमयी वेदत्रयीमें ऐन्द्र-वारुणादि सूक्तके द्वारा इन्द्रादि देवताओंको सर्वेश्वर कहा गया है, किन्तु सर्वेश्वर बहुत नहीं हो सकते॥ ५॥

एके त्वाऽखिलकर्माणि सन्न्यस्योपशमं गताः।

ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम्॥६॥

(ज्ञानमार्गका वर्णन करते हैं—) जो समस्त कर्मोंका विधिपूर्वक परिहार करके शान्त एवं विरक्त हो गये हैं, ऐसे ज्ञानी ज्ञानयोगसे (सम्प्रदाय एवं समाधि योगसे) चिन्मात्र ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वह उपासना भी वस्तुतः आपकी ही आराधना है॥६॥

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते।

यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्यैकमूर्तिकम्॥७॥

(वैष्णवमार्गका वर्णन करते हैं—) कोई-कोई पाशुपत (संस्कार-रहित) दीक्षाका अतिक्रमण करके संस्कार-सम्पन्न होकर विशुद्ध चित्तसे आपके द्वारा बतलायी हुई पाञ्चरात्रिक (वैष्णव शास्त्रीय) विधिके अनुसार आपमें पूर्णरूपेण तन्मय होकर (बाहर भीतर सर्वत्र स्फूर्ति प्राप्त होकर) आपकी वासुदेवादि चतुर्व्यूहात्मक एवं मत्स्यादि श्रीमूर्तियाँ अनेक होनेपर भी आपकी परमव्योमाधिपति महानारायण-रूप एकमूर्ति स्वरूपमें उपासना करते हैं। आप एक होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकाशित हैं॥७॥

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्।

ब्रह्माचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते॥८॥

(शैवमार्गका वर्णन करते हैं—) दूसरे कोई महादेवजी द्वारा उपदिष्ट शैव, पाशुपतादि अनेक विधियोंके अनुसार—जिनके आचार्य भेदसे (विविध व्याख्याओंके अनुसार) अवान्तर भेद भी हैं, आपके शिवरूपकी उपासना करते हैं—वह भी आपकी ही उपासना-अर्चना है अर्थात् शिव-कथित मार्गके अनुसार शिवरूपी आपकी ही उपासना करते हैं॥८॥

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम्।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो॥९॥

हे सर्वदेवमय प्रभो! कुछ मनुष्योंकी बुद्धि अन्यत्र आसक्त है। वे दूसरे देवताओंको आपसे भिन्न समझकर उनकी उपासना करते हैं, परन्तु उनकी यह उपासना समस्त देवताओंके अन्तर्यामी होनेके कारण आपकी ही आराधना कही जाती है। आप ही सर्वेश्वर हैं। (जो सूर्यादिकी आराधना यह सोचकर करते हैं कि भगवान् नारायण ही सूर्यादिके रूपमें आराधित होते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। भगवान्ने स्वयं कहा है—“सूर्यादि विभूतियोंकी पूजा मेरे विभूति ज्ञानसे करना ही कर्त्तव्य है, अन्य प्रकारसे नहीं।” वस्तुतः शिव, सूर्य, गणेशकी अर्चनासे आपकी ही अर्चना होती है, किन्तु अर्चन करनेवाले स्वयं आपको प्राप्त नहीं होते। जो देवताओंको भगवान्के गुणावतारके रूपमें भजते हैं, उनका भजन विधिपूर्वक है। जो देवताओंको नित्य मानकर उनकी उपासना करते हैं, वे अविधिपूर्वक आराधना करते हैं, उन्हें नित्य फल प्राप्त नहीं होता) ॥ ९ ॥

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो।

विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥ १० ॥

हे प्रभो! समस्त नदियाँ पर्वतसे उत्पन्न होती हैं। जब ये नदियाँ वर्षाके जलसे भर जाती हैं, तब अनेक स्रोतोंसे बहती हुई विशिष्टरूप धारण कर लेती हैं और इधर-उधर विभिन्न दिशाओंसे घूमती हुई अन्तमें जिस प्रकार समुद्रमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार पूर्वोक्त कर्म, ज्ञान आदि मार्गोंसे की गयी उपासनाएँ चरम-स्वरूप आपमें ही पर्यवसित हो जाती हैं। (तात्पर्य यह है कि समस्त वेद पर्वत सदृश हैं। वेदोंसे ही विभिन्न मार्ग उत्पन्न हुए हैं। मुनिगण वृष्टि-स्वरूप हैं। वे इन मार्गोंको विभिन्न स्थानोंसे प्रवाहित करते हैं। वेदोंके एक देश दर्शनके लिए विभिन्न मुनियोंके विभिन्न मत हैं। समस्त वेदशास्त्रका विचार करने पर 'वेदैरहमेव वेद्यः', 'नारायणपरा वेदाः' इत्यादि वचनोंके अनुसार जितने भी खण्ड विचार हैं, वे सब एकमात्र नारायणमें ही पर्यवसित होते हैं। नारायण ही एकमात्र मूल लक्ष्यवस्तुके रूपमें विचारित हैं) ॥ १० ॥

सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः।

तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥

सत्त्व, रज एवं तम—ये तीन आपकी मायाशक्तिरूपा प्रकृतिके गुण हैं। ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त सारे जीव इन गुणोंसे उसी प्रकार आबद्ध हैं, जिस प्रकार वस्त्र सूत्रोंसे ओतप्रोत होता है। (यही कारण है कि प्राणी इस मायासे मोहित हो जाते हैं और निर्गुण-स्वरूप आपका साक्षात् रूपसे भजन नहीं कर पाते। अपने भोगोंके लिए ही निरन्तर कर्म करनेके कारण कर्मबन्धनसे उनकी निवृत्ति नहीं होती और परिणामस्वरूप उनकी संसार-गति भी दूर नहीं होती) ॥ ११ ॥

तुभ्यं नमस्ते त्वविषक्तदृष्टये

सर्वात्मने सर्वधियाञ्च साक्षिणे।

गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः

प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥

आप समस्त जीवोंके आत्मस्वरूप होनेपर भी किसीसे लिप्त नहीं हैं। आपके अतिरिक्त किसी अन्यकी सत्ता न होनेके कारण आप सभीकी बुद्धिके (चेतनाके) साक्षीस्वरूप हैं। आपके अविद्याकृत भौतिक गुणोंसे प्रवाह होनेवाली सृष्टि अज्ञानमूलक है और वह देवता, मनुष्य एवं तिर्यक् (पशु आदि) देहाभिमानी सभी जीवोंमें प्रबलरूपसे व्याप्त है, परन्तु आप उससे परे हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। (देवता जब स्वयं गुणोंके प्रवाहसे पतित हैं, तो वे अपने उपासकोंका उद्धार कैसे कर सकते हैं?) ॥ १२ ॥

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं,

सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः।

द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः

कुक्षिर्मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा

मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः।

निमेषणं राज्यहनी प्रजापति-

मैद्वस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥

हे भगवन्! उपासनाकी दृष्टिसे अग्नि आपका मुख, पृथ्वी आपके चरण, सूर्य आपके चक्षु और आकाश आपकी नाभि है। दिशाएँ आपके कर्ण, स्वर्ग आपका मस्तक, श्रेष्ठ देवगण आपकी बाहु, समुद्र आपकी कोख, वायु आपकी प्राणवायु एवं शारीरिक बलके रूपमें कल्पित है। वृक्ष एवं ओषधियाँ आपके रोम, मेघमाला आपके केश, पर्वत हड्डियाँ एवं नख, पलकोंका खोलना और मीचना दिन एवं रात, प्रजापति जननेन्द्रिय एवं वृष्टि आपके वीर्य रूपमें कल्पित हैं। इन्द्र आदि देवतागण आपके विराट स्वरूपके अङ्ग हैं, अतएव उन-उन देवताओंकी पूजा आपकी ही पूजा है ॥ १३-१४ ॥

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता

लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः।

यथा जले सञ्जिहते जलौकसोऽ-

प्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥

हे सच्चिदानन्द-विग्रह! जिस प्रकार जलमें सूक्ष्म जीव-जन्तु और गूलरके फूलोंकी केसरमें (परस्पर वार्त्ताओंसे अनभिज्ञ) नन्हे-नन्हे कीट-मच्छर घूमा करते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिए मन आदि सोलह सम्पूर्ण तत्त्वोंके आधारस्वरूप आपके कारण-विग्रहमें (विराट् शरीरमें) बहुत-से जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक अपने-अपने लोकपालोंके साथ कल्पितरूपमें विचरण करते हैं अर्थात् ये कल्पितरूपमें ही हैं (आपके विराट स्वरूपमें अनेक जीवोंके साथ अवस्थित इन्द्रादि देवगण सभी नश्वर प्रकृतिके हैं। आप सच्चिदानन्द-विग्रह हैं। आपका स्वरूप अविनाशी होनेके कारण आपके पूजक भी अविनाशी हो जाते हैं। देवता विनाशशील हैं, अतः उनके पूजक भी विनाश-गतिको प्राप्त करते हैं) ॥ १५ ॥

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं विभर्षि हि।

तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः॥ १६ ॥

हे प्रभो! मधु-कैटभ वध आदि प्रापञ्चिक लीलाओं एवं भक्तोंके प्रति अपने प्रेम-प्रकटनके लिए आप हयग्रीवादि जितने भी नित्य-सिद्ध स्वरूप प्रकट करते हैं, उनकी (उन सब रूपों एवं चरितोंकी) महिमाका गान करनेसे लोगोंके सब प्रकारके शोक-मोहादि सम्पूर्णरूपसे धुल जाते हैं। इसलिए वे लोग परमानन्दित होकर आपके निर्मल यशका गान करते हैं॥ १६ ॥

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च।

हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे॥ १७ ॥

अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे।

क्षित्युद्धारविहाराय नमः शूकरमूर्त्तये॥ १८ ॥

हे भगवन्! मैं समस्तके कारण-स्वरूप आपके मत्स्यरूपको नमस्कार करता हूँ, इस रूपमें आप प्रलय-समुद्रमें इधर-उधर स्वच्छन्दरूपसे विचरण कर रहे थे। हे प्रभो! मैं आपके मधु-कैटभ विनाशन हयशीर्ष अवतारको, मन्दराचल धारण करनेवाले विशाल कच्छप अवतारको और प्रलय-सलिलमें पृथ्वीके उद्धारके लिए आपके वराहरूपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ॥ १७-१८ ॥

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह।

वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च॥ १९ ॥

हे प्रह्लादादि सज्जनोंके भयविनाशन! आपके अद्भुत नृसिंहरूपको मेरा नमस्कार है। आपने वामनरूप धारणकर अपने पणोंको प्रसारित करते हुए तीनों लोकोंको नाप लिया था। मैं आपके वामनरूपको नमस्कार करता हूँ॥ १९ ॥

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे।

नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च॥ २० ॥

हे देव ! धर्मका लङ्घन करनेवाले घमण्डी क्षत्रियरूप जङ्गलका छेदन कर देनेवाले आपके परशुराम रूपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे ! राक्षसराज रावणका संहार करनेवाले रघुकुल-शिरोमणि श्रीरामचन्द्ररूप ! आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ २० ॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥

हे प्रभो ! वैष्णवों तथा यदुवंशियोंके अधिपति आपको मेरा प्रणाम है। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध रूपोंमें आपके द्वारा प्रकटित चतुर्व्यूह-स्वरूपको मेरा नमस्कार है ॥ २१ ॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने।

म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! वेदविरुद्ध शास्त्रोंका प्रणयन कर दैत्य-दानवोंको मोहित करनेवाले हे निर्दोषस्वभाव बुद्धरूप ! आपको मेरा नमस्कार है। क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय होने लगेंगे, तब आप कल्किरूप धारणकर म्लेच्छोंका संहार करेंगे, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया।

अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥

हे भगवन् ! आपकी मायासे मोहित इस संसारमें समस्त प्राणी नश्वर देहादिमें मैं-मेरा इस प्रकारकी मिथ्या धारणा कर लेते हैं और देहाभिमानी होकर सकाम कर्म-मार्गोंमें भटकते रहते हैं ॥ २३ ॥

अहञ्चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।

भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! आत्म-तत्त्व-ज्ञानसे अनभिज्ञ मैं भी स्वप्नके समान अस्थिर देह, पुत्र, पत्नी, धन एवं स्वजनादि विषयोंको सत्य समझ रहा हूँ और उनमें आसक्त होकर भटक रहा हूँ ॥ २४ ॥

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ।

द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥

हे प्रभो! कैसा अनर्थ हो गया! मैं अनित्यको (अनित्य कर्मफलोंको) नित्य, अनात्म-देहको आत्मा एवं दुःखस्वरूप गृह आदिको ही सुख मान बैठा। इस प्रकार सुख-दुःखादि द्वन्द्व भावोंमें ही रमता रहा और तमोगुणसे आवृत होकर आत्माके परम प्रेमास्पदस्वरूप आपको नहीं जान पाया ॥ २५ ॥

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छत्रं तदुद्भवैः ।

अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत् त्वाहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥

जैसे कोई अनजान मनुष्य जलके लिए सरोवरपर जाये और उसे उसी जलसे उत्पन्न काई (शैवाल) आदि तृणोंसे ढका हुआ देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है तथा जैसे सूर्यकी किरणोंमें तप्त बालूमें मिथ्या प्रतीत होनेवाले जलके लिए मृगतृष्णाकी (मरीचिकाकी) ओर दौड़ पड़े, वैसे ही आपका स्वरूप मुझे मायावृत प्रतीत होनेके कारण मैं आपका त्यागकर देहाभिमुखी विषयोंमें भटकता रहा ॥ २६ ॥

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ।

रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्हियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥

मेरी बुद्धि तो विषय-वासनासे कलुषित हो गयी है। मुझे अविनाशी अक्षर वस्तुका किञ्चित् भी ज्ञान नहीं है। मेरा मन सकाम कामनाओं और उनकी पूर्तिके लिए किये जानेवाले कर्मोंसे क्षुब्ध हो गया है। ये दुर्दमनीय बलवान् इन्द्रियाँ मुझे विषय-वासनाओंकी ओर खींचती हैं और चञ्चल मन भी उन्हीं विषयोंकी ओर घसीटता जाता है, मैं इसे नियन्त्रण करनेमें समर्थ नहीं हो पाता हूँ। दीनताको प्राप्त ऐसी बुद्धिके द्वारा मनका प्रतिरोध करनेका उत्साह भी मुझमें नहीं रह गया है ॥ २७ ॥

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं
 तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये।
 पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्ग-
 स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥

हे स्वामी! आज मैंने आपके उन चरणकमलोंका आश्रय कर लिया, जो दुष्टोंके लिए दुष्प्राप्य है। मैं तो इसे आपका अनुग्रह ही मानता हूँ। हे कमलनाभ! जिस समय जीवके संसार-दशासे मुक्त होनेका समय आता है, उसी समय शुद्ध भक्तोंकी सेवा द्वारा उनकी चित्तवृत्ति आपमें लग जाती है। (भगवान्की कृपा नहीं होनेसे साधु-सेवाका सुयोग एवं श्रीभगवान्में अनुराग प्राप्त नहीं होता) ॥ २८ ॥

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे।
 पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥

हे देव! आप समस्त ज्ञानके कारण-स्वरूप विज्ञानमय विग्रह हैं। जीवको सुख-दुःखादि प्राप्त करानेवाले जो भी काल, कर्म, स्वभाव, प्रकृति आदि हैं, आप उन सबके अधीश्वर हैं। आप परिपूर्णस्वरूप हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। अपनी भक्ति प्रदानकर जीवोंको आप ही कृतार्थ करते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २९ ॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च।
 हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदकूरस्तुतिर्नाम
 चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

हे वासुदेव (चित्ताधिष्ठाता)! आप ही मेरे सेव्य हैं। हे सर्वभूताश्रय! (अहङ्कारादिके अधिष्ठाता सङ्कर्षणरूप) आप दुष्ट भूपतियोंका क्षय करके समस्त प्राणियोंके आश्रयरूपमें विराजित

होकर मुझमें ही निवास कीजिये। हे हृषीकेश! (बुद्धि एवं मनके अधिष्ठाता प्रद्युम्न एवं अनरिद्ध दोनोंको एकीकृत करके मेरी मनादि इन्द्रियोंका संयमन कीजिये) मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! इस शरणागतकी रक्षा कीजिये। (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्तीने अक्रूरकी आकुल प्रार्थनाको इस प्रकार व्यक्त किया है—हे वसुदेवनन्दन! आप ही एकमात्र मेरे उपास्य बनकर मुझे सेवाका अधिकार प्रदान करें, जिससे मुझे दुष्ट कंसकी सेवारूप दुर्भाग्यकी ग्लानि सहन न करनी पड़े। आप समस्त प्राणियोंके निवास-स्थल हैं। आपके आश्रयमें ही मुझे स्थान मिले। विषय-वासनाके नागपाशमें आबद्ध होकर गृहान्धकूपमें मुझे पतित न होना पड़े। हे प्रभो! मुझ शरणागतकी रक्षा करें। इस दुस्तर संसार समुद्रसे मेरा उद्धार करें) ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका मथुरामें प्रवेशकर धोबीका वध, दर्जी और
सुदामा मालीको वरदान

श्रीशुक उवाच—

स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः।

भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः॥१॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! अक्रूर अभी इस प्रकार स्तुति कर ही रहे थे कि भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपने जिस रूपको जलमें अक्रूरके दृष्टिपथपर प्रकट किया था, उसका उसी तरह परिवर्तन कर लिया, जिस प्रकार नाट्य दिखलानेवाला अभिनेता अभिनयके उपरान्त अपने अभिनेय रूपको परिवर्तित कर लेता है॥१॥

सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्य सत्वरः।

कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत्॥२॥

अक्रूरने भगवान्के उस दिव्यरूपको अन्तर्धान होते देखा, तो वे जलसे बाहर निकल आये। उन्होंने अपने सभी नित्य आवश्यक कार्योंको शीघ्र ही सम्पन्न किया और रथपर चले आये। उस समय वे बड़े ही आश्चर्यचकित हो रहे थे॥२॥

तमपृच्छद्दृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम्।

भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे॥३॥

भगवान् श्रीकृष्णने अक्रूरसे पूछा—हे चाचाजी! क्या आपने इस भूमि, आकाश अथवा जलमें किसी विचित्र वस्तुको देखा है? आपके सजल एवं प्रफुल्लित नेत्रोंको देखकर ऐसा ही लग रहा है॥३॥

श्रीअक्रूर उवाच—

अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ।

त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥

श्रीअक्रूरने कहा—हे विश्वरूप ! इस पृथ्वी, आकाश अथवा जलमें जितनी भी विचित्र वस्तुएँ हैं, वे सभी विश्वरूपी आपमें ही विद्यमान हैं। अतः जब मैं आपको ही देख रहा हूँ, तब और कौन-सी वस्तु देखनेके लिए बची रह जाती है ॥ ४ ॥

यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ।

तं त्वामपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ ५ ॥

हे ब्रह्मन् ! आपमें ही सारे अद्भुत पदार्थ वर्तमान हैं, तो फिर भूमि, आकाश अथवा जलमें और क्या अद्भुत वस्तु देखूँगा ? आपके बिना कहीं कुछ भी तो अद्भुत नहीं है ॥ ५ ॥

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ।

मथुरामनयद्रामं कृष्णञ्चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥

गान्दिनीनन्दन अक्रूर यह कहकर रथ हाँकने लगे। वे दिनके समाप्त होते-होते बलराम एवं श्रीकृष्णको लेकर मथुरापुरी जा पहुँचे ॥ ६ ॥

मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसङ्गताः ।

वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! पथमें वे जहाँ-जहाँसे निकलते, ग्रामवासी उनके समीप आते। वे वसुदेवके पुत्र बलराम एवं श्रीकृष्णको देखकर बहुत आनन्दित होते। ये ग्रामीण उनसे अपनी दृष्टि हटा नहीं पाते, बस निर्निमेष (अपलक) नेत्रोंसे उन्हें देखते ही रह जाते ॥ ७ ॥

तावद्ब्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ।

पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥

नन्द बाबा और ब्रजवासियोंने रथका मार्ग छोड़कर सीधा-सरल मार्ग पकड़ लिया। अतः वे रथके पहुँचनेके पहलेसे ही नगरके समीप पहुँच गये थे और वहीं अर्थात् मथुरापुरीसे बाहर एक उद्यानमें उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे॥ ८ ॥

तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः।

गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव॥ ९ ॥

नन्दबाबा तथा अन्य ब्रजवासियोंके समीप पहुँचनेपर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण समीप ही विनीत भावसे खड़े हुए अक्रूरके हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर मुसकराते हुए कहने लगे (अक्रूरकी प्रसन्नताके लिए ही भगवान् मुसकराये हैं, हृदयमें ब्रज-परित्यागका स्मरण हो आनेके कारण विषादका उदय हुआ है)॥ ९ ॥

भवान् प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम्।

वर्यं त्विहावमुच्यथा ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम्॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे अक्रूर! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और उसके बाद अपने घर चले जाइये। हमलोग यहीं उतरकर कुछ समय तक विश्राम करेंगे और फिर नगर देखने आयेंगे॥ १० ॥

श्रीअक्रूर उवाच—

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो।

त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल॥ ११ ॥

श्रीअक्रूरने कहा—हे प्रभो! मैं आप दोनोंको छोड़कर मथुरामें प्रवेश नहीं कर सकता। हे स्वामी! आप भक्तवत्सल हैं। अपने इस भक्तका त्याग मत कीजिये॥ ११ ॥

आगच्छ याम गेहान् नः सनाथन् कुर्वधोक्षज।

सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम॥ १२ ॥

हे अधोक्षज! आप आइये। पहले मेरे घर चलिये। हे सुहृद्वर! आप, बड़े भाई बलराम, नन्दबाबा आदि गोपजन तथा

अपने सङ्गी-साथियोंके साथ आइये और हमारे घरको कृतार्थ कीजिये (जो कंस कल मरने ही वाला है, वह मेरा क्या कर सकता, अतः पहले उन्हें अपने घर ले जाना चाहते हैं) ॥ १२ ॥

पुनीहि पादरजसा गृहान् नो गृहमेधिनाम्।

यच्छौचेनानुत्प्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥

हे भगवन्! आपके चरण-धौत जल (गङ्गाजल या चरणामृत) घरके आँगनमें पड़नेसे गृहस्थोंके पितर, अग्नि एवं देवता सभी तृप्त हो जाते हैं। हम भी गृहस्थ हैं। आप इन चरणोंकी धूलिसे हमारे घरको भी पवित्र कीजिये ॥ १३ ॥

अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीत् श्लोक्यो बलिर्मान्।

ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिञ्चैकान्तिनान्तु या ॥ १४ ॥

हे प्रभो! महात्मा राजा बलि आपके चरणकमलोंको पखारकर पुण्य यशके योग्य बने थे। उन्होंने यश ही नहीं, ऐकान्तिक तथा शुद्ध भक्तोचित गति एवं अतुल्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त किया था ॥ १४ ॥

आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रील्लोकान् शुचयोऽपुनन्।

शिरसाधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥

हे देव! आपके पादपद्मोंके पखारे हुए अप्राकृत जल—गङ्गाजीने तीनों भुवनोंको पवित्र किया है। स्वयं महादेवने इसे अपने मस्तकपर धारण किया है और महाराज सगरके मरे हुए पुत्रोंने इसका स्पर्श करके सद्गतिको प्राप्त किया है ॥ १५ ॥

देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन।

यदूत्तमोत्तमःश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥

हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे पुण्यश्रवण-कीर्तन! आपके यशका श्रवण एवं कीर्तन अत्यन्त पवित्र तथा मङ्गलकारी है। हे यदुवंश-शिरोमणे! हे नारायण! उत्तम पुरुष आपके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं, इसलिए आप उत्तमश्लोक कहलाते हैं। हे

भगवान् नारायण ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ (मेरे घर आयेँ और मुझ पतितके घरको पवित्र करें) ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ।

यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—चाचाजी ! मैं आर्य बलदेवके (दाऊ भैयाके) साथ आपके घर बादमें आऊँगा, सर्वप्रथम मेरा कर्त्तव्य है—यदुवंशियोंके परम द्रोही कंसका वध करके अपने बान्धवों एवं सुहृदोंको आनन्द प्रदान करना ॥ १७ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ।

पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित् ! भगवान्के इस प्रकार कहनेपर दुःखी एवं निराश होकर अक्रूरने मथुरामें प्रवेश किया और कंसको बलराम एवं श्रीकृष्णके आनेका समाचार प्रदान करके अपने घर चले गये ॥ १८ ॥

अथापराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणान्वितः ।

मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥

अनन्तर अपराह्णमें (तृतीय प्रहरमें) भगवान् श्रीकृष्णने दाऊ भैया और ग्वालबालोंको अपने साथ लेकर मथुरापुरीके दर्शनकी इच्छासे नगरमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुर-

द्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ।

ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदा-

मुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥

सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः

श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ।

वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमै-

मुक्ताहरिद्विर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥

जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमै-

ष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ।

संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां

प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥

आपूर्णकुभैदधिचन्दनोक्षितैः

प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ।

सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः

स्वलङ्कृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥

मथुरापुरीमें प्रवेश करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि पुरीके ऊँचे-ऊँचे प्रवेश-द्वार-गोपुर स्फटिक मणियोंसे बनाये गये हैं। घरोंके द्वारों-गोपुरोंको भी स्फटिकसे रचित किया गया है। पुरीके कपाट एवं तोरण (मेहराब) बृहत् एवं स्वर्ण-निर्मित हैं। धान्यादि शस्यके भण्डार ताँबे और पीतलसे बने हुए हैं। दुर्गम खाईके कारण नगरमें प्रवेश करना आसान नहीं है। स्थान-स्थानपर सुन्दर-सुन्दर उद्यान एवं उपवन नगरीकी शोभा बढ़ा रहे हैं। पुरीमें सुवर्णसे सजे चौराहे, धनियोंकी बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, निष्कुट (घरमें बने निजी विश्राम-उद्यान), शिलोपजीवियोंके (कारीगरोंके) बैठनेके स्थान या नगरवासियोंके लिए सभा-भवन एवं अन्यान्य निवासगृह नगरीकी सुन्दरता बढ़ा रहे थे। वैदूर्य, वज्र (हीरे), स्फटिक, नीलम, मूँगा, मोती एवं मरकतसे जड़े हुए छज्जे, वक्र काष्ठसे आच्छादित चबूतरे, जालीदार झरोखे आदि जगमगा रहे थे। रत्नजटित चन्द्रशालिकाओंपर बैठे हुए कबूतर, मोर आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। मुख्य राजपथों, पण्य-गलियों (व्यापारिक गलियों), अवान्तर-मार्गों, चौराहों और आँगनोंमें पानीका छिड़काव किया गया था। स्थान-स्थानपर मालाएँ, नवाङ्कुरित जौ, खील एवं चावल बिखरे हुए थे। घरोंके द्वारों एवं प्रवेश मार्गोंपर तण्डुलोंके

ऊपर दही एवं चन्दनसे लीपे हुए तथा चित्रकारियोंसे अङ्कित जलपूर्ण कलश रखे गये थे, जिन्हें चारों ओर फूलों एवं स्वर्ण दीपोंकी पंक्तियोंसे सजाया गया था। नवीन आम्रपल्लव एवं फूलोंके गुच्छे उनके ऊपर विराजित थे। केले एवं सुपारीके वृक्षोंसे उनके समीपके (पीछेके) स्थानोंको भी अलंकृत किया गया था। इनके ऊपर ध्वजा एवं रेशमी वस्त्रोंसे बनी पताकाएँ उड़ रही थीं ॥ २०-२३ ॥

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ
वृत्तौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो
हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥

हे राजन्! वसुदेवनन्दन बलराम और श्रीकृष्णने ग्वालबालोंके साथ राजपथसे पुरीमें प्रवेश किया। उन्हें देखनेके लिए पुरकी नारियाँ अति शीघ्रतासे आयीं और कोई-कोई तो उत्सुकताके साथ अटारियोंपर चढ़ गयीं ॥ २४ ॥

काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा
विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः।
कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा
नाङ्क्त्वा द्वितीयन्त्वपराश्च लोचनम् ॥ २५ ॥

उत्सुकताके कारण पुरस्त्रियोंमेंसे किसी-किसी स्त्रीने शीघ्रताके कारण अपने वस्त्र एवं आभूषण उल्टे ही पहन लिये। किसीने कङ्कनों एवं कुण्डलोंके जोड़ेमेंसे एक ही पहना और दूसरा पहनना भूलकर ऐसे ही आ गयी। किसीने तो बायीं आँखमें अञ्जन लगाया और दायीं आँखोंको बिना आँजे ही चल पड़ी। किसीने कानोंमेंसे एकमें ही पत्र नामक आभूषण धारण कर रखा था और कोई पैरोंमेंसे एकमें ही पायजेब पहनकर दौड़ी चली आयी ॥ २५ ॥

अश्नन्त्य एकास्तदपास्य सोत्सवा
 अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ।
 स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं
 प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥

सबके हृदयमें आनन्द और उत्साह समाया हुआ था। किसीने भोजन करना आरम्भ ही किया था, वह उसे छोड़कर ऐसे ही दौड़ पड़ी, किसीने सखियोंके द्वारा वैवाहिक कर्मके लिए तेल-उबटन लगवाया था, वह बिना स्नान किये ही उसी अवस्थामें चल पड़ी और कोई नव-विवाहिता पति-परिक्रमा अर्थात् फेरे पूरे किये बिना ही चल पड़ी। कोई कोलाहल सुनकर निद्रासे उठ बैठी और चल पड़ी और कोई नवजात शिशुको स्तन-पान करा रही थी, वह उसे गोदीसे उतारकर भगवान्को देखनेके लिए चल पड़ी ॥ २६ ॥

मनांसि तासामरविन्दलोचनः
 प्रगल्भलीलाहसितावलोकैः ।
 जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो
 दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥

कमललोचन पराक्रमशाली भगवान् श्रीरमण मतवाले गजराजके समान सुललित गतिसे चल रहे थे। उनका श्री अर्थात् लक्ष्मी-विमोहन रूप एवं श्यामसुन्दर-विग्रह कामिनियोंके नेत्रोंको चाक्षुष मिलन द्वारा आनन्दोत्सव प्रदान कर रहा था और श्रीकृष्ण विलासपूर्ण प्रगल्भ-हास्य एवं प्रेमभरी चितवनसे वे उनके हृदयोंको चुरा रहे थे। वे नयनानन्द-वितरणके साथ चित्त-रत्नका भी हरण कर रहे थे ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्भुतचेतसस्तं
 तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ।
 आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं
 हृष्यत्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥ २८ ॥

हे शत्रुदमन! श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलाओंके विषयमें बहुत दिनोंसे सुननेके कारण मथुरापुरीकी स्त्रियोंके हृदय तद्गत (कृष्णगत) हो गये थे। आज श्रीकृष्णको साक्षात् देखकर उनके चित्त द्रवित हो गये। भगवान् श्रीकृष्णने भी उन्हें अपनी अनुरागमयी चितवन एवं उत्तम हास्यरूप अमृतसे अभिसिञ्चनकर उनका सम्मान किया। उस समय उन पुररमणियोंने नेत्रोंके पथसे अपने हृदयमें स्फुरित आनन्दमयविग्रह श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया। इससे उनके शरीर रोमाञ्चित हो गये तथा बहुत दिनोंसे श्रीकृष्णको न देखनेके कारण विरह-व्यथा शान्त हो गयी॥ २८ ॥

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः ।

अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥

परीक्षित्! मथुराकी वे नारियाँ भवनोंके शिखरोंपर चढ़ी हुई थीं, प्रीतिके आधिक्यसे उनके मुख कमलके समान प्रफुल्लित हो रहे थे। श्रीकृष्ण एवं बलरामको देखते ही वे उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं॥ २९ ॥

दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रगन्धैरभ्युपायनैः ।

तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥

राजमार्गमें स्थान-स्थानपर ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंने बड़े प्रसन्न मनसे दधि, अक्षत, जल भरे कलश, फूलोंके हार, सुगन्धित द्रव्य, चन्दन एवं अन्यान्य विविध उपहारोंसे उनकी अर्चना की॥ ३० ॥

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन् महत् ।

या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥

उस समय पुर-स्त्रियाँ कहने लगीं—अहो! गोपियोंने न जाने कौन-सी महान् तपस्या की है, जिससे वे मनुष्य मात्रके लिए महा-उत्सव-स्वरूप इन बलराम एवं श्रीकृष्णके नित्य-निरन्तर दर्शन करती रहती हैं॥ ३१ ॥

रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः।

दृष्ट्वायाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च॥ ३२॥

इसी समय श्रीकृष्णने देखा कि वस्त्रोंको रङ्गनेवाला कोई धोबी उनकी ओर चला आ रहा है, तो वे उसके समीप गये और उससे धुले हुए उत्तम वस्त्र माँगे (रजक दो प्रकारका होता है—एक केवल मल-शोधक होता है और दूसरा वस्त्रको रङ्गनेवाला। वह रजक वस्त्रपर चित्रकारी भी करता है। इस स्थलपर इसी रङ्गकारको रजक कहा गया है)॥ ३२॥

देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः।

भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः॥ ३३॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भाई रजक! हमें पहननेके लिए उपयुक्त वस्त्र दे दो। वास्तवमें हम दोनों इस वस्त्र-दानके योग्य अधिकारी हैं। यदि तुम हमें वस्त्र प्रदान करोगे, तो तुम्हारा परम कल्याण होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३३॥

स याचितो भगवता परिपूर्णैः सर्वतः।

साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः॥ ३४॥

परीक्षित्! रजक राजा कंसका सेवक था, इसीलिए वह दुरभिमानसे मतवाला हो रहा था। भगवान् तो सर्वत्र परिपूर्ण हैं, तथापि उन्होंने इस प्रकार याचना-लीला की, परन्तु वह मूर्ख देना तो दूर रहे, अत्यन्त क्रोधित हो उठा और उन्हें अपमानित-सा करता हुआ कहने लगा॥ ३४॥

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः।

परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ॥ ३५॥

अरे उद्धण्ड बालको! तुमलोग पर्वतों और जङ्गलोंमें विचरण करते रहते हो। वहाँ ऐसे ही वस्त्र पहना करते हो क्या? तो अब राज-द्रव्य लेनेकी बात क्यों सोच रहे हो?॥ ३५॥

याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्य यदि जिजीविषा।

बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥ ३६ ॥

अरे मूर्खों! यहाँसे शीघ्र भाग जाओ। यदि कुछ दिन और जीना चाहते हो, तो फिर कभी भी ऐसी अनुचित माँग मत करना। राजपुरुष तुम्हारे जैसे अहङ्कारियों एवं उद्वेगोंको बाँध लेते हैं, उनका सब कुछ छीन लेते हैं और उनका वध कर डालते हैं ॥ ३६ ॥

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः।

रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥

धोबी इस तरह अहङ्कारपूर्वक आत्मप्रशंसा करते हुए बहकी-बहकी बातें करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्ण क्रोधित हो उठे और उन्होंने धोबीको अपने हाथके अग्रभागसे ऐसा तमाचा मारा कि उसका सिर धड़से अलग हो गया ॥ ३७ ॥

तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान् विसृज्य वै।

दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥

धोबीके अनुचरोंने जब इस दृश्यको देखा, तो वे वस्त्रोंके गट्टर वहीं छोड़-छाड़कर चारों दिशाओंमें भाग गये। भगवान् श्रीकृष्णने उन वस्त्रोंको ले लिया ॥ ३८ ॥

वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः सङ्कर्षणस्तथा।

शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥

परीक्षित्! श्रीकृष्ण और बलदेवजीने उनमेंसे अपने प्रियकर, रुचिकर, मनोरम वस्त्र लेकर स्वयं पहन लिये और कुछ ग्वालबालोंको भी दे दिये। वे बचे कपड़ोंको वहीं पृथ्वीपर फेंककर चल पड़े ॥ ३९ ॥

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत्।

विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् एक दर्जी (बुनकर) श्रीकृष्ण-बलरामको देखकर अतिशय आनन्दित हो गया। उसने विचित्र-वर्णोंके सुन्दर वस्त्रोंसे बने हुए वस्त्राभूषणोंसे उन दोनोंका यथायोग्य (मल्लोचित) सम्यक् वेश-विन्यास किया। (मल्ल-क्रीड़ामें वस्त्र खण्डोंको ही अलङ्कार रूपमें निर्मित करना उचित है, क्योंकि शरीरमें पीड़ाकी सम्भावना हो सकती है) उसने दोनों भाइयोंको अपने-अपने वर्णोंके अनुरूप वस्त्रोंसे निर्मित कङ्कन-कुण्डलोंसे ऐसे सुसज्जित किया कि वे वस्त्र-आभूषण मणियों जैसी शोभाको प्राप्त हो रहे थे ॥ ४० ॥

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः।

स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥

अद्भुत रीतिसे वस्त्राभरणोंसे विभूषित बलरामजी और श्रीकृष्ण इस प्रकार सुशोभित होने लगे, मानो उत्सव-क्षेत्रमें शुक्ल एवं कृष्ण-वर्णके दो किशोर गजशावक शोभायमान हो रहे हों ॥ ४१ ॥

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यमात्मनः।

श्रियञ्च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥ ४२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण इस दर्जीपर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे इस लोककी परम सम्पत्ति, शारीरिक बल, प्रभाव, स्मृति एवं इन्द्रियोंसे सम्बन्धित नैपुण्य इत्यादि प्रदान कर दिये और मृत्युके बाद सारूप्य-मुक्तिका भी वरदान दे दिया ॥ ४२ ॥

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः।

तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥

प्रिय तात! इसके बाद दोनों भाई वहाँसे सुदामा नामक मालीपर अनुग्रह करनेके लिए उसके घर गये। वह उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और पृथ्वीपर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करने लगा ॥ ४३ ॥

तयोरासनमानीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः।

पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥

उसने बलराम और श्रीकृष्णको आसनपर बिठाया और पाद-प्रक्षालन योग्य जलसे उनके चरण पखारे। अर्घ्य (हाथ धोनेके लिए जल) प्रदान किया। तत्पश्चात् गन्ध आदि आठों द्रव्य, धूप, दीप, नैवेद्य, चामर बीजन, नीराजन (आरती), ताम्बूल, चन्दनादिके अनुलेपन आदिसे उनकी और उनके साथियोंकी विधिपूर्वक पूजा की॥ ४४॥

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितञ्च कुलं प्रभो।

पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम्॥ ४५॥

तदनन्तर सुदामा श्रीकृष्णसे कहने लगा—हे प्रभो! आप दोनोंके आगमनेसे मेरा जन्म सार्थक हो गया और मेरा कुल भी पवित्र हो गया। आज तो आपके शुभागमनसे हमारे देव, ऋषि एवं पितर सभी बड़े सन्तुष्ट हो गये हैं॥ ४५॥

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम्।

अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च॥ ४६॥

आप दोनों इस विश्वके परम कारण हैं। आप इस जगत्के उत्थान और कल्याणके लिए ही अपने अंशोंके साथ अवतीर्ण हुए हैं॥ ४६॥

न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः।

समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि॥ ४७॥

हे प्रभो! आप दोनों जगत्के परम सुहृद् एवं आत्म-स्वरूप हैं। आप सभी प्राणियोंके प्रति समान भाव रखते हैं, तो भी आपका अपने भक्तोंके प्रति विशेषरूपसे प्रेम एवं अनुग्रह रहता है, परन्तु इसे आपका वैषम्य भाव नहीं कहा जा सकता (ब्राह्मण एवं चाण्डाल आदि सत्कर्म एवं कुकर्मकारीमेंसे जो कोई आपका भजन करता है, उसीसे आप प्रेम करते हो—आपमें कोई जाति आदि वैषम्य नहीं है—क्योंकि भजनकारी बुनकर और मुझ मालीको अपनाकर आपने कृतकृत्य किया है)॥ ४७॥

तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम्।

पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्विर्यन्त्रियुज्यते ॥ ४८ ॥

हे नाथ! जब आप दोनों किसी भृत्यको आज्ञा देकर किसी कार्यमें नियुक्त करते हैं, तो यह उस व्यक्तिपर आपका महान् अनुग्रह होता है। अब आप दोनों अपने इस सेवकको आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ॥ ४८ ॥

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः।

शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥ ४९ ॥

हे राजेन्द्र! सुदामा मालीने अत्यन्त आनन्दपूर्वक जब अपनी प्रार्थना भगवान्‌को निवेदित की, तो वह भगवान्‌की इच्छाको स्वयं ही समझ गया। उसने प्रेम एवं आनन्दमें भरकर श्रीकृष्ण एवं बलरामको अति सुन्दर सुगन्धित, सुकुमार, शीतल एवं शोभन वर्णोंके पुष्पोंके हार पहनाये ॥ ४९ ॥

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ।

प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥

बलराम, श्रीकृष्ण एवं उनके सङ्गी ग्वालबाल उन मालाओंसे विभूषित होकर अति प्रसन्न हुए। तब भगवान्‌ने विनीत भावसे प्रणत एवं शरणागत सुदामाको वर प्रदान करनेकी अभिलाषा की ॥ ५० ॥

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि।

तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥

सुदामाने उनसे यही वर माँगा कि—हे भगवन्! समस्त प्राणियोंके आत्मा आपके श्रीचरणोंमें मेरी अविचल भक्ति हो, आपके भक्तोंके प्रति मेरा सौहार्द एवं मैत्री हो और सभी प्राणियोंके प्रति अहैतुक दयाका भाव बना रहे ॥ ५१ ॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियञ्चान्वयवर्द्धिनीम्।

बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमथुरापुरप्रवेशो नाम
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उसे अभीष्ट वर प्रदान किये। साथ ही, उसके द्वारा अप्रार्थित वंशपरम्पराके साथ बढ़ता हुआ ऐश्वर्य, बल, आयु एवं कान्तिके भी वर दिये और बड़े भैया बलराम आदिके साथ वहाँसे निकलकर आगे चले (उनका भक्त-वात्सल्य ही ऐसा है कि भक्तके न चाहनेपर भी वे उसे सब कुछ प्रदान कर देते हैं) ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके इकतालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कुब्जापर कृपा, धनुष-भङ्ग, कंसके रक्षकोंका विनाश
तथा कंसकी आतुरता

श्रीशुक उवाच—

अथ ब्रजन् राजपथेन माधवः
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम्।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान् माधव सुदामा मालीके घरसे निकलकर राजपथकी ओर अग्रसर हुए। उस समय उसी मार्गपर चन्दनादि अङ्ग-विलेपनका पात्र लेकर एक कुब्ज-देह-वाली त्रिवक्रा सुन्दरी युवती जा रही थी, जिसका नाम 'सैरिन्ध्री' था। रसस्वरूप श्रीकृष्ण अपने भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले हैं। वे उसे देखकर हँसते हुए कहने लगे (सत्यभामा भगवान्की अन्तरङ्गा शक्ति हैं और वे भू-शक्ति भी कहलाती हैं। इसी भू-शक्तिकी अंशरूपा है—कुब्जा। कुब्जाके साथ की गयी कृष्णकी गतिविधियाँ उनके अपने सखाओंके मनोरञ्जनके उद्देश्यसे भी थीं) ॥ १ ॥

का त्वं वरोर्वेतदुहानुलेपनं
कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः।
देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं
श्रेयस्ततस्ते न चिराद्भविष्यति ॥ २ ॥

हे सुन्दरी! तुम कौन हो? ओह! अङ्गराग! हे वरोरु! यह किसके लिए ले जा रही हो? सच-सच बतलाओ! हे कल्याणि! यह उत्तम चन्दन और अङ्गराग हमें भी दो। इस दानसे तुम्हारा शीघ्र ही कल्याण होगा (कंसका भय मत करो) ॥ २ ॥

श्रीसैरन्ध्रयुवाच—

दास्यस्यहं सुन्दर कंससम्मत
त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं
विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥

तब साध्वी कुब्जाने कहा—हे परम सुन्दर! (ग्रीवा, वक्षः एवं कटिप्रदेश वक्र होनेके कारण) मेरा नाम त्रिवक्रा है। मैं कंसकी दासी हूँ। (मैं आपकी दासी हूँ—इस स्थलपर यह भी द्योतित हो रहा है) चन्दनादि-अनुलेपनमें मैं अति निपुण हूँ। इसी कारणसे कंस मेरा विशेष सम्मान करते हैं। मेरा यह अनुलेपन कंसको बहुत प्रिय है, तथापि आप दोनोंके अतिरिक्त इसे धारण करनेके लिए और कौन योग्यपात्र हो सकता है? ॥ ३ ॥

रूपपेशलमाधुर्य्यहसितालापवीक्षितैः ।

धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

परीक्षित्! वह कुब्जा तो भगवान् श्रीकृष्णके रूप, सौन्दर्य, सौकुमार्य, रसिकता, दक्षता (सम्मोहन कर्ममें), मुसकान, प्रेमालाप एवं चारु चितवनसे मोहित हो गयी। उसने दोनों भाइयोंको सुन्दर और गाढ़ अङ्गराग प्रचुर मात्रामें 'कृपया इसे लें' यह कहते हुए दे दिया ॥ ४ ॥

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णंतरशोभिना ।

सम्प्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरज्जितौ ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण एवं बलरामने अपने-अपने वर्णोंसे भिन्न-भिन्न अर्थात् श्रीकृष्णने श्यामल वपुपर पीले रङ्गका और बलरामने अपने गौरवपु पर लाल रङ्गका अङ्गराग लगाया। अपने-अपने ऊर्ध्व अङ्गोंपर अनुलिप्त सर्वोत्तम अङ्गरागसे अनुरज्जित होकर वे दोनों अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥ ५ ॥

प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ।

ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सैरिन्ध्री कुब्जासे प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने दर्शनके अव्यर्थ फलको दिखलानेके लिए उस सुन्दर मुखवाली त्रिवक्राकी कुब्ज देहको सीधा करनेकी अभिलाषा की॥६॥

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना।

प्रगृह्य चिबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः॥७॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों चरणोंसे कुब्जाके दोनों पैरोंके पञ्जोंको दबा दिया और हाथ ऊँचा करके ऊपरकी ओर उठी दो अङ्गुलियोंसे उसकी ठोड़ीको पकड़ा और उसकी देहको तनिक ऊपरकी ओर उचका दिया। दो अङ्गुलियोंसे अर्थात् उसके प्रारब्ध कर्मको जो उसके कूबड़का कारण था, मिटा दिया और दूसरी अङ्गुलीसे उसकी शारीरिक वक्रताको दूर कर दिया॥७॥

सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा।

मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा॥८॥

मुकुन्द श्रीकृष्णके स्पर्शसे कुब्जा तत्काल ही सीधी खड़ी हो गयी। उसके अङ्ग सीधे एवं सम-अनुपातवाले हो गये। वह विशाल नितम्ब एवं पीन पयोधरोंसे युक्त एक उत्तम रमणीरूपमें परिणत हो गयी॥८॥

ततो रूपगुणौदार्यसम्पन्ना प्राह केशवम्।

उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया॥९॥

इस प्रकार कुब्जा उसी समय रूप, गुण एवं उदारतासे सम्पन्न हो गयी। भगवान् केशवके प्रति उसके मनमें काम वासना जाग उठी। अतः वह मृदु-मन्द मुसकानके साथ उनके उत्तरीयके छोरको पकड़कर कहने लगी—॥९॥

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे।

त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ॥१०॥

हे वीर शिरोमणे! मेरे साथ घर आइये। यहाँ आपको छोड़कर मेरी जानेकी इच्छा नहीं हो रही है, क्योंकि हे पुरुषवर! आपने

मेरे चित्तको उन्मथित कर डाला है। आपके स्पर्शसे मैं उन्मत्त-सी हो रही हूँ। अतः इस दासीपर आप प्रसन्न होइये॥ १० ॥

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः।

मुखं वीक्ष्यानु गोपानां प्रहसंस्तमुवाच ह॥ ११ ॥

कुब्जाके द्वारा इस प्रकार अनुनय-विनय करनेपर श्रीकृष्ण बलदेवकी ओर देखने लगे, जो यहाँ घटित होनेवाले समस्त क्रियाकलापोंको साक्षात् देख रहे थे। तत्पश्चात् भगवान् ने गोपोंके मुखोंकी ओर भी दृष्टि डाली। तब मन्द-मन्द मुसकराते हुए वे उस रमणीसे कहने लगे॥ ११ ॥

एष्यामि ते गृहं सुभ्रुः पुंसामाधिविकर्शनम्।

साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम्॥ १२ ॥

हे सुभ्रु! तुम्हारा घर संसारी पुरुषोंकी मानसिक व्यथाको दूर करनेका साधन है। तुम हमारे जैसे पथिकोंकी परम आश्रय हो। अपना कार्य सम्पन्न होनेपर मैं तुम्हारे घर अवश्य ही आऊँगा (भगवान् श्रीरामके कोटि-काम-विनिन्दित सौन्दर्यपर जो शूर्पणखा मोहित हो गयी थी, वही अब त्रिवक्रा कुब्जा बनी है। रावणको अपने नाक-कान कटनेका समाचार देकर वह पुष्कर तीर्थ चली गयी और जलमें खड़े होकर भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगी। दस हजार वर्ष तपस्या करनेके बाद भगवान् शङ्करके वरदानसे उसे इस जन्ममें श्रीकृष्ण प्राप्त हुए हैं। आचार्योंने इसकी रतिको साधारण कहा है)॥ १२ ॥

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिकपथैः।

नानोपायनताम्बूलस्रगन्धैः

साग्रजोऽर्चितः॥ १३ ॥

श्रीकृष्णने इस प्रकार मीठी-मधुर बातें करके उसे विदा कर दिया। अब श्रीकृष्ण बड़े भैयाके साथ व्यापारियोंके बाजारकी ओर अग्रसर हुए। पथपर व्यापारियोंने ताम्बूल, माला और चन्दनादि विविध प्रकारके उपहारोंसे सम्मान करते हुए दोनों भाइयोंकी पूजा की॥ १३ ॥

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः।

विस्रस्तवासःकबर-वलयालेख्यमूर्तयः ॥ १४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनमात्रसे ही मथुराकी स्त्रियोंमें मिलनकी वासना जाग उठी। वे अपनी सुध-बुध खो बैठीं। (कृशताके कारण) उनके वसन, कबरी-बन्धन और वलयादि स्खलित होने लगे। नवमी दशाके उद्भवके कारण ये चित्रलिखित-सी मूर्तियोंके समान ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयीं (इन वणिकोंकी पत्नियाँ परम भक्त थीं। कन्दर्पकी दस दशाओं—नयन-सम्मिलन-जनित अनुराग, चित्तासक्ति, किङ्कर्तव्य इत्यादि सङ्कल्प, निद्रा-लोप, कृशता, विषय-निवृत्ति, लज्जा-राहित्य, उन्माद, मूर्च्छा एवं मृति—मेंसे ये दर्शनमात्रसे ही नवम दशा तक पहुँच गयी थीं, जब कि ये दशाएँ कालक्रमसे उदित होती हैं) ॥ १४ ॥

ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः।

तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने स्थानीय पुरवासियोंसे धनुष-यज्ञका स्थान पूछा तथा धनुषके रक्षकों एवं कंसके सेवकोंको मोहित-से करते हुए और पूछते हुए रङ्गशालामें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुषके समान एक अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥

पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत्।

वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥

बहुमूल्य अलङ्कारोंसे युक्त होनेके कारण वह धनुष परम समृद्धिवान् था। उसकी बहुत पूजा की गयी थी। बहुत-से सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे। श्रीकृष्ण आगे बढ़े, रक्षकोंने उन्हें रोका, फिर भी उन्होंने बलपूर्वक धनुषको उठा ही लिया ॥ १६ ॥

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं,

सज्यञ्च कृत्व निमिषेण पश्यताम्।

नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो,

यथेक्षुदण्डं मदकय्युरुक्रमः ॥ १७ ॥

महाबलशाली श्रीकृष्णने खेल-ही-खेलमें बायें हाथसे धनुषको उठाया और पलक झपकते ही उसपर डोरीका सन्धान किया। तत्पश्चात् सबके देखते-ही-देखते धनुषकी डोरी खींची और बीचों-बीचसे उसे इस प्रकार तोड़ डाला, जिस प्रकार मदमस्त हाथी ईखको तोड़ डालता है ॥ १७ ॥

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः।

पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥

धनुषके टूटनेपर उससे महाशब्द निकला, जिससे आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी एवं दिशाएँ गूँज उठीं। कंस भी उसे सुनकर भयभीत हो गया ॥ १८ ॥

तद्रक्षिणः सानुचरं कुपिता आततायिनः।

ग्रहीतुकामा आववृर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥ १९ ॥

उस समय हिंसक स्वभाववाले धनुषके आततायी रक्षक क्रोधित हो उठे। उन्होंने अनुचरों सहित श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छासे उन्हें घेर लिया। इसके बाद 'इसे पकड़ लो, बाँध लो, भाग न जाय, इसे मार डालो, जाने न पावे' इस प्रकार चिल्लाने लगे ॥ १९ ॥

अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ।

क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥

बलराम और श्रीकृष्ण भी उन आततायियोंके दुरभिप्रायको जानकर किञ्चित् क्रोधित हो गये और टूटे धनुषके दोनों खण्डोंको हाथोंमें लेकर उनसे ही उन असुरोंका संहार कर दिया ॥ २० ॥

बलञ्च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात् ततः।

निष्क्रम्य चरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् कंसके द्वारा सहायताके लिए भेजी हुई सैन्य टुकड़ियोंका भी उन्हीं धनुषखण्डोंसे वध कर डाला। वे यज्ञ-गृहके

प्रधान द्वारसे बाहर निकले और मधुपुरीके सुखप्रद ऐश्वर्यका अवलोकन करते हुए बड़े आनन्दके साथ विचरण करने लगे ॥ २१ ॥

तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः ।

तेजः प्रागल्भ्यं रूपञ्च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥

जब पुरवासियोंने बलरामजी और श्रीकृष्णके उस अद्भुत पराक्रमकी बात सुनी और वीर्य, तेज, धीरता, साहस एवं सौन्दर्यकी अतिशयता एवं विचित्रताको देखा, तो यह निश्चय कर लिया कि हो-न-हो ये कोई श्रेष्ठ देवता हैं या तो विष्णु हैं अथवा रुद्र हैं ॥ २२ ॥

तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ।

कृष्णरामौ वृत्तौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥ २३ ॥

इस प्रकार दोनों भाई स्वेच्छासे स्वच्छन्दतापूर्वक नगरीमें विचरण करने लगे। जब सूर्यास्त होने लगा, तब वे ग्वालबालोंके साथ उसी स्थानपर लौट आये, जहाँ उनके छकड़े रखे हुए थे। इस समय व्रजराजका वही निवासस्थान था। श्रीकृष्ण-बलरामने इसी गोपोंके डेरेमें भोजन एवं विश्राम किया था ॥ २३ ॥

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या

आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ।

सम्पश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं

हित्वेतरान् नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥ २४ ॥

स्वयं लक्ष्मीदेवी तीनों लोकोंके ब्रह्मादि बड़े-बड़े देवताओंका परित्याग करके जिनकी अङ्ग-कान्तिके आश्रयकी कामना करती हैं, मधुपुरमें स्थित लोग उन्हीं पुरुषभूषण श्रीकृष्णकी अङ्ग-कान्तिका दर्शन कर रहे हैं। विरहातुर गोपियोंने समस्त शोभाके आश्रयणीय श्रीकृष्णके मथुरा-आगमनपर 'आज मधुपुरवासियोंका सुप्रभात होगा'—इत्यादि जो-जो बातें कही थीं, वे अक्षर-अक्षर सत्य हुई ॥ २४ ॥

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम्।

ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम्॥ २५ ॥

सेवकोंने जब श्रीकृष्ण और बलरामके हाथ पैर धो दिये, तब उन्होंने दूधसे बनी खीर आदिका भोजन किया, जिसे यशोदाने बनाकर छकड़ेपर रख दिया था। यद्यपि कंसका हिंसारूप अभिप्राय उन्हें ज्ञात हो गया था, तब भी वे उस रातको सुखपूर्वक वहीं सो गये। नन्द महाराज भयभीत होकर दोनोंसे कह रहे थे—आज तुमने क्या कर डाला! पूजित धनुषको क्यों तोड़ा? रक्षकोंको क्यों मारा? हाय! हाय! मैं तुम दोनोंको गोष्ठसे क्यों लाया? गहरी निद्राके कारण उन्होंने कुछ नहीं सुना, परन्तु नन्द बाबा नहीं सोये॥ २५ ॥

कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च।

वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम्॥ २६ ॥

दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः।

बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च॥ २७ ॥

इधर, श्रीकृष्ण और बलरामने खेल-ही-खेलमें अनायास ही धनुषको तोड़ डाला है और सहायताके लिए भेजी हुई उसकी सेनाओंका वध कर दिया है—यह सुनकर दुर्बुद्धि कंस चिन्तित और भयभीत हो गया। उसे बहुत देर तक नींद नहीं आयी। स्वप्न और जागरण दोनों ही अवस्थाओंमें वह मृत्युको सूचित करनेवाले विविध अपशकुनोंको देखने लगा॥ २६-२७ ॥

अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि।

असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा॥ २८ ॥

छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः।

स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम्॥ २९ ॥

स्वप्ने प्रेतमरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम्।

यायात्रलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः॥ ३० ॥

अन्यानि चेत्थन्भूतानि स्वप्नजागरितानि च।

पश्यन् मरणसन्त्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥ ३१ ॥

कंसने देखा कि जलादिमें उसका प्रतिबिम्ब तो दिखायी दे रहा है, पर मस्तक दिखायी नहीं देता। नेत्रोंमें बाधा पहुँचानेवाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है, तो भी सूर्यादि ज्योतिष्क दो-दो रूपोंमें दिखायी दे रहे हैं। छायामें छिद्र दिखायी पड़ रहे हैं, कानोंके छिद्रोंको अङ्गुलीसे ढक देनेपर भी अन्तःस्थित प्राणवायुकी जो घूँ-घूँ ध्वनि सुनायी पड़नी चाहिये, वह भी सुनायी नहीं देती, वृक्षोंका वर्ण सुनहरा दिखायी देता है, बालू अथवा कीचड़में अपने पैरोंके चिह्न दिखायी नहीं देते—इस प्रकार जाग्रतावस्थामें उसे बहुत-से अशुभ लक्षण दिखायी दे रहे थे। इसी प्रकारसे स्वप्नावस्थामें भी प्रेतोंका आलिङ्गन, गर्दभ-आरोहण, विषका खाना, जवा कुसुम (अड़हुल) की माला धारण करना, तेलसे सिक्त देह और किसी नग्न पुरुषका जाना एवं अन्यान्य बहुत-से अपशकुनोंको देखकर उसे मृत्युका भय लगने लगा और वह दुश्चिन्ताके कारण सो भी न सका ॥ २८-३१ ॥

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्ध्यः समुत्थिते।

कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥

हे कुरुनन्दन! इसी प्रकार रात्रि बीत गयी और प्रभात हो गया। सूर्यदेव समुद्र-सलिलसे ऊपरकी ओर उठे और तभी कंसने मल्ल-क्रीड़ा महोत्सव आरम्भ करनेका आदेश दे दिया ॥ ३२ ॥

आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तूर्य्यभेर्य्यश्च जघ्निरे।

मञ्चश्चालङ्कृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥ ३३ ॥

कंसके कर्मचारियोंने मङ्गल-कलश स्थापनादिके द्वारा रङ्गभूमिकी पूजा की। भेरी, तुरही आदि बाजे बजने लगे। लोगोंके बैठनेके मञ्च एवं दीर्घाँ फूलोंकी मालाओं पताकाओं, वस्त्रों, झण्डियों एवं वन्दनवारोंसे सुसज्जित कर दिये गये ॥ ३३ ॥

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ।

यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पुरवासी तथा ग्रामवासी सभी दीर्घादि यथास्थानोंपर बैठ गये। समस्त राजालोग भी रङ्गमञ्चपर अपने-अपने निर्दिष्ट स्थानोंपर सुखपूर्वक आसीन हो गये ॥ ३४ ॥

कंसः परिवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् ।

मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥ ३५ ॥

राजा कंस भी उस समय सर्वश्रेष्ठ राजसिंहासन पर बैठ गया। यद्यपि वह मन्त्रियों और मण्डलेश्वरोंसे घिरा हुआ था, तथापि उसका हृदय अपशकुन एवं चिन्ताओंसे घबरा रहा था ॥ ३५ ॥

वाद्यमानेषु तूर्य्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ।

मल्लाः स्वलङ्कृताः दृप्ताः सोपाध्यायाः समासत ॥ ३६ ॥

उस समय भेरी, तुरही आदि वाद्ययन्त्रोंकी ध्वनिसे उत्साहित मल्लोंकी भी उच्च ताल ठोकनेकी आवाज सुनायी पड़ने लगी। इस ध्वनिके बीच ही मल्लाचार्योंके (उस्तादोंके) साथ सजे-धजे गर्वीले मल्लोंने बाहु-स्फोटन ध्वनिके साथ रङ्गमञ्चमें प्रवेश किया और अपने-अपने अखाड़ोंके साथ हो लिये ॥ ३६ ॥

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ।

त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥

चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल आदि प्रधान-प्रधान मल्ल भी आनन्ददायक एवं अनुकूल तुरही आदि वाद्योंकी सुमधुर सङ्गीत-ध्वनिसे उत्साहित होकर मल्लरङ्गक्षेत्रमें (अखाड़ेमें) आ डटे ॥ ३७ ॥

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ।

निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे मल्लरङ्गोपवर्णनं नाम

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इसी समय भोजराज कंसने नन्द आदि गोपोंको बुलवाया। उन्होंने ब्रजसे लाये हुए नाना प्रकारके उपहार कंसको भेंट किये और फिर वे सभी गोप एक मञ्चपर जाकर बैठ गये॥ ३८॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बयालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

कुवल्यापीड हाथीका वध करनेके पश्चात् श्रीकृष्ण और
बलरामका अखाड़ेमें प्रवेश तथा उनका
चाणूरके साथ वार्त्तालाप

श्रीशुक उवाच—

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप।

मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेतुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे परन्तप! बलदेव एवं श्रीकृष्ण शौचादि नित्यकर्मोंसे निवृत्त हो गये। तभी उन्हें अखाड़ेसे मल्लोंकी ताल ठोकनेकी ध्वनिसे समन्वित नगाड़ेका घोष सुनायी पड़ा। अतः वे सखाओंके साथ रङ्गक्रीड़ाको देखनेके लिए रङ्गशालाकी ओर चल पड़े ॥ १ ॥

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम्।

अपश्यत् कुवल्यापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण रङ्गभूमिके द्वारपर पहुँचे ही थे कि उन्होंने श्रीकृष्णके वधके लिए महावतकी प्रेरणासे प्रवेश-द्वारको रोककर खड़े हुए कुवल्यापीड नामके गजराजको देखा ॥ २ ॥

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान्।

उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगम्भीरया ॥ ३ ॥

उसे देखते ही भगवान् श्रीकृष्णने युद्धोचित रीतिसे कमरको वस्त्रसे कसकर बाँध लिया और घुँघराली अलकावलियोंको उत्तरीयके द्वारा यथास्थान दृढ़तापूर्वक समेट लिया। इसके बाद वे मेघके समान गम्भीर वाणीसे महावतको ललकारकर कहने लगे ॥ ३ ॥

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम्।

नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम्॥४॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महावत! अरे ओ महावत! हमें प्रवेश करनेके लिए रास्ता दे दो। द्वारसे हट जाओ! देर मत करो, नहीं तो हाथीके साथ तुम्हें भी यमालय भेज देंगे॥४॥

एवं निर्भीर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम्।

चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम्॥५॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे तिरस्कारपूर्ण वचनोंसे महावत क्रोधित हो उठा। उसने कालान्तक (मृत्यु) और यमराजके समान मतवाले कुवलयापीडको अंकुशकी मारसे उत्तेजित किया और उसे श्रीकृष्णकी ओर बढ़ाया॥५॥

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाग्रहीत्।

कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत॥६॥

उन्मत्त हस्तीराज कुवलयापीड श्रीकृष्णकी ओर बढ़ा और उसने अपनी सूँड़से श्रीकृष्णको लपेट लिया। तब श्रीकृष्णने वाम मुष्टिकासे (घूँसेसे) हाथीकी सूँड़पर प्रहार किया और वहाँसे निकलकर उसके बड़े मोटे पैरोंके मध्य जाकर छिप गये। इस प्रकार प्रसन्नवदन परम कौतुकी भगवान् श्रीकृष्णने हाथीकी बहुत प्रकारसे वञ्चना करते हुए अपनी अद्भुत क्रीड़ाका लोगोंको दर्शन कराया॥६॥

संकुब्धस्तमचक्षणो घ्राणदृष्टिः स केशवम्।

परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः॥७॥

भगवान् केशव पहले उसके एक पैरके पीछे छिप गये, जब गजराज सूँघकर उन्हें मारनेके लिए उद्यत हुआ, तब वे दूसरे पैरके पीछे छिप गये। अब पुनः गजराजको वे सम्मुख दिखायी नहीं दिये, तो वह थोड़ा इधर-उधर चला और उन्हें खोज निकाला। उसने भगवान्को पुनः सूँड़में धारण कर लिया (करिराजके

उत्साह वर्द्धन एवं लोगोंको एक और खेल दिखानेके लिए भगवान् स्वयं ही उसकी पकड़में आ गये) अनन्तर श्रीकृष्णने 'अरे! क्या बल दिखा रहा है' यह कहकर बलपूर्वक उसकी सँड़से बाहर निकल आये॥७॥

पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम्।

विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया॥८॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण महाबलशाली हाथीकी पूँछ पकड़कर खेल-ही-खेलमें उसे सौ हाथ पर्यन्त उसी प्रकार घसीट लाये, जिस प्रकार गरुड़ साँपको अनायास ही घसीट लाता है॥८॥

स पर्यावर्त्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः।

बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः॥९॥

श्रीकृष्ण हाथीकी पूँछ पकड़कर उसे दायें और बायें खींचते रहे। बलवान् बालक जिस प्रकार बछड़ेकी पूँछ पकड़कर उसके साथ ही घूमा करता है, उसी प्रकार उसके साथ भ्रमण करते हुए श्रीकृष्ण उसके साथ खिलवाड़ करने लगे। वह हाथी जब दायीं ओर घूमता, तो वे बायीं ओर घूम जाते और जब वह बायीं ओर घूमता, तब वे दायीं ओर घूम जाते॥९॥

ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाहत्य वारणम्।

प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे॥१०॥

अब अन्य क्रीड़ा दिखानेके लिए श्रीकृष्णने गजराजकी पूँछ छोड़ दी अर्थात् भ्रामण-लीलाका त्याग कर दिया अब उन्होंने सम्मुख आकर गजराजपर एक हल्का-सा घूँसा जमाया और ऐसी द्रुत गतिसे दौड़े कि वह उतना दौड़ ही नहीं सकता था। इसके बाद उसे दिखाते हुए उसके सामनेसे उसे उत्साहित करते हुए इस प्रकार भागे, मानो उन्हें वह अब छू लेगा, तब छू लेगा। और, जब वह कुवलयापीड उनका स्पर्श करने ही वाला था कि श्रीकृष्ण वहाँसे उसे झाँसा देकर इस प्रकार भागे कि चारों ओर दौड़-दौड़कर अन्तमें वह हाथी पृथ्वीपर गिर पड़ा॥१०॥

स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः।

तं मत्वापतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम् ॥ ११ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण उस कुवलयापीडको खेल खिलाते हुए (शिलामय भूमिपर उसे प्रताड़ित करते हुए) कभी दौड़ते, कभी पृथ्वीपर गिर जाते और फिर उठकर दौड़ने लगते। कुवलयापीड भी खेलते हुए उनके पीछे दौड़ता और गिर पड़ता। क्रुद्ध हाथीने इस बार भगवान्‌को पृथ्वीपर गिरा देखा, तो वह पृथ्वीपरसे उठा। भगवान् झटसे वहाँसे उठकर भाग खड़े हुए। उस समय वह उन्हें गिरा समझकर अपने दोनों दाँतोंके द्वारा पृथ्वीपर जोर-जोरसे मारने लगा ॥ ११ ॥

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः।

चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥

असहिष्णु गजराज अपने पराक्रमको विफल देखकर अत्यधिक चिढ़ गया। प्रधान महावर्तोंने अङ्कुश लगाकर उसे पुनः क्रोधित किया और इस बार वह अधिक क्रोधके साथ श्रीकृष्णकी ओर झपटा ॥ १२ ॥

तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः।

निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण अब खेल समाप्त करना चाहते थे, अतः उन्होंने उसे अपनी ओर झपटते देखकर स्वयं उस हाथीके समीप पहुँच गये और अपने एक ही हाथसे उसकी सूँड़ पकड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया ॥ १३ ॥

पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया।

दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥

शक्तिशाली सिंहके समान भगवान् श्रीहरिने भूमिपर गिरे हुए हाथीको खेल-ही-खेलमें पैरोंसे दबाया और उसके दाँत उखाड़ लिये। उन दाँतोंसे ही भगवान्‌ने उस हाथीको और उसके महावर्तोंको मार डाला ॥ १४ ॥

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ।

अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ।

विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ॥ १५ ॥

मरे हुए हाथीको वहीं छोड़कर और उस हाथीके दाँतको हाथमें ही लेकर भगवान् श्रीकृष्णने रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। उस समय भगवान्की अद्भुत शोभा हो रही थी। स्कन्धपर स्थापित-गज-दन्त, श्रीविग्रहपर हाथीके रक्तकी बूंदों एवं मद-कणोंका छिड़काव तथा श्रमसे निःसृत नीहार-बिन्दुओंकी भाँति स्वेद-कणिकाओंसे (परिश्रमके कारण पसीनेकी बूंदोंसे) झिलमिलाता मुखकमल—मानो वीर-रस साक्षात् मूर्तिमान् होकर सुशोभित हो रहा हो ॥ १५ ॥

वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनाईनौ ।

रङ्गं विविशतु राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥ १६ ॥

हे राजन्! भगवान् बलराम और भगवान् जनार्दन—दोनों ही हाथोंमें कुवलयापीडके दाँतको शस्त्रके रूपमें लेकर रङ्गभूमिमें प्रवेश कर रहे थे और कुछ ग्वालबाल भी उनके साथ चल रहे थे ॥ १६ ॥

मल्लानामशनिर्नृणां

नरवरः

स्त्रीणां स्मरो

मूर्तिमान्

गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां

शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।

मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां

तत्त्वं परं

योगिनां

वृष्णीनां परदेवतेति विदितो

रङ्गं

गतः

साग्रजः ॥ १७ ॥

परीक्षित्! उस समय बलदेवजीके साथ रङ्गभूमिमें प्रवेश करते हुए शृङ्गारादिसर्वरस-कदम्बमूर्ति श्रीकृष्ण मल्लोंको वज्रके समान कठोर, साधारण नरोंको नरोत्तम स्वरूप, कामिनियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोपोंको बान्धव, दुष्ट राजाओंको शासन-कर्त्ता, माता-पिताके

समान वृद्धजनोको शिशु, कंसको मृत्यु, अज्ञ जनोको विराट् पुरुष, योगियोंको परम तत्त्व एवं भक्त वृष्णियोंको परम आराध्यके रूपमें प्रतीत हो रहे थे (सबने अपने-अपने भावोंके अनुरूप क्रमशः रौद्र, अद्भुत शृङ्गार, सख्य, हास्य, वीर, वात्सल्य, करुण, भयानक, वीभत्स, शान्त और दास्य—इस प्रकार द्वादश रसोंसे युक्त देखा) ॥ १७ ॥

हतं कुवल्यापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ।

कंसो मनस्यपि तदा भृशमुद्विजिजे नृप ॥ १८ ॥

नरपति कंसने यह देखा कि कृष्ण और बलरामने कुवल्यापीड हाथीको मार डाला है। अतः इन्हें जीतना बड़ा कठिन है। यह सोचकर वह अतिशय उद्विग्न (बेचैन) हो गया ॥ १८ ॥

तौ रेजतू रङ्गतौ महाभुजौ

विचित्रवेषाभरणस्रग्म्बरौ ।

यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ

मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण और बलरामजीका वेश अतिशय अद्भुत लग रहा था। उन्होंने पुष्पोंकी मालाएँ, नाना प्रकारके वस्त्र एवं आभूषण पहन रखे थे। उनकी दोनों विशाल भुजाएँ भी सुसज्जित एवं अलंकृत थीं। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उत्तम वेश धारण करके दो नट अभिनय करनेके लिए रङ्गभूमिमें प्रवेश कर रहे हों। वे अपनी कान्तिसे सभी दर्शकोंके चित्तको अभिभूत करते हुए रङ्गभूमिके मध्य अतिशय शोभायमान हो रहे थे ॥ १९ ॥

निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना

मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप।

प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः

पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥

हे राजन्! मञ्च एवं दीर्घाओंमें बैठे हुए नागरिक और जनपदवासियोंने जैसे ही पुरुषोत्तम बलराम और श्रीकृष्णका दर्शन

किया, तो उनके नेत्र एवं मुख-मण्डल हर्षसे खिल उठे। मन प्रफुल्लित हो गये। वहाँ उपस्थित सभी दर्शक अपने-अपने नेत्रोंसे उन दोनोंके मुख-माधुर्यका (वदनामृतका) पान कर रहे थे, परन्तु उनकी तृप्ति नहीं हो रही थी॥ २० ॥

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया।

जिघ्रन्त इव नासाभ्यां शिलष्यन्त इव बाहुभिः॥ २१ ॥

ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम्।

तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव॥ २२ ॥

परीक्षित्! ऐसा जान पड़ता था मानो दर्शक अपने नेत्रोंसे उनके सौन्दर्यका पान कर रहे हों, जिह्वासे उन्हें चाट रहे हों, सौरभ्य-लालसासे नाकसे उन्हें सूँघ रहे हों और बाहोंके द्वारा उनका आलिङ्गन कर रहे हों। इस प्रकारसे उनके रूप, गुण, माधुर्य एवं निर्भयताने लोगोंको उनकी लीलाओंका स्मरण करा दिया। वे आपसमें उन दोनोंके द्वारा की गयी धनुर्भङ्ग एवं गोवर्धन-धारण आदि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्षरूपसे देखी-सुनी (धनुर्भङ्गादि दर्शन एवं गोवर्धन-धारण आदि श्रवण) लीलाओंका वर्णन करने लगे॥ २१-२२ ॥

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेनारायणस्य हि।

अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि॥ २३ ॥

सभी अपनी-अपनी प्रतीतिके अनुसार कह-सुन रहे थे—ये बलराम-कृष्ण साक्षात् श्रीहरि नारायणके अंश हैं और पृथ्वीपर वसुदेवके घरमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २३ ॥

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम्।

कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि॥ २४ ॥

(अङ्गुली दिखलाकर) ये साँवले-सलोने कुमार पहले देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, जन्मते ही वसुदेवजीने इन्हें गोकुल पहुँचा दिया था, इतने दिनों तक ये नन्दगोपके ही घरमें छिपकर रहे और वहीं इतने बड़े हुए हैं॥ २४ ॥

पूतनानेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानवः ।

अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥ २५ ॥

इन्हीं श्रीकृष्णने पूतना राक्षसी, चक्रवात असुर (तृणावर्त), शङ्खचूड, केशी, और धेनुक आदि अन्यान्य असुरोंका वध किया है। इन्होंने ही यमलार्जुन वृक्षोंका उद्धार किया है ॥ २५ ॥

गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ।

कलियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥

इन्होंने ही दावानलसे ग्वालबालों तथा गायोंकी रक्षा की है। इन्होंने ही कालिय नागका दमन और इन्द्रका मान-मर्दन किया है ॥ २६ ॥

सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना ।

वर्षवाताशनभ्यश्च परित्रातञ्च गोकुलम् ॥ २७ ॥

इन्होंने ही सात दिनों तक एक ही हाथपर गिरिराज गोवर्धनको धारण करके वर्षा, आँधी एवं वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा की है ॥ २७ ॥

गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् ।

पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा ॥ २८ ॥

सदैव प्रफुल्लित एवं अक्लान्त, मन्द-मधुर मुसकान तथा तिरछी चितवनसे युक्त इनके मुखको देखकर गोपियाँ प्रसन्नतापूर्वक अनायास ही अपने पति, सास आदि आत्मीयोंकी ताड़ना एवं भर्त्सनाको सह लिया करती थीं। उन्हें दुःखकी गन्धमात्रका भी अनुभव नहीं होता था ॥ २८ ॥

वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः ।

श्रियं यशो महत्त्वञ्च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥

ज्योतिषविद् कहते हैं कि इन्हीं श्रीकृष्णके संरक्षणमें यदुवंश विस्तृत रूपसे ख्याति, ऐश्वर्य, यश एवं गौरवको प्राप्त करेगा ॥ २९ ॥

अयञ्वास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः ।

प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥

ये जो दूसरे कमल-लोचन श्रीबलदेवजी हैं, इन्हीं श्रीकृष्णके ज्येष्ठ भ्राता हैं। ये समस्त दिव्य ऐश्वर्योंके स्वामी हैं। सुनते हैं कि इन्होंने ही प्रलम्ब, वत्स, बक इत्यादि असुरोंका संहार किया है (जैसा सुना है, वैसा ही वर्णन कर रहे हैं) ॥ ३० ॥

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ।

कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

दर्शकगण जब इस प्रकारसे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे एवं अखाड़ेमें तुरही आदिकी ध्वनि तूल पकड़ रही थी, तभी चाणूर नामका महामल्लयोद्धा बलरामजी और श्रीकृष्णको सम्बोधनकर कहने लगा— ॥ ३१ ॥

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसम्मतौ ।

नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राजाहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥

चाणूरने कहा—हे नन्दपुत्र श्रीकृष्ण! हे बलराम! तुम दोनों कुशती लड़नेमें बड़े निपुण हो—सभी वीर पुरुष इस बातका अनुमोदन करते हैं, इसलिए तुम्हारा बड़ा आदर करते हैं। यह सुनकर हमारे महाराज कंसने तुम्हारे बाहु-युद्ध-कौशलको स्वयं देखनेके लिए ही तुम दोनोंको यहाँ बुलवाया है ॥ ३२ ॥

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ।

मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥

देखो भाई! जो प्रजा सदैव अपने मन, वचन और कर्मसे अपने राजाका अभीष्ट पूर्ण करनेका प्रयास करती है, उसका मङ्गल होता है और जो इसके विपरीत आचरण करती है—उसका अमङ्गल हो जाता है, उसे हानि उठानी पड़ती है ॥ ३३ ॥

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ।

वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥ ३४ ॥

यह सर्वविदित है कि गाय और बछड़े चरानेवाले गोप प्रतिदिन बड़े आनन्दके साथ विविध जङ्गलोंमें अपनी गायोंको चराते हैं और खेल-खेलमें मल्लयुद्ध क्रीड़ा भी करते रहते हैं ॥ ३४ ॥

तस्माद् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम हे।

भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥

अतः हे कृष्ण! हे बलराम! आओ, तुम और हम मिलकर राजाकी प्रसन्नताके लिए कुशती लड़ें, जिससे समस्त प्राणी हमसे प्रसन्न हो जायेंगे। राजा सर्वभूतमय होता है, सारी प्रजाका प्रतीक होता है—ऐसा शास्त्रोंमें कहा गया है ॥ ३५ ॥

तन्निशम्याब्रवीत् कृष्णो देशकालोचितं वचः।

नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च ॥ ३६ ॥

परीक्षित्! उसकी बातें सुनकर श्रीकृष्णने सोचा कि 'कुशती तो मेरा भी अभीष्ट है' अतः उन्होंने चाणूरका अभिनन्दन (अनुमोदन) किया एवं स्थान, समयके अनुसार वे उससे यह कहने लगे ॥ ३६ ॥

प्रजा भोजपतेरस्य वयञ्चापि वनेचराः।

करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥

चाणूर! हम तो वनमें विचरण किया करते हैं, फिर भी इन्हीं भोजराज कंसकी प्रजा हैं। हमें वही कार्य करने चाहिये, जो हमारे राजाको प्रिय हों। ऐसा करनेमें ही हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम्।

भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥ ३८ ॥

परन्तु चाणूर! हम तो अभी बालक हैं, अतः समान बलवाले बालकोंके साथ ही कुशती लड़नेका खेल खेलेंगे। यही न्यायसङ्गत कुशती मानी जायेगी। इससे सम्माननीय सभासदोंको अधर्म (अन्यायका समर्थन) भी स्पर्श नहीं करेगा। वे भी पापके भागी नहीं होंगे ॥ ३८ ॥

चाणूर उवाच—

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः।

लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥

चाणूरने कहा—अजी! तुम और बलराम न तो बालक हो और न ही किशोर। तुम दोनों तो महाबलवान् हो। तुमने तो सहस्र हाथियोंके बलको धारण करनेवाले कुवलयापीड नामके गजराजको खेल-ही-खेलमें मार डाला ॥ ३९ ॥

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै।

मयि विक्रम वाष्ण्येय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे कुवलयापीडवधो नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इसलिए तुम दोनोंको महाबलशाली मल्लोंके साथ युद्ध करना चाहिये। इसमें अधर्मकी कोई बात नहीं है। इसलिए हे वाष्ण्येय (वृष्णिवंशी कृष्ण)! तुम मेरे साथ अपना पराक्रम प्रदर्शन करो और बलराम मुष्टिकके साथ मल्लयुद्ध करते हुए अपना पराक्रम दिखलाओ ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तैत्तलीसर्वे अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों तथा
कंसका उद्धार

श्रीशुक उवाच—

एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान् मधुसूदनः ।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! चाणूरके द्वारा इस प्रकारसे कहे जानेपर भगवान्ने चाणूर आदिका वध करनेका अपना सङ्कल्प स्थिर कर लिया। भगवान् स्वयं चाणूरसे और बलराम मुष्टिकसे भिड़ गये ॥ १ ॥

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ।
विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण एवं चाणूर, बलदेवजी एवं मुष्टिक दोनों हाथोंसे हाथ बाँधकर और पैरोंसे पैर अड़ाकर विजयकी अभिलाषासे एक-दूसरेको अपनी-अपनी ओर बलपूर्वक खींचने लगे ॥ २ ॥

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्याञ्चैव जानुनी ।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥

इस प्रकार वे दाँव-पेंच करते-करते अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वीसे घूंसोंसे घूसे, घुटनोंसे घुटने, सिरसे सिर एवं छातीसे छाती भिड़ाकर परस्पर प्रहार करने लगे। कनिष्ठाङ्गुलिको छोड़कर बनायी गयी मुष्टिकाको 'अरत्नि' कहते हैं। यद्यपि मल्लयुद्धमें यह दुष्कर है, परन्तु श्रीकृष्णको ऐसा करते देखकर चाणूरने भी बड़े कष्टसे इसका प्रयास किया ॥ ३ ॥

परिभ्रामणविक्षेपपरिम्भावपातनैः ।
उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥

वे कभी एक दूसरेको हाथ आदि पकड़कर इधर-उधर घुमाते, कभी दूर धकेल देते, कभी भुजाओंसे जोरसे जकड़ लेते, लिपट जाते, कभी उठाकर नीचे पटक देते, कभी छूटकर निकल भागते, कभी आगे जाते, कभी छोड़कर पीछे हट जाते—इस प्रकार इन सभी दौंव-पेंचोंसे विपक्षीको रोकनेका प्रयास करते ॥ ४ ॥

उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि।

परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥

परीक्षित्! कृष्ण एवं चाणूर एक-दूसरेको हरा देनेकी महती अभिलाषासे 'उत्थापन' अर्थात् घुटनों एवं पैरोंको पिण्डी जैसा बना करके गिरे हुए को हाथोंसे ऊपर उठाते, 'उन्नयन' अर्थात् दोनों हाथोंसे उठाकर ऊपर ले जाते, 'चालन' अर्थात् गलेमें लिपट जानेपर धकेल देते, 'स्थापन' अर्थात् हाथ-पैर आदिकी गाँठ बाँध देते और इस प्रकार देहोंमें चोट पहुँचाकर एक-दूसरेका अपकार कर बैठते। (भगवान्की देहादिका कोई अपकार न होनेपर भी दर्शकोंके मतानुसार ऐसा कहा गया है) ॥ ५ ॥

तद्वलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः।

ऊचुः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥

हे राजन्! उस समय इस दङ्गलको देखनेके लिए नगरकी बहुत-सी स्त्रियाँ भी आयी हुई थीं। महाबलवान् एवं दुर्बलोंके बीचमें होनेवाली यह लड़ाई उन्हें अनुचित, वैषम्यभावयुक्त और पक्षपातपूर्ण लगी। उनका हृदय दयासे आर्द्र हो गया। अपनी-अपनी पंक्तियोंमेंसे टोलियाँ बनाकर वे बड़ी दुःखी होकर एक-दूसरसे बातचीत करने लगीं ॥ ६ ॥

महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम्।

ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥

अहो! राजाके सभासदोंका यह बड़ा अन्याय और अधर्म है। यह युद्ध महाबलवान् और दुर्बलोंमें चल रहा है। यह देखकर भी

ये सभासद राजाको रोक नहीं रहे हैं, बल्कि उसका अनुमोदन ही कर रहे हैं ॥७॥

क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ।

क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥८॥

देखो तो सही! लोहेके वज्रके समान कठोर शरीरवाले पर्वतोंके समान कहाँ तो ये दोनों जाने-माने पहलवान और कहाँ अति सुकुमार, अल्पवयस्क, किशोरावस्थावाले ये बलराम और कृष्ण—अभी तो इनका यौवन भी नहीं आया है ॥८॥

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत्।

यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥९॥

ऐसे अन्यायपूर्ण युद्धमें अनुमोदनके कारण निश्चय ही इस सभाको अधर्मका पाप लगेगा। सखी! जिस सभामें धर्मका उल्लङ्घन हो चुका हो, वहाँ एक क्षण भी रहना शास्त्र और युक्तिसङ्गत नहीं है, अवश्य ही वहाँसे चले जाना चाहिये ॥९॥

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन्।

अब्रुवन् विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥१०॥

दूसरी टोलीकी स्त्रियाँ कहने लगीं—जो धर्मज्ञ व्यक्ति सभामें अधर्मके होनेपर भी मौन धारण कर लेते हैं, अथवा धर्मके विपरीत मिथ्या भाषण करते हैं अथवा इस सम्बन्धमें 'मैं नहीं जानता' ऐसी अपनी अज्ञानताका दिखावा करते हैं, वे तीनों ही पापके भागीदार होते हैं। शास्त्रोंका कहना है कि बुद्धिमान् पुरुषोंको यदि सभासदोंके इन दोषोंके विषयमें पता चल जाय, तो उन्हें उस सभामें प्रवेश भी नहीं करना चाहिये ॥१०॥

वल्गातः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम्।

वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥११॥

यह देखो! शत्रुके चारों ओर पैंतरा बदलनेके कारण श्रीकृष्णका मुख—कमल पसीनेकी बूँदोंसे इस प्रकार पूरा ढक गया

है, जिस प्रकार कमल-कोश ओसकी बूँदोंसे आच्छादित हो जाता है ॥ ११ ॥

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम्।

मुष्टिकं प्रति सामर्ष हाससंरम्भशोभितम् ॥ १२ ॥

अन्य टोलीकी स्त्रियाँ कहने लगीं—तुम बलदेवका मुख देख रही हो कि नहीं? मुष्टिकके प्रति क्रोधके कारण ताँबेके समान कुछ-कुछ लाल हुए उनके नेत्र-युगल कितने सुन्दर लग रहे हैं! उसपर स्फुरित सहास्य युद्धावेश उनकी शोभा कितनी बढ़ा रहा है! ॥ १२ ॥

पुण्या बत ब्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग-

गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः।

गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं,

विक्रीडयाञ्चति गिरित्रमार्चिताङ्घ्रिः ॥ १३ ॥

अन्य नारियाँ कहने लगीं—सखी! सच पूछो तो ब्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है, क्योंकि वहाँ ये सनातन पुरुष श्रीकृष्ण मनुष्य-वेशमें छिपकर रहते हैं। देवदेव महादेव शङ्कर और लक्ष्मीजी जिनके श्रीचरणकमलोंकी पूजा करती हैं, वे ही प्रभु ब्रजमें रङ्ग-बिरङ्गे विचित्र वन्य पुष्पोंकी माला धारणकर बलदेवजी और ग्वालबालोंके साथ बाँसुरी बजाते हुए, गौएँ चराते हुए और विभिन्न प्रकारके खेल खेलते हुए आनन्दसे विचरण करते हैं ॥ १३ ॥

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं

लावण्यसारमसमोद्ध्वमनन्यसिद्धम् ।

दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-

मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥

(अपनेको अल्पपुण्यवती और गोपियोंको अतिशय पुण्यवती मानकर कहने लगीं) अरी सखी! नहीं जानतीं, गोपियोंने ऐसी कौन-सी अनिर्वचनीय तपस्या की है कि वे नित्य-निरन्तर अपने

नेत्रोंके द्वारा श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीका पान करती रहती हैं। (हम भी वही तपस्या करके व्रजभूमिमें जन्म लेंगी) श्रीकृष्णका सौन्दर्य समस्त लावण्यका सार है, असमोर्ध्व है, स्वभावसिद्ध है, यश, श्री एवं ऐश्वर्यका एकमात्र आधार है, नित्य-नूतन सौन्दर्यका स्रोत है, परन्तु इनका दर्शन गोपियोंके अतिरिक्त औरोंके लिए अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १४ ॥

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्ज्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥

सखी! व्रजकी गोपियाँ बड़ी धन्य हैं। इनका चित्त पूर्णतया श्रीकृष्णमें ही आविष्ट रहता है, नित्य-निरन्तर रुदनके कारण इनका कण्ठ अवरुद्ध रहता है और मन उन्हींमें लगा रहता है। विशेषरूपसे ये गोपियाँ गायोंको दुहती हुई, धान्यादि कूटती हुई, दधि मन्थन करती हुई, लेपन-प्रोक्षण करती हुई, बालकोंको झूला-झुलाती हुई, रोते शिशुओंको चुप कराती हुई, उन्हें नहलाती-धुलाती हुई और घरोंको झाड़ती-बुहारती हुई—इस प्रकार सारे काम-काजोंमें लगी हुई उनकी ही लीलाओंका गान करनेमें एवं उनके नवनवायमान रूपके माधुर्यके पानमें रत रहती हैं ॥ १५ ॥

प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं
गोभिः समः क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ।
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः
पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥

जब श्रीकृष्ण प्रातःकाल गौओंको चरानेके लिए व्रजसे बाहर जाते हैं और सायंकाल उन्हें लेकर व्रजमें प्रवेश करते हैं, तब वे मधुर स्वरसे बाँसुरी बजाते हैं। उस समय उनकी बाँसुरीकी ध्वनि सुनते ही गोपियाँ घरका काम-काज छोड़कर शीघ्र ही रास्तेमें (गौओंको लौटानेके मार्गके समीप किसी उपवनादि तक)

दौड़ आती हैं और उनकी करुण चितवन एवं मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त मुखकमलको निहारती रहती हैं। सखी! ये गोपियाँ अतिशय पुण्यशालिनी हैं! हम तो कितने विषम समयमें उन्हें देख रही हैं ॥ १६ ॥

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः।

शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ ॥ १७ ॥

हे भरतकुल शिरोमणे! इधर नारियाँ परस्पर इस प्रकारसे वार्तालाप कर रही थीं और उधर अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण चाणूरका वध करनेका सङ्कल्प कर रहे थे ॥ १७ ॥

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ।

पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥

देवकी एवं वसुदेव भी (तथा नन्दबाबा भी) इन स्त्रियोंके भयपूर्ण वचनोंको सुन रहे थे। पुत्रके स्नेहवश वे शोकविह्वल हो गये। उनके हृदयमें अनुताप होने लगा, क्योंकि वे अपने पुत्रोंकी सामर्थ्यको नहीं जानते थे (नन्दबाबा तो पछता रहे हैं कि यदि अक्रूरसे पूछ लिया होता, तो इन्हें यहाँ लाता ही क्यों?) ॥ १८ ॥

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ।

युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण एवं चाणूर पूर्वोक्त मल्लयुद्धके विविध दौड़पेंचोंका प्रयोग करते हुए परस्पर जिस प्रकार लड़ रहे थे, बलदेव एवं मुष्टिक भी उसी प्रकारसे कुशतीका कुशलतापूर्वक प्रदर्शन कर रहे थे ॥ १९ ॥

भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ।

चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्लानिमवाप ह ॥ २० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके कठोर अङ्गोंके दुःसह प्रहार चाणूरको वज्रकी रगड़के समान जान पड़ रहे थे, जिससे उसके शरीरका

अङ्ग-अङ्ग क्रमशः शिथिल हो गया। चाणूर अत्यधिक कष्ट एवं थकानका अनुभव कर रहा था ॥ २० ॥

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ।

भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥

वह क्रोधित होकर बाजपक्षीके समान वेगपूर्वक झपटा और दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर उसने भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥ २१ ॥

नाचलत् तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः।

बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः ॥ २२ ॥

भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम्।

विस्रस्ताकल्पकेशस्रग्निन्द्रध्वज इवापतत् ॥ २३ ॥

भगवान् उसके प्रहारोंसे उसी प्रकार अविचलित रहे, जिस प्रकार फूलोंके हारकी मारसे गजराज। इसके बाद स्वयं ही उन्होंने चाणूरकी दोनों भुजाएँ पकड़कर उसे उत्पीड़ित करते हुए अन्तरीक्षमें वेगपूर्वक चारों ओर कई बार घुमाकर मृतप्राय अवस्थामें बड़े वेगसे पृथ्वीपर पटक दिया। उस समय चाणूरके वस्त्र, केशपाश और माल्यबन्धन बिखर गये। वह पृथ्वीपर ऐसे गिरा, मानो इन्द्रध्वज (ध्वजा एवं पताकादि द्वारा अलंकृत पुरुषाकृति विशाल विजय स्तम्भ) गिर पड़ा हो ॥ २२-२३ ॥

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै।

बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥

प्रवेपितः स रुधिरमुद्रमन् मुखतोऽर्दितः।

व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥ २५ ॥

इसी प्रकार मुष्टिकने पहले बलभद्रपर घूसेसे प्रहार किया, तब इसके उत्तरमें उन्होंने भी उसे एक जोरदार थप्पड़ मारा। प्रहारसे व्यथित होनेसे मुष्टिकका शरीर काँपने लगा, वह मुखसे रक्त उगलने लगा और क्रमशः निष्प्राण होकर अन्तमें पृथ्वीपर इस

प्रकार गिर पड़ा, मानो आँधीसे वृक्ष उखड़कर गिर गया हो ॥ २४-२५ ॥

ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः।

अवधील्लीलया राजन् सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥

हे राजन्! मुष्टिक-वधके पश्चात् योद्धाओंमें श्रेष्ठ बलदेवने युद्धके लिए सम्मुख आये कूट नामक दैत्य-मल्लको देखा, तो खेल-ही-खेलमें बड़े ही तिरस्कारके साथ बाँये हाथकी मुष्टिकासे उसका वध कर डाला ॥ २६ ॥

तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः।

द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥

इधर श्रीकृष्णने शल नामक मल्लके मस्तकपर अपने पैरकी ठोकरसे प्रहार किया, जिससे उसका सिर धड़से अलग हो गया और तोषलको भी इसी प्रकार तिनकेकी भाँति दो भागोंमें खण्डित करके धराशायी कर दिया ॥ २७ ॥

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते।

शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥

बचे हुए मल्लोंने जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल एवं तोषलको मरा हुआ देखा, तो अपने-अपने प्राणोंको बचाकर वहाँसे भाग निकले ॥ २८ ॥

गोपान् वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजहतुः।

वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुतनूपुरौ ॥ २९ ॥

सारे मल्लोंके भाग जानेपर बलराम और कृष्णने अपने गोपसखाओंको खींच-खींचकर अखाड़ेमें बुलाया और नाचते हुए खेलने लगे। उस समय भेरी बज ही रही थी और ये सभी समवयस्य ग्वाल उसकी ध्वनिसे अपने पैरोंके नूपुरोंकी झनकारको मिलाकर प्रमोदपूर्वक नृत्य कर रहे थे ॥ २९ ॥

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः।

ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति॥ ३० ॥

बलराम और कृष्णकी इन अद्भुत लीलाओंको देखकर कंसके अतिरिक्त सभी आनन्दित हो रहे थे। प्रमुख ब्राह्मण एवं श्रेष्ठ पुरुष 'धन्य है, धन्य है' कहकर प्रशंसा कर रहे थे। कंस-पुरोहित विप्राधम 'हाय! हाय!' कर रहे थे॥ ३० ॥

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट्।

न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह॥ ३१ ॥

कंसने देखा कि उसके सभी श्रेष्ठ पहलवान मारे जा चुके हैं और जो बचे थे, वे भी भाग गये हैं, तब महाराज कंसने तुरही आदि वाद्य-यन्त्रोंका बजना बन्द करवा दिया (जिन्हें बजानेकी उसने स्वयं आज्ञा दी थी)। अब उसने अपने सेवकोंको यह आज्ञा दी—॥ ३१ ॥

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात्।

धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम्॥ ३२ ॥

'अरे, वसुदेवके इन दोनों दुश्चरित्र पुत्रोंको पुरीसे बाहर निकाल दो। गोपोंका सारा धन अपहरण कर लो और दुर्मति नन्दको बाँध लो।' सरस्वती पक्षमें इन पंक्तियोंका अभिप्राय है 'दुश्चरित्र' अर्थात् जिनका चरित दुर्बोध्य है, उनके द्वारा मथुरा पुरीको प्रकाशित करो। गोपोंके धन श्रीकृष्णकी रक्षा करो और दुर्गममति नन्दजीको प्रेम-रसनासे बाँध लो॥ ३२ ॥

वसुदेवस्तु दुर्मथा हन्यतामाश्वसत्तमः।

उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः॥ ३३ ॥

वसुदेव अत्यन्त दुर्बुद्धि और बड़ा ही दुष्ट है। उसे भी शीघ्र मार डालो। उग्रसेन मेरे पिता होनेपर भी अपने अनुयायियोंके साथ शत्रुओंपर बड़ा अनुराग रखता है। उनसे बड़ा मिला हुआ है, इसलिए उन सबको भी मार डालो॥ ३३ ॥

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः।

लघिमनोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥ ३४ ॥

महाराज कंस बढ़-चढ़कर बकवाद कर ही रहा था कि भगवान् अच्युत श्रीकृष्ण क्रोधित हो उठे और बड़ी फुर्तीके साथ वेगपूर्वक कंसाधिष्ठित ऊँचे मञ्चपर अनायास ही उछलकर चढ़ गये ॥ ३४ ॥

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात्।

मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥

अपनी मृत्युरूपी श्रीकृष्णको मञ्चपर आया देखकर बुद्धिमान् मनस्वी कंस सहसा ही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ और उनका वध करनेके लिए उसने ढाल एवं तलवार उठा लिये ॥ ३५ ॥

तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु

श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे।

समग्रहीदुर्विषहोग्रतेजा

यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥

हे राजन्! कंस हाथमें तलवार लेकर आकाशमें उड़ते हुए बाज पक्षीके समान भगवान्‌के दायें और बायें भागमें पैतरा बदलते हुए घूमने लगा। भगवान् श्रीकृष्णका विक्रम अतिशय प्रचण्ड एवं दुःसह है। गरुड जिस प्रकार बलपूर्वक साँपको पकड़ लेता है, श्रीकृष्णने भी उसे शीघ्र ही पकड़ लिया ॥ ३६ ॥

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं

निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात्।

तस्योपरिष्ठात् स्वयमब्जनाभः

पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥ ३७ ॥

इसी समय कंसके मस्तकसे मुकुट नीचे गिर पड़ा। इसी अवस्थामें भगवान्‌ने उसके केश खींचे और उसे ऊँचे मञ्चसे रङ्गभूमिपर गिरा दिया। इसके बाद वे पद्मनाभ-निखिलाधार-

स्वतन्त्रपुरुष-श्रीकृष्ण स्वयं उसके ऊपर कूद पड़े। उन्होंने अपने ही भारसे उसका विनाश कर दिया ॥ ३७ ॥

तं सम्परेतं विचकर्ष भूमौ
हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः।
हा हेतिशब्दः सुमहांस्तदाभू-
दुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥

हे राजन्! उस समय सारे दर्शक विस्मित होकर इस घटनाको देख रहे थे। भगवान्‌के कूदते ही मथुरेश्वर कंस निष्प्राण हो गया। सिंह जिस प्रकार मृत हाथीको घसीटता है, उसी प्रकार भगवान् भी मृत कंसको भूमिपर घसीटने लगे (जिससे उसकी मृत्युका सबको विश्वास हो जाय)। उस समय अखाड़ेमें विराजित सम्पूर्ण जनमण्डलके मुखसे कंसकी ऐसी अवज्ञापूर्ण मृत्युके कारण हाय-हायकी चीत्कार ध्वनि गूँज उठी ॥ ३८ ॥

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं
पिबन्नदन् वा विचरन् स्वपन् श्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यत-
स्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥

राजा कंस नित्य-निरन्तर उत्कण्ठित एवं विचलित होकर चक्रधारी श्रीकृष्णको ही देखा करता था। खाते-पीते, घूमते, सोते हुए, यहाँ तक कि प्रत्येक निःश्वासपर वही चक्रधारी रूप उसकी आँखोंके सामने रहता था। अतः मरणोपरान्त इस निरन्तर चिन्तनके फलस्वरूप—वह चाहे द्वेष भावसे ही क्यों न किया गया था—उसे श्रीकृष्णके दुर्लभ चक्रधारी रूपके दर्शन हुए। उसे भगवान् जैसा रूप (सारूप्य) प्राप्त हुआ, जो योगियोंके लिए भी दुर्लभ है ॥ ३९ ॥

तस्यानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यगोधकादयः।
अभ्यधावन्नतिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥

कंसके मर जानेपर कङ्क, न्यग्रोध आदि कंसके आठों भाई अत्यन्त क्रोधित होकर बड़े भाईका बदला चुकानेकी इच्छासे भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीकी ओर झपटे ॥ ४० ॥

तथातिरभसांस्तांस्तु संयत्तान् रोहिणीसुतः ।

अहन् परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥

कंसके भाइयोंको युद्धके लिए अत्यन्त वेगसे आते देखकर रोहिणीसुत बलदेवजीने परिघ (गदा) उठाकर, जिस प्रकार सिंह पशुओंको मार डालता है, उसी प्रकार कंसके भाइयोंको अनायास ही मार डाला ॥ ४१ ॥

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ।

पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥

हे नरेन्द्र ! उस समय आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं। भगवान्के विभूति-स्वरूप ब्रह्मा, शङ्कर और अन्यान्य देवता आनन्दसे पुष्प बरसाते हुए उनकी स्तुति करने लगे। अप्सराओंने नृत्य करना आरम्भ कर दिया ॥ ४२ ॥

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ।

तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥

हे महाराज ! कंस और उसके भाइयोंकी पत्नियाँ अपने सुहृत् स्वामियोंके वियोगके कारण शोकसन्तप्त हो गयीं। वे अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अपना सिर पीटती हुई वहाँ आ गयीं ॥ ४३ ॥

शयानान् वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः ।

विलपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥

ये स्त्रियाँ युद्ध-क्षेत्रमें वीरोंकी शय्यापर सोये हुए अपने-अपने पतियोंका आलिङ्गनकर बार-बार आँसू बहाने लगीं और शोकसे भरकर उच्च स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल ।

त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥

हे धर्मज्ञ! हे करुणामय! हे अनाथवत्सल! हे स्नेहपरायण! हे प्रियतम! हे प्रभो! हे नाथ! आपकी मृत्युसे हमारे घर उजड़ गये, हमारी सन्तान अनाथ हो गयी, हम भी आज मर गयीं॥ ४५ ॥

त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ।

न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला॥ ४६ ॥

हे पुरुषप्रवर! आज हमारे समान यह मधुपुरी भी अपने स्वामीके विरहमें सूनी हो गयी है, न तो इसमें अब कोई उत्सव रहा और न ही कोई माङ्गलिक चिह्न! अब हमारी ही तरह विधवा होकर यह भी शोभाहीन हो गयी॥ ४६ ॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम्।

तेनेमां भो दशां नीतो भूतधुक् को लभेत शम्॥ ४७ ॥

हे प्रिय! आपने निरपराध प्राणियोंको बहुत सताया था, उनके साथ बड़ा अन्याय किया था। इसीलिए आपकी यह दशा हुई है। जगत्के प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले भला किस व्यक्तिका मङ्गल हो सकता है?॥ ४७ ॥

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः।

गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण इस जगत्में समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं और वे ही उनका संहार भी करते हैं। इस जगत्के पालनकर्त्ता भी वे ही हैं। उनकी अवज्ञा करनेवालेका किसी भी प्रकारसे कल्याण नहीं हो सकता। वह इस लोक या उस लोकमें कभी भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता॥ ४८ ॥

श्रीशुक उवाच—

राजयोषित आश्वस्य भगवाँल्लोकभावनः।

यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत्॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण लोकोंके पालक हैं। (अतः वे कंसकी राज-महिषियोंके भी

पालक हैं।) उन्होंने उस समय रानियोंको ढाढस बाँधाया तथा लोकरीतिके अनुसार दाहसंस्कार आदि जो अन्तिम क्रिया-कलाप होते हैं, उन सबकी व्यवस्था कराके समस्त क्रियाएँ सम्पन्न करा दीं ॥ ४९ ॥

मातरं पितरञ्चैव मोचयित्वाथ बन्धनात्।

कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसास्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥

इसके बाद श्रीकृष्ण एवं बलरामने अपने माता-पिताको बन्धनसे मुक्त किया तथा सिरसे उनके चरणोंका स्पर्श करके उनकी वन्दना की ॥ ५० ॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ।

कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे कंसवधो नाम

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

देवकी एवं वसुदेवने उस समय दोनों पुत्रोंके प्रणाम करनेपर भी, उन्हें हृदयसे नहीं लगाया, बल्कि उन्हें जगदीश्वर समझकर शङ्कित हो गये और हाथ जोड़कर उनके सामने मौन खड़े रहे। जन्म-समयकी स्मृति एवं कंस-वध आदि ऐश्वर्य देखकर उनकी दृष्टि परमार्थमयी हो गयी थी ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौवालीसवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण तथा बलरामका यज्ञोपवीत-धारण और
गुरुकुलमें अध्ययन

श्रीशुक उवाच—

पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ।
मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण समझ गये कि इस समय माता-पिता देवकी एवं वसुदेवजीको उनके प्रति भगवत्-ज्ञान हो रहा है, परन्तु इनका ऐसा ऐश्वर्य-भाव होना ठीक नहीं है, इसे शिथिल किया जाना चाहिये। अतः वसुदेव-देवकीको ऐश्वर्य-ज्ञानसे उत्कृष्ट माधुर्य-प्रेमका आस्वादन करानेके लिए भगवान्ने उन्मुखमोहिनी योगमायाका विस्तार किया ॥ १ ॥

उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ।

प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥ २ ॥

यह सोचकर यदुवंश शिरोमणि (सात्वतर्षभ) श्रीकृष्ण बड़े भाई बलरामके साथ अपने माता-पिताके समीप पहुँचे और विनीत एवं नम्र भावसे 'हे माता! हे पिता!' इस प्रकार प्रीतिके साथ उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे— ॥ २ ॥

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ।

बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पिताजी! हम आपके पुत्र हैं। आप दोनों हमारे लिए बहुत समय तक अत्यन्त उद्विग्न रहे। पुत्रके बाल्य, पौगण्ड एवं कैशोरावस्थाको देखनेसे जो सुख उत्पन्न होता है, वह भी आपको कभी प्राप्त न हो सका (श्रीकृष्ण बाल्यकालमें गोकुलमें थे, छह वर्ष आठ महीने तक पौगण्ड

अवस्थामें गोकुल-महावनमें रहे और दस वर्ष सात महीने तक कैशोर वयसमें नन्दगाँवमें रहे। तत्पश्चात् चैत्र-त्रयोदशीके दिन मथुरा आये एवं चतुर्दशीके दिन कंसका वध किया। पौगण्ड अवस्थामें ही उनकी किशोर अवस्था प्रारम्भ हो गयी थी। कैशोर अवस्था पन्द्रह वर्ष तक रहती है। कृष्ण सार्वकालिक कैशोर वयस हैं) ॥ ३ ॥

न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके।

यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥

हमारे लिए भी दैवकी बड़ी विडम्बना यह रही कि आपके समीप रहना सम्भव न हो सका। पिताके घरमें रहकर बालकोंको जो सुख प्राप्त होता है, हमें उस सुखकी प्राप्तिका सौभाग्य न मिल सका ॥ ४ ॥

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।

न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥

माता-पिता इस शरीरको जन्म देते हैं और उनके ही द्वारा इस शरीरका पालन-पोषण होता है, तब कहीं जाकर यह शरीर धर्म, अर्थादि जितने भी पुरुषार्थ हैं, उनकी प्राप्तिका साधन बनता है। मनुष्य सौ वर्षों तकके जीवनमें सेवा करके भी पिता-माताके इस ऋणसे मुक्त होनेमें कदापि समर्थ नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च।

वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥ ६ ॥

जो पुत्र सामर्थ्य होनेपर भी शरीर अथवा धनसे बूढ़े माता-पिताकी सेवा नहीं करता, तो मरनेपर परलोकमें यमदूत उसे उसके शरीरका ही मांस बलपूर्वक खिलाते हैं ॥ ६ ॥

मातरं पितरं वृद्धं भार्या साध्वीं सुतं शिशुम्।

गुरुं विप्रं प्रपन्नञ्च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन् मृतः ॥ ७ ॥

जो समर्थ पुरुष शास्त्र-सम्मत माता-पिता, कुलवृद्ध, साध्वी स्त्री, शिशु-बालक, गुरु, ब्राह्मण एवं आश्रितजनोका पालन नहीं करता, वह जीवित होते हुए भी मृतकके समान है॥७॥

तत्रावकल्पयोः कंसात्रित्यमुद्विग्नचेतसोः।

मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः॥८॥

पिता! हम दोनों भाई भी इतने दिनों तक कंसके भयसे उद्विग्न रहे। अतः सामर्थ्य रहनेपर भी आपकी सेवा नहीं कर पाये। हमारे ये सारे दिन व्यर्थ ही बीत गये॥८॥

तत् क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नो परतन्त्रयोः।

अकुर्वतोर्वा शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हदा भृशम्॥९॥

हे पिता! हे माता! दुष्ट कंसने आपको इतने कष्ट दिये, परन्तु हम पराधीन रहे और शत्रुओंसे बड़े त्रस्त रहे। आपकी सेवा करनेका सौभाग्य हमें मिल नहीं सका। आप हमारे इस अपराधको क्षमा करें॥९॥

श्रीशुक उवाच—

इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा।

मोहितावङ्गमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम्॥१०॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! सर्वान्तर्यामी माया-मनुष्य विग्रह अर्थात् कारुण्यमय नराकृति परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके इन वचनोंसे मोहित होकर वसुदेव एवं देवकीने उन्हें गोदमें बिठा लिया और उन्हें हृदयसे लगाकर परम आनन्द प्राप्त किया॥१०॥

सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ।

न किञ्चिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ॥११॥

हे राजन्! उस समय देवकी-वसुदेव अपनी अश्रुधाराओंसे दोनों पुत्रोंका अभिषेक करने लगे। स्नेहकी डोरीके बन्धन एवं आँसुओंके कारण उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे इतने

भाव-विभोर हो गये कि कुछ भी कहनेमें समर्थ न हो सके ॥ ११ ॥

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः।

मातामहन्तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने माता-पिताको आश्वासन दिया तथा अपने नाना उग्रसेनको यदुओंका राजा बना दिया (देवकी-वसुदेव कृष्ण-बलरामको अन्तःपुरमें ले गये थे, उन्होंने सोचा कि आह्निक-कार्य सम्पन्न करके दोनोंको भोजन करायेंगे। श्रीनन्दबाबा यहाँ नहीं थे) ॥ १२ ॥

आह चास्मान् महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि।

ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने महाराज उग्रसेनसे कहा—हे महाराज! हम आपकी प्रजा हैं, आप हमें यथेच्छ आज्ञा प्रदान कर सकते हैं। ययातिके शापसे यादवोंका सिंहासनपर बैठना निषिद्ध है, इसलिए सिंहासनपर हमारा अधिकार नहीं है। आप भी यद्यपि यादव हैं, तथापि मेरे आदेशके कारण आपको कोई दोष नहीं लगेगा ॥ १३ ॥

मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः।

बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥

मैं स्वयं आपकी निजी सेवामें उपस्थित रहकर आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। (अपनी वृद्धावस्थाके विषयमें न सोचें) सारे देवता भी सिर झुकाकर आपको उपहार प्रदान करेंगे, फिर अन्य राजाओंके विषयमें तो कहना ही क्या है? ॥ १४ ॥

सर्वान् स्वान् ज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान्।

यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥

सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकशितान्।

न्यवासयत् स्वगेहेषु वित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह, कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न समस्त सजातीय और आत्मीयोंको विभिन्न स्थानोंसे बुलवाया, जो कंसके भयसे भागकर प्रवासमें रह रहे थे और इस कारण उन्हें बड़े कष्ट हो रहे थे। अपने सम्बन्धियोंका भगवान्ने बहुत सम्मान किया, उन्हें सान्त्वना प्रदान की तथा बहुत धन-सम्पत्ति देकर उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद उन्हें अपने-अपने घरोंमें बसा दिया ॥ १५-१६ ॥

कृष्णसङ्कर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ।

गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥

वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ।

नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥

अब सारे यदुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलदेवके बाहुबलसे सुरक्षित थे। उनके सम्पूर्ण अभीष्ट सफल हो रहे थे और वे परिपूर्ण-काम हो गये थे। बलराम-कृष्णने उनके सारे दुःख-क्लेशोंको दूर कर दिया था। अब तो वे प्रतिदिन भगवान् मुकुन्द श्रीकृष्णके कमलके समान नित्य प्रफुल्लित मुखारविन्दका दर्शन करते हुए गृह-सुख भोग करने लगे। भगवान्का श्रीमुखपद्म सदय मुसकान, अद्भुत चितवन, अपार सौन्दर्य एवं प्रमुदित कान्तिसे युक्त है ॥ १७-१८ ॥

तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ।

पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥

उनमें जो वृद्ध थे, वे नित्य निरन्तर अपने नेत्रोंके द्वारा श्रीकृष्णकी मुखकमल-सुधा (अमृत-माधुरी) का पान किया करते थे। इसी कारण वे भी युवकोंके समान अत्यन्त बलशाली और ओजवान् (उत्साही) होकर मानो तरुण ही हो गये थे ॥ १९ ॥

अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः ।

सङ्कर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥

हे महाराज ! इसके बाद देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलदेव नन्द महाराजके पास गये। उन्होंने उनका आलिङ्गन किया और इस प्रकार कहने लगे (नन्दबाबाने भी अपनी विशाल भुजाएँ फैलाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया था) ॥ २० ॥

पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम्।

पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥

(श्रीबलरामने कहा—) पिताजी ! आपने एवं माता यशोदाने बहुत स्नेह और लाड़-प्यारसे हमारा पालन-पोषण किया है। माता-पिता अपनी सन्तानसे अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रीति रखते हैं। आपने जो हमें इतना दुलार दिया—यह आश्चर्यकी बात नहीं है (मैं तो कृष्णके बिना मथुरामें रह भी नहीं सकता था) ॥ २१ ॥

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत्।

शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोष-रक्षणे ॥ २२ ॥

पिता आदि आत्मीयजन बालकके भरण-पोषणमें असमर्थ होकर जब उसका परित्याग कर देते हैं, तब जो उस बालकका अपने पुत्रके समान पोषण करते हैं, वे ही वास्तविकरूपसे उसके माता-पिता होते हैं (आप मुझे छोड़कर कृष्णको मत ले जाना। कृष्ण-विच्छेदरूप दावानलमें दग्ध होकर मथुरामें रहना मेरे लिए कभी सम्भव नहीं है) ॥ २२ ॥

यात यूयं व्रजं तात वयञ्च स्नेहदुःखितान्।

ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥

(श्रीकृष्ण सान्त्वना प्रदान करते हुए कहने लगे—) हे पिता ! अब आप व्रजमें जाइये। हम यहाँ वसुदेव आदि आपके सुहृद्-सम्बन्धियोंके द्वारा अभिलषित सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करके उन्हें सन्तुष्ट करेंगे और शीघ्र ही विरह दुःखसे कातर आपसे और प्रियजनोंसे (मधुमङ्गलादिसे) मिलनेके लिए आयेंगे ॥ २३ ॥

एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजमच्युतः ।

वासोऽलङ्कारकृप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार नन्द बाबा आदि प्रमुख व्रजवासियोंको सान्त्वना प्रदान की और उन्हें वस्त्र, आभूषण, स्वर्ण तथा रजत आदि अन्यान्य धातुओंके बने हुए बरतन आदि प्रदान कर उनका बड़े आदरके साथ सत्कार किया ॥ २४ ॥

इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ।

पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥

नन्द बाबा श्रीकृष्णके इन वचनोंको सुनकर प्रेमसे अधीर हो गये। उन्होंने उन दोनोंको हृदयसे लगाया एवं आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंसे गोपोंके साथ व्रजकी ओर प्रस्थान किया (भगवान् श्रीकृष्णकी अतर्क्य ऐश्वर्यशाली लीलाशक्ति योगमायाने इस लीलाका समाधान इस प्रकार किया कि इसी क्षण श्रीकृष्ण, बलराम एवं श्रीनन्दादि गोपोंके दो-दो प्रकाश आविर्भूत हो गये। लीलानुरोधसे प्रकटित वे प्रकाश अपनेसे अतिरिक्त दूसरे प्रकाशके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते थे। नन्दव्रजमें श्रीकृष्णका नित्यवास एवं वियोग—दोनों लीलाएँ एक साथ घटित होती हैं) ॥ २५ ॥

अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत् ।

पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥

हे राजन्! तदनन्तर वसुदेवने पुरोहित गर्गाचार्य एवं अन्यान्य ब्राह्मणोंको बुलाया और विधिपूर्वक दोनों बालकोंका द्विजाति-उचित उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार करवाया ॥ २६ ॥

तेभ्योऽदाद्वक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलङ्कृताः ।

स्वलङ्कृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥

इसके बाद वसुदेवने वस्त्र एवं आभूषण आदिके द्वारा ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा की। पूजा करनके बाद उन्हें अलङ्कार,

सुवर्ण, पुष्पहार, रेशमी वस्त्र एवं मालाओंको धारण करनेवाली बछड़ोंसे युक्त गौओंको दक्षिणारूपमें दिया ॥ २७ ॥

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः।

ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हताः ॥ २८ ॥

बलराम और श्रीकृष्णके जन्मके अवसरपर ब्राह्मणोंको दान देनेके लिए महामति वसुदेवने मनमें जितनी गायोंका सङ्कल्प किया था, उन सब गायोंको पहले राजा कंसने अन्यायसे अपहरण करवा लिया था। उसी घटनाका स्मरण करके वसुदेवने राज-गोष्ठसे दस हजार गायोंको मँगवाया और ब्राह्मणोंको प्रदान किया ॥ २८ ॥

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ।

गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥

यदुकुलाचार्य गर्गमुनिसे उपनयन संस्कार करवाकर बलराम और कृष्ण दोनों द्विजत्वको प्राप्त हुए। उनका ब्रह्मचर्य अखण्ड तो था ही, अब वे इसका आश्रयकर नियमपूर्वक रहने लगे ॥ २९ ॥

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ।

नान्यसिद्धामलं ज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः।

काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥

कृष्ण और बलराम सम्पूर्ण विद्याओंके स्रोत एवं आकरस्वरूप, सर्वज्ञ एवं जगदीश्वर हैं। इन्होंने मनुष्योचित कर्म करते हुए अपने स्वतःसिद्ध विमल ज्ञानको छिपा रखा था। उन्होंने गुरुकुल-वास करनेकी इच्छा की। अतः वे काशी देशमें उत्पन्न काश्यगोत्री अवन्तीपुरवासी सान्दीपनि नामक गुरुके समीप पहुँचे ॥ ३०-३१ ॥

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम्।

ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों ही जितेन्द्रिय एवं आत्मसंयत थे। दोनों भाइयोंने अपने गुरुभक्ति इत्यादि विधिपूर्वक आचरणसे और दूसरोंको भी वैसे ही आचरणकी शिक्षा देनेके उद्देश्यसे बड़े यत्न एवं भक्तिके साथ इष्टदेवताके समान (आचार्य देवो भव) अपने गुरुकी सेवा करना आरम्भ कर दिया ॥ ३२ ॥

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।

प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥

गुरुवर सान्दीपनि मुनि भी उनके शुद्ध भावोंसे युक्त सेवासे (शिष्यत्वसे) परम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने छहों अङ्ग एवं समस्त उपनिषदोंके साथ सम्पूर्ण वेदोंकी शिक्षा प्रदान की ॥ ३३ ॥

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथांस्तथा ।

तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिञ्च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥

इसके साथ ही मन्त्र-देवताओंका ज्ञान, धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि ग्रन्थ, तर्क विद्या (न्यायशास्त्र) और षड्विध राजनीति (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध एवं द्विविध आश्रय) की शिक्षा दी ॥ ३४ ॥

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ।

सकृन्निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ।

गुरुदक्षिणयाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥

हे राजन्! नरवरोंमें श्रेष्ठ, संयमी-शिरोमणि बलराम एवं श्रीकृष्ण समस्त विद्याओंके आदि-प्रवर्तक हैं। मात्र एक बार ही सिखा देनेसे वे समस्त विद्याओंको सीख लेते थे। उन्होंने चौंसठ दिनोंमें ही चौंसठ कला-विद्याओंका अभ्यास प्राप्त कर लिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने गुरु-दक्षिणाके लिए आचार्यसे आग्रह किया ॥ ३५-३६ ॥

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं
 संलक्ष्य राजत्रतिमानुर्षीं मतिम्।
 सम्मन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं
 बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ह ॥ ३७ ॥

हे महाराज! सान्दीपनि मुनिने उनकी अद्भुत महिमा और अलौकिकी बुद्धिको परख लिया था। उन्होंने अपनी पत्नीके साथ परामर्श किया। तब प्रभास क्षेत्रमें बालस्वभाववश जलक्रीड़ा करते हुए महासमुद्रमें डूबे अपने मृतक पुत्रको दक्षिणाके रूपमें लानेके लिए कहा ॥ ३७ ॥

तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं
 प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ।
 वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं
 सिन्धुर्विदित्वार्हणमाहरत् तयोः ॥ ३८ ॥

परीक्षित! बलराम और श्रीकृष्ण महारथी हैं। उन दोनोंका पराक्रम असीमित है। गुरुकी आज्ञा सुनकर उन्होंने 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रथपर सवार होकर प्रभासक्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ महासमुद्रके किनारेपर वे क्षणकाल तक रुके रहे। समुद्र उनके आगमन-वृत्तान्तसे जैसे ही अवगत हुआ, वैसे ही पूजाकी सामग्री लेकर वहाँ उपस्थित हो गया ॥ ३८ ॥

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम्।
 योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥ ३९ ॥

तब भगवान्ने समुद्रसे कहा—समुद्र! तुमने इस प्रभास क्षेत्रमें अपनी बड़ी-बड़ी तरङ्गों द्वारा हमारे गुरुके पुत्रको लील लिया है, अब शीघ्र ही उसे हमें लौटा दो ॥ ३९ ॥

श्रीसमुद्र उवाच—

नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान्।
 अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्करूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥

श्रीसमुद्रदेवने कहा—हे देवाधिदेव ! हे श्रीकृष्ण ! मैंने आपके गुरुपुत्रका हरण नहीं किया। मेरे जलकी गहराईमें आसुरीभावमय पञ्चजन नामक एक महादैत्य शङ्खका रूप धारण करके विचरण किया करता है, उसे पकड़ना असाध्य है ॥ ४० ॥

आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः।

जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥

हे प्रभो ! आपके गुरुपुत्रका निश्चितरूपसे उसीने अपहरण किया होगा। श्रीकृष्ण समुद्रके इन वचनोंको सुनते ही शीघ्र ही जलमें घुस गये और उस असुरका संहार कर दिया, परन्तु उसके उदरमें वह बालक (गुरुपुत्र) नहीं मिला ॥ ४१ ॥

तदङ्गप्रभवं शङ्खमादाय रथमागमत्।

ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥ ४२ ॥

गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः।

शङ्खनिर्हादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम्।

उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम्।

लीलामनुष्योर्विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥

श्रीकृष्णने उस असुरके शरीरसे उत्पन्न शङ्खको ले लिया और रथपर लौट आये। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बलदेवके साथ यमराजकी प्रिय राजधानी संयमनी पुरीमें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने तुमुल स्वरसे (बड़े जोरसे) शङ्खध्वनि की। प्रजाके शासक यमराजने जब शङ्खकी गूँजती ध्वनिको सुना, तब श्रीकृष्ण और बलरामका विविध उपहारोंसे युक्त, समृद्धिशालिनी एवं भक्तिभावमयी महापूजासे सत्कार किया। इसके बाद विनीत भावसे सर्वभूतहृदयगत भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—हे विष्णो ! आप दोनोंने लीलासे ही मनुष्य विग्रह धारण किया है। मैं आपकी क्या सेवा करूँ, मुझे आदेश दीजिये। (गुरुपुत्रको लानेका श्रीकृष्णका एक उद्देश्य

पाञ्चजन्य शङ्खकी प्राप्ति भी था। चक्र, गदा, पद्म उपाङ्गोंके समान इसका उद्भव भी श्रीकृष्णके तेजसे हुआ है। इसकी कान्ति राजहंसके समान अति सुन्दर है। भगवान्के करकमलोंमें विराजमान होकर यह उनके अधरामृतका पान करता है, इसलिए उसे श्रेष्ठ उपाङ्गकी पदवी प्राप्त है। इसके मनमें गर्व था कि मेरे बजनेपर श्रीहरि युद्धमें विजय प्राप्त करते हैं। एक दिन यह श्रीलक्ष्मीजीके समक्ष अपनी श्रेष्ठताका बखान करने लगा। तब उन्होंने इसे दैत्य बननेका शाप दे दिया—तभीसे यह समुद्रमें रहता था। वस्तुतः पाञ्चजन्य शङ्ख चिन्मय है, भगवान्का नित्य उपाङ्ग है। इसका शापित दैत्य शरीर दूसरा है, जिसे भगवान्ने मार दिया और उसके उदरमें अवस्थित शङ्खको निकालकर अपने नित्य शङ्खमें लीन कर दिया। जय-विजयकी भाँति शापवश इसकी पृथक् देहमें असुरत्व था। संयमनी पुरीमें कृपासिन्धु श्रीकृष्णके द्वारा शङ्ख बजाये जानेपर सभी नरक प्राणियोंसे शून्य हो गये, क्योंकि श्रीकृष्णके दर्शनमात्रसे ही सब अक्षयधाम—वैकुण्ठ चले गये) ॥ ४२-४४ ॥

श्रीभगवानुवाच—

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम्।

आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—यमराज ! मेरे गुरुका पुत्र अपने कर्मोंके बन्धनके कारण आपके पास यमपुरी लाया गया है। मेरी आज्ञाका पालन करो और गुरुपुत्रको अविलम्ब मेरे पास ले आओ ॥ ४५ ॥

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ।

दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥

यमराजने 'जो आज्ञा' कहकर गुरुपुत्रको उसी शरीरसे उनके समीप ला दिया। इसके बाद यदुप्रवर बलराम और श्रीकृष्णने उस

बालकको लाकर अपने गुरुको सौंपते हुए कहा—“हे गुरुदेव ! आप पुनः और जो कुछ चाहें, माँग लें ॥” ४६ ॥

श्रीगुरुवाच—

सम्यक् सम्पादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ।

को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥ ४७ ॥

श्रीगुरुने कहा—वत्स ! तुम दोनोंने भलीभाँति गुरुदक्षिणा दे दी है। जो तुम्हारे जैसे शिष्योंका गुरु हो, उसका कौन-सा मनोरथ अपूर्ण रह सकता है ? ॥ ४७ ॥

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्त्तिर्वामस्तु पावनी ।

छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्वह परत्र च ॥ ४८ ॥

हे वीरो ! अब तुम दोनों अपने घर जाओ। तुम्हें लोकपावनी कीर्त्ति प्राप्त हो। इस लोक एवं परलोकमें भी सारे वेदशास्त्र तुम्हारे हृदयमें प्रकाशित रहें, उनकी कभी भी विस्मृति न हो ॥ ४८ ॥

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ।

आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥

हे तात परीक्षित ! भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलराम अपने गुरुसे इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त और वायुके समान वेगवाले रथपर सवार होकर मथुरा-पुरी लौट आये ॥ ४९ ॥

समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा राम-जनार्दनौ ।

अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे गुरुपुत्रानयनं नाम

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

राजन् ! मथुराकी प्रजा बहुत समय तक श्रीकृष्ण और बलरामको न देखनेके कारण विरह-सन्तप्त हो रही थी, अब उन्हें

आया देख इस प्रकार परमानन्दित हो गयी, जिस प्रकार लोग नष्ट धनको पुनः प्राप्त करके आनन्दित हो जाते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पैतालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

उद्धवकी व्रजयात्रा एवं नन्दबाबा तथा
यशोदा मैयाको सान्त्वना देना

श्रीशुक उवाच—

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।

शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! वृष्णिवंशियोंमें उद्धव (साक्षात् मूर्तिमान् आनन्द-उत्सव) प्रमुख बुद्धिमान् व्यक्ति थे। उन्हें साक्षात् बृहस्पतिके शिष्यके रूपमें जाना जाता था। वे कृष्णके प्रिय सखा एवं मन्त्री भी थे। अपनी वाणी एवं आचरणके द्वारा वे सभी यदुवंशियोंके माननीय थे। श्रीकृष्ण इनके द्वारा व्रजवासियोंके सर्वोत्कृष्ट प्रेमका जगत्में प्रचार करवाना चाहते थे। (उद्धव श्रीकृष्णके दयित अर्थात् वल्लभ हैं, अतः व्रजप्रेम-सुधाका पान कर सकते हैं। श्रीकृष्णके सखा सुबलके समान मधुररसमें संलाप भी कर सकते हैं। बुद्धिमें कृष्ण-तुल्य होनेसे कृष्णका दौत्य-कार्य उत्तम रूपसे सम्पन्न कर सकेंगे। इनकी बुद्धिकी अतिशय तीक्ष्णता देखकर देवगुरु बृहस्पतिने इन्हें समस्त शास्त्रोंका अध्ययन कराया था। एक ही शास्त्र—जिसका बृहस्पतिको भी ज्ञान न था, सर्वमुकुटोत्तम कृष्णवशीकारक प्रेमशास्त्र—उसका वे उद्धवको अध्ययन न करा पाये। कृष्णने इसी पाठके लिए उन्हें गोपियोंके पास भेजा) ॥ १ ॥

तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित्।

गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्त्तिहरो हरिः ॥ २ ॥

भगवान् श्रीहरि शरणागतोंके सन्तापको हरनेवाले हैं। एक बार वे एकान्तमें अनन्यचित्त प्रियभक्त उद्धवका हाथ अपने हाथोंमें पकड़कर कहने लगे (पितरों एवं देवताओंका परित्याग करके

उत्तम निष्ठाके साथ जो श्रीकृष्णसे प्रेम करता है—वही ऐकान्तिक भक्त कहलाता है) ॥ २ ॥

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोनौ प्रीतिमावह ।

गोपीनां मद्वियोगार्थि सत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥

हे सौम्य! हे उद्धव! तुम व्रजमें जाओ। वहाँ मेरे पिता नन्द बाबा और मेरी मैया यशोदाको आनन्दित करो। गोपियाँ वहाँ सदैव मेरे विरहसे व्यथित रहती हैं—उन्हें मेरे सन्देश सुनाकर उस विरह-वेदनासे मुक्त करो (एक-दो सन्देश तो व्रजगोपियोंकी प्रेम-प्रलयाग्निकी ज्वालामें भस्म हो जायेंगे—कई आश्वास-सन्देश देनेसे ही विरहका निवारण होगा) ॥ ३ ॥

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।

मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः ।

ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥

हे प्यारे उद्धव! गोपियोंने अपना चित्त मुझमें समर्पण कर रखा है। मैं उनका जीवन-स्वरूप हूँ। मैं ही उनका सर्वस्व हूँ। उन्होंने मेरे लिए पति-पुत्रादि सभी सगे-सम्बन्धियोंका त्याग कर दिया है और अपने हृदयोंमें मुझे ही अपना प्रेष्ठ, अपना प्रियतम और क्या कहूँ—अपनी आत्मा भी मान रखा है। उद्धव! जो मेरे लिए समस्त लौकिक एवं पारलौकिक धर्मोंका परित्याग कर देते हैं, सभी स्थितियोंमें उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ (गोपियाँ मेरी नित्यसिद्धा स्वरूपशक्ति हैं, उनका पोषण, संवर्द्धन एवं सुखदान मैं ही करता हूँ) ॥ ४ ॥

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।

स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौतकण्ठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥

हे प्यारे उद्धव! उन गोपियोंको जितनी भी वस्तुएँ प्रिय हैं, उन सबमें मैं उनका सर्वाधिक प्रियतम हूँ। अब मैं उनसे दूर रह रहा हूँ, इस कारण वे गोपरमणियाँ मेरा स्मरण करती हुई

विरह-जनित उत्कण्ठासे अत्यन्त विह्वल रहती हैं और मूर्च्छित हो जाती हैं ॥ ५ ॥

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन।

प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥

गोपियाँ मेरी स्वरूपशक्तिभूता एवं मदात्मिका हैं (अर्थात् मैं ही उनकी आत्मा हूँ)। गोकुलसे आते समय मैंने उनसे कहा था कि 'मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा।' वे इस समय इसी आश्वासनसे किसी-न-किसी प्रकारसे अत्यधिक कष्टके साथ जीवन धारण कर रही हैं ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्त उद्धवो राजन् सन्देशं भर्तुरादृतः।

आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर उद्धवने बड़े आदरके साथ अपने प्रभुका आदेश स्वीकार किया और रथपर सवार होकर नन्दगाँवके लिए चल पड़े ॥ ७ ॥

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ।

छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥

उस समय सूर्यदेव अस्ताचलकी ओर जा रहे थे कि श्रीमान् उद्धव नन्दगाँवमें पहुँचे। उस समय गायें जङ्गलसे गोष्ठकी ओर लौट रही थीं, उनके खुरोंसे धूल उड़ रही थी, जिससे उनका रथ पूरी तरहसे ढक गया था। इसलिए गोपियोंको इस बातका पता ही नहीं चला कि उद्धव नन्द महाराजके पास पहुँच गये हैं ॥ ८ ॥

वासिताथेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिवृषैः।

धावन्तीभिश्च वास्राभिरुधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥

इतस्ततो विलङ्घ्यद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः।

गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥ १० ॥

गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ।
 स्वलङ्कृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥
 अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ।
 धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥
 सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ।
 हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्च मण्डितम् ॥ १३ ॥

ब्रजमें उस समय ऋतुमती गायोंके लिए उन्मत्त वृषभ परस्पर लड़ रहे थे। उनकी गर्जना एवं अपने-अपने बछड़ोंकी ओर दौड़ती थनोंके भारसे दबी गायोंके उच्च स्वरसे रम्भानेकी ध्वनिसे नन्द-ब्रज गूँज रहा था। इधर-उधर कूद-फाँद करते हुए शुभ्रवर्णके बछड़ोंकी अम्ब-अम्ब ध्वनि एवं वंशीकी सुमधुर टेरसे ब्रजमण्डल कूजित हो रहा था। विभिन्न स्थानोंसे गोदोहनकी 'घर्घर' ध्वनिके साथ 'इसे छोड़ दो', 'उसे ले आओ', 'जल्दी करो', 'जल्दी मत करो', 'दोहन पात्र दो', 'दोहन पात्र लो' आदि विविध शब्द गुंजायमान हो रहे थे। गोप-गोपियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और अलङ्कारोंसे सज-धजकर ललित-स्वरसे श्रीकृष्ण और बलरामके पावन चरित्रोंका कीर्तन कर रहे थे, इस प्रकार ब्रजकी अनुपम शोभा हो रही थी। गोपोंके गृहोंमें यज्ञ-अग्नि, सूर्य, अतिथि, गाय, ब्राह्मण, पितर एवं देवताओंका अर्चन हो रहा था। सर्वत्र धूपकी सुगन्ध व्याप्त हो रही थी, दीपककी ज्योति जगमगा रही थी और उन्हें पुष्पमालाओंके द्वारा सुसज्जित किया गया था। इन रमणीय घरोंसे गोकुल अतीव मनोरम लग रहा था। चारों दिशाएँ पुष्पित वनोंसे महक रही थीं तथा भ्रमरोंके गुञ्जार और पक्षियोंके कलरवसे निनादित हो रही थीं। हंस और कारण्डव (जलकाक) से परिपूर्ण कमल-कुञ्जोंसे स्थल और जल दोनों ही प्रकारके सरोवरोंकी अत्यधिक शोभा हो रही थी (भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे योगमायाने गोकुलके कृष्ण-विरह-व्यथित प्रकाशको आच्छादित कर दिया) ॥ ९-१३ ॥

तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम्।

नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत् ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णके प्रिय अनुचर उद्धवके नन्दालयमें आगमनके विषयमें जानकर नन्दबाबा शीघ्र ही उनके रथके पास पहुँचे और बड़े प्रेमके साथ उनका आलिङ्गन किया। परीक्षित्! नन्दबाबाने उद्धवका इस प्रकार सम्मान किया, मानो उनके प्राणप्रिय श्रीकृष्ण ही आ गये हों (उद्धवने नन्दभवनमें श्रीकृष्ण विच्छेद-प्रकट-प्रकाश देखा। उनकी वेषभूषाको अपने पुत्रके समान देखकर नन्दमहाराज आनन्दित हुए। उनके दर्शन करके नन्दबाबामें बोलनेकी सामर्थ्य आ गयी। उन्होंने पाद्यादिके द्वारा उद्धवकी अर्चना की) ॥ १४ ॥

भोजितं परमात्रेण संविष्टं कशिपौ सुखम्।

गतश्रमं पर्यपृच्छत् पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥

इसके बाद पड़ोसी ब्राह्मण द्वारा लाये गये उत्कृष्ट अन्नका उन्हें भोजन कराया। भोजनके बाद वे शय्यापर सुखपूर्वक विराजमान हो गये। सेवकोंने पादसंवाहन, वीजन-आन्दोलन (पङ्खा झलना) आदि क्रियाओं द्वारा उनकी थकावटको दूर किया। इसके बाद नन्दबाबा उनसे पूछने लगे (मथुरा गमनके दिनसे ही व्रजवासियोंके रन्धन-गृह अमार्जित, अलिप्त, तृण-पत्र-धूलिसे भरे हुए थे। मकड़ियोंने भी अपने जाल फैला रखे थे। पास-पड़ोसियोंके द्वारा दिये दूध-दही-छाछ आदिसे सब जीवन धारण कर रहे थे) ॥ १५ ॥

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः।

आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥

नन्दबाबाने उनसे कहा—हे परम सौभाग्यवान् उद्धव! अब तो हमारे सखा वसुदेव कंसके कारागारसे मुक्त हो गये हैं। इस समय वे अपने सुहृदों एवं पुत्रों आदिके साथ ही हैं न? आजकल वे कुशलपूर्वक तो हैं न? (कृष्णके विषयमें पूछनेमें असमर्थ रहे—कण्ठ अवरुद्ध हो गया था) ॥ १६ ॥

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना।

साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा॥१७॥

पापात्मा कंस धर्मपरायण साधुओं एवं यदुवंशियोंके प्रति सदैव द्वेष करता था, वह अब अपने पापोंके कारण अपने भाइयों और अनुचरोंके साथ मारा गया है, यह हमारे लिए बड़े सौभाग्यकी बात है॥१७॥

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन्।

गोपान् ब्रजज्वात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम्॥१८॥

उद्धव! कृष्ण क्या कभी मुझे, माता यशोदाको (तर्जनी अङ्गुली द्वारा दिखाते हुए), गोपालादि सुहृदोंको स्मरण करता है? उसे अपने श्रीदामादि सखाओंकी, अन्यान्य गोपोंकी और निज रक्षित (शोभाहीन) ब्रजमण्डलकी (जिनके वे स्वयं ही स्वामी हैं) कभी याद आती है क्या? उसे वृन्दावन, गावों और गिरि गोवर्द्धनका स्मरण तो होता होगा?॥१८॥

अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम्।

तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम्॥१९॥

उद्धव! आप यह तो बतलाइये कि हमारा कृष्ण अपने इन आत्मीय-स्वजनोंको देखनेके लिए एक बार भी यहाँ आयेगा क्या? यदि वह यहाँ आता, तो हम सब उसकी सुघड़ सुरम्य नासिका, अमृतोपम मधुर-मृद-मुसकान एवं सुदीर्घ तथा मनोरम कमलवत् नयनद्वयसे युक्त मुखमण्डलको देख लेते। (उद्धव! हमें सान्त्वना देना तो दूर रहे, ब्रजमें स्थायी वास न हो, किन्तु उसके एक बार दर्शनकी प्रार्थना करते हैं। हम विरह-महाज्वरसे पीड़ित होकर आज अथवा कल मर ही जायेंगे। परार्द्धसे भी अधिक गायें, कोटि-कोटि स्वर्णमुद्राएँ, मुक्ता, हीरे, रत्न, रौप्य, स्वर्णपात्र, विविध वस्त्र, अलङ्कार, चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम—इन सबको तो वह स्वयं आकर ले जाय, हम माता-पिताके मरनेके बाद कौन इनका सत्त्वाधिकारी होगा? एक बार यहाँ आकर ये सब वस्तुएँ ले

जाय, फिर जहाँ उसके रहनेकी इच्छा हो, वहाँ रहे। हाय! कब आयेगा? कब उसे देखूँगा?)॥ १९ ॥

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः।

दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना॥ २० ॥

भैया उद्धव! श्रीकृष्ण महात्मा एवं अत्यन्त उदार हैं। उनकी शक्ति अनन्त है। उन्होंने दावानल, इन्द्रकृत आँधी-वर्षा, वृषभासुर, अजगर और कालियनाग आदि अलंघ्य मृत्युके कारणोंसे एक बार नहीं, कई-कई बार हमारी रक्षा की है। हम अब इस महा-उग्र विरह-प्रलयाग्निसे सन्तप्त हो रहे हैं॥ २० ॥

स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम्।

हसितं भाषितञ्चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः॥ २१ ॥

उद्धव! हमलोग श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावशाली चरित्र, उनकी विलासपूर्ण तिरछी चितवन, लीलामय उन्मुक्त मुसकान, मधुर संभाषण आदिका स्मरणकर इतने तन्मय हो जाते हैं कि हमारे भोजनादि जितने भी कार्य हैं, उनमें शिथिलता आ जाती है, हम सब कुछ भूल जाते हैं। अब किसी भी काममें मन नहीं लगता॥ २१ ॥

सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपदभूषितान्।

आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम्॥ २२ ॥

हे उद्धव! जब हम श्रीकृष्णके पदचिह्नोंसे सुशोभित स्थानोंको देखते हैं कि यह वही यमुना नदी है, जहाँ वह जल-क्रीड़ा करता था, यह वही पर्वत है, जिसे उसने एक हाथपर धारण कर लिया था, ये वे ही वन हैं, जहाँ उसकी वंशीकी ध्वनि गूँजती रहती थी और ये वही स्थान हैं, जहाँ वह सखाओंके साथ गौओंको चराते हुए अनेकों प्रकारके खेल खेलता था, तब उसे देखकर हमारा चित्त उसमें पूर्णरूपसे तन्मय (कृष्णमय) हो जाता है॥ २२ ॥

मन्ये कृष्णञ्च रामञ्च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ।

सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥

महात्मा गर्गमुनिके महत्-वचनोंके अनुसार मैंने यह निश्चितरूपसे मान लिया है कि श्रीकृष्ण और बलदेव कोई श्रेष्ठ देवता हैं, जो इस भूतलपर देवताओंका बहुत बड़ा प्रयोजन (कंस-वधादि) सिद्ध करनेके लिए ही मेरे घरमें आये हुए थे ॥ २३ ॥

कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं यथा।

अवधिष्ठां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥

उद्धव! उनके प्रत्यक्ष कार्योंको देखकर भी ऐसी ही प्रतीति होती है, क्योंकि सिंह जिस प्रकार अनायास ही छोटे-छोटे प्राणियोंका संहार कर डालता है, उसी प्रकार उन दोनोंने भी दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाले राजा कंस, चाणूर, मुष्टिक नामक दोनों अजेय मल्लों एवं कुवलयापीड़ नामक उन्मत्त गजराजको अनायास ही मार डाला ॥ २४ ॥

तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट्।

वभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥

देखिये! गजराज जिस प्रकार खेल-ही-खेलमें किसी छड़ीके दो टुकड़े कर डालता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने भी लोहेके समान, अत्यन्त सुदृढ़ एवं तीन तालके समान लम्बे धनुषके दो टुकड़े कर दिये। ऐसे ही एक सप्ताह तक एक ही हाथपर गोवर्धन पर्वतको धारण किया ॥ २५ ॥

प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्त्तो बकादयः।

दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥

इसी वृन्दावनमें श्रीकृष्ण और बलरामने प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त्त, बक आदि दैत्योंको खेल-ही-खेलमें मार डाला, जब कि इन सबने देवताओं एवं अन्य असुरोंको पराजित कर दिया था ॥ २६ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः।

अत्युत्कण्ठोऽभवत् तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! नन्दबाबाका हृदय यों ही श्रीकृष्णके प्रति विशुद्ध अनुरागसे युक्त था, इन सब लीलाओंका स्मरण करके उनके हृदयमें श्रीकृष्णके एक-एक चरित्र स्फुरित होते जाते थे और वे उनका स्मरण कर-करके प्रेमसे विह्वल एवं उत्कण्ठित होते जाते थे। भाव-विभोर होनेके कारण उनका गला रूंध गया और कुछ भी न बोल सके, बस मौन हो गये (नन्द बाबाके हृदयमें वसुदेवके समान ऐश्वर्यका भाव कभी भी उदित नहीं हुआ। पारापारहीन समुद्रका ऐश्वर्य जिस प्रकार अगस्त्य मुनिके लिए कुछ भी नहीं था, उसी प्रकार कृष्णका ऐश्वर्य भी नन्दमहाराजके लिए अकिञ्चित्कर है) ॥ २७ ॥

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च।

शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥

यशोदादेवी भी वहीं बैठकर नन्दबाबाकी बातें सुन रही थीं। श्रीकृष्णकी एक-एक लीला सुनकर उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी। उस समय पुत्र स्नेह-प्लावनसे उनके स्तनोंसे दुग्ध स्वतः ही क्षरित हो रहा था (माँ यशोदा तो वात्सल्य स्नेहके आधिक्यवश कुछ भी न बोलीं, अपने वस्त्रसे आँसू पोंछती रहीं) ॥ २८ ॥

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः।

वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥

परीक्षित्! उद्धवने भगवान् श्रीकृष्णके प्रति नन्दबाबा एवं यशोदा मैयाके परम अनुरागको देखा, तो वे बड़े आनन्दित हो गये और नन्दबाबासे कहने लगे ॥ २९ ॥

श्रीउद्धव उवाच—

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद।

नारायणेऽखिलगुरौ यत् कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥

श्रीउद्धवने कहा—हे मानद! इसमें सन्देह नहीं कि आप दोनों जन इस जगत्के प्राणियोंमें महाभाग्यवान्, प्रशंसनीय एवं पूज्यतम हैं (वसुदेव-देवकी पूज्यतर हैं और भक्तगण पूज्य हैं), क्योंकि समस्त चराचरके बनानेवाले और उन्हें ज्ञान देनेवाले नारायण—श्रीकृष्णमें आपकी ऐसी अनुरागमयी वात्सल्य बुद्धि—पुत्र-बुद्धि है (नन्दबाबाको सान्त्वना देनेके लिए कृष्णके ऐश्वर्य ज्ञानका निष्फल प्रयास किया गया है) ॥ ३० ॥

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी

रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम्।

अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य

ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥

बलदेव एवं श्रीकृष्ण इस विश्वके निमित्त एवं उपादानस्वरूप हैं। वे दोनों ही पुराणपुरुष हैं और वे दोनों प्रकृति भी हैं। ये दोनों पुराण-पुरुष समस्त प्राणियोंके शरीरोंमें अणुरूपसे प्रविष्ट होकर भी जीवोंसे विलक्षण अन्तर्यामी, परमात्मा एवं चिन्मात्र ब्रह्मके रूपमें विराजित हैं। ये ही अपने स्वरूपको कभी प्रकट एवं कभी अप्रकट करते हैं ॥ ३१ ॥

यस्मिन् जनः प्राणवियोगकाले

क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम्।

निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति

परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥

तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ

नारायणे कारणमर्त्यमूर्त्तौ।

भावं विधत्तां नितरां महात्मन्

किंवावशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥

मृत्युकालमें जो जीव अपने विशुद्ध चित्तको क्षणकालके लिए भी उनमें आविष्ट कर लेता है, तब उसकी कर्मवासनाएँ दग्ध हो जाती हैं। वह स्व-पर प्रकाशक सूर्यके समान तेजस्वी एवं अपने ब्रह्ममय चिन्मय-स्वरूपको प्राप्त कर लेता है। आप दोनोंने उन विश्वात्मा, विश्वके कारण-स्वरूप एवं समस्त कारणोंके मूल कारण नराकृति परब्रह्म-स्वरूप नारायणमें निरतिशय भक्तिभावका पोषण किया है। अतः आपके लिए और कौन-सा शुभ कर्म करना शेष रह जाता है? ॥ ३२-३३ ॥

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।

प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३४ ॥

हे महाभाग! भक्तवत्सल यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही व्रजमें लौटेंगे और अपने माता-पिता दोनोंको आनन्दित करेंगे ॥ ३४ ॥

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ।

यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥

रङ्गभूमिमें समस्त यादवोंके शत्रु कंसको मारनेके पश्चात् श्रीकृष्णने आपके पास आकर जो कुछ भी कहा था, उस कथनका पालन वे अवश्य ही करेंगे। (श्लोकमें 'करोति' वर्तमानकालमें प्रयोग यह सूचित करता है कि श्रीकृष्ण नन्द-यशोदा द्वारा उस समयमें भी व्रजमें लालित हो रहे हैं, जिसे उद्धव देख नहीं पा रहे हैं। अन्य प्रकाशके द्वारा श्रीकृष्ण उस समयमें भी व्रजमें विद्यमान हैं) ॥ ३५ ॥

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ।

अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥

हे महाभाग नन्दमहाराज एवं महाभागा माता यशोदा! आप किसी भी प्रकारका खेद न करें। आप यहाँ श्रीकृष्णको अपने निकट ही देख सकेंगे। जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि सदैव

विराजमान रहती है, उसी प्रकार वे भी समस्त प्राणियोंके हृदयोंमें सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ ३६ ॥

नह्यस्यास्ति प्रियः कश्चित्राप्रियो वाऽस्त्यमानिनः।

नोत्तमो नाधमो वापि समानस्यासमोऽपि वा ॥ ३७ ॥

उनकी किसीके प्रति ममता-बुद्धि नहीं है। उनके लिए न कोई प्रिय है, न कोई अप्रिय, न कोई उत्तम है और न कोई अधम। वे सर्वत्र समदर्शी हैं, तथापि उनके लिए सब प्रकारसे समान भी कोई नहीं है। विषमताका भाव रखनेवाला भी उनके लिए विषम नहीं है ॥ ३७ ॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः।

नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥

उनकी न कोई माता है और न ही पिता। न ही कोई भार्या है और न ही कोई पुत्रादि। न ही कोई अपना है और न ही कोई पराया। उनका न तो जन्म है और न ही प्राकृत देह ॥ ३८ ॥

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु।

क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥

उनके जन्मका मूलकारण कोई कर्म नहीं है। तब भी उनका जो देव, मनुष्य, कूर्म, मत्स्य, वराह आदि रूपोंमें आविर्भाव है, वह साधुओंको अपने विरह दुःखसे परित्राण करनेके लिए और उनके साथ लीला-रसके आस्वादनके लिए है। सत् या असत् अथवा मिश्रित किसी भी योनिमें जन्म लेनेके लिए उन्हें कोई बाध्य नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान्।

क्रीडन्नतीतोऽपि गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ ४० ॥

वे अजन्मा एवं निर्गुण हैं, तो भी अपनी अचिन्त्यशक्तिसे सत्त्व, रज एवं तमोगुणको अङ्गीकार करते हैं। (सुख-दुःखादि प्रकृतिकृत है, ब्रह्मकृत नहीं) क्रीडातीत होनेपर भी साधुओंके

लिए विरह दुःखसे परित्राणरूप क्रीड़ा करते हुए वे प्राकृत गुणोंके द्वारा सृष्टि, स्थिति एवं संहार करते हैं ॥ ४० ॥

यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ।

चित्ते कर्त्तरि तत्रात्मा कर्त्तैवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥

वायु, पित्त एवं कफ—इन तीन धातुओंके वैषम्यके कारण जिनका मस्तिष्क घूमता रहता है, उसकी दृष्टिमें जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत् कुम्हारके चक्रके समान घूमता—सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार चित्तमें अहं बुद्धिके कारण ही जीव अपनेको जन्मका कर्त्ता मान लेता है ॥ ४१ ॥

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ।

सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण केवल आप दोनोंके ही पुत्र नहीं हैं, परन्तु वे समस्त जीवोंके ही पुत्र, परमात्मा, पिता, माता एवं स्वामी स्वरूप हैं। वे सभीको आत्मवत् प्रिय हैं ॥ ४२ ॥

दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्

स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकञ्च ।

विनाच्युताद्वस्तु तरां न वाच्यं

स एव सर्व परमात्मभूतः ॥ ४३ ॥

हे ब्रजराज! भूत, भविष्य, वर्तमानमें स्थितिशील, गतिशील, बृहत्, क्षुद्र, दृष्ट, श्रुत आदि जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सभी अनिर्वाच्य हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कहा जा सके। वे ही समस्त वस्तुओंके मूलस्वरूप हैं और वे ही 'सर्व' शब्द वाच्य हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं। अच्युत भगवान्से किसी भी वस्तुका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है ॥ ४३ ॥

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता

नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।

गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्

वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥ ४४ ॥

हे राजन्! नन्दबाबा एवं श्रीकृष्णके सखा उद्धवके इसी प्रकारके कथा-प्रसङ्गोंमें सारी रात बीत गयी। (उद्धवके प्रबोध-वाक्योंको नन्द महाराजने ग्रहण नहीं किया है। नन्दबाबा कृष्णकी दामोदर लीलादिका ही चिन्तन करते रहे।) इसी बीच गोपियाँ भी शय्या त्याग करके उठ बैठीं। उन्होंने दीपक प्रज्वलित किया और गन्धादिके द्वारा वास्तुभूमिका पूजन किया। इसके बाद वे दधि-मन्थन करने लग गयीं ॥ ४४ ॥

ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजु
रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ।
चलत्रितम्बस्तनहारकुण्डल-
त्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥ ४५ ॥

गोपाङ्गनाओंने हाथोंमें कङ्कन पहन रखे थे, जो बड़े सुशोभित हो रहे थे। जब वे मथानीमें लगी रस्सीको खींचती थीं, तब उनके नितम्ब, स्तन एवं हार हिलते जाते थे। हिलते कुण्डलोंकी प्रभासे उनके कपोल दीप्त हो रहे थे। उनका मुखमण्डल लाल रङ्गके कुङ्कुम रागसे रङ्गा हुआ था। आभूषणोंमें जड़ित रत्न दीपककी लौसे और भी झलमला रहे थे, जिससे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी (यह दृश्य भी कृष्णसंयुक्त व्रजका प्रकाश करता है) ॥ ४५ ॥

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं
व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो
निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥

उस समय गोपियाँ उच्च स्वरसे पद्म-पलाश-लोचन श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रोंका गुणगान कर रही थीं। उनकी वह कीर्तन-ध्वनि दधि-मन्थनके शब्दके साथ मिलकर गगनको स्पर्श कर रही थी। इससे दिशाओंके जितने भी अमङ्गल थे, सभी दूर हो गये ॥ ४६ ॥

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि ब्रजौकसः ।

दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥

इतनेमें ही परम पूज्य सूर्यदेव उदित हो गये, तभी गोपाङ्गनाओंने (ब्रजवासियोंने) देखा कि नन्दबाबाके द्वारपर एक सोनेका रथ खड़ा है। रथको देखकर वे आपसमें पूछने लगीं—“यह रथ किसका है?” ॥ ४७ ॥

अक्रूर आगतः किंवा यः कंसस्यार्थसाधकः ।

येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥

रथको देखकर विरहिणी गोपियाँ क्रोधाविष्ट हो गयीं। किसीने कहा—“जो कमललोचन श्रीकृष्णको यहाँसे मधुपुरी ले गया था, कंसका कार्य सिद्ध करनेवाला वही अक्रूर क्या फिरसे तो यहाँ नहीं आ गया?” ॥ ४८ ॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ।

ततः स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात् कृताह्निकः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीनन्दशोकापनयनं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

किसी दूसरी गोपीने कहा—(उस समय जब यह श्रीकृष्णको ले गया था, तब कंस इससे अति सन्तुष्ट हो गया था) “अब क्या यह हमारे हृत्पिण्डसे अपने मृत स्वामी कंसका पिण्डदान करनेके लिए पुनः यहाँ आया है?” गोपियाँ आपसमें इस प्रकारसे कह-सुन रही थीं कि तभी उद्धव स्नानादि प्रातःकालीन नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर वहाँ आ पहुँचे ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके छियालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

उद्धव एवं गोपियोंका वार्त्तालाप
तथा भ्रमरगीत

श्रीशुक उवाच—

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः
प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लस-
न्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥
शुचिस्मिताः कोऽयमपीव्यदर्शनः
कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुत्सुका-
स्तमुत्तमःश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! गोपियोंने देखा कि इस पुरुषकी आकृति और वेशभूषा हमारे श्यामसुन्दरसे मिलती-जुलती है। (वेश देखकर गोपियाँ आनन्दसे खिल उठीं) इसकी दोनों भुजाएँ घुटनों तक लम्बी हैं, नवीन प्रस्फुटित कमल-दलके समान नेत्र हैं, शरीरपर श्रीकृष्णका ही पीताम्बर एवं वक्षःस्थलपर उनकी ही कमल-पुष्पोंकी माला धारण कर रखी है, मुखकमल अतीव मनोहर है। कानोंमें झिलमलाते रत्न-जटित दोनों कुण्डल उनकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं और मुखारविन्द अत्यन्त प्रफुल्लित है। हो या न हो, यह व्यक्ति श्यामसुन्दरका अनुचर है। गोपियाँ उन्हें देखकर अत्यधिक विस्मित हो गयीं। शुचि मुसकानसे युक्त गोपियाँ आपसमें कहने लगीं—इस पुरुषकी कान्ति तो अति सुरम्य है, परन्तु यह है कौन? इसने श्रीकृष्णके समान वेशभूषा क्यों धारण कर रखी है? यह कहाँसे आया है, किसका परिजन है? किसीका दूत है क्या? गोपियाँ इस प्रकार कहती हुई बड़ी

उत्सुकताके साथ उत्तमश्लोक श्रीकृष्णके चरणकमलोंके आश्रित उद्धवको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं ॥ १-२ ॥

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं
सब्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥

गोपियोंने विनयपूर्वक अपना शीश झुकाया, (सिरपर वस्त्रको थोड़ा-सा ढक लिया) लजीली रसीली चितवन एवं मधुर वचनोंसे उद्धवका पाद्यादिके द्वारा सत्कार किया। इसी बीच उन्हें पता चला कि वे रमापति श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, तब वे उन्हें एकान्तमें (विजातीय जनोंसे अगोचर) ले गयीं। गोपियोंने उद्धवको सुखपूर्वक बिठाया और उनसे इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३ ॥

जानीमस्त्वां यदुपते पार्षदं समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥

हे महात्मन्! हम अनुमान कर रही हैं कि आप हमारे प्यारे श्यामसुन्दरके पार्षद हैं और अपने श्रेष्ठ स्वामीके आदेशसे आप ब्रजमें आये हैं। यदुनाथ श्रीकृष्णने अपने पिता नन्दबाबा एवं माता यशोदा देवीको आनन्दित करनेके लिए ही आपको यहाँ भेजा है (उन्हें लोकनिन्दाका भी डर है कि यशोदा एवं नन्दबाबा तो रो-रोकर मर रहे हैं और कृष्ण यहाँ राज कर रहा है। वे चतुर-चूड़ामणि हैं और तुम अतिशय बुद्धिमान् हो। कृष्ण सोचते हैं कि तुम्हारे यहाँ रहनेसे माता-पिता कृष्णको भूल जायेंगे) ॥ ४ ॥

अन्यथा गोब्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

यह ब्रजमण्डल तो गायोंके रहनेके स्थानोंसे ही भरा हुआ है। अतः इस ब्रजमें नन्द-यशोदाके अतिरिक्त अन्य कोई हमें दिखायी नहीं देता, जो उनके द्वारा स्मरण किये जाने योग्य हो।

माता-पिता इत्यादि स्वजनोके स्नेहानुबन्धनका त्याग करना तो मुनियोंके लिए भी बड़ा कठिन होता है। अन्य स्त्रियोंके साथ विलास करनेपर भी कृष्ण हमारे लिए दुस्त्यज्य हैं और दूसरी ओर, अहो! कृष्णके वैराग्यकी तीव्रता! ॥५॥

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम्।

पुंभिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनःस्विव षट्पदैः ॥६॥

पुरुष स्त्रियोंसे जिस प्रकार सख्यता स्थापित करते हैं, भ्रमर जिस प्रकार पुष्पोंके प्रति आसक्ति प्रदर्शित करते हैं, अपने स्वजन-सम्बन्धियोंसे अतिरिक्त अन्योके साथ जो बन्धुता स्थापित होती है, वह भी ऐसी स्वार्थमयी होती है। ऐसी मित्रताएँ स्वाभाविक नहीं होतीं, क्योंकि जिस दिन तक स्वार्थ-सिद्धि होती है, उसी दिन तक इस मित्रताका दिखावा होता है। भ्रमर सौरभ, सौकुमार्य एवं माधुर्यादि गुणोंसे युक्त पुष्पोंका एक बार मधुपान करके अपने चाञ्चल्य दोषसे जिस प्रकार उन पुष्पोंका त्याग कर देता है, उसी प्रकार पुरुष भी अपना स्वार्थ सिद्ध होनेपर एकनिष्ठ स्त्रियोंका त्याग कर देते हैं ॥६॥

निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः।

अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥७॥

वेश्याएँ निर्धन पुरुषको, प्रजाएँ असमर्थ राजाको, विद्याओंका अध्ययन कर लेनेपर शिष्य अध्यापकको एवं पुरोहित दक्षिणाके बाद यजमानको त्याग दिया करते हैं ॥७॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम्।

दग्धं मृगास्तथारण्यं जारा भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥८॥

वृक्षोंपर फल नहीं रहते, तब पक्षी उन वृक्षोंका त्याग करके कहीं और उड़ जाते हैं, अतिथि भोजन कर लेनेके बाद गृहस्थके घरकी ओर कहाँ देखते हैं? वन दावानलसे दग्ध हुआ कि पशु वहाँसे खिसक लेते हैं और स्त्रीके हृदयमें चाहे जितना भी

अनुराग क्यों न हो, जार-पुरुष उस स्त्रीका भोग करनेके बाद उसे छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ।

कृष्णदूते समायाते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतहियः ।

तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोर-बाल्ययोः ॥ १० ॥

परीक्षित्! गोपियाँ काय, मन और वचनोंसे श्रीकृष्णके प्रति पूर्णतया समर्पित थीं, उन्हींमें तन्मय थीं। श्रीकृष्णके दूत उद्धवके आगमनसे न तो उन्हें अपने नित्य कार्योंकी सुधि रही और न ही लौकिक मर्यादाकी (लज्जादि व्यवहारकी)। वे स्त्री-सुलभ लज्जा आदिको भूल बैठीं, यहाँ तक कि उन्हें अपनी भी सुधि न रही। वे श्रीकृष्णकी बचपनसे लेकर किशोरावस्थातककी समस्त हृदयाकर्षिणी लीलाओंका स्मरण करते हुए गान करने लगीं और निरुपाधिक प्रीतिवश फूट-फूट कर रो पड़ीं ॥ ९-१० ॥

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् ।

प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

कोई एक गोपाङ्गना (दिव्योन्मादवती, महाभाववती, ह्लादिनी-शक्तिकी सारवृत्तिरूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी) मथुराकी परमसुन्दरी एक रमणीके साथ श्रीकृष्णके संगम-विहारका ध्यान कर रही थी, तभी पास ही उसे एक गुनगुनाता हुआ भौंरा दिखायी पड़ा। उसे काला देखकर कल्पना करने लगी कि हो-न-हो यह हमारे काले (साँवले) प्रियतमका ही भेजा गया दूत है। उन्होंने ही मुझे प्रसन्न करनेके लिए इसे यहाँ भेजा है। वह गोपी उस भ्रमरको (उद्धवको ही भ्रमर मानकर) सम्बोधन करते हुए इस प्रकार कहने लगी ॥ ११ ॥

श्रीगोप्युवाच—

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

(वह भौरा वृषभानुनन्दिनीके श्रीचरणोंको कमल समझकर उनका मकरन्द पान करनेके लिए उनके चारों ओर गुनगुनाता हुआ मँडरा रहा था, मानो वह उनके चरणोंमें सिर रखकर उन्हें मनाना चाहता हो। उसे देखकर उनका मान और भी अधिक बढ़ गया, वे प्रजल्प करने लगीं—) हे मधुकर! हे धूर्तबन्धो! मुझे प्रसन्न करनेके लिए तू मेरे पैरोंका स्पर्श मत कर! मेरी सपत्नियोंके कुचोंसे श्रीकृष्णकी जो वनमाला विमर्दित हुई है, तेरी मूँछोंपर उसीके चिह्न दिखायी दे रहे हैं। जैसे तेरे स्वामी मधुपति, वैसा ही तू उनका दूत मधुप। अतः हे मद्यप! सुन! मधुपति मथुराकी उन मानिनियोंको सन्तुष्ट किया करें, परन्तु तुमने जिनका दूत बनकर ये जो रति-चिह्न धारण किये हैं—उन कृष्णका यह आचरण यदुसभामें निश्चय ही उपहासास्पद होगा ॥ १२ ॥

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक्।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं नु पद्मा
ह्यपि बत हतचेता ह्युत्तमःश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥

(यह सुनकर मानो भौरा कहता है—स्वामिनी! हम भौरें हैं। स्वाभाविकरूपसे हमारी मूँछें पीली होती हैं। यह सुरत-कुङ्कुम नहीं है। श्रीकृष्ण ऐकान्तिकरूपमें आपमें ही अनुरक्त हैं। वे मथुरापुरीकी किसी भी रमणीको स्वप्नमें भी नहीं देखते। अतः आप वृथा ही मान क्यों कर रही हैं? भौरैकी मानो बात सुनकर वे पुनः परिजल्प करने लगीं—) हे भ्रमर! जिस प्रकार पुष्पोंका परित्याग करके तू अन्यत्र (कहीं और) चला जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने भी लालसा बढ़ानेवाले अपने मोहक एवं मादक अधरामृतका मात्र एक ही बार पान कराया था और पुष्प-तुल्य कोमल हृदयवाली हम कामिनियोंका सदाके लिए परित्याग कर

दिया। हम नहीं जानतीं, सुकुमारी लक्ष्मीदेवी किस कारणसे ऐसे पुरुषके चरणकमलोंकी सेवा करती हैं? हम तो मानती हैं कि उनका चित्त निश्चय ही श्रीकृष्णके मिथ्या एवं कपटपूर्ण वचनोंसे आकृष्ट हो गया है, परन्तु हम लक्ष्मीजीके समान विदग्ध (भोली-भाली) नहीं हैं, हम उस चित्तचोरकी रस-सिक्त वाणीसे मुग्ध होनेवाली नहीं हैं॥ १३॥

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-
मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम्।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥

(भौरैको वहीं गुणगुनाते देखकर राधाजीने समझा कि मैंने इस दूतका इतना तिरस्कार किया, फिर भी यह अपने प्रभुका ही गुणगान कर रहा है। यह देखकर वे और भी क्रोधित होकर विजल्प करने लगीं—) अरे भ्रमर! दो पैरवाले मनुष्य चतुर होते हैं, पशुके चार पैर होते हैं और तू छह पैरोंवाला अर्द्ध पशु नितान्त (पशुसे भी डेढ़ गुना अधिक) मूर्ख है। हमारा तो कोई घर-द्वार नहीं है, उन्हींके कारण हम घर-बार छोड़कर वनवासिनियाँ बनी हैं—हमारे सामने उस यदुवंशशिरोमणि धूर्तकी वही जानी-पहचानी पुरानी बातोंको किसलिए कह रहा है? श्रीकृष्णकी जो नयी सखियाँ हैं, उनके पास जाकर ही काम-युद्धमें सदा विजयी रहनेवाले कृष्णका गुणगान कर, वे उनके व्यवहारसे चिर-परिचित नहीं हैं। श्रीकृष्णके आलिङ्गनसे ही उन मधुपुरवासिनियोंके हृदयकी पीड़ा शान्त होती है। जा, वे ही कृष्ण-कामिनियाँ तेरी चाटुकारितासे प्रसन्न होकर तुझे मन-वाञ्छित प्रदान करेंगी॥ १४॥

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः
कपटरुचिरहास-भ्रूविजृम्भस्य याः स्युः।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमःश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥

(अपने समीप भौंरेको गुनगुनाते हुए देखकर उन्होंने समझा कि मानो वह कह रहा है कि हे कृष्ण-प्रेयसी-शिरोमणे! हे स्वामिनी! इस प्रकारसे मत कहो! वे मथुरामें आपका ही स्मरण करते रहते हैं। आपके वियोगमें वे बड़े कातर हो रहे हैं। आपको ही प्रसन्न करनेके लिए उन्होंने मुझे आदेश दिया है—इन वचनोंकी कल्पना करके उस गोपाङ्गनाने पुनः उज्जल्प करते हुए कहा—) स्वर्गलोक, मर्त्यलोक अथवा रसातलमें कोई भी स्त्री उनके लिए दुर्लभ है क्या? स्वयं लक्ष्मीदेवी भी उन कपटपूर्ण मुसकानवाले तथा भौंहोंसे सङ्केत करनेवाले श्रीकृष्णकी चरण-धूलिकी सेवा करती हैं, फिर हम गँवार ग्वालिनियोंकी तो बिसात ही क्या है—हम उनके योग्य नहीं हो सकतीं। जो सन्तप्त, दीन-हीन जनोपर दया करता है, उसे उत्तमश्लोक कहा जाता है। अतः दीन-हीन-सन्तप्त यदि उनकी अनुकम्पा (दया) प्राप्त कर लें, तो वे 'उत्तमश्लोक' विशेषण-पदके द्वारा उनकी कीर्तिका गान कर सकते हैं, परन्तु हमें तो उनकी दया प्राप्त नहीं है, अतः हम उन्हें उत्तमश्लोक नहीं कह सकतीं। हम पर दया न होनेके कारण हमारे लिए उनका यह नाम निरर्थक एवं मिथ्या है॥ १५॥

विसृज शिरसि पादं वेद्यहं चाटुकारै-
 रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
 स्वकृत इह विसृष्टापत्यन्यलोका
 व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन्॥ १६॥

तदनन्तर उस गोपाङ्गनाको प्रतीत हुआ कि भ्रमर उनका पदस्पर्श करके अनुनय-विनय एवं क्षमा-प्रार्थना कर रहा है—तो वह कहने लगी—हे भ्रमर! तु मेरे पैरोंपर अपना सिर मत टेक, मेरे पैरोंको छोड़। (फिर भी, वह उनके पैरोंको छोड़ नहीं रहा है—ऐसा मानकर संजल्प करती हैं) रे मधुकर! मानिनियोंको मनानेके लिए मुकुन्द श्रीकृष्णसे तू दक्षताके साथ सारी सीख लेकर आया है। दूतोचित चाटुकारितासे परिपूर्ण प्रिय वचनोंकी

रचना करना तुझे खूब आता है, अनुनय-विनय करनेमें भी तू पण्डित होकर आया है। तेरी सारी बातोंको मैं अच्छी तरहसे जानती हूँ। अरे! हमने उनके लिए पति, पुत्र, परलोक, लोक-लाज सभीका त्याग कर दिया, परन्तु वे इतने बड़े निष्ठुर, निर्मोही तथा असंयमी निकले कि हमें इस दशामें छोड़कर चले गये। तू ही बता, ऐसे अकृतज्ञ-चूड़ामणिके साथ कोई किस प्रकार सन्धि कर सकता है? ॥ १६ ॥

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥

भ्रमर मानो कह रहा है—हे स्वामिनी! श्रीकृष्णका हृदय नवनीतसे भी अधिक कोमल है, वे सर्वदा आपको ही स्मरण करते हैं—अपने भाव-कर्णोंसे यह सुनकर श्रीवृषभानुनन्दिनी अवजल्प करने लगीं—हे रे मधुप! नृशंस स्वभाव श्रीकृष्णने रामावतारमें वानरराज बालिका वृक्षकी ओटमें छिपकर व्याधके समान वध कर दिया था तथा एक स्त्रीके वशीभूत होकर उन्होंने काम-पीड़ा-वश आयी दूसरी स्त्री शूर्पणखाके नाक-कान काटकर कुरूप कर दिया था। ऐसे ही एक और काले थे वामन देव। राजा बलिने उन्हें विविध पूजोपहार प्रदान कर उन्हें उनकी इच्छित वस्तु भी प्रदान की। उन्होंने उसे ग्रहण कर लिया और बादमें राजा बलिको वरुणपाशमें उसी प्रकार बाँधकर पातालमें डाल दिया, जिस प्रकार कौआ बलि देनेवालेको ही अपने साथियोंके साथ घेर लेता है। ऐसे धूर्त कालेके साथ सख्यतासे भला हमारा क्या प्रयोजन है? जो बाहरसे काला है, क्या वह अन्दरसे शुभ्र हो सकता है? जो त्रिभङ्ग है, क्या उसका अन्तःकरण कभी सरल हो सकता है? कृष्ण ही क्यों, किसी भी काली वस्तुसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। सभी काले ऐसे ही निष्ठुर, निर्मोही, निर्दयी, छली, कपटी, धूर्त

एवं कामुक होते हैं, परन्तु सुन! कृष्ण-चर्चाका त्याग करना हमारे लिए अति दुष्कर है॥१७॥

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्या चरन्ति॥१८॥

(वे सोचने लगीं कि हमलोग साक्षात् रूपसे उनसे प्रेमकर जो दुःख पा रही हैं, इसमें आश्चर्यकी तो बात ही क्या है? उनकी लीला-कथाओंका श्रवण करना भी कितना सन्तापदायक है। इसीको वे दूतसे अभिजल्प करते हुए कहने लगीं—) भौरे! हम चाहनेपर भी कृष्णकथाओंका त्याग नहीं कर पातीं। उनकी लीलाकथाओंका रसास्वादन जिन्हें लग जाता है, उनकी भी हमलोगोंके जैसी दशा हो जाती है। जो अपने कर्णपुटोंसे उनके लीलारूप कर्णामृतके एक कणका भी पान कर लेता है, वह राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि सारे द्वन्द्वोंसे मुक्त हो जाता है। इन कथाओंके श्रवणसे कुछ लोग तो ऐसे निष्ठुर, निर्मोही हो जाते हैं कि अपने वृद्ध माता-पिताको, अपनी प्रियतमा पत्नीको, छोटे-छोटे बालकोंको असहाय छोड़कर (भागवत-पोथी बगलमें दबाकर) यहाँ वृन्दावन चले आते हैं। हे मधुकर! वे ऐसे निःस्पृह एवं अकिञ्चन हो जाते हैं कि कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं करते और भिक्षावृत्तिका आश्रय ले लेते हैं। प्राण धारण करनेके लिए वे पक्षियोंके समान इधर-उधर विचरण करते हैं। उस धूर्तके वियोगमें वे सारग्राही परमहंस दिन-रात रोते-तड़पते हैं। आज हमारी भी यही दशा हो रही है और हम वन-वनमें भटक रही हैं॥१८॥

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्धधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः।
ददृशुरसकृदेत् तन्नखस्पर्शतीव्र-
स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्त्ता॥१९॥

(यदि भ्रमर यह कह रहा है कि हे देवियो! आप श्रीकृष्णको इतना धूर्त एवं कपटी समझती हो, तो उनसे सख्यभाव स्थापन क्यों किया? यह सुनकर वह गोपाङ्गना आजल्प करने लगी—) सुन, श्रीकृष्णके प्यारे दूत! हम ठहरी भोली-भाली गोपियाँ! उस छलिया श्रीकृष्णकी कपट भरी मीठी-मीठी बातोंमें आ गयीं और उन बातोंको सत्य मान बैठीं। उनके नख-क्षत-जनित तीव्र काम-व्याधिका उसी प्रकार बार-बार अनुभव करती रहीं, जिस प्रकार कृष्णसार मृगकी पत्नियाँ—भोली-भाली हिरनियाँ व्याधके सुमधुर गान या उनकी वंशीकी तान सुनकर उसपर आसक्त हो जाती हैं। वे उसके जालमें फँसकर अथवा उसके तीरसे घायल होकर शत-प्रहार-जनित व्यथाका अनुभव करके छटपटाती रहती हैं। अतः हे श्रीकृष्णके दूत भौरे! अब तुझे कुछ कहना है तो कुछ और प्रसङ्ग कह। कृष्णकी बात मत कर॥ १९॥

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्व
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते॥ २०॥

भ्रमर कुछ देरके लिए उड़कर कहीं चला गया और पुनः किशोरीजीके चरणोंके समीप मंडराने लगा। उसे देखकर किशोरीजी प्रतिजल्प करने लगीं—) हे प्रिय कृष्णबन्धो! जान पड़ता है कि तुम एक बार मथुरा जाकर पुनः लौट आये हो। अवश्य ही हमारे प्रियतमने हमें मनानेके लिए तुम्हें फिरसे भेजा होगा। प्रिय भ्रमर! तुम सब प्रकारसे हमारे लिए माननीय हो। तुम अपनी प्रार्थनीय वस्तुको हमसे पुनः माँग सकते हो। बतलाओ! तुम्हारा क्या अभीष्ट है? हमें मधुपुरी ले जाना चाहते हो? तो हे भद्र भ्रमर! देखो! हम वहाँ जाकर करेंगी क्या? लक्ष्मीदेवी जिनकी सहचरी होकर सर्वदा जिनके वक्षःस्थलपर विराजमान रहती हैं, ऐसे दुष्परिहार्य युग्म-भावको प्राप्त पुरुषके समीप हमें किसलिए ले

जाना चाहते हो? वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा? मत कहो कि वे वहाँ अकेले अवस्थान कर रहे हैं ॥ २० ॥

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥ २१ ॥

(श्रीवृषभानुनन्दिनी मन-ही-मन कहने लगीं—हाय! हाय! मैंने उन्मत्त होकर न जाने क्या-क्या प्रलाप किया, किन्तु मुझे इस दूतसे जो पूछना था, वह तो पूछा ही नहीं। इस प्रकार खेद करती हुई आदरके साथ सुजल्प करने लगीं—) हे सौम्य! हे प्रियतमके प्यारे दूत मधुकर! यह तो बतलाओ, प्रेमसागर-सर्वगुण-मुकुटमणि आर्यपुत्र श्रीकृष्ण गुरुकुलसे लौटकर आजकल क्या मधुपुरीमें ही रह रहे हैं (कहीं और जानेकी इच्छा तो नहीं कर रहे हैं)? (यदुवंशियोंने छलपूर्वक उन्हें बुला लिया और अब यहाँ उन्हें ब्रजमें आने नहीं दे रहे हैं—यह विचार करके कहने लगीं—) वे कभी नन्दालय अथवा गोप-सखाओंका स्मरण करते हैं क्या? प्रिय भ्रमर! कभी हम दासियोंके विषयमें भी वे बातें करते हैं क्या? प्यारे भौरे! हमें यह भी बतलाओ कि वे फिर कभी अगुरुके समान सुगन्धित अपनी भुजाओंको हमारे मस्तक पर रखेंगे क्या? (यह कहकर किशोरीजु मूर्च्छित हो गयीं) उद्धव प्रेम-ठगसे होकर ब्रजमें कई मास रह आये ॥ २१ ॥

श्रीशुक उवाच—

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः।

सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! गोपियाँ श्रीकृष्णके दर्शनके लिए बड़ी लालायित हो रही थीं। उद्धवने गोपियोंकी सारी बातोंको सुना। इसके बाद उन्हें उनके प्रियतमका सन्देश सुनाकर सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा— ॥ २२ ॥

श्रीउद्धव उवाच—

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः।

वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥

श्रीउद्धवने कहा—अहो गोपियो! तुमलोगोंने अपना हृदय, अपना सर्वस्व भगवान् श्रीकृष्णको समर्पित कर दिया है। देवियो! तुम्हारा जीवन कृतकृत्य (सार्थक) है और तुम सारे संसारके लिए पूजनीया हो (क्योंकि अन्य भक्तोंका मन इस सीमातक समर्पित नहीं होता) ॥ २३ ॥

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः

।

श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥

इस संसारमें मनुष्य विष्णु-प्राप्तिके लिए एकादशी आदि व्रत, वैष्णवोंके लिए दान, कृष्णके लिए भोग-त्यागरूप तपस्या, विष्णु-सम्बन्धी वैष्णव होम, विष्णु मन्त्रोंका जप, गोपालतापनी आदिका स्वाध्याय, संयम एवं अन्यान्य विविध मङ्गलानुष्ठानोंके द्वारा कृष्णभक्तिकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करते रहते हैं। भक्ति-अङ्गोंके अतिरिक्त मात्र दान-व्रत-तपादिसे कृष्णभक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २४ ॥

भगवत्युत्तमःश्लोके

भवतीभिरनुत्तमा।

भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥

यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमलोगोंने उत्तमश्लोक श्रीकृष्णमें ऐसी अत्युत्तम प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली है और ऐसा आदर्श स्थापित किया है, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके लिए भी परम दुर्लभ है। आपकी रागात्मिका भक्तिका अनुसरण करके ही लोग रागानुगा भक्तिका आचरण करते हुए प्रचार करेंगे ॥ २५ ॥

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च।

हित्वाऽवृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥

यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है कि तुमलोगोंने पुत्र, पति, देह, स्वजन, घर-गृहस्थी, देह, दैहिक सुविधाएँ इत्यादिका त्याग करके

उन परम पुरुषको अपने प्रियतमके रूपमें वरण किया है, जो कृष्ण-नामसे जाने जाते हैं ॥ २६ ॥

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।

विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥

हे महाभाग्यवती गोपियो! तुमने अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्णमें ऐसी ऐकान्तिकी प्रेममयी भक्तिको प्राप्त कर लिया है, जो ऋषि-मुनियोंके लिए भी अतीव दुर्लभ है। इस भक्तिसे सभी पदार्थोंमें सर्वात्मभावका दर्शन किया जा सकता है। श्रीकृष्णके विरहमें तुमलोगोंने दिव्योन्माद, चित्रजल्प आदि महाभावोंका (भगवत्-प्रेम-सुखका) दर्शन कराकर मुझपर महान् अनुग्रह किया है। (जब अनुराग स्वसंवेद्य दशाको प्राप्त होकर प्रकाशित होता है एवं स्थावर-जङ्गम सभी वस्तुओंमें व्याप्त होता है, उसीको भाव कहा जाता है। यह महाभाव प्रेमका सप्तम विलास है, जिसका उद्धवने दर्शन किया है) ॥ २७ ॥

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।

यमादायागतो भद्रा अहं भर्तूरहस्करः ॥ २८ ॥

हे कल्याणियो! मैं अपने स्वामी श्रीकृष्णके गोपनीय कार्योंका निर्वाह किया करता हूँ। तुमलोगोंको सुख देनेके लिए उन्होंने जो प्रिय सन्देश भेजा है, मैं उसे लेकर तुमलोगोंके पास उपस्थित हुआ हूँ। अब अपने प्रियतमके उस सन्देशको सुनो ॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।

यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।

तथाहञ्च मनः प्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—हे गोपियो! मैं सर्वात्मा (सभीकी आत्माओंकी भी आत्मा) हूँ। इसलिए मेरे साथ तुम्हारा कभी भी वियोग नहीं हो सकता। इस जगत्के चराचर सभी पदार्थोंमें जिस

प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी अवस्थित हैं, उसी प्रकारसे मैं ही सभीके मन, प्राण, पञ्चभूत और इन्द्रियोंमें एवं भौतिक तत्त्वोंके भीतर तथा प्रकृतिके सभी गुणोंमें आश्रयरूपमें वर्तमान हूँ। उद्धवने श्रीकृष्ण-सन्देशके रूपमें ज्ञानामृत सुनाया, जिससे गोपियोंकी प्रेमाग्नि बुझ सके। प्रेमकी प्रबलता ऐसी रही कि प्रेमाग्नि तो शान्त नहीं हुई, ज्ञानामृत उसमें दग्ध हो गया ॥ २९ ॥

आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये।

आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ ३० ॥

मैं अपनी मायाशक्तिसे अपने ही भीतर भूत, इन्द्रिय एवं गुण स्वरूप बन जाता हूँ अर्थात् इन्द्रियोंका विषय बनकर उनका आश्रय हो जाता हूँ (मेरी बहिरङ्गाशक्तिके कार्यरूपमें इस जगत्को मेरा एक रूप कहा जाता है, मेरा स्वरूप नहीं) और स्वयं निमित्त बनकर अपने आपको रचता हूँ, पालता हूँ और स्वयं ही समेट लेता हूँ अर्थात् स्वयंको अन्तर्धान कर लेता हूँ ॥ ३० ॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः।

सुषुप्ति-स्वप्न-जाग्रद्विर्मनोवृत्तिभिरीयते ॥ ३१ ॥

आत्मा (परमात्मा) ज्ञानमय (चेतनामय) एवं गुणातीत है। वह जड़-प्रकृति आदि भौतिक पदार्थोंसे पृथक् है। वस्तुतः भौतिक गुण उसका (परम चेतनामय आत्माका) स्पर्श नहीं कर सकते, इसलिए वह शुद्ध स्वरूप है। (मथुराङ्गनाओंके सङ्ग रहनेसे भी दोष-रहित हूँ—तुमलोगोंके वियोगसे कातर हूँ) जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति रूपोंमें मायिक मनोवृत्ति (भौतिक प्रकृतिके तीन कार्यों) के कारण विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ रूपोंमें प्रतीयमान होता है। स्वभावतः उसका वैसा स्वरूप नहीं है (निद्राकालमें मेरे गुणादिका अनुभव करो, स्वप्नमें मुझे विशेषरूपसे देखो एवं जागरण कालमें हास्य-नृत्यादिसे परिपूर्ण मेरे माधुर्यका अनुभव करो) ॥ ३१ ॥

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः।

तत्रिरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार तुरन्त जगा हुआ पुरुष स्वप्नमें देखे विषयोंका स्मरण करता है—यद्यपि वे मिथ्या एवं भ्रामक होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य मनके द्वारा शब्दादि विषयोंका चिन्तन करता है, जो बादमें उन्हीं इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य होने लगते हैं। (मनको एकाग्र करनेकी विधि बतलायी गयी है) अतः अनलस भावसे पूर्णतया सतर्क रहकर मनका निग्रह करना चाहिये ॥ ३२ ॥

एतदन्तः समाम्नायो योगः साङ्ख्यं मनीषिणाम्।

त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥ ३३ ॥

जिस प्रकार सभी नदियोंकी सीमा समुद्र पर्यन्त निर्दिष्ट है, उसी प्रकार विवेकी मनुष्योंका वेद आदि शास्त्राभ्यास, अष्टाङ्गयोग, संन्यास, स्वधर्म, इन्द्रिय-दमन एवं सत्यकी परमावधि मनका निरोध ही है। मनका निरोध होनेपर मेरे स्वरूपका साक्षात्कार हो सकता है अर्थात् मेरी प्राप्ति हो सकती है (श्रीकृष्णमें दृढ़तापूर्वक मनका निरोध होनेपर वियोगमें भी स्फूर्ति, अनुभूति एवं साक्षात्कार प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्ण विरहीको नानारूपोंमें संयोग कराते हैं, परन्तु उत्कण्ठावश विचारहीन होनेके कारण वह महाविरही उस संयोगको मिथ्या मान लेता है) ॥ ३३ ॥

यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्त्त प्रियो दृशाम्।

मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुद्धानकाम्यया ॥ ३४ ॥

मैं जो तुम सबकी आँखोंका अत्यन्त प्रिय होकर भी तुम्हारी दृष्टिसे अदृश्य होकर दूर रह रहा हूँ, वह इसलिए कि मेरे प्रति तुम सबका ध्यान क्षण-प्रतिक्षण प्रगाढ़ होता रहे। इस प्रकारके ध्यानसे मानसिक निकटता और भी बढ़ती है। (ब्रजदेवियाँ कह रही हैं—) अहे उद्धव! तुम्हारे इस सन्देशसे हमारा विरहताप और दुगुना बढ़ रहा है। देश-काल-पात्रसे अनभिज्ञ वह तुम्हारा सन्देश-प्रेरक (श्रीकृष्ण) और वैसे ही विचार-रहित तुम। इस

ब्रजभूमिमें तुम्हारे इस ब्रह्मज्ञानको कौन खरीदेगा, जिसका भार तुम इतनी दूरसे ढोकर लाये हो? जिन गोपियोंने जन्मसे लेकर श्रीकृष्णके सौन्दर्यरस अमृतका पान किया है, वे अब क्या नीमके रस जैसे ब्रह्मज्ञानका पान करेंगी? महादुर्भिक्ष होनेपर हम प्राणोंका त्याग कर सकती हैं, परन्तु घास नहीं खा सकतीं। अरे महामूर्ख! सुन रे सुन! यह ब्रह्मज्ञान तो संसार-रोगकी औषध हो सकता है, जो महामुनिरूपी चिकित्सकोंके हृदयरूपी पर्ण-कुटीरमें रहता है। यह कृष्णप्रेमरूप महारोगकी औषध कैसे हो सकता है? वे मुनिगणरूपी चिकित्सक क्या कभी इस रोगका निर्णय कर सकेंगे? हे उद्धव! हो सकता है, सान्दीपनि मुनिसे चिकित्सा शास्त्रका अध्ययन करके उन्होंने तुम्हें पढ़ा-सिखाकर हमारी प्रेमज्वालाको शान्त करनेके लिए यह औषध (ब्रह्मज्ञान) तुम्हारे साथ भेजी होगी। जाओ, जाओ, जो औषध हमारे लिए भेजी है, उसे वापस ले जाओ और उन्हें ही इसका पान करा दो, हमें इस औषधको स्पर्श करनेका कोई प्रयोजन नहीं है। अरे उद्धव! दावानलके निवारणके लिए जलराशिके बदलेमें वज्राग्नि प्रेमज्वालाको बुझा सकती है क्या? उद्धवने उन्हें बतलाया—कृष्णने कहा है कि दूर रहते हुए भी मनके समीप रहना मेरा वाञ्छित है, वही आपका भी मनोभीष्ट होना चाहिये ॥ ३४ ॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्त्तते।

स्त्रीणाञ्च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षिणोचरे ॥ ३५ ॥

प्रियतमके दूर रहनेपर स्त्रियोंका मन जिस प्रकारसे अपने प्रियतममें ही पूर्णरूपसे तन्मय रहता है, उस प्रकारसे अपने प्रियतमके साक्षात् निकट रहनेपर उनमें आविष्ट नहीं रहता ॥ ३५ ॥

मय्यावेश्य सनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत्।

अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥

अतः तुम्हारे मनकी जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उनका परित्याग करके तुम सब अपने मनको मेरे प्रति समर्पण करके नित्य-निरन्तर

मेरा ही स्मरण करो। इससे तुम सब अति शीघ्र ही मुझे प्राप्त कर सकोगी ॥ ३६ ॥

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः।

अलब्धरासाः कल्याण्यो मापुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥ ३७ ॥

हे कल्याणियो! जिन व्रजरमणियोंको उनके पतियोंने घरपर ही रोक लिया था, वे शारदीय रात्रिको वन-विहारमें रत मेरे साथ रासक्रीड़ाका उपभोग नहीं कर पायी थीं। उन्होंने व्रजमें रहकर ही मेरे प्रभावका चिन्तनकर मुझे प्राप्त कर लिया था। उस रात्रिके बाद अन्य रात्रियोंमें यमुना-पुलिनमें उन्होंने मेरे साथ रास किया था ॥ ३७ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः।

ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृतीः ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! उद्धव द्वारा कहे हुए प्रियतमके सन्देशको सुनकर पति द्वारा रोकी गयी व्रजनारियाँ अतीव प्रसन्न हो गयीं। इस सन्देशके पग-पगपर उन्हें भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप एवं लीलाओंकी स्फूर्ति होने लगी। वे बड़े आनन्दसे उद्धवसे कहने लगीं ॥ ३८ ॥

श्रीगोप्य ऊचुः—

दिष्ट्याहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत्।

दिष्ट्याप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥

गोपियोंने कहा—यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि यदुओंको उत्पीड़ित करनेवाला कंस अपने अनुचरोंके साथ मारा गया है। यह भी बड़े आनन्दकी बात है कि प्यारे श्यामसुन्दरके बन्धु-बान्धव और आप्त (गुरु) जनोंके भी मनोरथ पूर्ण हुए हैं तथा अब हमारे प्राण प्रियतम श्यामसुन्दर अपने सम्बन्धियोंके साथ सकुशल रह रहे हैं ॥ ३९ ॥

कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम्।

प्रीतिं नः स्निग्धसत्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥

हे सौम्य! आप एक बात हमें बतलाइये कि हम व्रजरमणियाँ जिस प्रकार अपनी स्निग्ध लजीली मुसकान और विलासमयी चितवनसे गदाग्रज श्रीकृष्णकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे वैसा ही प्यार करते थे, अब पुरनारियोंके (मथुराकी स्त्रियोंके) स्निग्ध, सलज्ज एवं उदार चितवनसे अर्चित होनेपर उनके प्रति वे वैसा ही प्रीति भाव प्रकट करते हैं क्या? (वसुदेवकी एक अन्य पत्नीका नाम 'देवरक्षिता' था। उसका प्रथम पुत्र गद स्वयंको देवकीका पुत्र ही मानता था। कृष्ण उसके अग्रज होनेके कारण 'गदाग्रज' कहे जाते हैं, गदका गोकुलसे विशेष सम्बन्ध नहीं रहा) ॥ ४० ॥

कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च पुरयोषिताम्।

नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥ ४१ ॥

तभी दूसरी गोपीने कहा—अरी सखी! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेमकी कलाके विशेषज्ञ हैं और सभी नारियाँ उनसे प्रेम करती हैं। फिर भला, उन मथुराकी स्त्रियोंकी रहस्यपूर्ण वार्त्ताओं और काम-कला-विलाससे पूजित एवं सेवित होकर वे उनपर क्यों नहीं आसक्त होंगे? ॥ ४१ ॥

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित्।

गोष्ठि-मध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥

अन्य गोपाङ्गनाने कहा—हे साधो उद्धव! हमारे प्यारे गोविन्द श्रीकृष्ण पुरनारियोंकी मण्डलीमें स्वच्छन्दरूपसे (बिना किसी संकोचके) जब प्रेमकी बातें करते हैं, तब वे किसी प्रसङ्गमें हम गँवार (ग्रामीण) ग्वालिनियोंका स्मरण करते हैं क्या? कभी हमारी बात चलाते हैं क्या? हम तो त्यागके ही योग्य थीं, तभी हम कृष्ण द्वारा त्यक्त हुई हैं ॥ ४२ ॥

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभि-
 वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्गरम्ये ।
 रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्या-
 मस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥

अन्य गोपाङ्गनाएँ कहने लगीं—हे उद्धव! क्या कभी वे उन रात्रियोंका स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी और कुन्दके पुष्प खिले हुए थे, चन्द्रमा अपनी रमणीक छटा बिखेर रहा था और सुरम्य एवं शुभ्र वृन्दावनकी अति शोभा हो रही थी। उन रात्रियोंकी रास-गोष्ठी चरणोंके नूपुरोंकी ध्वनिसे ध्वनित हो रही थीं, उनकी प्रिय गोपाङ्गनाएँ उनकी मनोज्ञ लीलाओंका गुणगान कर रही थीं, वे सारी रात हम प्रेयसियोंके साथ विहार कर रहे थे (वृन्दावनके समान यमुना-पुलिन कहीं और है भी क्या?) ॥ ४३ ॥

अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ।
 सज्जीवयन् नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ ४४ ॥

अन्य गोपीने कहा—उद्धव! इन्द्र जिस प्रकार जलसे परिपूर्ण मेघोंको बरसा करके सन्तप्त हुए वनको पुनः जीवन प्रदान कर देते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण, जिनके कारणसे हम सब विरह-शोकसे सन्तप्त हो रही हैं, अपने कर-स्पर्श द्वारा हमें सज्जीवित करनेके लिए ब्रजमें फिरसे आयेंगे क्या? ॥ ४४ ॥

कस्मात् कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ।
 नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्व्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥

इतनेमें ही अन्य गोपनारी कह उठी—अरे! अब तो उन्होंने शत्रुका विनाशकर राज्य पा लिया है। यहाँ तो गोचारणसे बड़ा कष्ट हो रहा था। अब वे राजकन्याओंसे विवाह करेंगे और सुहृदों-स्वजनोंसे घिरकर बड़े आनन्दसे वहाँ वास करेंगे। अब वे किसलिए यहाँ आयेंगे? ॥ ४५ ॥

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ।
 श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥

अन्य गोपी यथार्थ तत्त्व कहने लगी—नहीं सखी! महात्मा श्रीकृष्ण तो स्वयं समस्त सम्पदाओंकी अधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवीके अधीश्वर हैं। वे आत्माराम, आप्तकाम, धीर-स्वभाव एवं परिपूर्ण-स्वरूप हैं। उन्हें हम वनवासिनी गोपियोंकी अथवा दूसरी राजकन्याओंकी क्या आवश्यकता है? ॥ ४६ ॥

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला।

तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया ॥ ४७ ॥

समस्त आशाओंका त्याग करनेमें ही सुख है, नैराश्यका भाव ही परम सुखकारी है। वेश्या होनेपर भी पिङ्गलाने यह ठीक ही कहा है। हम इस उपदेशको जानती तो हैं, फिर भी कृष्ण-मिलनकी आशा छोड़ना हमारे लिए बड़ा दुष्कर है ॥ ४७ ॥

क उत्सहेत सन्त्यक्तुमुत्तमःश्लोकसंविदम्।

अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गात्र च्यवते क्वचित् ॥ ४८ ॥

प्यारे साधो! बड़े-बड़े महात्मा जिनकी कीर्तिका गान करते रहते हैं, वे उत्तमश्लोक श्रीकृष्ण एकान्तमें जिस प्रकार हमसे मादकता भरी मधुर-मधुर बातें किया करते थे, तीनों लोकोंमें ऐसा कौन है, जो उनकी सौन्दर्य-माधुरीकी उपलब्धिका त्याग कर सके? देखो तो, उनकी (श्रीकृष्णकी) इच्छा न रहनेपर भी लक्ष्मीदेवी उनके वक्षःस्थलसे क्षणकालके लिए भी अलग होती हैं क्या? ॥ ४८ ॥

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे।

सङ्कर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥

हे प्रभो उद्धव! यह वही नदी है, वही पर्वत है, वही वन है, जहाँ श्यामसुन्दर बलदेवजीके साथ गायोंको लेकर वंशी बजाते हुए विचरण किया करते थे। बतलाओ! इन सब उद्दीपनोंको देखकर हम उन्हें भूल सकती हैं क्या? (नदीमें हमारे साथ विहार करते थे, पर्वतके शिखरपर हमें रिझानेके लिए वंशीकी तान छोड़ते थे एवं वनमें रात्रिमें हमारे साथ रास-नृत्य करते थे) उनकी वंशीकी ध्वनि नित्य हमारे कानोंमें गूँजती रहती है ॥ ४९ ॥

पुनःपुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत।

श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥५०॥

अहो! यहाँकी भूमि, नदी आदि सभी पदार्थ उनके ध्वज, वज्र आदि चिह्नोंसे युक्त उनके सुन्दर चरणोंसे अङ्कित हैं। इन्हें देख-देखकर आज भी हमारे चित्तमें उनकी स्मृति उदित हो जाती है। उद्धव! अब तो हमारे हृदय उनकी लीला-कथाओंको विस्मृत करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥५०॥

गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः।

माध्व्या गिरा हतधियः कथं तं विस्मराम हे ॥५१॥

हे उद्धव! उनकी वह मनोज्ञ गति-भङ्गिमा, उदार हास्य, विलासपूर्ण चितवन, मधुमयी वाणी—इन सबने हमारे हृदयको चुरा लिया है। आह! हम उन्हें भूलनेका प्रयास करें भी तो किस तरह? हमारा चित्त भी तो हमारे पास नहीं है ॥५१॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।

मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ॥५२॥

गोपियाँ मथुराकी ओर मुख करके दैन्यके साथ पुकारने लगीं—हे प्यारे श्रीकृष्ण! हे हमारे प्राण-सर्वस्व! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे दुःख-विनाशन! हे गोविन्द! आपके पिता-माता, ग्वालबाल, गौएँ, हम गोपियाँ—सारा व्रजमण्डल दुःखके अपार सागरमें डूब रहा है। हे नाथ! आप आएँ, हमें बचाएँ और गोकुलका उद्धार करें (दूत भेजनेसे क्या प्रयोजन है?) ॥५२॥

श्रीशुक उवाच—

ततस्ताः कृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः।

उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥५३॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—प्रिय परीक्षित! उद्धवने जो अन्तिम कृष्ण-सन्देश गोपियोंको सुनाया था, इससे उनकी विरह-व्यथा शान्त हो गयी। वे समझ चुकी थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण

इन्द्रियातीत हैं और सबके आत्मस्वरूप हैं। अब वे बड़े प्रेम और आदरसे उद्धवको श्रीकृष्णसे अभिन्न जानकर उनका सत्कार करने लगीं। (कृष्णकथित अन्तिम सन्देश था—हे प्राण प्रेयसियो! तुम मेरे द्वारा प्रेरित उद्धवके सम्मुख अपनी आँखें मूँद लेना। जिस प्रकार मुञ्जाटवीके दावानलसे मैंने ग्वालबालोंका उद्धार किया था, वैसे ही विरहानलसे तुम्हारा उद्धार करूँगा। मेरा योगबल देखो। यह सन्देश सुनकर जैसे ही ब्रजदेवियोंने अपनी आँखें बन्द कीं, वैसे ही योगमायाने शत कोटि वर्षों तक चलनेवाली रासलीला, वृन्दावन-विहार, जलकेलि, हिण्डोलादि विलासमयी लीलाओंको प्रकट कर दिया और गोपियोंने इन सभी लीलाओंके दर्शन किये, जिससे उनकी विरह-पीड़ा सम्पूर्णरूपसे विस्मृत हो गयी। हृदयमें आनन्द समा गया। अधोक्षज श्रीकृष्णको देखनेके कारण सहस्राधिक गुना आनन्द प्राप्त करके मानो उनका पुनर्जन्म हो गया। कृष्णको भी अपने ही समान विरह-ज्वालामें जर्जरित देखकर—हमारे प्राण एवं कृष्णके प्राण एक हैं, यह जानकर उनका विरह-ज्वर दूर हो गया। वे उद्धवका सम्मान करने लगीं)॥५३॥

उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः।

कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम्॥५४॥

इस प्रकारसे उद्धव गोपियोंकी विरह-व्यथाको दूर करते हुए कुछ महीने वहीं ब्रजमें रहे। वे श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका गान करते हुए सारे ब्रजवासियोंको आनन्दित करते रहते॥५४॥

यावन्त्यहानि नन्दस्य ब्रजेऽवात्सीत् स उद्धवः।

ब्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्त्तया॥५५॥

उद्धव जब तक ब्रजमें रहे, नित्य-निरन्तर कृष्ण-कथाका ही गान करते रहे—ब्रजमें मानो आनन्दोल्लास छा गया। ब्रजवासियोंके लिए यह समय क्षणभर जैसा प्रतीत होता था॥५५॥

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान्।

कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो ब्रजौकसाम्॥५६॥

श्रीकृष्णके परम प्रेमी सेवक उद्धवका नाम ही यथार्थ आनन्द-स्वरूप है एवं भगवान् कृष्णने भी अपनी आनन्ददातृत्व-शक्ति उन्हें अर्पण की है। वे कभी यमुना-पुलिनपर गमन करते, कभी वनमें विहार करते और कभी गिरिराजकी तलहटीमें विचरण करते। कभी गह्वर वनकी शोभा देखते और कभी विचित्र एवं मनोरम पुष्पोंसे शोभित वृक्षोंके सौन्दर्यमें मुग्ध हो जाते। हर एक स्थलपर श्रीकृष्णकी लीलाओंसे सम्बन्धित प्रश्न पूछते। इन उत्कण्ठाओंसे ब्रजवासियोंके हृदयमें कृष्णकी स्मृतिका उद्बोधन होता और वे उनकी लीलाओंमें तन्मय हो जाते। उद्धव स्वयं भी अनुप्राणित होकर आनन्दित हो जाते ॥ ५६ ॥

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविकलवम्।

उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥

परीक्षित्! ब्रजमें रहकर उद्धवने गोपियोंकी कृष्णाविष्टता, प्रेम-विकलता और प्रेम-चेष्टाओंका अनुभव किया। उनकी श्रीकृष्णमें अद्भुत तन्मयताको देखकर वे परम आनन्दित होते। वे उन गोपियोंको नमस्कार करके इस प्रकार उनका गुणगान करने लगे ॥ ५७ ॥

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो

गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।

वाञ्छन्ति यद्धवभियो मुनयो वयञ्च

किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥ ५८ ॥

अहो! जो अखिल जीवोंके आत्मस्वरूप हैं, उन श्रीकृष्णमें इन गोपियोंका अनन्य प्रेममय दिव्य महाभाव समुदित हो गया है। अतएव पृथ्वीपर इन्होंने ही जन्मकी सार्थकता प्राप्त की है। संसारके भयसे भीत मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिगण, मुक्तपुरुष और हम जैसे भक्तगण सदा-सर्वदा ऐसे प्रेमकी प्रार्थना किया करते हैं, पर प्राप्त नहीं कर पाते। जो श्रीकृष्ण-कथा-रसिक हैं, उन्हें शौक्र (कुलीनता), सावित्र (द्विजाति संस्कार) और

याज्ञिक (यज्ञोंमें दीक्षित) होनेकी क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान्की कथामें रस उत्पन्न नहीं हुआ, उसमें रुचि नहीं हुई, तो चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें बार-बार महाकल्पों तक जन्म-ग्रहण करनेकी भी क्या आवश्यकता है? कृष्ण-कथा-रसिक जिस किसी भी योनिमें जन्म-ग्रहण करें, उनके लिए वही (योनि ही) सर्वोत्तम है। कृष्ण-कथामें अनुरागका अभाव समस्त गुणोंकी विफलताका प्रतिपादक है ॥ ५८ ॥

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः

कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-

च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥

कहाँ ये लोकदृष्टिसे व्यभिचार-दोषसे ग्रस्त अर्थात् आचार-विचार, ज्ञान, जातिसे हीन वनवासिनी गोपियाँ और कहाँ परमात्मस्वरूप श्रीकृष्णमें इनका यह परम-प्रेम? अहो! यदि कोई व्यक्ति अमृतके स्वरूपको न जानकर भी उसका सेवन करता है, तो अमृत अपने सेवन करनेवालेका कल्याण ही करता है, उसे अमर बना देता है। उसी प्रकार श्रीकृष्णके स्वरूपको न जानकर भी यदि कोई नित्य निरन्तर उनका भजन करता है, तो वे अपने भजनेवालेको साक्षात् रूपसे अभीष्ट प्रदान करते हैं (महाश्रेष्ठताका कारण भक्ति है, ज्ञान, जाति आदि नहीं) ॥ ५९ ॥

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः

स्वयोषितां नलिनगन्धरुचां कुन्तोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-

लब्धाशिषां य उद्गाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥

रासलीलामें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बाँह गोपियोंके कण्ठोंमें डालकर उनका आलिङ्गन करते हुए उनका मनोरथ पूर्ण करके जैसा अनुग्रह उनपर प्रकट किया था, वैसा अनुग्रह तो वक्षःस्थलपर एकान्तरूपसे विलास करनेवाली, नित्य सङ्गिनी, परम प्रेमवती

लक्ष्मीदेवीको भी प्राप्त नहीं हुआ और न ही कमलकी सुगन्धके समान अङ्ग-सौरभ एवं कान्तिसे युक्त देवाङ्गनाओंको प्राप्त हुआ, फिर अन्य स्त्रियोंकी तो बात ही क्या? ॥ ६० ॥

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथञ्च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥

जिन्होंने दुस्त्यज्य पति, पुत्रादि आत्मीय स्वजन, वैदिक मर्यादा एवं लोक-लज्जा—सबका परित्याग करके श्रुतियोंके द्वारा अन्वेषणीय मुकुन्द श्रीकृष्णकी पदवीका अनुसन्धान किया है, अहो! मैं इस वृन्दावनमें उन गोपियोंकी चरणरेणुसे सिक्त गुल्म, लता अथवा ओषधिमेंसे किसी भी एक स्वरूपमें जन्म प्राप्त करूँ, तो मेरे लिए यह बड़े सौभाग्यकी बात होगी। कोटि-कोटि बार सकातर प्रार्थना करनेपर भी व्रजदेवियोंने अपने चरणोंमें मुझे सिर रखने नहीं दिया। अतः गुल्म-लताके रूपमें ही जन्म-ग्रहण करूँ ॥ ६१ ॥

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६२ ॥

स्वयं लक्ष्मीदेवी जिन श्रीकृष्णकी पदसेवा करती हैं, पूर्णकाम और आत्माराम बड़े-बड़े योगेश्वर तथा ब्रह्मा, शङ्कर आदि परम समर्थ देवता, जिन श्रीकृष्णके पादारविन्दोंकी सेवा करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंको रासलीलाके समय साक्षात् रूपसे अपने-अपने स्तनमण्डलोंपर रखकर और उनका आलिङ्गन करते हुए इन गोपियोंने अपने हृदयकी विरह-व्यथाको शान्त किया था (चञ्चला होनेपर भी लक्ष्मीदेवी व्रजमें बहुत समयसे तपस्या कर रही हैं) ॥ ६२ ॥

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।

यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥

मैं नन्दव्रजमें स्थित उन गोपियोंकी चरणरेणुकी बार-बार वन्दना करता हूँ, विशेषरूपसे श्रीराधाकी—जिन्होंने श्रीकृष्णविषयक गान किया था। अहो! इन गोपियोंने श्रीकृष्णके लीलाचरित्रके सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, उससे तीनों लोक पवित्र हो गये हैं और भविष्यमें भी सदा-सर्वदा पवित्र होते रहेंगे ॥ ६३ ॥

श्रीशुक उवाच—

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ।

गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! इस प्रकार कई महीनों तक व्रजमें रहकर दशार्हवंशी उद्धवने गोपियोंसे, यशोदा मैयासे एवं नन्दबाबासे जानेके लिए अनुमति माँगी। सारे गोपोंसे भी विदा ली और गोपबालकोंके अङ्गोंका स्पर्श करते हुए वे प्रस्थान करनेकी अभिलाषासे रथपर सवार हो गये ॥ ६४ ॥

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ।

नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ।

वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥

उद्धव प्रस्थानके लिए जैसे ही आगे बढ़े, नन्दबाबा आदि गोप विविध उपहारोंको और श्रीकृष्ण द्वारा परिधान योग्य सज्जित द्रव्योंको हाथोंमें लेकर उनके समीप पहुँचे। प्रेमके कारण अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे वे सब कहने लगे—हे महाभाग! बस, हम यही चाहते हैं कि हमारी मनोवृत्ति श्रीकृष्णके पादपद्मोंका आश्रय किये रहे, हमारी जिह्वापर श्रीकृष्णके नामोंका ही सङ्कीर्तन होता रहे, शरीर उन्हें ही प्रणामादि करता रहे और उनकी सेवादि क्रियाओंमें नियुक्त रहे ॥ ६५-६६ ॥

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।

मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥

उद्धव! हम सच कहते हैं, हमें मोक्षकी किञ्चित् भी इच्छा नहीं है। हम भगवान्की इच्छासे अपने कर्मोंके फलस्वरूप जिस भी स्थान या योनिमें जन्म-ग्रहण करें, सर्वत्र ही मङ्गलानुष्ठान करते रहें, दान देते रहें और अपने सम्पूर्ण कर्मोंके फलस्वरूप उत्तरोत्तर बढ़नेवाली श्रीकृष्ण-विषयक आसक्तिको प्राप्त करते रहें। नन्दबाबाने उद्धवसे कहा—हमने बहुत स्नेहसे उसका लालन-पालन किया, पर वह कृत्रिम ही था, यह समझमें आ रहा है, क्योंकि उसके विरहमें हम अब भी जीवित हैं। दशरथ ही जगत्में एकमात्र पिता थे, जिन्होंने पुत्र श्रीरामचन्द्रके दूरदेश जाते ही प्राणोंका त्याग कर दिया। हम दोनोंमें तो कृष्णके लिए प्रेमकी गन्ध भी नहीं है। अतः अभिज्ञ-चूड़ामणि मेरे पुत्रने हमारे जैसे माता-पिताका त्याग करके परमेश्वरताके अनुरूप देवकी-वसुदेवको अपना माता-पिता बना लिया है। दुर्भाग्यशील नन्द-यशोदाको धिक्कार है। अतः कोई भी जन्म मिले, उसीके पादपद्म ही हमारा आश्रय रहें ॥ ६७ ॥

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप।

उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥

हे राजन्! नन्दबाबा आदि गोपोंने इस प्रकार श्रीकृष्णके प्रति भक्तिको प्रकट करते हुए उद्धवका सम्मान किया। वे पुनः श्रीकृष्ण द्वारा सुरक्षित एवं पालित मथुरापुरीकी ओर लौट गये। उद्धवको प्रतीत हुआ कि अत्यधिक अनुराग रहनेपर भी व्रजभूमि इस समय कृष्ण द्वारा पालित नहीं है ॥ ६८ ॥

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम्।

वासुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदुद्धवप्रतिपत्तये

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

प्रिय परीक्षित्! वहाँ पहुँचकर उन्होंने अन्तःपुरमें स्थित श्रीकृष्णको प्रणाम किया एवं उनके समीप व्रजवासियोंकी अतिशय प्रेममयी भक्तिको—जैसा उन्होंने देखा था, वैसा ही कह सुनाया। उसके बाद वसुदेव, बलदेव एवं महाराज उग्रसेनको भी यथायोग्य समाचार कह सुनाये। जो उपहारादि नन्दबाबा आदि गोपोंने दिये थे, उन सबको भी राजा उग्रसेनको समर्पित कर दिया।

उद्धवने श्रीकृष्णको प्रणाम करके कहा—हे प्रभु! हे कृष्ण! तुम भक्तिके वशमें हो, भक्तिके द्वारा प्राप्य हो, भक्ति द्वारा दृश्य हो—मैंने वहाँ तुम्हारे सभी भक्तोंमें भक्तिका उद्रेक देखा है। इस समय तुम्हारे विरहमें वृन्दावनके सभी लोग श्वेत वर्णके हो रहे हैं। हे कृष्ण! देवर्षि नारदने इसी कारण गोकुलमें श्वेतद्वीपका भ्रम किया था। महानुरागी तुम्हारे पिताने कहा है कि 'मेरे मनकी समस्त वृत्तियाँ कृष्णपादपद्ममें आश्रय करें', किन्तु गद्गद् स्वरसे कण्ठ अवरुद्ध होनेके कारण तुम्हारी माता कुछ बोल न सकी। यह सुनकर कृष्णका धैर्य स्थिर न रह सका, वे भरी सभामें ही उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगे। उद्धवने कृष्ण-प्रेयसियोंके प्रेम-बडवानलका रात्रिमें निर्जन स्थलपर ही उद्घाटन किया। उनकी प्रेयसी-शिरोमणि श्रीराधिकाके दिव्योन्माद चित्रजल्प आदिका तो किञ्चित्मात्र ही आविष्कार किया। उस दिन कृष्ण पूरी रात विरह-तापमें सन्तप्त रहे ॥ ६९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सैतालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका कुब्जा और अक्रूरके घर जाना

श्रीशुक उवाच—

अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः।

सैरिन्ध्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! उद्धवसे ब्रजके संवादको जानकर सर्वान्तर्यामी, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण अपनेसे मिलनकी आकाङ्क्षासे व्याकुल सैरिन्ध्री (कुब्जा) को प्रसन्न करनेके लिए उसके घर गये। श्रीकृष्ण उद्धवको निदर्शन करना चाहते थे कि ब्रजगोपियोंकी बात तो दूर रहे, वे साधारणी रति रखनेवाली कुब्जाकी भी उपेक्षा नहीं कर सकते। कुब्जा मथुरा-लीलाकी परिकर है और साक्षात् भू-शक्ति सत्यभामाकी विभूति पृथ्वीरूपा है ॥ १ ॥

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम्।

मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ।

धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रगन्धैरपि मण्डितम् ॥ २ ॥

कुब्जाका घर बहुमूल्य सामग्रियोंसे समृद्ध एवं कामोद्दीपक शृङ्गारिक वस्तुओंसे भरा हुआ था। उसमें मोतीकी लड़ियाँ और झंडियाँ लगी हुई थीं। चँदोवे तने थे, शय्या बिछायी हुई थी, बैठनेके लिए सुन्दर-सुन्दर आसन सजे थे। पूरा घर सुगन्धित धूप, दीपक एवं सुगन्धित फूलोंके हारोंसे मण्डित था ॥ २ ॥

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासनात्

सद्यः समुत्थाय हि जातसम्भ्रमा।

यथोपसङ्गम्य सखीभिरच्युतं

सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥

सैरिन्ध्रीने जैसे ही अच्युत भगवान् श्रीकृष्णको अपने घर आया देखा, तो वह हड़बड़ाते हुए तुरन्त ही आसनसे उठ बैठी। सखियोंके साथ आगे बढ़कर उसने भगवान्की अगवानी अर्थात् स्वागत-सत्कार किया, उन्हें उत्तम आसन आदि सामग्री प्रदान की और विविध उपचारोंसे उनकी यथोचित पूजा की॥ ३॥

तथोद्धवः साधुतयाभिपूजितो
न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम्।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं
विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः॥ ४॥

कुब्जाने उद्धवका भी उत्तम रीतिसे सम्मान करते हुए उन्हें आसन प्रदान किया जिसका उन्होंने भक्तिपूर्वक स्पर्श किया और भूमिपर ही बैठ गये। (अपने स्वामीके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए उद्धव आसनपर नहीं बैठे। वे सोचने लगे कि कुब्जा तो कृष्णप्रिया है, परन्तु मैं उनका दास हूँ।) भगवान् श्रीकृष्ण लोकाचारका पालन करते हुए घरके भीतरी कक्षमें स्थित बहुमूल्य शय्यापर विराजमान हो गये॥ ४॥

सा मज्जनालेपदुकूलभूषण-
स्नग्गन्ध-ताम्बूल-सुधासवादिभिः ।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं
सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५॥

इसके बाद सैरिन्ध्रीने स्नान किया, गन्धादि अनुलेपन द्रव्योंसे शरीरको सुगन्धित किया, मनोहर वस्त्र, आभूषण एवं माल्य धारण किये, इत्रादि गन्ध लगाये, ताम्बूल चबाया, सुधासव (सुगन्धित पेय) का पान किया। इस प्रकार सजधजकर लजीली-सी लीलामयी मुसकान और विभ्रमयुक्त चितवनसे श्रीकृष्णको निहारती हुई उनके पास आयी॥ ५॥

आहूय कान्तां नवसङ्गमहिया
विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे।

प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया
रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥

नव-सङ्गमके कारण होनेवाली लज्जासे कुब्जा शङ्कित-सङ्कुचित हो रही थी। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपने पास बुलाया और कङ्गनसे सुशोभित उसके हाथको पकड़कर अपने समीप शय्यापर बिठाकर उसके साथ रमण-क्रीड़ा करने लगे। परीक्षित्! उस सैरिन्ध्रीने भगवान् श्रीकृष्णको केवल अङ्गराग प्रदान किया था, उसी एक शुभकर्मके फलस्वरूप उसे ऐसा अनुपम सौभाग्य प्राप्त हुआ, इसके अतिरिक्त व्रजस्त्रियोंके समान उसकी कोई पुण्यराशि नहीं थी ॥ ६ ॥

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णो-
र्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्त-
मानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥

कुब्जाने अनन्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंको अपने कामसन्तप्त स्तन, वक्षःस्थल एवं नेत्रोंपर रखकर अपनी पीड़ाको दूर किया और उन चरणोंकी दिव्य सुगन्धको सूँघती रही। तत्पश्चात् उसने अपनी भुजाओंके द्वारा वक्षःस्थलसे सटे आनन्दस्वरूप प्रिय श्रीकृष्णका गाढ़ आलिङ्गनकर दीर्घकालसे सञ्चित हृदयकी विरह-व्यथाको दूर किया ॥ ७ ॥

सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्राप्यमीश्वरम्।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥

परीक्षित्! कुब्जाने केवल अङ्गरागका अर्पण करके तद्-जनित पुण्य-बलसे कैवल्यनाथ (मुक्तिके नियन्ता) भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त तो कर लिया, परन्तु अपने दुर्भाग्यके कारण गोपियोंके समान कृष्ण-सेवाकी इच्छा न करके उसने प्राकृत दृष्टिसे कामकी ही प्रार्थना की ॥ ८ ॥

सहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ।

रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥

कुब्जाने कहा—हे प्रियतम ! आप कुछ दिनों तक यहीं रहकर मेरे साथ विहार कीजिये। हे कमलनयन ! मैं आपका साथ छोड़नेकी इच्छा भी नहीं कर सकती ॥ ९ ॥

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः ।

सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदृद्धिमत् ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवोंके स्वामी हैं और सबका मान रखनेवाले सर्वेश्वर हैं। उन्होंने कुब्जाको उसका मनोवाञ्छित वर प्रदान किया और महासाधु-शिरोमणि उद्धवके साथ सम्भाषण करते हुए ऋद्धि-सिद्धिसे भरे हुए अपने वास-भवनमें लौट आये ॥ १० ॥

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।

यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥

परीक्षित् ! जो ब्रह्मा, शङ्कर आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं और जिन्हें प्रसन्न करना जीवोंके लिए अति कठिन है, उन सर्वेश्वर विष्णुको अपनी आराधनासे प्रसन्न करके भी यदि कोई विषय-सुखकी प्रार्थना करे, तो ऐसा व्यक्ति निश्चय ही दुर्बुद्धि है ॥ ११ ॥

अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ।

किञ्चिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥

इसके बाद सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए एवं उनके द्वारा कोई कार्य सम्पन्न करवानेकी इच्छासे बलदेव एवं उद्धवके साथ उनके घर पहुँचे ॥ १२ ॥

स तान् नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्धवान् ।

प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १३ ॥

ननाम कृष्णं रामञ्च स तैरप्यभिवादितः ।

पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥

अक्रूरने दूरसे ही पुरुष-शिरोमणि श्रीकृष्णको अपने बान्धवोंके साथ आते हुए देखा, तो हर्षके साथ शीघ्र ही खड़े हो गये और उनका आलिङ्गन एवं अभिनन्दन किया। अक्रूरने श्रीकृष्ण एवं बलदेवको प्रणाम किया तथा उन दोनोंने भी अक्रूरको नमस्कार किया। इसके बाद अक्रूरने शास्त्रीय नियमोंके अनुसार उन दोनोंको आसन प्रदान किये। जब श्रीकृष्ण और बलदेव आसनपर विराजमान हो गये, तब अक्रूरने उन दोनोंकी पूजा की ॥ १३-१४ ॥

पादावनेजनीरापो धारयन् शिरसा नृप।

अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्त्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥

अर्चित्वा शिरसानम्य पादावङ्कगतौ मृजन्।

प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥

हे राजन्! अक्रूरने भगवान् श्रीकृष्ण और बलदेवके चरण धोये और उनके पाद-प्रक्षालन-वारिको (चरणामृतको) अपने मस्तकपर धारण किया। इसके बाद दिव्य वस्त्र, गन्ध, माल्य, उत्तम अलङ्कार एवं विविध पूजोपहारोंके द्वारा उनका अर्चन किया। अक्रूरने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया एवं उनके चरणोंको गोदमें रखकर संवाहन करते हुए वे दीनतावश सिर झुकाकर बलराम एवं श्रीकृष्णसे कहने लगे ॥ १५-१६ ॥

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम्।

भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्रादुरन्ताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥

यह हमारे लिए बड़े आनन्द और सौभाग्यकी बात है कि दुराचारी कंस अपने अनुयायियों सहित मारा गया। आप दोनों भाइयोंने उसे मारकर यदुकुलको भयावह सङ्कटसे बचाया है और अब आप अपने संरक्षणमें उसे उन्नत और समृद्ध कर रहे हैं ॥ १७ ॥

युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतु जगन्मयौ।

भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥

आप दोनों पुरुषोत्तम हैं। आप ही जगत्के कारण एवं जगन्मय हैं। आप दोनोंकी सत्ताके अतिरिक्त अन्य कोई न तो कारण ही है और न कार्य। आप ही प्रधान अर्थात् प्रकृति हैं और आप ही पुरुष हैं। आप ही कारण हैं, आप ही कार्य हैं ॥ १८ ॥

आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः।

ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुत-प्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥

हे ब्रह्मन्! आप अपनी शक्तिसे इस जगत्की रचनाकर इसमें प्रविष्ट-से जान पड़ते हैं। जो कुछ भी सुनायी अथवा दिखायी पड़ रहा है, उनमें विविध रूपोंमें (देव, गन्धर्व, मनुष्य, गौ आदिमें) आप ही प्रतीत हो रहे हैं ॥ १९ ॥

यथाहि भूतेषु चराचरेषु

मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना।

एवं भवान् केवल आत्मयोनि-

ष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥

जिस प्रकार क्षिति इत्यादि महाभूतरूप कारणतत्त्व अपने रूपान्तरमें परिणत होकर कार्यरूप स्थावर-जङ्गमात्मक भौतिक पदार्थोंमें अर्थात् विविध रूपोंमें प्रकट होते हैं, उसी प्रकार एक ही आप निरवच्छिन्न, स्वतन्त्र एवं सर्वान्तर्यामी होकर लीला हेतु अपनी अभिव्यक्ति करते हैं अर्थात् निज सृष्ट मृगादि शरीरोंमें, बाल्य-यौवनादि अवस्थाओंमें, विभिन्न अवतारोंमें—विभिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं ॥ २० ॥

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं

रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः।

न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा

ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥ २१ ॥

आप अपनी शक्तिस्वरूप रज, तम एवं सत्त्वगुण द्वारा विश्वका सृजन, संहार एवं पालन करते हैं, परन्तु स्वयं इन गुणों

अथवा कर्मोंमें आबद्ध नहीं होते। आप शुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं, अतः जीवके बन्धनकी कारणभूत अविद्याका प्रवेश आपमें किस प्रकार सम्भव हो सकता है? ॥ २१ ॥

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्-

भवो न साक्षात् भिदात्मनः स्यात्।

अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः

स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥

आपकी सूक्ष्म देह, स्थूल देहादि शारीरिक उपाधियाँ अविद्याकी हेतुभूत हैं—आपका ऐसा निरूपण आज तक किसी भी शास्त्रज्ञने नहीं किया है। अतएव जीवके समान आपको संसार अथवा जन्म-प्राप्ति नहीं होते। आपमें देह-उपाधित्व भाव न होनेके कारण आपके पैतृक धातुसे जन्मादि नहीं होते, किन्तु आविर्भाव-तिरोभाव होते हैं। आपके देह-देहीमें पार्थक्य नहीं है, अतएव आपका न बन्धन है और न ही मुक्ति ॥ २२ ॥

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय

यदा यदा वेदपथः पुराणः।

बाध्येत पाषण्डपथैरसद्भि-

स्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥ २३ ॥

आपने जगत्के कल्याणके लिए वेदके मार्गको प्रकट किया है, वह मार्ग जब-जब पाषण्डमार्गके अनुयायी असद् व्यक्तियों द्वारा दूषित हो जाता है, तब-तब गुणातीत-स्वरूप लीलामय होकर भी आप शिष्ट जनोंके पालनके लिए शुद्ध सत्त्वमें आविर्भूत होते हैं ॥ २३ ॥

स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः

स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः।

अक्षौहिणी-शतवधेन सुरेतरांश-

राज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥

हे विभो! आप वसुदेवके घरमें स्वांश बलदेवके साथ अवतीर्ण हुए हैं। आप देवताओंके शत्रु असुर राजाओंके एवं उनकी शत अक्षौहिणी सेनाओंके विनाशके द्वारा पृथ्वीके भारको उतारकर यदुकुलके यशका विस्तार कर रहे हैं ॥ २४ ॥

अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा
यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ।
यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत् पुनाति
स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥

हे अधोक्षज! आप देव, ऋषि, पितर, भूत एवं मनुष्य (राजा) इस पञ्चयज्ञोंके रूपोंमें देवमूर्ति हैं। हे परमात्मन्! आपके चरणोंकी धोवन सलिल-रूपिणी गङ्गादेवी तीनों भुवनोंको पवित्र कर रही हैं। आप इस जगत्के गुरु हैं। आज आपने मेरे घरमें पदार्पण करके मेरे घरको अति पवित्र कर दिया है ॥ २५ ॥

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्-
भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा-
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥

हे देव! आप अपने प्रेमी भक्तोंके प्रिय, सत्यवक्ता, सुहृद् एवं कृतज्ञ हैं। भला कौन बुद्धिमान् व्यक्ति आपको छोड़कर अन्य देवताकी शरणमें जायेगा? किसी भी समय किसी भी भक्तने आपका थोड़ा भी भजन किया है, आप उसके बदलेमें उसे समस्त भोग प्रदान कर देते हैं। आप केवल उतना ही देकर सन्तुष्ट नहीं होते, क्षय-वृद्धि रहित एकरस अपने आपको भी दान कर देते हैं (अपने आपको दान करनेपर भी न तो आपका क्षय होता है और न ही वृद्धि) ॥ २६ ॥

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ।

छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह-

देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥

हे जनार्दन! सनकादि योगीन्द्र एवं ब्रह्मादि देवेन्द्र भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते। बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने आज मुझ जैसे अधम जनके घरमें स्वयं आकर दर्शन दिया है। हे प्रभो! आप अपनी मायासे उत्पन्न पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, गृह, देहादिके मेरे प्रगाढ़ मोह बन्धनका शीघ्र ही छेदन कर दीजिये ॥ २७ ॥

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान् हरिः।

अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः सम्मोहयन्निव ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! भक्त अक्रूरके द्वारा इस प्रकार अर्चन एवं स्तव कर लिये जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुसकराते हुए अपनी मधुर वाणीसे उन्हें मोहित करते हुए कहने लगे ॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा।

वयन्तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे अक्रूर! आप हमारे गुरु, चाचा एवं अति प्रशंसनीय मित्र हैं। हम तो सदा ही आपके बालक हैं। अतः सदा ही आपके द्वारा रक्षणीय, पोषणीय एवं अनुकम्पाके पात्र हैं ॥ २९ ॥

भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः।

श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ३० ॥

जो मनुष्य अपना परम कल्याण चाहते हैं, उन्हें आप जैसे पूजनीय एवं महाभाग्यवान् साधुओंकी सदा-सर्वदा सेवा करनी चाहिये। देवता तो अपना कार्य साधनेके लिए उद्यत रहा करते हैं, किन्तु साधु तो निरन्तर दूसरोंपर अनुग्रह करनेके लिए सदा-सर्वदा तत्पर रहते हैं ॥ ३० ॥

न ह्यम्भयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥

जलमय सारे तीर्थ, मृत्तिका और शिला-निर्मित देवता भी पूज्य हैं—ठीक है, पर वे तो दीर्घकालतक सेवा किये जानेपर ही चित्तका शोधन कर पाते हैं, किन्तु आप तो दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हैं ॥ ३१ ॥

स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयश्चिकीर्षया ।

जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाढ्यम् ॥ ३२ ॥

आप निश्चय ही हमारे शुभचिन्तक सुहृदोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। हमारे कल्याणकी कामनासे आप हस्तिनापुरमें पाण्डवोंके पास जाइये। वे धृतराष्ट्रके आश्रयमें किस प्रकारसे रह रहे हैं—उनसे पूछकर आइये ॥ ३२ ॥

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ।

आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥

हमने सुना है कि अपने पिता पाण्डुके परलोक-गमनके बाद उनके पाँचों पुत्र बड़े दुःखी हो गये थे। धृतराष्ट्र उन्हें माता कुन्तीके साथ हस्तिनापुर ले आये थे और अब वे वहीं रह रहे हैं ॥ ३३ ॥

तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ।

समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥ ३४ ॥

अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्रका मनोबल अति दुर्बल है और दूसरे वे अन्धे हैं। उनके पुत्र बड़े दुष्ट स्वभावके हैं और वे अपने पुत्रोंके वशीभूत हैं। अतः वे निश्चय ही अपने भाईके युधिष्ठिरादि पुत्रोंके साथ अपने पुत्रोंके जैसा अर्थात् समान व्यवहार नहीं कर पाते ॥ ३४ ॥

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ।

विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥

अतः आप अभी वहाँ जाइये और इसका पता लगाइये कि उनके प्रति धृतराष्ट्रका व्यवहार ठीक है या नहीं! मैं यह जानकर कुछ इस प्रकारकी व्यवस्था करूँगा, जिससे हमारे सुहृद् पाण्डवोंका कल्याण हो ॥ ३५ ॥

इत्यकूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः।

सङ्कर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदकूरगृहगमनं नाम
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

प्रिय परीक्षित्! सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण अकूरको इस प्रकार आदेश प्रदान करके सङ्कर्षण एवं उद्धवके साथ वहाँसे अपने भवनमें लौट आये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अड़तालीसवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अक्रूरका हस्तिनापुर जाना और पाण्डवोंके प्रति
धृतराष्ट्रका पक्षपातपूर्ण व्यवहार देखकर मथुरा लौटना

श्रीशुक उवाच—

स गत्वा हस्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम्।
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥
सहपुत्रञ्च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम्।
कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! तदनन्तर अक्रूर भगवान्की आज्ञानुसार हस्तिनापुर पहुँचे, जो स्थान-स्थानपर देव-मन्दिरो तथा ब्राह्मण-गृहोंसे सुशोभित एवं पुरुवंशी आदि राजाओंके कीर्त्ति-चिह्नों अर्थात् उनकी अमरकीर्त्तिसे अङ्कित था। वे वहाँ भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक राजा और उनके पुत्र सोमदत्तादि, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाँचों पाण्डुपुत्र एवं अन्यान्य आत्मीय-स्वजनों-सुहृदोंसे मिले ॥ १-२ ॥

यथावदुपसङ्गम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ।

सम्पृष्टस्तैः सुहृद्वार्त्ता स्वयञ्चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥

जब गान्दिनीसुत अक्रूर यथाविधि सब इष्ट-मित्रों एवं सम्बन्धियोंसे मिल चुके, तब उन लोगोंने अक्रूरसे अपने मथुरावासी बन्धुओंके कुशल-समाचार पूछे। अक्रूरने भी स्वयं उनके कुशल-मङ्गलके सम्बन्धमें पूछताछ की ॥ ३ ॥

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया ।

दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्त्तिनः ॥ ४ ॥

परीक्षित्! दुष्ट-स्वभाववाले दुर्योधन आदि पुत्रोंके वशीभूत और उनके दुर्व्यवहारोंके अनुमोदनकारी शकुनि, कर्ण आदि दुष्ट

परामर्शदाताओंकी इच्छानुसार कार्य करनेवाले मन्दबुद्धि राजा धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके प्रति व्यवहार कैसा है—यह जाननेके लिए अक्रूर कुछ महीनों तक वहीं रहे ॥ ४ ॥

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान्।
प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥

कृतञ्च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम्।
आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥

विदुर एवं कुन्तीने अक्रूरको बतलाया कि धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनादि पाण्डु-पुत्रोंके प्रभाव, शस्त्रादि नैपुण्य, बल, वीर्य, विनय आदि सद्गुणोंको सहन नहीं कर पाते। साथ ही प्रजा जो उनसे विशेष अनुराग रखती है, इससे भी उन्हें बड़ी ईर्ष्या होती है। यही कारण है कि दुर्योधनादि पाण्डवोंके साथ असद् एवं अशोभन व्यवहार करते हैं, उन्होंने पाण्डवोंके लिए पहले विष-दान आदि अनिष्टकारी कार्य किये थे और अब भी उनके विरुद्ध कोई-न-कोई षडयन्त्र रचते ही रहते हैं ॥ ५-६ ॥

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम्।
उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा ॥ ७ ॥

कुन्तीदेवी घर आये हुए अपने भाई वृष्णि-पौत्र अक्रूरके पास आ बैठीं और अपनी जन्मभूमि (मायके) का स्मरण करके नेत्रोंमें आँसू भरकर कहने लगीं ॥ ७ ॥

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे।
भगिन्यौ भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥

हे सौम्य! हे मेरे प्यारे भाई! मेरे माता-पिता, भाई-बहन, भतीजे, कुलकी स्त्रियाँ एवं सखियाँ मेरा कभी स्मरण करते हैं क्या? ॥ ८ ॥

भ्रात्रेयो भगवान् कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः।
पैतृष्वस्त्रेयान् स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥

मैंने सुना है कि हमारे भतीजे श्रीकृष्ण और बलराम बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागत रक्षक हैं। मेरे आश्रयस्वरूप वे दोनों कमलनयन कभी अपने इन फुफेरे भाइयोंकी याद करते हैं क्या? ॥ ९ ॥

सपत्नमध्ये शोचन्ती वृकाणां हरिणीमिव ।

सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥

भैया, इस समय तो मैं यहाँ ऐसे रह रही हूँ, जैसे भेड़ियोंके बीच हिरनी रहती है। शत्रुओंसे त्रस्त होकर हर समय शोकमें डूबी रहती हूँ, मेरे पुत्र पितृ-विहीन असहाय हैं। क्या श्रीकृष्ण यहाँ आकर मुझे और मेरे अनाथ बालकोंको अपने वचनोंके द्वारा सान्त्वना प्रदान करेंगे? ॥ १० ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।

प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥

परीक्षित्! श्रीकृष्णको अपने सम्मुख समझकर कुन्ती पुकारने लगीं—हे महायोगिन्! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे विश्वपालक! हे गोविन्द! हे सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण! मैं अपने छोटे-छोटे पुत्रोंके साथ दुःखमें पड़ी हुई हूँ, मेरी रक्षा करो। हे विश्वभावन! मैं आपकी शरणमें हूँ, मेरे बालकोंको बचाओ। मेरे नयनगोचर होओ! (मेरे सम्मुख प्रकट हो जाओ) ॥ ११ ॥

नान्यत् तव पदाम्भोजात् पश्यामि शरणं नृणाम् ।

बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥ १२ ॥

हे देव! आपके चरणारविन्द मोक्ष देनेवाले हैं। आप ईश्वर-स्वरूप हैं। जन्म-मरणके भयसे ग्रस्त मनुष्योंके लिए आपके चरण-कमलोंकी शरणके अतिरिक्त मुझे अन्य कोई आश्रय दिखायी नहीं पड़ता ॥ १२ ॥

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।

योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥

हे देव ! श्रीकृष्ण ! आप शुद्धस्वरूप हैं, दृश्य होकर भी मायातीत हैं, असीम हैं, ब्रह्म-ज्ञानियोंके उपास्य परब्रह्म परमात्मा हैं, भक्तियोग आदि सभीके उपायस्वरूप (साधनस्वरूप) हैं, आप स्वयं ही योग हैं, योगेश्वर हैं, ज्ञानके उद्गमस्वरूप हैं, मैं आपकी शरणमें पड़ी हूँ। आप मेरी रक्षा करें॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णञ्च जगदीश्वरम्।

प्रारुदहुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही॥ १४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित ! इस प्रकारसे अपने परिवारीजनोंका एवं जगदीश्वर श्रीकृष्णका स्मरण करती हुई आपकी परदादी कुन्ती बहुत दुःखी हो गयीं और बहुत जोरसे रोने लगीं॥ १४ ॥

समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः।

सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः॥ १५ ॥

समसुखदुःखभागी अक्रूर एवं महायशस्वी विदुर उन्हें सान्त्वना देते हुए समझाने लगे कि उनके पुत्रोंके जन्मदाता धर्म, वायु और इन्द्र आदि देवता हैं; वे साधारण नहीं हैं। इस कारण उनका कुछ भी अशुभ हो नहीं सकता, बल्कि शीघ्र ही उनके परम मङ्गलकी सम्भावना है॥ १५ ॥

यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम्।

अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम्॥ १६ ॥

अपने पुत्रोंके प्रति मोह-ममताके कारण धृतराष्ट्रका अपने भतीजोंके साथ बड़ा पक्षपातपूर्ण व्यवहार था। अक्रूर मथुरा लौटना चाहते थे, अतः वे धृतराष्ट्रके पास गये, जो अपने हितैषियोंके साथ बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण और बलराम आदिने सौहार्दसे भरे जिन सन्देश-वचनोंको कहा था, अक्रूरने उन सबको धृतराष्ट्रको कह सुनाया॥ १६ ॥

श्रीअक्रूर उवाच—

भो भो विचित्रवीर्य त्वं कुरुणां कीर्तिवर्द्धन।

भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनासनमास्थितः ॥ १७ ॥

अक्रूरने सौहार्द प्रकट करते हुए कहा—हे विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्र! हे कुरुवंशकी कीर्तिको बढ़ानेवाले! आप अपने भाईके दिवंगत हो जानेके बाद राजसिंहासनके अधिकारी हो गये हैं ॥ १७ ॥

धर्मेण पालयन्नुर्वी प्रजाः शीलेन रञ्जयन्।

वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्त्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥

आप राजधर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन कीजिये। अपने सद्‌व्यवहारसे प्रजाको प्रसन्न रखिये और आत्मीयोंके साथ समानताका व्यवहार कीजिये। इसीसे आपका कल्याण होगा और आपको यशकी प्राप्ति होगी ॥ १८ ॥

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः।

तस्मात् समत्वे वर्त्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥

यदि आप इसके विपरीत आचरण करेंगे, तो इस लोकमें आपकी निन्दा होगी और परलोकमें भी आपको तमःलोक अर्थात् नरकमें जाना पड़ेगा। अतः पाण्डुपुत्र एवं अपने पुत्रोंके प्रति समानताका व्यवहार करना ही उचित है ॥ १९ ॥

नेह चात्यन्तसंवासः कस्यचित् केनचित् सह।

राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥ २० ॥

हे राजन्! इस लोक अथवा परलोकमें किसीके साथ सर्वदा एक जैसा स्थायी सम्बन्ध नहीं रहता। इसकी तो बात ही क्या, अपनी देहके साथ भी बहुत समय तक नहीं रह सकते। तब स्त्री-पुत्रादिके विषयमें तो कहना ही क्या? ॥ २० ॥

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते।

एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥

इस जगत्में जीव अकेला ही जन्म-ग्रहण करता है और अकेला ही मृत्युको प्राप्त होता है। अपने पाप-पुण्यका फल भी अकेला ही भोगता है ॥ २१ ॥

अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः।

सम्भोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२ ॥

मत्स्य-पुत्र (मछली) अथवा जलमें रहनेवाले जीव-जन्तु जिस प्रकार अपने ही माता-पिताके जीवन-स्वरूप जलका हरण अथवा पान कर लेते हैं, उसी प्रकार पुत्रादि भी 'हमारा पोषण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है'—इस प्रकारसे अधर्मपूर्वक कमाये हुए मूर्खके धनका बलपूर्वक हरण कर लेते हैं ॥ २२ ॥

पुष्पाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम्।

तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥

मनुष्य जिन प्राण, धन एवं पुत्रादिका अधर्म करके भी पालन-पोषण करते हैं, वे ही प्राण, धन एवं पुत्रादि उस बुद्धिहीनको बिना भोगकी प्राप्ति कराये असन्तुष्ट ही छोड़कर चले जाते हैं ॥ २३ ॥

स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः।

असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥

जीवन एवं धर्मके तत्त्वज्ञानसे अनभिज्ञ मनुष्य प्राण, पुत्र एवं धनादिसे परित्यक्त तो हो ही जाता है, उसके मनोरथ भी मनमें ही रह जाते हैं, पूर्ण नहीं होते। अपने धर्मसे भी वह विमुख ही रहता है—केवल कर्मफलोंको साथ लिये वह पापके पाथेयरूप नर्कको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

तस्माल्लोकमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम्।

वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥ २५ ॥

इसलिए हे महाराज! इस संसारको स्वप्नकी माया, जादूके खिलवाड़ और मनोराज्यके समान अस्थिर समझिये। आप समर्थ

हैं। अपने प्रयत्नसे अपनी आत्माको संयत करके शान्त एवं समदर्शी बनिये ॥ २५ ॥

श्रीधृतराष्ट्र उवाच—

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान्।

तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम् ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्रने बाहरसे महागाम्भीर्य प्रकाश करते हुए कहा—हे दानपते अक्रूर! आपने बड़ी ही हितकारी बातें कही हैं। मनुष्य अमृतको प्राप्त करके भी जिस प्रकार तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार मैं आपके इन वचनोंसे तृप्त नहीं हो रहा हूँ (अक्रूर मथुरापुरीमें याचकोंको अन्नदान दिया करते थे) ॥ २६ ॥

तथापि सुनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले।

पुत्रानुरागविषमे विद्युत् सौदामनी यथा ॥ २७ ॥

हे सौम्य! आपके वचन अतिशय हितकारी हैं। पुत्र-स्नेहसे वशीभूत मेरा हृदय अति चञ्चल और पक्षपातपूर्ण है। मेघोंमें स्थित विद्युत् जिस प्रकार ठहरती नहीं है, उसी प्रकार आपके वचन भी मेरे हृदयमें स्थिर नहीं रह पा रहे हैं ॥ २७ ॥

ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान्।

भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥

जो भू-भार हरण करनेके लिए यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णके विधानको अन्यथा करनेकी सामर्थ्य किसमें हो सकती है? (वे मेरे हृदयमें जैसी प्रेरणा करेंगे, वैसा ही होगा) ॥ २८ ॥

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं

सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः।

तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र-

संसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥

भगवान्की मायाका मार्ग अचिन्त्य है। जो भगवान् अपनी मायासे इस विश्वकी रचना करके इसमें अन्तर्यामीरूपसे विद्यमान रहते हैं, जो कर्म एवं उसके फलोंके विभाजन आदिकी यथायथ व्यवस्था करते हैं, जिनकी लीलाका रहस्य अगाध है और जिनकी दुर्ज्ञेय क्रीड़ा संसार-चक्रका एकमात्र कारण है, मैं उन परमेश्वर्यशाली प्रभुको प्रणाम करता हूँ (मेरी भी भावी गति जो होगी, सो होगी) ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः।

सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रके अभिप्रायको जानकर यदुवंशी अक्रूर अपने हितैषी सुहृदों एवं सम्बन्धियोंसे अनुमति लेकर यदुपुरी मथुरा लौट आये ॥ ३० ॥

शशंस राम-कृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम्।

पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदक्रूरगृहगमनं नाम
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

हे कुरुवंशी परीक्षित्! अक्रूर जिस वृत्तान्तको जाननेके अभिप्रायसे हस्तिनापुर भेजे गये थे, उन्होंने वहाँसे लौटकर भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलदेवके सम्मुख सम्पूर्ण वर्णन यथारूप सूचित कर दिया कि धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके साथ कैसा व्यवहार है ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उनचासवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

श्रीशुक उवाच—

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ।

मृते भर्त्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान्॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे भरतकुलश्रेष्ठ परीक्षित! कंसकी दो रानियाँ थीं—अस्ति एवं प्राप्ति। अपने पतिकी मृत्युके पश्चात् वे दोनों दुःखसे व्याकुल हो गयीं और पिता जरासन्धके घर चली आयीं ॥ १ ॥

पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते।

वेदयाञ्चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम्॥ २ ॥

अस्ति एवं प्राप्तिने पिता मगधराज जरासन्धको अति दुःखी होकर अपने वैधव्यके कारणोंको बतलाया ॥ २ ॥

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप।

अयादर्वी महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम्॥ ३ ॥

हे राजन्! राजा जरासन्ध पहले तो यह वृत्तान्त सुनकर शोकसे भर गया, किन्तु बादमें क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने निश्चय कर लिया कि वह पृथ्वीको यादवोंसे रहित कर देगा और इसी अभिप्रायसे वह प्रस्तुतिमें (तैयारियोंमें) जुट गया ॥ ३ ॥

अक्षौहिणीभिर्विशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः।

यदुराजधानीं मथुरां न्यरुधत् सर्वतो दिशम्॥ ४ ॥

उसने तेईस अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित की तथा यदुओंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम्।

स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनञ्च भयाकुलम्॥ ५ ॥

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः।

तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम्॥ ६ ॥

जिस तरह उमड़ता हुआ सागर अपनी सीमाको लाँघकर बहने लगता है, उसी प्रकार जरासन्धकी सेनाओं ने मधुपुरीको चारों ओरसे घेर लिया है, स्वजन और पुरवासी भयसे आतुर हो रहे हैं। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने अवतारके प्रयोजनपर विचार करने लगे कि इस अवसरपर देश, कालके अनुसार क्या करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण इस संसारके आदि कारण हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिए ही वे मनुष्यका-सा वेष धारण किये हुए हैं॥ ५-६ ॥

हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम्।

मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम्॥ ७ ॥

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः।

मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्त्ता बलोद्यमम्॥ ८ ॥

भगवान्ने निश्चय किया कि अच्छा ही हुआ कि जरासन्ध अपने अधीन राजाओंके हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदलरूप कई अक्षौहिणी सेनाओंको एकत्रितकर पृथ्वीका भार ही यहाँ ले आया है, मैं आज इस भारस्वरूप सैन्यमण्डलका विनाश कर डालूँगा, परन्तु जरासन्धको नहीं मारूँगा, क्योंकि जीवित रहनेसे वह पुनः बहुत-सी सेनाओंको एकत्र करनेका यत्न करेगा॥ ७-८ ॥

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे।

संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च॥ ९ ॥

भू-भार-हरण, साधुजनोंका संरक्षण और असाधुओंका विनाशन—इन तीन प्रयोजनोंके उद्देश्यसे ही मेरा यह अवतार है॥ ९ ॥

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संध्रियते मया।

विरामायाम्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्॥ १० ॥

धर्मकी रक्षा एवं अधर्मके बढ़ते प्रभावको रोकनेके लिए मैं इस अवतारके अतिरिक्त वराहादि अनेक शरीर भी धारण करता हूँ ॥ १० ॥

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ।

रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥

परीक्षित्! श्रीकृष्ण इस प्रकारसे सोच-विचार कर ही रहे थे कि उसी समय आकाशसे सूर्यके समान दीप्तिशाली दो रथ आ पहुँचे। दोनों रथ युद्धकी सामग्रियोंसे सुसज्जित थे और दोनोंमें ही सारथि बैठे हुए थे ॥ ११ ॥

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया।

दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥

उसी समय संयोगसे भगवान्‌के दिव्य और सनातन अस्त्र-शस्त्र भी वहाँ उपस्थित हो गये। इन्हें देखकर भगवान्‌ श्रीकृष्ण बलदेवसे कहने लगे ॥ १२ ॥

पश्याय व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो।

एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥

यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात् स्वान् समुद्धर।

एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत्।

त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेभारमपाकुरु ॥ १४ ॥

भगवान्‌ श्रीकृष्णने कहा—हे पूज्य बड़े भैया! आपके द्वारा रक्षित और आपके ही आश्रित यदुओंपर जरासन्ध द्वारा जो सङ्कट आ पड़ा है, उसे देखिये। यह सम्मुख ही आपका रथ और आपके प्रिय अस्त्र हल-मुसल उपस्थित हो गये हैं, यह भी देखिये। अब आप रथपर सवार होकर शत्रु-सेनाका संहार कीजिये और विपत्तिसे यादवोंका उद्धार कीजिये। हे प्रभो! इन दुर्जनोंके विनाश एवं साधुओंके कल्याणके लिए ही हमारा अवतार हुआ

है। इस तेईस अक्षौहिणी सेनारूप पृथ्वीके बड़े भारी भारका हरण कीजिये ॥ १३-१४ ॥

एवं सम्मन्त्र्य दाशाहौ दंशितौ रथिनौ पुरात्।

निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसा वृतौ ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामने इस प्रकार परामर्श करके कवच बाँध लिये और उत्तम अस्त्रोंको धारण कर लिया। इसके बाद वे रथपर सवार हो गये और सेनाकी एक छोटी-सी टुकड़ीको लेकर युद्धके लिए पुरीसे बाहर निकले ॥ १५ ॥

शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः।

ततोऽभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ १६ ॥

सारथि दारुक भगवान् श्रीकृष्णके रथको पुरीसे बाहर ले आये। भगवान्ने यहाँ अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। इस शङ्खनादसे शत्रुओंका हृदय दहल उठा और वे डरसे काँपने लगे ॥ १६ ॥

तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम।

न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया।

गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥ १७ ॥

मगधराज जरासन्धने बलराम और श्रीकृष्णको अपने सम्मुख देखकर कहा—हे पुरुषाधम कृष्ण! तू अभी निरा बालक है, अतः तुझ अकेलेके साथ युद्ध करनेमें मुझे लज्जा आती है। मैं तेरे साथ युद्ध करना नहीं चाहता। हे बन्धुघातिन्! तू तो अपने मामाका हत्यारा है, तू प्राणोंके भयसे वैसे ही छिपा फिरता है, मैं तेरे साथ युद्ध नहीं करूँगा। जा, तू अपने स्थानपर ही चला जा ॥ १७ ॥

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्रह।

हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १८ ॥

हे बलराम! यदि तेरी इच्छा हो, तो तू युद्धके लिए प्रस्तुत हो जा और इसके लिए धैर्यपूर्वक साहस जुटा। युद्धमें या तो

मेरे बाणोंसे खण्ड-खण्ड हुई देहको छोड़कर स्वर्ग चला जा
अथवा तुझमें शक्ति हो तो मुझे मार डाल ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम्।

न गृह्णीमो वचो राजन् आतुरस्य मुमूर्षतः ॥ १९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे राजन्! जो सच्चे वीर होते हैं, वे
आत्म-प्रशंसा नहीं करते, अपितु अपना पराक्रम दिखलाते हैं।
तुम दुर्बल हो और मरना चाहते हो। इसी कारण तुम्हारे वचनोंमें
इतनी विकृति हो रही है। मैं ऐसी वचन-विकृति (व्यर्थ बकवाद)
पर ध्यान नहीं देता ॥ १९ ॥

श्रीशुक उवाच—

जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ

महाबलौघेन बलीयसावृणोत्।

ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी

सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २० ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—मगधराज जरासन्ध मधुवंशोत्पन्न
भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने आ गया और उसने
अपनी बलशाली विशाल सेनाओंके द्वारा उन दोनोंको एवं उनकी
सेना, रथ, ध्वज, घोड़े तथा सारथियोंको चारों ओरसे वैसे ही घेर
लिया, जैसे वायु मेघमालाको और धूलिके कण सूर्य एवं
अग्निको ढक लेते हैं ॥ २० ॥

सुपर्ण-तालध्वजचिह्नितौ रथा-

वलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे।

स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं

समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २१ ॥

उस समय दुर्गके ऊपर बने हुए उच्च भवनों, ऊँचे-ऊँचे
महलों और पुरद्वारोंपर यहाँ-वहाँ खड़ी पुरनारियाँ युद्धक्षेत्रके
दृश्योंको देख रही थीं। जब उन्हें श्रीकृष्ण एवं बलरामके

गरुड-ध्वज एवं ताल-वृक्ष-ध्वजसे चिह्नित रथ दिखायी नहीं पड़े, तो वे शोकसे मूर्च्छित हो गयीं ॥ २१ ॥

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः
शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ।
स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं
व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २२ ॥

परीक्षित्! शत्रुसेनारूप मेघोंके द्वारा बार-बार भयानक एवं अति उग्र नौकवाले बाणोंकी वर्षासे अपनी सेनाको पीड़ित देखकर भगवान् श्रीहरि देवता और असुरों दोनोंके ही द्वारा वन्दित शार्ङ्ग नामक अपने उत्तम धनुषपर टङ्कार करने लगे ॥ २२ ॥

गृह्णन्निषङ्गादथ सन्दधच्छरान्
विकृष्य मुञ्चन् शितबाणपूगान् ।
निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीन्
निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने तरकससे अविरलरूपसे बाण निकाले, शार्ङ्गधनुषकी डोरीपर उन्हें चढ़ाया, डोरी खींची और क्षणार्द्धमें ही शत कोटि तीक्ष्ण बाणोंकी झड़ी लगा दी। इस प्रकारसे श्रीकृष्ण शत्रु जरासन्धके रथ, हाथी, घोड़े और पैदल-चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करने लगे। भगवान् बाणोंको इतनी फुर्तीसे बरसा रहे थे, जैसे कोई अलातचक्र (लुकारी अथवा जलती लकड़ी) को घुमा रहा हो ॥ २३ ॥

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतु-
रनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ।
रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः
पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २४ ॥

भगवान्के द्वारा उस तरह बाण चलानेसे हाथियोंके कुम्भ (मस्तक) धड़से अलग हो गये, घोड़ोंकी गर्दनें अलग होने लगीं और वे मर-मर कर गिरने लगे। घोड़े, ध्वजा, सारथि एवं स्वामी

समेत रथ खण्ड-खण्ड होकर धराशायी होने लगे और जो पैदल सेना थी, उनकी भुजाएँ, जंघाएँ, सिर, गर्दन आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग दो भागोंमें खण्डित होकर भूमिसात् होने लगे ॥ २४ ॥

संछिद्यमानद्विपदेभवाजिना-

मङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ।

भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा

हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २५ ॥

करोरुमीना नरकेशशैवला

धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसङ्कुलाः ।

अच्छूरिकावर्त्तभयानका महा-

मणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २६ ॥

प्रवर्त्तिता भीरुभयावहा मृधे

मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ।

विनिघ्नतारीन् मुषलेन दुर्मदान्

सङ्कर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २७ ॥

बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं

दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ।

क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयो-

र्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २८ ॥

युद्धक्षेत्रमें मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंके खण्डित-विखण्डित हो जानेसे रक्तकी शत-शत नदियाँ बहने लगीं। इन नदियोंमें भुजाएँ सर्पके समान, पुरुषोंके सिर कछुएके समान, मरे हाथी द्वीपोंके समान, घोड़े ग्राहके समान, हाथ एवं जंघाएँ मछलियोंके समान, मनुष्योंके बाल सेवारके समान, धनुष तरङ्गोंके समान, अस्त्र-शस्त्र गुल्म अर्थात् लता एवं तिनकोंके समान, ढाल भँवरोंके समान और उत्तम महामणियाँ एवं आभूषण पत्थर एवं बालूके कणोंके समान दिखायी दे रहे थे। इन नदियोंको देखकर भीरु भयसे थरा रहे थे और बुद्धिमानोंमें हर्षका सञ्चार हो रहा

था। हे राजन्! जरासन्ध द्वारा संरक्षित सेना समुद्रके समान दुर्गम, दुष्पार, दुर्मदान्ध (बड़ी कठिनाईसे जीती जाने योग्य) और अति भयङ्कर थी। भगवान् श्रीबलरामका बल असीम है। उन्होंने अपने मुषलायुधके द्वारा इस भारी सैन्यशक्तिका विनाश कर डाला। वस्तुतः वसुदेवके दोनों पुत्रों भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीसङ्कर्षणके युद्धादि कार्योंको खिलवाड़ मात्र समझना चाहिये (यह खिलवाड़ उनके पराक्रमका परिचायक नहीं है) ॥ २५-२८ ॥

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः
समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया।
न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रह-
स्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ २९ ॥

परीक्षित्! अनन्त गुणोंसे विभूषित जो भगवान् अपनी लीलामात्रके आश्रयसे तीनों भुवनोंकी सृष्टि, स्थिति एवं संहार करते हैं, उनके द्वारा क्षुद्रातिक्षुद्र शत्रुओंका इस प्रकारसे विनाश किया जाना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। फिर भी, जब भगवान् मनुष्य-लीलाका अभिनय करते हुए ऐसा आचरण करते हैं, तब साधुजनोंके द्वारा इसका वर्णन किया ही जाता है ॥ २९ ॥

जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम्।
हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३० ॥

प्रीढ़वयस्क मगधराज जरासन्धका रथ नष्ट हो गया था, उसकी सारी सेना मारी गयी थी और उसके बस केवल प्राण ही शेष रह गये थे, तब सिंह जिस प्रकार दूसरे सिंहको झपटकर पकड़ लेता है, उसी प्रकार बलरामने उस महाबली जरासन्धको बलपूर्वक पकड़ लिया ॥ ३० ॥

बध्यमानं हतारार्तिं पाशैर्वारुणमानुषैः।
वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३१ ॥

जरासन्धने पहले बहुत-से शत्रुओंका वध किया था, परन्तु आज बलदेवने उसे वारुण-पाश एवं मानुषी-पाशसे (रस्सियोंके

फंदोंसे) बाँधना आरम्भ कर दिया, परन्तु भगवान् गोविन्दने जरासन्धको बलरामसे यह कहकर मुक्त करा दिया कि वह पुनः बहुत-सी सेना इकट्ठी करके लायेगा, जिससे हमें भू-भार-हरणरूप अपने कार्यका सहज सुयोग प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥

स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसम्मतः ।

तपसे कृतसङ्कल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३२ ॥

वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ।

स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३३ ॥

दोनों लोकनाथ—श्रीकृष्ण और बलरामने जब जरासन्धको छोड़ दिया, तब योद्धाओंके द्वारा सम्मानित, वीराग्रगण्य वह मगधराज अतिशय लज्जित हो गया। (वह इस बातके लिए विशेष लज्जित हुआ कि मुझे कृष्ण और बलराम जैसे निरे बालकोंने दया करके दीनकी भाँति छोड़ दिया है।) उसने तपस्या करनेका सङ्कल्प कर लिया, किन्तु मार्गमें उसके साथी अन्यान्य राजाओंने धर्मोपदेशों और लौकिक नीतियोंके द्वारा उसे रोक लिया। यथा—‘राजन्! इस प्रकारकी पराजय केवल अपने कर्मोंके प्रारब्धवश है, इसमें लज्जाकी क्या बात है?’, ‘यादव अल्पसंख्यक और दुर्बल हैं’, ‘वे आपको पुनः पराजित नहीं कर पायेंगे’, ‘आपको तपस्याकी आवश्यकता नहीं है’। ‘आप आत्मोत्सर्ग क्यों करते हैं?’ आदि-आदि ॥ ३२-३३ ॥

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ।

उपेक्षितो भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥ ३४ ॥

परीक्षित्! उस समय मगधराजकी सारी सेना मारी जा चुकी थी, भगवान् श्रीकृष्णने उपेक्षापूर्वक उसे छोड़ दिया था। अतः वह बृहद्रथ-पुत्र राजा जरासन्ध बड़े दुःखी मनसे उदास होकर अपने मगध राज्यको लौट गया ॥ ३४ ॥

मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ।

विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३५ ॥

माथुरैरुपसङ्गम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ।

उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ३६ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी सेना अक्षत थी और उन्होंने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी विशाल सेनापर, जो दुस्तर समुद्रकी भाँति अथाह-असीम थी, सहज ही विजय प्राप्त कर ली। उस समय देवता उनपर नन्दनवनके फूलोंकी वर्षा करते हुए उनका अभिनन्दन करने लगे। सूत, मागध एवं बन्दीगण उनका विजय-गान करने लगे। जरासन्धके पराभवसे मथुरावासियोंकी भी चिन्ता दूर हो गयी। वे बड़े प्रसन्न हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण भी आकर उनसे मिले ॥ ३५-३६ ॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ।

वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥ ३७ ॥

सिक्तमार्गा हृष्टजनां पताकाभिरलङ्कृताम् ।

निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३८ ॥

जरासन्धकी सेनाके पराजयसे मथुरावासी भयरहित हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयसे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा था। वहाँके राजपथोंको जलसे सींचा गया था, स्थान-स्थानपर ध्वजा-पताकाएँ अलंकृत हो रही थीं, चारों ओर प्रवेशद्वारोंको वन्दनवारोंसे सजाया गया था, चारों दिशाएँ वेदमन्त्रोंसे गूँज उठीं, नागरिक उत्साहसे भरकर इधर-उधर चल-फिर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने जैसे ही पुरीमें प्रवेश किया, वैसे ही वीणा, वेणु, मृदङ्ग, शङ्ख, दुन्दुभि, भेरी एवं तुरही आदि वाद्य बजने लगे ॥ ३७-३८ ॥

निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ।

निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्णके पुरीके भीतर प्रवेश करनेपर, पुरकी स्त्रियाँ उनके ऊपर माल्य, दधि, अक्षत एवं जौ आदि अङ्कुरोंकी वर्षा कर रही थीं और प्रेमसे प्रफुल्लित नेत्रोंसे उन्हें निहार रही थीं एवं उनका हृदय स्नेहसे सराबोर हो रहा था ॥ ३९ ॥

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ।
यदुराजाय तत् सर्वमाहतं प्रादिशत् प्रभुः ॥ ४० ॥

श्रीकृष्ण रणभूमिसे योद्धाओंके आभूषण और अपार धन ले आये थे, जिसे उन्होंने राजा उग्रसेनको उपहारके रूपमें प्रदान कर दिया ॥ ४० ॥

एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ।
ययुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४१ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर राजा जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशकी सेनाओंके साथ युद्ध किया और पराजित हुआ ॥ ४१ ॥

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ।
हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽगादरिभिर्नृपः ॥ ४२ ॥

यादव-सेना श्रीकृष्णकी शक्तिसे उसकी समस्त सेनाओंका विनाश कर डालती। अपनी सेनाके विनष्ट होनेपर जरासन्ध शत्रुओं द्वारा उपेक्षित एवं त्यक्त होकर अपनी राजधानी लौट जाता ॥ ४२ ॥

अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदन्तरा ।
नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४३ ॥

अठारहवीं बार संग्राम प्रारम्भ होने ही वाला था कि उसी समय देवर्षि नारदजीके द्वारा भेजा हुआ कालयवन नामका वीर युद्धकी कामनासे वहाँ आ पहुँचा (किसी समय कालयवन महाकालके समान उन्मत्त होकर पृथ्वीपर विचरण कर रहा था कि नारदको देखकर पूछने लगा, 'पृथ्वीपर कोई बलवान् राजा है?' नारद असुर-संहार करानेमें बड़े निपुण हैं, उन्होंने यदुवीरोंको सर्वश्रेष्ठ बलवान् बता दिया और कालयवन मथुरा पहुँच गया) ॥ ४३ ॥

रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लैच्छकोटिभिः ।
नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन् श्रुत्वात्मसम्मितान् ॥ ४४ ॥

इस मर्त्यलोकमें उसके समान दूसरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। उसने जब यह सुना कि यादव उसके जैसे ही बलवान् हैं, तब वह मथुरा चला आया और तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सहायतासे उसने मथुरा नगरीको घेर लिया ॥ ४४ ॥

तं दृष्ट्वाचिन्तयत् कृष्णः सङ्कर्षणसहायवान्।

अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने जब कालयवनको देखा, तो वे इस स्थितिपर बलरामके साथ विचार करने लगे कि 'ओह! यह क्या! यादवोंपर तो दोनों दिशाओंसे महासङ्कट आ पड़ा है' ॥ ४५ ॥

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः।

मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वागमिष्यति ॥ ४६ ॥

आज इधर इस महाबली कालयवनने हमें घेर लिया है और उधर मगधका राजा जरासन्ध आज, कल अथवा परसों आ ही जायेगा ॥ ४६ ॥

आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः।

बन्धून् हनिष्यत्यथ वा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४७ ॥

हम दोनों कालयवनके साथ युद्ध करनेमें लग गये और यदि जरासन्ध आ पहुँचा, तो निश्चय ही वह बलवान् शत्रु हमारे असहाय बन्धुओंको मार डालेगा अथवा उन्हें पकड़कर अपनी नगरीमें ले जायेगा ॥ ४७ ॥

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम्।

तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४८ ॥

अतः आज ही हम एक द्विपद-दुर्गम किलेका निर्माण करार्येंगे, जहाँ किसी भी मनुष्यका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन होगा, और उसमें अपने स्वजन-सम्बन्धियोंको पहुँचाकर, बादमें उस म्लेच्छराजका वध करेंगे ॥ ४८ ॥

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम्।

अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार बलरामसे मन्त्रणा करनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रके भीतर बारह योजन परिधिवाला एक विशाल दुर्ग बनवाया। इस दुर्गके भीतर एक नगर बनवाया, जिसमें सभी वस्तुएँ आश्चर्यचकित कर देनेवाली थीं ॥ ४९ ॥

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्।

रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५० ॥

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ।

हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५१ ॥

राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलङ्कृतैः।

रत्नकूटैर्गृहैर्हेमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५२ ॥

वास्तोष्पतीनाञ्च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम्।

चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५३ ॥

इस नगरमें विश्वकर्मांमें जितनी भी वैज्ञानिक क्षमता और शिल्प-निपुणता थी, उसे देखा जा सकता था। विस्तृत भू-खण्डको आधार बनाकर वास्तु-विज्ञानके अनुसार यथायथरूपसे राजपथ, व्यावसायिक सड़कें एवं चौराहे बनाये गये थे, सुन्दर-सुन्दर उद्यान और रमणीक उपवन थे, जिनमें देव-तरु एवं लहलहाती लताएँ नगरीको सुशोभित कर रही थीं। अटारियाँ बड़ी ऊँची थीं, जिन्हें स्फटिक मणियोंसे खचित किया गया था एवं ऊँचे-ऊँचे गोपुरोंके शिखर (बुर्ज) सोनेके बनाये गये थे। महलोंको भी स्वर्ण-पत्रोंसे आच्छादित किया गया था। इनके फर्श महामरकत मणिसे बने हुए थे और शिखरोंको पद्मरागादि मणियोंसे सुसज्जित किया गया था। उनमें सोनेसे बने हुए कामदार कलश रखे थे। कोषागार, भण्डार-घर और अस्तबल आदि रजत, पीतल एवं लोहेके बने हुए थे। प्रत्येक महलमें देव मन्दिर एवं चन्द्रशालाओंसे (छज्जों,

बुर्जियोंसे) नगर जगमगा रहा था। इस नगरमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लोग भरे हुए थे और सर्वोपरि श्रीकृष्ण आदिके राजभवनोंके कारण नगर अत्यधिक अद्भुत दिखायी दे रहा था ॥ ५०-५३ ॥

सुधर्मा पारिजातञ्च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः।

यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥ ५४ ॥

देवराज इन्द्रने सुधर्मा नामकी देवसभा एवं पारिजात वृक्षको श्रीकृष्णके पास उपहार-स्वरूपमें भेज दिया। इस नगरमें रहनेवाले लोगोंकी यह विशेषता थी कि वे भूख-प्यास आदि मर्त्य-धर्मसे अभिभूत नहीं होते थे ॥ ५४ ॥

श्यामैककर्णान् वरुणो हयान् शुक्लान् मनोजवान्।

अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान् ॥ ५५ ॥

वरुणदेवने मनकी गतिके समान अतिवेगवान् शुक्ल वर्णके घोड़े भिजवा दिये। इन घोड़ोंका एक कान काले रङ्गका था। निधिपति कुबेरने आठों निधियाँ (पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, औदक, नील, मुकुन्द तथा शङ्ख) भेज दीं। अन्यान्य लोकपालोंने भी अपनी-अपनी विभूतियोंको श्रीकृष्णके लिए उपहाररूपमें भेज दिया ॥ ५५ ॥

यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये।

सर्वं प्रत्यप्रयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५६ ॥

अन्यान्य सिद्धगणोंने भगवान् श्रीहरिसे अपने-अपने अधिकारोंकी सिद्धिके लिए पहले जो समस्त आधिपत्य प्राप्त किये थे, श्रीहरिके पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेपर उन्होंने उन सब शक्तियों और सिद्धियोंको भगवान्के श्रीचरणोंमें अर्पण कर दिया ॥ ५६ ॥

तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः।

प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः।

निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे दुर्गनिवेशनं नाम
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अचिन्त्य महाशक्ति-योगके बलसे अपने समस्त आत्मीय बन्धुओंको उस नवनिर्मित नगर द्वारकामें पहुँचा दिया। अवशिष्ट प्रजाके पालनके लिए बलदेव मथुरामें रहे। बलदेवकी अनुमति लेकर श्रीकृष्ण गलेमें पद्ममालासे विभूषित होकर एवं बिना कोई अस्त्र-शस्त्र लिये पुर-द्वारसे बाहर आ गये ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पचासवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कालयवनका भस्म होना तथा राजा मुचुकुन्दकी कथा

श्रीशुक उवाच—

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम्।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥
नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम्।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥
वासुदेवो ह्ययमिति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः।
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥
लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति।
निरायुधश्चलन् पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥
इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम्।
अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—प्रिय परीक्षित्! जब श्रीकृष्ण मथुराके मुख्य-द्वारसे बाहर निकले, तब वे पूर्व दिशामें उदीयमान चन्द्रमाके समान अतीव सुन्दर दिखायी दे रहे थे। उनके अत्युज्ज्वल श्यामल श्रीअङ्गपर रेशमी पीताम्बर अपनी निराली छटा बिखेर रहा था, वक्षःस्थल श्रीवत्समणिसे अलंकृत था, गलेमें आबद्ध कौस्तुभ मणि जगमगा रही थी, चारों भुजाएँ पुष्ट एवं दीर्घ थीं। नेत्र नवीन कमलके समान स्निग्ध एवं रतनारे थे, श्रीविग्रह आनन्दसे तरङ्गायित था, मुखपर विशुद्ध एवं मन्द-मन्द मुसकान थी, कपोलोंकी शोभा अत्याकर्षक थी, कानोंमें देदीप्यमान मकराकृति कुण्डल विभूषित हो रहे थे, मुखमण्डल कमलके

समान प्रफुल्लित था। उन्हें देखकर कालयवनने निश्चय कर लिया कि हो-न-हो यही सुपुरुष श्रीकृष्ण है। नारदजीने जैसा वर्णन किया था, वैसे ही सारे लक्षण दिखायी दे रहे हैं—चतुर्भुज, कमललोचन, वनमाली और सुन्दरताकी सीमा। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा श्रीकृष्ण हो नहीं सकता। जो भी हो, इस समय यह निरस्त्र है, अतः मैं भी पैदल (रथ-रहित) और निरस्त्र होकर इसके साथ युद्ध करूँगा। इस प्रकार निर्धारण करके म्लेच्छराज कालयवन भी बिना अस्त्र-शस्त्रके उनकी ओर चला, परन्तु उसे आते देखकर श्रीकृष्ण पराङ्गमुख होकर (अर्थात् दूसरी ओर मुँह करके) रणभूमिसे पलायन करने लगे। कालयवन उन्हें पकड़नेके लिए उनके पीछे-पीछे दौड़ा, जो योगियोंके लिए मनसे भी दुर्लभ हैं ॥ १-६ ॥

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे।

नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण पग-पगपर मानो उसकी पकड़में आ गये हों—अब पकड़े गये, तब पकड़े गये इस प्रकार भगवान् रणछोड़-लीलाका अभिनय करते हुए कालयवनको दूर स्थित पर्वतकी गुफामें ले गये ॥ ७ ॥

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम्।

इति क्षिपत्रनुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८ ॥

उस समय कालयवन, पीछेसे बार-बार आक्षेप कर रहा था कि 'हे कृष्ण! तुम परम कीर्तिशाली यदुवंशमें उत्पन्न हुए हो, तुम्हारे लिए पलायन उचित नहीं है'—भर्त्सना करके भी वह किसी भी प्रकारसे श्रीकृष्णके समीप तक न पहुँच सका, क्योंकि तब भी उसके अशुभ कर्मबन्धन नष्ट नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान् प्राविशद्गिरिकन्दरम्।

सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥

वह भगवान्‌के प्रति तिरस्कारपूर्ण वचन कहता जा रहा था, परन्तु भगवान्‌ उस पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर गये। कालयवन भी उनके पीछे-पीछे पर्वतकी गुफामें घुस गया। वहाँ उसने सोये हुए एक पुरुषको देखा ॥ ९ ॥

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ।

इति मत्वाच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥

कालयवनने सोचा कि श्रीकृष्ण मुझे इतनी दूर पर्वतकी गुफामें ले आया है और अब देखो, स्वयं साधुके समान सोया हुआ है। इस प्रकारसे उस मूर्ख यवनने सोये हुए पुरुषको श्रीकृष्ण मानकर उनपर बड़ी जोरसे पाद-प्रहार किया ॥ १० ॥

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ।

दिशो विलोकयन् पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥

परीक्षित्! वे पुरुष बहुत दिनोंसे सोये हुए थे। पदाघातके कारण वे उठ बैठे और उन्होंने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं। वे चारों ओर देखने लगे। देखते-देखते उन्हें पास ही खड़ा कालयवन दिखायी पड़ा ॥ ११ ॥

स तावत् तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।

देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात् ॥ १२ ॥

हे राजन्! इस तरहसे जगाये हुए पुरुष क्रुद्ध तो थे ही। उनके दृष्टिपातसे कालयवनकी देहमें अग्नि उत्पन्न हो गयी। देहजात इस अग्निसे वह दग्ध होने लगा और क्षणभरमें ही राखके ढेरमें परिणत हो गया ॥ १२ ॥

श्रीराजोवाच—

को नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किंवीर्य एव च ।

कस्माद्गुहां गतः शिष्ये किं तेजो यवनार्दनः ॥ १३ ॥

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! इस यवनका विनाश करनेवाले वे पुरुष कौन थे? किस वंशमें उत्पन्न हुए थे? किसके पुत्र थे?

उनकी शक्ति किस प्रकारकी थी? वे किसलिए गिरिकी कन्दरामें सोये थे? आप समस्त वृत्तान्त मुझे बतलाइये ॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच—

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान्।

मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! ये महापुरुष इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न महाराजा मान्धाताके पुत्र थे और मुचुकुन्द नामसे विख्यात थे। इन्हें सत्यप्रतिज्ञ एवं ब्रह्मपरायणके रूपमें जाना जाता है ॥ १४ ॥

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे।

असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥

प्राचीन समयमें एक बार असुरोंके त्राससे भयभीत होकर इन्द्रादि देवताओंने राजा मुचुकुन्दसे अपनी रक्षाकी प्रार्थना की थी। तब इन्होंने उन देवताओंकी दीर्घकालपर्यन्त रक्षा की थी ॥ १५ ॥

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन्।

राजन् विरमतां कृच्छ्राद्भवान् नः परिपालनात् ॥ १६ ॥

जब स्वर्गकी रक्षाके लिए देवताओंको सेनापतिके रूपमें कार्तिकेय उपलब्ध हो गये, तब उन्होंने मुचुकुन्दसे कहा—हे राजन्! आपने हमारी रक्षाके लिए बहुत कष्टसाध्य श्रम किया है, अब आप विश्राम कीजिये ॥ १६ ॥

नरलोकं परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम्।

अस्मान् पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७ ॥

हे वीर-शिरोमणे! आपने मृत्युलोकके निष्कण्टक राज्यका परित्याग करके हमारे पालनका व्रत धारण कर लिया और हमारी रक्षाके लिए अपनी सम्पूर्ण अभिलाषाओं एवं विषय-भोगोंका भी परिहार कर दिया ॥ १७ ॥

सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ।

प्रजाश्च तुल्यकालीताः नाधुना सन्ति कालिताः ॥ १८ ॥

विशेषरूपसे आपके समकालीन पुत्र, रानियाँ, ज्ञाति, सम्बन्धी, अमात्य, मन्त्री और प्रजाओंमेंसे अब कोई भी जीवित नहीं बचा है। वे सब-के-सब कालके द्वारा ग्रस्त होकर विभिन्न स्थानोंपर चले गये हैं ॥ १८ ॥

कालो बलीयान् बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ।

प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालो यथा पशून् ॥ १९ ॥

काल प्राणियोंका नियन्ता, बलवानोंमें भी महाबलवान्, अविनाशी और भगवत्स्वरूप है। पशुपालक (ग्वारिया) जिस प्रकार पशुओंको इधर-उधर परिचालित करता है, उसी प्रकार काल भी खेल-खेलता हुआ-सा प्रजाओंको अपने अधीन रखकर यहाँ-वहाँ घुमाया करता है ॥ १९ ॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ।

एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥

हे राजन्! आपका कल्याण हो। आप आज मुक्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई भी वरदान माँग लें। हममें तो एकमात्र अविनाशी भगवान् विष्णु ही हैं, जो मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ हैं ॥ २० ॥

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ।

(निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः

यः कश्चिन्मम निद्राया भङ्गं कुर्यात् सुरोत्तमाः ।

स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ।

स्वापं यातं यो मध्येस्तु बोधयेत् त्वामचेतनः ।

स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥)

अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ २१ ॥

देवताओंने जब इस प्रकार कहा, तब महाकीर्तिसम्पन्न महाराज मुचुकुन्दने देवताओंकी वन्दना की एवं उनसे निद्राका वरदान ग्रहण किया। वे पर्वतकी गुफाके अन्दर जाकर सो गये।

प्रभुपादजी द्वारा श्लोक मध्यगत प्रक्षिप्त पंक्तियोंका अर्थ है—राजा मुचुकुन्द परिश्रान्त थे, अतः उन्होंने निद्राको ही वरण कर लिया। उन्होंने कहा—हे देवता-श्रेष्ठ, जो कोई भी मेरी निद्राको भङ्ग करे, वह तुरन्त ही भस्मीभूत हो जाय। देवताओंने उत्तर दिया 'ऐसा ही हो'। जो मूर्ख व्यक्ति आपको निद्रासे जगायेगा, वह आपकी दृष्टिमात्रसे तत्क्षण ही भस्म हो जायेगा। इन्द्र भी इस वरदानके अभिलक्ष्य थे कि शत्रु-वधके लिए वे उन्हें पुनः न जगा दें॥ २१॥

यवने भस्मसात्रीते भगवान् सात्वतर्षभः।

आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते॥ २२॥

जब कालयवन जलकर भस्म हो गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने परम बुद्धिमान् मुचुकुन्दको अपने स्वरूपका दर्शन कराया॥ २२॥

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम्।

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम्॥ २३॥

चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया।

चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम्॥ २४॥

प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम्।

अपीव्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम्॥ २५॥

पर्य्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः।

शङ्कितः शनकै राजा दुर्द्धर्षमिव तेजसा॥ २६॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह वर्षाकालीन नूतन जलधरके समान श्यामल था, वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए थे, उनका वक्षःस्थल श्रीवत्ससे विभूषित, कौस्तुभ मणिसे सुशोभित तथा ग्रीवा देश वैजयन्तीमालासे मण्डित था। वे चतुर्भुज-विशिष्ट

थे। सुन्दर मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिला हुआ था, दोनों कानोंमें मकराकृति कुण्डल देदीप्यमान हो रहे थे, सम्पूर्ण मर्त्यलोकमें उनके समान दर्शनीय कोई न था, अधरों पर अनुरागसे पूर्ण मन्दहास्य था। नेत्रोंकी चितवन आह्लादकी वर्षा कर रही थी, सुसमृद्धिमान् नवतारुण्य था। वे उन्मत्त सिंहके समान सुरम्य एवं प्रभावशाली दिखायी दे रहे थे। राजा मुचुकुन्दने उनके अद्भुत, दिव्य एवं ज्योतिर्मय रूपको देखा, तो वे उनके तेजसे अभिभूत हो गये। महाराज मुचुकुन्द महाबुद्धिमान् थे, फिर भी भगवान्‌के दुर्धर्ष-तेजके प्रभावसे हतप्रभ रह गये और श्रीकृष्णसे शङ्काके साथ धीरे-धीरे पूछने लगे॥ २३-२६॥

श्रीमुचुकुन्द उवाच—

को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे।

पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके॥ २७॥

राजा मुचुकुन्दने कहा—यह अरण्य काँटोंसे भरा हुआ है। आपके चरण सुकोमल कमलकी पंखुड़ियोंके समान हैं। आप इस पर्वतकी गुफामें किसलिए विचरण कर रहे हैं?॥ २७॥

किंस्वित् तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः।

सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालो परोऽपि वा॥ २८॥

क्या आप समस्त तेजस्वियोंके साक्षात् मूर्तिमान् स्वरूप हैं? क्या आप भगवान् अग्निदेव, सूर्य, चन्द्र, स्वर्गके राजा इन्द्र अथवा किसी दूसरे लोकके शासक हैं?॥ २८॥

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम्।

यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा॥ २९॥

मैं तो आपको ब्रह्मा-विष्णु महेश तीनों देवाधिपतियोंमेंसे पुरुषोत्तम विष्णु ही समझता हूँ। जिस प्रकार दीपक अपनी प्रभासे अँधेरेको दूर कर देता है, उसी प्रकार आपका दिव्य तेज गुफाके अन्धकारको दूर कर रहा है॥ २९॥

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ।

स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३० ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं आपकी उत्पत्ति, कर्म एवं गोत्रके विषयमें जानना चाहता हूँ। यदि आपकी इच्छा हो, वे इस श्रवणच्छुको निष्कपटरूपसे बतलाइये ॥ ३० ॥

वयन्तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ।

मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३१ ॥

हे पुरुषोत्तम ! जहाँ तक मेरी बात है, मैं इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न क्षत्रिय हूँ। मैं युवनाश्व नामके राजाका पौत्र एवं मान्धाता नामके राजाका पुत्र हूँ। हे प्रभो ! मुझे मुचुकुन्द नामसे जाना जाता है। (अपना अपकर्ष एवं वंशका श्रेष्ठत्व बतलाया गया है) ॥ ३१ ॥

चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयापहतेन्द्रियः ।

शयेऽस्मिन् विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३२ ॥

बहुत दिनों तक जगे रहनेके कारण बहुत क्लान्त हो गया था। बादमें निद्राके आवेगने मेरी इन्द्रियोंकी शक्तिका अपहरण कर लिया था। इसीसे मैं इस निर्जन गिरि गह्वरमें स्वेच्छापूर्वक निर्द्वन्द्व सोया था, अभी-अभी मुझे किसी अज्ञान व्यक्तिने जगा दिया ॥ ३२ ॥

सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ।

अनन्तरं भवान् श्रीमान् लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३३ ॥

मेरी निद्राको भङ्ग करनेवाला वह व्यक्ति निश्चय ही अपने पापोंसे भस्मीभूत हो गया। इसके बाद शत्रुओंका विनाश करनेवाला आपका यशस्वी स्वरूप मुझे दिखलायी पड़ा ॥ ३३ ॥

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ।

हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ ३४ ॥

हे महाभाग ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके पूजनीय हैं। आपके असह्य तेजके प्रभावसे मैं हतप्रभ हुआ जा रहा हूँ और आपको

बार-बार देखनेके लिए मेरी दृष्टि असमर्थ होनेके कारण स्थिर नहीं हो पा रही है ॥ ३४ ॥

एवं सम्भाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः।

प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३५ ॥

जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब भूतभावन (समस्त प्राणियाके संरक्षक) भगवान् श्रीकृष्णने मन्द-मन्द मुसकराते हुए मेघध्वनिके समान गम्भीर वाणीमें उत्तर दिया ॥ ३५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः।

न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥ ३६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे राजन्! मेरे जन्म, कर्म एवं नाम सहस्र-सहस्र हैं। असंख्य होनेके कारण मैं भी इसका निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥ ३६ ॥

क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः।

गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३७ ॥

कोई व्यक्ति कितने ही जन्म लेकर पृथ्वीपर स्थित धूलिकणोंकी भले ही गिनती कर ले, लेकिन बहुत जन्म लेकर भी मेरे जन्म, गुण, कर्म एवं नामोंकी गणना नहीं कर सकता ॥ ३७ ॥

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप।

अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ ३८ ॥

हे राजन्! सनकादि परम महर्षियोंने मेरे त्रैकालिक सिद्धजन्मों एवं कर्मोंकी क्रमशः धीरे-धीरे गणना करना आरम्भ तो किया, पर उनकी सीमा आज तक नहीं पा सके ॥ ३८ ॥

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम।

विज्ञापितो विरिज्वेन पुराहं धर्मगुप्तये।

भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ३९ ॥

अवतीर्णो यदुकुले गृहे आनकदुन्दुभेः।

वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम्॥ ४० ॥

हे राजन्! फिर भी, मैं तुम्हारे लिए अपने वर्तमान जन्मादिका वर्णन कर रहा हूँ, इसे ध्यानसे सुनो। पहले ब्रह्माजीने धर्मकी रक्षा एवं पृथ्वीके भार-स्वरूप असुरोंके विनाशके लिए मुझसे निवेदन किया था। उनकी प्रार्थनासे मैं यदुवंशमें आनकदुन्दुभि वसुदेवजीके घरमें अवतीर्ण हुआ हूँ। इसलिए लोग मुझे वसुदेवका पुत्र मानकर 'वासुदेव' नामसे कहा करते हैं॥ ३९-४० ॥

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः।

अयञ्च यवनो दग्धो राजस्ते तिग्मचक्षुषा॥ ४१ ॥

मैं इससे पहले कालनेमि असुर जो कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ था, उसका और सज्जन-द्रोही प्रलम्ब आदि असुरोंका संहार कर चुका हूँ। हे राजन्! इस समय भी मेरी प्रेरणासे यह कालयवन भी तुम्हारे तीक्ष्ण दृष्टिपातके कारण भस्म हो गया॥ ४१ ॥

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः।

प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः॥ ४२ ॥

वही विष्णुरूपमें तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए ही इस गुफामें उपस्थित हुआ हूँ। मैं भक्तवत्सल हूँ। पूर्वकालमें तुमने मुझसे प्रचुर कृपाकी प्रार्थना की थी॥ ४२ ॥

वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते।

मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम्॥ ४३ ॥

हे राजर्षे! तुम अभीष्ट वर माँगो। मैं तुम्हें तुम्हारी सभी मनोभीष्ट (प्रार्थित) वस्तुएँ प्रदान करूँगा। मेरी शरणमें आये हुए व्यक्तियोंको पुनः कभी शोक नहीं करना पड़ता॥ ४३ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः।

ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन्॥ ४४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके यह कहनेपर महाराज मुचुकुन्द अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्हें महर्षि गर्गके वचनोंका स्मरण हो आया कि अट्टाईसवें द्वापर युगमें यदुवंशमें भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं, तुम्हें उनका दर्शन होगा। उन्हें निश्चय हो गया कि वे ही देवोंके देव नारायण हैं। राजा मुचुकुन्द भगवान् श्रीकृष्णको (नारायण-ज्ञानसे) प्रणाम करके कहने लगे ॥ ४४ ॥

श्रीमुचुकुन्द उवाच—

विमोहितोऽयं जन ईश मायया
त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते
गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४५ ॥

राजा मुचुकुन्दने कहा—हे ईश! शूकरके समान काममें आसक्त होकर स्त्री एवं पुरुष दोनों ही इस कर्म भूमिमय संसारमें आपकी मायासे विमोहित हो रहे हैं। आपसे विमुख होकर अनर्थोंमें ही उनका ध्यान केन्द्रित रहता है और वे आपका भजन नहीं कर पाते। मानुषत्व प्राप्त करके भी परस्पर ठगे जाते हुए वे लोग सुखकी इच्छासे दुःखोंके मूल कारण घरमें ही आसक्त रहते हैं ॥ ४५ ॥

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४६ ॥

हे अनघ! मनुष्य इस कर्मभूमिमें दुर्लभ अविकलाङ्ग एवं सुन्दर सुदृढ़ मानव-देहको अपने परम सौभाग्य और भगवान्की अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त तो कर लेते हैं, परन्तु आपके पाद-पद्मोंका भजन नहीं करते। वे तुच्छ-तृणके लोभी पशुओंके समान विषय-सुखकी वासनासे गृहरूप अन्धकूपमें पड़े रहते हैं ॥ ४६ ॥

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो
राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः।

मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभू-

ष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥ ४७ ॥

हे अजित्! मैं भी देहको ही आत्मा मानता रहा और पुत्र, स्त्री, कोष एवं राज्यमें अत्यन्त आसक्त रहा। राज-सम्पदाके मदमें इतना मतवाला रहा कि दुरन्त और अनन्त चिन्ताओंमें ही जीवन निष्फल बिता दिया। मेरा तो सारा जीवन ही निरर्थक चला गया ॥ ४७ ॥

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे

निरूढमानो नरदेव इत्यहम्।

वृत्तो रथेभाश्वपदात्यनीकपै-

र्गा पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥ ४८ ॥

हे प्रभो! यह शरीर घट एवं भित्तिके (घड़े और भीतके) समान मिट्टीका है, इसी अनात्म पदार्थ शरीरको मैं इतने दिनों तक “मैं नरदेव हूँ” “मैं मानवोंका अधिपति हूँ”—यही अपना स्वरूप समझ बैठा था। इस प्रकार राजमदसे अभिमानी होकर रथ, हाथी, घोड़े, पैदल सेना एवं सेनापतियोंसे घिरा हुआ पृथ्वीपर इधर-उधर विचरण किया करता था। अतिशय मदमत्तताके कारण आपका कभी चिन्तन ही नहीं कर सका ॥ ४८ ॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया

प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्।

त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे,

क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ४९ ॥

हे भगवन्! “इस कार्यके बाद अमुक कार्य करूँगा”—इस प्रकार मनुष्य वृथा ही मनोरथोंकी परम्परामें व्यर्थ ही व्यस्त रहकर नितान्त असावधान रहते हैं। विषय-भोगकी लालसाओंके कारण विषय प्राप्त होनेपर भी वे और अधिक लोभी होकर उनमें उत्तरोत्तर फँसते ही चले जाते हैं, परन्तु काल (रूपी यम) सदा सतर्क रहता है। वह ऐसे लोगोंपर सहसा ही इस प्रकार आक्रमण करता है, जिस प्रकार क्षुधातुर सर्प सहसा ही चूहेको धर-दबोचता है ॥ ४९ ॥

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्
 मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
 स एव कालेन दुरत्ययेन ते
 कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५० ॥

पहले जो यह देह सुवर्णमण्डित रथ अथवा हाथियोंपर भ्रमण किया करती थी और जिसे राजा नामसे सम्बोधन किया जाता था, वही देह आपकी अजेय एवं अबोध काल-गतिका ग्रास बनकर विष्ठा, कीड़ा अथवा भस्म नामोंसे घृणित अवस्थाओंको प्राप्त होती है ॥ ५० ॥

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो
 वरासनस्थः समराजवन्दितः ।
 गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां
 क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥ ५१ ॥

हे भगवन्! जिसने सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है, जिसके साथ संग्रामके लिए अब कोई रह ही नहीं गया है, जो भव्य सिंहासनपर विराजमान है, जो अब उन राजाओंके द्वारा सम्मानित होता है, जिन्हें पहले उसके समान माना जाता था, वही दिग्विजयी, महापराक्रमशाली पुरुष कामिनियोंके साथ विषय-सुख भोगनेके लिए जब घरमें घुसता है, तो वहाँ उनका ही क्रीड़ा-मृग (हाथकी कठपुतली) बनकर उनके सङ्केतोंपर इधर-उधर नाचता है ॥ ५१ ॥

करोति कर्माणि तपःसुनिष्ठितो
 निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ।
 पुनश्च भूयायमहं स्वराडिति
 प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ५२ ॥

जो पहलेसे ही प्राप्त होनेपर भी और अधिक विषय भोग-लालसासे ग्रस्त हैं, वे व्यक्ति “मैं जन्मान्तरमें इन्द्र बनूँगा, मैं स्वतन्त्र, सर्वोच्च सम्राट् बनूँगा”—इस प्रकारके सङ्कल्पोंके अधीन रहकर ऐहिक भोगोंको छोड़कर भूमिशयन, ब्रह्मचर्य-पालन आदि

तपस्याएँ करने लग जाते हैं, इस प्रकार निरन्तर बढ़ती तृष्णाओंके कारण उन्हें सुखानुभूतिके अवसर कभी भी प्राप्त नहीं होते ॥ ५२ ॥

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-

ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।

सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ

परावरेण त्वयि जायते मतिः ॥ ५३ ॥

हे अच्युत! इस प्रकार प्रपञ्चमें भटकते जीवका सौभाग्यसे जिस समय सांसारिक बन्धन छूटनेका समय आता है, उस समय उसे सत्सङ्ग प्राप्त होता है और जिस समय सत्सङ्ग (सत्-समागम) अर्थात् अनुग्रहकारी सन्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है, उसी समय साधुओंके परमाश्रय-स्वरूप, समस्त कार्य-कारणोंके नियन्ता आपके प्रति सर्वदुःखविनाशिनी एवं परमसुखमयी भक्ति उत्पन्न होती है और उसीसे सांसारिक प्रपञ्चोंसे मुक्ति हो जाती है। साधु अपनी भक्तिसे भव-समुद्रको पार कर जाते हैं और परवर्ती लोगोंके लिए अपनी चरणतरीको (चरणनौकाको) भवसमुद्रके इस पार रख जाते हैं ॥ ५३ ॥

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो

राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ।

यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया

वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥ ५४ ॥

हे भगवन्! मेरा यह जो राज्यादि-बन्धन संयोगसे स्वयं ही विच्छिन्न हो गया है, वह आपके अनुग्रहका ही फल है—मैं ऐसा मानता हूँ, जब कि तपस्याके लिए वन जानेकी अभिलाषा करनेवाले विवेकी चक्रवर्ती राजा ऐकान्तिकी निष्ठाके साथ ध्यान-भक्तिकी सिद्धिके लिए आपसे राज्यादिके ममता-बन्धनसे मुक्त होनेके लिए प्रार्थना करते रह जाते हैं। वस्तुतः भगवत्-कृपा एकमात्र निष्किञ्चन भगवत्-भक्तोंका ही अभिलक्ष्य है, विषयाविष्ट-चित्तवाले व्यक्तियोंके लिए तो यह दुर्लभ है ॥ ५४ ॥

न कामयेऽन्यं तव पादसेवना-
 दकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो।
 आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे
 वृणीत आय्यो वरमात्मबन्धनम्॥५५॥

हे विभो! आपके चरणकमल जो अकिञ्चनोंके सर्वोत्तम प्रार्थनीय हैं, मैं इन्हीं चरणकमलोंके भजनके अतिरिक्त दूसरे किसी वरदानकी प्रार्थना करना नहीं चाहता। हे हरि! भला ऐसा कौन विवेकी पुरुष होगा, जो मुक्तिको (भक्तियोगको) प्रदान करनेवाले आपकी आराधना करके उन सांसारिक-विषयोंको माँगेगा—जो उसके ही बन्धनके कारण होते हैं॥५५॥

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो
 रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ।
 निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं
 त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं ब्रजाम्यहम्॥५६॥

अतः हे भगवन्! मैं सर्वतोभावसे सत्त्व, रज एवं तमो-गुणसे सम्बन्ध रखनेवाली एवं बन्धनकारी कामनाओंका त्याग करके अद्वय, अक्षर, निर्गुण, निरञ्जन (निरुपाधिक), सच्चिदानन्दविग्रह, परमपुरुष आपकी शरणमें आया हूँ॥५६॥

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै-
 रवितृषषडमित्रो लब्धशान्तिः कथञ्चित्।
 शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्
 अभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश॥५७॥

हे ईश! मैं इस लोकमें दीर्घकालसे कर्मोंके फलका भोग करते-करते पीड़ित हो रहा था, दिन-रात अनुतापसे सन्तप्त रहा करता था, इन्द्रियाँ तृष्णाओंसे आर्त रहती थीं, काम, क्रोधादि छहों शत्रुओंसे मिलनेवाली भर्त्सना एवं ताड़नासे मुझे कभी शान्ति नहीं मिलती थी। अब दैववश आपके पादपद्मोंके शरणापन्न हुआ

हूँ। हे सत्य-स्वरूप! हे अभय-प्रदाता! हे शोक-रहित! हे अमृत-स्वरूप! हे शरणदायक! हे परमात्मन्! इस आपद्-ग्रस्तकी रक्षा कीजिये (मनुष्यलोककी सम्पत्ति-भोगमें रोग एवं विपक्षी शत्रुओंका भय रहता है, देवलोककी सम्पत्ति क्षणस्थायी होनेके कारण मिथ्या है और ब्रह्मा-सम्पत्ति आपकी चरण सेवासे वञ्चित करके शोकग्रस्त कर देती है। अतः अभय-अमृत-अशोक आपके पादपद्म ही मनुष्योंके आश्रय-स्वरूप हैं)॥ ५७॥

श्रीभगवानुवाच—

सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्ज्जिता।

वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः॥ ५८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे सार्वभौम (सम्राट्)! हे महाराज! तुम्हारी बुद्धि सर्वतोभावसे पवित्र एवं शक्तिशाली है। मेरे द्वारा वरदान दिये जानेका बार-बार प्रलोभन दिये जानेपर भी तुम्हारी बुद्धि विषय-वासनाओंसे आक्रान्त नहीं हुई॥ ५८॥

प्रलोभितो वरैर्यत् त्वमप्रमादाय विद्धि तत्।

न धीरेकान्तभक्तानामाशीर्भिभिद्यते क्वचित्॥ ५९॥

मैंने जो तुम्हें वरदान देनेका प्रलोभन दिया, वह केवल तुम्हारी सावधानीकी परीक्षाके लिए—इसमें मुझे कहीं भी प्रमादकी संभावना दिखायी नहीं दी। अनन्य (ऐकान्तिक) भक्तोंकी मति कभी भी विपथगामी अथवा विचलित नहीं होती और न ही विषयोंकी प्राप्तिके लिए आसक्त होती है। वे निश्चल होते हैं॥ ५९॥

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः।

अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम्॥ ६०॥

हे राजन्! जिनमें भक्तिका प्रवेश नहीं है, ऐसे अभक्त योगियों एवं ज्ञानियोंका मन प्राणायामादिका अनुष्ठान करनेसे भी कभी वासना-रहित नहीं होता। देखा जाता है कि वे कभी-न-कभी भौतिक विषयोंकी ओर उन्मुख हो ही जाते हैं॥ ६०॥

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः।

अस्त्वेवं नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६१ ॥

अतः हे नृपति! तुम अपना मन मुझमें समर्पण कर दो और इच्छानुसार पृथ्वीपर विहार करो। तुम्हारी विषय-वासनाओंके सम्पर्कसे रहित शुद्ध एवं निर्मल भक्ति मेरे प्रति सर्वदा ही बनी रहेगी ॥ ६१ ॥

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून् न्यवधीर्मृगयादिभिः।

समाहितस्तत् तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६२ ॥

राजन्! पहले तुमने क्षत्रिय-धर्मका पालन करते समय शिकारादि एवं अन्य कार्योंके द्वारा भी बहुत-से प्राणियोंका वध किया था। अब मेरे शरणागत होकर सावधानीपूर्वक एकाग्रचित्तसे तपस्या करते हुए अपने पापोंको धो डालो।

वस्तुतः भगवान्के दर्शनके बाद कोई पाप रहता नहीं, परन्तु भगवान्ने अपनी चातुरीसे उन्हें अपने परिकरके रूपमें आगामी जन्मकी बात कही। अभी क्षत्रियत्व होनेके कारण उनमें सौहार्द भी नहीं है, अतः ब्राह्मण जन्मकी अपेक्षा रखी। इस जन्ममें यदि उन्हें वे साथ रखते तो इस मन्वन्तरके प्रथम चरणमें उत्पन्न होनेसे वे अति प्राचीन, अति स्थूल एवं अति दीर्घ थे, जिन्हें देखकर उद्धव, अक्रूर एवं युधिष्ठिरादि हँसने लगते कि ये कहाँसे आ गये हैं। और भी, जरासन्ध, रुक्मी, शाल्व इत्यादिको वे (मुचुकुन्द) संग्राममें अपनी हथेली पर मच्छरकी तरह घर्षित कर देते। यह सब विचार करके भगवान्ने उनके लिए ऐसी व्यवस्था की है ॥ ६२ ॥

जन्मन्यनन्तरे राजन् सर्वभूतसुहृत्तमः।

भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमुचुकुन्दस्तुतिर्नाम
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

हे राजन्! अगले जन्ममें तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण-स्वरूपको प्राप्त करोगे और समस्त प्राणियोंके सच्चे हितैषी-प्रवर और परम सुहृद रहोगे। किसी ऐश्वर्यमें तुम्हारी आसक्ति नहीं होगी (अर्थात् दानादि ग्रहण न करके वैराग्य ही ग्रहण करोगे) और केवलमात्र मुझको ही प्राप्त करोगे॥ ६३॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके इक्यावनवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और बलरामजीका द्वारकागमन, बलरामजीका विवाह तथा रुक्मिणीजीका सन्देश लेकर ब्राह्मणका श्रीकृष्णके पास आना

श्रीशुक उवाच—

इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ।

तं परिक्रम्य सन्नम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! इस प्रकार इक्ष्वाकु-नन्दन राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णके द्वारा अनुगृहीत हुए। उन्होंने भगवान्की परिक्रमाकी एवं उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् वे गुफाके मुखसे बाहर निकले ॥ १ ॥

संवीक्ष्य क्षुल्लकान् मर्त्यान् पशून् वीरुद्धनस्पतीन् ।

मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥

बाहर आकर उन्होंने देखा कि मनुष्य, पशु, वृक्ष और लताएँ इत्यादिका आकार बहुत छोटा हो गया है। वे समझ गये कि कलियुग अब निकट आ ही गया है। अतः वे (सांसारिक सुखोंका मोह त्यागकर) उत्तर दिशाकी ओर चले गये ॥ २ ॥

तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ।

समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गन्धमादनम् ॥ ३ ॥

महाराज मुचुकुन्द विवेक, श्रद्धा तथा तपस्यासे युक्त थे। उनमें सन्देह-संशय नहीं थे। वे विषयोंसे अनासक्त तो थे ही। उन्होंने अपने मनको भगवान् श्रीकृष्णमें लगाया और सर्वकाल-सुगन्धमय-गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे ॥ ३ ॥

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ।

सर्व्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥

वहाँ वे नर-नारायण ऋषियोंके नित्य निवासस्थान बदरिकाश्रममें पहुँचे। शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहते हुए मुचुकुन्द बड़े शान्त भावसे तपस्याके द्वारा श्रीहरिकी आराधनामें लग गये ॥ ४ ॥

भगवान् पुनराब्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम्।

हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः मथुरा नगरीकी ओर लौटे, जो यवन-सेनासे घिरी हुई थी। भगवान्ने उस यवन-सेनाका संहार किया और उनकी धन-सम्पत्तिको द्वारका ले चले ॥ ५ ॥

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः।

आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥

जब इस धन-सम्पत्तिको भगवान् श्रीकृष्णके आदेशानुसार मनुष्यों और बैलोंके द्वारा ले जाना आरम्भ हुआ ही था कि, तभी मगधपति जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर युद्धके लिए पुनः आ धमका ॥ ६ ॥

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ।

मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन् दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण और बलरामजीने उस समय शत्रु-सेनाका प्रबल वेग देखा, तो मनुष्य-लीलाका-सा अभिनय करते हुए बड़ी द्रुत (तीव्र) गतिसे दौड़ पड़े ॥ ७ ॥

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत्।

पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

राजन्! श्रीकृष्ण और बलरामजी स्वभावतः निर्भीक हैं, तो भी उन्होंने मनुष्य-जैसा आचरण करते हुए अर्थात् भयभीतकी भाँति अभिनय करते हुए, उस सारी-की-सारी धन-सम्पत्तिको वहीं छोड़ दिया और अपने कमलदलके समान सुकोमल चरणोंसे अनेक योजन दूर तक भागते चले गये ॥ ८ ॥

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन् बली।

अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥

महाबलशाली जरासन्धने बलराम और श्रीकृष्णको भागते हुए देखा, तो हँस पड़ा और सारथियों एवं पैदल-सेनाके साथ उनका पीछा करने लगा। वह भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामके प्रभावादसे अनभिज्ञ था ॥ ९ ॥

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम्।

प्रवर्षणाख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥

बहुत दूर तक दौड़ते-दौड़ते बलराम और श्रीकृष्ण परिश्रान्त हो गये। तब वे अति ऊँचे 'प्रवर्षण' नामक पर्वतपर चढ़ गये, जहाँ इन्द्रदेव निरन्तर जलकी वर्षा करते रहते हैं ॥ १० ॥

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप।

ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥

हे राजन्! उस समय जरासन्धने सोचा कि बलराम-कृष्ण इस ऊँचे पर्वतपर छिप गये हैं। अतः वह उन्हें खोजने लगा, पर उन दोनोंके छिपनेके स्थानका पता ही नहीं लगा सका। तब उसने प्रवर्षण पर्वतकी चारों दिशाओंमें प्रचुर ईंधन द्वारा आग लगवाकर उस पर्वतको जलवा दिया ॥ ११ ॥

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटाडुभौ।

दशैकयोजनोत्तुङ्गात्रिपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥

पर्वतके छोर जैसे ही जलने लगे, वैसे ही बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाई जरासन्धकी सेनाके घेरेको लाँघते हुए उस ग्यारह योजन (नब्बे मील) ऊँचे पर्वतसे बड़ी फुर्तीसे पृथ्वीपर कूद पड़े ॥ १२ ॥

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ।

स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥

हे राजन्! यदुश्रेष्ठ ये दोनों भाई वहाँसे चलकर समुद्ररूप सुरक्षा-खाईसे घिरी हुई द्वारकापुरीमें चले आये। प्रतिद्वन्द्वी जरासन्ध और उसके अनुयायी सैनिक उन दोनोंको देख ही न सके ॥ १३ ॥

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ।

बलमाकृष्य सुमहन्मगधान् मागधो ययौ ॥ १४ ॥

परीक्षित्! जरासन्धने झूठको ही सत्य मान लिया कि बलराम-कृष्ण आगमें जल गये हैं। उसने अपनी विशाल सेनाको इकट्ठा किया और उसके साथ पुनः अपने राज्य मगधदेशको लौट गया ॥ १४ ॥

आनर्त्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुताम्।

ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥

हे राजन्! आनर्त्त देशके वैभवशाली राजा श्रीमान् रैवतने (रेवत पुत्र ककुद्भी) ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपनी पुत्री रेवतीका विवाह बलदेवके साथ कर दिया था—यह मैं पहले ही (नवम स्कन्धमें) बतला चुका हूँ ॥ १५ ॥

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरुद्वह।

वैदर्भी भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयम्बरे ॥ १६ ॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वार्दीश्चैद्यपक्षगान्।

पश्यतां सर्व्वलोकानां ताक्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥

हे कुरुवंशपालक महाराज परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंवरमें आये हुए शिशुपाल एवं उसके पक्षधर शाल्व आदि राजाओंको परास्त करके सभी लोगोंके सामने भीष्मककी राजकन्या रुक्मिणीको उसी प्रकार हर लिया, जिस प्रकार गरुडने सुधाका हरण कर लिया था। जिन रुक्मिणीसे भगवान् गोविन्दने विवाह किया, वे स्वयं भगवती लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई थीं ॥ १६-१७ ॥

श्रीराजोवाच—

भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम्।

राक्षसेन विधानेन उपयेमे इति श्रुतम् ॥ १८ ॥

राजा परीक्षितने कहा—हे मुनिवर! भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मक-नन्दिनी रुचिरानना (परमसुन्दरी) रुक्मिणी देवीको बलपूर्वक हरण करके राक्षस-विधिके अनुसार विवाह किया था—यह हमने पहले भी सुना है ॥ १८ ॥

भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः।

यथा मागधशाल्वादीन् जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥ १९ ॥

हे भगवन्! श्रीकृष्णने किस प्रकार जरासन्ध, शाल्व आदि पराक्रमी राजाओंको पराजित करके रुक्मिणीका हरण किया था? असीमित तेजसे युक्त श्रीकृष्णके इस वृत्तान्तको मैं विशेष रूपसे सुनना चाहता हूँ ॥ १९ ॥

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीलोकमलापहाः।

को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥

ब्रह्मर्षे! भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके विषयमें क्या कहा जाय! वे महाफलदायक, श्रुतिसुखकर (कानोंको सुख देनेवाली), जगत्के समस्त पापोंका विनाश करनेवाली एवं नित्य नूतन रस प्रदान करनेवाली हैं। हे मुनिवर! कोई भी श्रुतिसारवित् इन्हें सुनकर तृप्त नहीं हो सकता बल्कि उसके श्रवणकी स्पृहा और भी बढ़ती जाती है ॥ २० ॥

श्रीबादरायणिरुवाच—

राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।

तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भीष्मक नामके महाराज बड़े शक्तिशाली थे। वे विदर्भ देशके अधिपति थे। उनके पाँच पुत्र और एक सुन्दरी कन्या थी ॥ २१ ॥

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।

रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥

उनमें सबसे बड़े पुत्रका नाम था रुक्मी। इसके बाद क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। रूप एवं गुणोंमें अति श्रेष्ठ रुक्मिणी इनकी बहन थी ॥ २२ ॥

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ।

गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥

पिताके महलमें आनेवाले अतिथिगण प्रायः भगवान् मुकुन्दके सौन्दर्य, पराक्रम, गुण एवं वैभवकी प्रशंसा किया करते थे। रुक्मिणी इन वार्त्ताओंको सुना करती थी। उसने मन-ही-मन श्रीकृष्णको अपना पति बनानेका निश्चय कर लिया ॥ २३ ॥

तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ।

कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥ २४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण भी जानते थे कि रुक्मिणी अति सुन्दर लक्षणोंसे युक्त है। वह परम बुद्धिमती, शील-स्वभावसे सम्पन्न, औदार्य, सौन्दर्य तथा सौकुमार्यकी निधि है। अतः उन्होंने भी उस गुणशालिनीको अपने अनुरूप पत्नी मानकर उससे विवाह करनेका निश्चय कर लिया ॥ २४ ॥

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ।

ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥

हे राजन्! उसके अन्य भाई भी वैदर्भीका विवाह श्रीकृष्णसे करना चाहते थे, परन्तु बड़ा भाई रुक्मी श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था। अतः उसने अपने परिवारीजनोंको रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णके साथ करनेसे रोक दिया और सभीकी इच्छाके विपरीत चेदिराज शिशुपालको योग्य वरके रूपमें निश्चय कर लिया ॥ २५ ॥

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम्।
विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित् कृष्णाय प्राहिणोदद्भुतम् ॥ २६ ॥

विदर्भकी राजकुमारी रुक्मिणी बहुत सुन्दर थी। उसकी चितवन नीलिमासे युक्त थी। जब उसने शिशुपालको अपना वर बनानेकी बात सुनी, तो वह अतिशय दुःखी हो गयी। अब मुझे क्या करना चाहिये—इस विषयपर उसने बहुत सोचा-विचारा। तब किसी विश्वासपात्र ब्राह्मणको शीघ्र ही श्रीकृष्णको बुलानेके लिए भेज दिया ॥ २६ ॥

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः।
अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥ २७ ॥

ब्राह्मण देवता जब द्वारकापुरी पहुँचे, तो द्वारपाल उन्हें राज-महलके भीतर ले गये। वहाँ ब्राह्मणदेवताने आदिपुरुष श्रीकृष्णको सोनेके सिंहासनपर विराजमान देखा ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात्।
उपवेश्यार्हयाञ्चक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥

ब्राह्मणोंके परमभक्त श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताको देखते ही अपने सिंहासनसे उतर गये और उन्हें अपने आसनपर बिठाया। देवता जिस प्रकारसे श्रीकृष्णकी पूजा-अर्चना करते हैं, वैसे ही उन्होंने उन (रुक्मिणी-प्रेरित) ब्राह्मण देवताका पूजा-सत्कार किया ॥ २८ ॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः।
पाणिनाभिमृशन् पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥

आदर-सत्कार, कुशल-प्रश्नके पश्चात् जब ब्राह्मण देवता भोजन एवं विश्राम कर चुके, तब सन्तोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास पहुँचे और अपने हाथोंसे उनके पैरोंको धीरे-धीरे दबाते हुए बड़े शान्त भावसे पृछने लगे ॥ २९ ॥

कच्चिद्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः।
वर्तते नातिकृच्छ्रेण सन्तुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे द्विजवर! आपका चित्त-निरन्तर सन्तुष्ट तो रहता है न! आपको प्राचीन पुरुषोंके द्वारा अनुमोदित धर्मका पालन करनेमें कोई कष्ट तो नहीं होता? उसे सहजरूपसे सम्पन्न कर लेते हैं न? ॥ ३० ॥

सन्तुष्टो यर्हि वर्त्तत ब्राह्मणो येन केनचित्।

अहीयमानः स्वाद्धर्मात् स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मण यदि अपने धर्मसे पतित न हो और जो कुछ भी प्राप्त हो, उससे ही सन्तुष्ट रहे, तो यही धार्मिक सिद्धान्त उसके समस्त मनोभीष्टको पूर्ण करनेवाला कामधेनु बन जाता है ॥ ३१ ॥

असन्तुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः।

अकिञ्चनोऽपि सन्तुष्टः शेते सर्वार्ङ्गविज्वरः ॥ ३२ ॥

असन्तुष्ट ब्राह्मणको यदि इन्द्रत्व भी प्राप्त हो जाय, तो भी कामना-ज्वररूप-व्यथाके कारण वह निरन्तर केवल एक लोकसे दूसरे लोकमें ही भटकता रहता है, परन्तु जो सन्तुष्ट है, वह ब्राह्मण अकिञ्चन होकर भी समस्त प्रकारके सन्तापसे रहित होकर सुखपूर्वक सोता है ॥ ३२ ॥

विप्रान् स्वलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान्।

निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसासकृत् ॥ ३३ ॥

जो ब्राह्मण स्वयं प्राप्त वस्तुओंसे सन्तुष्ट रहते हैं, (लोभार्थीके समान किसीसे कुछ माँगते नहीं) स्वधर्ममें निष्ठा रखते हैं, सदा-सर्वदा प्राणियोंके हितमें लगे रहते हैं, निरहङ्कार एवं शान्त-चित्त रहते हैं, मैं ऐसे ब्राह्मणोंको नित्य-निरन्तर सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३३ ॥

कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः।

सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥

हे विप्रवर! राजाकी ओरसे तो आपलोगोंको धर्मादिकी रक्षाके लिए सब प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त होती रहती हैं न? जिस

राजाके राज्यमें प्रजा सुखी एवं सुरक्षित रहती है, वैसा राजा मुझे बहुत ही प्रिय है॥ ३४॥

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्य्यहं यदिच्छया।

सर्व्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत् किं कार्य्यं करवाम ते॥ ३५॥

हे ब्राह्मणदेवता! आप जहाँसे, जिस हेतुसे, जिस इच्छासे इस कठिन समुद्र-दुर्गको पार करके इस पुरीमें आये हैं, यदि यह गोपनीय न हो तो मुझे बतलाइये। मुझे कहिये कि मैं आपके किस कार्यको सम्पूर्ण करूँ॥ ३५॥

एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना।

लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्व्वमवर्णयत्॥ ३६॥

लीलासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार प्रश्न करनेपर ब्राह्मणदेवताने उन्हें सारा वृत्तान्त सुना दिया। तदनन्तर वे भगवान् श्रीकृष्णसे रुक्मिणीका सन्देश कहने लगे॥ ३६॥

श्रीरुक्मिण्युवाच—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते

निर्विशय कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।

रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं

त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥ ३७॥

रुक्मिणी द्वारा दिये गये प्रेमचिह्नरूप पत्रके आवरणको खोलकर ब्राह्मणने उस पत्रको श्रीकृष्णको दिखाया और उनसे अनुमति प्राप्त करके उस पत्रको पढ़ना आरम्भ किया। इस पत्रमें रुक्मिणीने इस प्रकारसे लिखा था—हे भुवनसुन्दर (त्रैलोक्यसुन्दर) अच्युत! आपके गुण श्रोताओंके कानोंके रन्ध्रोंके द्वारा हृदयमें प्रवेशकर उनके समस्त अङ्गोंके सन्तापको हर लेते हैं—लोगोंसे आपके गुणोंके विषयमें इस प्रकार सुना है। जो दृष्टि-शक्तिसे सम्पन्न हैं, उनके नेत्रोंको आप अखिलार्थ अर्थात् सम्पूर्ण वस्तुओंकी प्राप्ति करानेवाले हैं। हे प्रियतम! नीलमणि, नीलपद्म, कनक-कुङ्कुम, पद्मराग, चन्द्रकान्त एवं चन्द्रमादिके महामाधुर्यसे भी अधिक

आपका सौन्दर्य है—यह भी मैंने सुना है। अतः मेरा हृदय लोकलज्जाका त्याग करके आपके प्रति आसक्त हो गया है ॥ ३७ ॥

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या,
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥ ३८ ॥

हे मुकुन्द! हे नरोत्तम! आप इस प्रकारके आचरणको धृष्टता मत समझ लेना, क्योंकि हे पुरुषभूषण! सद्वंशमें उत्पन्न, उदारतादि महान् गुणोंसे युक्त और धैर्यसे सम्पन्न ऐसी कौन कन्या है, जो कुल, शील, सौन्दर्य, विद्या, वयस, ऐश्वर्य एवं पराक्रममें निरुपम, असमोर्ध्व, अतुलनीय, मनुष्योंके हृदयोंके अभिराम-स्वरूप आपको विवाहके योग्य समय आनेपर अपने पतिके रूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषा नहीं करेगी? ॥ ३८ ॥

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-
मात्मार्षितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्-
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥

इसीलिए हे विभो! हे कमललोचन! मैंने आपका पतिरूपमें वरण कर लिया है और आपको आत्मसमर्पण कर दिया है। आप अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदयकी बात आपसे छिपी नहीं हैं। हे प्राणवल्लभ! आप यहाँ पधारें और मुझे पत्नीके रूपमें स्वीकार करें। अब मैं आपकी हो चुकी हूँ। हे श्रीकृष्ण! सियार जैसे सिंहका आहार्य ग्रहण करनेका प्रयास करे, वैसे ही आपके द्वारा भोग्या मुझे शिशुपाल शीघ्रतापूर्वक आकर कहीं स्पर्श न कर ले ॥ ३९ ॥

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्व्वच्चनादिभिरलं भगवान् परेशः ।

आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥

मैंने यदि पूर्व जन्मोंमें कुआँ खुदवाना इत्यादि पूर्वकर्म, अग्निहोत्रादि इष्टकर्म, स्वर्णादि दान, तीर्थ-पर्यटनादि नियम, व्रत एवं देव, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी अर्चना-पूजा द्वारा भगवान् श्रीहरिकी आराधना की हो, तो हे श्रीकृष्ण! आप मुझपर प्रसन्न हों और यहाँ आकर मेरा पाणिग्रहण करें। हे गदाग्रज! दमघोषका पुत्र शिशुपालादि अन्य कोई पुरुष मेरा स्पर्श न कर पाये ॥ ४० ॥

श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥

हे अजित्! आगामी दिवस मेरे विवाहोत्सवके लिए निश्चित किया गया है। सर्वप्रथम आप गोपनीयरूपसे यहाँ विदर्भ आइये। इसके बाद सेनापतियोंसे घिरे शिशुपाल (चैद्य) एवं जरासन्धको (मगधेन्द्रको) और उनकी सेनाको पराजित करके बलपूर्वक राक्षस-विधिके अनुसार वीरतारूप शुल्क दान देकर मेरा हरण करके पाणिग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूं-
त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम्।
पूर्वैद्युरस्ति महती कुलदेवयात्रा
यस्यां बहिर्नववधूर्गिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥

आप यदि ऐसा सोचें कि तुम तो अन्तःपुरमें रहोगी, फिर तुम्हारे सम्बन्धियोंका वध किये बिना मैं किस प्रकारसे तुम्हें प्राप्त करूँगा, तो मैं इसका भी उपाय बतला रही हूँ—विवाहके एक दिन पहले महासमारोहके साथ नगरसे बाहर कुलदेवीके स्थानपर जानेकी हमारे कुलकी प्रथा है। नववधुएँ इस कुलदेवता-अर्चनके

उपलक्षमें शोभायात्राके साथ पुरीसे बाहर अम्बिका-मन्दिरमें गिरिजादेवीका दर्शन करने जाती हैं ॥ ४२ ॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥

हे कमलनयन! उमापति शङ्करजीके समान साधु-महात्मा भी अपने तमोगुणके विनाशके लिए आपके पादपद्मोंके प्रक्षालन वारि (धौत जल) में स्नानकी प्रार्थना करते हैं, यदि मैं आपके उस कृपा-प्रसादको प्राप्त न कर सकी, तो व्रत-उपवासादिके द्वारा कृश-कृशायित हो-होकर अर्थात् शरीरको सुखाकर अपने प्राणोंका त्याग कर दूँगी। हे प्राणनाथ! आपके अनुग्रहकी प्राप्तिके लिए मुझे भले ही सैकड़ों जन्म ही क्यों न लेने पड़ें, मुझे कभी-न-कभी वह कृपा-प्रसाद अवश्य ही प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच—

इत्येते गुह्यसन्देशा यदुदेव मयाऽहताः ।
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीरुक्मिण्युद्धाहेत्र
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

ब्राह्मण देवताने कहा—हे यदुवंश शिरोमणे! मैं रुक्मिणीका यह गुप्त संवाद लेकर आया था। अब आप इस स्थितिपर स्वयं ही सोच-विचार कीजिये और यदुवंशियोंसे बिना मन्त्रणा किये जो आपको करना है, आप उसे तुरन्त ही कीजिये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बावनवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका विदर्भ नगरमें जाना तथा रुक्मिणी-हरण

श्रीशुक उवाच—

वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः।

प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत्॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! विदर्भ राजकुमारी रुक्मिणीके गुप्त सन्देशको सुननेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अपने हाथोंसे ब्राह्मणका हाथ पकड़ा और हँसते हुए कहने लगे॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच—

तथाहमपि तच्चित्तो निद्राञ्च न लभे निशि।

वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे द्विजवर! जैसे विदर्भ राजकुमारीका मन मुझमें लग गया है, मेरा चित्त भी उनकी ओर आसक्त हो गया है। रात्रिमें नींद भी नहीं आती है। रुक्मीके विद्वेषके कारण इस विवाहमें मेरे लिए जो रोक लगायी गयी है, वह मैं जानता हूँ॥ २ ॥

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान् मृधे।

मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥

परन्तु हे ब्राह्मणदेवता! मनुष्य जिस प्रकार लकड़ियोंको परस्पर रगड़कर उसमेंसे अग्नि निकाल ही लेते हैं, उसी प्रकार मैं भी संग्राममें अधम राजाओंको रौंद करके मुझमें समर्पित अनवद्य सुन्दरी रुक्मिणीको ले आऊँगा (स्वयं रुक्मिणीका तेज ही अपने तेजसे उन दुष्ट राजाओंको जला डालेगा, मैं तो निमित्त मात्र हूँ)॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच—

उद्वाहर्क्षञ्च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः।

रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम्॥ ४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! मधुसूदन श्रीकृष्णने 'परसों रात्रिमें ही रुक्मिणीका विवाह-नक्षत्र है'—यह जानकर अपने सारथिको आदेश दिया—“हे दारुक! शीघ्र ही मेरा रथ तैयार करो ॥” ४ ॥

स चाश्वैः शैव्यसुग्रीव-मेघपुष्पबलाहकैः ।

युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥

दारुक शैव्य (शुकपक्षीके पङ्कके समान हरे वर्ण), सुग्रीव (स्वर्ण-पिङ्गल वर्ण), मेघपुष्प (मेघके समान वर्ण) और बलाहक (पाण्डुर अर्थात् पीत वर्ण) नामके चार घोड़ोंको रथमें जोतकर उस रथको ले आया और श्रीकृष्णके सम्मुख हाथ जोड़कर उपस्थित हो गया ॥ ५ ॥

आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ।

आनर्त्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्भयैः ॥ ६ ॥

शूरनन्दन श्रीकृष्ण उस रथपर सवार हो गये और ब्राह्मण देवताको भी उसपर चढ़ा लिया। द्रुतगामी घोड़ोंके द्वारा वे एक ही रातमें आनर्त्त देशसे विदर्भ देशमें (कुण्डिन नगरमें) जा पहुँचे ॥ ६ ॥

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशानुगः ।

शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन् कर्म्मण्यकारयत् ॥ ७ ॥

इधर विदर्भराज भीष्मक अपने बड़े पुत्रके स्नेहके वशीभूत होकर अपनी पुत्रीका विवाह शिशुपालसे करानेके लिए तैयार हो गये। वे विवाहोत्सवके लिए आनुषङ्गिक पितृ-देवार्चनादि कृत्योंमें जुट गये ॥ ७ ॥

पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ।

चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलङ्कृतम् ॥ ८ ॥

स्रगन्धमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः ।

जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥

कुण्डिन नगरके मार्गों, गलियों एवं चौराहोंको झाड़-बुहारकर सुमार्जित करवा दिया गया। उनपर जलसे छिड़काव भी करवाया गया। सम्पूर्ण नगरको विचित्र रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजा पताकाओंसे विभूषित करवा दिया, यहाँ-वहाँ विजय-तोरण लगवा दिये। स्त्री-पुरुषोंने सुगन्धित फूलोंके हार, मालाएँ, रत्नजड़ित आभूषण धारण कर लिये, इत्र आदि सुगन्धित लेपोंसे अपनी देहोंको अनुरञ्जित कर लिया और निर्मल वस्त्र पहन लिये। उनके भव्य घरोंसे अगर-धूपकी मनोरम सुगन्ध निकल रही थी ॥ ८-९ ॥

पितृन् देवान् समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्तृप।

भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ १० ॥

हे राजन्! महाराज भीष्मकने पितरों, देवताओं एवं ब्राह्मणोंका यथाविधि अर्चन करके उन्हें भोजन कराया। अन्यान्य लोगोंके लिए भी इसी प्रकारकी व्यवस्था की गयी। तत्पश्चात् पुत्रीके लिए ब्राह्मणोंके द्वारा परम्परागत मन्त्रोंसे स्वस्ति वाचन करवाया ॥ १० ॥

सुस्नातां सुदर्ती कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम्।

आहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥

सुरम्य दन्तावलीसे सुशोभित परम सुन्दरी राजकुमारी रुक्मिणीको सम्यक् रूपेण स्नान कराया गया, माङ्गलिक (रक्षा) सूत्र एवं कङ्कण पहनाये गये, कोरे वस्त्रोंका जोड़ा पहनाया गया, कोहबर बनाया गया, और उत्तम-उत्तम आभूषणोंसे उन्हें अलंकृत कर दिया गया ॥ ११ ॥

चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः।

पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥ १२ ॥

उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् एवं यजुर्वेदोक्त मन्त्रोंसे वधूकी रक्षाके लिए एवं अथर्ववेदज्ञ पुरोहितोंने प्रतिकूल ग्रहोंकी शान्तिके लिए हवन किये ॥ १२ ॥

हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान्।

प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥

राजा भीष्मक विधि-विधानके ज्ञाता और कुल-परम्पराओंके (रीति-रिवाजोंके) ज्ञानमें बड़े जानकार थे। उन्होंने ब्राह्मणोंको स्वर्ण, चाँदी, वस्त्र, गुड़से मिले तिल एवं गायेँ प्रदान की॥ १३॥

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै।

कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम्॥ १४॥

इसी प्रकार चेदिराज दमघोषने भी अपने पुत्र शिशुपालके लिए मन्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणोंके द्वारा शुभकर्मोचित सभी मङ्गल अनुष्ठान सम्पन्न करवाये॥ १४॥

मदच्युद्धिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हममालिभिः।

पत्यश्वसङ्कुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ॥ १५॥

इसके बाद राजा दमघोष मद-वर्षण करनेवाले हाथियों, सुवर्ण मालाओंसे युक्त रथों, पैदल सैनिकों तथा घुड़सवारोंकी चतुरङ्गिणी सेना लेकर विदर्भ राज्यकी राजधानी कुण्डिनपुर जा पहुँचा॥ १५॥

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च।

निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने॥ १६॥

विदर्भराज भीष्मक उस समय दमघोषकी अगवानीके लिए आगे बढ़े। उन्होंने उसका यथाविधि स्वागत-सत्कार एवं प्रथाके अनुसार अर्चन-पूजन किया। इसके बाद अतिथियोंके लिए जिस जनवासेका निर्माण करवाया गया था, वहाँ ले जाकर उन्हें आदरपूर्वक ठहरा दिया॥ १६॥

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्रो विदूरथः।

आजगमुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः॥ १७॥

उस समय विदर्भ नगरमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ, पौण्ड्रक आदि शिशुपालके पक्षके अन्यान्य सहस्रों राजा भी विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए आये थे॥ १७॥

कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम्।

यद्यागत्य हरेत् कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिवृतः॥ १८॥

योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः।

आजगमुर्भूभुजः सर्व्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥

परीक्षित्! इन सभी राजाओंके आगमनका कारण यही था कि नववधू शिशुपालको ही मिले। यदि श्रीकृष्ण-बलराम यदुवंशियोंके साथ आकर कन्याको हरण करनेका प्रयास करते हैं, तो हम सब मिलकर उनके साथ युद्ध करेंगे। हे राजन्! इस प्रकारका सङ्कल्प करके बलरामजी और श्रीकृष्णके विरोधी सारे राजा अपनी सेनाओं एवं वाहनोंके साथ युद्धके लिए सुसज्जित होकर आये थे ॥ १८-१९ ॥

श्रुत्वैतद्भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम्।

कृष्णञ्चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥ २० ॥

बलेन महता सार्द्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः।

त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥

जब बलदेवने विपक्षी राजाओंके इस प्रकारके आयोजन एवं नववधूका हरण करनेके लिए श्रीकृष्णके अकेले ही कुण्डिननगर-प्रस्थानके विषयमें सुना, तो उन्हें शङ्का हो गयी कि वहाँ कहीं कलह-विवाद न हो जाय। अपने छोटे भाईके प्रति स्नेहसे उनका हृदय विगलित हो गया। उन्होंने हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी भारी चतुरङ्गिणी सेनाको एकत्र किया एवं कुण्डिनपुर आ पहुँचे। (नीति-शास्त्रमें वर्णन है कि बन्धुओंका हृदय सर्वदा ही अनिष्टकी आशङ्कासे युक्त होता है। यहाँ भी प्रबल स्नेहवश बलरामजीकी सर्वज्ञता-शक्तिका आवरण हुआ है) ॥ २०-२१ ॥

भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः।

प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत् तदा ॥ २२ ॥

इधर वरारोहा (सुन्दर नितम्बोंवाली) परम सुन्दरी रुक्मिणी श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने देखा श्रीकृष्णकी तो कौन कहे, ब्राह्मण देवता भी अभी तक लौटकर

नहीं आये। यद्यपि सूर्यका उदय नहीं हुआ था, तब भी वे चिन्ता करने लगीं ॥ २२ ॥

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः।

नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम्।

सोऽपि नावर्त्ततेऽद्यापि मत्सन्देशहरो द्विजः ॥ २३ ॥

अहो! रात बीत जानेपर मुझ अभागिनीका विवाह काल आ जायेगा। कमललोचन श्रीकृष्ण अभी तक नहीं आये, इसका कारण क्या हो सकता है, कुछ समझमें नहीं आ रहा है। मेरे सन्देशवाहक ब्राह्मण देवता भी अब तक लौटे नहीं ॥ २३ ॥

अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम्।

मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २४ ॥

श्रीकृष्ण अनिन्द्य-कान्ति हैं, निर्दोष हैं। वे सम्भवतः यहाँ आनेके लिए तत्पर हुए होंगे, परन्तु उन्होंने मुझमें कुछ-न-कुछ धृष्टता आदि दोष देखे होंगे, तभी तो वे मुझसे विवाह करना नहीं चाहते। इसीलिए वे यहाँ नहीं पधार रहे हैं। ब्राह्मणको भी अपने साथ लानेके लिए यहाँ पहले नहीं भेजा है ॥ २४ ॥

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः।

देवी वा विमुखी गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५ ॥

हाय! मैं बड़ी दुर्भागा हूँ। विधाता (स्रष्टा) मेरे अनुकूल नहीं हैं और न ही भगवान् शङ्कर मेरे अनुकूल हैं। हो सकता है, महेश्वरी दक्षसुता पार्वती गौरीदेवी भी मुझसे प्रसन्न न हों। उनकी अर्चनामें मुझसे कोई अपराध हो गया होगा ॥ २५ ॥

एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृत्मानसा।

न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥

परीक्षित्! तरुण बाला रुक्मिणीका मन तो भगवान् श्रीगोविन्दने चुरा लिया था। वे इस प्रकारसे मन्थन कर ही रही थीं कि उनके मनमें विचार आया कि श्रीकृष्णके आगमनका समय अभी बीता

तो नहीं है। ऐसा सोचकर वे कुछ आश्वस्त हो गयीं और आँसुओंसे भरी अपनी आँखोंको बन्द कर लिया ॥ २६ ॥

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप।

वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥

हे राजन्! रुक्मिणी इस प्रकार श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षामें विकल-सी बैठी हुई थीं कि किसी प्रिय संवादको सूचित करते हुए उनकी बायीं जाँघ, बाहु एवं नेत्र स्पन्दित होने (फड़कने) लगे ॥ २७ ॥

अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः।

अन्तःपुरचरिं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥

इतनेमें ही श्रीकृष्णसे आज्ञा-प्राप्त करके वे ही ब्राह्मणदेवता अन्तःपुरमें आ पहुँचे, जहाँ रुक्मिणी देवी विराजमान थीं (श्रीकृष्ण नगरके बाहर बगीचेमें आ चुके थे और उन्होंने ब्राह्मणको आदेश दिया था कि वह जाकर उनके आगमनका समाचार दे) ध्यानमें श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त करके रुक्मिणी देवी आनन्दसे दीप्त हो रही थीं ॥ २८ ॥

सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती।

आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥

ब्राह्मणदेवता सुनन्दका मुख प्रफुल्लित था, वे शान्त गतिसे चले आ रहे थे। उन्हें देखते ही दूतके लक्षणोंको जाननेमें दक्ष-रुक्मिणीके मुख-कमलपर विशुद्ध मुसकान छा गयी एवं मनकी व्यग्रता शान्त हो गयी ॥ २९ ॥

तस्या आवेदयत् प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम्।

उक्तञ्च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥

तब ब्राह्मणदेवताने उन्हें निवेदन किया कि यदुनन्दन श्रीकृष्णका यहाँ आगमन हो चुका है। ब्राह्मणवरने श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। श्रीकृष्णने उनके साथ विवाह करनेकी जो सत्य-प्रतिज्ञा

की है—उसके सम्बन्धमें भी ब्राह्मणने रुक्मिणीको सूचित कर दिया ॥ ३० ॥

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भीं हृष्टमानसा।

न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यत्रनाम सा ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्णके पधारनेकी बात सुनते ही रुक्मिणी परम प्रसन्न हो गयीं। ब्राह्मणको देनेके लिए किसी प्रिय वस्तुका निर्णय नहीं कर पा रही थीं, इसलिए केवल प्रणाम ही किया। रुक्मिणीको श्रीकृष्णके अतिरिक्त और क्या प्रिय हो सकता था? (इस समयके बादसे ही विप्रका गृह सार्वकालिक सम्पत्तिसे पूर्ण हो गया था) ॥ ३१ ॥

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्धाहप्रेक्षणोत्सुकौ।

अभ्ययात् तूर्य्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥

महाराज भीष्मकने सुना कि उनकी कन्याके परिणयोत्सवको देखनेकी इच्छासे श्रीकृष्ण एवं बलराम आये हैं, तो वे तुरही, भेरी आदि बाजे बजवाते हुए और विविध प्रकारकी पूजाकी सामग्री लेकर उनकी अगवानीके लिए चल दिये ॥ ३२ ॥

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः।

उपायनान्यभीष्टानि विधिवत् समपूजयत् ॥ ३३ ॥

राजा भीष्मकने मधुपर्क, निर्मल वस्त्र एवं उत्तम उपहार प्रदान करके उन दोनोंका विधि-विधानपूर्वक अर्चन किया ॥ ३३ ॥

तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः।

ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥

महाराज भीष्मक बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको उनकी सेना तथा सेवकोंके साथ अति मनोरम निवासस्थानमें ठहराया। इस प्रकार राजा भीष्मकने उनका यथाविधि आतिथ्य सत्कार किया ॥ ३४ ॥

एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः।

यथाबलं यथावित्तं सर्व्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार वहाँ आये हुए समस्त राजाओंके पराक्रम, वयस, बल एवं धनके अनुसार राजा भीष्मकने प्रत्येकको अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करके उनका भी यथोचित स्वागत-सत्कार किया ॥ ३५ ॥

कृष्णमागतमाकर्ण्य

विदर्भपुरवासिनः।

आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥ ३६ ॥

विदर्भपुरवासियोंने जब श्रीकृष्णके आगमनका समाचार सुना, तो वे उनके निवासस्थानपर आये और अतिशय अनुरागके साथ अपनी आँखोंकी अञ्जुलिमें भर-भरकर उनके वदन-कमलके मकरन्दका आस्वादन करने लगे। श्रीकृष्णमें माधुर्यका इतना प्राचुर्य है कि बहुसंख्यक व्यक्तियों द्वारा इसका पान किये जानेपर भी वह कभी समाप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा।

असावप्यनवद्यात्मा भैष्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥

राजन्! उस समय पुरवासी परस्पर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे कि रुक्मिणी इन्हीं श्रीकृष्णकी अर्द्धाङ्गिणी होनेके योग्य है, कोई और इसके लिए समर्थ नहीं, हाँ, परम सुन्दर एवं अनवद्य श्रीकृष्ण ही रुक्मिणीके सुयोग्य पति हो सकते हैं, दूसरा कोई नहीं ॥ ३७ ॥

किञ्चित् सुचरितं यत्रस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत्।

अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥

यदि हमने अपने पूर्व जन्ममें या इस जन्ममें अल्प भी पुण्य किया है, तो त्रिलोक-विधाता अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण हमपर प्रसन्न हों, और ऐसी कृपा करें कि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही विदर्भराजकुमारीका पाणिग्रहण करें ॥ ३८ ॥

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः।

कन्या चान्तःपुरात् प्रागाद्धटैर्गुप्ताम्बिकालयम् ॥ ३९ ॥

परीक्षित्! जिस समय उमड़ते प्रेमकी डोरीसे बँधे पुरवासी इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि अन्तःपुरसे निकलकर रुक्मिणी सैन्य-संरक्षणमें अम्बिका-मन्दिरकी ओर चलीं ॥ ३९ ॥

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम्।

सा चानुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४० ॥

यतवाङ्मातृभिः सार्द्धं सखीभिः परिवारिता।

गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः।

मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१ ॥

रुक्मिणी अम्बिकादेवीके पाद-पल्लवोंके दर्शनोंकी कामनासे पैदल ही पुरीसे बाहर आयीं। मौन भाव धारण किये हुए वे श्रीकृष्णके पादपद्मोंका निरन्तर चिन्तन करते हुए चल रही थीं। माताओं और सखियोंने उन्हें चारों ओरसे संभाल रखा था। रक्षा करनेवाले वीर राज सैनिकोंने कवच पहन रखे थे, अस्त्रोंको ऊपर उठाये हुए वे किसी भी अप्रिय घटनाके लिए प्रस्तुत थे। उस समय मृदङ्ग, शङ्ख, पणव, तुरही, भेरी आदि बाजे बज रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः।

स्रगन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलङ्कृताः ॥ ४२ ॥

गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः।

परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥ ४३ ॥

उत्तम वाराङ्गनाएँ विविध उपहार एवं भेंटें हाथोंमें लेकर एवं ब्राह्मण-पत्नियाँ माला, चन्दन, वस्त्र एवं अलङ्कारोंसे विभूषित होकर साथ-साथ चल रही थीं। गायक गीत गा रहे थे, स्तुति-पाठक स्तव-गान कर रहे थे। वादक वाद्य बजा रहे थे, सूत, मागध एवं बन्दीजन अपने-अपने कर्तव्योंका अनुष्ठान करते हुए नववधूके चारों ओर विरद बखानते जा रहे थे ॥ ४२-४३ ॥

आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ।

उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकान्तिकम् ॥ ४४ ॥

रुक्मिणीने देवी अम्बिकाके मन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने कमलके समान सुकोमल अपने हाथ-पैर धोये, शुद्धिके लिए आचमन किया। शास्त्रीय विधिके अनुसार शुद्ध एवं शान्त भावसे युक्त होकर वे मणिमण्डपमें देवीके निकट पहुँचीं ॥ ४४ ॥

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ।

भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥ ४५ ॥

मन्दिरमें साथ आयी हुई ब्राह्मण-पत्नियाँ विधि-विधानमें निपुण थीं। उन्होंने रुक्मिणीसे भगवान् शङ्करको एवं उनकी अर्द्धाङ्गिनी अम्बिकाको प्रणाम करवाया ॥ ४५ ॥

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।

भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥

रुक्मिणीने भगवतीसे प्रार्थना की—हे अम्बिके! आप मङ्गलदायिनी हैं। मैं आपको और आपकी गोदमें बैठे हुए आपके प्रिय पुत्र गणेशजीको बार-बार प्रणाम करती हूँ। आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरे सारे विघ्नोंका खण्डन हो एवं भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों ॥ ४६ ॥

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रङ्माल्यभूषणैः ।

नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥ ४७ ॥

विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ।

लवणापूपताम्बूल-कण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥

अनन्तर रुक्मिणीने जल, गन्ध, अक्षत, तण्डुल, धूप, वस्त्र, रत्नमाला, पुष्पमाला, अलङ्कार, विविध प्रकारके नैवेद्य, प्रदीपावली एवं नानाविध पूजोपकरणों द्वारा स्वयं ही पृथक् रूपसे अम्बिकादेवीकी पूजा की। इसके बाद उन सधवा ब्राह्मण-पत्नियोंने उस समस्त पूजाकी सामग्री द्वारा एवं लवण-पदार्थ (नमकीन), यव-पिष्टक

(पूए), ताम्बूल, कण्ठसूत्र, अनेक प्रकारके फल तथा इक्षु द्वारा देवीकी पूजा की ॥ ४७-४८ ॥

तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ।

ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषाञ्च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥

तब ब्राह्मण-पत्नियोंने रुक्मिणीको भगवतीका निर्माल्य दिया एवं आशीर्वाद प्रदान किये। रुक्मिणीने भी देवीको प्रणाम किया और प्रसादी मालाको ग्रहण किया ॥ ४९ ॥

मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् ।

प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥

पूजाकी विधि पूर्ण हो जानेपर रुक्मिणीने मौनव्रत तोड़ दिया। रत्नजड़ित अङ्गूठीसे विभूषित करकमलसे एक सखीका हाथ पकड़कर वे गिरिजा मन्दिरसे बाहर निकलीं ॥ ५० ॥

तां देवमायामिव धीरमोहिनीं,
सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ।
श्यामां नितम्बार्पितरन्तमेखलां,
व्यञ्जस्तर्नीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥ ५१ ॥

शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युति-
शोणायमान-द्विजकुन्दकुङ्मलाम् ।
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं,
सिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥

विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता,
यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ।
यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहास-
व्रीडावलोकहतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ ५३ ॥

पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ।
सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ
प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ ५४ ॥

उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः
 प्राप्तान् हियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतञ्च।
 तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं
 जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ॥ ५५ ॥

परीक्षित्! उस समय वहाँ उपस्थित बड़े-बड़े धीर-वीर व्यक्तियोंको रुक्मिणी विष्णु-मायाके समान दिखायी पड़ीं, जिससे उनके चित्तमें मोह उत्पन्न हो गया। रुक्मिणीका कटिभाग बहुत ही सुन्दर और कृश था, मुखपर कुण्डलोंकी शोभा झिलमिला रही थी, नितम्बोंपर रत्नजड़ित मेखला बँधी थी, वे किशोर और तरुण अवस्थाके बीचकी सन्धिमें स्थित थीं, स्तन कुछ-कुछ प्रकाशमान थे, मुखपर लटकती हुई अलकावलियोंके कारण नेत्र कुछ शङ्कित-से होकर चञ्चल हो रहे थे, होठोंपर विशुद्ध, मनोहर एवं मन्द-मधुर मुसकान थी, कुन्द कुसुमकी कलिकाके समान शुभ्र दाँतोंकी उज्ज्वल पाँत थी, बिम्बफलके समान अधरोंपर लालिमा छिटक रही थी, उनकी गति-भङ्गिमा कलहंस (राजहंस) के समान थी। उनके पाँवोंके पायजेब दीप्त हो रहे थे और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे घुँघरु रुनझुन-रुनझुन बज रहे थे। परीक्षित्! वहाँ समागत यशस्वी पुरुष भी उनके चरणकमलोंकी गति-भङ्गिमा एवं शब्दायमान नूपुरोंकी छविका अवलोकन करके ऐसे मोहित हो गये मानो कामदेवने अपने बाणोंसे उन्हें जर्जरित कर दिया हो। वे उत्सव-यात्राके छलसे मन्द गतिसे पैदल ही चलती हुई श्रीकृष्णपर अपना अपार सौन्दर्य निछावर कर रही थीं। उनके उदार हास्य एवं लजीली चितवनको देखकर हाथियों, रथों और अश्वोंपर विराजित राजाओंका हृदय अपहृत-सा हो गया। वे अस्त्रोंको छोड़-छाड़कर मुग्ध-से होकर भूमिपर गिर गये। रुक्मिणी इस प्रकार चञ्चल कमल-कोशके समान सुकुमार चरणोंको मद्धिम गतिसे रखती हुई श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा करती हुई चल रही थीं। रुक्मिणीने बाएँ करकमलकी अङ्गुलियोंसे अपने मुखपर लहराती लटकनोंको हटाया और लजीली चितवनसे

राजाओंको देखने लगीं। इतनेमें ही उन्हें श्रीकृष्ण दिखायी पड़े। उस समय रुक्मिणी रथपर चढ़नेके लिए प्रस्तुत हो रही थीं कि श्रीकृष्णने शत्रुओंके देखते-ही-देखते उनके घेरेमेंसे रुक्मिणीको उठा लिया ॥ ५१-५५ ॥

रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं
राजन्यचक्रं परिभूय माधवः।
ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः
शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥

रुक्मिणीका हरण करनेके पश्चात् भगवान् माधवने उन्हें अपने उस रथपर बिठाया, जिसकी ध्वजापर गरुडका चिह्न अङ्कित था। तत्पश्चात् राजाओंको पराजित करते हुए श्रीकृष्ण बलरामादि प्रमुख यदुओंके साथ धीरे-धीरे वहाँ-से उस प्रकार चल पड़े, जिस प्रकार सिंह सियारोंके बीचमेंसे अपना भाग ले जाये ॥ ५६ ॥

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं
परे जरासन्धमुखा न सेहिरे।
अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्वनां
गोपैर्हतं केशरिणां मृगैरिव ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्रभाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीरुक्मिणीहरणं नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

जरासन्ध और उसके वशवर्ती अभिमानी राजाओंको अपना यह भारी अपमान और कीर्तिका क्षय सहन नहीं हुआ। क्रोधसे अभिभूत हो वे कहने लगे—ओह! हमें धिक्कार है। आज इस ग्वारियाने हमारे-जैसे धनुषधारियोंके यशका उसी प्रकार हरण कर लिया, जिस प्रकार हिरन सिंहके भागको लेकर चला जाय ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तिरपनवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शिशुपालपक्षीय राजाओं एवं रुक्मीकी हार तथा
श्रीकृष्ण-रुक्मिणीका विवाह

श्रीशुक उवाच—

इति सर्व्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ।

स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकाम्मुकाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित् ! वहाँ आये सभी राजागण क्रोधसे उद्दीप्त हो उठे। उन्होंने कवच पहन लिये और धनुष धारण कर लिये। वे अपनी-अपनी सेनाको साथ लेकर घोड़े आदि वाहनोंपर सवार हो गये और श्रीकृष्णके पीछे-पीछे दौड़ पड़े ॥ १ ॥

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ।

तस्थुस्तत्सम्मुखा राजन् विस्फूर्ज्य स्वधनूषि ते ॥ २ ॥

हे राजन् ! बलदेवजीके साथ समागत यादव-सेनाके सेनापतियोंने शत्रुओंको आते हुए देखा, तो उन्होंने भी अपने-अपने धनुषोंपर टङ्कार की। वे शत्रुओंकी ओर मुड़े और उनके समक्ष डट गये ॥ २ ॥

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थेऽस्त्रकोविदाः ।

मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥

जरासन्ध आदि वीर अस्त्र-विद्यामें अति पारङ्गत थे। इन वीरोंमें कुछ घोड़ोंपर, कुछ हाथियोंपर एवं कुछ रथोंपर सवार थे। उन्होंने बाणोंकी ऐसी वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे बादलोंके दल पर्वतोंपर मूसलाधार जल बरसा रहे हों ॥ ३ ॥

पत्युर्बलं शरासारैश्छत्रं वीक्ष्य सुमध्यमा ।

सव्रीडमैक्षत् तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥

सुमध्यमा, परम सुन्दरी रुक्मिणीने जब अपने पति श्रीकृष्णकी सेनाको बाणोंकी वर्षासे आच्छादित देखा, तो वे लज्जित हो गयीं और भयविह्वल नेत्रोंसे श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखने लगीं ॥ ४ ॥

प्रहस्य भगवानाह मास्म भैर्वामलोचने ।

विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत् तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने तब हँसते हुए उनसे कहा—हे वामलोचने ! तुम डरो मत ! तुम्हारी सेना शीघ्र ही शत्रुओंकी सेनाका संहार कर डालेगी । परम प्रणयके कारण श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे 'तुम्हारी सेना' कहा है ॥ ५ ॥

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसङ्कर्षणादयः ।

अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान् रथान् ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी सेनामें गद, सङ्कर्षण आदि वीर शत्रुओंके इस पराक्रमको और अधिक सहन नहीं कर सके । उन्होंने नाराच नामक (लोहेके बने) तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंके हाथी, घोड़े एवं रथोंको धराशायी कर दिया ॥ ६ ॥

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ।

सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥

रथों, घोड़ों एवं हाथियोंपर सवार योद्धाओंके कुण्डल, किरीट एवं पगड़ियोंसे युक्त असंख्य मस्तक यदुवीरोंके अस्त्रोंके प्रहारोंसे छिन्न-भिन्न होकर रणभूमिमें गिरने लगे ॥ ७ ॥

हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः ।

अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥

चारों ओर तलवार, गदा एवं धनुषोंसे युक्त हाथ, करभा (अङ्गुलियोंसे विहीन हाथ), जाँघें और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे । इसी प्रकार घोड़े, खच्चर, हाथी, गदहे एवं पैदल सेनानियोंके सिर भी कट-कट कर धराशायी होने लगे ॥ ८ ॥

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः ।

राजानो विमुखा जग्मूर्जरासन्धपुरःसराः ॥ ९ ॥

अन्तर्मे विजयकी महत्त्वाकाङ्क्षा लिये यादवोंने शत्रु-सेनाका बुरी तरहसे विध्वंस कर दिया। जरासन्ध आदि राजा युद्धक्षेत्रसे पलायन करने लगे ॥ ९ ॥

शिशुपालं समभ्येत्य हतदारमिवातुरम् ।

नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥

शिशुपाल तो ऐसा व्याकुल हो गया, मानो उसकी पत्नी छिन गयी हो। उसका सारा उत्साह जाता रहा, शरीर कान्तिहीन हो गया एवं मुख सूख गया। राजागण शिशुपालके पास आये और कहने लगे ॥ १० ॥

भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ।

न प्रियाप्रिययो राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥

जरासन्धने कहा—शिशुपालजी! आप तो एक श्रेष्ठ पुरुष हैं। आप इस विषयमें दुश्चिन्ता छोड़ दीजिये। हे राजन्! प्राणियोंमें सुख-दुःखके विषयमें कभी स्थिरता नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥

यथा दारुमयी योषित् नृत्यते कुहकेच्छया ।

एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥

कठपुतली जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक (बाजीगर) की इच्छाके अनुसार नृत्य करती है, उसी प्रकार ईश्वरकी इच्छाके अधीन जीव भी सुख-दुःखके सम्बन्धमें यथाशक्ति चेष्टा करते रहते हैं ॥ १२ ॥

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ।

त्रयोर्विंशतिभिः सैन्यैर्जिग्ये एकमहं परम् ॥ १३ ॥

देखिये, श्रीकृष्णने मुझे भी तेईस-तेईस अक्षौहणी सेनाओंके साथ सत्रह बार हरा दिया, अन्तर्में अठारहवीं बार मैंने एक बार उसपर विजय प्राप्त की ॥ १३ ॥

तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित्।

कालेन दैवयुक्तेन जानन् विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥

इस प्रकार जय एवं पराजय प्राप्त करता हुआ मैं यह जान गया हूँ कि यह जगत् अदृष्ट कालके द्वारा विप्लावित अर्थात् क्षोभित होता रहता है। अतः अब मुझे उसके लिए शोक अथवा हर्ष नहीं होता ॥ १४ ॥

अधुनापि वयं सर्व्वे वीरयूथपयूथपाः।

पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५ ॥

कहनेको तो हम वीर सेनापतियोंके अधिनायक हैं, लेकिन आज हमें श्रीकृष्ण द्वारा सुरक्षित अल्पसंख्यक सेनानियोंने हरा दिया है ॥ १५ ॥

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि।

तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥

वर्त्तमान काल शत्रुओंके अनुकूल है, इसलिए आज उन्हें विजय प्राप्त हुई है, जिस समय काल हमारे अनुकूल होगा, तब हम भी उनपर विजय प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात् सानुगः पुरम्।

हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥

इस प्रकार जरासन्धादि मित्रोंके द्वारा समझाये-बुझाये जानेपर शिशुपाल अपने अनुयायियोंके साथ अपने पुरकी ओर लौट गया। जो अन्यान्य राजा मरनेसे बचे थे, वे भी अपने-अपने स्थानोंकी ओर चल दिये ॥ १७ ॥

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन् स्वसुः।

पृष्ठतोऽन्वगमत् कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥

परीक्षित्! इधर रुक्मिणीका बड़ा भाई रुक्मी भगवान्से बड़ा द्वेष रखता था। श्रीकृष्णके द्वारा इस तरहसे अपनी बहिनको हर

लेना और राक्षस-रीतिसे विवाह कर लेना उसे सहन नहीं हुआ। वह अपनी सेनाको साथ लेकर श्रीकृष्णके पीछे दौड़ पड़ा ॥ १८ ॥

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम्।

प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दशितः सशरासनः ॥ १९ ॥

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम्।

कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥

असहिष्णु, अतिक्रोधी, कवचबद्ध, महाबाहु रुक्मीने धनुष धारण करके सभी राजाओंको सुनाते हुए यह प्रतिज्ञा की “इस समरमें यदि मैं कृष्णको मार न सका और बहिनका उद्धार न कर सका, तो कुण्डिन-नगरमें लौटकर नहीं आऊँगा—आप सबके सामने यह मैं सत्य कहता हूँ ॥” १९-२० ॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः।

चोदयाश्वान् यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥

यह कहकर रुक्मी रथपर सवार हो गया और सारथिसे कहा—कृष्ण जहाँ पर है, वहाँ मेरा रथ शीघ्रतापूर्वक हाँक ले चलो। घोड़ोंको भगाओ—आज उसके साथ मेरा युद्ध होना है ॥ २१ ॥

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः।

नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हता ॥ २२ ॥

वह ग्वाला बलपूर्वक मेरी बहनका अपहरण करके ले गया है। कैसी दुर्बुद्धि है इसकी! उसे अपनी वीरतापर बड़ा गर्व है। आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे इसके घमण्डको चकनाचूर कर डालूँगा ॥ २२ ॥

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित्।

रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥

रुक्मीकी बुद्धि विकृत हो गयी थी। वह श्रीकृष्णके बल, वीर्य और प्रभावको किञ्चित् भी जानता नहीं था। वह एक ही रथकी

सहायतासे श्रीगोविन्दके पास पहुँच गया और उन्हें ललकारते हुए कहने लगा—‘ठहर! ठहर!’॥ २३ ॥

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः।

आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन॥ २४ ॥

रुक्मीने बड़ी दृढ़ताके साथ धनुषकी डोरीको खींचा और तीन बाणोंसे श्रीकृष्णपर प्रहार करते हुए कहा—हे यदुकुलकलङ्क! क्षणभर मेरे सामने रुक तो सही॥ २४ ॥

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः।

हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः॥ २५ ॥

रे मूर्ख! कौआ जिस प्रकार यज्ञकी सामग्रीका (घी, काष्ठ आदिका) अपहरण कर लेता है, उसी प्रकार मेरी बहिनका हरण करके कहाँ भागा जा रहा है? अरे कपटी! तू बड़ा मायावी है। कपट-युद्ध बहुत अच्छी तरहसे जानता है। मैं तेरे घमण्डको अभी चूर-चूर किये देता हूँ॥ २५ ॥

यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम्।

स्मयन् कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम्॥ २६ ॥

“देख! जब तक मेरे बाणोंसे मरकर तू धराशायी हो जाय, उसके पहले ही इस बालिकाको छोड़कर भाग जा।” भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मीकी बात सुनकर मुसकराये और छह बाण चलाकर उसके धनुषको खण्ड-खण्ड कर डाला और उसपर बाणोंसे भी प्रहार किया॥ २६ ॥

अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः।

स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः॥ २७ ॥

इसके बाद आठ बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको, दो बाणोंसे सारथिको एवं तीन बाणोंसे रथकी ध्वजाको भी काट डाला। तब रुक्मीने दूसरा धनुष उठाया और पाँच बाणोंसे श्रीकृष्णपर प्रहार किया॥ २७ ॥

तैस्ताडितः शरीरैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः।

पुनरन्यदुपादत्त

तदप्यच्छिनदव्ययः ॥ २८ ॥

श्रीकृष्णने इन बाणोंसे विद्ध होनेपर उसके धनुषको ही काट डाला। तब रुक्मीने एक और धनुष उठाया, किन्तु अच्युत अविनाशी भगवान्ने उसे भी खण्ड-विखण्ड कर डाला ॥ २८ ॥

परिघं पट्टिशं शूलं चर्म्मासी शक्तितोमरौ।

यद्यदायुधमादत्त तत्सर्व्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥ २९ ॥

इस प्रकार रुक्मी परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति एवं तोमर आदि जो-जो अस्त्र-शस्त्र उठाता गया, उन सबको श्रीकृष्ण प्रहार करनेसे पहले ही काटते गये ॥ २९ ॥

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया।

कृष्णमभ्यद्रवत् क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् ॥ ३० ॥

अब रुक्मीने क्रोधसे भरकर हाथमें तलवार उठायी और रथसे पृथ्वीपर कूद पड़ा। पतङ्गा जिस प्रकार आगकी ओर दौड़ने लगता है, उसी प्रकार रुक्मी श्रीकृष्णका वध करनेके लिए उनकी ओर दौड़ा ॥ ३० ॥

तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः।

छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥ ३१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने जब रुक्मीको अपनी ओर दौड़ते देखा, तो अपने बाणोंके प्रहारसे उसकी ढाल-तलवारके तिल-तिल करके टुकड़े कर दिये। इसके बाद उसका वध करनेके लिए हाथमें तीक्ष्ण तलवार धारण कर ली ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला।

पतित्वा पादयोर्भर्त्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥

साध्वी रुक्मिणीने देखा कि श्रीकृष्ण उसके भाईका वध करनेके लिए उद्यत हो रहे हैं, तो वे भयसे विह्वल हो गयीं और

अपने पतिके चरणोंमें गिर पड़ीं। वे बड़े कातर स्वरसे श्रीकृष्णसे कहने लगीं (रुक्मिणीका भय स्नेह-परवश नहीं अपितु समस्त पुरनारियोंके लोकधर्मकी अपेक्षाके कारण है कि बहिनके सम्मुख ही भाईका वध हो रहा है—अतः सब लोग क्या कहेंगे। इन्हीं सब कारणोंसे रुक्मिणीकी रतिको 'समञ्जसा' कहा गया है) ॥ ३२ ॥

श्रीरुक्मिण्युवाच—

योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते।

हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥

श्रीरुक्मिणीने कहा—हे योगेश्वर! हे अप्रमेयात्मन् (आपके स्वरूप एवं शिक्षाओंको कोई नहीं जान सकता)! हे अविज्ञेय स्वरूप! हे देवाधिदेव! हे जगत्पते! हे मङ्गलमय! हे महाबाहो! मेरे भैयाका वध करना आपके लिए उचित नहीं है ॥ ३३ ॥

श्रीशुक उवाच—

तया परित्रासविकम्पिताङ्गया,

शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ।

कातर्यविस्त्रंसितहेममालया,

गृहीतपादः करुणो न्यवर्त्तत ॥ ३४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—उस समय भयके कारण रुक्मिणीका अङ्ग-अङ्ग काँपने लगा, शोकके कारण मुख सूख गया, कण्ठ रुँध गया। कातरता-वश उनके गलेसे सुवर्ण हार गिर पड़ा। इसी अवस्थामें वे श्रीकृष्णके चरणयुगलको पकड़े हुए रहीं। भगवान् करुणासे द्रवित हो गये और उन्होंने रुक्मीके वधका विचार छोड़ दिया ॥ ३४ ॥

चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं,

सश्मश्रु केशं प्रवपन् व्यरूपयत्।

तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं,

यदुप्रवीरा नलिर्ली यथा गजाः ॥ ३५ ॥

अहितकारी रुक्मी भगवान्‌के प्रतिकूल आचरण न करे अतः श्रीकृष्णने उसकी ग्रीवाको उसीके दुपट्टेसे बाँध दिया। इसके बाद बायें हाथसे उस दुपट्टेके दोनों छोरोंको पकड़कर दायें भागमें धारण की हुई अपनी तलवारसे उसकी पगड़ीको हटा दिया तथा उसी तलवारसे ही स्थान-स्थानपर थोड़े-थोड़े दाढ़ी-मूँछ एवं केशोंको रखकर हास्यास्पदरूपसे मुण्डन कर उसे विरूप कर दिया। इधर हाथी जिस प्रकार कमल वनको रौंद डालता है, उसी प्रकार यदुवीरोंने शत्रु सेनाको अद्भुत रीतिसे रौंद डाला ॥ ३५ ॥

कृष्णान्तिकमुपब्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम्।

तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणो विभुः।

विमुच्य बद्धं करुणो भगवान् कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

वहाँसे लौटकर सभी यदुवीर श्रीकृष्णके समीप आये और रुक्मीकी ऐसी दुर्दशा देखी। वह मृतप्राय हो रहा था। सर्वशक्तिमान् बलरामको उसकी इस शोचनीय अवस्थापर दया आ गयी और उन्होंने कृष्णके वाम हस्तसे दुपट्टेके दोनों सिरे गिराकर उसके सारे बन्धन खोल दिये। वे रुक्मीको सान्त्वना देते हुए और श्रीकृष्णको उलाहना देते हुए हँसते हुए-से कहने लगे ॥ ३६ ॥

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम्।

वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥ ३७ ॥

हे कृष्ण! तुमने इसके दाढ़ी-केशोंके जो मुण्डन आदि कार्य किये हैं, वे यादवोंके लिए निन्दित एवं असङ्गत हैं, क्योंकि सुहृदोंको इस तरहसे विरूप करना एक प्रकारसे उनके वधके ही समान है ॥ ३७ ॥

नैवास्मान् साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया।

सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ ३८ ॥

इसके बाद रुक्मिणीको सान्त्वना देनेके लिए कहा—हे साध्वी! तुम भाईकी विरूपताके विषयमें सोचकर हमलोगोंपर दोषारोपण

मत करना। इस लोकमें मनुष्य अपने कर्मोंका ही फल भोगा करते हैं। उनके सुख-दुःखको देनेवाला दूसरा कोई नहीं है॥ ३८ ॥

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति।

त्याज्यः स्वनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः॥ ३९ ॥

पुनः श्रीकृष्णसे कहने लगे—प्रिय कृष्ण! यदि अपना सगा-सम्बन्धी वध करने योग्य कोई गम्भीर अपराध करता है, तो भी वह अपने सगे-सम्बन्धियोंसे वधका दण्ड प्राप्त करनेके योग्य नहीं होता। उसे छोड़ ही देना चाहिये। श्यालक (साला) भग्न-पति (बहनोई) के द्वारा नहीं मारा जाना चाहिये। जो अपने अपराधके कारण स्वयं ही मृतप्राय है, पुनः उसे मारनेसे क्या प्रयोजन!॥ ३९ ॥

क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः।

भ्रातापि भ्रातरं हन्यादयेन घोरतरस्ततः॥ ४० ॥

इसके बाद रुक्मिणीको सम्बोधन करते हुए कहने लगे—विधाताके द्वारा सृष्ट क्षत्रिय अपने धर्मका पालन करते हैं। इस धर्मकी संहिताके अनुसार एक भाई दूसरे भाईके प्राणोंका वध कर सकता है। (प्रजापतिने क्षत्रियोंके लिए ऐसा ही धर्म बनाया है) अतः यह क्षात्र धर्म अतिशय दारुण है॥ ४० ॥

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः।

मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि॥ ४१ ॥

इसके बाद बलरामजी श्रीकृष्णको सम्बोधन करते हुए कहने लगे—“भाई कृष्ण! यह ठीक है कि राजत्व, भूमि, धन, स्त्री, मान, तेज अथवा किसी अन्य कारणसे ऐश्वर्य मदमें अन्धे हुए अभिमानी व्यक्तियोंका हृदय विक्षिप्त हो जाता है, तथापि हमारे लिए उनका तिरस्कार करना उचित नहीं है॥” ४१ ॥

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हदाम्।

यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत्॥ ४२ ॥

इसके बाद रुक्मिणीकी ओर उन्मुख होते हुए कहा—मङ्गलस्वरूप कृष्णकृत मुण्डनको अभद्र मानना तुम्हारी बुद्धिकी विषमता एवं अज्ञता ही है। देवी! तुम अपने उस भाईके हितकी कामना कर रही हो, जो सभी प्राणियोंका अनिष्ट चाहता है। इससे तो सुहृदोंका अमङ्गल हो सकता है न! ॥ ४२ ॥

आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया।

सुहृदुर्हृददासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥

यह मेरा मित्र है, यह शत्रु है, यह उदासीन है—देहको ही आत्मा माननेवालोंकी ऐसी धारणा होती है। यही उनका आत्म-मोह है। भगवान्की मायाके प्रभावसे उनका वास्तविक स्वरूप न जाननेके कारण वे ऐसी-ऐसी कल्पनाएँ कर लेते हैं ॥ ४३ ॥

एक एव परो ह्यात्मा सर्व्वेषामपि देहिनाम्।

नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४ ॥

समस्त जीवोंके अन्तर्यामी परमात्मा एक ही हैं, परन्तु एक ही चन्द्रमा जिस प्रकार जलाशयोंके भेदसे अनेक रूपोंमें दिखायी देता है, एक ही आकाश घटादि उपाधियोंके भेदसे अनेक रूपोंमें अनुभूत होता है और एक ही अग्नि विभिन्न लकड़ियोंमें पृथक्-पृथक् दिखायी देती है, उसी प्रकार परमात्मा भी मायाग्रस्त जीवोंकी दृष्टियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे परिदृश्यमान् होते हैं। मूर्ख शरीरोंके भेदसे आत्माका भी भेद मान लेते हैं ॥ ४४ ॥

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः।

आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥

यह शरीर आदि एवं अन्तसे युक्त है तथा पञ्चभूतों, इन्द्रियों एवं सत्त्वादि तीन गुणोंसे बना हुआ है। अविद्याके द्वारा मोहित जीव इस देहको मैं मानकर देहाभिमानी हो जाते हैं और सांसारिक प्रपञ्चोंमें (बन्धनोंमें) पड़े रहते हैं ॥ ४५ ॥

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति।

तद्धेतुत्वात् तत्प्रसिद्धेर्द्रुगरूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥

हे सती! सूर्यसे प्रकाशित चक्षु इन्द्रिय एवं उससे प्रकाशित श्यामादि रूपका जिस प्रकार सूर्यके साथ संयोग अथवा वियोग नहीं होता, उसी प्रकार जीवात्माका दूसरे जड़ पदार्थोंके साथ संयोग अथवा वियोग नहीं होता है। इसका कारण यह है कि समस्त भौतिक पदार्थोंकी सत्ता न होनेपर भी उनके प्रकाश एवं उद्गमका कारण जीवात्मा ही है। (इस श्लोकमें परमात्मा सूर्यस्थानीय, जीव नेत्र स्थानीय और देह रूपस्थानीय है। आकाशस्थ सूर्य अपने द्वारा प्रकाशित चक्षु एवं रूपसे लिप्त नहीं होते) ॥ ४६ ॥

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित्।

कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥

हे सती! जन्म लेना, रहना, बढ़ना, बदलना, क्षय होना और मरना—ये समस्त विकार शरीरके ही होते हैं, आत्मामें ऐसे विकार कभी जन्मते नहीं (भ्रमवश लोग इन्हें आत्माका मान लिया करते हैं) चन्द्रमाकी कलाओंके ही जन्मादि होते हैं, चन्द्रमाका कभी नहीं, ऐसे ही नवचान्द्रदिवसको (अमावस्याको) ही कलाओंका क्षय होता है, चन्द्रमाका क्षय (मृत्यु) नहीं। (साधारण जीव देहके विनाशको जीवका मरण मान लिया करते हैं) ॥ ४७ ॥

यथा शयान आत्मानं विषयान् फलमेव च।

अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥

जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति किसी पदार्थके न होनेपर भी स्वप्नकी वस्तुओंको भोग्य विषय, स्वयंको भोक्ता एवं भोगजन्य सुख-दुःखादिको फलके रूपमें अनुभव करता है, उसी प्रकार आत्मतत्त्वज्ञानसे अनभिज्ञ व्यक्ति संसार-दशाको प्राप्त हुआ करते हैं (दृष्टान्तस्वरूप—कोई वस्तुके न होनेपर भी निद्रित व्यक्ति स्वयंको चतुरङ्ग सेना युक्त राज्यको जय करनेके फलस्वरूप माल्य, चन्दन, स्त्री आदि सुखोंका भोग करता है और कभी पराजयके कारण बन्धन, ताड़न, तिरस्कार आदिका भी अनुभव

करता है, इसी प्रकार अज्ञ व्यक्ति संसार न रहनेपर भी देह-सम्बन्ध-जात सुख-दुःखात्मक संसारका भोग करते हैं) ॥ ४८ ॥

तस्मादज्ञानजं

शोकमात्मशोषविमोहनम्।

तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥ ४९ ॥

इसलिए हे शुचिस्मिते! तुम अपने अन्तःकरणमें पुष्ट होनेवाले शोषक एवं मोहजनक अज्ञानके कारण उत्पन्न शोकका तत्त्वज्ञानके द्वारा त्याग कर दो और अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ (मुखसे प्रफुल्लता प्रकाशित करो, तुम प्राकृत संसारी व्यक्तिकी वधू नहीं हो) ॥ ४९ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता।

वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥ ५० ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! जब भगवान् बलरामने रुक्मिणीको समझाया, तब क्षीण-कटि रुक्मिणीने अपने मनका वैमनस्य ('लोग मुझे क्या कहेंगे') मिटाकर विवेक बुद्धिसे उसका समाधान कर लिया। यथार्थ ज्ञानसे भरे हुए वचनोंको सुनकर उनके दुःखका परिहार हो गया और चित्त स्थिर हो गया ॥ ५० ॥

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः।

स्मरन् विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ ५१ ॥

चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम्।

रुक्मीकी सेना और उसका सम्पूर्ण बल नष्ट हो चुका था, वह निस्तेज हो गया था, शत्रुओंने उसे अपमानित करके उसे छोड़ दिया था। उसके प्राण मात्र ही बचे थे, सारे मनोरथ विफल हो गये थे। वह रह-रहकर स्मरण करता था कि किस प्रकार उसे विरूप किया गया था। अतः उसने अपनी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार प्रवासके लिए 'भोजकट' नामक एक विशाल नगरका निर्माण कर लिया ॥ ५१ ॥

अहत्वा दुर्मर्तिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ।

कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्गुषा ॥ ५२ ॥

“दुर्मर्ति कृष्णको मारे बिना एवं छोटी बहिनका उद्धार किये बिना मैं कुण्डिन नगरमें प्रवेश नहीं करूँगा”—अपनी इस पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार वह क्षुब्धचित्त एवं क्रोधपूर्ण मनके साथ भोजकट नगरमें (निज विरूपीकरण प्रदेशमें) ही रहने लगा ॥ ५२ ॥

भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ।

पुरमातीय विधिवदुपयेमे कुरुद्वह ॥ ५३ ॥

हे कुरुवंशपालक ! भगवान् श्रीकृष्ण सब राजाओंको पराजित करके भीष्मक-पुत्री रुक्मिणीको अपनी द्वारका पुरीमें ले आये और वैदिक मन्त्रोंके द्वारा उनके साथ विधि-विधानपूर्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्या गृहे गृहे ।

अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥

हे राजन् ! विवाहके अवसर पर द्वारकापुरीमें हर घरमें महोत्सव मनाया गया, क्योंकि सभीके हृदयोंमें यदुपति श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम था ॥ ५४ ॥

नरा नार्य्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।

पारिबर्हमुपाजहुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥

नर-नारियोंने सुविमल मणियोंसे जड़ित कुण्डलोंको धारण कर लिया। वे आनन्दसे भरकर विविध उपहार ले आये और उन उपहारोंको विचित्र (रङ्ग-बिरङ्गे) वस्त्रोंसे सुसज्जित वर-वधूको प्रदान कर दिया ॥ ५५ ॥

सा वृष्णिपुय्युत्तभितेन्द्रकेतुभि-

र्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ।

बभौ प्रतिद्वार्य्युपकलृप्तमङ्गलै-

रापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥

विवाहके अवसरपर द्वारका नगरीमें ऊँचे-ऊँचे माङ्गलिक खम्भोंपर इन्द्र-केतु ध्वजाविशेष (इन्द्रपुरस्पर्शी) फहरा रही थीं, चित्र-विचित्र मालाओं, वस्त्रों एवं रत्नोंकी बनी हुई वन्दनवारों एवं तोरणोंसे नगरी विभूषित हो रही थी। प्रत्येक द्वारपर जलसे भरे हुए मङ्गल कलश रखे हुए थे। अगुरुसे युक्त सुगन्धित धूप एवं दीपादि माङ्गलिक द्रव्योंसे पुरीकी शोभा निराली लग रही थी॥ ५६ ॥

सिक्तमार्गा मदच्युद्धिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ।

गजैर्द्वाःसु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥

बहुत-से मित्र-राजाओंको आमन्त्रित किया गया था, जिनके हाथियोंकी मदधारासे नगरीके पथ सींचे गये थे। नगरीका हरेक द्वार सुपारीके वृक्षों एवं केलोंके खम्भोंसे सुशोभित हो रहा था॥ ५७ ॥

कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ।

मिथो मुमुदिरे तस्मिन् संभ्रमात् परिधावताम् ॥ ५८ ॥

बन्धुवर्गोंमें कुरु, सृञ्जय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ती आदि वंशोंके राजा कौतूहलवश इधर-उधर दौड़ रहे थे और परस्पर मिलकर आनन्द मना रहे थे॥ ५८ ॥

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ।

राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥

जहाँ-तहाँ सर्वत्र लोगोंके मुखसे रुक्मिणी-हरणकी ही वार्ता कीर्तित हो रही थी, जिसे सुनकर राजा एवं राजकन्याएँ अति विस्मित हो रहे थे॥ ५९ ॥

द्वारकायामभूद्राजन् महामोदः पुरौकसाम् ।

रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीरुक्मिण्युद्वाहोत्सवे

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

हे राजन्! द्वारकामें लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण और साक्षात् लक्ष्मी-स्वरूपा रुक्मिणीका परस्पर मिलन देखकर द्वारकाके नर-नारियोंको परम आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौवनवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका बध

श्रीशुक उवाच—

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्रागृद्रमन्युना।

देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! वासुदेवके अंशरूप कामदेव प्राचीन कालमें भगवान् महादेवकी कोपाग्निसे दग्ध हो गये थे। अब पुनः शरीर धारण करनेके लिए उन्होंने अपने अंशी वासुदेवका ही आश्रय ग्रहण किया ॥ १ ॥

स एव जातो वैदर्भ्या कृष्णवीर्यसमुद्भवः।

प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥

वे ही कामदेव अबकी बार रुक्मिणीके गर्भसे श्रीकृष्णके द्वारा उत्पन्न हुए और प्रद्युम्नके नामसे विख्यात हुए। सौन्दर्य, वीर्य, सौशील्य आदि सद्गुण उन्हें सर्वतोभावसे पिताके समान ही प्राप्त हुए थे।

लोक-प्रथामें यही कामदेव प्रद्युम्न नामसे विख्यात हैं। वस्तुतः सच्चिदानन्द विग्रह प्रद्युम्न ही तृतीय व्यूह हैं, कामदेव तो केवल जीव विशेष है। प्रद्युम्नकी अपनी इच्छासे ही कामदेव उनमें प्रविष्ट है। श्रीप्रद्युम्नमें प्रविष्ट प्राकृत कामदेवसे प्राकृत रतिदेवीका संयोग हुआ है। ईश्वरतत्त्व श्रीप्रद्युम्नसे जीवतत्त्व रतिदेवीका संसर्ग कभी भी सम्भव नहीं है। द्वारका लीलामें श्रीप्रद्युम्नके आविर्भूत होनेपर प्राकृत कामदेव अपने अंशीमें प्रविष्ट होता है। द्वारकामें श्रीकृष्ण अपनी शक्तियोंके—बलदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं रुक्मिणीके साथ अवस्थित रहते हैं ॥ २ ॥

तं शम्बरः कामरूपी हत्वा तोकमनिर्दशम्।

स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गुहम् ॥ ३ ॥

शम्बर नामका एक असुर इच्छानुरूप शरीर धारण कर सकता था। वह नारदजीके कहनेसे कामदेवको अपना शत्रु समझता था। प्रद्युम्न दस दिनके भी नहीं हुए थे कि शम्बरासुरने वेष बदलकर (जन्मसे छठे दिन ही) सूतिकागृहसे उनका हरण कर लिया और समुद्रमें उन्हें फेंककर अपने घर चला गया ॥ ३ ॥

तं निर्जगार बलवान् मीनः सोऽप्यपरैः सह।

वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥

समुद्रमें एक महाबलवान् मच्छने उस शिशुको निगल लिया। तदनन्तर मछुआरोंने दूसरी मछलियोंके साथ उस बली मच्छको भी अपने बहुत बड़े जालमें फँसाकर पकड़ लिया ॥ ४ ॥

तं शम्बराय कैवर्त्ता उपाजहरुपायनम्।

सूदा महानसं नीत्वावद्यन् सुधितिनाद्भुतम् ॥ ५ ॥

मछुआरोंने उस महामच्छको अद्भुत उपहारके रूपमें शम्बरासुरको भेंट कर दिया। रसोइये उसे पाकगृहमें ले आये और उसे कसाइयोंके चाकूसे काटने लगे ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन्।

नारदोऽकथयत् सर्व्वं तस्याः शङ्कितचेतसः।

बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

रसोइयोंने जैसे ही उस विशाल मच्छको काटा, उसके उदरमें एक बालक दिखायी दिया। उन्होंने उस बालकको मायावती (शम्बरासुरकी दासी) को सौंप दिया। इस बालकको देखकर मायावतीके हृदयमें बड़ी शङ्का हुई। तभी देवर्षि नारद प्रकट हुए और उन्होंने मायावतीको बालकका परिचय, जन्म और मच्छके उदरमें प्रवेशका कारण इत्यादि सारा वृत्तान्त बतला दिया ॥ ६ ॥

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी।

पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥

निरूपिता शम्बरेण सा सूदौदनसाधने।
कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदार्भके ॥ ८ ॥

यह मायावती कामदेवकी सुप्रसिद्ध पतिव्रता पत्नी रतिदेवी ही थी। वह जलकर भस्म हुए अपने पति कामदेवके पुनः शरीर धारण करनेकी प्रतीक्षामें शम्बरासुर द्वारा पाचिकाके रूपमें नियुक्त होकर रह रही थी। उसे दाल-भात और तरकारियाँ पकानेका कार्य सौंपा गया था। अब महर्षि नारदसे यह जान लेनेपर कि शिशुके रूपमें मेरे पति कामदेव ही हैं, उनसे बहुत प्रेम करने लगी ॥ ७-८ ॥

नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णि रूढयौवनः।
जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनाञ्च विभ्रमम् ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नजी थोड़े ही दिनोंमें युवावस्थाको प्राप्त हो गये। वे इतने आकर्षक थे कि उन्हें देखकर स्त्रियाँ मोहित हो जाया करती थीं।

महादेवकी क्रोधाग्निसे कामदेवकी देह भस्मीभूत हो गयी थी। तब रतिने उस देहकी प्राप्तिके लिए शिवकी आराधना की। शम्बरासुरने भी वहाँ आकर अन्य वरदानके लिए शिवजीको प्रसन्न कर लिया था। वहाँ रतिको देखकर वह कामार्त्त हो गया था। अतः उसीको वरदानमें माँगने लगा। रति क्रन्दन करने लगी। तब शिवजीने उससे कहा—तुम शम्बरासुरके साथ जाओ, वहीं तुम्हारी कामना (कामदेवको शरीरकी प्राप्ति) सिद्ध होगी। वही रतिने अपनी मायाका ऐसा जाल रचा कि शम्बर उसे कभी स्पर्श भी न कर सका। महामाया विद्याको जाननेके कारण ही इसका मायादेवी नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ९ ॥

सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं,
प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम्।
सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती
प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्गसौरतैः ॥ १० ॥

हे राजन्! एक दिन मायावती (रतिदेवी) पद्म-पलाश-लोचन, घुटनों तक लम्बी भुजाओंवाले, भुवन-मनोहर अपने पतिके पास सलज्ज हास्य एवं भ्रू-भङ्गिमाके साथ प्रेमसे भरकर तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धी दाम्पत्य भाव व्यक्त करती हुई उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थी॥ १० ॥

तामाह भगवान् कार्ष्णिमातस्ते मतिरन्यथा।

मातृभावमतिक्रम्य वर्त्तसे कामिनी यथा॥ ११ ॥

श्रीकृष्णनन्दन भगवान् प्रद्युम्नने अपने सर्वज्ञताके गुणको छिपाते हुए उससे कहा—माता! इस समय तुम्हारी बुद्धि कुछ अन्य प्रकारकी दिखायी दे रही है। तुम माताके भावोंका उल्लङ्घन करके प्रेयसीके समान आचरण कर रही हो॥ ११ ॥

श्रीरतिरुवाच—

भवान् नारायणसुतः शम्बरेण हतो गृहात्।

अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान् प्रभो॥ १२ ॥

रतिने कहा—हे प्रभो! आप भगवान् नारायण श्रीकृष्णके पुत्र हैं। शम्बरासुरने आपका आपके ही घरसे अपहरण कर लिया था। मैं आपके अधीन आपकी धर्मपत्नी रति हूँ एवं आप स्वयं कामदेव हैं॥ १२ ॥

एष त्वानिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः।

मत्स्योऽग्रसीत् तदुदरादितः प्राप्तो भवान् प्रभो॥ १३ ॥

हे प्रभो! आपका जन्म हुए दस दिन भी पूरे नहीं हुए थे कि शम्बरासुरने आपको समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ किसी एक मच्छने आपको निगल गया। बादमें यहाँ मैंने उस मच्छके उदरमेंसे आपको प्राप्त किया है॥ १३ ॥

तमिमं जहि दुर्धर्ष दुर्जयं शत्रुमात्मनः।

मायाशतविदं तञ्च मायाभिर्मोहनादिभिः॥ १४ ॥

शम्बरासुर दुर्धर्ष, दुर्जय और सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाला है। अब आप अपनी मोहनादि मायाके बलसे अपने शत्रुरूपी इस शम्बरासुरका विनाश कर डालिये ॥ १४ ॥

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा।

पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५ ॥

आपके रूपमें अपना पुत्र खो जानेसे आपकी माता नित्य-निरन्तर पुत्र-स्नेहसे व्याकुल रहती हैं और शोकके कारण इस प्रकार रोती रहती हैं, जिस प्रकार बच्चा खो जानेपर कुररी पक्षी अति दीन हो जाती है और बछड़ा खो जानेपर गाय अति कातर हो जाती है ॥ १५ ॥

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने।

मायावती महामायां सर्व्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥

परीक्षित्! मायावतीने यह कहकर महात्मा प्रद्युम्नको महामाया नामक योगविद्या प्रदान की, जो अन्य समस्त मोहिनी शक्तियोंको विनष्ट कर डालती है ॥ १६ ॥

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत्।

अविषह्यैस्तमाक्षपैः क्षिपन् सञ्जनयन् कलिम् ॥ १७ ॥

तब प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके समीप गये और असहनीय कटु-वचनोंके द्वारा उसका तिरस्कार करने लगे। वे चाहते थे कि इससे विवाद उठ खड़ा हो। उन्होंने शम्बरको युद्धके लिए कठोर शब्दोंमें स्पष्ट रूपसे चुनौती दी ॥ १७ ॥

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पादाहत इवोरगः।

निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात् ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥

प्रद्युम्नके कटु आक्षेपोंसे अपमानित हुआ शम्बरासुर उसी प्रकार क्रोधसे तिलमिला उठा, जिस प्रकार पैरोंसे आहत होनेपर सर्प बिलबिला उठता है। क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयीं और वह गदा हाथमें लेकर बाहर निकल आया ॥ १८ ॥

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने।

प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥

गदाको इधर-उधर चलाता हुआ वह बड़ी फुर्तीके साथ महात्मा प्रद्युम्नकी ओर झपटा और उनपर गदासे प्रहार किया। उस समय उसने ऐसा कर्कश निनाद किया मानो कहीं बिजली कड़क रही हो ॥ १९ ॥

तामापतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नो गदया गदाम्।

अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत् स्वगदां नृप ॥ २० ॥

हे राजन्! भगवान् प्रद्युम्नने अपने सामने आती हुई शत्रुकी गदाको अपनी गदासे रोक दिया। तत्पश्चात् उन्होंने क्रोधपूर्वक बड़े वेगके साथ अपनी गदा शत्रुपर चलायी ॥ २० ॥

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम्।

मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं काष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥

तब वह असुर आकाशमें चला गया और मयदानव द्वारा बतलायी हुई दानवी मायाका आश्रय लेकर प्रद्युम्नके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः।

सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्व्वमायोपमर्दिनीम् ॥ २२ ॥

अस्त्रोंकी वर्षासे पीड़ित होकर महारथी प्रद्युम्नने महामाया नामक योगविद्याका प्रयोग किया, जो समस्त मायिक शक्तियोंका विनाश करनेवाली एवं सत्त्वगुणमयी है ॥ २२ ॥

ततो

गौह्यकगान्धर्व्वपैशाचोरगराक्षसीः।

प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत् स ताः ॥ २३ ॥

इसपर शम्बरासुरने गुह्यक, गन्धर्व, पिशाच, नाग एवं राक्षसोंकी सैकड़ों मायाओंका प्रयोग किया। कृष्णनन्दन प्रद्युम्नने उन सभीका नाश कर दिया ॥ २३ ॥

निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम्।

शम्बरस्य शिरः कायात् ताम्रश्मश्रुवोजसाहरत् ॥ २४ ॥

अब प्रद्युम्नने तीक्ष्ण तलवार उठायी और किरीट, कुण्डल एवं ताम्रवर्णकी दाढ़ीसे युक्त शम्बरके मस्तकको बलपूर्वक एवं अति तीव्रतासे धड़से काटकर भूमिपर गिरा दिया ॥ २४ ॥

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः।

भार्य्याम्बरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥

तभी देवताओंने उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की और उनकी स्तुति करना आरम्भ कर दिया। आकाश-चारिणी उनकी पत्नी मायावती रति प्रद्युम्नको आकाशमार्गसे द्वारकापुरी ले आयी ॥ २५ ॥

अन्तःपुरवरं राजन् ललनाशतसङ्कुलम्।

विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥

हे राजन्! गौरवर्णा पत्नीके साथ श्यामलवर्ण प्रद्युम्न उस समय विद्युतसे सुशोभित मेघके समान प्रतीत हो रहे थे। आकाश-मार्गसे ही उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें प्रवेश किया, जो शत-शत कामिनियोंसे भरा हुआ था ॥ २६ ॥

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम्।

प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥

स्वलङ्कृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः।

कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियोंने जब नूतन जलधरके समान श्यामल, रेशमी पीताम्बरसे विभूषित, घुटनों तक लम्बी भुजाओंसे युक्त मनोरम हास्यसे मण्डित, नीली एवं घुँघराली अलकावलियोंसे समलङ्कृत, सुरम्य मुख कमलसे सुशोभित प्रद्युम्नको देखा तो समझ बैठी कि ये श्रीकृष्ण हैं। अतः वे लज्जाके कारण इधर-उधर छिप गयीं ॥ २७-२८ ॥

अवधाय्यं शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ।

उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥

कुछ क्षणोंके बाद इन स्त्रियोंको इन पुरुषमें श्रीकृष्णसे कुछ विलक्षणता दिखलायी पड़ी। तब उन्होंने निश्चय किया कि ये श्रीकृष्ण नहीं, कोई और हैं। अतः वे अत्यधिक आनन्द और विस्मयसे भर गयीं तथा स्त्री-रत्न, परम सुन्दरी रतिदेवीके साथ विद्यमान कामदेवके समीप आ गयीं ॥ २९ ॥

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ।

अस्मरत् स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥

इसी समय सुनीलनयना रुक्मिणी भी वहाँ आ गयीं। उनके नेत्र कजरारे थे और वे मधुरभाषिणी थीं। प्रद्युम्नको देखकर उन्हें अपने खोये हुए पुत्रका स्मरण हो आया। पुत्र-स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥ ३० ॥

को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ।

धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥

रुक्मिणी विचार करने लगी कि यह नरश्रेष्ठ कौन है? यह कमलनयन पुरुष किस महाभागका पुत्र है? किस महाभाग्यवतीने इसे गर्भमें धारण किया है? पत्नीरूपमें इसे यह कौन सौभाग्यवती प्राप्त हुई है? ॥ ३१ ॥

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ।

एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥

मेरा भी एक नन्हा-सा शिशु खो गया था। उसे सूतिकागृहसे न जाने कौन उठा ले गया था। यदि किसी स्थानपर वह जीवित रहता, तो उसकी अवस्था तथा रूप इसके ही समान होते! ॥ ३२ ॥

कथन्त्वेनेन सम्प्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ।

आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ३३ ॥

परन्तु यह क्या! इस नरश्रेष्ठकी आकृति, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, चाल-भङ्गी, स्वर, मन्द-मन्द मुसकान एवं हास्यसे पूर्ण चितवन सभी कुछ शार्ङ्गधर श्रीकृष्णके ही समान हैं ॥ ३३ ॥

स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ।

अमुष्मिन् प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ३४ ॥

हो-न-हो यह वही बालक हो, जिसे मैंने अपने गर्भमें धारण किया था। हाँ, निश्चित ही यह वही है, क्योंकि इसके प्रति मेरा निरतिशय पुत्र-स्नेह उमड़ रहा है। मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है ॥ ३४ ॥

एवं मीमांसमानायां वैदभ्यां देवकीसुतः ।

देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमःश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥

जिस समय रुक्मिणी देवी इस प्रकारसे सोच-विचार (मीमांसा) कर ही रही थीं कि पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी एवं वसुदेवके साथ वहाँ आ पहुँचे ॥ ३५ ॥

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ।

नारदोऽकथयत् सर्व्वं शम्बराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण तो सब कुछ जानते थे, पर वे मौन भाव धारण किये रहे, कुछ बोले नहीं। इतने ही में नारद वहाँ उपस्थित हुए और शम्बरासुर द्वारा किये गये अपहरणसे आरम्भ करके सारा वृत्तान्त उन्हें बतला दिया ॥ ३६ ॥

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्य्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ।

अभ्यनन्दन् बहूनब्दान् नष्टं मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्णके अन्तःपुरकी सभी स्त्रियाँ इस अद्भुत वृत्तान्तको सुनकर परम विस्मित हुईं। उन्होंने प्रद्युम्नका इस प्रकारसे अभिनन्दन किया, मानो कोई मृतके समान अगोचर रहा हो और अब सकुशल लौट आया हो ॥ ३७ ॥

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ।

दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ३८ ॥

देवकी, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलदेव, अन्तःपुरकी सभी स्त्रियाँ एवं रुक्मिणी—सभी उस समय पत्नीके साथ प्रद्युम्नका आलिङ्गन करके अतिशय आनन्दित हुए ॥ ३८ ॥

नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ।

अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥ ३९ ॥

द्वारकावासियोंने जब यह सुना कि हम सबके लोक-लोचनोंसे अगोचर प्रद्युम्नजी लौट आये हैं, तब वे कहने लगे—अहो! यह बालक तो मृतकके समान अदृश्य हो ही गया था। हमारा सौभाग्य है कि अब यह लौट आया है ॥ ३९ ॥

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावा-

स्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ।

चित्रं न तत् खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे

कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीप्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं

नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

कामावतार प्रद्युम्नका रूप सौन्दर्य श्रीकृष्णके अनुरूप ही था। अतः रुक्मिणीके अतिरिक्त अन्यान्य माताएँ उन्हें देखकर दाम्पत्य भावसे आकर्षित हो जाया करती थीं और बार-बार एकान्तमें चली जाया करती थीं। वे वहाँसे उन्हें निहारा करती थीं। रमास्पद, सर्वशोभा-निकेतन जिन श्रीकृष्णके स्मरणसे चित्तमें क्षोभ उत्पन्न होता है, उनकी ही मूर्तिका प्रतिबिम्ब चक्षुके सम्मुख विराजमान हो, तो ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है! इनके अतिरिक्त अन्य स्त्रियाँ उन्हें कान्त भावसे

देखा करती थीं, तो इसमें भी कहना ही क्या है! त्रिभुवनमें ऐसा सौन्दर्य है भी कहाँ? ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पचपनवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्यमन्तक मणिकी कथा, जाम्बवती और
सत्यभामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह

श्रीशुक उवाच—

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः।

स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान्॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! राजा सत्राजित्ने श्रीकृष्णके चरणोंमें अपराध किया था। (उनपर झूठा कलङ्क लगाया था) बादमें स्वयं ही उस अपराधका मार्जन करनेके लिए उसने स्वयं श्रीकृष्णको स्यमन्तक मणिके साथ अपनी कन्या भी सौंप दी॥ १ ॥

श्रीराजोवाच—

सत्राजितः किमकरोद् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषम्।

स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्मादत्ता सुता हरेः॥ २ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—हे मुनिवर! सत्राजित्ने श्रीकृष्णके प्रति क्या अपराध किया था? उसे वह स्यमन्तक मणि कहाँसे प्राप्त हुई थी? उसने श्रीकृष्णको मणिके साथ कन्याका भी दान क्यों कर दिया? इसका वर्णन कीजिये॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच—

आसीत् सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा।

प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात् स च तुष्टः स्यमन्तकम्॥ ३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! सत्राजित् सूर्यदेवका परम भक्त था, सूर्यदेव अपने परम भक्त सत्राजित्की भक्तिसे प्रसन्न होकर प्रीतिवश उसके मित्र बन गये थे। सत्राजित्से परम प्रसन्न होकर उन्होंने उसे स्यमन्तक मणि प्रदान कर दी थी॥ ३ ॥

स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः।
प्रविष्टो द्वारकां राजन् तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥

हे राजन्! सत्राजित्ने एक बार मणिको अपने कण्ठमें धारण कर लिया, जिससे वह सूर्यके समान प्रकाशमान होने लगा। मणिको पहनकर ही वह द्वारका चला गया। मणिकी तेजस्विताके कारण द्वारकावासी उसे पहचान नहीं पाये ॥ ४ ॥

तं विलोक्य जना दूरात् तेजसा मुष्टदृष्टयः।
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥ ५ ॥

पुरवासियोंने जब उसे दूरसे आते देखा, तो उसके तेजके प्रभावसे उन लोगोंकी दृष्टि चकाचौंध हो गयी। वे सत्राजित्को सूर्य ही समझ बैठे और यह समाचार देनेके लिए भगवान् श्रीकृष्णके पास गये। श्रीकृष्ण उस समय चौसर खेल रहे थे ॥ ५ ॥

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर।
दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६ ॥

लोगोंने कहा—हे शङ्ख-चक्र-गदा-धर! हे दामोदर! हे कमललोचन! हे गोविन्द! हे यदुनन्दन! हे नारायण! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते।
मुष्णन् गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥

हे जगन्नाथ! देखिये! प्रचण्ड रश्मिशाली सूर्यदेव अपनी प्रखर तेजोमय किरणोंसे सभीकी दृष्टि शक्तिको अभिभूत करते हुए आपके दर्शनके लिए पधार रहे हैं ॥ ७ ॥

नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥

हे प्रभो! तीनों भुवनोंमें ब्रह्मादि सभी श्रेष्ठ देवता आपकी प्राप्तिका मार्ग ढूँढते रहते हैं, परन्तु प्राप्त नहीं कर पाते। यह

जानकर ही आज अजन्मा सूर्यदेव यदुवंशमें छिपे हुए आपको देखनेके लिए चले आ रहे हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच—

निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ।

प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित् ! कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण भोले-भाले मनुष्योंकी यह बात सुनकर हँसने लगे। उन्होंने कहा कि यह आया हुआ पुरुष सूर्यदेव नहीं है, बल्कि यह तो राजा सत्राजित् है, जो स्यमन्तक मणि पहननेके कारण इतना तेजस्वी दिखायी दे रहा है ॥ ९ ॥

सत्राजित् स्वगृहं श्रीमत् कृतकौतुकमङ्गलम् ।

प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्यवेशयत् ॥ १० ॥

इधर सत्राजित्ने अपने आगमनके उपलक्ष्यमें मनाये जा रहे मङ्गलोत्सवोंसे युक्त, सुरम्य एवं श्रीमत्से सम्पन्न अपने घरमें प्रवेश किया और देवमन्दिरमें ब्राह्मणोंके द्वारा स्यमन्तक मणिको स्थापित करवा दिया ॥ १० ॥

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ।

दुर्भिक्षमार्य्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ।

न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्च्यतो मणिः ॥ ११ ॥

हे राजन् ! यह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना उत्पन्न किया करती थी। जिस स्थानपर इसकी पूजा होती थी, वहाँ दुर्भिक्ष, अकाल-मृत्यु, उपद्रव, अशुभ, सर्पभय, शारीरिक अथवा मानसिक आधि-व्याधि एवं मायावी शक्तियाँ ठहर नहीं सकती थीं, वहाँ कोई भी अशुभ नहीं हो सकता था ॥ ११ ॥

(श्रीधर गोस्वामीने भारका परिमाण बतलाते हुए कहा है—

चतुर्भिर्व्रीहर्भिर्गुञ्जां गुञ्जाः पश्च पणं पणान् ।

अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षे तांश्चतुरः पलम् ॥

तुलां पलशतं प्राहुर्भारः स्यूद्वेशतिस्तुलाः ।

अर्थात् चार ब्रीहि (धान) का एक गुज्जा, पाँच गुज्जाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।)

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ।

नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्चाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥

एक बार किसी अवसरपर श्रीकृष्णने प्रसङ्गवश सत्राजित्से अनुरोध किया कि वह यह मणि यदुराज उग्रसेनको प्रदान कर दे, परन्तु वह अर्थका इतना लोभी था कि श्रीकृष्णकी याचनाका उल्लङ्घन करना एक गम्भीर अपराध हो सकता है—जो वस्तु सब अनिष्टका नाश कर सकती है, वह वस्तु सब प्रकारके अनिष्टका कारण भी हो सकती है—इसका विचार न करते हुए उसने मणि देना अस्वीकार कर दिया ॥ १२ ॥

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।

प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥

एक बार सत्राजित्के भाई प्रसेनने महादीप्तिमयी मणिको कण्ठमें धारण कर लिया और घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलने वनमें चला गया ॥ १३ ॥

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केशरी ।

गिरिं विशन् जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥

वहाँ एक सिंहने घोड़ेके साथ प्रसेनको भी मार डाला और उसकी मणि ले ली। सिंह मणि लेकर पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर ही रहा था कि भल्लूकराज जाम्बवान्ने मणि हड़प लेनेकी इच्छासे उस सिंहको मार डाला ॥ १४ ॥

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ।

अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् पर्य्यतप्यत ॥ १५ ॥

जाम्बवान्ने गुफामें जाकर उस मणिको अपने पुत्रको खिलौनेके रूपमें खेलनेके लिए दे दिया। इधर सत्राजित्ने देखा कि उनका भाई प्रसेन लौटा नहीं है, तब वह बड़ा दुःखी हो गया॥ १५ ॥

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः।

भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपन् जनाः॥ १६ ॥

वह विचार करने लगा—मेरा भाई अपने गलेमें मणि धारण करके वनमें गया हुआ था। सम्भवतः श्रीकृष्णने ही उसका वध कर दिया होगा। सत्राजित्की इस आशङ्कापर लोग गुप्तरूपसे काना-फूसी करने लगे (सत्राजित्के समान दूसरे लोग भी कर्ण-परम्परासे इस प्रकार प्रचार करने लगे कि कृष्णने ही इसके भाईको मारकर मणि ले ली है)॥ १६ ॥

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि।

मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने जब यह सुना कि उनके ऊपर मिथ्या कलङ्क लगाया गया है, तो वे अपने ऊपर आरोपित कलङ्कको धो डालनेके लिए कुछ शिष्टजनोंको अपने साथ लेकर उस ओर गये, जिस ओर प्रसेन गया था॥ १७ ॥

हतं प्रसेनमश्वञ्च वीक्ष्य केशरिणा वने।

तज्चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः॥ १८ ॥

वनमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि सिंहके द्वारा प्रसेन और उसका घोड़ा भी मार दिया गया था। वे लोग सिंहके पैरोंका चिह्न देखते हुए कुछ और आगे बढ़े तो देखा कि पर्वतके ऊपर किसी ऋक्ष (रीछने) उस सिंहको भी मार डाला है॥ १८ ॥

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसावृतम्।

एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः॥ १९ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने साथियोंको गुफाके बाहर बिठा दिया एवं अकेले ही ऋक्षराज जाम्बवान्की भयानक अन्धकारमयी निवास-गुफामें सुरङ्गके माध्यमसे प्रवेश कर गये॥ १९ ॥

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम्।

हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ जाकर देखा कि बहुमूल्य स्यमन्तक मणि तो बच्चोंका खिलौना बनी हुई है। श्रीकृष्ण उस मणिको हर लेनेकी इच्छासे वहीं बालकके निकट खड़े हो गये ॥ २० ॥

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत्।

तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत् क्रुद्धो जाम्बवान् बलिनां वरः ॥ २१ ॥

बालककी वृद्धा धात्री गुफामें एक अपरिचित मनुष्यको देखकर एवं मणि लेनेके उसके भावको जानकर भयातुर होकर चीत्कार करने लगी। उसकी चीत्कार सुनकर बलवानोंमें भी महाबलवान् जाम्बवान् बड़े क्रोधके साथ वहाँ दौड़े चले आये ॥ २१ ॥

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः।

पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥

ऋक्षराज जाम्बवान् भगवान्के प्रभावसे अनभिज्ञ थे। क्रोधके वशीभूत होकर वे श्रीकृष्णको साधारण मनुष्य समझ रहे थे और इस प्रकार अपने ही प्रभु भगवान्के साथ युद्ध करनेके लिए तत्पर हो गये (अल्पबलवान् केशी, चाणूर, कंस, जरासन्ध आदिके साथ भगवान्को युद्ध-सुख पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं हुआ था। अतः अपने समान बलवाले अपने भृत्य जाम्बवान्के साथ युद्ध करनेकी उनकी इच्छा-युद्ध-सुखकी सिद्धि तथा भक्त जाम्बवान्को भी पूर्वकालमें रावण-सैन्यके साथ परिपूर्ण वीर रससुखकी अप्राप्ति और जाम्बवान्के उसी युद्ध-सुखकी पूर्तिके लिए श्रीकृष्णकी लीलाशक्ति योगमायाने भक्त जाम्बवान्के माधुर्यका एवं भगवान्के ऐश्वर्यका आवरण कर दिया) ॥ २२ ॥

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः।

आयुधाश्मद्रुमैर्दोभिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥

विजयके लिए कृतसङ्कल्प होकर जाम्बवान् और श्रीकृष्ण दोनों ही मैदानमें डट गये। मांसकी इच्छासे दो श्येन पक्षी जिस प्रकार परस्पर युद्ध करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों जय-प्राप्तिकी इच्छासे आपसमें घमासान युद्ध करने लगे। पहले तो दोनोंने विविध अस्त्र-शस्त्र चलाये, इसके बाद एक-दूसरे पर पत्थरोंसे प्रहार किया। तत्पश्चात् वृक्षोंको उखाड़-उखाड़ कर एक-दूसरे पर फेंका और अन्तमें निःशस्त्र बाहुओंसे अतिमहत् द्वन्द्व-युद्ध (बाहुयुद्ध) करने लगे ॥ २३ ॥

आसीत् तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ।

वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार परस्पर वज्र-प्रहारके समान कठोर मुट्टियोंके प्रहारोंसे अट्ठाईस दिनों तक दोनोंमें बिना विश्राम किये रात-दिन युद्ध चलता रहा ॥ २४ ॥

कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ।

क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५ ॥

अन्तमें, भगवान् श्रीकृष्णके घूँसोंके प्रहारोंसे जाम्बवान्के शरीरकी एक-एक गाँठ शिथिल पड़ती गयी। उनमें दुर्बलता आ गयी। सारा उत्साह जाता रहा और उनकी देह पसीनेसे लथपथ हो गयी। वे अति विस्मय (मुझसे अधिक बलशाली मेरे प्रभु श्रीरामके अतिरिक्त और कौन हो सकता है?) के साथ श्रीकृष्णसे कहने लगे ॥ २५ ॥

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।

विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥

ऋक्षराज जाम्बवान्ने कहा—प्रभो! मैं समझ गया कि आप वे ही हैं, जो समस्त प्राणियोंके (अनन्त कोटि ब्रह्माण्डवासियोंके) प्राणस्वरूप हैं। इन प्राणियोंमें जो इन्द्रिय-बल, हृदय-बल और देह-बल है—आप ही उसके स्वरूपभूत हैं। आप ही पुराणपुरुष,

सर्वान्तर्यामी और विष्णु (सर्वव्यापक) हैं (तथा मैं आधुनिक, शासनाधीन एवं प्रभावहीन हूँ) ॥ २६ ॥

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृष्टानामपि यच्च सत्।

कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम् ॥ २७ ॥

आप सृष्टिकर्ता ब्रह्मादिसे लेकर इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाले हैं। जितनी भी सृष्टि वस्तुओंके मध्य जो सत् है, इसके भी कारण आप ही हैं। इसलिए आप पुराण-पुरुष तथा यम इत्यादि संहारकर्ताओंके भी काल अर्थात् महाकाल कहलाते हैं। आप ही प्रभावशाली परमेश्वरके रूप हैं और समस्त जीवोंके शरीर-भेदसे प्रतीत होनेवाले अन्तरात्माओंके परम आत्मा भी आप ही हैं (मैं यम द्वारा संहारके योग्य एक साधारण जीव हूँ) ॥ २७ ॥

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षै-

र्वत्मादिशत् क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः।

सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का

रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥

प्रभो! मुझे स्मरण है कि आपके किञ्चित् क्रोधपूर्ण दृष्टिपातसे समुद्रमें मगर, ग्राह, तिमिङ्गिल इत्यादि क्षुब्ध हो गये थे और समुद्रने उसी समय आपको पथ प्रदान कर दिया था, तथापि आपने उसके ऊपर अपनी कीर्तिके प्रतीकरूपमें सेतु बाँध दिया था। बादमें लङ्काका विध्वंस करके आपने बाणोंके प्रहारसे रावणके सिरोंको पृथ्वीपर गिरा दिया था। अब मैं समझ गया कि श्रीकृष्णके रूपमें श्रीरामचन्द्र ही यहाँ आये हैं ॥ २८ ॥

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः।

व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥ २९ ॥

अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शङ्करेण तम्।

कृपया परया भक्तं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३० ॥

परीक्षित्! जाम्बवान् स्वयं ही इस प्रकार भगवत्-तत्त्वको जान गये थे। तब कमलनयन देवकीनन्दन अच्युत भगवान् श्रीकृष्णने अपने भक्तका अपने मङ्गलदायक हाथोंसे स्पर्श करके उनकी अङ्ग-व्यथाको शान्त किया। इसके बाद परम कृपासे भरकर भगवान् श्रीकृष्ण मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे ॥ २९-३० ॥

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम्।

मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥ ३१ ॥

हे ऋक्षराज! इस स्यमन्तक मणिके लिए मेरे साथ बहुत-से नागरिक गुफाके द्वार तक आये थे। मैं इस मणिके द्वारा उन सबके सामने अपने मिथ्या कलङ्कको धो डालना चाहता था, इसीलिए मैंने गुफाके अन्दर प्रवेश किया था ॥ ३१ ॥

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा।

अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥

भगवान्के द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर जाम्बवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान्की पूजा की और मणिको श्रीकृष्णके कण्ठमें धारण कराके अपनी अपरिणिता दुहिता कुमारी जाम्बवतीको भी श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पण कर दिया ॥ ३२ ॥

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः।

प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण गुफाके द्वारपर जिन शिष्टजनोंको छोड़ गये थे, उन्होंने बारह दिनों तक तो प्रतीक्षा की। जब उन्होंने देखा कि गुफामें जानेके बाद श्रीकृष्ण बाहर नहीं निकले हैं, तब वे बड़े दुःखी मनसे द्वारका लौट गये ॥ ३३ ॥

निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः।

सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन् बिलात् कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥

देवेकी, रुक्मिणी, वसुदेव तथा अन्य सम्बन्धियों एवं कुटुम्बियोंने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण गुफासे बाहर नहीं निकले हैं, तब वे शोकमें डूब गये ॥ ३४ ॥

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।

उपतस्थुश्चन्द्रभागां दुर्गा कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥

सभी द्वारकावासी सत्राजित्की निन्दा करने लगे और दुःखी चित्तसे चन्द्रभागा नामकी दुर्गादेवीकी शरणमें गये और श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए उनकी आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥

तेषान्तु देव्युपस्थानात् प्रत्यादिष्टाशिषा स च ।

प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन् हरिः ॥ ३६ ॥

उनकी उपासनासे प्रसन्न होकर दुर्गादेवीने उन्हें कृष्ण-दर्शनका आशीर्वाद दिया कि 'श्रीकृष्ण प्रायः आ ही गये हैं' और उसी समय श्रीकृष्ण नवविवाहिता पत्नी जाम्बवतीके साथ सफल मनोरथ होकर सभीको परमानन्दित करते हुए उपस्थित हो गये ॥ ३६ ॥

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ।

सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥

द्वारकावासी कण्ठमें मणि धारण किये हुए श्रीकृष्णको नव-परिणिता पत्नीके साथ देखकर ऐसे हर्षित हो उठे, मानो उनका कोई बन्धु मरकर फिरसे लौट आया हो। सबके हृदयमें महोत्सवका सञ्चार हो गया ॥ ३७ ॥

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ।

प्राप्तिञ्चाख्याय भगवान् मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने सत्राजित्को राजसभामें बुलवाया और राजा उग्रसेनकी उपस्थितिमें मणि-प्राप्तिका सम्पूर्ण वर्णन कह सुनाया। अनन्तर बड़ी ही औपचारिक रीतिसे वह मणि सत्राजित्को प्रदान कर दी गयी ॥ ३८ ॥

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः।

अनुतप्यमानो भवनमगमत् स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥

इससे सत्राजित् अत्यन्त लज्जित हो गया और उसका मुख नीचे हो गया। उसने मणि ले तो ली, पर अपने अपराधके कारण पश्चाताप करता हुआ सभासे अपने घर चला गया ॥ ३९ ॥

सोऽनुध्यायंस्तदेवाधं बलवद्विग्रहाकुलः।

कथं मृजाम्यात्परजः प्रसीदेद्वाच्युतः कथम् ॥ ४० ॥

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा।

अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च।

उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्ण-पक्षके लोग बड़े बलवान् थे—उनसे विरोध हो जानेके कारण सत्राजित् भयभीत हो गया। वह हर पल, हर क्षण अपने अपराधके विषयमें ही सोचा करता था—किस प्रकारसे अपने अपराधका मार्जन किया जाय, अच्युत श्रीकृष्ण किस प्रकार प्रसन्न होंगे, क्या करनेसे उसका कल्याण होगा, ऐसा क्या किया जाय कि लोग उसे अदूरदर्शी, कृपण, मूर्ख, धनलोभी इत्यादि कहकर तिरस्कार न करें। इस प्रकार निरन्तर विचार करके उसने निश्चय किया कि वह स्त्री-रत्न-स्वरूपा अपनी कन्या सत्यभामा और स्यमन्तक मणिको श्रीकृष्णको प्रदान कर देगा। यही उपाय समीचीन (ठीक) है, अन्यथा इस अपराधका मार्जन नहीं हो सकता। इसीसे मुझे सौभाग्यकी पुनः प्राप्ति हो सकती है; इसीसे सारा विरोध शान्त हो सकता है ॥ ४०-४२ ॥

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित् स्वसुतां शुभाम्।

मणिञ्च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥

सत्राजित्ने विवेकके द्वारा मन-ही-मन इस प्रकारसे निश्चय किया और इस कार्यकी सिद्धिके लिए स्वयं ही उद्यम किया।

उन्होंने शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अपनी गौरवर्ण कन्या सत्यभामा एवं स्यमन्तक मणिको श्रीकृष्णके लिए उपहार-स्वरूप प्रदान कर दिये ॥ ४३ ॥

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि।

बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥

कृतवर्मा इत्यादि बहुत-से राजाओंने पहले भी सत्राजित्से सत्यभामाके साथ विवाह करनेकी प्रार्थना की थी। सत्यभामा स्वभाव, सौन्दर्य, स्निग्धता, सरलता एवं अन्यान्य विविध सद्गुणोंसे सम्पन्न थीं। भगवान् श्रीकृष्णने उनके साथ विधि-विधानपूर्वक विवाह कर लिया ॥ ४४ ॥

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप।

तवास्तां देवभक्तस्य वयञ्च फलभागिनः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे स्यमन्तकोपाख्याने
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

श्रीकृष्णने सत्राजित्से कहा—हे राजन्! हमें इस मणिकी आवश्यकता नहीं है। आप सूर्यके भक्त हैं, यह आपके ही पास रहे, क्योंकि आप अपुत्रक हैं, अतः हम तो इसके फलके ही भागीदार हैं ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके छप्पनवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्यमन्तकमणि-हरण, शतधन्वाका उद्धार तथा अक्रूरजीको
पुनः द्वारका बुलाना

श्रीबादरायणिरुवाच—

विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान्।

कुन्तीञ्च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरुन् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णने जब सुना कि कुन्ती एवं पाण्डव लाक्षागृहमें अग्निसे जल गये हैं, तो वे कुल-परम्पराकी रक्षाके लिए बलदेवके साथ कुरुओंसे मिलने हस्तिनापुर गये। यद्यपि श्रीकृष्ण इस सत्यको जानते थे कि पाण्डव सुरङ्ग पथके द्वारा लाक्षागृहसे (विदुरजीकी प्रेरणासे) सुरक्षित निकलकर अन्यत्र चले गये हैं ॥ १ ॥

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च।

तुल्यदुःखौ च सङ्गम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥

हस्तिनापुर पहुँचनेपर श्रीकृष्णने भीष्म, विदुर, कृपाचार्य, गान्धारी एवं द्रोणाचार्यके साथ संवेदना व्यक्त करते हुए 'हाय! हाय! यह बड़े ही दुःखकी बात हुई है' इत्यादि शोकाभिव्यञ्जक अनेक वचन कहे ॥ २ ॥

लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः।

अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मात्त गृह्यते ॥ ३ ॥

हे राजन्! इधर अवसर प्राप्त करके अक्रूर एवं कृतवर्माने शतधन्वासे कहा कि तुम सत्राजित्को मारकर उससे मणि क्यों नहीं ले लेते? ॥ ३ ॥

योऽस्मभ्यं सम्प्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः।

कृष्णायादात्र सत्राजित् कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥

सत्राजित् हमें कन्या-रत्न प्रदान करनेके लिए वचनबद्ध था। अब इसने हमारा तिरस्कार करके श्रीकृष्णके साथ उसका विवाह कर दिया है। अब यह भी क्यों न अपने मरे हुए भाईका अनुगामी बने। इसे भी यमपुरी भेज दिया जाना चाहिये॥४॥

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः।

शयानमवधील्लोभात् स पापः क्षीणजीवितः॥५॥

शतधन्वा दुर्जन, हतायु और पापी तो था ही, अक्रूर और कृतवर्माकी बातें सुनकर भेद-बुद्धिवाला वह पापी उनसे प्रभावित हो गया और मणिके लोभसे उसने सोते हुए सत्राजित्को मार डाला। (भगवान्पर मिथ्यापवादका यह फल सत्राजित्को प्राप्त हुआ था)॥५॥

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत्।

हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान्॥६॥

सत्राजित्के मारे जानेपर अन्तःपुरकी स्त्रियाँ विलाप करने लगीं एवं अनाथके समान क्रन्दन करने लगीं, परन्तु शतधन्वा वहाँसे मणि लेकर इस प्रकार चल दिया, जिस प्रकार मांस बेचनेवाला कसाई पशुओंको मारकर चल देता है॥६॥

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता।

व्यलपत् तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती॥७॥

सत्यभामा अपने मृत पिताको देखकर शोकसे व्याकुल हो गयीं और “हाय! मैं मारी गयी।” कहकर मूर्च्छित हो गयीं। पुनः चेतना प्राप्त होनेपर ‘हा पिताजी! हा पिताजी’ कहते हुए विलाप करने लगीं॥७॥

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम्।

कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽचख्यौ पितुर्वधम्॥८॥

उन्होंने तेलसे भरे हुए पात्रमें पिताके शवको रखवा दिया और स्वयं हस्तिनापुर चल दीं। वहाँ उन्होंने बड़े दुःखी मनसे

श्रीकृष्णको अपने पिताके वधका समाचार सुनाया—यद्यपि श्रीकृष्ण इस बातको पहलेसे ही जानते थे ॥ ८ ॥

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ।

अहो नः परमं कष्टमित्यस्त्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥

हे राजन्! बलराम और श्रीकृष्ण यह समाचार सुनकर मनुष्योचित व्यवहार करते हुए शोकके साथ कहने लगे—अहो! यह तो हमारे ऊपर महान् दुःख आ पड़ा है, यह कहकर (लोगोंके समाधानके लिए) अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे विलाप करने लगे ॥ ९ ॥

आगत्य भगवांस्तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरम् ।

शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥

तदनन्तर भाई बलराम और सत्यभामाके साथ श्रीकृष्ण हस्तिनापुरसे द्वारका लौट आये और शतधन्वाका वध एवं उससे मणि प्राप्त करनेका प्रयत्न करने लगे ॥ १० ॥

सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ।

साहाय्ये कृतवर्म्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥

जब शतधन्वाको इस बातका पता चला कि श्रीकृष्ण मुझे मारनेका उद्योग कर रहे हैं, तब वह भयभीत हो गया और प्राणोंकी रक्षाके लिए उसने कृतवर्मासे सहायता माँगी। कृतवर्माने उसकी प्रार्थनाको अस्वीकार कर दिया ॥ ११ ॥

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ।

को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥

कंसः सहानुगोऽपीतो यद्वेषात्त्याजितः श्रिया ।

जरासन्धः सप्तदशसंयुगाद्विरथो गतः ॥ १३ ॥

कृतवर्माने कहा—शतधन्वा! बलराम एवं श्रीकृष्ण ईश्वर-स्वरूप हैं, उनसे वैर मोल लेनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। जिनके साथ विद्वेष करनेसे राजा कंस श्रीभ्रष्ट हो गया था और अपने अनुचरोंके साथ मारा गया था, इतना बड़ा शूरवीर राजा जरासन्ध

भी सत्रह बार युद्ध करके अन्तमें रथहीन होकर लौट गया था, उनके प्रति अपराध करके भला किसीका मङ्गल हो सकता है? ॥ १२-१३ ॥

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत।

सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥

जब कृतवर्माने शतधन्वाको टका-सा उत्तर दे दिया, तब शतधन्वाने अक्रूरजीसे सहायताके लिए अनुनय-विनय की। अक्रूरने कहा—भाई! जो बलराम और श्रीकृष्णके प्रभावको जानता है, वह भला उनसे वैर-विरोध ठान सकता है? ॥ १४ ॥

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च।

चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया ॥ १५ ॥

वे परमेश्वर हैं, खेल-ही-खेलमें इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं संहार करते हैं तथा उनकी मायाके प्रभावसे विश्व-स्रष्टा ब्रह्मादि भी मोहित-से रहते हैं और यह नहीं जान पाते कि उनकी लीलाका प्रयोजन क्या है ॥ १५ ॥

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना।

दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥

सात वर्षकी अवस्थामें जिन्होंने अनायास ही गोवर्द्धन पर्वतको उठाकर एक ही हाथमें इस प्रकार धारण कर लिया, जिस प्रकार नन्हे-नन्हे शिशु बरसाती छत्तेको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं ॥ १६ ॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे।

अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७ ॥

मैं तो ऐसे अद्भुतकर्मा भगवान्को प्रणाम करता हूँ। वे अनन्त, अनादि, निर्विकार और सर्वान्तर्यामी हैं ॥ १७ ॥

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम्।

तस्मिन् न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥

परीक्षित्! जब अक्रूरने भी उसके अनुरोधपर अपनी सहमति नहीं जताई, तब शतधन्वाने वह मणि अक्रूरको समर्पणकर उनके संरक्षणमें रख दी और सौ योजन तक भाग सकनेवाले घोड़ेपर सवार होकर बड़ी फुर्तीसे भाग गया ॥ १८ ॥

गरुडध्वजमारुह्य रथं राम-जनार्दनौ ।

अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥

हे राजन्! बलराम एवं श्रीकृष्ण भी रथपर सवार हो गये और गुरुद्रोही (सत्राजित्की हत्या करनेवाले) शतधन्वाका पीछा करने लगे। भगवान्के रथमें महावेगशाली घोड़े जुते हुए थे और गरुड-चिन्हसे अङ्कित ध्वजा फहरा रही थी ॥ १९ ॥

मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् ।

पद्भ्यामधावत् सन्त्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषाम् ॥ २० ॥

शतधन्वाका घोड़ा सौ योजन दूर मिथिला नगरीके उपवनमें पहुँच गया और अशक्त होकर भूमिपर गिर पड़ा। भयभीत शतधन्वा घोड़ेको वहीं छोड़कर पैदल ही भागने लगा। क्रोधाविष्ट श्रीकृष्ण भी उसका पीछा करने लगे ॥ २० ॥

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ।

चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥

पैदल दौड़नेवाले शतधन्वाके पीछे भगवान् श्रीकृष्ण भी पैदल ही दौड़े और तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका मस्तक उतार दिया। इसके बाद उसके वस्त्रोंमें मणि खोजने लगे ॥ २१ ॥

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ।

वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥

जब उसके पास मणि नहीं मिली, तब श्रीकृष्ण बलदेवके पास आये और बोले—मैंने व्यर्थ ही शतधन्वाको मार डाला, उसके पास मणि तो थी ही नहीं ॥ २२ ॥

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना।

कस्मिंश्चित् पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥

इसपर भगवान् बलरामजीने कहा—निस्सन्देह, शतधन्वाने इस मणिको किसी-न-किसीके पास छिपा रखा होगा। तुम द्वारकापुरी लौट जाओ और मणि-रक्षकका पता लगाओ ॥ २३ ॥

अहं वैदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम।

इत्युक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः ॥ २४ ॥

मैं यहाँ मिथिलापुरीमें विदेहराजसे मिलना चाहता हूँ, वे मेरे अति प्रिय भक्त हैं। परीक्षित्! यह कहकर यदुनन्दन बलदेवने मिथिलापुरीमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः।

अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ २५ ॥

मिथिलानरेश जनकजी बलदेवको देखकर सहसा ही उठ खड़े हुए। उन्होंने बड़े आनन्दके साथ अपने परमाराध्य प्रभु बलरामकी शास्त्रीय विधि एवं विविध उपहारोंसे पूजा की ॥ २५ ॥

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः।

मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना।

ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ २६ ॥

अपने प्रिय भक्त महात्मा जनकके द्वारा प्रीतिपूर्वक सम्मानित होकर सर्वशक्तिमान् बलदेव कुछ वर्षों तक वहीं रहे। धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधनने बलदेवको श्रीकृष्णसे दूर देखा, तो अवसरका लाभ उठाते हुए उनसे गदायुद्धके दाव-पेंच सीख लिये ॥ २६ ॥

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः।

अप्राप्तिञ्च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥

इधर अपनी प्रियतमा सत्यभामाका प्रिय कार्य करके सर्वव्यापक भगवान् केशव द्वारका लौट आये। उन्होंने सत्यभामाको बतला

दिया कि तुम्हारे पिताका वध करनेवाले शतधन्वाको मार डाला गया है, परन्तु मणि उसके पास नहीं मिली ॥ २७ ॥

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ।

साकं सुहृद्भिर्भगवान् या याः स्युः साम्परायिकीः ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने बान्धवोंके साथ मिलकर अपने श्वसुर सत्राजित्की शास्त्रविहित सम्पूर्ण पारलौकिक क्रियाएँ सम्पन्न करवायीं ॥ २८ ॥

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ।

व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥

परीक्षित्! अक्रूर एवं कृतवर्मा मणि-हरणके मुख्य प्रयोजक थे। उन्होंने ही सत्राजित्के वधके लिए शतधन्वाको उकसाया था। जैसे ही उन दोनोंने शतधन्वाके निधनका समाचार सुना, वे भयविह्वल होकर द्वारकापुरीसे भाग गये ॥ २९ ॥

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन् वै द्वारकौकसाम् ।

शारीरा मानसास्तापा मुहुदैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥

परीक्षित्! अक्रूरके द्वारकासे चले जानेपर पुरवासियोंमें शारीरिक, मानसिक, आधिदैविक (भूकम्प, समुद्री लहरोंका उद्‌वेलन एवं मौसम सम्बन्धित उत्पात), आधिभौतिक (पशु, कीट एवं मनुष्योंके द्वारा किये गये उत्पात) सन्तापके रूपमें विविध दुःख पुनः-पुनः उत्पन्न होने लगे ॥ ३० ॥

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ।

मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥

जो लोग ऐसा कहते हैं, वे पहले स्वयं ही कहे हुए श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूल जाते हैं। कुछ लोग अक्रूरके प्रवास-गमनको अमङ्गलका कारण मानने लगे। जहाँ मुनिजनोंके शरण श्रीकृष्ण स्वयं विराजमान हों, वहाँ अक्रूरके न रहनेसे क्या कोई अमङ्गल

हो सकता है? यदि उस स्थानपर विपत्तियाँ आती हैं, तो वे सब भगवान्‌की इच्छापर ही आधारित हैं॥ ३१॥

देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै।

स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत् स्म काशिषु॥ ३२॥

एक समय काशीमें इन्द्रदेवने वर्षा नहीं की, सूखा पड़ गया। उन्हीं दिनों अक्रूरके पिता श्वफल्क काशी आये। काशी पुरीके राजाने अपनी पुत्री गान्दिनीका विवाह श्वफल्कके साथ कर दिया। ठीक इसके बाद उस नगरमें वर्षा होने लगी॥ ३२॥

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह।

देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः॥ ३३॥

वृद्धजनोंका कहना था कि पिताके समान ही प्रभावशाली ये अक्रूर भी जहाँ-जहाँ रहते हैं, वहाँ-वहाँ सम्यक्‌रूपेण वर्षा होती है और विभिन्न प्रकारके सन्तापों, उपद्रवों एवं महामारियोंका भय नहीं रहता है॥ ३३॥

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम्।

इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः॥ ३४॥

बड़े-बूढ़े इस प्रकारसे अक्रूरकी महिमाका बखान कर रहे थे। उनके वचनोंको सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने काशीमें 'दानपति' नामसे विख्यात अक्रूरको बुलवा लिया। परीक्षित्! भगवान् जानते थे कि अक्रूरका न होना पुरीमें होनेवाले अमङ्गलों एवं उत्पातोंका कारण नहीं है, अपितु मणिको लेकर उनका भागना ही प्रधान कारण है॥ ३४॥

पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः।

विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह॥ ३५॥

ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना।

स्यमन्तको मणिः श्रीमान् विदितः पूर्वमेव नः॥ ३६॥

अक्रूरके आनेपर श्रीकृष्णने उनका सत्कार किया और विविध प्रकारसे मधुर एवं प्रियकर वचनोंसे उनके साथ संभाषण किया। भगवान् अखिल तत्त्व और सभीके हृदयके भावोंको जाननेवाले हैं। वे हँसते हुए अक्रूरसे कहने लगे—हे दानपति अक्रूर! शतधन्वाने तुम्हारे पास जिस प्रकाशमान् मणिको धरोहरके रूपमें रखा है, वह मैं भली-भाँति जानता हूँ। मुझे यह भी ज्ञात है कि वह अब भी तुम्हारे पास है ॥ ३५-३६ ॥

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृहीयुर्दुहितुः सुताः ।

दायं निनीयापः पिण्डान् विमुच्यर्णञ्च शेषितम् ॥ ३७ ॥

देखो! सत्राजित्का कोई पुत्र नहीं था। अतः उनकी पुत्री सत्यभामाके पुत्र ही उन्हें तिलाञ्जलि एवं पिण्डदान प्रदान करेंगे। वे ही उनका ऋण चुकायेंगे और बचे हुए धनके उत्तराधिकारी होंगे—यही शास्त्रोंका विधान है ॥ ३७ ॥

तथापि दुर्द्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ।

किन्तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥

दर्शयस्व महाभाग बद्धूनां शान्तिमावह ।

अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥

हे विश्वसनीय अक्रूर चाचाजी! इस मणिको दूसरा कोई कठिनाईसे ही रख पायेगा, आप बड़े व्रतनिष्ठ हैं इसलिए यह आपके पास ही रहे, परन्तु इस मणिके विषयमें मेरे बड़े भाई बलदेव मुझपर विश्वास नहीं करते, हमेशा सन्देह बनाये रखते हैं। अतः हे महाभाग! आप इस मणिको बस दिखा भर दें, जिससे मेरे बन्धु-बान्धवोंका हृदय शान्त हो जाय। आपके पास यह मणि नहीं है, ऐसा तो आप कह ही नहीं सकते, क्योंकि इस समय आपके घरमें लगातार स्वर्ण वेदियोंसे युक्त यज्ञोंका अनुष्ठान हो रहा है ॥ ३८-३९ ॥

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ।

आदाय वाससाच्छत्रं ददौ सूर्य्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकारसे समन्वयात्मक वचनोंसे (साम्यभावसे) अक्रूरका तिरस्कार ही किया। अक्रूरने वस्त्रोंमें छिपी हुई दीप्तिमयी मणि निकालकर श्रीकृष्णको प्रदान कर दी। मणि सूर्यके समान जगमगा रही थी॥ ४० ॥

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः।

विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत् प्रभुः॥ ४१ ॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने इस मणिको अपने जाति भाइयोंको दिखाया और अपने ऊपर लगे मिथ्या कलङ्क आदि आक्षेपोंको दूर किया। भगवान्ने इस मणिको पुनः अक्रूरको दे दिया॥ ४१ ॥

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णो-

र्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलञ्च।

आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा,

दुष्कीर्त्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे स्यमन्तकोपाख्याने

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

परीक्षित्! यह आख्यान जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी वीरतासे परिपूर्ण, मङ्गल-दायक एवं पाप-विनाशक है। जो इस चरितका पठन, श्रवण अथवा स्मरण करते हैं, उनके मिथ्या कलङ्क एवं पापोंका परिहार हो जाता है और वे परम शान्ति प्राप्त करते हैं॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सत्तावनवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके साथ कालिन्दी आदि पाँच कन्याओंका विवाह
तथा पाण्डवोंसे मिलनेके लिए इन्द्रप्रस्थ गमन

श्रीशुक उवाच—

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः।

इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! समस्त ऐश्वर्योंके स्वामी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको जब यह पता चला कि पाण्डव लाक्षाभवनमें जले नहीं है, तब वे उनसे मिलनेके लिए सात्यकि (युयुधान) आदि यादवोंको लेकर इन्द्रप्रस्थ गये ॥ १ ॥

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम्।

उत्तस्थुर्युगपद्बीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥

कुन्तीके वीर पुत्र पाण्डवोंने देखा कि अखिलेश्वर भगवान् मुकुन्द पधार रहे हैं, तो वे सब-के-सब एक साथ एक ही समय आसनसे इस प्रकार उठ खड़े हुए जिस प्रकार प्राणोंका सञ्चार हो जानेसे इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं ॥ २ ॥

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः।

सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥

वीर पाण्डवोंने श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, तो उनके अङ्ग-स्पर्शसे वे निष्पाप हो गये। भगवान्की प्रेमभरी मुसकान-श्रीसे सुशोभित मुख-पद्मका दर्शन करके पाण्डव परम आनन्दित हुए ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम्।

फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णने युधिष्ठिर एवं भीमके चरणोंमें प्रणाम किया तथा अर्जुनको हृदयसे लगाया। जुड़वाँ भाई नकुल और सहदेवने श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रणाम किया ॥ ४ ॥

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता।

नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥

जब श्रीकृष्ण उत्तम सिंहासनपर विराजमान हो गये, तब सद्चरित्रशीला (परमसाध्वी), नवविवाहिता, परम सुन्दरी द्रौपदी कुछ लजाती हुई धीरे-धीरे श्रीकृष्णके समीप आयी और उन्हें प्रणाम किया ॥ ५ ॥

तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः।

निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् पाण्डवोंने सात्यिका भी स्वागत-सत्कार और अभिवन्दन किया। वे एक आसनपर बैठ गये। श्रीकृष्णके अन्यान्य साथी भी समुचित सत्कार प्राप्त करके उनके चारों ओर विविध आसनोंपर बैठ गये ॥ ६ ॥

पृथां समागत्य कृताभिवादन-

स्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः ।

आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां,

पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण अपनी बुआ कुन्तीके समीप गये और झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। कुन्तीके नेत्र स्नेहसे आर्द्र हो उठे। भीगे नयनोंसे उन्होंने श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते हुए कहा, “तुम्हारे मुखमण्डलकी शोभापर मेरे कोटि-कोटि प्राण निछावर हैं।” तत्पश्चात् कुन्तीने उनसे बन्धु-बान्धवोंकी कुशल-क्षेम पूछी और श्रीकृष्णने भी उनका एवं द्रौपदीका कुशल-समाचार पूछा ॥ ७ ॥

तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ।

स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥

प्रेम-विह्वलताके कारण महारानी कुन्तीका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। उनकी आँखोंसे भर-भर आँसू बह रहे थे। उन्हें दुर्योधनके द्वारा दिये गये विविध कष्टोंका स्मरण हो रहा था। क्लेशोंकी समाप्तिपर जीव आत्मामें जिनका दर्शन करता है, उन्हीं श्रीकृष्णसे वे कहने लगीं ॥ ८ ॥

तदैव कुशलं नोऽभूत् सनाथास्ते कृता वयम् ।

ज्ञातीन् नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥

महारानी कुन्तीने कहा—श्रीकृष्ण! जिस समय तुमने हमें अपना बान्धव मानकर हमारा स्मरण किया और भैया अक्रूरको भेजा, उसी समय ही हमारा समस्त कुशल-मङ्गल हो गया था। हम तुम्हारे संरक्षणमें सनाथ हुए हैं ॥ ९ ॥

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ।

तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥

यद्यपि तुम इस सम्पूर्ण जगत्के ही परम हितैषी, सुहृद और अपने-परायेके भेदसे रहित हो तथापि जो तुम्हारा सदैव ध्यान करते हैं, उनके हृदयमें विराजित होकर तुम उनके कष्टोंका समूल नाश कर देते हो ॥ १० ॥

श्रीयुधिष्ठिर उवाच—

किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ।

योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्ना दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरने कहा—हे अधीश्वर श्रीकृष्ण! हमने ऐसा कौन-सा मङ्गल आचरण किया था, यह समझमें नहीं आता। योगेश्वरोंको भी जिनके दर्शन दुर्लभ हैं, ऐसे आप हम-जैसे विषयासक्तोंको दर्शन दे रहे हैं ॥ ११ ॥

इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम्।

जनयन् नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार राजा युधिष्ठिरने भगवान्का अतिशय स्वागत-सत्कार किया और उनसे इन्द्रप्रस्थमें रहनेका अनुरोध किया। अतः भगवान् श्रीकृष्ण वहाँके निवासियोंके नेत्रोंको अपनी रूप माधुरीसे आनन्द प्रदान करते हुए वर्षाकालीन कुछ महीनों तक सुखपूर्वक रहे ॥ १२ ॥

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम्।

गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥

साकं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं विपिनं महत्।

बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत् परवीरहा ॥ १४ ॥

हे राजन्! एक बार महाबलशाली, शत्रुओंके संहारक अर्जुन कपि-चिह्नसे चिह्नित ध्वजासे युक्त रथपर सवार होकर गाण्डीव नामक धनुष एवं अक्षय बाणोंसे परिपूर्ण दो तरकस लेकर और कवच पहनकर श्रीकृष्णके साथ विपिन-विहारके लिए गये। वहाँ उन्होंने ऐसे महारण्यमें प्रवेश किया, जो हिंसक पशुओंसे भरा हुआ था ॥ १३-१४ ॥

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान् शूकरान् महिषान् रुरुन्।

शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणान् शशशल्लकान् ॥ १५ ॥

उस वनमें अर्जुनने बाणोंका लक्ष्य (निशाना) साधकर बहुत-से बाघ, सूअर, भैंसे, रुरु (काले हिरन), शरभ, गवय (नीलापन लिये हुए भूरे रङ्गके हिरन), गेंडे, हरिण, खरगोश एवं सजारु (साही) इत्यादि जानवरोंको बीध डाला ॥ १५ ॥

तान् निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान् पर्व्वण्युपागते।

तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥

जिन पशुओंका मांस विशुद्ध था, उन्हें सेवकगण 'पर्वकाल' जानकर यज्ञकी आहुतिके लिए महाराज युधिष्ठिरके पास

क्रिया-व्यवहारके लिए ले आये। इधर थके हुए अर्जुन प्याससे व्याकुल होनेके कारण यमुनाकी ओर चले आये॥ १६॥

तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ।

कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम्॥ १७॥

महारथी वासुदेव एवं अर्जुनने यमुनामें स्नान किया और उसके निर्मल जलका पान किया। वहीं उन्होंने इधर-उधर विचरण करती हुई एक सुन्दरी कन्याको देखा॥ १७॥

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम्।

पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम्॥ १८॥

रमणीकुल-उत्तमा वह कन्या सुशोभन दन्त-पंक्ति, सुरम्य वदन एवं चारु नितम्बसे युक्त थी। सखा श्रीकृष्णके आदेशसे अर्जुन उसके पास गये और पूछने लगे॥ १८॥

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतो वा किं चिकीर्षसि।

मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने॥ १९॥

अर्जुनने उससे कहा—हे क्षीणमध्ये! हे सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? यहाँपर कहाँसे आयी हो? क्या करना चाहती हो? तुम्हें देखकर ऐसा लग रहा है कि तुम मनचाहे पतिकी कामना कर रही हो। हे शोभने! तुम सारी बातें हमें बतलाओ॥ १९॥

श्रीकालिन्द्युवाच—

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती।

विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता॥ २०॥

श्रीकालिन्दीने कहा—मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूँ। मैं सर्वश्रेष्ठ वर-प्रदाता एवं वरेण्य विष्णुको ही पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ। इसी अभिलाषासे कठिन तपस्या कर रही हूँ॥ २०॥

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम्।

तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः॥ २१॥

हे वीर! मैं लक्ष्मीके परम आश्रय (श्रीनिवास) विष्णुके अतिरिक्त अन्य किसीको पति नहीं बना सकती। अनार्थोंके शरण्य एवं स्वभक्तोंके रक्षक वे भगवान् मुकुन्द मुझपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले।

निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥

मुझे कालिन्दी नामसे जाना जाता है। इस यमुना जलके भीतर मेरे पिता सूर्यदेवने मेरे लिए भवन निर्माण करा दिया है। जब तक भगवान् अच्युत श्रीहरिके दर्शन नहीं होंगे, तब तक मैं यही रहूँगी ॥ २२ ॥

तथावदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम्।

रथमारोप्य तद्विद्वान् धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥

परीक्षित्! अर्जुन श्रीकृष्णके समीप गये और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। भगवान् वासुदेव तो कालिन्दीके मनोगत भावको पहलेसे ही जानते थे। उन्होंने कालिन्दीको रथ पर बिठाया और युधिष्ठिरके पास पहुँचे। (अर्जुनकी बात सुनकर श्रीकृष्ण कालिन्दीके समीप आये और कहा—“अयि सुन्दरि! वरणीय विष्णु मैं ही हूँ। अपने पिताके द्वारा बतलाये गये मेरे ध्यानके एवं अपने शुद्ध हृदयमें उदित भावके प्रमाणरूपमें तुम मुझे पहचान सकती हो।” तब कालिन्दीका अभिमत जानकर कृष्णने उन्हें रथपर चढ़ाया और युधिष्ठिरके भवनमें प्रवेश किया) ॥ २३ ॥

यदैव कृष्णः सन्दिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम्।

कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥

हे राजन्! उसी समय एक बार पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णसे नगर-निर्माण करवानेका अनुरोध किया। भगवान् ने उसी समय विश्वकर्माके द्वारा विविध प्रकारसे चित्र-विचित्र एवं अद्भुत एक आश्चर्यजनक नगर तैयार करवा दिया ॥ २४ ॥

भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया।

अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥

भगवान् अपने सम्बन्धी पाण्डवोंको आनन्द देने और उनका हित करनेके लिए वहाँ बहुत दिनों तक रहे। एक बार अग्निदेवको भोजनके लिए खाण्डववन प्रदान करने हेतु वे अर्जुनके सारथि भी बने ॥ २५ ॥

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्ध्यान् श्वेतान् रथं नृप।

अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥

हे राजन्! खाण्डववनका भोजन मिल जानेसे अग्निदेवने प्रसन्न होकर अर्जुनको गाण्डीव नामक धनुष, श्वेत वर्णके चार घोड़े, रथ एवं अक्षय बाणोंसे परिपूर्ण दो तरकस प्रदान किये। अग्निदेवने ऐसा कवच भी प्रदान किया, जिसे कोई भी अस्त्रधारी किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे भेद नहीं सकता था ॥ २६ ॥

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत्।

यस्मिन् दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशि भ्रमः ॥ २७ ॥

अर्जुनने श्रीकृष्णके कहनेसे मय नामक दानवको खाण्डव-दाहके समय जलनेसे बचा लिया था। इसलिए उसने अर्जुनके साथ मित्रता कर उनके लिए एक विचित्र सभाका निर्माण कर दिया। इसी सभामें दुर्योधनको जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रम हुआ था ॥ २७ ॥

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः।

आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥

कुछ दिनोंके बाद श्रीकृष्ण अर्जुन एवं अन्यान्य बान्धवोंका अनुमोदन प्राप्त करके सात्यकि आदि साथियोंके साथ पुनः द्वारका लौट आये ॥ २८ ॥

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यत्वृक्ष ऊर्ज्जिते।

वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलः ॥ २९ ॥

यहाँ आकर परम मङ्गलमय श्रीकृष्णने रवि-शुद्धि आदि सम्पद्युक्त नक्षत्र, विवाहयोग्य सुपुष्प ऋतु, प्रशंसित पवित्र चन्द्र लग्न इत्यादि अन्य ग्रहोंकी शुभ स्थितिमें कालिन्दीके साथ विवाह कर लिया। इससे उनके स्वजन-सम्बन्धियोंको परम मङ्गल और परमानन्दकी प्राप्ति हुई॥ २९॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ।

स्वयंवरे स्व-भगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम्॥ ३०॥

परीक्षित्! विन्द और अनुविन्द—दोनों अवन्ती देशके राजा थे। ये दोनों दुर्योधनके अनुयायी और उसीके वशवर्ती थे। इनकी बहिन थी मित्रविन्दा, जो भगवान् श्रीकृष्णमें परम आसक्त थी। वह स्वयंवरमें भगवान्को अपना पति बनाना चाहती थी, पर उन दोनोंने उसे श्रीकृष्णका वरण करनेसे रोक दिया॥ ३०॥

राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः।

प्रसह्य हतवान् कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यताम्॥ ३१॥

हे राजन्! यह मित्रविन्दा श्रीकृष्णकी बुआ राजाधिदेवीकी पुत्री थी। श्रीकृष्ण स्वयंवर सभासे प्रतिद्वन्द्वी राजाओंके समक्ष ही मित्रविन्दाका बलपूर्वक हरण कर लाये॥ ३१॥

नग्नजित्राम कौशल्य आसीद्राजातिधार्मिकः।

तस्य सत्याभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप॥ ३२॥

राजेन्द्र! अयोध्याके नग्नजित् नामके एक अति धार्मिक राजा थे। उनकी एक परम सुन्दरी पुत्री थी, जिसका नाम था सत्या। पिताके नामके अनुसार इस कन्याको नाग्नजिती भी कहा जाता था॥ ३२॥

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान्।

तीक्ष्णशृङ्गान् सुदुर्द्धर्षान् वीरगन्धासहान् खलान्॥ ३३॥

महाराज नग्नजित्ने प्रतिज्ञा की थी कि जो राजा तीक्ष्ण सींगोंसे युक्त, अति दुर्धर्ष, वीरोंकी गन्धको न सह सकनेवाले, क्रूर

स्वभाव गो-जातीय सात बैलोंको पराजित कर पायेगा, वही इस कन्यासे विवाह कर सकेगा, किन्तु अब तक कोई भी राजा उस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हुआ था। अतः राजकुमारीका भी विवाह नहीं हुआ था ॥ ३३ ॥

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः ।

जगाम कौशल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥ ३४ ॥

जब सात्वत-पति भगवान् श्रीकृष्णने सुना कि दुर्दान्त बैलोंको पराजित करनेवाला वृषजयी पुरुष ही सत्याको प्राप्त कर सकता है, तब वे बड़ी सेनाको साथ लेकर अयोध्या पहुँचे ॥ ३४ ॥

स कोशलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ।

अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन् प्रतिनन्दितः ॥ ३५ ॥

कोशलाधिपति नग्नजित्ने बड़े प्रेमके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी अगवानी की। उन्हें आसनादि प्रदान किये तथा महापूजाकी अन्यान्य सामग्रियोंके साथ उनका सत्कार एवं अभिनन्दन किया। श्रीकृष्णने भी नग्नजित्का अभिवादन किया ॥ ३५ ॥

वरं विलोक्याभिमतं समागतं,

नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।

भूयादयं मे पतिराशिषोऽनलाः,

करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतः ॥ ३६ ॥

नाग्नजितीने जब चन्द्रशालाकी खिड़कीके छिद्र-पथसे अपने सर्वाभीष्ट श्रीकृष्णको वरके रूपमें आया देखा, तो अभिलाषा करने लगी कि “रमापति श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों। यदि मैंने यत्नके साथ अग्निदेवके व्रतका प्रालन किया हो, तो अग्निदेव मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥” ३६ ॥

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति

श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः ।

लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सया यः

कालेऽदधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥

सत्या मन-ही-मन विचार करने लगी कि लक्ष्मी, शिव, इन्द्रादि लोकपाल एवं ब्रह्मा जिनके पादपद्मोंकी रजको मस्तकपर धारण करते हैं और जो अपनी बनायी हुई धर्म-मर्यादाके परिपालनके लिए समय-समय पर (अवतार लेकर) विचित्र लीला-विग्रह धारण करते हैं, वे भगवान् मेरे प्रति किस प्रकार प्रसन्न होंगे, मैं इसका निर्णय नहीं कर सकती ॥ ३७ ॥

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते।

आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८ ॥

राजा नग्नजित्ने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की और उन्हें सम्बोधन करते हुए पुनः कहा—हे जगत्पते! हे नारायण! आप आत्मानन्दसे परिपूर्ण हैं। हम जैसे तुच्छ प्राणी आपका कौन-सा प्रिय कार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं? ॥ ३८ ॥

श्रीशुक उवाच—

तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः।

मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—कुरुनन्दन! भगवान् श्रीकृष्ण उस समय आसनपर विराजमान थे। श्रीकृष्ण नग्नजित्से प्रसन्न हो गये और मेघके समान गम्भीर वाणीमें हँसते हुए कहने लगे ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

नरेन्द्र-याच्या कविभिर्विगर्हिता

राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्त्तिनः ।

तथापि याचे तव सौहृदेच्छया

कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥ ४० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे राजन्! जो क्षत्रिय अपने धर्ममें स्थित है, यदि वह दरिद्र हो जाय, तो भी उसका दूसरोंसे कुछ भी माँगना ठीक नहीं है। प्राचीन पण्डितोंने भी शास्त्रोंमें इसकी

निन्दा की है, तथापि मैं आपके साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहता हूँ। इसी उद्देश्यसे आपकी पुत्रीके साथ विवाहकी प्रार्थना करता हूँ। हमारे यहाँ विवाहमें किसी प्रकारका शुल्क प्रदान करनेकी रीति नहीं है ॥ ४० ॥

श्रीराजोवाच—

कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः।

गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥

राजा नग्नजित्ने कहा—हे प्रभो! आप समस्त सद्गुणोंके एकमात्र आधार हैं। स्वयं लक्ष्मीजी आपके श्रीअङ्गोंमें स्थिर (अचञ्चला) होकर नित्य-निरन्तर वास करती हैं। मेरी पुत्रीके लिए आपकी अपेक्षा अधिक गुणशाली अभीष्ट वर इस मर्त्यलोकमें दूसरा कौन हो सकता है? ॥ ४१ ॥

किन्त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ।

पुंसां वीर्य्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥

हे यादवोत्तम! फिर भी मैंने अपनी पुत्रीके लिए सुयोग्य वर-प्राप्तिकी इच्छासे आनेवाले राजाओंके पराक्रमकी परीक्षाके लिए पहलेसे ही एक प्रण कर लिया है ॥ ४२ ॥

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः।

एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥ ४३ ॥

हे वीरश्रेष्ठ! ये सात दुर्दान्त, दुरवग्रह (कठिनाईसे वशमें आनेवाले) बैल हैं। इनके सींगोंके प्रहारोंसे बहुत-से राजपुत्रोंके अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये हैं और उनका उत्साह भी भङ्ग हो गया है ॥ ४३ ॥

यदिमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन।

वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ॥ ४४ ॥

हे यदुनन्दन! यदि आप इन सात बैलोंका दमन कर सकेंगे, तो हे श्रीपते! आप ही मेरी पुत्रीके अभिलषित वर होंगे ॥ ४४ ॥

एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः।

आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥ ४५ ॥

जब श्रीकृष्णने यह नियम (प्रण) सुना, तब कमरमें वस्त्रको कसकर बाँध लिया। इसके बाद सात मूर्तियाँ प्रकट कीं और खेल-ही-खेलमें सातों बैलोंको नाथ लिया ॥ ४५ ॥

बद्ध्वा तान् दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः।

व्यकर्षल्लीलया बद्धान् बालो दारुमयान् यथा ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्णसे पराजित होनेपर इन बैलोंका घमण्ड टूट गया और उनका पराक्रम धरा-का-धरा रह गया। भगवान् ने सातों बैलोंको रस्सीसे एक साथ ही बाँध लिया। बालक जिस प्रकार रस्सी आदिसे बँधे हुए काठके बैलोंको खींचता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी उन बैलोंको सहज ही खींचने लगे ॥ ४६ ॥

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः।

तां प्रत्यगृह्णद्भगवान् विधिवत् सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥

यह देखकर नग्नजित् विस्मित हो गये और प्रसन्न होकर श्रीकृष्णको अपनी कन्याको अर्पण कर दिया। सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णने राजकुमारी सत्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया, जो सर्वथा उनके अनुरूप थी ॥ ४७ ॥

राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम्।

लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥

राजा नग्नजित्की रानियोंने कन्याके अभिलषित पतिके रूपमें श्रीकृष्णको देखा, तो वे परम आनन्दित हो गयीं। उस समय अतीव उत्साहके कारण वहाँ महान उत्सव मनाया जाने लगा ॥ ४८ ॥

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः।

नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलङ्कृताः ॥ ४९ ॥

शङ्ख, भेरी, नगारे इत्यादि बाजे बजने लगे। चारों ओर गाना-बजाना होने लगा और ब्राह्मण आशीर्वचन कहने लगे।

नर-नारियोंने सुन्दर परिधान पहन लिये तथा फूलोंके हार और अलङ्कारोंसे सज-धजकर मोद मनाने लगे। अयोध्यामें सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ४९ ॥

दश धेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः।

युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥

नव नागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान्।

रथाच्छतगुणानश्वानश्वच्छतगुणान् नरान् ॥ ५१ ॥

कोशल-नरेश राजा नग्नजित्ने दस हजार गायें, गलोंमें हारोंसे विभूषित तथा उत्तम वस्त्रोंसे सुशोभित तीन हजार नव यौवना दासियाँ, नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ अरब सेवक दहेजके रूपमें प्रदान किये ॥ ५०-५१ ॥

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ।

स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोशलः ॥ ५२ ॥

इसके बाद राजा नग्नजित्ने वर-वधूको रथपर चढ़ा दिया और विशाल सैनिकोंसे परिवेष्टित कराके उन्हें विदा किया। राजाका हृदय पुत्री-स्नेहसे आर्द्र हो रहा था ॥ ५२ ॥

श्रुत्वैतद्गुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम्।

भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥

इन सात बैलोंने पहले जिन राजाओंके पराक्रमको ध्वस्त किया था, वे सब-के-सब भगवान् श्रीकृष्णके साथ नाग्नजितीके विवाहका समाचार सुनकर चिढ़ गये। इन असहिष्णु राजाओंने यादवी सेनाके साथ राजकुमारी सत्याको ले जानेवाले श्रीकृष्णपर मार्गके बीचों-बीच आक्रमण कर दिया ॥ ५३ ॥

तानस्यतः शरव्रातान् बन्धुप्रियकृदज्जुनः।

गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥

गाण्डीवधारी-पाण्डववीर अर्जुन सदैव अपने सखा भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिए उत्साहित रहते हैं। सिंह जिस

प्रकार छोटे-छोटे जन्तुओंको खदेड़ देता है, उसी प्रकार अर्जुनने बाणोंकी वर्षा करके उन राजाओंको अनायास ही कालका ग्रास बना दिया ॥ ५४ ॥

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ।

रेमे यदूनामृषभो भगवान् देवकीसुतः ॥ ५५ ॥

यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने श्वसुर द्वारा दिये गये उपहारोंको बड़े आदरके साथ ग्रहण किया। वे नाग्नजिती एवं दहेजके साथ द्वारका आ गये और वहाँ सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ ५५ ॥

श्रुतकीर्त्तैः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ।

कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः सन्तर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥

भद्रा कैकय देशकी राजकुमारी थी। वह श्रीकृष्णकी बुआ श्रुतकीर्त्तिकी पुत्री थी। उसके सन्तर्दन आदि भाइयोंने स्वयं ही उसे श्रीकृष्णको दे दिया तो श्रीकृष्णने उसका पाणिग्रहण कर लिया ॥ ५६ ॥

सुताञ्च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्ष्णैर्युताम् ।

स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥ ५७ ॥

मद्रप्रदेशका राजा था मद्रराज। उसकी शुभ लक्ष्णोंसे सम्पन्न एक पुत्री थी, जिसका नाम था लक्ष्मणा। श्रीकृष्ण लक्ष्मणाको अकेले ही स्वयंवरसे बलपूर्वक उसी प्रकार हरण कर लाये थे, जिस प्रकार गरुडने बलपूर्वक स्वर्गसे अमृत हरण कर लिया था। भगवान्ने लक्ष्मणासे विवाह सम्पन्न किया ॥ ५७ ॥

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः ।

भौमं हत्वा तन्निरोधादाहताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे अष्टमहिष्युद्वाहो
नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

परीक्षित्! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण नरकासुरका विनाश करके उसके अन्तःपुरमेंसे सुरम्य-दर्शना कई हजार बन्दी स्त्रियोंको ले आये और उन्हें अपनी भार्या बनाया ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अष्टावनवे अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

भौमासुरका उद्धार और उसके द्वारा बन्दी सोलह हजार
एक सौ राजकन्याओंके साथ श्रीकृष्णका विवाह

श्रीराजोवाच—

यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः।

निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

श्रीपरीक्षित् महाराजने कहा—हे मुनिवर! जैसा कि आप कह रहे थे कि भूमिपुत्र भौमासुर (नरकासुर) ने सोलह हजार सुन्दर स्त्रियोंको बन्दीगृहमें बन्दी कर रखा था। शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णने उसे क्यों और किस प्रकारसे मारा? हमें उनका यह अद्भुत चरित्र सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

इन्द्रेण हतच्छत्रेण हतकुण्डलबन्धुना।

हतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम्।

सभाय्यो गरुडारूढः प्रागज्योतिषपुरं ययौ ॥ २ ॥

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम्।

मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्व्वत आवृतम् ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—नरकासुरने वरुणदेवका (वारिवर्षी) छत्र, अदितिके (अमृतस्रावी) कुण्डल एवं मन्दर पर्वतपर स्थित मणिपर्वत नामक देव-विहार-स्थलीको छीन लिया था। देवराज इन्द्र द्वारका आये और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको नरकासुरके अत्याचारोंके विषयमें बतलाया। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामाके साथ गरुडपर सवार होकर नरकासुरकी राजधानी प्रागज्योतिषपुर पहुँचे। प्रागज्योतिषपुर चारों ओर भयङ्कर एवं सुदृढ़ दस हजार मुर-पाशों (तारोंके बने हुए

जालों) के अवरोधोंसे पटा पड़ा था। उसके बाद चारों ओर पहाड़ोंके बने हुए किले थे और उसके बाद शस्त्रोंके घेरे थे। इसी प्रकार क्रमशः जल-दुर्ग, अग्नि-दुर्ग और वायु-दुर्ग बने हुए थे, जिनके कारण वहाँ पहुँचना अति दुष्कर था।

भगवान् वराह जब अतल लोकमें डूबी पृथ्वीको निकालने गये थे, उस समय पृथ्वीके संयोगसे भौमासुर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे नरकासुर भी कहा जाता है। असुर बालकको देखकर भगवान् उसे मारना चाहते थे, परन्तु पृथ्वीदेवीने उनसे प्रार्थनाकी कि आप इसे उसी समय मारना, जब मैं आपसे कहूँ। भगवान्ने स्वीकृति प्रदान कर दी। भौमासुर अति बलवान् था, उसे इन्द्र भी नहीं मार सकते थे।

प्राग्य्योतिषपुर जाते समय भगवान्ने अपनी पत्नी सत्यभामाको भी साथ ले लिया। भूदेवी सत्यभामाकी विभूति हैं। सत्यभामा एवं भूदेवीकी एकात्मकता है। उनकी आज्ञासे ही पुत्रका वध किया जायेगा। अतः नरकासुरके साथ महायुद्धरूप सङ्कटमें सत्यभामा ही आदेश करेंगी कि इस दुष्टको मार डालो।

एक दिन देवर्षि नारदने पारिजात पुष्प लाकर रुक्मिणीको प्रदान किया तो सत्यभामा रुष्ट हो गयीं। उनका मान शान्त करनेके लिए श्रीकृष्णने कहा, “मैं पारिजात वृक्ष ही तुम्हें लाकर दे दूँगा।” इस प्रतिश्रुतिकी रक्षाके लिए एवं अपना पराक्रम दिखानेके लिए भी श्रीकृष्णने सत्यभामाको साथ ले लिया था ॥ २-३ ॥

गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः।

चक्रेणार्गिं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने गदाके द्वारा चट्टानी किलेबन्दी एवं बाणों द्वारा शस्त्रोंकी मोरचेबन्दीको ध्वस्त कर दिया। सुदर्शन चक्रसे उन्होंने अग्निकी नाकेबन्दी, वायुकी किलेबन्दी और जलकी चहारदीवारीको भी तहस-नहस कर डाला ॥ ४ ॥

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम्।

प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः॥५॥

गदाधर भगवान् श्रीकृष्णके शङ्खनादने दुर्गमें स्थापित लौह-गोलक आदि निक्षेपक यन्त्रोंको एवं उसके रक्षक विपक्षी वीरोंके हृदयोंको भेद डाला। उन्होंने अपनी गदासे किलेकी मिट्टीसे बनी प्राचीरको (परकोटेको) तोड़ दिया॥५॥

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम्।

मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात्॥६॥

पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि प्रलयकालीन वज्रके समान भयङ्कर थी। इस ध्वनिको सुनकर जलके भीतर सोये हुए मुर दैत्यकी नींद टूटी और वह जलके बाहर निकल आया। मुरके पाँच सिर थे॥६॥

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो,

युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ।

ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखै-

रभ्यद्रवत् तार्क्ष्यसुतं यथोरगः॥७॥

मुर नामका यह दैत्य प्रलयकालीन सूर्य एवं अग्निके समान प्रचण्ड, तेजस्वी, दुर्धर्ष और भयङ्कर था। वह त्रिशूल लेकर श्रीकृष्णकी ओर ऐसे झपटा, जैसे सर्प गरुडकी ओर मुख करके आगे बढ़ता हो। उसका प्रयास ऐसा लग रहा था, मानो वह अपने पाँचों मुखोंसे तीनों लोकोंको निगल लेगा॥७॥

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते,

निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत् स पञ्चभिः।

स रोदसी सर्वदिशोऽम्बरं महान्-

आपूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥८॥

इसके बाद उसने त्रिशूल घुमाया और भयङ्कर वेगसे गरुडजीकी ओर चलाया तथा अपने पाँचों मुखोंसे भयङ्कर गर्जना करने लगा।

इस घोर गर्जनने स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, समस्त दिशाओं एवं आकाशको भर दिया। यहाँ तक कि सारे ब्रह्माण्डमें उसकी प्रतिध्वनि होने लगी॥ ८ ॥

तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते,
हरिः शराभ्यामभिनत् त्रिधौजसा।
मुखेषु तञ्चापि शरैरताडयत्,
तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि भयङ्कर त्रिशूल गरुडकी ओर चला आ रहा है, तब उन्होंने उस त्रिशूलको दो बाणोंके द्वारा तीन खण्डोंमें काट डाला। इसके बाद उन्होंने मुरासुरके पाँचों मुखोंपर बाणोंसे प्रहार किया, जिससे उसका क्रोध और भी भड़क उठा। प्रत्युत्तरमें मुरने भगवान्पर गदा चलायी॥ ९ ॥

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे,
गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा।
उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः,
शिरांसि चक्रेण जहार लीलया॥ १० ॥

अजित भगवान् श्रीकृष्णने अपनी ओर आती हुई उस गदाको अपनी गदासे रोक दिया और युद्धभूमिमें ही उसके हजारों टुकड़े कर डाले। अब मुर अपनी भुजाओंको फैलाकर श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा, तब गदाग्रज भगवान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही चक्रसे सहज ही उसके पाँचों मस्तकोंको छिन्न कर डाला॥ १० ॥

व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो,
निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ।
तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः,
प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः॥ ११ ॥

मुरासुर सिर कटते ही निष्प्राण होकर जलमें उसी प्रकार गिर पड़ा, जिस प्रकार इन्द्रके वज्रके आघातसे पर्वतके शिखर

छिन्न-भिन्न होकर समुद्रमें गिर जाते हैं। पिताके वधसे उसके सातों पुत्र शोकातुर हो गये और क्रोधसे भरकर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रतिकार हेतु युद्धके लिए तैयार हो गये॥ ११॥

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसु-
र्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः।
पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे,
भौमप्रयुक्ता निरगन् धृतायुधाः॥ १२॥

ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण—इन सात मुर-पुत्रोंने अस्त्र-शस्त्र धारण कर लिये तथा 'पीठ' नामक असुर-सेनापतिको अग्रवर्त्ती करके भौमासुरके आदेशसे युद्धक्षेत्रमें बाहर आये॥ १२॥

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः,
शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः।
तच्छस्त्रकूटं भगवान् स्वमार्गणै-
रमोघवीर्य्यैस्तिलशश्चकर्त्त ह॥ १३॥

ये भयङ्कर असुर क्रोधसे तिलमिला रहे थे। वे श्रीकृष्णके समीप आये और उनपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और शूल आदि प्रचण्ड शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। भगवान्ने अपने अमोघ बाणोंसे शत्रुओंके शस्त्रोंको तिल-तिल करके जीर्ण-शीर्ण कर डाला॥ १३॥

तान् पीठमुख्याननयद् यमक्षयं,
निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः।
स्वानीकपानच्युतचक्रसायकै-
स्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः।
निरीक्ष्य दुर्मर्षण् आस्रवन्मदै-
र्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत्॥ १४॥

इस प्रकार भगवान्ने पीठ आदि सभी शत्रुओंके मस्तक, जाँघ, बाहु, पैर और कवच आदिको काट डाला और उन्हें यमालय

पहुँचा दिया। नरकासुरने देखा कि श्रीकृष्णने बाणों और चक्रके प्रहारोंसे उसके सारे सेनापतियोंका संहार कर डाला है, तब वह इस विनाशको सह नहीं पाया और समुद्र-तटपर उत्पन्न हुए बहुत-से मदवाले हाथियोंको लेकर पुरसे बाहर निकला ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा सभार्य्यं गरुडोपरि स्थितं,
सूर्य्योपरिष्ठात् सतडिद्धनं यथा।
कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं,
योधाश्च सर्व्वे युगपत् स्म विव्यधुः ॥ १५ ॥

नगरसे बाहर आकर नरकासुरने देखा कि गरुडके ऊपर महारानी सत्यभामाके साथ श्रीकृष्ण इस प्रकार विराजमान हैं, जिस प्रकार सूर्यमण्डलके ऊपर विद्युत्के साथ श्यामल मेघ विराजमान हो। यह देखते ही नरकासुरने उनपर शतघ्नी (भाला) नामक शक्ति चलायी और उसके सैनिकोंने भी अन्यान्य अस्त्र-शस्त्र एक साथ छोड़े ॥ १५ ॥

तद्भौमसैन्यं भगवान् गदाग्रजो,
विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः।
निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं,
चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥ १६ ॥

तब भगवान्ने तत्क्षण ही चित्र-विचित्र पङ्क्तियोंसे युक्त तीक्ष्ण बाण चलाये और नरकासुरकी सेनाके वीरोंकी भुजाओं, जंघाओं, ग्रीवाओं और धड़ोंको काट-काट कर गिरा दिया। भगवान्ने उसके हाथियों एवं घोड़ोंको भी मार डाला ॥ १६ ॥

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरुद्वह।
हरिस्तान्यच्छिनत तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥

उद्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान्।
गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥

हे कुरुवंशपालक ! उस समय गरुड अपने पङ्क्तियोंसे सारे हाथियोंका विध्वंस कर डाला। भगवान्ने उसकी पीठ पर बैठे हुए

ही नरकासुरके सैनिकोंको पहले तो मारा और बादमें उनके द्वारा चलाये हुए जो खड्गादि अस्त्र एवं शरादि शस्त्र अपनी ओर आ रहे थे, उनमेंसे प्रत्येकको अपने तीन-तीन तीखे बाणोंसे काट डाला। गरुडकी चोंच, पङ्ख और पञ्जोंके प्रहारोंसे हाथियोंको बड़ी-भारी पीड़ा हुई और वे युद्धक्षेत्रको छोड़कर नगरके भीतर प्रवेश करने लगे। नरकासुर अकेला ही युद्ध करता रहा ॥ १७-१८ ॥

पुरमेवाविशत्रात् नरको युध्ययुध्यत।
दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥
तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः।
नाकम्पत तथा विद्धो मालाहत उव द्विपः ॥ २० ॥

नरकासुरने देखा कि उसकी सेना और हाथी गरुडकी मारसे पीड़ित होकर भाग रहे हैं, तो उन्होंने गरुडपर उस शक्तिसे प्रहार किया जिसने वज्रको भी प्रतिरुद्ध अर्थात् असफल कर दिया था। गरुड उस शक्तिसे तनिक भी विचलित नहीं हुए और निर्विकार भावसे ऐसे खड़े रहे मानो हाथीपर पुष्प-मालाओंसे किसीने प्रहार किया हो ॥ १९-२० ॥

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः।
तद्विसर्गात् पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः।
अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥

नरकासुरके जब सारे प्रयत्न विफल हो गये, तब उसने श्रीकृष्णका संहार करनेके लिए अमोघ त्रिशूल धारण कर लिया। वह इसे छोड़ता, इसके पहले ही 'इसे शीघ्र ही मार दीजिये'—सत्यभामाके ये वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने छुरेकी धारके समान तीखी धारवाले चक्रके द्वारा हाथीपर बैठे हुए नरकासुरका सिर काट डाला ॥ २१ ॥

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं,
बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलम्।

हा हेति साध्वित्यूषयः सुरेश्वरा,
माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥ २२ ॥

नरकासुरका सिर कुण्डलों एवं सुनहले मुकुटसे विभूषित होनेके कारण जगमगा रहा था और भूमिपर गिरकर भी भलीभाँति सुशोभित हो रहा था। उसके मरते ही उसके सगे-सम्बन्धी 'हाय-हाय' करने लगे और ऋषिगण 'साधु-साधु' 'हे पापिष्ट नरक! तु जो मर गया, तो बहुत अच्छा हुआ' आदि वाक्य कहने लगे। देवगण आकाशसे श्रीकृष्णके ऊपर पुष्प-मालाओंकी वर्षा करने लगे और स्तव-स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले,
प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ।
सवैजयन्त्या वनमालयार्पयत्,
प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥

इसके बाद पृथ्वीदेवी श्रीकृष्णके पास आयीं। उन्होंने भगवान्को अदितिके सुवर्णमण्डित, रत्नजड़ित और प्रतप्त (जगमगाते हुए) दो कुण्डल, वरुणका छत्र एवं मणि-पर्वत लौटा दिये। इनके साथ ही उन्हें वैजयन्ती एवं वनमाला भी प्रदान कीं ॥ २३ ॥

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम्।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥

हे राजन्! तत्पश्चात् पृथ्वीदेवीने भक्तिभावसे परिपूर्ण हृदयसे भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा पूजित विश्वेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगीं ॥ २४ ॥

श्रीभूमिरुवाच—

नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥

पृथ्वीदेवीने कहा—हे देव-देवेश! हे शङ्ख-चक्र-गदाधर! आप भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए अपने विविध स्वरूप प्रकट

करते हैं। हे देव! मैं आपको प्रणाम करती हूँ (आपका पुत्र तो विद्वेषी है, परन्तु मेरे अन्तःकरणको तो आप जानते हैं)॥ २५ ॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।

नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये॥ २६ ॥

आप जगत्के कारणस्वरूप कमल-नाभ हैं, आप सत्कीर्तिरूप कमलोंकी मालासे विभूषित रहते हैं। आपके नेत्र खिले हुए कमलोंके समान प्रफुल्लित एवं सन्ताप-विनाशक हैं और कमलके समान ही आपके श्रीचरण सुसेव्य हैं। मैं आपको बार-बार प्रणाम करती हूँ॥ २६ ॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे।

पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः॥ २७ ॥

हे भगवन्! आप निरतिशय ऐश्वर्यशाली हैं। हे वासुदेव! आप समस्त प्राणियोंके आश्रय हैं। हे विष्णो! आप सर्व-व्यापक हैं। हे महापुरुष! आप समस्त कारणोंके कारण हैं। हे आदिबीज! आप समस्त कार्योंकी पूर्वावस्थामें विद्यमान हैं। हे पूर्णबोध! आप स्वानन्दानुभवपूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूँ॥ २७ ॥

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।

परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते॥ २८ ॥

हे अचिदन्तरात्मन्! आप स्वरूपतः अजन्मा एवं अव्यय हैं। हे उत्कृष्ट-अपकृष्ट जीवोंके परमात्मन्! आप अज अर्थात् स्वतःसिद्ध होते हुए भी जगत्के जन्मदाता हैं! हे भूतात्मन्! आप अनन्तशक्तिमय ब्रह्म हैं। मैं आपको पुनः-पुनः नमस्कार करती हूँ।

पृथ्वीदेवीकी स्तुतिका तात्पर्य इस प्रकार है—

हे भगवान्! आप अद्वितीय ऐश्वर्यवान् भगवान् होकर भी वासुदेव हैं। वसुदेव-पुत्र होनेपर भी विष्णु हैं। विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक होकर भी पुरुषवत् परिच्छिन्न हैं। पुरुषवत् परिच्छिन्न होकर भी आदि बीज हैं—सभीके आदिस्वरूप श्रीनारायणके भी

आविर्भावके प्रेरक एवं पूर्णबोध तथा पूर्णज्ञानस्वरूप हैं। अप्राकृत अनन्त विशेषणोंसे युक्त होकर भी आप निर्विशेष ब्रह्मा हैं। आप अज होकर भी इस विश्वके जनक हैं, जनक होनेपर भी आप निर्विशेषस्वरूप हैं, निर्विशेषस्वरूप होकर भी आप अनन्तशक्ति सविशेषस्वरूप हैं, अनन्तशक्ति होनेपर भी आपकी तटस्था, बहिरङ्गा और अन्तरङ्गा शक्तियाँ प्रधान हैं—ये भी त्वदात्मक ही हैं। उत्कृष्ट एवं अपकृष्ट आप सभी की आत्मा हैं। आप ही भूतात्मा अर्थात् पञ्चभूतमय देह हैं, आप ही परमात्मा हैं, आप ही अन्तर्यामी हैं—आपको बारम्बार नमस्कार है॥ २८॥

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो,
तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते,
कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः॥ २९॥

हे अजन्मा प्रभो! आप जगत्की सृष्टिकी इच्छासे कार्यान्मुख उत्कट रजो गुणको स्वीकार करते हैं। जगत्के संहारके लिए तमोगुणको एवं जगत्की स्थितिके लिए सत्त्वगुणको धारण करते हैं। आप स्वयं इन गुणोंसे कभी आवृत नहीं होते, इनसे लिप्त नहीं होते। हे जगत्पति! आप काल, प्रकृति एवं पुरुष हैं, तथापि अपनी स्वरूपशक्ति द्वारा इन तीनोंसे परे भी हैं॥ २९॥

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो,
मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि च।
कर्त्ता महानित्यखिलं चराचरं,
त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः॥ ३०॥

हे भगवन्! मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध—ये पाँच तन्मात्राएँ, मन, इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता, अहङ्कार एवं महत्-तत्त्व (चित्त) आदि समस्त समष्टिभूत चराचर जगत् आपमें ही विद्यमान है। हे स्वामिन्! कहाँ तक कहूँ, भ्रमके कारण ही

चराचर जगत्की पृथक् अथवा स्वतन्त्र सत्ता प्रतीत होती है। जो आपमें भौतिक इन्द्रियादिका निरूपण करते हैं, वे भ्रान्त हैं; आपकी देह एवं इन्द्रियाँ सभी आपके समान चिदानन्दस्वरूप हैं ॥ ३० ॥

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं,
भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः।
तत् पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं,
शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥

हे शरणागत दुःखविनाशन! नरकासुरका यह पुत्र भगदत्त बहुत डरा हुआ है, उसे मैं आपके चरणकमलोंमें ले आयी हूँ। आप इसकी रक्षा कीजिये। मेरे इस पौत्रके मस्तकपर आप अपना सर्वपाप-भञ्जक कर-कमल रख दीजिये ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति भूम्यर्थितो वाग्भिर्भगवान् भक्तिमग्नया।
दत्त्वाभयं भौमगृहं प्राविशत् सकलद्धिमत् ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! पृथ्वी देवीने जब भक्ति-भावसे अति विनम्र होकर इस प्रकारके स्तुति-वचनोंसे भगवान्से प्रार्थना की, तब भगवान्से भगदत्तको अभय प्रदान कर दिया। इसके बाद उन्होंने समस्त समृद्धियोंसे सम्पन्न नरकासुरके भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम्।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण जब नरकासुरके भवनमें विचरण कर रहे थे, तब उन्होंने सोलह सहस्र राजकन्याओंको देखा, जिन्हें नरकासुर राजाओं एवं सिद्धोंसे छीन लाया था ॥ ३३ ॥

तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवर्यं विमोहिताः।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥

इन राजकन्याओंने जब अन्तःपुरमें प्रविष्ट नरश्रेष्ठ श्रीकृष्णको देखा, तो वे मोहित हो गयीं और मन-ही-मन अपना सौभाग्य मानने लगीं। उन सभी राजकन्याओंने अपने-अपने हृदयोंमें उन्हें दैव-प्रेरित परम प्रियतम पतिके रूपमें वरण कर लिया॥ ३४॥

भूयात् पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम्।

इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः॥ ३५॥

ये नरश्रेष्ठ मेरे पति हों, विधाता मेरी मनोकामना सफल करे—इस प्रकारसे सभी राजकन्याओंने पृथक्-पृथक् रूपसे अपने हृदयको श्रीकृष्णके प्रति निछावर कर दिया॥ ३५॥

ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः।

नरयानैर्महाकोशान् रथाश्वान् द्रविणं महत्॥ ३६॥

भगवान् श्रीकृष्णने इन राजकन्याओंको निर्मल वस्त्रोंसे सुशोभित करवाया और उन्हें रथ, घोड़े, श्रेष्ठ धन और महानिधिके साथ मनुष्य-वाहित पालकियोंमें बिठाकर द्वारका भिजवा दिया॥ ३६॥

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः।

पाण्डुरांश्च चतुर्षष्टिं प्रेषयामास केशवः॥ ३७॥

ऐरावत वंशमें उत्पन्न चार-चार दाँतोंवाले महावेगशाली धवल वर्णके चौंसठ हाथियोंको भी भगवान्ने द्वारका भिजवा दिया॥ ३७॥

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वादित्यै च कुण्डले।

पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण महेन्द्राण्या च सप्रियः॥ ३८॥

चोदितो भार्य्योत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति।

आरोप्य सेन्द्रान् विबुधान् निर्जित्योपानयत् पुरम्॥ ३९॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण महारानी सत्यभामाके साथ स्वर्गमें इन्द्रके महलमें गये और अदितिको दोनों कुण्डल प्रदान किये। वहाँ इन्द्र एवं उनकी पत्नी शची देवीने भगवान्का बहुत सत्कार किया। वहाँसे लौटते हुए भगवान्ने सत्यभामाके अनुरोध पर पारिजात वृक्षको उखाड़कर गरुडके ऊपर रख लिया तथा इन्द्रके

साथ अन्यान्य देवताओंको पराजित कर उस वृक्षको द्वारका ले आये ॥ ३८-३९ ॥

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः।

अन्वगुर्ध्रमराः स्वर्गात् तद्गन्धासवलम्पटाः ॥ ४० ॥

भगवान्ने उस वृक्षको सत्यभामाके भवनसे संलग्न पुष्पोद्यानमें लगवा दिया, जिससे उस उपवनकी शोभा और भी बढ़ गयी। पारिजातकी सुगन्ध एवं मकरन्द-रसके आसक्त भौरे स्वर्गसे पीछा करते हुए द्वारकापुरी तक आ गये ॥ ४० ॥

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः,

पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम्।

सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महान्,

अहो सुराणाञ्च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥

परीक्षित्! देखो तो सही, देवतालोग कैसे स्वार्थी होते हैं, इन्द्रने अपना काम बनानेके लिए पहले तो मुकुटके अग्रभागसे श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श करके उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। नरकासुर-वधके रूपमें अपने कार्यकी उनसे प्रार्थना की, परन्तु जब काम सिद्ध हो गया, तब वे ज्ञानी होकर भी भगवान् श्रीकृष्णके ही विरोधी हो गये। अहो! देवताओंमें कैसा तमोगुण (क्रोध) होता है? इसका एक मात्र कारण है ऐश्वर्य। अहो! ऐसे ऐश्वर्यको धिक्कार है। यह असम्भव अनर्थोंको उत्पन्नकर देता है ॥ ४१ ॥

अथो मुहूर्त एकस्मिन् नानागारेषु ताः स्त्रियः।

यथोपयेमे भगवान् तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥

इसके बाद भगवान्ने अपनी अचिन्त्यशक्तिसे एक ही साथ सोलह हजार रूपोंको प्रकट किया और एक ही समय विभिन्न महलोंमें उन राजकन्याओंके साथ पृथक्-पृथक् रूपसे (मूलरूपसे पृथक् नहीं बल्कि एक ही विग्रहके प्रकाश-भेदसे) विवाह किया (सभी विग्रह पूर्ण थे, अंशरूप नहीं थे। न ही कायव्यूह था।

देवकी आदि पिता-माता एवं बन्धुगण भी प्रत्येक गृहमें एक ही समयमें उपस्थित थे) ॥ ४२ ॥

गृहेषु तासामनपाय्यतर्ककृत्-

निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ।

रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो,

यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥

परीक्षित्! अचिन्त्यचरित श्रीकृष्ण अपनी उन परम सुन्दरी पत्नियोंके साथ असमोर्ध्व (अतुलनीय) महलोंमें सुस्थिर भावसे विहार करने लगे। भगवान्की पत्नियोंके महलोंमें ऐसी दिव्य सामग्रियाँ भरी हुई थीं, जिनकी तुलना और कहीं भी नहीं हो सकती थी, तब अधिककी तो बात ही क्या है! भगवान् तो सदैव आत्मानन्दमें सराबोर रहते हैं, तथापि लक्ष्मी देवीकी अंशस्वरूपा उन कामिनियोंके साथ भगवान्ने इस प्रकार विहार किया, जिस प्रकार सांसारिक लोग गृहस्थ धर्मका आचरण करते हैं (वैकुण्ठमें एकमात्र लक्ष्मीके साथ श्रीकृष्णके अंश नारायण लीला करते हैं। अतएव वैकुण्ठसे भी द्वारकाका ऐश्वर्य अधिक है। गृहमेधीके समान वे धर्मका आचरण करते हैं, इसलिए माधुर्य भी अधिक है। श्रीकृष्ण 'चन्द्र' हैं तथा उनकी महिषियाँ उनकी 'कलाएँ' हैं। पद्मपुराणमें कहा गया है कि कैशोरमें जो गोपकन्याएँ थीं, वे ही यौवनमें द्वारकामें राजकन्याएँ हुई हैं। पूर्णतम श्रीवृन्दावननाथके पूर्णप्रकाश द्वारकानाथ हैं। गोपियोंका पूर्णप्रकाश पट्टमहिषियाँ हैं) ॥ ४३ ॥

हृत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता

ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।

भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-

हासावलोक नवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥

ब्रह्मादि देवता भी जिनकी प्राप्तिका उपाय नहीं जानते, उन्हीं रमापति भगवान्को पतिके रूपमें प्राप्त करके वे कामिनियाँ

निरन्तर अभिवर्द्धित अनुरागका अनुभव करती थीं। वे मधुर मुसकानसे परिपूर्ण, प्रेममयी चितवनके आदान-प्रदान, नव सङ्गम एवं उससे घटित प्रसङ्गोंसे उदित प्रेमालाप करती हुई सलज्ज भावसे भगवान्की सेवा करती रहती थीं ॥ ४४ ॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच-

ताम्बूलविश्रमणवीजन गन्धमाल्यैः।

केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै-

दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पारिजातहरण-नरकवधो नाम
एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

उन रमणियोंमेंसे प्रत्येककी सौ-सौ दासियाँ रहनेपर भी वे स्वयं ही आगे जाकर श्रीकृष्णको आदरपूर्वक लिवा लाना, उत्तम आसन प्रदान करना, सम्यक् रूपसे अर्चन करना, चरण पखारना, भोजन कराना, ताम्बूल प्रदान करना, पाद-संवाहन करना, पंखा झलना, चन्दनादि लगाना, माला पहनाना, केश संवारना, शय्या रचना करना, शयन कराना एवं विविध उपहार-सामग्रियोंका संग्रह करना आदि सेवाएँ स्वयं अपने हाथोंसे करती थीं ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उनसठवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

षष्ठितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और रुक्मिणीजीका संवाद

श्रीशुक उवाच—

कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्।

पतिं पर्य्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! एक दिनकी बात है कि समस्त जगत्के परमपिता और ज्ञानदाता जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीकी शय्यापर सुखपूर्वक विराजमान थे। रुक्मिणी अपनी सखियोंके साथ अपने पतिदेव श्रीकृष्णकी सेवा करते हुए उन्हें स्वयं पंखा झल रही थीं ॥ १ ॥

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्यवतीश्वरः।

स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥

जो जगदीश्वर खेल-ही-खेलमें विश्वकी सृष्टि-स्थिति एवं संहार करते हैं, वे भगवान् स्वयं अजन्मा होकर भी अपनी बनाई हुई धर्म-मर्यादाओंकी रक्षाके लिए ही यदुवंशमें अवतीर्ण हुए थे (वक्ष्यमाण प्रसङ्गकी भूमिकाके लिए श्रीशुकदेवजी कह रहे हैं कि जैसे सृष्टि आदि भगवान्की विनोद-लीला है, उसी प्रकार रुक्मिणीके प्रेमसेवा-रस-भङ्ग-विषयमें कृष्णकी विनोदप्रियता ही कारण है, साथ ही धर्म-मर्यादाके समान प्रेम-मर्यादाकी दृढ़ता भी उनका अभीष्ट है) ॥ २ ॥

तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना।

विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥

मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते।

जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ।

धूपैरगुरुजै राजन् जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥

पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे।

उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम्॥६॥

हे राजन्! महारानी रुक्मिणी देवीका भवन अद्भुत था। इसमें चारों ओर चन्द्रातप (चँदोवे) टँगे हुए थे, जिनमें देदीप्यमान मोतियोंकी लड़ियाँ लटकी हुई थीं। मणिमय दीप जगमगा रहे थे। मल्लिकाके पुष्पों, हारों तथा अन्य विविध कुसुमोंकी गन्धके लोभी भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे, सुन्दर-सुन्दर झरोखोंकी जालियोंसे निर्मल चन्द्रकी समुज्ज्वल किरणें छिटक रही थीं। पुष्पोद्यानसे पारिजातकी सुगन्ध लेकर वायु प्रवाहित हो रही थी। गवाक्षोंके रन्ध्रोंसे जो वायु बाहर आ रही थी, वह अगरकी धूपसे सुवासित थी। इस भवनमें दूधके फेनके समान कोमल, श्वेत, श्रेष्ठ एवं उज्ज्वल बिछौनों और तकियोंसे युक्त पलङ्गपर त्रिलोकीके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे। रुक्मिणी अपने पतिकी सेवा कर रही थीं॥ ३-६॥

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात्।

तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम्॥७॥

रुक्मिणीदेवीने सखीके हाथसे रत्नमण्डित दण्डसे युक्त चामर अपने हाथमें ले लिया और स्वयं उससे वायु सञ्चालन करते हुए जगदीश्वर श्रीकृष्णकी सेवा करने लगीं॥ ७॥

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां,

रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।

वस्त्रान्तगूढकुचकुङ्कुमशोणहार-

भासा नितम्बधृतया च पराद्धर्यकाञ्च्या॥८॥

रुक्मिणी श्रीकृष्णके समीप विराजमान थीं। उनके हाथोंमें अङ्गुठियाँ, कङ्कन और चँवर सुशोभित हो रहे थे तथा चरणोंमें सुशोभित मणिमय नूपुर सुमधुर ध्वनि कर रहे थे। नितम्ब-प्रान्तपर बहुमूल्य करधनीकी लड़ियाँ लटक रही थीं। कुङ्कुम-रागसे सुरञ्जित

स्तन वस्त्राज्ज्वलसे ढके हुए थे। रत्न-हारकी प्रभासे उनकी शोभा और भी बढ़ रही थी॥ ८ ॥

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य,
या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा।
प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठ-
वक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥

रुक्मिणीका मुखमण्डल अलकावलियों एवं कुण्डल-द्वयसे सुशोभित हो रहा था, कण्ठ स्वर्णहार एवं पदकसे अलंकृत होकर चारों दिशाओंको आलोकित कर रहा था। उनके अधरों पर मुसकराहटकी अमृत-वर्षा उल्लसित थी। वे सर्वतोभावसे लीला-विग्रहधारी भगवान्‌के ही अनुरूप थीं। श्रीकृष्ण लक्ष्मी-स्वरूपिणी, अनन्यगति, परम सुन्दरी (वैकुण्ठ स्थित लक्ष्मीसे भी बहुत अधिक सौन्दर्यशालिनी) रुक्मिणीको देखकर परम सन्तुष्ट हुए और मन्द-मन्द मुसकराते हुए उनसे कहने लगे।

(श्रीकृष्ण जब देवरूप धारण करते हैं, लक्ष्मीदेवी भी देवरूपा हो जाती हैं, श्रीकृष्ण जिस समय मनुष्य-लीला करते हैं, लक्ष्मी देवी भी उस समय मानुषी हो जाती हैं। श्रीकृष्णने विचार किया कि पारिजात-प्रसङ्गमें तो सत्यभामाने कोप-वचनोंकी वर्षा की थी, रुक्मिणी शान्त रही थीं, रुक्मिके विरूप करने पर भी यह कुपित नहीं हुई, अतः आज परिहास करके इनके रोषोक्ति-माध्वीका आस्वादन किया जाय कि ये कैसी प्रतिक्रिया करती हैं)॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ।

महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोज्जितैः ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे राजनन्दिनी! बहुत-से नरपति जो लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवान् और महाप्रभावशाली थे, रूप, औदार्य एवं बलमें भी बड़े-चढ़े थे, बड़े धनवान् थे—वे पहले तुम्हें अपनी पत्नी बनाना चाहते थे॥ १० ॥

तान् प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन् स्मरदुर्मदान्।
दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मात्रो ववृषेऽसमान्॥ ११ ॥

तुम्हारे पिता और भाईकी भी इच्छा थी कि तुम्हारा हाथ उनके हाथमें दे दिया जाय; फिर तुमने किसलिए अपने भवनमें स्वयं ही आये हुए कामोन्मत्त शिशुपाल इत्यादि राजाओंका त्याग कर दिया और मैं जो तुम्हारे अनुरूप किञ्चित् मात्र भी नहीं हूँ, उसका वरण कर लिया?॥ ११ ॥

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रू समुद्रं शरणं गतान्।
बलवद्भिः कृतद्वेषान् प्रायस्त्यक्तनृपासनान्॥ १२ ॥

हे सुन्दरी! हमने तो जरासन्ध आदि राजाओंके डरसे समुद्रकी शरण ली है और छिपकर इसके गर्भमें (बीचों-बीच) आ बसे हैं। महाबलशाली राजाओंसे हमारा व्यवहार शत्रुतापूर्ण है और राजसिंहासनका मैंने प्रायः त्याग ही कर रखा है॥ १२ ॥

अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम्।
आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः॥ १३ ॥

हे सुन्दरी! हमारे आचरणके विषयमें भी लोग अच्छी तरहसे कुछ भी नहीं जानते। (कभी हम परदारा-ग्रहण करते हैं तो कभी वैदिक आचारसे सम्पन्न रहते हैं, कभी धार्मिक रहते हैं और कभी अधार्मिक—कुछ भी स्पष्ट नहीं है) हमें लौकिक व्यवहार भी ठीकसे आता नहीं है। स्त्रीके वशीभूत होकर हम उन्हें रिझाते भी नहीं। हम जैसे पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करनेसे स्त्रियाँ प्रायः कष्ट-ही-कष्ट पाती हैं (और यदि कोई नहीं पाती तो यह उसका गुण है)॥ १३ ॥

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चन जनप्रियाः।
तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे॥ १४ ॥

हे सुन्दरी! मैं तो निष्किञ्चन हूँ और चिरकालसे अपने जैसे अकिञ्चनोंका ही आदर करता रहा हूँ। इसीसे धनी लोग प्रायः मेरी सेवा नहीं करते॥ १४ ॥

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।

तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥

जब दोनोंके ही कुल, जाति, ऐश्वर्य, सौन्दर्य परस्पर समान हों, तभी विवाह अथवा मित्रता करनी चाहिये। अपनेसे उत्तम अथवा अधमके बीच विवाह अथवा मित्रता उचित नहीं होते (तुम्हारे पिता-दादा बहुत धनवान् एवं बहुत विद्वान् हैं, परन्तु मेरे पिता वसुदेवके पास तो वित्तका अभाव है और मैंने तो मात्र यत्किञ्चित् उपार्जन किया है। तुम महान् कुलमें उत्पन्न हुई हो और मैं यादव होनेके कारण अकुलीन ही हूँ। तुम विदर्भ देशके कुण्डिनादि बहुत-से नगरकी अधिकारिणी हो, मैं तो आनर्त्त-देश-स्थित मात्र एक द्वारकानगरीमें वास करता हूँ और प्रिये! तुम गोरी हो, मैं काला हूँ। इस प्रकार हम दोनोंका विवाह युक्तियुक्त नहीं है) ॥ १५ ॥

वैदर्भ्येतदविज्ञाय

त्वयादीर्घसमीक्षया ।

वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥

हे विदर्भराजकुमारी! तुमने अदूरदर्शिताके कारण इन विषयोंपर अच्छी प्रकारसे विचार-मन्थन नहीं किया। मुग्ध भिक्षुकोंसे मेरी झूठी प्रशंसा सुनकर बिना सोचे-विचारे मुझ गुणहीनको अपने पतिके रूपमें वरण कर लिया ॥ १६ ॥

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ।

येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥

अब तुम्हें ऐसा करना चाहिये कि जो सब प्रकारसे तुम्हारे अनुकूल हो, ऐसे किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय राजाको पतिके रूपमें स्वीकार कर लो। इससे तुम इस लोकमें और परलोकमें उत्तम विषय-सुखोंको प्राप्त कर सकोगी ॥ १७ ॥

चैद्य-शाल्व-जरासन्ध-दन्तवक्रादयो

नृपाः ।

मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥

हे वामोरु! हे सुन्दरी! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र आदि राजा मुझसे बड़ा विद्वेष रखते हैं। तुम्हारा बड़ा भाई भी मुझसे वैर भाव रखता है ॥ १८ ॥

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये।

आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरतासताम् ॥ १९ ॥

हे कल्याणी! दुर्जनोंके बल-पौरुषको हर लेना मेरा स्वभाव है। ये समस्त राजा अपनी वीरताके कारण मदान्ध हो रहे थे। उनके गर्वको ध्वस्त करनेके लिए ही मैंने तुम्हारा हरण किया था, और कोई कारण नहीं था ॥ १९ ॥

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः।

आत्मलब्ध्यास्महे पूर्णा गेहयोज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥

हम तो देह-गेह आदि विषयोंसे उदासीन हैं। स्त्री, पुत्र धनादिकी कामनाओंसे रहित होकर निष्क्रियरूपसे आत्मानन्दमें ही मग्न रहते हैं। दीपककी शिखाके समान केवल साक्षी मात्र रहते हैं ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच—

एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभाभिव।

मन्यमानामविश्लेषात् तद्वर्पघ्न उपारमत् ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! रुक्मिणी सोचा करती थीं कि उनके पति श्रीकृष्ण सदा-सर्वदा उनके साथ रहते हैं, क्षणभरके लिए भी अलग नहीं होते। अतः वे अपनेको श्रीकृष्णकी अन्यान्य पत्नियोंकी अपेक्षा अधिक विशिष्ट मानती थीं। उनके इसी दर्पको (कि मेरे पतिने मुझे सर्वाधिक सौभाग्यवती बनाया है) चूर्ण करनेके लिए भगवान् इतना ही कहकर चुप हो गये ॥ २१ ॥

इति त्रिलोकेशपतेस्तदाऽऽत्मनः,

प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम्।

आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथु-
श्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह॥ २२ ॥

ब्रह्मादि तीनों लोकोंके अधिपतियोंके अधिपति अपने प्रियतमके इन अश्रुतपूर्व एवं अप्रिय वचनोंको सुनकर रुक्मिणीका हृदय काँप उठा। ऐसे वचन उन्होंने पहले कभी नहीं सुने थे। उन्हें पति द्वारा परित्यक्त किये जानेका भय हो गया। वे रोते-रोते अगाध चिन्ताके समुद्रमें डूब गयीं॥ २२ ॥

पदा सुजोतेन नखारुणश्रिया,
भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः।
आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ,
तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥

उस समय वे लाल रङ्गके नखोंके सौन्दर्यसे सुशोभित सुकोमल कमलके समान चरणोंसे भूमिको कुरेदने लगीं। कज्जल-रागसे मिले हुए कृष्ण-वर्णके आँसुओंसे कुङ्कुम-राग-रञ्जित वक्षःस्थल आर्द्र होने लगा। उन्हें अपार दुःख हुआ। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया और वे मुख नीचा किये हुए ठिठकी-सी रह गयीं॥ २३ ॥

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धे-
र्हस्तात् श्लथद्वलयतो व्यजनं पपात।
देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्,
रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान्॥ २४ ॥

अतिशय दुःख, भय एवं शोकके कारण उनकी बुद्धि भ्रमित होने लगी। कलाईका कङ्कन गिर पड़ा। चामर भी धरतीपर आ गिरा। केश बिखर गये। चित्तकी दुर्बलता एवं बुद्धिकी विकलताके कारण देह पृथ्वीपर इस प्रकार गिर पड़ी, जिस प्रकार वायु-वेगसे उखड़ा हुआ केलेका वृक्ष विध्वस्त होकर गिर पड़ा हो (बुद्धि-लोप होनेपर चेतनाहीन हुई, उसके बाद मोहरूप नवमी दशाको प्राप्त हुई और अन्ततः स्तम्भ आदि अन्तिम प्रलयरूप सात्त्विक दशाको प्राप्त हुई हैं)॥ २४ ॥

तदृष्ट्वा भगवान् कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम्।

हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥ २५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उनकी प्रियतमा रुक्मिणी हास-परिहासके गम्भीर अभिप्रायको समझनेमें असमर्थ है। उसका प्रेम-बन्धन इतना दृढ़ है कि इसका वर्णन करना भी सम्भव नहीं है, यह जानकर उनका हृदय करुणासे भर गया ॥ २५ ॥

पर्यङ्गादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः।

केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना ॥ २६ ॥

भगवान् शीघ्र ही शय्यासे भूमिपर उतरे और अपना चतुर्भुज स्वरूप प्रकट किया। उन्होंने रुक्मिणीको धरतीसे उठा लिया। इसके बाद उनके बिखरे केशोंको सँवारा और अपने करकमलोंसे उनके मुखको पोंछा ॥ २६ ॥

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा।

आश्लिष्य बाहुना राजन् अनन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥

सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः।

हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हा सतां गतिः ॥ २८ ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण सान्त्वना देनेकी कलामें अति निपुण हैं। वे सज्जनोंके एकमात्र आश्रय हैं। श्रीकृष्णने रुक्मिणीके आँसुओंसे सुशोभित नेत्रों एवं शोकाश्रुओंके वेगपूर्वक प्रवाहसे सिक्त वक्षःस्थलको भी पोंछा। अपनी भुजाओंसे उनका आलिङ्गन किया। तदनन्तर अनन्य गति एवं अति दयनीय अपनी पत्नीको मृदु वचनोंसे सान्त्वना देने लगे। भगवान्‌के चातुरीपूर्ण हास-परिहाससे रुक्मिणीका हृदय विकल हो गया था। वस्तुतः वे इस प्रकारके परिहासके योग्य ही न थीं ॥ २७-२८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम्।

त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय सहचरी! तुम मुझमें कोई दोष मत देखो! इस तरह रुठो मत। हे विदर्भ-नन्दिनी! तुम्हारा हृदय जो मेरे प्रति इतना आसक्त है—यह मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। हे सुन्दरि! मैंने तो केवल तुम्हारी प्रेमभरी बात सुननेके लिए ही हास-परिहास किया था कि तुम क्या-क्या कहोगी? ॥ २९ ॥

मुखञ्च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम्।

कटाक्षोपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥

मुझे यह देखनेकी विशेष लालसा थी कि प्रणय-कोपके कारण फड़कते हुए तुम्हारे लाल अधर कैसे सुन्दर लगते हैं? कटाक्ष-विक्षेपसे तुम्हारे नेत्रोंमें छायी हुई लालिमा कितनी मनमोहक लगती है? क्रोधसे तनी हुई सुन्दर भौंहोंसे युक्त तुम्हारा मुखकमल कैसा मनोहर लगता है? यह सब देखनेके लिए ही मैंने तुमसे परिहास किया था (यदि कहो, सत्यकाम भगवान्की यदि ऐसी ही इच्छा थी तो रुक्मिणी कोपके साथ कुटिल कटाक्षवती क्यों नहीं हुई। इसका उत्तर श्रील चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि इच्छाशक्ति भगवान्के अधीन है, किन्तु प्रेम भगवान्को भी अपने अधीन कर लेता है। प्रेमके निकट इच्छाशक्तिका कोई प्रभुत्व नहीं है। प्रेम आनन्दरूप भगवान्को अतिशय आनन्द प्रदान करनेके लिए उनकी इच्छाशक्तिको कभी-कभी अन्य प्रकारसे कर देता है। घृतस्नेहवती रुक्मिणीमें मान-कौटिल्यका उदय ही नहीं होता, किन्तु मधुस्नेहवती सत्यभामाका मान, अधर-कम्पन, कुटिल कटाक्षादिका श्रीकृष्ण भोग करते हैं) ॥ ३० ॥

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम्।

यत्रम्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥

हे भयशीले! हे कान्ते! गृहस्थोंके लिए यह परम लाभ है कि वे गृहस्थाश्रममें अपनी प्रणयिनी (प्रेयसी) के साथ हास-परिहास द्वारा कुछ समय बिता लेते हैं (वे सोच रही हैं कि मेरी व्यजनादि परिचर्यासे इन्हें दुःख प्राप्त हो रहा है, किन्तु कठोर

कोप उक्तियोंसे इन्हें सुख प्राप्त होता है, हर्षसे प्रफुल्लित मुख इन्हें रुचिकर नहीं लगता किन्तु अति दुःख, रुक्षता, कोप, विवर्णता एवं इसके प्रतिकूल दोनों भौंहोंसे युक्त भीषण मुख रुचिकर लगता है—अहो कैसा स्वभाव है! इसी पर कृष्णका उत्तर था कि गृहस्थ होनेका परम लाभ है) ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच—

सैवं भगवता राजन् वैदर्भी परिसान्त्विता।

ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान्‌के इन सान्त्वनापूर्ण वचनोंसे महारानी वैदर्भी आश्वस्त हो गयीं। उन्हें विश्वास हो गया कि भगवान्‌ने सभी बातें परिहासमें कही थीं। अब उनका भय जाता रहा कि पति उनका परित्याग कर देंगे ॥ ३२ ॥

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम्।

सब्रीडहासरुचिर स्निग्धापाङ्गेन भारत ॥ ३३ ॥

हे भरतकुलनन्दन! अब वे सलज्ज मुसकान एवं स्निग्ध तथा अनुरागमयी चितवनसे श्रीकृष्णके मुखारविन्दको निहारती हुई उन पुरुष-भूषणसे कहने लगीं ॥ ३३ ॥

श्रीरुक्मिण्युवाच—

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह

यद्वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः।

क्व स्वे महिम्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः

क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥

(भगवान् श्रीकृष्णने जो अपना अपकर्ष एवं रुक्मिणीका उत्कर्ष बतलाया, रुक्मिणी उन्हीं वचनोंके विपरीत व्याख्या करने लगीं—) रुक्मिणीने कहा—हे अरविन्दलोचन! हे अनन्त! आप अद्भुत माहात्म्य, गुण एवं सौन्दर्यादिसे परिपूर्ण हैं—अतः मैं आपके अनुरूप नहीं हूँ—यह जो आपने कहा, वह वस्तुतः ठीक ही है। आप षडैश्वर्यस्वरूप अपनी महिमामें प्रतिष्ठित त्र्यधीश हैं

(अर्थात् ब्रह्मादि तीनों देवताओंके अधीश्वर हैं, सर्वैश्वर्यशाली हैं। अतएव आप कहाँ! और कामनाओंके पीछे भटकनेवाले मूर्खोंके द्वारा वन्दित और तीनों गुणोंके अनुसार स्वभाव रखनेवाली कहाँ मैं! अर्थात् गुण-प्रकृति बहिरङ्गा स्वरूपकी अङ्गरूपा प्रकृति) ॥ ३४ ॥

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः

शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा।

नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं

त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥

हे महापराक्रमशाली! आपने जो यह कहा कि आप राजाओंके भयसे समुद्रकी ओर पलायन कर आये हैं—यह कथन यथार्थ ही है, क्योंकि आप परमचैतन्यमय हैं। विषयासक्त राजाओंके भयसे ही मानो आप जीवोंके हृदयरूप अथाह समुद्रमें परमात्मरूपसे शयन करते हैं। आपने कहा कि महाबलशाली शत्रुओंके साथ आप सर्वदा विद्वेष रखते हैं—यह भी सत्य ही कहा है, परन्तु वे बलशाली हैं कौन? यही तो अपनी दुष्ट इन्द्रियाँ। अतः जो लोग बहिर्मुख इन्द्रियपरायण हैं—उनसे आपका विरोध रहता ही है। आपके भक्त जब इन्द्रियोंको जय कर लेते हैं, तब उनकी विषयासक्ति चली जाती है और आप उन्हें अपने माधुर्यका साक्षात् अनुभव कराते हैं। आपने कहा है कि आपने राजसिंहासनका प्रायः त्याग ही कर दिया है—यह कथन भी सुसङ्गत ही है, क्योंकि घोर अन्धकार समझकर अविवेक-बहुल राजपदोंका तो आपके सेवकोंने भी परित्याग कर रखा है ॥ ३५ ॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां,

वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम्।

यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य,

भूमस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥ ३६ ॥

हे प्रभो! आपने कहा कि आपने अज्ञात एवं अस्पष्ट आचरण धारण किया है; आप किसी भी प्रकारके लौकिक

आचरण नहीं करते—यह भी निस्सन्देह सत्य है, क्योंकि जो आपके चरणकमलोंके मकरन्दका सेवन करते हैं—उन मुनियोंके लिए भी आपका आचरण अस्पष्ट एवं अप्रकाशित रहता है। जो विषयलोलुप नरपशु हैं, उनके लिए तो आप दुर्बोध्य हैं ही, वे आपका अनुमान तक भी नहीं कर सकते। विशेषरूपसे हे भूमन्! जो भक्त आपका अनुसरण करते हैं, उनका आचरण भी अलौकिक प्रतीत होता है, तो समस्त जगत्के अधीश्वर आपका आचरण अलौकिक क्यों नहीं होगा? जब लोकातीत पथ आपका इष्ट है तो पथके अनुसरण करनेवालेका वही पथ काम्य क्यों नहीं होगा ॥ ३६ ॥

निष्किञ्चनो ननु भवान् न यतोऽस्ति किञ्चिद्-

यस्मै बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ।

न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः

प्रेष्ठो भवान् बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥

हे भगवन्! आपने “मैं निष्किञ्चन हूँ” इत्यादि जो वचन कहे, वे भी सत्यसे परे नहीं हैं। (सबका अंशी होनेके कारण जो सम्पूर्ण हैं, वे ही निष्किञ्चन हैं) दूसरोंके द्वारा जिन्हें पूजा प्राप्त है, वे ब्रह्मादि भी विविध भेंटोंके द्वारा आपकी पूजा करते हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं, आप ही सब कुछ हैं, इसलिए आप निष्किञ्चन स्वरूप हैं। आप ब्रह्मादि देवताओंके प्रिय हैं और वे आपके प्रिय हैं। अतः आपने जो स्वयंको ‘निष्किञ्चनजनप्रिय’ कहा—वह आपने अपनी ही विवेचना की है। (आप सकाम ब्रह्मादिके भी प्रियतम हैं और निष्किञ्चन अर्थात् निष्काम भक्तोंके भी प्रियतम हैं) आपने जो यह कहा कि धनी प्रायः मेरी पूजा-सेवा नहीं करते, वह भी निर्विवाद सत्य है। धनी धनमदसे अन्धे होकर इन्द्रिय-तर्पणमें ही लगे रहते हैं और वे जान नहीं पाते कि सर्वसंहारक कालके रूपमें आप उनके सिरपर सवार हैं ॥ ३७ ॥

त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा
 यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम्।
 तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः
 पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥

हे सर्वेश्वर! आप समस्त धर्मादि पुरुषार्थोंके फलस्वरूप हैं। समस्त सिद्धियोंके भी आप ही फलात्मस्वरूप हैं। सदबुद्धि सम्पन्न पुरुष आपकी प्राप्तिके लिए सब कुछ त्याग कर देते हैं—उन्हीं पुरुषोंका आपके साथ सम्बन्ध सुसङ्गत ही है, परन्तु परस्पर आसक्त सुख-दुःखके वशीभूत पुरुषों एवं स्त्रियोंका आपके साथ सम्बन्ध उचित नहीं हो सकता। अतः आपने जो यह कहा कि विवाह तथा मैत्री दो समान व्यक्तियोंमें होनी चाहिये, वह यथार्थ ही है (समाज अर्थात् लक्ष्मीनारायणका जो सेव्य-सेवक सम्बन्ध है, वही मेरा और आपका है) ॥ ३८ ॥

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव
 आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि।
 हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेग-
 ध्वस्ताशिषोऽब्जभव नाकपतीन् कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥

आपने कहा कि भिक्षुकगण आपकी प्रशंसा करते हैं—यह भी ठीक है, परन्तु वे भिक्षुक हैं कौन? जिन्होंने संन्यास-दण्डका परित्याग कर रखा है, ऐसे नारदादि मुनिगण—जो अपराधी-से-अपराधीको भी दण्ड नहीं देते, इसी प्रकारके भिक्षु आपके माहात्म्यको जानते हैं। आप जगत्के अन्तर्यामी हैं एवं अपना भजन करनेवालोंको आप स्वयंको ही प्रदान कर देते हैं—इसी दूरदर्शिताके आधारपर मैंने आपका वरण किया है! ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादि देवता तो आपकी भौहोंके सङ्केतसे उत्पन्न कालके वेगके द्वारा ही विनष्ट हो जाते हैं, तब शिशुपाल, दन्तवक्रके विषयमें वक्तव्य क्या है? ॥ ३९ ॥

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्
 विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम्।
 सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून् स्वभागं
 तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥

अब रुक्मिणीमें अकस्मात् ही मान नामक स्थायी भावका उदय हो गया। कृष्णके द्वारा अन्य पुरुषका गुण वर्णन होनेपर वे कुपित हो गयीं और श्रीकृष्णको वक्र दृष्टिसे देखती हुई कहने लगीं—हे गदाग्रज! आपने कहा कि आप राजाओंके भयसे समुद्रमें आ छिपे हैं—यह कथन किसी प्रकार युक्ति-सङ्गत प्रतीत नहीं होता है; यह कथन जाड्यका ही प्रकाशक है क्योंकि सिंह जिस प्रकार दूसरे प्राणियोंको पराभूत करके अपना भोज्य हर ही लेता है, उसी प्रकार हे ईश! आपने भी शार्ङ्गधनुषकी टङ्कारसे वहाँ एकत्रित राजाओंको परास्त करके अपने चरणोंमें समर्पित मुझ दासीका हरण कर लिया है ॥ ४० ॥

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैण्य-
 जायन्तनाहुष-गयादय ऐक्यपत्यम्।
 राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष
 सीदन्ति तेऽनुपदर्वी त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥

आप यह कैसे कहते हैं कि जो मेरा अनुसरण करता है, उसे प्रायः कष्ट उठाना पड़ता है, प्राचीन कालमें आपके भजनकी कामनासे अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति एवं गय आदि उत्तम राजाओंने एकछत्र साम्राज्यका परित्याग कर दिया और वनमें चले गये। हे कमल-लोचन! यह बतलाइये, आपके मार्गका अनुसरण करनेवाले इन राजाओंको किसी प्रकारके कष्टकी प्राप्ति हुई थी क्या? ॥ ४१ ॥

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्ध-
 माघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम्।

लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य
मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥

अब आप कहते हैं कि तुम अपने योग्य किसी दूसरे राजकुमारका वरण कर लो, हे भगवन्! आप समस्त गुणोंके आश्रय हैं। बड़े-बड़े आत्माराम पुरुष आपके पादपद्मोंके सौरभकी प्रशंसा करते हैं। आप स्वयं लक्ष्मीदेवीके द्वारा सेव्य हैं। आपका आश्रय मनुष्योंके लिए मोक्षस्वरूप है। मनुष्यलोकमें कोई भी बुद्धिमती स्त्री इन चरणकमलोंकी सुगन्धका आस्वादन कर ले, तो क्या अर्थकी कामनासे वह इनकी उपेक्षा करके निरन्तर जरा, मृत्यु आदि महान् भयोंसे ग्रस्त रहनेवाले मरणशील किसी दूसरे पुरुषका आश्रय ले सकती है? ॥ ४२ ॥

तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीश-
मात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम्।
स्यान्मे तवाङ्घ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या
यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥

हे प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं। सभीके हृदयोंमें रहनेवाले हैं। हे सर्वाभीष्ट प्रदाता! आप इस लोक और परलोकमें सभीकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। आप सर्वतोभावसे मेरे अनुकूल हैं। आप अपने भक्तोंके संसार-बन्धनका विनाश करके उन्हें अपना स्वरूप तक दे देते हैं। इसी कारणसे आपके ये पादपद्म जन्म-जन्मान्तरमें मेरी शरण हों ॥ ४३ ॥

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः
स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः।
यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्-
युष्मत्कथा मृडविरिज्वसभासु गीता ॥ ४४ ॥

हे शत्रुविनाशन! हे अच्युत! ब्रह्मा, शिवजी आदि देवेश्वरोंकी सभामें निरन्तर गायी जानेवाली आपकी लीलाकथा जिन नारियोंके

कर्णोंमें प्रवेश नहीं करती, उन्हीं अभागिन नारियोंके घरोंमें गृहस्थीका बोझ ढोनेवाले गधों, व्यापार सम्बन्धी कार्योंके कारण जुते रहनेवाले बैलों, सदैव तिरस्कार सहनेवाले कुत्तों, स्वार्थी एवं क्रूर विडाल और क्रीतदासोंके समान पूर्वकथित शिशुपालादि राजा ही उन्हें पतिके रूपमें प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-

मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ।

जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा

या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥

जिन स्त्रियोंने कभी भी आपके चरणकमल-मकरन्दका आघ्राण नहीं किया है, वे ही स्त्रियाँ चर्म-दाढ़ी-मूँछ-रोम-नख एवं केशोंसे ढके हुए एवं भीतरसे मांस, हड्डी, रक्त, कीड़े-विष्टा-कफ-पित्त-वायुमय जीवित शवके समान शरीरधारी अधम पुरुषको स्वामी मानकर उनकी सेवा करती हैं ॥ ४५ ॥

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग

आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ।

यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो

मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ॥ ४६ ॥

हे कमललोचन! आप आत्माराम हैं। आप इसीसे परितृप्त रहते हैं। अन्य लोगोंके समान आप मुझसे भी उदासीन रहते हैं, तथापि आपके श्रीपादपद्मोंकी आसक्ति ही मेरा परम लाभ है और यही मेरी अभिलाषा है। विशेषरूपसे जिस समय इस विश्वकी वृद्धिके लिए उत्कट रजोगुणका आश्रय लेकर आप मेरी ओर देखते हैं, उस समय वही मेरे लिए आपका परम अनुग्रह होता है ॥ ४६ ॥

नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ।

अम्बाया एव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्गतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥

हे मधुसूदन! आपने जो मुझे अपने योग्य दूसरे किसीको वरण करनेके लिए कहा है—वह भी मिथ्या नहीं है, कन्याओंका विवाहके पहले किसी-न-किसी पुरुषके प्रति अनुराग हो ही जाता है, जिस प्रकार काशीराजकन्या अम्बाका शाल्वके प्रति आकर्षण था॥ ४७॥

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम्।

बुधोऽसतीं न बिभृयात् तां बिभ्रदुभयच्युतः॥ ४८॥

कुलटा स्त्री विवाहिता होनेपर भी नवीन-नवीन पुरुषोंकी आकाङ्क्षा करती रहती है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको ऐसी कुलटा स्त्रीसे विवाह नहीं करना चाहिये। ऐसी स्त्रियोंसे विवाह करनेसे पुरुष इस लोक और परलोक दोनोंसे ही भ्रष्ट हो जाते हैं॥ ४८॥

श्रीभगवानुवाच—

साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्बिता।

मयोदितं यदन्वात्थ सर्व्वं तत् सत्यमेव हि॥ ४९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे साध्वी! इन्हीं वचनोंको सुननेकी अभिलाषासे ही मैंने तुम्हारे साथ परिहास किया था। हे राजपुत्री! तुमने मेरे वचनोंका जो विश्लेषण किया है, वह वस्तुतः यथार्थ ही है॥ ४९॥

यान् यान् कामयसे कामान् मय्यकामाय भामिनि।

सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा॥ ५०॥

हे कल्याणी! तुमने सांसारिक कामनाओंकी निवृत्तिके लिए ही जिन आशीर्वादोंकी प्रार्थना की है, हे प्रियतमे! वह सब मेरे एकान्त भक्तोंको सहजरूपसे सदा-सर्वदा प्राप्त है॥ ५०॥

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यञ्च तेऽनघे।

यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता॥ ५१॥

हे शुद्धचरिते! मैं हास-परिहाससे तुम्हें विचलित करना चाहता था, परन्तु तुम तनिक भी विचलित नहीं हुई। इस प्रकार मैंने तुम्हारा पति-प्रेम और पातिव्रत्य धर्म विशेषरूपसे जान लिया

(शास्त्रोंमें प्रेमका स्वरूप बतलाया गया है कि ध्वंसका कारण विद्यमान रहनेपर भी उससे अप्रभावित रहकर नायक-नायिकाका जो परस्पर भाव-बन्धन है, वही प्रेम है)॥५१॥

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया।

कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया॥५२॥

प्रिये! मैं मोक्ष-प्रदाता हूँ। प्रेमा-भक्तिको देनेवाला हूँ। जिनका चित्त विषय-भोगोंमें आसक्त है, वे साधारण दाम्पत्य सुखकी अभिलाषासे तपस्या एवं व्रतोंके द्वारा मेरी पूजा करते हैं। ऐसे लोग मेरी मायाशक्तिके द्वारा मोहित रहते हैं॥५२॥

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं,

वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम्।

ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां,

मात्रात्मकत्वात् निरयः सुसङ्गमः॥५३॥

हे मानिनि! मैं अपवर्ग एवं समस्त सम्पत्तियोंका अधीश्वर हूँ। मुझे प्राप्त करके भी मनुष्य उन विषय-सुखोंकी प्रार्थना करते हैं, जो नरकमें तथा सूकर-कूकर आदि निकृष्ट योनियोंमें सहज सुलभ हैं। ये बड़े मन्द-भागी हैं। ये समस्त पुरुष इन्द्रिय-सुख-भोग ही चाहते हैं, अतः विषयात्मक अर्थात् स्त्री-सङ्गादि सुख-साधक निकृष्ट योनियाँ ही उन्हें उपयुक्त जान पड़ती हैं॥५३॥

दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया

कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः।

सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो

ह्यसुम्भराया निकृतिं जुषः स्त्रियाः॥५४॥

हे गृहस्वामिनी! तुमने निष्काम रहकर जिस प्रकार मेरा अनुसरण करते हुए मेरी सेवा की है, वह दूषित मनोभावोंसे युक्त, इन्द्रिय-तर्पणमें लगी रहनेवाली, छल-छद्मकी रचना करनेवाली और सांसारिक बन्धनोंमें पड़ी हुई स्त्रियोंके लिए दुष्कर है। हे प्रिये! तुम्हारा मेरे प्रति यह भाव अति मङ्गलकारी है॥५४॥

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु
पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले।
प्राप्तान् नृपान् न विगणय्य रहोहरो मे
प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥

हे भामिनि! तुम्हारे समान प्रणयिनी पत्नी मुझे अपने किसी घरमें दिखायी नहीं देती। तुमने नारदादिसे मात्र मेरी कीर्तिको सुना भर था और इतने पर ही अपने विवाहके समय आये हुए राजाओंकी उपेक्षा करके बड़े अनुरागके साथ संवाद-वाहक ब्राह्मणको गोपनीय रूपसे मेरे पास भेज दिया था ॥ ५५ ॥

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य
प्रोद्वाहपर्व्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम्।
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या
नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥

प्रिये! युद्ध करते समय मैंने तुम्हारे भाईको विरूप कर दिया और अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें बलरामजीने चौसर खेलते समय तुम्हारे भाईका वध कर दिया। मुझसे तुम्हारा वियोग न हो जाय—इस भयसे तुम इन सारे दुःखोंको सहती रहीं—परन्तु एक शब्द भी नहीं कहा। अपने इन्हीं सहिष्णुता आदि गुणोंसे तुमने मुझे वशमें कर रखा है ॥ ५६ ॥

दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमन्त्रः
प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत्।
मत्वा जिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं
तिष्ठेत तत् त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥ ५७ ॥

हे देवी! तुमने मुझे प्राप्त करनेके लिए रहस्यको गुप्त रखनेवाले एक ब्राह्मणको विश्वस्त दूतके रूपमें भेजा। जब तुमने देखा कि मेरी उपस्थितिमें विलम्ब हो रहा है, तो तुम्हें यह सारा संसार ही शून्य दिखायी देने लगा। अपने शरीरको किसी औरके लिए योग्य न समझकर तुमने उसके ही त्याग करनेका सङ्कल्प

कर लिया। मैं केवल तुम्हारे प्रति आनन्द प्रकाश कर सकता हूँ। तुम्हारे प्रेमके प्रतिदानकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। प्रिये! मैं तुम्हारे प्रेमका अभिनन्दन करता हूँ॥५७॥

श्रीशुक उवाच—

एवं सौरतसंलापैर्भगवान् जगदीश्वरः।

स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन्॥५८॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—जगदीश्वर श्रीकृष्ण स्वयं आत्माराम हैं। वे मनुष्य लीलाका अनुकरण करते हुए प्रेम-विषयक परिहासमय वचनोंके द्वारा लक्ष्मीरूपिणी रुक्मिणीसे वार्त्तालाप करते और उनके साथ विहार किया करते॥५८॥

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव।

आस्थितो गृहमेधीयान् धर्म्मान् लोकगुरुर्हरिः॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवादो नाम
षष्ठितमोऽध्यायः॥६०॥

भगवान् श्रीहरि निखिल प्रभाव-सम्पन्न और सम्पूर्ण जगत्के गुरु हैं। वे इसी प्रकारसे अन्यान्य भार्याओंके महलोंमें भी गृहस्थ जनोंके समान रहते और पारम्परिक गृहस्थोचित धर्मोंका पालन करते॥५९॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके साठवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकषष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके पुत्र-पौत्र आदि सन्ततिका वर्णन तथा
अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना

श्रीशुक उवाच—

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान् दश दशाबलाः।

अजीजनन्ननवमान् पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! श्रीकृष्णकी सभी पत्नियोंके गर्भसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने पिताके समान समस्त गुणोंसे सम्पन्न थे ॥ १ ॥

गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम्।

प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियाँ उनकी यथार्थ महिमाको नहीं जानती थीं। उनमेंसे हर कोई यही समझती थी कि उसके पति भगवान् अच्युत उसके अनुरोधके कारण कभी महलसे बाहर नहीं जाते, वे सर्वदा उसके भवनमें उसीके पास रहते हैं। इसलिए वही अपने पतिकी सर्वाधिक प्रियतमा है ॥ २ ॥

चार्वञ्जकोशवदनायतबाहुनेत्र—

सप्रेमहास रसवीक्षितवल्गुजल्पैः।

सम्मोहिता भगवतो न मनो विजेतुं

स्वैर्विभ्रमैः समशकन् वनिता विभूम्नः ॥ ३ ॥

वे सुन्दर रमणियाँ भगवान्के मनोहर कमल-कोशके समान मुख-मण्डल, सुविशाल बाहु, सुविस्तृत नेत्र, प्रेम एवं मधुर मुसकान तथा रसमयी चितवन और प्रेमपूर्ण आलापोंसे सदा-सर्वदा सम्मोहित रहती थीं, परन्तु वे अपने शृङ्गारपरक भाव-विलासोंसे भगवान्के चित्तको वशीभूत करनेमें समर्थ न थीं ॥ ३ ॥

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-

भ्रूमण्डलप्रहितसौरत मन्त्रशौण्डैः ।

पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै-

र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णकी पत्नियाँ सोलह हजारसे अधिक थीं। उनमेंसे कोई भी अपनी रहस्यपूर्ण मुसकान, मधुर चितवन, मनोहर भ्रू-भङ्गिमाओं द्वारा सङ्केतित प्रेम-मन्त्रों, निपुणतायुक्त कामबाणों एवं काम विलाससे परिपूर्ण हाव-भावों तथा कामकलाके अन्यान्य प्रसिद्ध उपायोंके द्वारा श्रीकृष्णके चित्तको तनिक भी विक्षुब्ध (चलायमान) न कर सकी ॥ ४ ॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता

ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।

भेजुर्मुदाविरतमेधितयानुराग-

हासावलोक-नवसङ्गम-लालसाद्यम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मादि देवता भी जिनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते, उन रमापतिको इन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। नित्य-निरन्तर प्रेममें सराबोर रहनेके कारण उन रानियोंके हर्ष एवं आनन्दकी वृद्धि होती रहती थी। वे अनुरागमयी मुसकराहट, मधुर चितवन और नव सङ्गमकी लालसासे भगवान्की सेवामें उत्सुक रहती थीं ॥ ५ ॥

प्रत्युद्गमासनवराहणपादशौच-

ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।

केशप्रसारशयनस्नपनोपहाय्यै-

दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥

हे राजन्! उनमेंसे सभी पत्नियोंके पास सैकड़ों दासियाँ रहती थीं, परन्तु जब भगवान् पधारते, तब स्वयं ही विनयपूर्वक उनकी अगवानी करना, उत्तम आसन प्रदान करना, उत्तम द्रव्योंसे उनका पूजा-सत्कार करना, चरण पखारना, ताम्बूल प्रदान करना, पैर

दबाना, चँवर डुलाना, सुगन्धित पुष्प-हार प्रदान करना, इत्र-फुलेल चन्दनादि लगाना, केश सँवारना, स्नान कराना, भोजन कराना, शयन कराना आदि कार्योंके द्वारा स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्णकी दास्य भावसे सेवा करतीं ॥ ६ ॥

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ।

अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान् प्रद्युम्नादीन् गृणामि ते ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णकी सोलह हजारसे अधिक पत्नियाँ थीं और उनमेंसे सभीके दस-दस पुत्र थे। इनमेंसे पहले मैंने जिन आठ पटरानियोंका वर्णन किया था—अब उनके ही प्रद्युम्न आदि पुत्रोंके नाम बतलाता हूँ ॥ ७ ॥

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ।

सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥ ८ ॥

चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ।

प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥

रुक्मिणी देवीके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए थे—जिनके नाम हैं—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु एवं चारु। ये सभी गुणोंमें भगवान् श्रीकृष्णसे कम न थे ॥ ८-९ ॥

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ।

चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाष्टमः ॥ १० ॥

श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ।

साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥

विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः ।

जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसम्मताः ॥ १२ ॥

सत्यभामाके दस पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतापभानु। जाम्बवतीके गर्भसे साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्,

शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु—इन दस पुत्रोंने जन्म-ग्रहण किया था। ये सभी अपने पिताके बड़े प्रिय थे ॥ १०-१२ ॥

वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः ।

आमः शङ्कुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥

नाग्नजिती सत्याके दस पुत्र थे—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु और कुन्ति ॥ १३ ॥

श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ।

शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्ध्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥

कालिन्दीके दस पुत्रोंके नाम थे—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक ॥ १४ ॥

प्रघोषो गात्रवान् सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ।

माद्रयाः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥

लक्ष्मणाके पुत्रोंके नाम थे—प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित ॥ १५ ॥

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ।

महांसः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥

मित्रविन्दाके दस पुत्र थे—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महांस, पावन, वह्नि और क्षुधि ॥ १६ ॥

संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ।

जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥

भद्राके पुत्र थे—संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक ॥ १७ ॥

दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ।

प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ।

पुत्र्यान्तु रुक्मिणो राजन् नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीके गर्भसे महाबलशाली अनिरुद्धको जन्म दिया। (यह उनकी रतिके अतिरिक्त दूसरी पत्नी है) इस समय प्रद्युम्न भोजकट नगरमें थे। रोहिणी आदि श्रीकृष्णकी और भी सौ-से अधिक पत्नियाँ थीं। उनके दस-दस पुत्र हुए थे। इनमें रोहिणी प्रधान थी उसके दीप्तिमान् एवं ताम्रतप्त आदि दस पुत्र थे॥१८॥

एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप।

मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश॥१९॥

परीक्षित्! इस प्रकार श्रीकृष्णके पुत्रोंकी माताओंकी संख्या सोलह हजार एक सौ-से भी अधिक थी। इन पुत्रोंके भी पुत्र हुए और तब पौत्रोंकी संख्या करोड़ों तक पहुँच गयी। इस प्रकार ये पुत्र-पौत्रादि भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वात्म-सम्पदा है। [रुक्मिणी आदि समस्त महिषियाँ उनकी स्वरूपभूता अथवा स्वरूपशक्तिरूपा हैं और उनकी सन्तति (पुत्र-पौत्रादि) उनकी आत्म-सम्पदा है। महिषीके प्रेमके परिमाणसे ही कृष्ण उसकी वशीभूतता स्वीकार करते थे। आत्माराम भगवान्के साथ उनकी महिषियोंके विहारका आधार था उनकी प्रेममयी दास्य भावना]॥१९॥

श्रीराजोवाच—

कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्बुहितरं युधि।

कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते।

एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोवैवाहिकं मिथः॥२०॥

श्रीपरीक्षित् महाराजने पूछा—हे सर्वज्ञ मुनिवर! रुक्मी तो संग्राममें श्रीकृष्णसे पराजित हो गया था और सदा-सर्वदा उनके वधका उपाय खोजा करता था, फिर उस रुक्मीने किसलिए शत्रु-पुत्र प्रद्युम्नके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया? दोनों शत्रुओंके बीच वैवाहिक सम्बन्ध किस प्रकार स्थापित हुआ, यह बतलाइये॥२०॥

अनागतमतीतञ्च

वर्त्तमानमतीन्द्रियम्।

विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगितः॥ २१ ॥

योगीजन भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इन्द्रियोंसे अगोचर, सुदूर स्थित एवं भौतिक अवरोधोंके कारण दिखायी न देनेवाले पदार्थोंको भी भलीभाँति देख लेते हैं, अतः आप इस विषयका वर्णन करनेमें पूर्ण समर्थ हैं॥ २१ ॥

श्रीशुक उवाच—

वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया।

राज्ञः समेतान् निर्जित्य जहारैकरथो युधि॥ २२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! प्रद्युम्न साक्षात् कामदेव ही थे। रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीने स्वयंवरमें उन्हें पति रूपमें वरण कर लिया। प्रद्युम्नने युद्धमें आये हुए राजाओंको अकेले ही पराजित कर दिया और उस कन्याका हरण कर लिया॥ २२ ॥

यद्यप्यनुस्मरन् वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः।

व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम्॥ २३ ॥

यद्यपि पहले श्रीकृष्णसे अपमानित होनेके कारण रुक्मी श्रीकृष्णसे सदा-सर्वदा वैर भाव रखता था, फिर भी अपने प्राणोंकी रक्षा करनेवाली अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिए उसने भानजेके साथ रुक्मवतीका विवाह कर दिया (रुक्मी शत्रुके पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेका इच्छुक था किन्तु लोकमें अपयशके भयसे उसने अपनी पुत्रीके लिए स्वयंवर सभा बुला ली थी)॥ २३ ॥

रुक्मिण्यास्तनयां राजन् कृतवर्म्मसुतो बली।

उपयेमे विशालार्क्षीं कन्यां चारुमतीं किल॥ २४ ॥

हे राजन्! रुक्मिणीकी एक पुत्री थी, जिसका नाम था चारुमती। उसके नेत्र बड़े-बड़े थे, वह परम सुन्दरी थी। कृतवर्माके पुत्र बलीने चारुमतीसे विवाह कर लिया॥ २४ ॥

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः।

रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया।

जानत्रधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥ २५ ॥

परीक्षित्! रुक्मी श्रीकृष्णके साथ सदैव शत्रुताका भाव रखता था, परन्तु अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे उसने अपनी पौत्री रोचनाका विवाह अपने दौहित्र (नाती) अनिरुद्धसे कर दिया। शत्रुके साथ इस तरहका वैवाहिक सम्बन्ध धर्म विरुद्ध है, यह जानकर भी रुक्मीने अपनी बहिन रुक्मिणीके स्नेह-बन्धनसे बँधे होनेके कारण यह वैवाहिक सम्बन्ध बनाया ॥ २५ ॥

तस्मिन्प्रभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ।

पुरं भोजकटं जग्मुः साम्ब-प्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥

हे राजन्! अनिरुद्धके विवाहमें सम्मिलित होनेके लिए श्रीबलदेव, श्रीकृष्ण, साम्ब, प्रद्युम्न आदि सभी रुक्मीपुर-भोजकट नगर पधारे थे ॥ २६ ॥

तस्मिन् निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः।

दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥

अनक्षज्ञो ह्ययं राजत्रपि तद्व्यसनं महत्।

इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षैः रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥

परीक्षित्! जब विवाहोत्सव समाप्त हो गया, तब कालिङ्ग आदि घमण्डी राजाओंने रुक्मीसे कहा—‘हे राजन्! बलदेव पासोंका खेल खेलना नहीं जानता, पर इस खेलमें उसकी आसक्ति बहुत है। अतः तुम इस अक्ष-क्रीड़ामें (चौसरमें) उसे पराजित कर सकते हो।’ राजाओंकी बात सुनकर रुक्मीने उसी समय बलदेवको चुनौती दी और उनके साथ चौसर खेलने लगा (कृष्णको अक्ष-क्रीड़ामें जीतना सम्भव न था) ॥ २७-२८ ॥

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम्।

तं तु रुक्म्यजयत् तत्र कालिङ्गः प्राहसद्बलम्।

दन्तान् सन्दर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत् तद्धलायुधः ॥ २९ ॥

चौसरमें बलदेवने पहले सौ, फिर हजार और इसके बाद दस हजार संख्याकी मुहरें दाँवपर लगाना स्वीकार कर लिया। इस बाजीपर रुक्मीने बलदेवजीको हरा दिया। इसपर वह कलिङ्गका राजा दाँत दिखा-दिखाकर बलदेवजीका उपहास करने लगा। बलदेवजीसे उसका हँसना सहन नहीं हुआ। भीतरसे वे अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे ॥ २९ ॥

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद्ग्लहं तत्राजयद् बलः ।

जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥

इसके बाद रुक्मीने एक लाख मुहरें दाँवपर लगायीं। अबकी बार इस बाजीको बलदेवने जीत लिया, किन्तु रुक्मी कपटताके साथ कहने लगा कि यह बाजी उसने जीती है ॥ ३० ॥

मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि ।

जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥

इसपर बलदेवको अत्यन्त रोष आ गया। वे इस प्रकार क्षुब्ध हो उठे, मानो पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आ गया हो। उनके नेत्र तो स्वाभाविक ही लाल हैं, अब अत्यन्त क्रोधके कारण अङ्गारोंके समान दहक उठे। उन्होंने दस करोड़ मुद्राएँ दाँवपर लगा दीं ॥ ३१ ॥

तञ्चापि जितवान् रामो धर्मेणच्छलमाश्रितः ।

रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राशिनका इति ॥ ३२ ॥

इस बार भी द्यूत-नियमानुसार बलदेवकी जीत हुई, परन्तु रुक्मी पुनः कपटताके साथ कहने लगा—यह दाँव मैंने जीता है। इस विषयमें प्रत्यक्षदर्शी ये सभासद ही सत्य बात कहें ॥ ३२ ॥

तदाब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ।

धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥

तभी आकाशवाणी हुई कि धर्मसे तो बलदेवकी ही जीत हुई है। रुक्मी निश्चितरूपसे असत्य कह रहा है ॥ ३३ ॥

तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ।

सङ्कर्षणं परिहसन् बभाषे कालचोदितः ॥ ३४ ॥

दुष्ट राजा रुक्मीको उत्साहित कर रहे थे, इसलिए उसने आकाशवाणीकी उपेक्षा की। दूसरी ओर मृत्यु उन राजाओंको प्रेरित कर रही थी, जिसके कारण वे राजागण बलदेवका उपहास करने लगे ॥ ३४ ॥

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ।

अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥ ३५ ॥

रुक्मीने कहा—तुम बस गो-पालनमें ही निपुण हो सकते हो, सर्वदा वन-वनमें भटकते रहते हो। तुम पासेका खेल खेलना क्या जानो? राजागण ही पासों एवं बाणोंसे खेला करते हैं। तुम्हारे जैसे गायोंको चरानेवाले ग्वारिया ये खेल खेलना भला क्या जाने? ॥ ३५ ॥

रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ।

क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥

रुक्मीके द्वारा अवज्ञा और दुष्ट राजाओंके द्वारा उपहास किये जानेपर बलदेव क्रोधसे तिलमिला उठे। उन्होंने मुद्गर (परिघ) उठाया और उस मङ्गलसभामें ही रुक्मीपर दे मारा। रुक्मी तत्काल मर गया ॥ ३६ ॥

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ।

दन्तानपातयत् क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥

विशेषरूपसे कलिङ्गका राजा जो ठठा-ठठाकर बलदेवका उपहास कर रहा था, वह वहाँसे भागनेके लिए दस कदमभर चला ही था कि बलदेवने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया और क्रोधमें उसके दाँतोंको ही उखाड़ डाला ॥ ३७ ॥

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ।

राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥

परीक्षित्! बलदेवने अपने मुद्ररकी चोटसे अन्यान्य राजाओंके भी बाहु, जाँघ एवं सिरोंको तोड़-फोड़ डाला। वे बुरी तरहसे डर गये और रक्तसे लथपथ शरीरोंसे इधर-उधर भागने लगे ॥ ३८ ॥

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत् साध्वसाधु वा।

रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥

हे राजन्! अपने श्यालक रुक्मीके मर जानेपर श्रीकृष्ण निरपेक्ष भावसे मौन ही रहे। रुक्मीका मारा जाना न्यायसङ्गत था या अन्यायपूर्ण—इसपर उन्होंने यह विचार किया कि बलरामका समर्थन करनेसे रुक्मिणी अप्रसन्न होंगी और रुक्मीके वधको बुरा बतलानेसे बलराम रुष्ट होंगे। इसलिए स्नेह-भङ्गकी आशङ्कासे वे चुप रहे। न बलदेवसे कुछ कहा और न ही रुक्मिणीसे ॥ ३९ ॥

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं,

रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम्।

रामादयो भोजकटादृशार्हाः,

सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदनिरुद्ध-विवाहे रुक्मिवधो
नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इसके बाद अनिरुद्धका विवाह और शत्रुका वध दोनों प्रयोजन सिद्ध हो गये। अतः श्रीकृष्णके आश्रित बलराम आदि यदुवंशी नवविवाहिता वधू रोचनाके साथ अनिरुद्धको श्रेष्ठ रथपर चढ़ाकर भोजकट नगरसे द्वारकापुरी चले आये ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके इकसठवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

बाणासुरकी कन्या उषा एवं अनिरुद्धका मिलन

श्रीराजोवाच—

बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धमभूद्घोरं हरि-शङ्करयोर्महत् ।
एतत् सर्व्वं महायोगिन् समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—हे योगीवर! मैंने सुना है कि यदुश्रेष्ठ अनिरुद्धने बाणासुरकी कन्या उषासे भी तो विवाह किया था और उस अवसरपर हरि-हरका परस्पर महाभयङ्कर युद्ध हुआ था। आप इस वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ।
(येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ।
तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।
मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः ।
शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत् पुरा ।
तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव तेऽमराः ।)
सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—महात्मा राजा बलिके सौ पुत्र थे—उनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम था बाणासुर। परीक्षित्! ये वही राजा बलि थे, जिन्होंने वामन-रूप-धारी श्रीहरिको समस्त पृथ्वी प्रदान कर दी थी। बाणासुर सर्वदा शिव-भक्तिमें तल्लीन रहता था। वह उदार, बुद्धिमान्, सत्यसङ्कल्प और दृढव्रत था। सभी लोग उसका सम्मान करते थे। शोणितपुर बहुत रमणीय देश था। उन दिनों बाणासुर यहीं राज्य करता था। शिवजीका कृपा-पात्र होनेसे इन्द्रादि देवता उसके राज्यमें चाकरी किया करते थे।

हे राजन्! जब शिवजीने ताण्डव नृत्य किया था, तब बाणासुरने अपने हजार हाथोंसे बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया था ॥ २ ॥

भगवान् सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः।

वरेणच्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीमहादेव समस्त प्राणियोंके अधीश्वर, शरणागत-वत्सल और अपने भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं। जब भगवान् महादेवने बाणासुरसे वर माँगनेके लिए कहा, तब उसने यही वरदान माँगा कि महादेव उसकी पुरीके संरक्षकके रूपमें वहीं रहें ॥ ५ ॥

स एकदाऽह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः।

किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥

एक बार बाणासुर अपने बल-पौरुषके कारण बड़ा उन्मत्त हो रहा था। वह पासमें ही विराजित महादेवजीके पास गया और सूर्यके समान जाज्वल्यमान मुकुटके द्वारा उनके चरणकमलोंका स्पर्श करके कहने लगा ॥ ६ ॥

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम्।

पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ५ ॥

हे देवाधिदेव! आप असफल मनोरथवालोंकी कामना पूर्ण करनेवाले कल्पतरु-स्वरूप हैं। आप समस्त चराचर जगत्के गुरु एवं ईश्वर-स्वरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत्।

त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ६ ॥

हे प्रभो! आपने मुझे हजार भुजाएँ दी हैं, परन्तु मैं उन्हें केवल भार-स्वरूप ही वहन कर रहा हूँ। तीनों लोकोंमें आपके अतिरिक्त मुझे कोई ऐसा प्रतिपक्षी योद्धा दिखायी नहीं देता, जो मुझसे बराबरी कर सके (आप मेरे साथ युद्ध करें, तो युद्ध करनेकी खुजलाहट दूर हो और आपको जय करके मैं सर्वदिग्-विजयीके रूपमें यश प्राप्त कर सकूँ) ॥ ६ ॥

कण्डूत्या निभृतैर्दोभिर्युत्सुर्दिग्गजानहम् ।
आद्यायां चूर्णयन्नद्रीन् भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ७ ॥

हे आदिदेव ! एक बार मेरी भुजाओंमें युद्धके लिए बड़ी खुजलाहट हो रही थी, तब मैं युद्धकी कामनासे पर्वतोंको अपनी सहस्र भुजाओंसे चूर्ण-विदीर्ण करता हुआ दिशाओंका शासन करनेवाले दिग्गजोंकी ओर दौड़ा था, परन्तु वे भी डरकर भाग गये ॥ ७ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ।
त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ ८ ॥

जब महादेवजीने बाणासुरके ये वचन सुने, तो उन्हें तनिक क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—रे मूर्ख ! जिस समय तेरा ध्वज टूटकर गिर जायेगा, उसी समय समझ लेना मेरे समान किसी योद्धासे तेरा युद्ध होगा और वही तेरे दर्पको चकनाचूर करेगा ॥ ८ ॥

इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशत्प्रप ।
प्रतीक्षन् गिरिशदेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! वह कुबुद्धि बाणासुर महादेवजीके वचनोंसे अति प्रसन्न हो गया। महादेवजीके आदेशानुसार ध्वज-भङ्ग और अपने बल-पराक्रमके नाश करनेवाले योद्धाकी प्रतीक्षा करता हुआ वह घर चला गया ॥ ९ ॥

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युग्मिना रतिम् ।
कन्यालभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ॥ १० ॥

परीक्षित् ! बाणासुरकी एक पुत्री थी, जिसका नाम था ऊषा। ऊषाने एक बार स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ अपना समागम देखा, जब कि उसने पहले न तो अनिरुद्धको कभी देखा था और न उनके विषयमें कभी सुना था।

विष्णुपुराणमें वर्णन है कि एक बार बाणराजाकी पुत्रीने महादेवजीके साथ पार्वतीका क्रीड़ा-विलास देख लिया था, तो

उसके मनमें भी यही इच्छा जाग उठी। सबके चित्तको जाननेवाली देवी गौरीने उससे कहा—अनुताप मत करो, वैशाखमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीको स्वप्नमें जो पुरुष आयेंगे, हे राजपुत्रि! वे ही तुम्हारे पति होंगे ॥ १० ॥

सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेति-वादिनी।

सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ ११ ॥

जब ऊषाने स्वप्नमें उन्हीं अनिरुद्धको नहीं देखा, तो 'हे प्राणप्रिय! तुम कहाँ हो?' कहती हुई बड़ी विह्वल होकर उठ बैठी। जब उसने अपनेको सखियोंके बीच देखा, तो लज्जित हो गयी ॥ ११ ॥

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता।

सख्यपृच्छत् सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १२ ॥

बाणासुरका एक मन्त्री था जिसका नाम था कुम्भाण्ड। उसकी पुत्री थी चित्रलेखा, जो ऊषाकी सखी थी। चित्रलेखाने उसी समय बड़े कौतूहलके साथ ऊषासे पूछा ॥ १२ ॥

कं त्वं मृगयसे सुभ्रू कीदृशस्ते मनोरथः।

हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १३ ॥

चित्रलेखाने कहा—हे सुन्दरी! तुम किसे ढूँढ़ रही हो? हे राजनन्दिनी! मैंने तो आज तक तुम्हारा कोई पति देखा नहीं है? तुम्हारा विवाह भी तो नहीं हुआ है, फिर तुम्हारी इस व्याकुलताका अभिप्राय क्या है? ॥ १३ ॥

श्रीऊषोवाच—

दृष्टः कश्चित्ररः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः।

पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयङ्गमः ॥ १४ ॥

ऊषाने कहा—हे सखि चित्रलेखे! मैंने स्वप्नमें एक बहुत ही सुन्दर पुरुषको देखा, जिसका श्याम वर्ण था, नेत्र कमलके समान

थे। बलिष्ठ भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं, पीले वस्त्र पहन रखे थे और वह स्त्रियोंके चित्तको आकर्षित करनेवाला था॥ १४॥

तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाधरं मधु।

क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे॥ १५॥

सखि, मैं अपने उसी प्रियतमको खोज रही हूँ। वह मुझे अधरामृतका पान कराके कहीं चला गया और मुझे अतृप्त स्थितिमें ही दुःखके सागरमें डाल गया॥ १५॥

चित्रलेखोवाच—

व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते।

तमानेष्ये वरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश॥ १६॥

चित्रलेखाने कहा—सखि! मैं तुम्हारा दुःख अवश्य दूर करूँगी। तुम्हारे चित्तको चुरा लेनेवाला पुरुष इस त्रिभुवनमें कहीं भी हो, मैं उसे यहाँ अवश्य ही ले आऊँगी। मैं चित्र बनाती हूँ—तुम बस चित्र देखकर सङ्केत कर दो कि यह वही तुम्हारा प्रियतम है॥ १६॥

इत्युक्त्वा देव-गन्धर्व-सिद्धचारण-पन्नगान्।

दैत्यविद्याधरान् यक्षान् मनुजांश्च यथालिखत्॥ १७॥

चित्रलेखाने यह कहकर देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष एवं मानवोंके यथायथ चित्र बना दिये॥ १७॥

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम्।

व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता॥ १८॥

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी हिया।

सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते॥ १९॥

महाराज परीक्षित्! चित्रलेखाने मनुष्योंमें वृष्णिवंशीय पुरुषोंमें वसुदेवके पिता शूर, वसुदेव, बलराम एवं श्रीकृष्णके चित्रोंको अङ्कित किया। ऊषाने जब प्रद्युम्नका चित्र देखा तो श्वसुर-भावके

कारण लज्जित हो गयी। जैसे ही उसने अनिरुद्धका चित्र देखा, तो लज्जासे अपना मुख नीचे कर लिया और मुसकराती हुई कहने लगी “यही हैं, यही हैं—वे मेरे प्राणवल्लभ॥” १८-१९ ॥

चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी।

ययौ विहायसा राजन् द्वारकां कृष्णपालिताम्॥ २० ॥

हे राजन्! चित्रलेखा योगिनी थी। वह समझ गयी कि उसकी सखी द्वारा निर्दिष्ट पुरुष श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध हैं। तब वह आकाश-मार्गसे द्वारकापुरी पहुँच गयी, जो श्रीकृष्ण द्वारा संरक्षित थी॥ २० ॥

तत्र सुप्तं सुपय्यङ्गे प्राद्युम्नि योगमास्थिता।

गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत्॥ २१ ॥

द्वारकाके महलमें अति सुरम्य पलङ्ग था, जिसपर अनिरुद्ध सोये हुए थे। चित्रलेखाने अपने योगबलसे उन्हें उठा लिया और उन्हें लेकर शोणितपुर लौट आयी। वहाँ आकर उसने अपनी सखी ऊषाको उसके प्राणवल्लभ अनिरुद्धके दर्शन करा दिये।

चित्रलेखा द्वारकामें प्रवेश करनेमें अशक्त थी, किन्तु श्रीनारदके उपदेशसे चित्रलेखाने ‘योगविद्या’ को प्राप्त कर लिया था। जब चित्रलेखा द्वारका पहुँची, तब उन्होंने वहाँ नारदको ध्यान-अवस्थामें देखा, सारा वृत्तान्त जानकर नारदने उसे सर्वलोकोंको मोहित करनेवाली विद्या दान की। इसे प्राप्त करके चित्रलेखाने अलक्षित भावसे अनिरुद्धजीको ऊषाके स्वप्न एवं उसके अनुरागके विषयमें बताया तथा पार्वतीके वरदानके बारेमें भी बता दिया॥ २१ ॥

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना।

दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुंभी रेमे प्राद्युम्निना सम्म॥ २२ ॥

अनिरुद्ध मनुष्य-श्रेष्ठ थे। वे सभी मनुष्योंमें सर्वाधिक सुन्दर थे। उन्हें देखते ही ऊषाका मुख प्रफुल्लित हो उठा, वह प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्धको अपने उस निजी-भवनमें ले गयी, जहाँ

पुरुषोंका प्रवेश दुर्लभ था। वहाँ वह उनके साथ विहार करने लगी।

अनिरुद्ध श्रीकृष्णके नित्य चतुर्व्यूहके अन्तर्गत हैं, वे ईश्वरतत्त्व हैं। वेद-शास्त्रोंमें इन्हींको आदिकारण कहा गया है। इन्हें ही 'शब्द योनि' कहा जाता है। अन्तःकरण-चतुष्टयमें इन्हें मनका अधिष्ठाता बताया गया है। अनिरुद्धको 'तुरीय' कहा गया है। ये ही चारों युगोंके विधायक एवं जरायुज, स्वेदजादि चारों प्रकारके जीवोंके एकमात्र आत्मा हैं। महाप्रलयके समुद्रमें वटपत्रपर शयन करनेवाले बाल मुकुन्द इन्हीं के अंश है। जिस प्रकार मूल सङ्कर्षणके साथ कारणार्णवशायीका अभेद है, उसी प्रकार—मूल अनिरुद्धके साथ क्षीरसमुद्रशायी विष्णुका अभेद है। बाणासुरका बन्धन इनकी इच्छामयी लीला है ॥ २२ ॥

पराङ्मयवासःस्रग्गन्ध-धूप-दीपासनादिभिः ।

पानभोजन-भक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषणांचितः ॥ २३ ॥

गूढः कन्यापुरे शश्वत् प्रवृद्धस्नेहया तया।

नाहर्गणान् स बुबुधे ऊषयापहतेन्द्रियः ॥ २४ ॥

ऊषा अन्तःपुरमें अनिरुद्धका अमूल्य वस्त्र, पुष्प-हार, इत्रादि गन्ध, धूप, दीप, आसन, पेय पदार्थ, भोजन एवं भक्ष्य सामग्रियों तथा प्रिय वचनोंसे पूजा-सत्कार करती। अनिरुद्ध उस अन्तःपुरमें गुप्तरूपसे छिपे रहते थे। ऊषाका अनुराग दिन-दूना-रात-चौगुना बढ़ता जा रहा था, जिससे अनिरुद्धका चित्त उनके वशमें न रहा, जहाँ तक कि वे यह भी भूल गये कि उन्हें यहाँ आये हुए कितने दिन बीत गये हैं ॥ २३-२४ ॥

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम्।

हेतुभिर्लक्षयाञ्चक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥ २५ ॥

भटा आवेदयाञ्चक्रु राजंस्ते दुहितुर्वयम्।

विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥ २६ ॥

यदुवीर अनिरुद्धके साथ समागमसे ऊषा बहुत अधिक प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहने लगी। उसके शरीरमें अङ्कित रति-चिह्नोंको स्पष्टरूपसे देखा जा सकता था। ऊषाके रङ्ग-ढङ्गको देखकर अन्तःपुरके सैनिकोंकी पत्नियाँ समझ गयीं कि ऊषाका अब कन्या-नियम नहीं रहा है, उसका कौमार्य नष्ट हो चुका है। उन्होंने यह बात अपने पतियोंको बतला दी, तब वे बाणासुरके पास गये और निवेदन किया कि—हे राजन्! आपकी पुत्रीमें कुछ ऐसे अनुचित आचरण दिखायी दे रहे हैं जिनसे कुलपर कलङ्क लग सकता है॥ २५-२६॥

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो।

कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्ष्याया न विद्महे॥ २७॥

हे स्वामी! हम अन्तःपुरमें आपकी पुत्रीकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करते हैं। रात-दिनकी हमारी पहरेदारीसे कोई पुरुष उसे देख भी नहीं सकता है। तब वह किस प्रकार किसी पुरुषके द्वारा दूषित हो गयी है—इसका कारण समझमें नहीं आता॥ २७॥

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः।

त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम्॥ २८॥

पुत्रीके कलङ्ककी बात सुनकर बाणासुरका हृदय व्यथित हो गया। वह शीघ्र ही अन्तःपुरमें ऊषाके महलमें चला गया और वहाँ उसने यदुश्रेष्ठ अनिरुद्धको बैठे हुए देखा॥ २८॥

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं,

श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम्।

बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा,

स्मितावलोकेन च मण्डिताननम्॥ २९॥

दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया,

तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्रजम् ।

बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां,
तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३० ॥

प्रिय परीक्षित्! कामावतार प्रद्युम्नजीके पुत्र अनिरुद्धके समान तीनों भुवनोंमें कोई पुरुष न था। उनका श्यामल वर्ण था, वे पीताम्बर पहने हुए थे। उनके नेत्र कमल-दलके समान स्निग्ध एवं विशाल थे। घुँघराली अलकावलियों, कुण्डलोंकी झिलमिलाती हुई ज्योति, सुमधुर मुसकान एवं प्रेमभरी चितवनसे उनका मुखमण्डल सुशोभित हो रहा था। उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं। ऊषाके स्तनोंके कुङ्कुम-रागसे अनुरज्जित वसन्तकालीन मल्लिका पुष्पोंकी माला खिसककर दोनों बाहुओंके मध्य कन्धेपर विभूषित थी। ऊषा समस्त माङ्गलिक लक्षणोंसे अलंकृत होकर विराजमान थी। अनिरुद्ध उसके सम्मुख बैठकर उसके साथ पासा खेल रहे थे, बाणासुर उन्हें देखकर विस्मित हो गया ॥ २९-३० ॥

स तं प्रविष्टं वृत्ताततायिभि-
र्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः।
उद्यम्य मौर्व्यं परिघं व्यवस्थितो,
यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ॥ ३१ ॥

अनिरुद्धने देखा कि उनका वध करनेके लिए उद्यत बाणासुर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत-से वीर सैनिकोंके साथ प्रवेश कर रहा है, तो उन्होंने मुरु नामक विशेष लोहेके बने हुए मुद्ररको उठा लिया और दण्ड धारण करनेवाले यमराजके समान उन सबका संहार कर डालनेकी इच्छासे वहाँ डट गये ॥ ३१ ॥

जिघृक्षया तान् परितः प्रसर्पतः,
शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत्।
ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता,
निर्भिन्नमूर्द्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ ३२ ॥

बाणासुरके सैनिक चारों दिशाओंसे अनिरुद्धपर वार करनेके लिए दौड़े, परन्तु उन्होंने उन सबपर इस प्रकारसे प्रहार किया, जिस प्रकार सूकर-यूथाधिपति कुत्तोंपर प्रहार करता है। प्रहारके कारण उन सैनिकोंके मस्तक, बाहु एवं जाँघ विदीर्ण हो गये और वे जान बचाकर भवनसे निकल भागे ॥ ३२ ॥

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली,
घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह।
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला
बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौत्सीत् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमदनिरुद्ध-बन्धो नाम
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

जब अनिरुद्ध बाणासुरकी सारी सेनाका संहार करने लगे, तब बाणासुर अतिशय क्रोधित हो उठा और उसने अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया। ऊषाने जब अनिरुद्धके बाँधे जानेके विषयमें सुना, तब वह शोक एवं विषादसे विह्वल हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह बहुत रोने लगी ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बासठवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध

श्रीशुक उवाच—

अपश्यताञ्चानिरुद्धं तद्वन्धूनाञ्च भारत।

चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे परीक्षित! इधर अनिरुद्धका कहीं पता न लगनेके कारण उनके आत्मीयगण शोकाकुल हो गये और इसी प्रकार वर्षाके चार मास बीत गये ॥ १ ॥

नारदात् तदुपाकर्ण्य वार्त्ता बद्धस्य कर्म च।

प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥

तब नारदका द्वारकामें पदार्पण हुआ और उन्होंने अनिरुद्धके शोणितपुर ले जानेसे उनके बँध जाने तक जो भी घटित हुआ था, वह सब वृत्तान्त सुना दिया। इस समाचारको सुनते ही श्रीकृष्णको अपना सर्वाराध्य माननेवाले वृष्णिवंशी उनके संरक्षणमें शोणितपुरकी ओर चल दिये ॥ २ ॥

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः।

नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥

अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम्।

रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात् सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥

सात्वत-प्रमुख श्रीकृष्ण और बलरामके नेतृत्वमें उनके अनुयायी प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब, नन्द, उपनन्द, भद्र आदि यादव-श्रेष्ठ वीरोंने बारह अक्षौहिणी सेनाओंको एकत्र किया और बिना अन्तरालके व्यूह बनाकर बाणासुरकी पुरीका चारों ओरसे घिराव कर लिया ॥ ३-४ ॥

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ।

प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

बाणासुरने देखा कि यदुवंशियोंकी सेना उसकी पुरीके उद्यान, प्राचीर, बुर्ज और पुरीके सिंहद्वार आदिको ध्वस्त कर रही है, तो वह क्रोधसे भर गया। उसने भी यादवोंके ही समान बारह अक्षौहिणी सेनाओंको एकत्र किया और नगरसे बाहर आ गया ॥ ५ ॥

बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ।

आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥

इधर देवाधिदेव शङ्करने बाणासुरकी सहायताके लिए कार्तिकेयको तथा अपने अनुचर प्रमथोंको साथ लिया और नन्दी नामक बैल पर सवार होकर युद्धभूमिमें आ गये। वे बलराम और श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

आसीत् सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।

कृष्ण-शङ्करयो राजन् प्रद्युम्न-गुहयोरपि ॥ ७ ॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण एवं शङ्कर तथा प्रद्युम्न एवं कार्तिकेयके बीच ऐसा अद्भुत और घमासान युद्ध आरम्भ हो गया कि जिसे देखकर या सुनकर आश्चर्यसे रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥ ७ ॥

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ।

साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥

बलरामजीका कुम्भाण्ड और कूपकर्णके साथ, साम्बका बाणासुरके पुत्रके साथ एवं सात्यकिका बाणासुरके साथ युद्ध होने लगा ॥ ८ ॥

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ।

गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥

ब्रह्मादि प्रमुख देवता, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ और यक्ष युद्ध देखनेके लिए अपने दिव्य विमानोंपर सवार होकर आ गये ॥ ९ ॥

शङ्करानुचरान् शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ।
 डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान् सविनायकान् ॥ १० ॥
 प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ।
 द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥

परीक्षित् ! शौरि श्रीकृष्णने शार्ङ्ग नामक अपने दिव्य धनुषके तीखी नोंकवाले बाणोंके सन्धानसे शङ्करके अनुचरों— भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, जातुधान, विनायक, वेताल, प्रेत, मातृका, पिशाच, कूष्माण्ड एवं ब्रह्मराक्षसोंको मार-मारकर भगा दिया ॥ १०-११ ॥

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ।
 प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥

पिनाक-पाणि शङ्करने शार्ङ्गधारी भगवान् श्रीकृष्णपर विविध अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, परन्तु श्रीकृष्णको किञ्चित् मात्र भी विस्मय नहीं हुआ। श्रीकृष्णने शङ्करके सभी शस्त्रास्त्रोंको प्रतिकूल अस्त्रोंके द्वारा प्रभावहीन कर दिया (भगवान् रुद्रने अपनी पराजयको निश्चित जानकर भी बाण एवं अन्य सभीको भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा दिखानेके लिए कृष्णके विरुद्ध युद्ध यात्राकी है) ॥ १२ ॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ।
 आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मास्त्रके निवारणके लिए ब्रह्मास्त्रका, वायव्यास्त्रके निवारणके लिए पर्वतास्त्रका, आग्नेयास्त्रके निवारणके लिए पार्जन्यास्त्रका एवं पाशुपतास्त्रके विरोधमें नारायणास्त्रका प्रयोग किया ॥ १३ ॥

मोहयित्वा तु गिरीशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
 बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥

इसके बाद श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्र चलाकर शङ्करजीको जृम्भित एवं मोहित कर लिया जिससे वे युद्ध छोड़कर जँभाई लेने लगे।

तब शौरि श्रीकृष्णने तलवार, गदा एवं बाणों द्वारा बाणासुरकी सेनाका विनाश कर दिया ॥ १४ ॥

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ।

असृग्विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिनापाक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥

कार्तिकेय प्रद्युम्नके बाणोंसे व्यथित हो रहे थे। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रक्तकी धारा बह रही थी। वे अपने वाहन मयूरपर सवार हुए और रण-क्षेत्रसे भाग गये ॥ १५ ॥

कुम्भाण्ड कूपकर्णश्च पेततुर्मुषलार्द्धितौ ।

दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥

कुम्भाण्ड एवं कूपकर्ण बलदेवके मुसलोंके प्रहारोंसे रणभूमिपर ही गिर पड़े। उनके सैनिक अपने सेनापतियोंको धराशायी देखकर अनाथ-सा अनुभव करने लगे और चारों दिशाओंमें भाग गये ॥ १६ ॥

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षितः ।

कृष्णमभ्यद्रवत् संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥

अपनी सेनाको तितर-बितर देखकर बाणासुर अत्यन्त क्रोधित हो गया। वह सात्यकिको छोड़कर रथपर सवार हुआ और श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिए उनकी ओर दौड़ पड़ा ॥ १७ ॥

धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पञ्चशतानि वै ।

एकैकस्मिन् शरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥

रणदुर्मद बाणासुरने एक ही साथ अपने पाँच सौ धनुषोंकी डोरियोंको खींचकर प्रत्येक धनुषपर दो-दो बाण चलाये ॥ १८ ॥

तानि चिच्छेद भगवान् धनूंषि युगपद्भरिः ।

सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥ १९ ॥

इसपर अनन्त ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्णने तत्क्षण ही बाणासुरके पाँच सौ धनुषोंको काट डाला। उसके सारथी, रथ एवं घोड़ोंको

भी ध्वस्त कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पाञ्चजन्य शङ्खसे ध्वनि-नाद किया ॥ १९ ॥

तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा।

पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥

उसी समय बाणासुरकी धर्म-माता कोटरा बाल बिखेरकर और बिना एक भी वस्त्र पहने नङ्ग-धड़ङ्ग होकर अपने उपासक पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिए श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयी (कोटरा पार्वतीकी ही एक मूर्ति है, जो दैत्योंकी उपास्या है) ॥ २० ॥

ततस्तिर्य्यङ्मुखो नग्नानिरीक्षन् गदाग्रजः।

बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाविशत् पुरम् ॥ २१ ॥

गदाग्रज श्रीकृष्ण उस नग्नमूर्तिको देखना नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपना मुख फेर लिया। बाणासुरका धनुष तो टूट ही गया था, रथ भी विदीर्ण हो गया था, उसने इस अवसरका लाभ उठाया और अपने नगरमें प्रवेश कर गया ॥ २१ ॥

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात्।

अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥

इधर श्रीकृष्णने शिवजीके भूतादि गणोंको तो भगा ही दिया था, किन्तु शिवजीका छोड़ा हुआ तीन मस्तक, नौ चक्षु एवं तीन पैरोंवाला, भगनास्त्र, क्रोधकी प्रतिमूर्ति, कालान्तक-सम रौद्र-ज्वर अङ्गारके समान जलाता हुआ-सा श्रीकृष्णपर आक्रमण करनेके लिए इस प्रकार दौड़ा, मानो दसों दिशाओंको जला डालेगा ॥ २२ ॥

अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम्।

माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥

भगवान् नारायणने शैव-ज्वरको आते हुए देखकर उसका प्रतिकार करनेके लिए शैत्य प्रभाववाला अपना वैष्णव-ज्वर

छोड़ा। तब अतीव उष्ण (गर्म) शिव-ज्वर और अतीव शीतल वैष्णव-ज्वर दोनोंके मध्य युद्ध आरम्भ हो गया॥ २३॥

माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः।

अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः।

शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः॥ २४॥

अन्तर्मे वैष्णव-ज्वरके तेजसे (बलसे) पीड़ित होकर माहेश्वर-ज्वर अति भयभीत हो गया और ऊँचे स्वरसे चिल्लाने लगा। जब किसी भी स्थानपर उसे अभय नहीं मिला, तब वह अत्यन्त नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर श्रीकृष्णसे शरणमें रहनेके लिए प्रार्थना करने लगा॥ २४॥

ज्वर उवाच—

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं,

सर्व्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्।

विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं,

यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम्॥ २५॥

माहेश्वर-ज्वरने स्तवन करते हुए कहा—हे भगवन्! आप अनन्त शक्तिसे युक्त हैं, ब्रह्मादि देवताओंके ईश्वर हैं, सर्वान्तर्यामी (आप शम्भुकी भी आत्मा हैं) एवं सर्वस्वरूप हैं। आप शुद्ध (मायामुक्त तथा मेरे प्रभु मायायुक्त) और चिद्घन हैं। वेदोंके द्वारा आपका उल्लेख किया जाता है, आप विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं संहारके कारण हैं (मेरे प्रभु तो मात्र संहारकर्ता हैं), आप प्रशान्त और स्वयं ब्रह्म हैं (मेरे प्रभु उग्र ब्रह्म हैं), मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ २५॥

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो,

द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः।

तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाह—

स्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये॥ २६॥

हे भगवन्! काल, कर्म, दैव, स्वभाव, जीव, सूक्ष्म भूत, भौतिक शरीर, प्राणवायु, अहङ्कार, ग्यारह इन्द्रियाँ एवं लिङ्गदेह इनका बीजाङ्कुर-प्रवाह आपकी माया ही है। बीज-रोह-प्रवाह अथवा बीजाङ्कुर-न्यायके अनुसार लिङ्ग-शरीर, उससे कर्म और कर्मसे लिङ्ग-शरीरकी उत्पत्ति होती है। ये सब बहिरङ्गा-शक्तिकी विभूति मात्र हैं। हे मायातीत! मैं आपकी शरण लेता हूँ॥ २६॥

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै-

देवान् साधून् लोकसेतून् बिभर्षि।

हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्त्तमानान्,

जन्मैतत् ते भारहाराय भूमेः॥ २७॥

आप लीलासे ही मत्स्यादि अनेक रूप धारण करते हैं और देवताओं, साधुओं और वर्णाश्रमधर्मोंका पालन करते हैं। आप विपथगामियों और हिंसापरायण दैत्योंका विनाश करते हैं। इस समय पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए ही आपका इस श्रीकृष्ण रूपमें अवतार हुआ है॥ २७॥

तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन,

शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण।

तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं,

नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः॥ २८॥

आपके तेजसे उत्पन्न वैष्णव-ज्वर अति उग्र, प्रवृद्ध और दुःसह है। यद्यपि यह शीतल है, तो भी मैं इससे जल रहा हूँ। जब तक प्राणी आशाओंसे अनुबन्धित रहते हैं और आपके चरणकमलोंकी सेवा नहीं करते, तभी तक वे विविध सन्तापोंसे त्रस्त रहते हैं॥ २८॥

श्रीभगवानुवाच—

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम्।

यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम्॥ २९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे त्रिशिरा (तीन सिरोंवाले)! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। अब मेरे वैष्णव-ज्वरसे तुम्हारा भय दूर हो। जो कोई भी हमारे इस संवादका स्मरण करेगा, उसे ज्वरका भय नहीं होगा ॥ २९ ॥

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः।

बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन् जनार्दनम् ॥ ३० ॥

परीक्षित्! जब भगवान्ने इस प्रकार कहा, तब माहेश्वर-ज्वरने उन्हें प्रणाम किया और वहाँसे चला गया। तभी बाणासुर पुनः युद्धकी कामनासे रथपर सवार हुआ और श्रीकृष्णके समीप पहुँचा ॥ ३० ॥

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः।

मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥

हे राजन्! बाणासुरको अतिशय क्रोध आ ही रहा था, उसने सहस्रों हाथोंमें विविध अस्त्र धारण कर लिये और चक्रधारी श्रीकृष्णके समीप आकर उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना।

चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥

निरन्तर अस्त्रोंकी झड़ी लगानेवाले बाणासुरकी भुजाओंको भगवान् श्रीकृष्णने छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण धारवाले सुदर्शन-चक्रसे इस प्रकार काट डाला, मानो वे वृक्षकी शाखाएँ हों ॥ ३२ ॥

बाहुषु छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः।

भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥

बाणासुरकी भुजाएँ कटते देखकर भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर चक्रधारी श्रीकृष्णके समीप आये और उनसे कहने लगे— ॥ ३३ ॥

श्रीरुद्र उवाच—

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये।

यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥

श्रीरुद्रने कहा—हे देव! आप सम्पूर्ण ज्योतियोंके प्रकाशक हैं और स्वयं परमज्योति-स्वरूप हैं। आप वेदमन्त्रोंमें (शब्द-ब्रह्ममें) गूढरूपसे छिपे हुए परब्रह्म हैं। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे भक्त ही निर्मल आकाशके समान शुद्धस्वरूप आपको साक्षात् रूपसे देख सकते हैं (मैं तो तमोगुणमय हूँ, मैं आपको साक्षात् रूपसे किस प्रकार देख सकता हूँ) ॥ ३४ ॥

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो,
 द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी।
 चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा,
 अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥ ३५ ॥
 रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः
 केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः।
 प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः,
 स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥

यह आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख और जल वीर्य है। स्वर्ग आपका मस्तक, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण हैं। चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र और मैं अर्थात् शिव आपका अहङ्कार हूँ। समुद्र, उदर, इन्द्रादि लोकपाल आपकी भुजाएँ और ओषधियाँ रोमस्वरूप हैं। मेघ केश हैं तथा ब्रह्मा बुद्धि हैं। प्रजापति लिङ्ग एवं धर्म आपके हृदय-स्वरूप हैं। (आकाशादि जो कुछ प्रत्यक्ष दिख रहा है, वह सब आपके सच्चिदानन्द विग्रहके नाभि आदि अवयवोंकी विभूतियाँ हैं अर्थात् आपके चिन्मय मुख, नाभि आदि प्राकृत मुख, नाभि आदिका सृजन करते हैं) आप कार्य-कारणात्मक चौदह भुवनोंके अवयवी पुरुषरूपमें कल्पित हुए हैं। आप ही लोकोंके स्रष्टा आदिपुरुष हैं ॥ ३५-३६ ॥

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्,
 धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय।
 वयञ्च सर्व्वे भवतानुभाविता,
 विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७ ॥

हे अकुण्ठधामन् (आपके प्रभावको कुण्ठित करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है)! हे अखण्ड ज्योतिस्वरूप (हे अप्रच्युतस्वरूप)! आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा एवं संसारके अभ्युदयके लिए है। हम सब लोकपाल आपकी कृपा द्वारा पालित होकर ही सातों भुवनोंका पालन करते हैं (आपके आविर्भावका प्रयोजन इन कार्योंके लिए नहीं होता) ॥ ३७ ॥

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीय-
स्तुर्यः स्वदृग्धेतुरहेतुरीशः।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं,
स्वमायया सर्व्वगुणप्रसिद्धयै ॥ ३८ ॥

आप स्वगत, सजातीय, विजातीय भेदरहित, तुरीय-स्वरूप, अद्वितीय आदिपुरुष हैं। आप स्व-प्रकाश (आप ही आपना दर्शन करानेवाले हैं), कारणरहित होकर भी समस्त कारणोंके कारण एवं सर्वान्तर्यामी आदि पुरुष हैं, विषयोंके प्रकाशके लिए अपनी मायासे तद्वत् विकारोंके अनुरूप प्रतीत होते हैं। उन-उन शरीरोंमें यदि आप अन्तर्यामीत्वको स्वीकार नहीं करते, तो मायिक गुणोंके प्रकाशकी सामर्थ्य नहीं रहती, वे व्यर्थ हो जाते। (अभिप्राय यह है कि ऐश्वर्यवान् होनेपर भी आपने अति तुच्छ मायिक गुणोंका उपकार किया है—आप अपनी माया द्वारा प्रत्येक शरीरमें—बुद्धि, इन्द्रिय एवं गुणोंकी प्रकृष्ट सिद्धिके लिए अन्तर्यामीरूपमें अनुभूत होते हैं। आपके अन्तर्यामी होनेके कारण ही मायाके गुणोंका प्रकाश सम्भव होता है) ॥ ३८ ॥

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया,
छायाञ्च रूपाणि च सञ्चकास्ति।
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्व-
मात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥

हे भूमन् (अपरिच्छिन्न-स्वरूप)! सूर्य जिस प्रकार लोगोंके नेत्रोंके समक्ष ही अपनी छाया-स्वरूप मेघोंसे आवृत (ढके-से)

प्रतीत होकर उन बादलों एवं घटादि अनेक दृश्य पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार आप तो स्वयं प्रकाश हैं (आत्म-प्रदीप अर्थात् परमात्मा—यह प्रदीप अर्थात् प्रकाशक भी आप हैं), परन्तु स्वकार्यभूत अहङ्कार आदिके द्वारा आच्छादितके समान प्रतीत होनेपर भी आप अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं, स्वदृक् होनेसे दूसरा कोई आपको प्रकाशित नहीं कर सकता। आप ही सत्त्वादि समस्त गुणों एवं गुणी जीवोंको प्रकाशित करते हैं ॥ ३९ ॥

यन्मायामोहितधियः

पुत्रदारगृहादिषु।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्वे ॥ ४० ॥

जीवोंके चित्त आपकी मायासे मोहित रहते हैं। वे पुत्र-पत्नी-गृहादि विषयोंमें अत्यासक्त रहते हैं और भौतिक दुःखोंके सागरमें डूबते-उतरते रहते हैं। आप कृपापूर्वक अवतीर्ण होकर जीवोंका उद्धार करते हैं ॥ ४० ॥

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः।

यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥ ४१ ॥

जो जीव इन्द्रियोंके वशीभूत होकर आपके द्वारा कृपापूर्वक दिये गये इस मनुष्य-देहको पाकर भी आपके चरणकमलोंकी सेवासे विमुख रहता है, भजन नहीं करता उसकी अवस्था बड़ी शोचनीय है, क्योंकि वह तो स्वयं आत्म-वञ्चना अर्थात् अपने आपको ही धोखा दे रहा है ॥ ४१ ॥

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम्।

विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥

प्रभो! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, प्रियतम एवं ईश्वर हैं। मृत्युका ग्रास जो मनुष्य आपको छोड़कर अनात्म, अप्रिय एवं अनीश्वर (इन्द्रिय-सुखके उपकरण—) पुत्रादि विषयोंमें आसक्त रहता है, वह मानो अमृत त्याग करके विष पान कर रहा है (अनीश्वर राजा बाणकी कार्य-सिद्धिके लिए जो मैंने आपसे युद्ध

किया, वह तो मानो मैंने अमृतका त्याग करके विष-भक्षण किया है) ॥ ४२ ॥

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः।

सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥

हे देव! मैं, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवता, विशुद्ध अन्तःकरणवाले मुनि—हम सबने सर्वतोभावसे आपकी शरण ली है। आप हमारे अन्तर्यामी, प्रियतम एवं ईश्वर हैं ॥ ४३ ॥

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं,

समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम्।

अनन्यमेकं जगदात्मकेतं,

भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥

हे भगवन्! आप जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं संहारके कारण हैं। (ब्रह्मा और मैं तो आपके द्वारा उत्पत्ति एवं प्रलयके लिए नियुक्त हुए अधिकृत दास हैं) आप शान्त, वैषम्य-बुद्धिरहित, परम-प्रेष्ठ, सभीके आत्म-स्वरूप, ईश्वर तथा स्वगत-सजातीय-विजातीय भेद-रहित हैं। आप ही जगत् एवं जीवोंके आधार एवं अधिष्ठान-स्वरूप हैं। जन्म-जन्मातर तक भक्तियोगकी प्राप्तिके लिए हम आपकी आराधना करते हैं। (विष्णु सत्त्वगुणके अधिष्ठाता हैं, परन्तु सत्त्वगुण उन्हें स्पर्श नहीं करता, जब कि ब्रह्मा एवं शिव रजोगुण एवं तमोगुणसे लिप्त रहते हैं; इसी कारण त्रिगुणातीत भगवान्की मायासे कभी-कभी मोहित हो जाते हैं) ॥ ४४ ॥

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्त्ती,

मयाभयं दत्तममुष्य देव।

सम्पाद्यतां तद्भवतः प्रसादो,

यथाहि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥

हे देव! यह बाणासुर मेरा सखा, कृपा-पात्र एवं प्रिय सेवक है। मैंने इसे पहले अभय दान दिया था। हे ईश! दैत्यराज

प्रह्लादके प्रति आपका जैसा अनुग्रह है, इसके प्रति भी वैसा ही अनुग्रह कीजिये। अन्तर्यामीत्व गुण न होनेसे ब्रह्मा एवं मैं अपने उपासकोंके मनके भावको जान नहीं पाते, अतः वरदान माँगनेपर उन्हें मनचाहा वर प्रदान कर देते हैं, जिससे कभी-कभी हम स्वयं भी मुश्किलमें पड़ जाते हैं। [भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें उन विपद्से बचा लेते हैं। शिवको वैष्णवाग्रगण्य इसीलिए कहा जाता है कि वे भगवान् श्रीकृष्णकी असुर-संहार लीलाकी पूर्व भूमिका (असुरोंको वरदान देना आदि) निभाकर उनकी सेवा सम्पादन कर उनके मनोभीष्टकी पूर्ति करते हैं] ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव।

भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे शङ्करजी! आपने मुझसे जैसा कहा, मैं आपका वैसा ही प्रिय कार्य अवश्य करूँगा—मैं इसे अभय प्रदान करूँगा। आपने इसके विषयमें जो निर्णय किया है, मैंने तो इसकी भुजाएँ काटकर उसीका भलीभाँति अनुमोदन किया है ॥ ४६ ॥

अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः।

प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥

मैं जानता हूँ कि यह बाणासुर मेरे भक्त राजा बलिका पुत्र है। मैंने प्रह्लादको वरदान दिया था कि मैं उसके वंशमें उत्पन्न किसी भी दैत्यका वध नहीं करूँगा। अतः मैं बाणासुरको नहीं मार सकता ॥ ४७ ॥

दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया।

सूदितञ्च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥

मैंने केवल इसके दर्पको चकनाचूर करनेके लिए इसकी भुजाओंको काटा है और इसकी इतनी बड़ी सेना पृथ्वीके लिए भार-स्वरूप हो रही थी, इसीलिए उसका विनाश किया है ॥ ४८ ॥

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यत्यजरामरः ।

पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥

अब इसकी चार भुजाएँ बची हैं। यह असुर अजर-अमर रहेगा। इसे किसीका भय नहीं होगा। आपके पार्षदोंमें यह प्रधान स्थान प्राप्त करेगा ॥ ४९ ॥

इति लब्ध्वाभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसासुरः ।

प्राद्युर्ध्नि रथमारोप्य स वध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥

परीक्षित्! इस प्रकार अभय प्राप्त करनेके बाद बाणासुरने पृथ्वीपर मस्तक टेका और श्रीकृष्णको प्रणाम किया। इसके बाद उसने ऊषाके साथ अनिरुद्धको रथपर आरूढ़ कराया और उन दोनोंको श्रीकृष्णके समीप ले आया ॥ ५० ॥

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलङ्कृतम् ।

सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने शङ्करजीकी सम्मतिसे सुरम्य वस्त्रों एवं आभूषणोंसे विभूषित ऊषा एवं अनिरुद्धको एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आगे किया और द्वारकाकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥

स्वराजधानीं समलङ्कृतां ध्वजैः,

सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ।

विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनै-

रभ्युद्यतः पौरसुहृद्विजातिभिः ॥ ५२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया, जिसे तोरण एवं ध्वजाओंसे सजाया गया था, उसके मार्गों और चौराहोंको जलके छिड़कावसे सींचा गया था। भगवान्के नगरीमें प्रवेश करते ही सारे बन्धु-बान्धव, विप्र एवं नागरिक आगे बढ़े और शङ्ख, नगारे, दुन्दुभि आदि वाद्य-यन्त्रोंकी ध्वनिके साथ उनका स्वागत किया ॥ ५२ ॥

य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम्।
संस्मरेत् प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात् पराजयः ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीकृष्णविजयो नाम
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

राजन्! जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर भगवान् श्रीकृष्णके
विजय-संवाद एवं शङ्करजीके साथ उनके युद्धका स्मरण करता है,
उसकी कभी भी पराजय नहीं होती ॥ ५३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तिरसठवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

महाराजा नृगकी कथा

श्रीबादरायणिरुवाच—

एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः।

विहर्तुं साम्ब-प्रद्युम्न-चारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! एक बारकी बात है—साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु और गद आदि यदुकुलके राजकुमार भ्रमणके लिए एक उपवनमें गये ॥ १ ॥

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः।

जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥

वहाँ वे बहुत समय तक खेलते रहे, जिससे उन्हें प्यास लग आयी। अतः वे इधर-उधर जल खोजने लगे। खोज करते-करते उन्हें एक कुआँ दिखायी पड़ा, जिसमें जल तो नहीं था, पर एक अद्भुत जीव दिखायी पड़ा ॥ २ ॥

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः।

तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥

यह जीव पर्वतके समान विशाल एक गिरगिट था। उन्हें बड़ा विस्मय हो रहा था। उन्हें उसपर दया भी आयी और वे उसे निकालनेके लिए प्रयत्न करने लगे ॥ ३ ॥

चर्मजैस्तान्तवैः पार्श्वैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः।

नाशक्नुवन् समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥

उन्होंने कुँएमें पड़े हुए उस गिरगिटको चमड़े एवं सूतकी बनी रस्सियोंसे बाँधकर ऊपर उठानेका प्रयत्न किया, परन्तु वे उसे निकाल न सके। इसपर उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ। वे श्रीकृष्णके पास गये और यह समाचार कह सुनाया ॥ ४ ॥

तत्रागत्यारिवन्दाक्षो भगवान् विश्वभावनः ।

वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥

परीक्षित्! कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके पालनकर्त्ता हैं। वे यह समाचार सुनकर कुँएके समीप पहुँचे और वहाँ उस जीवको देखा। उसे देखते ही भगवान् श्रीकृष्णने अनायास ही बाँए हाथसे उसे कुँएसे बाहर निकाल लिया ॥ ५ ॥

स उत्तमःश्लोककराभिमृष्टो,

विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।

सन्तप्तचामीकरचारुवर्णः

स्वर्ग्यद्भुतालङ्करणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णके कर-कमलोंका स्पर्श प्राप्त करते ही उसका गिरगिट शरीर छूट गया और वह दीप्तिमान्-सुवर्ण-कान्ति-युक्त स्वर्गीय देवताके रूपमें परिणत हो गया। विचित्र रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र, माल्य और अलङ्कार धारण करनेसे उसकी बहुत शोभा हो रही थी ॥ ६ ॥

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं,

जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।

कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो,

देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण इसके विषयमें सब कुछ जानते थे, फिर भी वे चाहते थे कि उसके गिरगिट रूपकी प्राप्तिका कारण सभी लोगोंको ज्ञात हो जाय। इसी अभिप्रायसे वे पूछने लगे—हे महाभाग! इतना सुन्दर रूप धारण करनेवाले आप कौन हैं? आप निश्चय ही कोई श्रेष्ठ देवता हैं, मैं ऐसा मानता हूँ ॥ ७ ॥

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा

सम्प्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।

आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो,

यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥

हे सुभद्र ! आप ऐसी हीन दशाके योग्य नहीं हैं, फिर आपसे कौन-सा ऐसा कर्म बन गया, जिसके परिणामस्वरूप यह तुच्छ गिरगिट स्वरूप आपको प्राप्त हुआ है। यदि हमलोगोंको बतलाना आप उचित समझते हैं तो यह वृत्तान्त अवश्य सुनाइये। हमें आपका परिचय प्राप्त करनेकी बड़ी इच्छा हो रही है॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच—

इति स्म राजा सम्पृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना।

माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा॥ ९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—अनन्तमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णके पूछनेपर राजा नृगने सूर्यके समान जाज्वल्यमान मुकुटको झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और कहने लगे॥ ९ ॥

श्रीनृग उवाच—

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो।

दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम्॥ १० ॥

राजा नृगने कहा—हे प्रभो ! मैं महाराज इक्ष्वाकुका पुत्र हूँ और राजा नृगके नामसे प्रसिद्ध हूँ। जब दानशील पुरुषोंकी गणनाका प्रसङ्ग चला होगा, तब मेरा नाम आपको अवश्य सुनायी पड़ा होगा॥ १० ॥

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः।

कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया॥ ११ ॥

हे नाथ ! आप समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी हैं। आपकी दृष्टि काल द्वारा बाधित नहीं होती। आपके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। फिर भी आपकी आज्ञाके अनुसार मैं अपने विषयमें बतलाता हूँ॥ ११ ॥

यावत्यः सिकता भूमेर्यावत्यो दिवि तारकाः।

यावत्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः॥ १२ ॥

पृथ्वीपर जितने धूलिकण हैं, आकाशमें जितने तारे हैं और वर्षामें जितनी धाराएँ हैं—मैंने पहले उतनी ही संख्यामें गौएँ दान की थीं (अर्थात् असंख्य गौएँ दानमें दी थीं)। कुरुक्षेत्रादि प्रदेशोंमें सूर्यग्रहणादिके अवसरोंपर एक ही गायका दान किया जाय, तो वह कोटि-कोटि संख्याके बराबर गण्य होती है॥ १२॥

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूप-

गुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः।

न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा

दुकूलमालाभरणा ददावहम्॥ १३॥

भगवन्! मैंने जितनी भी गायोंका दान किया था, वे सभी दुधारु, तरुणवयस्का, सद्स्वभावा, सौन्दर्य एवं गुणोंसे युक्त कपिलाजातीय गायें थीं। मैंने उन्हें न्यायपूर्वक उपार्जित धनसे प्राप्त किया था। उनके खुर चाँदीसे और सींग स्वर्णसे मढ़े हुए थे। उन कपिला गायोंको वस्त्र-मालाओंसे समलंकृत किया था और वे सभी बछड़ोंसे युक्त थीं॥ १३॥

स्वलङ्कृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः

सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः।

तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः

प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः॥ १४॥

गो-भू-हिरण्यायतनाश्वहस्तिनः

कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः।

वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथा-

निष्टञ्च यज्ञैश्चरितञ्च पूर्तम्॥ १५॥

मैंने पहले दम्भाचरणसे रहित, ऋतवान् (सत्यपरायण), गुणवान्, शीलसम्पन्न, कष्टोंमें पड़े हुए कुटुम्बवाले, तपस्याके लिए विख्यात, वेद शास्त्रोंमें सुनिपुण, सच्चरित्र, तरुण, उत्तम ब्राह्मणोंको वस्त्रालङ्कार आदिसे विभूषित किया। इसके बाद उन्हें गाय, भूमि, सुवर्ण, गृह,

हाथी, घोड़े, दासियोंके साथ ब्राह्मण-कन्याएँ, तिल, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, गृहसामग्री एवं रथ दिये। प्रभो! मैं बहुत प्रकारके सद् अनुष्ठान करता था और बावली, कुएँ आदि खुदवानेमें लगा रहता था ॥ १४-१५ ॥

कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने।

संपृक्ताविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥

एक दिन किसी एक अप्रतिग्रही (दान न लेनेवाले) तपस्वी ब्राह्मणको पहले जो गायें मैंने दी थी, उनमेंसे एक गाय भागकर मेरी गायोंमें मिल गयी और मुझे इस बातका पता न चल सका। एक दिन अज्ञातवश मैंने उसी गायको दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया ॥ १६ ॥

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम्।

ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥

दूसरा ब्राह्मण जब उस गायको ले जा रहा था, तब उस गायके पहले स्वामीने उसे देख लिया और कहने लगा—‘यह मेरी गाय है।’ तब दूसरा ब्राह्मण जिसे गाय प्राप्त हुई थी, उसने भी कहा—‘यह गाय मेरी है। राजा नृगने इसे मुझे दानमें दिया है ॥ १७ ॥

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ।

भवान् दातापहर्त्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ १८ ॥

वे दोनों ही ब्राह्मण स्वार्थ-साधक एवं विवाद करनेवाले थे। वे दोनों कलह करते हुए मेरे पास आये। गायका पूर्व स्वामी कहता था कि आपने मेरी गायका अपहरण किया है और जो दूसरा प्रतिग्राही था, वह कहता था ‘यह गाय आपने मुझे दी है।’ दोनोंका कलह सुनकर मैं व्याकुल हो गया ॥ १८ ॥

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै।

गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

भवन्तावनुगृहीतां किङ्करस्याविजानतः ।

समुद्धरत मां कृच्छ्रात् पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥

मैं उस स्थितिमें धर्मसङ्कटमें पड़कर दोनों ब्राह्मणोंसे अनुनय-विनय करने लगा। मैंने कहा—मैं आपको एक लाख अत्युत्तम गौएँ दूँगा। इसके बदलेमें आप मुझे यह गाय लौटा दीजिये। मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता था, इसलिए अपराध कर बैठा। अतः आप मुझपर कृपा कीजिये और अशुचि (घोर) नरक-पातरूप सङ्कटसे बचा लीजिये ॥ १९-२० ॥

नाहं प्रतीच्छे वै राजत्रित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ।

नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥

तब गायके पूर्व स्वामीने मुझे सम्बोधन करते हुए कहा—‘हे राजन्! मेरी दान लेनेकी कोई इच्छा नहीं है।’ यह कहकर वह वहाँसे चला गया। इसके बाद दूसरा ब्राह्मण भी ‘आप एक लाखसे ऊपर और दस हजार गौएँ देंगे, तो भी मैं लेना नहीं चाहता’—यह कहकर वह भी चला गया ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ।

यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥

हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! इसी अवसरपर मेरा मृत्युकाल उपस्थित हो गया और यमदूत वहाँ आ गये और मुझे यमराजकी संयमनी पुरी ले गये। वहाँ यमराजने मुझसे पूछा ॥ २२ ॥

पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम् ।

नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥

हे राजन्! यह बताओ कि पहले तुम पापोंका फल भोगना चाहते हो या पुण्योंका? मुझे तो निश्चितरूपसे आपके दान-धर्मका कोई अन्त दिखायी नहीं देता और न ही दिव्यलोकमें आपको प्राप्त होनेवाले भोगोंका? ॥ २३ ॥

पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः।

तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन् प्रभो ॥ २४ ॥

तब मैंने कहा—हे धर्मराज! मैं पहले अशुभ फलोंका ही भोग करना चाहता हूँ। ऐसा कहते ही 'तुम यहाँसे गिर जाओ' यमराजने इस प्रकार आदेश दिया। मैं उसी समय गिर गया और गिरते ही मैंने देखा कि मैं गिरगिट हो गया हूँ ॥ २४ ॥

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव।

स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्सन्दर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥

हे केशव! मैं ब्रह्मण्य गुणसे युक्त ब्राह्मणोंके सेवक एवं महावदान्य (उदार) आपके दर्शनका अभिलाषी था। आपका भक्त (दास) था, इसी कारण आज तक मेरी पूर्व स्मृति नष्ट नहीं हुई। राजा नृगकी भक्ति कर्ममिश्रा होनेके कारण गुणीभूता थी। (मिश्रा भक्तिके कारण राजा नृगने भगवान्से कहा कि आपका दास होनेके कारण मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई—यह कथन विनय-प्रकाशक है। उन्होंने स्वयंको दर्शनाभिलाषी बताया, इसका कारण है कि उन्होंने अति सुन्दर श्रीभगवद्-विग्रहके लिए अथवा उनके मन्दिरमें गौ-दान किया होगा अथवा भागवत आदि शास्त्र-श्रवणके लिए उनकी उत्कण्ठा देखकर किसी महाभागवतने उसे आशीर्वाद दिया होगा कि 'तुम्हें भगवत्-दर्शन होगा।' इसीलिए उन्हें भगवत्-दर्शनकी इच्छा हुई थी) ॥ २५ ॥

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा

योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहद्विभाव्यः।

साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः

स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥ २६ ॥

हे विभो! बड़े-बड़े योगेश्वर उपनिषद्-रूप नेत्रोंके द्वारा अपने निर्मल अन्तःकरणमें आपका चिन्तन करते रहते हैं। हे परमात्मन्! आप तो इन्द्रियातीत हैं, तब किस प्रकारसे साक्षात् रूपसे मेरी आँखोंके सम्मुख प्रकट हुए हैं—मुझे समझमें नहीं आ रहा है!

हे भगवन्! इस जगत्में जिनकी संसार-दशा नष्ट होनेवाली होती है, आप उन्हें ही दर्शन देते हैं, किन्तु मैं तो प्रचुर विपद्में पड़ा था, व्यसनोमें फँसकर अन्धा हो रहा था, गिरगिट होनेके कारण मेरी बुद्धि विकृत हो रही थी। मेरे-जैसोंके लिए आपका दर्शन अति आश्चर्यजनक है॥ २६॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम।
 नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय॥ २७॥
 अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो।
 यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम्॥ २८॥

भगवान्की कृपासे राजा नृगमें दास्यभाव उत्पन्न हुआ है, अतः वे भगवान्के नामोंका कीर्तन करने लगे—हे देवाधिदेव (आप सभी देवताओंके द्वारा पूजनीय हैं)! हे जगन्नाथ (आप समस्त संसारके नाथ हैं, मेरे भी नाथ हैं)! हे गोविन्द (गायोंकी कृपा-दृष्टिसे ही मैंने आपको प्राप्त किया है)! हे पुरुषोत्तम (ब्रह्मा, विष्णु आदिमें आप ही उत्तम पुरुष हैं)! हे नारायण (आप जीवोंके अयन-आश्रय हैं, मुझ जैसे दुष्ट जीवके भी आप ही अधिष्ठान हैं)! हे हृषीकेश (मेरी इन्द्रियोंको आत्मसात् करें)! हे पुण्यश्लोक (नृग-मोचनी अपनी कीर्तिमें अवस्थान करें)! हे अच्युत (मेरे अन्तःकरणसे विच्युत न हों)! हे अव्यय (इससे आपका कुछ भी क्षय न होगा)! हे प्रभो! हे श्रीकृष्ण! अब आप देवलोक जानेके लिए मुझे अनुमति प्रदान करें। हे देव! मैं जहाँ भी रहूँ, वहीं मेरा चित्त आपके पाद-पद्मोंके चिन्तनमें ही आसक्त रहे॥ २७-२८॥

नमस्ते सर्व्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।
 कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः॥ २९॥

मेरा आपमें दास्यभाव ही रहे, परन्तु आप सभी भावोंके आश्रय हैं। हे परब्रह्म! आप समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण भी निर्विकार हैं (दास्यभाव), आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं, मैं

आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ (शान्तभाव), हे श्रीकृष्ण! अर्जुनादिको सदा आनन्द देनेवाले (सखाभाव) हैं, हे वासुदेव! (वासुदेव नन्दन—माता पिताको वात्सल्य—सुख प्रदानकारी (वात्सल्यभाव) हैं, हे योगपति! आप भक्तियोगमयी रुक्मिणी आदिके स्वामी हैं (उज्ज्वल शृङ्गारभाव)। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना।

अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत् पश्यतां नृणाम् ॥ ३० ॥

यह कहकर राजा नृगने श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा की और अपने मुकुटके अग्रभागसे उनके चरणकमलोंका स्पर्श किया। इसके बाद भगवान्की अनुमति लेकर वहाँ उपस्थित प्रत्यक्षदर्शियोंके समक्ष ही वे श्रेष्ठ विमानपर सवार हो गये (भगवान्ने उनसे कहा, 'तुम कर्मफल भोगकी समाप्तिपर मुझे प्राप्त करोगे') ॥ ३० ॥

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान् देवकीसुतः।

ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥

राजा नृगके चले जानेपर ब्राह्मणोंके अनुरागी, धर्मके सार-स्वरूप, भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्ण क्षत्रिय राजाओंको शिक्षा देनेके लिए राजा नृगके दृष्टान्तको दिग्दर्शित करते हुए अपने परिजनोंसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ३१ ॥

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि।

तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—जो लोग अग्निके समान अत्यन्त तेजस्वी हैं, वे भी यदि थोड़ा-सा भी ब्राह्मणके धनका भोग कर लें, तो उनका कल्याण नहीं हो सकता। तब जो अपनेको मिथ्या अभिमान वश राजा मानते हैं, उनकी तो बात ही क्या कही जाय ॥ ३२ ॥

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया।

ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥

मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि इसका प्रतिकार किया जा सकता है, परन्तु ब्राह्मणोंके धनका भोग करना ही भयानक विष है, क्योंकि पृथ्वीपर उसका कोई उपचार नहीं है ॥ ३३ ॥

हिनस्ति विषमत्तारं वहिरद्भिः प्रशाम्यति।

कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥

विष तो केवल खानेवालेको ही मारता है और आग भी जल द्वारा शान्त हो जाती है परन्तु ब्राह्मणके धन-रूप अरणिसे उत्पन्न आग पूरे वंशको ही समूल नष्ट कर डालती है ॥ ३४ ॥

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम्।

प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान् दशापरान् ॥ ३५ ॥

यदि कोई व्यक्ति भलीभाँति अनुमति प्राप्त न करके ब्राह्मणके धनका भोग करता है, तो उसकी तीन पीढ़ियाँ (वह स्वयं, उसका पुत्र और पौत्र) नष्ट हो जाती हैं, और यदि उस ब्राह्मणके धनका बलपूर्वक भोग किया जाय, तो पूर्व पुरुषोंकी दस पीढ़ियाँ और परवर्ती उत्तराधिकारियोंकी भी दस पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ ३५ ॥

राजानो राजलक्ष्म्यान्धा नात्मपातं विचक्षते।

निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥

जो राजा राज्य-सम्पदाके मदमें अन्धे होकर ब्राह्मणका धन लेना उचित मानते हैं, वे तो वास्तवमें नरक-प्राप्तिकी ही प्रार्थना कर रहे होते हैं। वे मूर्ख अपनी अधोगतिके विषयमें विचार ही नहीं करते हैं ॥ ३६ ॥

गृह्णन्ति यावतः पांशून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः।

विप्राणां हतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७ ॥

राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान् निरङ्कुशाः।

कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥

जो उदार-हृदय ब्राह्मण बड़े कुटुम्बके पोषण और सत्कर्मोंमें लगे रहते हैं, उन ब्राह्मणोंके आँसुओंकी बूँदें जितनी संख्यामें धूलि-कणोंका स्पर्श करती हैं, उन ब्राह्मणोंके धनका अपहरण करनेवाले स्वेच्छाचारी राजा एवं उनके वंशज उतने ही वर्षों तक कुम्भीपाक नरकका भोग करते हैं ॥ ३७-३८ ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः।

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥

अपना दिया दान हो अथवा दूसरेके द्वारा दिया गया हो, जो ब्राह्मणके धनका हरण करता है, वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठामें कीड़ा बनकर जन्म लेता रहेगा ॥ ३९ ॥

न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृध्वाल्पायुषो नराः।

पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥

जो मानव ब्राह्मणोंके धनकी आकाङ्क्षा करते हैं, वे अल्पायु, शत्रुओंके द्वारा पराजित एवं राज्यसे भ्रष्ट हो जाते हैं तथा मृत्युके बाद दूसरोंको कष्ट देनेवाले साँप बन जाते हैं। अतः हमें ब्राह्मणोंके धनकी कभी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये। अभिलाषा करने मात्रसे अल्पायु हो जाते हैं, तब हरण करने पर क्या कहा जा सकता है? ॥ ४० ॥

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः।

घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥

हे मेरे आत्मीयो! यदि कोई ब्राह्मण अपराधी भी हो, तो भी उससे द्रोह मत करना अर्थात् उसे कभी उत्पीड़ित मत करना। ब्राह्मण यदि किसीको मारे अथवा अभिशाप ही दे, तो भी सदा उसे प्रणाम करना ॥ ४१ ॥

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः।

तथा नमत यूयञ्च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥

जिस प्रकारसे मैं सदा सावधान रहकर ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ, उसी प्रकार तुमलोग भी सदा सतर्क रहना। जो इसके विरुद्ध आचरण करेंगे, वे मेरे द्वारा अवश्य ही दण्डित होंगे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणार्थो ह्यपहतो हर्त्तारं पातयत्यधः।

अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणोंकी गायने इस नृगराजाकी जिस प्रकारसे अधोगति की है, उसी प्रकारसे अज्ञानवश ही चुरायी गयी ब्राह्मणकी सम्पत्ति चुरानेवालेका अधःपतन करवा देती है ॥ ४३ ॥

एवं विश्राव्य भगवान् मुकुन्दो द्वारकौकसः।

पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीनृगोपाख्यानं नाम

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

अखिल-लोकपावन भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार विशेषरूपसे उपदेश प्रदान करके अपने भवनमें चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौंसठवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

श्रीबलरामजीका व्रजगमन

श्रीशुक उवाच—

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः।

सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे श्रीकुरुश्रेष्ठ ! नित्यानन्द-स्वरूप होकर भी एक बार भगवान् बलदेवको नन्दबाबा आदि सुहृदोंसे मिलनेकी बड़ी अभिलाषा और उत्कण्ठा हो रही थी। वे धैर्य एवं विवेककी रक्षा न करके चुम्बकीय आकर्षणकी भाँति कृष्णको भी द्वारकामें छोड़कर रथपर सवार हुए और नन्द-गोकुल पहुँचे ॥ १ ॥

परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च।

रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥

वहाँ गोप-गोपियाँ चिरकालसे उनसे मिलनके लिए अतिशय उत्कण्ठित हो रहे थे। बलरामको देखते ही सबने उन्हें गले लगाया। बलरामने नन्दबाबा और यशोदा मैयाको प्रणाम किया और उन दोनोंने आशीर्वचनोंसे उनका अभिनन्दन किया ॥ २ ॥

चिरं नः पाहि दशार्ह सानुजो जगदीश्वरः।

इत्यारोप्याङ्गमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥

‘हे दशार्ह वंशज ! हे जगदीश्वर बलदेव ! छोटे भाई श्रीकृष्णके साथ तुम हमारी चिरकाल तक रक्षा करो।’ यह कहकर नन्दबाबा और यशोदा मैयाने उन्हें गोदमें बिठाकर आलिङ्गन किया और प्रेमाश्रुओंसे उन्हें अभिषिक्त कर दिया ॥ ३ ॥

गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्टैरभिवन्दितः।

यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥

समुपेत्याथ गोपालान् हास्यहस्तग्रहादिभिः।

विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥

पृष्ठाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा।

कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥

इसके बाद बलरामने वृद्ध गोपोंका यथायोग्य अभिवादन किया और जो उनसे छोटे थे, उन्होंने बलरामका अभिनन्दन किया। इस प्रकार बलराम वयस, बन्धुत्व एवं पारिवारिक सम्बन्धके अनुसार किसी गोपसे मुसकराकर, किसीके साथ हाथ मिलाकर और किसीसे गले लगेकर मिले। किसीके साथ हँस-हँसकर मधुर वार्त्तालाप किया। इसके बाद उन्होंने विश्राम किया। गोपोंने देखा कि बलराम आरामसे बैठ गये हैं, तो वे उनके समीप आ गये और उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। प्रेमकी अतिशयतासे उनकी वाणी गद्गद हो रही थी। उन गोपोंने कमलनयन श्रीकृष्णको ही भोजन, शयनादि सारे विषय अर्पण कर रखे थे। वे अपने-अपने यादव-बान्धवोंकी कुशल-क्षेम पूछने लगे। बलरामने भी गोपोंकी कुशलताके समाचार पूछे ॥ ४-६ ॥

कच्चित्रो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते।

कच्चित् स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥ ७ ॥

गोपोंने पूछा—हे बलराम! हमारे सभी बान्धव यादवगण कुशलसे तो हैं न! आपलोग तो अब स्त्री-पुत्रोंके साथ रहते हैं। आप कभी हमारा स्मरण करते हैं क्या? ॥ ७ ॥

दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः।

निहत्य निर्जित्य रिपून् दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥

बड़े सौभाग्यकी बात है कि दुराचारी कंसको आपलोगोंने मार डाला और हमारे सुहृदोंको उससे मुक्ति मिल गयी है। अब तो आपलोगोंने सारे ही शत्रुओंको मार डाला है और विशाल एवं सुरक्षित किलेमें निवास कर रहे हैं ॥ ८ ॥

गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामसन्दर्शनादृताः ।

कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥

बलदेवके दर्शनसे गोपियाँ गौरवान्वित हो गयीं। वे उनसे हँसती हुई आदरपूर्वक पूछने लगीं—हे बलराम! पुरनारियोंके प्रियतम श्रीकृष्ण कुशलसे तो हैं न? द्वारकावासिनी सुन्दरियोंको प्राप्त करके हम गँवारिनोंका विरह-दुःखका उन्हें अनुभव कैसे हो सकता है? अतएव सुखी ही होंगे ॥ ९ ॥

कच्चित् स्मरति वा बन्धून् पितरं मातरञ्च सः ।

अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ।

अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥

वे कभी माता-पिता और अपने बन्धुओंका (चाचा, ताऊ, मामाओंका) स्मरण करते हैं क्या? क्या वे अपनी मैयासे मिलने एक बार ब्रजमें आयेंगे? वे पुरस्त्रियाँ मधुररस-विलासमें हमसे भी अधिक प्रेमवती हैं, तथापि वे महाबाहु श्रीकृष्ण हमारे द्वारा सदा-सर्वदा की जानेवाली वनमाला-रचना, चन्दन-लेपन, पुष्प-पल्लव-ग्रथित व्यजन-करण (चामर ढुलाना), शय्या-निर्माण आदि सेवाओंका स्मरण करते हैं क्या? ॥ १० ॥

मातरं पितां भ्रातृन् पतीन् पुत्रान् स्वसूरपि ।

यदर्थं जहिम दाशार्हं दुस्त्यजान् स्वजनान् प्रभो ॥ ११ ॥

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः सञ्छिन्नसौहृदः ।

कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥

हे दाशार्ह! स्वजन-सम्बन्धियोंको छोड़ना कितना कठिन होता है, पर हमने उनके लिए अपने माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पति आदि सबका त्याग कर दिया। हे बलदेव! कितना सौहार्द और स्नेहका दृढ़-बन्धन था और उन्होंने इसे तिनके-पत्तेके समान झटकेसे तोड़ डाला। हम अनन्यशरणाओंसे नाता तोड़कर वे ब्रज छोड़कर चले गये। उन्होंने कहा था—‘पुनः आऊँगा’, अतः हमने

उनका विश्वास कर लिया और उनके जानेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाली। भला ऐसी कौन सरल-बुद्धि स्त्री होगी, जो उनके मधुर एवं शपथपूर्ण वचनोंपर विश्वास नहीं करेगी? ॥ ११-१२ ॥

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो,

वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः।

गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर-

स्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥

अन्य गोपियोंने कहा—बलदेवजी! हम तो गाँवकी गँवार ग्वालिनें ठहरीं, उनकी बातोंमें आ गयीं। परन्तु! पुरकी नारियाँ तो बहुत चतुर और बुद्धिमती होती हैं। तब वे नागरीगण उन अस्थिर-चित्त एवं अकृतज्ञकी बातोंपर किस प्रकार विश्वास कर लेती हैं?—यह बड़े आश्चर्यकी बात है। इस बातपर दूसरी गोपियोंने कहा—निश्चितरूपसे पुरकी नारियाँ भी उनकी सुमधुर मुसकान एवं अनुरागमयी चितवनके कारण प्रेमावेशसे अभिभूत हो जाती होंगी और कामवेगसे विक्षुब्ध और उच्छ्वसित (जीवन्त) होकर उनकी विचित्र रसमयी (रङ्ग-बिरङ्गी) बातोंपर विश्वास कर लेती होंगी। वे भी कथारस-आस्वाद-त्यागमें असमर्थ होती होंगी ॥ १३ ॥

किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः।

यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥

अन्य किसी गोपीने कहा—हे गोपियो! उनकी बातोंके अतिरिक्त क्या और कोई काम नहीं है? दूसरी कोई बात करो। यदि हमारे विरहमें उन निष्ठुरके दिन व्यतीत हो जाते हैं, तो उनके विरहमें हमारे भी दिन बीत ही जायेंगे। उनसे मिलकर भला कौन स्त्री जीवित रह पाती है, अरे कई तो उनके विरहमें मर ही गयी हैं। हम तो न जी पा रही हैं और न ही मर पा रही हैं—विधाताने हमारे भाग्यमें यही लिखा है ॥ १४ ॥

इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम्।

गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥

इस प्रकारसे ये गोपियाँ शौरि भगवान् श्रीकृष्णके प्रकृष्ट-सुधारसमय स्मित (मुसकान), मनोहर वार्त्तालाप, चारु-चितवन, अनूठी चाल-भङ्गिमा और प्रेमालिङ्गनोंका स्मरण करके विह्वल हो विलाप करने लगीं ॥ १५ ॥

सङ्कर्षणस्ताः कृष्णस्य सन्देशैर्हृदयङ्गमैः।

सान्त्वयामास भगवान् नानानुनयकोविदः ॥ १६ ॥

परीक्षित्! परम आकर्षक बलराम विविध प्रकारके अनुनय-विनय करनेमें परम निपुण थे। उन्होंने श्रीकृष्णके मनोज्ञ (मनोहर), गोपनीय एवं हृदयस्पर्शी सन्देशोंको सुनाकर विरह-सन्तप्त गोपियोंको सान्त्वना प्रदान की कि मैं उद्धवके समान कृष्णके अधीन नहीं हूँ, मैं द्वारका जाकर बलपूर्वक उसे यहाँ ले आऊँगा। (उद्धवजीका दास्यभाव है और बलदेवजीका वात्सल्यभाव है—कृष्णने इसे महत्त्व न देकर दोनोंके ही साथ सन्देश भेजा है) ॥ १६ ॥

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च।

रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥

भगवान् बलराम वहाँ मधु और माधव (चैत्र एवं वैशाख) दो महीने तक रहे। रात्रिकालमें वे अपनी गोपियोंके साथ रहकर उनके प्रेमकी अभिवृद्धि करते थे ॥ १७ ॥

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना।

यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥

यमुना-पुलिनके निकट रामघाटपर एक उद्यान था, जो पूर्णचन्द्रकी शुभ्र ज्योत्स्ना छिटकनेसे उज्ज्वल रहता था, जहाँ रातमें विकसित कुमुदनियोंका सौरभ चारों ओर बिखरा रहता था—इस सुगन्धको वहन करता हुआ सुशीतल, मन्द, सुगन्धित समीर प्रवाहित होता रहता था। भगवान् बलराम वहीं गोपियोंके साथ विहार करते ॥ १८ ॥

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात्।

पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥

उसी समय वरुणदेवने अपनी कन्या मदिराकी अधिष्ठात्री वारुणी देवीको भेजा। वह एक वृक्षके खोड़से (खोखले छिद्रसे) निकली। उसने अपनी गन्धसे सारे वनको आमोदित कर दिया ॥ १९ ॥

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहतं बलः।

आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥

वायुके द्वारा उस मधुर पेय वारुणीकी धाराकी सुगन्ध बलरामके समीप पहुँची। बलदेव उससे आकृष्ट होकर वहाँ वृक्षके समीप चले आये और गोपियोंके साथ उस वारुणीका पान करने लगे ॥ २० ॥

उपगीयमानो गन्धर्व्वनिताशोभिमण्डले।

नेमे करेण्यूथेशो माहेन्द्र इव वारणः ॥ २१ ॥

बलदेव गोपियोंसे परिशोभित मण्डलमें विहार करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो हथिनियोंके यूथका अधिपति ऐरावत हथिनियोंके झुण्डमें रमण कर रहा हो। गन्धर्वगण उनके चरितका गान कर रहे थे ॥ २१ ॥

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ववृषुः कुसुमैर्मुदा।

गन्धर्वा मुनयो रामं तद्वीर्य्यैरीडिरे तदा ॥ २२ ॥

उस समय आकाशमें दुन्दुभिका नाद होने लगा। गन्धर्वगण हर्षसे ओतप्रोत होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। मुनिजन उनके पराक्रमका वर्णन करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः।

वनेषु व्यचरत् क्षीवो मदविह्वललोचनः ॥ २३ ॥

गोपियाँ भी उस समय हलायुध बलरामके चरितका गान कर रही थीं। आनन्द-मदसे बलरामके नेत्र विह्वल हो रहे थे, वे

उन्मत्तसे होकर अपनी प्रेयसियोंके साथ वनमें विचरण कर रहे थे ॥ २३ ॥

स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया।

बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २४ ॥

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः।

निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः।

अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २५ ॥

बलदेव आनन्दोन्मत्त हो रहे थे। उन्होंने एक ही कानमें कुण्डल पहन रखा था। वक्षःस्थल रत्नमाला एवं वैजयन्तीमालासे विभूषित हो रहा था। मुखकमलपर मन्द-मन्द मुसकान थी। उसपर स्वेद-बिन्दु इस प्रकार चमक रहे थे, मानो ओसकी बूँदें हों। उस समय सर्वशक्तिमान् बलरामने जलक्रीड़ाके लिए यमुनाको बुलाया किन्तु यमुनाने सोचा कि बलराम मदोन्मत्त हो रहे हैं। इसलिए उन्होंने बलरामकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया। वे वहाँ नहीं आयीं। यमुना नदीने सोचा कि मत्तके वाक्य प्रमाणित नहीं होते। यदि मेरे जलमें विहार करनेकी उनकी इच्छा है, तो स्वयं ही आकर मेरे जलमें विहार करें। तब बलराम क्रोधित हो गये और हलकी नोकसे उन्हें खींच लाये और कहने लगे ॥ २४-२५ ॥

पापे त्वं मामवज्ञाय यत्रायासि मयाहुता।

नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २६ ॥

श्रीबलरामने कहा—हे दुःशीले! तुम मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रही हो और मेरे बुलानेपर भी यहाँ नहीं आ रही हो। अपनी स्वेच्छाचारिताके कारण ही तुम ऐसा अपराध कर रही हो। मैं हलकी नोकसे अभी तुम्हारे सौ टुकड़े कर देता हूँ ॥ २६ ॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम्।

उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! जब यदुनन्दन बलरामने इस प्रकारसे यमुनादेवीको डाँटा-फटकारा, तब वे चकित-सी होकर काँपने लगीं। वे आर्यीं और उनके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगीं ॥ २७ ॥

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम्।

यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २८ ॥

यमुनादेवीने कहा—हे जगन्नाथ! हे महाबाहो! हे बलराम! मैं आपके पराक्रमको नहीं जानती थी। आप अत्यन्त प्रभावशाली हैं। आपके एक अंशमात्र शेषजी इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं ॥ २८ ॥

परं भावं भगवतो भगवन् मामजानतीम्।

मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २९ ॥

हे प्रभो! आप परम ऐश्वर्यशाली हैं। आप समस्त प्राणियोंके अन्तर्दामी-स्वरूप हैं। मैं आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानती थी, इसलिए अपराध कर बैठी। हे भक्तवत्सल भगवान्! अब मैं आपकी शरणमें हूँ, आप मुझे क्षमा कीजिये ॥ २९ ॥

ततो व्यमुञ्चद्यमुनां याचितो भगवान् बलः।

विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ ३० ॥

परीक्षित्! जब यमुनाने इस प्रकारसे प्रार्थना की, तब भगवान् बलदेवने यमुनाको छोड़ दिया। गजराज जिस प्रकार हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार उन्होंने गोपियोंके साथ यमुना-जलमें प्रवेश किया और जलक्रीड़ा करने लगे ॥ ३० ॥

कामं विहृत्य सलिलादुतीर्णायसिताम्बरे।

भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥ ३१ ॥

जब बलराम स्वेच्छापूर्वक जलक्रीड़ा कर चुके, तब जलसे बाहर निकले। उस समय वरुणदेव द्वारा प्रेरित कान्तिदेवी

(लक्ष्मीकी एक मूर्ति—वैकुण्ठके द्वितीय व्यूहमें श्रीसङ्कर्षणकी पत्नी) ने उन्हें समुद्रजात—नीले वस्त्रका जोड़ा, बहुमूल्य आभूषण एवं दीप्तिमान् मनोरम गलेका हार प्रदान किया ॥ ३१ ॥

वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम्।

रेजे स्वलङ्कृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥ ३२ ॥

बलदेवने नीले वस्त्रोंको पहन लिया और गलेमें सुनहरी माला धारण कर ली। वे सुन्दर आभूषणोंसे अलङ्कृत होकर और चन्दनादि अङ्गराग लगाकर ऐसे सुशोभित हुए मानो इन्द्रका ऐरावत हाथी हो ॥ ३२ ॥

अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाकृष्टवर्त्मना।

बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३३ ॥

हे राजन्! आज भी यह देखा जाता है कि यमुना बलरामके हलके द्वारा खींचे हुए चिह्नसे युक्त होकर अनेक धाराओंमें ऐसे बह रही हैं, मानो महापराक्रमशाली बलदेवके पराक्रमका यश-गानकर रही हों ॥ ३३ ॥

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे।

रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीबलदेवविजये श्रीयमुनाकर्षणं
नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

व्रजमण्डलमें गोपियोंके साथ विहार करते हुए बलदेवका चित्त उनके माधुर्यमय-विलासोंसे ऐसा आकृष्ट हो गया कि उन्हें समयकी सुधि ही न रही। गोपियोंके साथ बितायी गयीं बहुत-सी रात्रियाँ उन्हें एक ही रातके समान प्रतीत हुईं।

(श्रीहरिवंशपुराणके विष्णुपर्वमें उल्लेख है कि श्रीबलरामकी कृपासे समुद्र-भार्या यमुना नदी कालिन्दीके अंशरूपसे कालिन्दीके प्रवाहके साथ प्रवाहित होती हुई व्रजवास करने लगी थीं। इसी

नदीका श्रीबलरामने आह्वान किया था और इसी अर्थात् समुद्रकी भार्या यमुनानदीमें ही जल विहार किया था। श्रीकालिन्दी नित्य ही श्रीकृष्णकी प्रिया हैं) ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पैसठवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

पौण्ड्रक और काशीराजका उद्धार

श्रीशुक उवाच—

नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप।

वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! जब बलदेव नन्द-गोकुलमें गये हुए थे, तब करुष देशके बुद्धिहीन राजा पौण्ड्रकने श्रीकृष्णके पास अपने एक दूतको यह घोषणा करवानेके लिए भेजा कि 'मैं ही एकमात्र वासुदेव हूँ' ॥ १ ॥

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः।

इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥ २ ॥

परीक्षित्! कुछ मूर्ख व्यक्ति उसे यह कहकर उत्साहित किया करते थे कि 'आप स्वयं ही जगत्पति हैं और भगवान् वासुदेवके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।' इस तरह वास्तवमें वह अपनेको ही भगवान् अच्युत समझने लगा ॥ २ ॥

दूतञ्च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने।

द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥ ३ ॥

बालक आपसमें क्रीड़ा करते समय जिस प्रकार किसी एक बालकको राजाके रूपमें कल्पना कर लेते हैं और वह बालक भी राजाके समान व्यवहार करने लगता है, उसी प्रकार अज्ञ बालकके समान बुद्धिहीन, अधम पौण्ड्रकने अव्यक्तवर्म (अचिन्त्यगति) श्रीकृष्णके लीला-रहस्यको जाने बिना ही द्वारकामें उनके पास एक दूत भेज दिया ॥ ३ ॥

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम्।

कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥

पौण्ड्रकका दूत द्वारका पहुँचा और राजसभामें विराजमान कमल-लोचन भगवान् कमलपत्राक्ष श्रीकृष्णको अपने राजा पौण्ड्रकका यह सन्देश सुनाया ॥ ४ ॥

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।

भूतानामनुकम्पार्थं त्वन्तु मिथ्याभिधां त्यज ॥ ५ ॥

दूतने सन्देश सुनाते हुए कहा—‘हे श्रीकृष्ण! प्राणियोंके कल्याणके लिए उनपर कृपा करके मैं ही वासुदेवरूपमें अवतीर्ण हुआ हूँ, दूसरा और कोई वासुदेव नहीं है। अतः अब तुम अपने मिथ्या वासुदेवके नामका त्याग कर दो ॥’ ५ ॥

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्विभर्षि सात्वत ।

त्यक्तवैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥

हे यदुवंशी! तुमने मूर्खताके कारण ये सब वासुदेवके चिह्न धारण कर रखे हैं। तुम इन समस्त चिह्नोंको छोड़ दो और मेरे शरणागत हो जाओ। यदि ऐसा नहीं करते, तो मेरे साथ युद्ध करो ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच—

कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ।

उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—मन्दबुद्धि पौण्ड्रककी आत्म-प्रशंसा सुनकर वहाँ उपस्थित उग्रसेन आदि सभासद जोर-जोरसे हँसने लगे ॥ ७ ॥

उवाच दूतं भगवान् परिहासकथामनु ।

उत्तन्नक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥

जब उन लोगोंका परिहास समाप्त हो गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—‘तुम जाकर अपने राजासे यह कहना कि हे मूढ! तू जो इन कृत्रिम सुदर्शन आदि चिह्नोंको पहनकर अपनी

बड़ी-बड़ी डींगें हाँक रहा है, मैं तेरे सारे चिह्नोंको तुझपर ही छुड़वाऊँगा, बहक मत ॥ ८ ॥

मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ।

शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥

रे अज्ञ! जब मेरे द्वारा तेरी मृत्यु होगी, तब तू अपना मुख छिपाकर चील, गीध, बटेर इत्यादि पक्षियोंसे घिरकर रणक्षेत्रमें सो जायेगा, तब कुत्ते तेरी शरण लेने आयेंगे ॥ ९ ॥

इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ।

कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥

हे परीक्षित! दूत वहाँसे चला गया और उसने श्रीकृष्ण द्वारा कथित अपमान-सूचक वचनोंको अपने स्वामी पौण्ड्रकको कह सुनाया। इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी रथपर सवार हुए और काशीके समीप पहुँचे। (उस समय करुषराज पौण्ड्रक काशीमें अपने मित्र काशीराजके पास ठहरा हुआ था) ॥ १० ॥

पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ।

अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥ ११ ॥

महारथी पौण्ड्रकको जब यह पता चला कि श्रीकृष्ण काशीपर आक्रमणकी तैयारीसे आये हैं, तब वह भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ द्रुत गतिसे पुरीसे बाहर निकल आया ॥ ११ ॥

तस्य काशिपतिमित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयात्रप ।

अक्षौहिणीभिस्तिष्ठभिरपश्यत् पौण्ड्रकं हरिः ॥ १२ ॥

शङ्खाय्यसिगदाशार्ङ्ग-श्रीवत्साद्युपलक्षितम् ।

बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥

कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ।

अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ १४ ॥

परीक्षित! पौण्ड्रकका मित्र काशीराज भी उसकी सहायताके लिए रक्षकके रूपमें उसका अनुसरण करते हुए चला। उसने तीन

अक्षौहिणी सेनाओंका नेतृत्व सँभाला हुआ था। युद्धक्षेत्रमें श्रीकृष्णने देखा कि पौण्ड्रकने शङ्ख, चक्र, गदा, तलवार और शार्ङ्ग नामक धनुष धारण कर रखे हैं, उसके वक्षःस्थलपर कौस्तुभ मणि लटक रही है और श्रीवत्सका चिह्न भी अङ्कित है। गलेमें वनमाला पहन रखी है। शरीरपर पीले रेशमी वस्त्र हैं। जगमगाते मकराकृत कुण्डल, अमूल्य (अल्पमूल्य कृत्रिम) मुकुट एवं आभूषणोंसे वह अलंकृत हो रहा है। उसके रथकी ध्वजापर गरुडका चिह्न भी है ॥ १२-१४ ॥

दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यं वेषं कृत्रिममास्थितम्।

यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥ १५ ॥

नट जिस प्रकार कृत्रिम वेश धारण करके रङ्गमञ्चपर अभिनय करने आता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने अपने समान वेशभूषा धारण किये हुए पौण्ड्रकको देखा। उसे देखकर भगवान् श्रीकृष्णको हँसी आ गयी। वे जोर-जोरसे हँसने लगे ॥ १५ ॥

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः।

असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥ १६ ॥

अब शत्रुओंने भगवान् श्रीकृष्णपर शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाणों द्वारा प्रहार किया ॥ १६ ॥

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशीराजयो-

र्बलं गजस्यन्दन-वाजिपत्तिमतम्।

गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं,

यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥ १७ ॥

प्रलयकालके समय प्रलयाग्नि जिस प्रकार चारों प्रकारके प्राणियोंको जला डालती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णने भी गदा, तलवार, चक्र, बाण आदि शस्त्रास्त्रोंसे पौण्ड्रक एवं काशीराजके हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनापर

भीषण प्रहार किये और उसे बुरी तरहसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥ १७ ॥

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जर-
द्विपत्खरोष्ट्रैररिणावखण्डितैः ।
बभौ चितं मोदवहं मनस्विना-
माक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥ १८ ॥

युद्धक्षेत्र श्रीकृष्णके चक्रसे छिन्न-भिन्न हुए रथों, घोड़ों, हाथियों, मनुष्यों, गधों एवं ऊँटोंसे ऐसे व्याप्त हो गया, मानो रुद्रदेवका प्रलयकालीन क्रीड़ाक्षेत्र हो। यह युद्धक्षेत्र किसी दूसरे लोकके समान बड़ा भयङ्कर दिखायी दे रहा था। शूरवीर इस दृश्यको देखकर बड़े उत्साहित हो रहे थे ॥ १८ ॥

अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भो पौण्ड्रक यद्ववान् ।
दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥ १९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकसे कहा—रे पौण्ड्रक! तूने अपने दूतके मुखसे मुझसे कहलवाया था कि अपने शस्त्रास्त्र छोड़ दो, देख, मैं इन सभी शस्त्रास्त्रोंको तुझपर ही छोड़ रहा हूँ ॥ १९ ॥

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत् त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥

रे मूर्ख! जो तूने मिथ्या ही अपना नाम वासुदेव रख लिया है, मैं आज ही तुझसे उन नामोंको भी छुड़वा दूँगा। जहाँ तक तेरे शरणागत होनेकी बात है, तो यदि तुझसे युद्ध करनेकी मेरी इच्छा नहीं रही, तो मैं तेरी शरणमें अवश्य आऊँगा ॥ २० ॥

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकका तिरस्कार कर अपने तीखे बाणोंसे उसके रथको तोड़-फोड़ डाला। इसके बाद अपने

सुदर्शन चक्रसे उसके सिरको इस प्रकार काट दिया, जिस प्रकार इन्द्रने वज्रसे पर्वतकी चोटियोंको विदीर्ण कर दिया था ॥ २१ ॥

तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः।

न्यपातयत् काशीपुर्या पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥

परीक्षित्! तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे काशीराजके सिरको धड़से अलग करके काशीपुरीमें इस प्रकार फेंक दिया, जिस प्रकार वायु कमलपुष्पके कोश (पराग) को उड़ाकर गिरा देती है। (काशीमें मस्तक निक्षेपका कारण था कि काशीराजने काशीवासियोंसे कहा था कि अहे! आज शत्रुका मस्तक लेकर ही काशीमें लौटूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है—ऐसी प्रतिज्ञा करके ही वह युद्धमें गया था। उसकी पापिनी स्त्रियाँ भी गर्वपूर्वक उच्चस्वरसे अपनी सखियोंके निकट यही गल्प कर रही थीं—“हमारे पति द्वारकापतिके मस्तकको आज अवश्य ही लायेंगे।” इसी हेतुसे कौतुकी भगवान्ने काशीवासियोंको विस्मयमें डालनेके लिए काशीराजके मस्तकको काशीमें प्रवेश कराया) ॥ २२ ॥

एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः।

द्वारकामाविशत् सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण इस प्रकार ईर्ष्यालु पौण्ड्रकके साथ-साथ काशीनरेशको भी मारकर द्वारकापुरी लौट आये। वहाँ उस समय सिद्धगण उनकी अमृतमयी कथाका गान कर रहे थे ॥ २३ ॥

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः।

बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥ २४ ॥

परीक्षित्! पौण्ड्रक सदा-सर्वदा श्रीहरिके अनुरूप ही वेश धारण करता था और उन्हींके चिन्तनमें लगा रहता था। इसलिए उसके सारे भौतिक बन्धन कट गये। उसका वध भी श्रीकृष्णके हाथों हुआ था। अतः मृत्युके बाद पौण्ड्रकको सारूप्य मोक्षकी (श्रीहरिके चतुर्भुज स्वरूपकी) प्राप्ति हुई ॥ २४ ॥

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम्।

किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशिशियरे जनाः ॥ २५ ॥

काशीपुरके लोगोंने जब राजमहलके द्वारपर कुण्डलोंसे विभूषित मस्तकको गिरा हुआ देखा, तो वे तरह-तरहके संशय करने लगे कि—अरे! यह क्या है? यह किसका सिर है? ॥ २५ ॥

राज्ञः काशीपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः।

पौराश्च हा हता राजन् नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥

जब उन्हें यह पता चला कि यह सिर काशीनरेशका है, तो उसकी रानियाँ, पुत्र, बान्धव एवं पुरवासी उच्चस्वरसे रोते हुए विलाप करने लगे—“हे राजन्! हे नाथ! हे नाथ! आज तो हम सब प्रकारसे मारे गये ॥” २६ ॥

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः।

निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥

इत्यात्मनाभिसन्धाय सोपाध्यायो महेश्वरम्।

सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥ २८ ॥

हे राजन्! काशीनरेशका सुदक्षिण नामका पुत्र था, जिसने अपने पिताकी समस्त पारलौकिक क्रियाओंको सम्पन्न किया और मन-ही-मन यह सङ्कल्प कर लिया कि पिताके हन्ताको (हत्यारेको) मारकर ही पितु-ऋणसे मुक्त हो सकूँगा। अतः वह कुल-पुरोहितों और आचार्योंके साथ एकाग्र चित्तसे कठोर समाधि द्वारा महादेवकी आराधना करने लगा ॥ २७-२८ ॥

प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद्भवः।

पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥

अविमुक्त-स्थलीमें (काशी नगरीके पवित्र स्थानमें) उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर महादेवजीने उसे अभीष्ट वर माँगनेके लिए कहा। राजकुमार सुदक्षिणने अपना मनोभीष्ट वर माँगा कि ‘मुझे पितृघातीके वधका उपाय (साधन) बताइये ॥’ २९ ॥

दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ।

अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥

साधयिष्यति सङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।

इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन् व्रती ॥ ३१ ॥

तब महादेवजीने कहा—तुम ब्राह्मणोंके साथ मिलकर अभिचार विधि (अनुष्ठान) के अनुसार यज्ञके देवता—ऋत्विक्भूत दक्षिणाग्निकी आराधना करो। जब तुम इस अग्निका ब्राह्मण-विरोधी व्यक्तिके प्रति प्रयोग करोगे, तो प्रमथगणों (इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले शिवके गण) के साथ यह अग्नि तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध करेगा। जब महादेवने इस प्रकार आज्ञा प्रदान की, तब सुदक्षिणने अनुष्ठानके (शत्रुओंको मारनेके लिए किये गये अभिचारके) उपयुक्त नियमोंको ग्रहण करके श्रीकृष्णके उद्देश्यसे अभिचारका आह्वान किया और अनुष्ठान (मारणका पुरश्चरण) करने लगा (मूर्ख सुदक्षिणने सोचा कृष्णमें ब्रह्मण्यता नहीं है, इसलिए उसे विपरीत फल प्राप्त हुआ और यही श्रीरुद्रका अभिप्राय था) ॥ ३०-३१ ॥

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ।

तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥

दंष्ट्रोऽग्रभृकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ।

आलिहन् सुक्कणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलत् ॥ ३३ ॥

जैसे ही अभिचार-कृत्य (दक्षिणाग्नि यज्ञानुष्ठान) समाप्त हुआ, उसी समय यज्ञ-कुण्डसे अति भयङ्कर मूर्तिमान् अग्नि प्रकट हुआ। उसके केश एवं दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल-लाल थे। आँखोंसे अङ्गारे निकल रहे थे। उग्र दाढ़ों एवं टेढ़ी भृकुटियोंके कारण उसके मुखसे क्रूरता झलक रही थी। वह नङ्ग-धड़ङ्ग था। उसने हाथोंमें त्रिशूल ले रखा था, जिसे वह बार-बार घुमा रहा था और उसमेंसे आगकी लपटें निकल रही थीं। वह अपनी जीभसे होठोंके दोनों कोनोंको चाट रहा था ॥ ३२-३३ ॥

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम्।

सोऽभ्यधावद्धतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥ ३४ ॥

यह अभिचार-अग्निरूप-असुर प्रमथोंके साथ ताड़-वृक्षके समान अपनी लम्बे-लम्बे पैरोंसे पृथ्वीको कँपाते हुए और ज्वालाओंसे दिशाओंको दग्ध करते हुए बड़े वेगसे द्वारकाकी ओर उन्मुख हुआ और अति शीघ्र द्वारकाके समीप पहुँच गया ॥ ३४ ॥

तमाभिचारदहनमायान्तं

द्वारकौकसः।

विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥

जब द्वारकावासियोंने अभिचार-अनुष्ठानसे उत्पन्न इस भयङ्कर अनलरूप असुरको द्वारकाकी ओर आते देखा, तो वे इस प्रकार डर गये, जिस प्रकार वनमें आग लग जानेपर हिरन आदि जीव-जन्तु डर जाते हैं ॥ ३५ ॥

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः।

त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वहेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥

भयातुर लोग श्रीकृष्णके पास पहुँचे, भगवान् उस समय राजसभामें बैठकर चौसर खेल रहे थे। द्वारकावासियोंने भगवान्से कहा—हे त्रिलोकेश्वर! इस भयङ्कर आगसे हमारी रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये! यह तो द्वारका नगरीको भस्म कर डालना चाहती है ॥ ३६ ॥

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानाञ्च साध्वसम्।

शरण्यः सम्प्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥ ३७ ॥

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने जब पुरवासियोंके इस प्रकारके कातर वचन सुने और अपने स्वजनोंको विक्षुब्ध देखा, तो वे मुसकराने लगे। उन्होंने उन लोगोंसे कहा—तुम्हें डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ॥ ३७ ॥

सर्व्वस्यान्तर्बहिःसाक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः।

विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥

समस्त जीवोंके बाह्य एवं अन्तरको प्रत्यक्ष जाननेवाले सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण समझ गये कि यह अग्नि काशीसे चली हुई माहेश्वरी कृत्या है। उन्होंने उसके विनाशके लिए समीपमें ही विराजित सुदर्शनचक्रको आदेश दिया (क्योंकि इस क्षुद्र कार्यके लिए अपने अक्ष-क्रीड़ा-सुखको वे भङ्ग नहीं करना चाहते थे) ॥ ३८ ॥

तत् सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं,
जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम्।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी,
चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥

भगवान् मुकुन्दका वह सुदर्शनचक्र कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी था। वह प्रलयाग्निके समान अपने तेजके द्वारा आकाश, दिशाओं, स्वर्ग एवं मृत्युलोकको प्रकाशित करता हुआ अभिचार अग्निको उत्पीड़ित करने लगा ॥ ३९ ॥

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणे-
रस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः।
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं
सत्विग्नं समदहत् स्वकृतोऽभिचारः ॥ ४० ॥

हे राजन्! श्रीकृष्णके अस्त्र-सुदर्शनचक्रके प्रभावसे आभिचारिक कृत्यारूप अग्निका तेज नष्ट हो गया और वह कृत्या वहाँसे लौटकर वाराणसी आ गयी। वहाँ उसने पुरोहितों और आचार्योंके साथ अपनेको उत्पन्न करनेवाले सुदक्षिणको भी जलाकर भस्म कर डाला। इस प्रकार सुदक्षिणका अभिचार उसीके विनाशका कारण बना ॥ ४० ॥

चक्रञ्च विष्णोस्तदनु प्रविष्टं
वाराणसीं सादृसभालयापणाम्।
सगोपुराट्टालककोष्ठसङ्कुलां
सकोशहस्त्यश्वरथात्रशालिनीम् ॥ ४१ ॥

अनन्तर भगवान्का सुदर्शनचक्र भी उस कृत्याग्निके पीछे-पीछे वाराणसी पुरीमें घुस गया। वहाँ उसने बड़ी-बड़ी अटारियों, सभा-गृह, मञ्च, पण्यशाला (बाजार), पुरद्वार, अट्टालिका, प्रकोष्ठ, खजाने (कोशागार), हस्तीशाला, अश्वशाला, रथशाला एवं अन्नोके गोदामोंके साथ समस्त वाराणसी पुरीको ही जलाकर भस्म कर दिया ॥ ४१ ॥

दध्वा वाराणसीं सर्वा विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्।

भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत् कृषस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्णके सुदर्शनचक्रने इस प्रकारसे सम्पूर्ण वाराणसी पुरीको जलाकर भस्म कर दिया और पुनः अक्लान्तकर्मा (बिना किसी थकानके कार्य करनेवाले) परमानन्दमयी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया ॥ ४२ ॥

य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमःश्लोकविक्रमम्।

समाहितो वा शृणुयात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पौण्ड्रकादिवधो नाम

षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

जो मानव एकाग्रचित्तसे श्रीकृष्णके इस पराक्रमपूर्ण चरितको सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह समस्त पापोंसे प्रकृष्ट रूपसे मुक्त हो जाता है ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके छियासठवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

श्रीबलरामजीके द्वारा द्विविदका उद्धार

श्रीराजेवाच—

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः।

अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत् कृतवान् प्रभुः ॥ १ ॥

श्रीपरीक्षित् महाराजने कहा—हे मुनिवर! सर्वशक्तिमान् बलदेवके चरित विचित्र एवं अनन्त हैं (अपने स्नानके लिए कोई नदीको खींचकर ला सकता है क्या?)। वे अविज्ञेय तत्त्व हैं (उनके स्वरूप एवं लीलाएँ वाणी, मन तथा बुद्धिसे अतीत हैं)। यमुनाकर्षणके अतिरिक्त उन्होंने जो भी अद्भुत एवं अलौकिक लीलाएँ कीं, मैं उन सबको सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

नरकस्य सखा कश्चिद्विविदो नाम वानरः।

सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—द्विविद नामका एक महाबलशाली वानर था, जो नरकासुरका सखा, मैन्द वानरका भाई और सुग्रीवका मन्त्री था (यह अङ्गदका श्वसुर भी था)। इसका दुःसङ्ग-दोष था। श्रीराम-पूजामें मैन्द एवं द्विविद नित्य आवरण सिद्ध देवता माने जाते हैं। (द्विविदका लक्ष्मणके प्रति महा अपराध हुआ था। इसी कारण इसे नरकासुरका दुःसङ्ग प्राप्त हुआ और वह कृष्ण-बलरामसे द्वेष करने लगा था। द्वारकापुरीके निकट सौराष्ट्र आदि प्रान्तोंमें यह महा उपद्रव करने लगा था। इस समय मधुर सङ्गीत सुनकर यह रैवतक पर्वतपर आ गया था) ॥ २ ॥

सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन् वानरो राष्ट्रविप्लवम्।

पुरग्रामाकरान् घोषानदहद्वहिमुत्सृजन् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णने नरकासुरको मार डाला है—यह सुनकर वानर अपने मित्रके ऋणका परिशोध करनेके लिए तत्पर हो गया। वह बड़े-बड़े नगरों, ग्रामों, खानों एवं गोपोंकी बस्तियोंमें आग लगाने लगा और इस प्रकारसे राष्ट्र-विप्लवके लिए तत्पर हो गया ॥ ३ ॥

क्वचित् स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान् समचूर्णयत्।

आनर्त्तान् सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥

एक दिन वह बलवान् बन्दर बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर उनसे विशेषरूपसे आनर्त्त (काठियाबाड़) देशको चकनाचूर करने लगा, क्योंकि उसके मित्रके संहारक श्रीकृष्ण वहीं वास करते थे ॥ ४ ॥

क्वचित् समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम्।

देशान् नागायुतप्राणो वेलाकूले न्यमज्जयत् ॥ ५ ॥

दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाला वह वानर एक बार समुद्रके बीचमें घुस गया और जलको उलीचते हुए उसने किनारेपर स्थित देशोंको डुबो दिया ॥ ५ ॥

आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन्।

अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन् वैतानिकान् खलः ॥ ६ ॥

कभी वह दुष्ट बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंके आश्रमोंके लता-वृक्षोंको तोड़-मरोड़कर नष्ट कर देता और कभी यज्ञ-सम्बन्धी अग्नि-कुण्डोंमें मल-मूत्र फेंककर अग्नियोंको दूषित कर देता ॥ ६ ॥

पुरुषान् योषितो दृप्तः क्षमाभृद्द्रोणीगुहासु सः।

निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशष्कारीव कीटकम् ॥ ७ ॥

भृङ्गी नामक कीड़ा जिस प्रकार आहारके लिए दूसरे कीड़ोंको संग्रह करके उन्हें अपने बिलमें बन्द कर लेता है, उसी प्रकार वह घमण्डी वानर नर-नारियोंको पकड़कर उन्हें पर्वतकी कन्दराओंमें डाल देता और बड़ी-बड़ी चट्टानोंसे ढक देता ॥ ७ ॥

एवं देशान् विप्रकुर्वन् दूषयंश्च कुलस्त्रियः।

श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥

द्विविध विविध प्रान्तोंको तो विध्वस्त करता ही, कुलरमणियोंको भी दूषित कर देता। एक बार जब उसे सुमधुर सङ्गीत ध्वनि सुनायी पड़ी, तो वह रैवतक पर्वतपर चढ़ गया ॥ ८ ॥

तत्रापश्यद्यदुपतिं राम पुष्करमालिनम्।

सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम्।

विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ १० ॥

उसने देखा कि उस पर्वतपर यदुपति बलदेव सुन्दर-सुन्दर युवतियोंसे परिवेष्टित होकर विराजमान हैं। उनका श्रीविग्रह अत्यन्त सुरम्य और आकर्षक है। उन्होंने कमलकी मालाको धारण कर रखा है। वारुणी मदिराका पान करनेसे उनके नेत्र मदसे विह्वल हो रहे हैं और दीप्तमान् कलेवर एवं व्यवहार कामोन्मत्त हाथीके समान दिखायी दे रहा है ॥ ९-१० ॥

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन् द्रुमान्।

चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन् ॥ ११ ॥

वह दुष्ट वानर वहाँके वृक्षोंकी शाखाओंपर चढ़ गया और उन वृक्षोंको जोर-जोरसे हिलाने लगा। कभी-कभी स्त्रियोंके सामने अपनी देहको दिखाकर किल-किल शब्द करके किटकिटाने लगा ॥ ११ ॥

तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः।

हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥ १२ ॥

तरुण युवतियाँ स्वाभाविकरूपसे परिहास-प्रिय और चञ्चल होती हैं। अतः बलदेवकी प्रेयसियोंने जब वानरकी धृष्टता देखी, तो वे हँसने लगीं ॥ १२ ॥

ता हेलयामास कपिभ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः।

दर्शयन् स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः॥१३॥

अब वह वानर बलदेवके सम्मुख ही उनकी अवहेलना करता हुआ उन युवतियोंको अपना मलद्वार दिखाने लगा। वह उनके ही सामने बैठकर कभी भौहें मटकाता, कभी घुड़की देता और कभी उन तरुणियोंपर मूत्र फेंक देता॥१३॥

तं ग्राव्या प्राहरत् क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः।

स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः॥१४॥

गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन् हसन्।

निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम्

कदर्थीकृत्य बलवान् विप्रचक्रे मदोद्धतः॥१५॥

प्रहारकर्त्ता-शिरोमणि बलभद्र उसकी ऐसी कुचेष्टाओंको देखकर क्रोधित हो गये तथा उसपर एक शिलाखण्डसे प्रहार किया, किन्तु उस धूर्त वानरने उस शिलाखण्डसे अपनेको बचा लिया और बलदेवके मधु-कलशको उठाकर उनकी अवहेलना करने लगा। इसके बाद महाबलशाली एवं गर्वोन्मत्त दुष्ट वानरने उस मधु-कलशको फोड़ डाला और बलदेवका तिरस्कार करते हुए उनकी प्रेयसियोंके वस्त्रोंको खींचकर उन तरुणियोंका भी अपमान करने लगा। वह जोर-जोरसे हँसकर बलदेवको और अधिक क्रुद्ध होनेके लिए उकसाने लगा॥१४-१५॥

तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान्।

क्रुद्धो मुषलमादत्त हलञ्चारिजिघांसया॥१६॥

परीक्षित्! बलदेव उसकी धृष्टताको देखकर और उसके द्वारा उत्पीड़ित देशोंकी दुर्दशापर विचार करके क्रोधित हो गये। उन्होंने इस शत्रुको मार डालनेकी इच्छासे हल एवं मुसल उठा लिये॥१६॥

द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना।

अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्द्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥

उधर महापराक्रमी द्विविदने भी अपने एक हाथसे शालका वृक्ष उखाड़ लिया और वेगपूर्वक बलदेवकी ओर दौड़कर उनके सिरपर प्रहार किया ॥ १७ ॥

तन्तु सङ्कर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा।

प्रतिजग्रहा बलवान् सुनन्देनाहनच्च तम् ॥ १८ ॥

महाविक्रमी सङ्कर्षण पर्वतके समान अविचल रहे। सिरके ऊपर वह वृक्ष गिरता, इसके पहले ही उन्होंने शाल-वृक्षको अपने एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरे हाथसे सुनन्द नामक मुसलसे उसपर प्रहार किया ॥ १८ ॥

मुषलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया।

गिरिर्यथा गौरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥ १९ ॥

पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पन्नमोजसा।

तेनाहनत् सुसंकुद्धस्तं बलः शतधाच्छिनत् ॥ २० ॥

ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तञ्चापि शतधाच्छिनत् ॥ २१ ॥

मुसलके प्रहारसे द्विविदका मस्तक फट गया और उससे खूनकी धारा बहने लगी। उस समय ऐसा सुन्दर दृश्य उपस्थित हुआ मानो किसी गौरिक-रञ्जित पर्वतसे गेरुएका सोता (स्रोत) फूट पड़ा हो। वानरने उस प्रहारको कुछ भी नहीं माना और दूसरे एक और वृक्षको उखाड़ लिया। उसने बलपूर्वक उस वृक्षको पत्रहीन करके उससे पुनः बलदेवपर प्रहार किया। इसपर बलदेव अतिशय क्रोधित हो गये और उन्होंने उस वृक्षको सौ भागोंमें टुकड़े-टुकड़े कर डाला। द्विविदने पुनः बड़े रोषमें भरकर एक और वृक्ष उखाड़ा और बलदेवने पुनः उस वृक्षको भी खण्ड-खण्ड कर डाला ॥ १९-२१ ॥

एवं युध्यन् भगवता भग्ने भग्ने पुनःपुनः।

आकृष्य सर्वतो वृक्षान् निर्वृक्षमकरोद्वनम्॥ २२॥

इस प्रकार भगवान् बलदेवके साथ युद्ध करता हुआ वानर चारों ओरसे बारम्बार वृक्षोंको उखाड़ता रहा और देखते-ही-देखते उसरे सारे वृक्षोंको उखाड़कर वनको वृक्षोंसे रहित कर दिया॥ २२॥

ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्य्यमर्षितः।

तत् सर्वं चूर्णयामास लीलया मुषलायुधः॥ २३॥

द्विविद अब और भी चिढ़ गया। उसने बलदेवके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करना आरम्भ कर दिया, परन्तु गदाधारी बलदेवने बड़ी आसानीसे सारे पत्थरोंको चकनाचूर कर दिया॥ २३॥

स बाहू तालसङ्काशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः।

आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरुरुजत्॥ २४॥

तत्पश्चात् वानरेन्द्र द्विविदने ताल-वृक्षके समान अपनी दोनों भुजाओंसे मुट्ठी बाँधी और बलदेवके सामने आकर उनके वक्षःस्थलपर प्रहार किया॥ २४॥

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुषललाङ्गले।

जत्रावभ्यर्दयत् क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन्॥ २५॥

अब यादवेन्द्र बलदेव अत्यन्त क्रोधित हो उठे। उन्होंने दोनों भुजाओंसे हल और मुसलको एक ओर फेंक दिया और उसकी हसलीपर (बाहुके मूलपर) जोरका प्रहार किया, जिससे वह वानर रक्त उगलता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २५॥

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः।

पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि॥ २६॥

हे कुरु-शार्दूल! आँधीके वेगसे जिस प्रकार जलमें नौका डौंवाडोल होती है, उसी प्रकार उस वानरके गिरनेसे जलसे पूर्ण गड्ढों एवं वृक्षोंसे परिपूर्ण रैवतक पर्वत काँपने लगा॥ २६॥

जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे।

सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत् कुसुमवर्षिणाम् ॥ २७ ॥

उस समय आकाशमें चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए देवताओं द्वारा उच्चारित 'जय, जय' ध्वनि, सिद्धों द्वारा उच्चारित 'नमो नमः,' प्रणाम वाच्य ध्वनि और बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों द्वारा 'साधु-साधु' रूप प्रशंसा ध्वनि गूँजने लगी ॥ २७ ॥

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम्।

संस्तूयमानो भगवान् जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे द्विविद-वधो नाम

सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् बलदेव जगत्में विप्लव मचा देनेवाले द्विविद वानरको मारकर द्वारकापुरी लौट आये। पुरजन-परिजन सभी उस समय बलरामकी प्रशंसा कर रहे थे ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सड़सठवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

कौरवोंपर बलरामका क्रोध और साम्बका विवाह

श्रीशुक उवाच—

दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिञ्जयः।

स्वयंवरस्थामहरत् साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! समर-विजयी जाम्बवती-नन्दन साम्ब, अकेले ही बड़े-बड़े वीरोंपर विजय प्राप्त करनेवाले ही नहीं थे बल्कि सभी युद्धोंको जीत लेते थे, वे स्वयंवर सभासे दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको हर लाये ॥ १ ॥

कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः।

कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥

इस बातसे कौरव बड़े क्रोधित हो गये और कहने लगे—अरे! यह दुष्ट बालक हमारा अपमान करके बलपूर्वक हमारी कन्याको हर ले गया, जब कि हमारी पुत्री इसे चाहती भी न थी ॥ २ ॥

बन्धीतेमं दुर्विनीतं किं करष्यन्ति वृष्णयः।

येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥ ३ ॥

अरे, इस दुर्विनीत (ढीठ) बालकको बाँध लो! ये यादव हमारा क्या कर लेंगे? ये तो हमारे ही अनुग्रहसे पुष्ट हो रहे हैं और हमारे ही द्वारा दिये गये राजत्वका उपभोग कर रहे हैं ॥ ३ ॥

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः।

भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राण इव सुसंयताः ॥ ४ ॥

यदि वृष्णिगण पुत्र-बन्धनका समाचार सुनकर यहाँ युद्धके लिए आते हैं, तो उनका सारा दर्प ही भग्न हो जायेगा। वे निश्चित ही इस तरह शान्त हो जायेंगे, जिस प्रकार संयमी व्यक्ति साधना (प्राणायामादि) के द्वारा इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें कर लेता है ॥ ४ ॥

इति कर्णः शलो भूरियज्ञकेतुः सुयोधनः ।

साम्बमारेभिरे बद्धं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥

इस प्रकार परामर्श करके कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु एवं दुर्योधन एकत्रित हो गये और कुरुवृद्ध भीष्मदेव आदिसे अनुमति प्राप्त करके साम्बको पकड़नेके लिए उद्यत हो गये (भीष्मके अनुमोदनका कारण था कि साम्बने कन्याका स्पर्श कर लिया है, अब अन्य वरको दान करना सम्भव नहीं है। साम्ब अपने वीरत्वका प्रदर्शन करके कन्याको लेकर चला गया है। अतएव इसका बन्धन करना चाहिये। वह वधके योग्य नहीं है) ॥ ५ ॥

दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान् महारथः ।

प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥

महारथी साम्बने देखा कि धृतराष्ट्र पक्षके दुर्योधनादि वीर उनके पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, तो वे एक-सुन्दर धनुष धारण करके सिंहके समान उनके सामने अकेले ही डट गये ॥ ६ ॥

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ।

आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७ ॥

इधर कर्ण आदि धनुर्धारी साम्बको बाँधनेके लिए कृतसङ्कल्प थे। वे इसी अभिप्रायसे कहने लगे—जरा क्षण भर ठहर! भाग मत! यह कहते हुए सब उनके समीप पहुँच गये और उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥

सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ।

नामृष्यत् तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ! अचिन्त्य पुरुष श्रीकृष्णके प्रिय पुत्र साम्ब कौरवोंके द्वारा किये गये अनीतिपूर्ण आक्रमणको उसी प्रकार सहन नहीं कर पाये, जिस प्रकार सिंह क्षुद्र प्राणियोंके आक्रमणको सहन नहीं कर पाता ॥ ८ ॥

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान् विव्याध सायकैः।
 कर्णादीन् षड्रथान् वीरास्तावद्भिर्युगपत् पृथक् ॥ ९ ॥
 चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन्।
 रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत् तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥

वीर साम्बने अपने सुन्दर धनुषकी टंकार करके एक ही समय कर्ण आदि छह योद्धाओंपर बाणोंसे पृथक्-पृथक् प्रहार किया, इसके बाद इसी प्रकार (पृथक्-पृथक् रूपसे) उनके छहों रथोंको भी बेध डाला। उन्होंने चार-चार बाणों द्वारा प्रत्येक योद्धाके चार-चार अश्वोंपर, एक-एक बाण द्वारा प्रत्येक सारथिपर एवं एक-एक बाण द्वारा उन धनुर्धर महारथियों पर प्रहार किया, जो रथोंकी बागडोर सँभाले हुए थे। उस समय विपक्षी योद्धा भी अचिन्त्यशक्ति-पुत्र साम्बकी वीरताकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करने लगे ॥ ९-१० ॥

तन्तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान्।
 एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥

इसके बाद उन छह वीरोंने एक साथ मिलकर साम्बको रथहीन कर दिया। उनमेंसे चार वीरोंने उनके चार अश्वोंको, एकने उनके सारथीको और अन्य एकने उनके धनुषको काट डाला ॥ ११ ॥

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि।
 कुमारं स्वस्य कन्याञ्च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥

कौरवोंने इस प्रकार युद्धमें विजय प्राप्तकर साम्बको रथ-शून्य कर दिया और बड़े कष्टके साथ उन्हें बाँध लिया। तत्पश्चात् उन्हें और अपनी पुत्री लक्ष्मणाको लेकर हस्तिनापुर लौट आये ॥ १२ ॥

तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन् सञ्जातमन्यवः।
 कुरुन् प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥

हे राजन्! जब यादवोंने देवर्षि नारदसे कौरवोंके इस व्यवहारके विषयमें सुना, तो वे राजा उग्रसेनसे प्रेरणा प्राप्त करके कौरवोंके साथ युद्धके लिए प्रस्तुत हो गये ॥ १३ ॥

सान्त्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान् वृष्णिपुङ्गवान्।

नैच्छत् कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ १४ ॥

जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा।

ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥

कलि-कलुष-नाशन बलदेवने कवच इत्यादि पहने हुए युद्धके लिए तत्पर वृष्णिवंशी वीरोंको शान्त किया। वे चाहते थे कि कौरवों और यादवोंमें किसी प्रकारका कलह-विवाद न हो। उद्धव, ब्राह्मण एवं कुलके बड़े-बूढ़ोंके साथ बलराम रथपर सवार होकर हस्तिनापुर गये। बलरामका रथ सूर्यके समान दीप्तिमान् था। मार्गमें जाते समय वे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जिस प्रकार प्रमुख ग्रहोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥ १४-१५ ॥

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः।

उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥

हस्तिनापुर पहुँचनेपर बलदेव नगरके बाहर ही एक उद्यानमें ठहर गये और धृतराष्ट्रका अभिप्राय जाननेके लिए उद्धवको भेजा ॥ १६ ॥

सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणञ्च बाह्लिकम्।

दुर्योधनञ्च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥

उद्धवने कुरुसभामें उपस्थित होकर अम्बिका-पुत्र धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, बाह्लीक एवं दुर्योधनकी विधिपूर्वक अभ्यर्थना की और बलदेवके पधारनेका समाचार निवेदन किया (इस समय युधिष्ठिरादि इन्द्रप्रस्थमें थे, हस्तिनापुरमें नहीं) ॥ १७ ॥

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम्।

तमर्चयित्वाभिययुः सर्व्वे मङ्गलपाणयः ॥ १८ ॥

कौरव बान्धव-प्रवर और प्रियतम मित्र बलदेवके आगमनका समाचार सुनकर अतीव प्रसन्न हुए। उन्होंने उद्धवका विधिपूर्वक स्वागत किया और हाथोंमें माङ्गलिक सामग्रियाँ धारण करके और उनके साथ ही बलदेवकी अगवानी करने चले॥ १८ ॥

तं सङ्गम्य यथान्यायं गामर्घ्यञ्च न्यवेदयन्।

तेषां य तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम्॥ १९ ॥

कौरवोंने अपनी-अपनी अवस्था और सम्बन्धके अनुसार बलदेवका यथायोग्य सत्कार करते हुए उनका आलिङ्गन किया और आशीर्वाद दिये। उनके स्वरूपको जाननेवाले भीष्म इत्यादिने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया तथा उनके समीप आकर उन्हें आसन एवं अर्घ्य प्रदान किये॥ १९ ॥

बन्धून् कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम्।

परस्परमथो रामो बभाषेऽविकलवं वचः॥ २० ॥

उन लोगोंने परस्पर कुशल-मङ्गल एवं स्वास्थ्यके समाचार पूछे। सबकी कुशलता सुनकर बलराम बड़े प्रसन्न हुए और गाम्भीर्य, दैन्य-राहित्य एवं धैर्यके साथ स्पष्ट शब्दोंमें उनसे कहने लगे॥ २० ॥

उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत् प्रभुः।

तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वमविलम्बितम्॥ २१ ॥

सर्वसमर्थ नृपति-प्रवर यादवेन्द्र महाराजधिराज उग्रसेनने तुम लोगोंको जो आदेश दिया है, उसे सावधानीपूर्वक सुनो और तदनुसार अविलम्ब उनकी आज्ञाका पालन करो (इन्द्र जिन उग्रसेनके आज्ञाकारी हैं, उनके लिए आप लोग कौन हैं? अति क्षुद्र)॥ २१ ॥

यद्ययं बहवस्त्वेकं जित्वाधर्मेण धार्मिकम्।

अबन्धीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया॥ २२ ॥

(महाराज उग्रसेनने कहा है—) आपमेंसे बहुत-से लोगोंने एक साथ मिलकर अन्यायपूर्वक अकेले साम्बके साथ युद्ध किया है और उस निस्सहाय धर्मात्माको हराकर बन्दी बना लिया है। हमें यह पता चला, तो हमने इस अन्यायपूर्ण आचरणको इसलिए सह लिया कि हम सब बन्धुओंमें परस्पर एकता बनी रहे। अब साम्बको उसकी नववधूके साथ हमारे हाथोंमें समर्पण कर दो ॥ २२ ॥

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ।

कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥

परीक्षित्! बलदेवके प्रभावशाली, उत्साहवर्द्धक, बल और शक्तिसे परिपूर्ण वचनोंको सुनकर कुरुवंशी बड़े क्रोधित हो गये और कहने लगे (बलदेव वाक्य पूर्ण भी नहीं कर पाये कि बीचमें ही बोल उठे—) ॥ २३ ॥

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ।

आरुरुक्षत्युपानद्रै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥

कौरवोंने कहा—अहो! बड़े आश्चर्यकी बात है! आज यादव कौरवोंको आदेश दे रहे हैं! कालकी गति वास्तवमें दुर्लभ्य है! आज चरण-पादुका मुकुट द्वारा सेवित सिरोंपर सवार होनेके लिए आग्रह कर रही है (पैरोंकी जूती उनके सिरपर चढ़ना चाहती है) ॥ २४ ॥

एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः ।

वृष्णयस्तुल्पतां नीता अस्मद्वत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥

ये वृष्णिगण पहले तो कुन्तीके विवाह द्वारा हमारे आत्मीय बन गये। इसके बाद धीरे-धीरे एक साथ सोने, बैठने एवं भोजन करने लगे। हम लोगोंने ही इन्हें राजसिंहासन दे करके राजा बनाया। अब ये हमारे ही समान बननेका अभिमान करने लगे हैं ॥ २५ ॥

चामरव्यजने शङ्खमातपत्रञ्च पाण्डुरम्।

किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥

हमलोग कुछ विशेष ध्यान नहीं दे रहे हैं, इसीलिए वे चामर, व्यजन, शङ्ख, श्वेत राजछत्र, सिंहासन, राजमुकुट, शय्या इत्यादिका उपभोग कर पा रहे हैं ॥ २६ ॥

अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनै-

र्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम्।

येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा,

आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥

हाय! हाय! साँप जिस प्रकार दूध पिलाकर अपने ही पालन करनेवालेके विपरीत आचरण करता है, उसी प्रकार इन यादवोंकी हमारी ही कृपासे बढ़ोत्तरी हुई है और अब निर्लज्ज भावसे अपनेको स्वामी समझकर हमें आदेश दे रहे हैं। अब इन यादवोंके पास राजचिन्ह बनाये रखनेका कोई औचित्य नहीं है, इनका उच्छेद कर दो ॥ २७ ॥

कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः।

अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥

भेड़िया जिस प्रकार सिंह द्वारा प्राप्य वस्तुको अपने अधिकारमें करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, वैसे ही भीष्म, द्रोण, अर्जुन इत्यादि कौरव पक्षके वीर यदि प्रदान न करें, तो स्वयं देवराज इन्द्र भी किसी वस्तुका उपभोग करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ २८ ॥

श्रीबादरायणिरुवाच—

जन्मबन्धुश्रियोत्रद्धमदास्ते

भरतर्षभ।

आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे भरतकुलश्रेष्ठ! कुलीनता, जाति, भीष्मादि बन्धु-बान्धवोंके बल एवं सम्पदाके उत्कर्षके कारण दुर्जन कौरव अति घमण्डी हो रहे थे। वे बलदेवसे इस प्रकारके दुर्वचन कहकर हस्तिनापुर लौट आये ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वावाच्यानि चाच्युतः।

अवोचत् कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥ ३० ॥

अच्युत भगवान् बलदेव कौरवोंकी दुष्टता और अभद्रता देखकर एवं उनके दुर्वचन सुनकर बड़े क्रोधित हुए। उस समय उनकी ओर देखना भी कठिन हो रहा था। वे बार-बार जोर-जोरसे हँसते हुए कहने लगे (इस समय बलदेव मौन ही रहे और सोचते रहे कि ये लोग क्या बोल रहे हैं और क्या कर रहे हैं। जब सब पुरवासीगण चले गये, तब कोप-प्रकाशक-हास्यके साथ वे वक्रोक्तियाँ कहने लगे) ॥ ३० ॥

नूनं नानामदोत्रद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः।

तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ॥ ३१ ॥

भगवान् बलरामने कहा—जो धनादि विविध वस्तुओंकी प्राप्तिके कारण गर्वोन्मत्त हो रहे हैं, ऐसे दुर्जन कभी भी शान्ति नहीं चाहते। जैसे उद्धण्ड पशुओंके दमनके लिए लाठीका प्रयोग न्याय-सङ्गत होता है, उसी प्रकार दुष्टोंको शान्त करनेके लिए शारीरिक दण्ड देना ही एकमात्र उपाय होता है ॥ ३१ ॥

अहो यदून् सुसंरब्धान् कृष्णञ्च कुपितं शनैः।

सान्त्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥

त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः।

तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान् मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥

भला देखो तो! कितने आश्चर्यकी बात है! यदुवंशी और श्रीकृष्ण क्रोधवश युद्धके लिए तत्पर थे, परन्तु मैंने ही उन्हें धैर्यपूर्वक समझा-बुझाकर शान्त किया और शान्ति बनाये रखनेकी कामनासे ही यहाँ आया। ओह! ये दुर्बुद्धि, दुष्टस्वभाव और अहङ्कारी कौरव मेरा ही तिरस्कार कर रहे हैं। उन्हें शान्ति नहीं, कलह प्यारा है। ये इतने घमण्डी हैं कि अवाच्य वचनोंको (गालियोंको) कहते हुए ही यहाँसे चले गये ॥ ३२-३३ ॥

नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।

शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥

अरे ! इन्द्रादि लोकपाल जिनकी आज्ञाके पालनमें तत्पर रहते हैं, वे भोज, वृष्णि एवं अन्धकोंके अधिपति उग्रसेन इनके मतसे आज्ञा प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ३४ ॥

सुधर्माऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ।

आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनाहर्णः ॥ ३५ ॥

जो सुधर्मा-सभाको अधिकृत करके उसमें विराजमान हो रहे हैं, जो देवताओंको भी पराजितकर देवलोकसे पारिजात वृक्षको उखाड़ लाये हैं और उसका उपभोग कर रहे हैं, वे श्रीकृष्ण इनके विचारमें राजसिंहासनके योग्य नहीं हैं ॥ ३५ ॥

यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरूपास्तेऽखिलेश्वरी ।

स नाहति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥

समस्त सम्पदाओंकी अधिष्ठात्री साक्षात् लक्ष्मीदेवी जिनके चरणयुगलकी निरन्तर सेवा करती हैं, वे श्रीश श्रीकृष्ण इनके विचारसे छत्र, चँवर, आदि राजोचित सामग्रियोंके योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालै-

मौल्युत्तमैर्धृतमुपासित-तीर्थतीर्थम् ।

ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः

श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥

जो समस्त तीर्थोंके भी परमतीर्थ-स्वरूप हैं, इन्द्रादि सारे लोकपाल जिनके पाद-पङ्कजकी रजको अपने श्रेष्ठ मुकुटोंपर धारण करते हैं, ब्रह्मा, शिव, मैं और स्वयं उनकी स्वरूपभूता लक्ष्मीदेवी जिनमेंसे कोई उनका अंश है और कोई उनके अंशका अंश है—हम सब उनकी चरण-रजको मस्तकपर निरन्तर धारण करते हैं—ऐसे उन श्रीकृष्णके लिए भला उस साधारण-से राजसिंहासनका क्या महत्त्व है ? ॥ ३७ ॥

भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल।

उपानहः किल वयं स्वयन्तु कुरवः शिरः॥ ३८॥

अरे! बेचारे यादव कौरवोंके द्वारा दिये गये छोटे-से भू-भागके राजत्वका भोग कर रहे हैं! वाह! हम तो पैरकी जूती हैं और कौरव स्वयं मस्तक हैं॥ ३८॥

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम्।

असंबद्धा गिरो रुक्षाः कः सहेतानुशासिता॥ ३९॥

अहो! ये लोग धन-ऐश्वर्यसे उन्मत्त, तथाकथित अधिकारोंसे मदमत्त और बड़े गर्वीले हो रहे हैं। इनकी एक-एक बात कितनी कर्कश और अनर्थक (बेसिर-पैरकी) है? मेरे जैसा पुरुष—जो स्वयं इन्हें दण्ड देकर उनपर शासन कर सकता है—वह भला इनकी व्यर्थ बातोंको कैसे सहन कर सकता है?॥ ३९॥

अद्य निष्कौरवां पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः।

गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम्॥ ४०॥

अतएव “आज मैं सारी पृथ्वीको कौरवोंसे रहित कर दूँगा”—यह सब कहते-कहते बलराम अतिशय क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपना सुनन्द हल उठा लिया और इस प्रकार उपक्रम करने लगे, मानो तीनों लोकोंको दहन कर देना चाहते हों॥ ४०॥

लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम्।

विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः॥ ४१॥

क्रुद्ध बलदेवने दक्षिण दिशाकी प्राचीरके मूलमें हलकी नोकसे बार-बार प्रहार करके हस्तिनापुरको उखाड़ लिया और साम्बके अतिरिक्त सम्पूर्ण नगरको ही पृथ्वीसे अलग करके गङ्गाजीमें डुबानेकी इच्छा की। अतः वे उसे हलके अग्रभागसे जलकी ओर खींचने लगे (इसी बीच गङ्गाको आदेश प्रदान किया कि साम्बको छोड़कर सम्पूर्ण नगरको डुबो दे)॥ ४१॥

जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत्।
 आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसम्भ्रमाः ॥ ४२ ॥
 तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः।
 सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥

बलदेवके हलकी नौकसे खिंचा हुआ हस्तिनापुर ऐसे घूर्णित होने लगा, मानो समुद्रमें नौका डगमगा रही हो। हस्तिनापुरको गङ्गामें डूबते देखकर कौरव भयभीत हो उठे। तब वे जीवनकी रक्षाकी इच्छासे हाथ जोड़कर लक्ष्मणा एवं साम्बको आगे करके सर्वशक्तिमान् प्रभु बलरामके शरणापन्न हो गये ॥ ४२-४३ ॥

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते।
 मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥

और कहने लगे—हे सम्पूर्ण जगत्के आश्रय राम! हे बलराम! हम आपके प्रभावके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। हम तत्त्व-ज्ञानसे रहित मूढ़ और अज्ञानी हैं। अतः आप हमारा अपराध क्षमा कर दीजिये ॥ ४४ ॥

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः।
 लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥ ४५ ॥

हे प्रभो! आप स्वयं निराधार हैं, आपका कोई कारण या आधार नहीं है। आप स्वयं अकेले ही सृष्टि, स्थिति एवं संहार कार्योंके कारणरूपमें विराजमान रहते हैं। हे लीलापरायण स्वरूप! तत्त्वज्ञानीजन तीनों भुवनोंका आपके क्रीड़ा-पदार्थके (खिलौनेके) रूपमें वर्णन करते हैं ॥ ४५ ॥

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया
 भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन्।
 अन्ते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः
 शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥

हे सहस्र-मस्तक अनन्त! आप इस भूमण्डलको खेल-ही-खेलमें अपने मस्तकपर धारण करते हैं, प्रलयकाल आनेपर समस्त विश्वका संहार करके सारे ब्रह्माण्डको अपनी देहमें लीन कर लेते हैं और अद्वितीयरूपसे (अर्थात् अकेले ही) शेष-शय्यापर शयन करते हैं (प्रलयकालमें आपके अतिरिक्त और कोई शयन नहीं करता) ॥ ४६ ॥

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषात्र च मत्सरात्।

बिभ्रतो भगवन् सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥

हे भगवन्! आप सत्त्वगुण धारण करते हैं। यह जो आपमें क्रोध उत्पन्न हुआ है, वह समस्त प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिए और वास्तविकरूपसे जगत्की स्थिति एवं पालन करनेके लिए ही हुआ है। हे प्रभो! विद्वेष एवं मात्सर्यके कारण आपमें क्रोधकी सम्भावना कदापि नहीं है ॥ ४७ ॥

नमस्ते सर्वभूतात्मन् सर्वशक्तिधराव्यय।

विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥

हे सर्वभूतान्तर्यामिन्! हे सर्वशक्तिधर! हे ब्रह्माण्डके अव्यय (अक्षरस्वरूप) स्रष्टा! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप समस्त कारणोंके कारण हैं। आप ही हमें जीवित रख सकते हैं। आपको हमारा नमस्कार है। हम आज आपके शरणागत हैं ॥ ४८ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः।

प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! कौरवोंका नगर हस्तिनापुर डगमगा रहा था, जिससे कौरव भयार्त हो गये थे। वे बलदेवके शरणागत होकर उनका अनुग्रह प्राप्त करनेके लिए प्रार्थना-स्तुति

करने लगे। तब बलदेव प्रसन्न हो गये और उन्हें अभय प्रदान करते हुए कहा—तुमलोग डरो मत ॥ ४९ ॥

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान् षष्टिहायनान्।

ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥ ५० ॥

रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम्।

दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥

दुर्योधनका अपनी पुत्री लक्ष्मणाके प्रति बड़ा वात्सल्य था। उसने उपहारके रूपमें साठ-साठ वर्षके बारह सौ तरुण हाथी, दस सहस्र घोड़े, सूर्यके समान चमकते हुए छह सहस्र सुवर्णमय रथ और कण्ठोंमें रत्नजड़ित हारोंसे विभूषित एक सहस्र दासियाँ दीं ॥ ५०-५१ ॥

प्रतिगृह्य तु तत् सर्वं भगवान् सात्वतर्षभः।

ससुतः सस्नुषः प्रायात् सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥

यदुवंश-शिरोमणि भगवान् बलरामने समस्त उपहार-सामग्रियोंको स्वीकार कर लिया और कौरव-बान्धवोंके द्वारा अभिवन्दित होकर पुत्र साम्ब एवं पुत्र-वधू लक्ष्मणाको साथ लेकर द्वारकाके लिए चल दिये ॥ ५२ ॥

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः

समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः।

शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां

मध्ये सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥

भगवान् हलायुधने द्वारकामें प्रवेश किया और अपने बान्धवोंसे मिले। इन बान्धवोंके हृदयमें बलरामके प्रति अपार अनुराग था। इसके बाद उन्होंने सभाभवनमें विराजित श्रेष्ठ यादवोंको कौरवोंके साथ घटित समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ५३ ॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत् सूचयद्रामविक्रमम्।

समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनुदृश्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे
 हास्तिनपुरकर्षणरूप-श्रीसङ्कर्षणविजयो
 नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

हे राजन्! आज भी हस्तिनापुर दक्षिण भागमें ऊपर उठा हुआ
 और गङ्गाजीकी ओर कुछ झुका हुआ देखा जाता है। यह आज
 भी भगवान् बलरामके पराक्रमको सूचित कर रहा है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अड़सठवें अध्यायका
 श्लोकानुवाद समाप्त।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

देवर्षि नारदजी द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी गृहचर्या देखना

श्रीशुक उवाच—

नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहञ्च योषिताम्।
कृष्णेनैकेन बद्धीनां तद्विद्वक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥
चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक्।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥
इत्युत्सुको द्वारवर्ती देवर्षिर्द्रष्टुमागमत्।
पुष्पितोपवनाराम द्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥
उत्फुल्लेन्दीवराम्भोज-कह्लारकुमुदोत्पलैः ।
छुरितेषु सरःसूच्यैः कूजितां हंस-सारसैः ॥ ४ ॥
प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः।
महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥

विभक्तस्थपापथचत्तरापणैः
शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः।
संसिक्तमार्गाङ्गणवीथिदेहलीं
पतत्पताकध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! जब देवर्षि नारदने सुना कि श्रीकृष्णने नरकासुरका वध करके एक ही समयमें अकेले ही अलग-अलग सोलह हजार भवनोंमें सोलह हजार राजकुमारियोंके साथ विवाह किया है, तो उन्हें यह बात अतिशय विचित्र लगी। वे कौतूहलवश उस अद्भुत लीलाको देखनेकी इच्छासे द्वारका पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि द्वारकापुरीमें उपवन एवं उद्यान मनोहर पुष्पों एवं घने वृक्षोंसे पुष्पित-पल्लवित हो रहे हैं। पक्षियोंका कलरव एवं भ्रमरोंका गुञ्जार ध्वनित हो रहा है।

सरोवरमें खिले हुए इन्दीवर, पद्म, कहार, कुमुद, उत्पल इत्यादि विविध नवजात कमलोंसे परिपूर्ण दीर्घिकाओंमें हंस एवं सारस उच्च स्वरसे कूजन कर रहे हैं। वहाँ स्फटिक एवं चाँदीके बने हुए नौ लाख राजभवन हैं, जो महामरकत मणियोंकी प्रभासे जाज्वल्यमान हो रहे हैं। उसमें स्वर्ण एवं रत्नोंसे जड़ित राजचिह्न विराजमान हैं, जो द्वारका नगरीकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। उसमें राजमार्ग, क्षुद्रपथ (छोटी-छोटी गलियाँ), चौराहे एवं बाजार यथायथरूपसे व्यवस्थित हैं। इस अद्भुत नगरीमें निर्मित सभागृह और देवालय उसके सौन्दर्यको और भी निखार रहे हैं। राजमार्गों, चौराहों, गलियों और भवनोंके द्वारोंपर और उनके अग्रभागोंपर भलीभाँति जलका छिड़काव किया गया है। फहराती हुई पताकाओं और ध्वजाओंसे सूर्यके तापका निवारण हो रहा है॥ १-६॥

तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चिवतं सर्वधिष्ण्यपैः।

हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कात्स्न्येन दर्शितम्॥ ७॥

तत्र षोडशभिः सद्यसहस्रैः समलङ्कृतम्।

विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत्॥ ८॥

महर्षि नारदने देखा कि उस द्वारका नगरीमें एक बहुत ही सुन्दर अन्तःपुर था। उस अन्तःपुरमें विश्वकर्माका समस्त शिल्प-नैपुण्य एवं विचित्र कौशल (कारीगरी) प्रदर्शित हो रहे थे। समस्त लोकपाल इस अन्तःपुरकी वन्दना कर रहे थे। देवर्षि नारदने यहाँ प्रवेश किया। इसमें सोलह हजार भवन सुशोभित हो रहे थे, जिनमें श्रीकृष्णकी सोलह हजार महारानियाँ रहती थीं। इन्हीं भवनोंमेंसे एक भवन जो अति विशाल एवं श्रीमत्से सम्पन्न था, नारदने उसमें प्रवेश किया॥ ७-८॥

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः।

इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा॥ ९॥

वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः।

दान्तैरासनपर्यङ्गैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥ १०॥

दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलङ्कृतम् ।

पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीष-सुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्त-

ध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ।

नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षै-

निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्ध्य उन्नदन्तः ॥ १२ ॥

उस भवनमें मूँगेके बने हुए खम्भे थे, जिनपर मणियाँ जड़ी हुई थीं, वैदूर्यके मणिमय उत्तम छज्जे एवं इन्द्रनीलमणियोंसे बनी दीवारें थीं। फर्श भी नील-मणियोंसे बने हुए थे, जिनकी प्रभा कभी धूमिल नहीं होती थी, नित्य दीप्त रहती थी। विश्वकर्माके द्वारा प्रतिभापूर्वक एवं अनुपम कारीगरीसे बनाये गये मोतियोंकी लड़ियोंसे युक्त चँदोवे, उत्तम मणियोंसे जड़ित हाथी-दाँतके बने हुए आसन और अभिराम पलङ्ग उस महलकी शोभाको और भी बढ़ा रहे थे। सुन्दर वस्त्रों और अलङ्कारोंसे सुशोभित सहस्रों दासियोंने अपने गलोंमें सोनेके हार पहन रखे थे, पुरुष-सेवकोंने भी अङ्गरखे-पगड़ी सुन्दर-सुन्दर उत्तरीय वस्त्र एवं मणियोंके बने हुए कुण्डल धारण कर रखे थे। रत्नोंसे जड़ित दीपकोंकी प्रभासे उस महलका अन्धकार दूर हो रहा था। इस भवनके मणिमय विचित्र छज्जोंपर मोर विराजित थे, जो झरोखोंसे निकलते हुए सुगन्धित अगरु धूपके धूँँको देखकर बादलोंके भ्रमसे के-का ध्वनि करते हुए नाच रहे थे ॥ ९-१२ ॥

तस्मिन् समानगुणरूपवयःसुवेष-

दासीसहस्रयुतयानुसवं गृहिण्या ।

विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्म-

दण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥ १३ ॥

देवर्षि श्रीनारदने उस राजप्रासादमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये। उनकी पटरानी रुक्मिणी देवी स्वयं ही स्वर्ण-दण्डको धारण किये हुए चँवर डुलाते हुए भगवान्की सेवा कर रही थीं।

यद्यपि वहाँ रुक्मिणी देवीके ही समान ही रूप, गुण, आयु एवं सुन्दर वेषभूषासे सुसज्जित सोलह हजार दासियाँ हर समय रहा करती थीं ॥ १३ ॥

तं सत्रिरीक्ष्य भगवान् सहस्रोत्थितः श्री-
पर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।
आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीट-
जुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥

भगवान् समस्त धार्मिकोंके शिरोमणि हैं। भगवान् श्रीकृष्णने जैसे ही मुनिश्रेष्ठ नारदको देखा, तो रुक्मिणी देवीके पलङ्गसे उठ खड़े हुए एवं मुकुटसे सुशोभित अपने मस्तकको झुकाकर और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्हें अपने आसनपर बिठलाया ॥ १४ ॥

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना-
विभ्रज्जगद्गुरुतमोऽपि सतां पतिर्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सन्त-महात्माओंके स्वामी एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके आराध्य हैं, तब भी उन भगवान्ने अपने हाथोंसे मुनिवर नारदके चरण पखारकर उस चरणामृतको अपने मस्तकपर धारण किया, जिनके चरणोंकी धोवनसे उत्पन्न गङ्गाजल समस्त संसारमें तीर्थरूपमें विराजमान है। जिन्होंने स्वयंको 'ब्रह्मण्यदेव' (ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव माननेवाले) इस नामकी सार्थकतासे परिचय कराया है, उनके लिए इस प्रकारका आचरण सङ्गत (युक्तियुक्त) ही है ॥ १५ ॥

सम्पूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो
नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ।
वाण्याभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं
प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ॥ १६ ॥

नरके सखा नारायण, सनातन ऋषिवर भगवान् श्रीकृष्णने देवर्षि नारदकी शास्त्रोक्त विधिसे पूजा की तथा अमृतसे अधिक मधुर स्वर और अल्प शब्दोंमें उनका स्वागत करते हुए उनसे इस प्रकार सम्भाषण करने लगे—हे प्रभो! आप तो समग्र ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हैं, हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं? ॥ १६ ॥

श्रीनारद उवाच—

नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे
मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम्।
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां
स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥

देवर्षि नारदने कहा—हे विभो! आप समस्त लोकोंके एकमात्र अधिपति हैं। आप सज्जनोंके प्रति सौहार्द भाव रखते हैं और दुष्टोंको दण्ड देते हैं। हे जगत्-वन्द्य! हे विश्वकीर्ति! हमलोग यह भलीभाँति जानते हैं कि जगत्की स्थिति और रक्षाके द्वारा समस्त जीवोंका परम कल्याण करनेके लिए ही आपने स्वेच्छासे अवतार लिया है ॥ १७ ॥

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं
ब्रह्मादिभिर्हीदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥

हे प्रभो! आपके श्रीपादपद्म भक्तोंके लिए अपवर्ग स्वरूप हैं। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज आपके इन श्रीचरणोंके दर्शन हुए हैं। मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। असीम ज्ञानसे युक्त ब्रह्मादि योगेश्वर अपने हृदयमें इन चरणकमलोंका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं। संसार-कूपमें गिरे हुए लोगोंको उद्धार करनेके लिए आपके श्रीचरण ही एकमात्र आश्रय हैं। मुझपर ऐसा अनुग्रह कीजिये, उन चरणकमलोंकी स्मृति सदा-सर्वदा बनी रहे और मैं उनका ध्यान करते हुए जगत्में विचरण करता रहूँ ॥ १८ ॥

ततोऽन्यदविशद्गोहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ।

योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥ १९ ॥

हे राजन्! देवर्षि नारदने ब्रह्मादि योगेश्वरोंके भी अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका रहस्य जाननेके लिए उस भवनसे निकलकर भगवान्की दूसरी पटरानीके महलमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥

दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ।

पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदायातो भवानिति ।

क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥

अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन् जन्मैतच्छोभनं कुरु ।

स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥ २२ ॥

उस भवनमें नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पटरानी एवं उद्धवके साथ चौसर खेल रहे हैं। उन्होंने जैसे ही नारदको देखा, वैसे ही खड़े होकर उनका अभिनन्दन किया। इसके बाद परम श्रद्धाके साथ विविध सामग्रियोंसे उनका पूजा-सत्कार किया और उनसे ऐसे बात करने लगे, जैसे कुछ भी जानते ही न हों। भगवान्ने कहा—“हे देव! आप कब पधारे? आप द्वारकामें किस कारणसे उपस्थित हुए हैं? आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं और हम हैं अपूर्णकाम। आपका कोई भी कार्य पूर्ण करना हमारे लिए सम्भव नहीं है, फिर भी आप किसी भी कार्यके लिए आदेश प्रदान करके हमारा जन्म सार्थक करें।” यह सब देख-सुनकर नारद विस्मित हो गये और चुपचाप वहाँसे उठकर दूसरे भवनमें चले गये ॥ २०-२२ ॥

तत्राप्यचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुतान् शिशून् ।

ततोऽन्यस्मिन् गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥

अब उस भवनमें नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण वात्सल्यमय पिताके समान शिशु पुत्रोंको लाड़-प्यार कर रहे हैं। वहाँसे वे

जब एक और भवनमें गये, तो देखा कि श्रीकृष्ण स्नानकी तैयारी कर रहे हैं।

इस स्थलपर नारदने एक ही कृष्ण-विग्रहका बहु-प्रकाश अभिमान-भेद, कार्य-भेद सहित देखा, देवकी, वसुदेव एवं उद्धवादि विग्रहोंका भी बहु-प्रकाश देखा, सोलह हजार गृहोंमें मनकी गतिसे जाते हुए साठ घड़ीमें पृथक्-पृथक् काल-भेद भी देखा—इसीको 'प्राभव प्रकाश' कहा जाता है, जो भगवान् श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिके प्रकाशसे सम्भव होता है। नारदजीके आश्चर्यका विषय यही है कि क्रियाएँ भिन्न-भिन्न सम्पन्न हो रही हैं, परन्तु शरीर पृथक्-पृथक् नहीं हैं। एक ही विग्रहसे एक ही समयमें विविध काल-भेद एवं क्रिया-भेद प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २३ ॥

जुहुन्तञ्च वितानाग्नीन् यजन्तं पञ्चभिर्मखैः।

भोजयन्तं द्विजान् क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर देवर्षिने अन्य किसी भवनमें देखा कि श्रीकृष्ण यज्ञ-कुण्डमें होम कर रहे हैं, कहीं पञ्चमहायज्ञोंसे देवता आदिकी आराधनाकर रहे हैं (पञ्चसूना क्रिया कर रहे हैं), तो कहीं ब्राह्मणोंको भोजन करा रहे हैं, तो कहीं मध्याह्नकालमें यज्ञका अवशेष स्वयं आरोग्य रहे हैं (इस प्रकार श्रीकृष्ण पाठ, होम, अतिथि-सेवा, तर्पण एवं प्राणियोंको आहार-दान—इन पञ्चमहायज्ञका याजन करते थे) ॥ २४ ॥

क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम्।

एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥

किसी भवनमें मध्याह्न-कालमें भगवान् श्रीकृष्ण सन्ध्यामें लीन हो रहे हैं, तो कहीं मौन भावसे गायत्रीका जप कर रहे हैं, तो किसी भवनमें 'तलवार-सञ्चालन-विद्या-अभ्यास-स्थानपर' ढाल-तलवार लेकर पैतरे बदलनेका अभ्यास कर रहे हैं ॥ २५ ॥

अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम्।

क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानञ्च वन्दिभिः ॥ २६ ॥

कहीं देखा कि भगवान् गदाग्रज श्रीकृष्ण घोड़े, हाथी एवं रथोंपर सवार होकर विचरण कर रहे हैं और कहीं किसी महलमें पलङ्गपर सो रहे हैं और बन्दीजन उनकी महिमा-सूचक स्तुति कर रहे हैं ॥ २६ ॥

मन्त्रयन्तञ्च कस्मिंश्चित् मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः।

जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याबलावृतम् ॥ २७ ॥

किसी भवनमें देवर्षि नारदने देखा कि वे उद्धवादि राजमन्त्रियोंके साथ परामर्श कर रहे हैं, तो कहीं वे उत्तम वाराङ्गनाओं और अन्यान्य तरुणियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे हैं ॥ २७ ॥

कुत्रचिद्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलङ्कृताः।

इतिहास-पुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥ २८ ॥

अन्य भवनमें नारदने देखा कि वे उत्तम ब्राह्मणोंको वस्त्र एवं अलङ्कारोंसे विभूषित गायें दान कर रहे हैं तो कहीं मङ्गलमय इतिहास एवं पुराण-पाठका श्रवण कर रहे हैं (स्मृति-शास्त्रमें कहा है अपराहमें छठी एवं सातवीं घटिकामें इतिहास एवं पुराणोंका श्रवण करे। गायोंका दान श्रीकृष्ण पूर्वाहमें करते थे) ॥ २८ ॥

हसन्तं हास्यकथया कदाचित् प्रियया गृहे।

क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥

अन्य राजप्रासादमें वे अपनी प्रियाके साथ रात्रिके प्रथम प्रहारमें हास्य-विनोदके प्रसङ्गोंमें हँस रहे हैं, तो दिवस-कालमें किसी महलमें धार्मिक अनुष्ठानोंमें तो कहीं अर्थ-वृद्धिकी चर्चामें व्यस्त हैं और कहीं रात्रिकालमें शास्त्रोक्त रीतिसे गृहस्थ जीवनका उपभोग कर रहे हैं ॥ २९ ॥

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम्।

शुश्रूषन्तं गुरुन् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥

अन्य किसी महलमें देखा कि श्रीकृष्ण प्रकृतिसे अतीत अद्वितीय परमात्माका (स्वयंका) ध्यान कर रहे हैं, तो किसी भवनमें गुरुजनोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करके पूजा कर रहे हैं और उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं ॥ ३० ॥

कुर्व्वन्तं विग्रहं कैश्चित् सन्धिज्वान्यत्र केशवम् ।

कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥

किसी भवनमें देखा कि वे कुछ लोगोंके साथ युद्धकी बातें कर रहे हैं, तो दूसरे एक स्थानपर किसीके साथ सन्धिके वार्तालापमें व्यस्त हैं। कहीं वे बलदेवके साथ साधुपुरुषोंके कल्याणकी चिन्तामें मग्न हैं ॥ ३१ ॥

पुत्राणां दुहितृणाञ्च काले विध्युपयापनम् ।

दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥

किसी भवनमें देखा कि उचित समयपर रूप, गुणादिसे सम्पन्न पुत्रोंके लिए अनुरूप कन्याओं और कन्याओंका उनके योग्य वरोंके साथ बड़ी धूमधामसे विधिवत् वैवाहिक कार्य सम्पन्न कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां

महोत्सवान् ।

वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥

किसी भवनमें देखा कि श्रीकृष्ण अपनी पुत्री एवं जामाताको विदा कर रहे हैं, कहीं उन्हें बुलानेकी व्यवस्था कर रहे हैं और कहीं उनके स्वागत समारोहकी तैयारीमें लगे हुए हैं। नगरके सभी लोग उनके विशद महोत्सवोंको देखकर विस्मित हो रहे हैं ॥ ३३ ॥

यजन्तं सकलान् देवान् क्वापि क्रतुभिरूर्ज्जितैः ।

पूतयन्तं क्वचिद्धर्मं कूपाराम-मठादिभिः ॥ ३४ ॥

अन्य भवनमें देखा कि चैत्रमासमें और कहीं चातुर्मासमें वे समृद्धिशाली यज्ञोंका आयोजन करके देवताओंका यजन-पूजन

कर रहे हैं, तो कहीं वे जनकल्याणार्थ कूप, बगीचे और मठोंकी प्रतिष्ठारूप इष्टापूर्त धार्मिक कार्योंमें लगे हुए हैं ॥ ३४ ॥

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम्।

घ्नन्तं तत्र पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुङ्गवैः ॥ ३५ ॥

किसी स्थानपर देखा कि वे यदुवीरोंसे घिरकर सिन्धुदेशीय घोड़ेपर सवार होकर यज्ञके लिए पवित्र मेध्य पशुओंका ही शिकार कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

अव्यक्तलिङ्गं प्रकृतिष्वन्तःपुरगृहादिषु।

क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥ ३६ ॥

कहीं पर देखा कि योगेश्वर श्रीकृष्ण प्रजाजनोका मनोभाव (अभिप्राय) जाननेके लिए मन्त्रियोंके गृहोंमें एवं अपने अन्तःपुरमें पटरानियोंके महलोंमें छद्मवेष धारण करके विचरण कर रहे हैं (वे सर्वज्ञ एवं योगेश्वर होनेपर भी प्रेममयी शक्तिके द्वारा सर्वज्ञ-शक्तिका आच्छादन कर लेते हैं) ॥ ३६ ॥

अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव।

योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥ ३७ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार मनुष्य-विग्रहका आश्रय लेकर मनुष्यकी-सी लीला करनेवाले हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका वैभव-विलास देखकर नारद हँसते हुए उनसे कहने लगे ॥ ३७ ॥

विदाम योगमायास्ते दुर्दृशा अपि मायिनाम्।

योगेश्वरात्मन् निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥

देवर्षि नारदने कहा—हे योगेश्वर! हे आत्मदेव! आपकी योगमायाका रहस्य ब्रह्मा, शिवादि बड़े-बड़े योगेश्वरों एवं मायामुग्ध जीवोंके लिए अगम्य है। हे परमात्मन्! आपके पादपद्मोंकी सेवा करनेसे मेरे हृदयमें आपकी योगमायाका स्वरूप प्रकट हो रहा है—ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है ॥ ३८ ॥

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान्।

पर्यटामि तवोद्गायन् लीला भुवनपावनीः ॥ ३९ ॥

हे देवताओंके भी आराध्यदेव भगवान्! चौदहों भुवन आपके यशसे परिपूर्ण हो रहे हैं। मुझे अनुमति दीजिये कि मैं आपकी त्रिलोकपावनी लीलाओंका उच्च स्वरसे गान करते हुए सम्पूर्ण भुवनमण्डलमें पर्यटन करूँ ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता।

तच्छिक्षयन् लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे नारदजी! मैं ही धर्मका वक्ता, कर्ता और उसके अनुष्ठान करनेवालोंका समर्थक भी हूँ। मैं अपने आचरण द्वारा लोगोंको शिक्षा देनेके लिए ही पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ हूँ। प्रिय पुत्र! तुम मेरा ऐश्वर्य देखकर मोहित मत होना ॥ ४० ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम्।

तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! इस प्रकार देवर्षि नारदने एक ही श्रीकृष्णको सभी भवनोंमें पूर्वोक्त क्रमसे अलग-अलग रूपोंमें देखा। द्वारकामें भगवान् गृहस्थोंको पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ धर्मोंका आचरण कर रहे थे ॥ ४१ ॥

कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम्।

मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥ ४२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी शक्ति अनन्त है। नारदजी उनकी योगमायाके वैभवको पुनः-पुनः देखकर विस्मित एवं कौतूहलसे परिपूर्ण हो रहे थे। योगमायाकी शक्ति अघटन-घटन-पटीयसी है। महिषियाँ यह नहीं जानती थीं ठीक इसी समय कृष्ण दूसरे भवनमें भी विद्यमान हैं ॥ ४२ ॥

इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना।

सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन् ययौ ॥ ४३ ॥

द्वारकाके महलोंमें भगवान् श्रीकृष्ण एक साधारण गृहस्थके समान इस प्रकार आचरण करते थे, मानो उनकी धर्म, अर्थ एवं काम आदि विषयोंमें बहुत श्रद्धा हो। भगवान् ने देवर्षिकी यथाविधि पूजा की और वे परम सन्तुष्ट होकर भगवान् का ध्यान करते हुए वहाँसे चले गये (कृष्ण द्वारा नारदकी पूजा ब्राह्मण-पूजन एवं आतिथ्य-परम्परारूप लोकाचरणके लिए है) ॥ ४३ ॥

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो

नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः।

रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानां

सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥

हे वत्स! भगवान् नारायणने सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिए अपनी कृपा नामक शक्तिको स्वीकार किया और मनुष्य-पदवीका अनुसरण किया। वे विविध मूर्ति धारणकर सोलह हजारसे भी अधिक सुन्दर पत्नियोंके सलज्ज, अनुरागपूर्ण चितवन एवं स्निग्ध मुसकान आदि सेवाओंसे प्रसन्न होकर उनके साथ विहार किया करते थे ॥ ४४ ॥

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः

कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार।

यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा

भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीकृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नाम
एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

हे वत्स! भगवान् श्रीकृष्ण विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं संहारके कारण हैं। उन्होंने इस मनुष्य लोकमें जो-जो लीलाएँ की हैं, वे

किसी औरके लिए असाध्य हैं। जो इन समस्त लीलाओंका गान, श्रवण अथवा अनुमोदन करता है, उसके हृदयमें निश्चय ही मोक्षफल-प्रदायक भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें प्रेममयी भक्तिका उदय होता है (इस प्रकार श्रीकृष्ण-लीला केवल संसार-मुक्तिके लिए ही नहीं, अपितु प्रेमभक्ति प्रदान करनेके लिए होती है। श्रीकृष्ण लीला-कथामें प्रवृत्त होनेके आरम्भमें ही संसार-बन्धनका ध्वंस हो जाता है) ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उनहत्तरवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी दैनन्दिन नित्यचर्या और जरासन्धके कैदी
राजाओंके दूतका आना

श्रीशुक उवाच—

अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजतोऽशपन्।

गृहीतकण्ठयः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! जैसे ही प्रभात होने लगता, वैसे ही भगवान् माधवके कण्ठसे आलिङ्गित उनकी पत्नियाँ विरहकी आशङ्कासे विकल हो जातीं और रात्रिके समाप्त होनेपर बाँग देनेवाले मुर्गोंको कोसने लगतीं। हे कुक्कुटो! तुम शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जाओ ॥ १ ॥

वयांस्यरोरुवन् कृष्णं बोधयन्तीव वन्दिनः।

गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥

उस समय पारिजात-उद्यानकी सुगन्धसे सुवासित भीनी-भीनी वायु प्रवाहित होने लगती और भ्रमर गुञ्जार करना आरम्भ कर देते। उनकी गुनगुनाहटको सुनकर पक्षी नींदसे जाग जाते और उच्च स्वरसे चहचहाने लगते। ऐसा लगता था मानो वे अपने कलरव-कूजनके छलसे बन्दीजनोंकी भाँति श्रीकृष्णको जगानेके लिए जागरण-गान प्रस्तुत कर रहे हों ॥ २ ॥

मुहूर्तं तन्तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम्।

परिरम्भणविश्लेषात् प्रियबाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥

प्रियतम श्रीकृष्णकी भुजाओंमें आबद्ध रुक्मिणी एवं अन्यान्य महिषियाँ मनोरम एवं शुभ ब्राह्ममुहूर्त बेलाको प्रियतमके आलिङ्गन-विच्छेदका काल जानकर उसे सहन नहीं कर पाती थीं ॥ ३ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय वाय्युपस्पृश्य माधवः।

दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥४॥

एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं

स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम्।

ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः

स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिवृतिम् ॥५॥

भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही शय्यासे उठ जाते और आचमन करके पवित्र चित्तसे अपने अखण्ड (सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदसे रहित) निरुपाधिक, नित्य (कालकी सीमासे परे सदा-सर्वदा एक रस रहनेवाले) अविद्याके सम्पर्कसे शून्य (समस्त कल्मषको दूर करनेवाले), स्वप्रकाश (किसी दूसरेके द्वारा प्रकाशित नहीं) चिद्घन स्वरूपमें स्थित सृष्टि, स्थिति और संहारके मूल कारण, अपनी शक्ति द्वारा समस्त प्राणियोंको सभी अवस्थाओंमें सुख देनेवाले, आनन्दमय-स्वरूप, तमोगुणसे अतीत, ब्रह्मसंज्ञक-निजस्वरूपभूत-परमात्म-तत्त्वका ध्यान करने लगते॥४-५॥

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि

क्रियाकलापं परिधाय वाससी।

चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो

हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः॥६॥

तत्पश्चात् साधुजनोंके शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण निर्मल एवं पवित्र जलमें स्नान करते और वस्त्र-युगल अर्थात् शुद्ध धोती तथा दुपट्टा ओढ़कर विधिपूर्वक सन्ध्या-वन्दनादि क्रिया-कलाप नियमितरूपसे सम्पन्न करते। इसके बाद शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अग्निमें आहुति प्रदान करके मौन होकर गायत्रीका जप करते॥६॥

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वात्मनः कलाः।

देवानृषीन् पितृन् वृद्धान् विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान्॥७॥

धेनूनां रुक्मशृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम्।

पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम्॥८॥

ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह।

अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्धवम् बद्धवम् दिने दिने ॥ ९ ॥

सूर्यदेवके उदित होनेपर विवेकीगणोंमें अग्रगण्य भगवान् श्रीकृष्ण सूर्यपूजा करते और अपने कलारूप (अंशभूत) देव, ऋषि, पितरों एवं वृद्धोंके लिए तर्पण करते। इसके बाद आत्म-समृद्ध (परम मनस्वी) भगवान् ब्राह्मणों एवं कुलके बड़े-बूढ़ोंकी विधिवत् पूजा करते। श्रीकृष्ण बड़ी सावधानीसे ब्राह्मणोंको वस्त्रालङ्कारोंसे विभूषित करके उन्हें रेशमी वस्त्र, मृगचर्म एवं तिलके साथ प्रतिदिन तेरह हजार चौरासी दुधारु एवं प्रथम प्रसूता अर्थात् पहले-पहले ब्याही हुई बछड़ोंवाली सीधी-शान्त गायें दान करते। इन गायोंको सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित किया जाता, उनके सींग स्वर्णसे और खुरोंके अग्रभाग चाँदीसे खचित होते ॥ ७-९ ॥

गोविप्रदेवतावृद्ध गुरुन् भूतानि सर्वशः।

नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥

तदनन्तर वे अपनी विभूति-स्वरूप मङ्गल-पदार्थों अर्थात् कपिलादि गाय, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध एवं गुरुजनोंको तथा अन्यान्य प्राणियोंको नमस्कार करके माङ्गलिक द्रव्योंका स्पर्श करते ॥ १० ॥

आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम्।

वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्त्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्य लोकके विभूषण-स्वरूप हैं, तथापि वे अपनी सहज-सुन्दर देहको पीताम्बरादि दिव्य वस्त्रों, कौस्तुभमणि आदि अलङ्कारों, दिव्य मालाओं और चन्दनादि अङ्गरागोंसे सुशोभित करते ॥ ११ ॥

अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्श गोवृषद्विजदेवताः।

कामांश्च सर्व्ववर्णानां पौरन्तःपुरचारिणाम्।

प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥ १२ ॥

इसके बाद श्रीकृष्ण घी और दर्पणमें अपना मुखारविन्द देखते, तत्पश्चात् गाय, बैल, ब्राह्मण एवं देव प्रतिमाओंका दर्शन करते। तब पुरवासी, अन्तःपुरवासी और ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें उत्पन्न सभी लोगोंको मनचाही वस्तुएँ प्रदान करते और ग्रामीण प्रजाओंकी भी कामनाओंकी पूर्ति करके उन्हें प्रसन्न करते। इस प्रकार सबको प्रसन्न देखकर स्वयं भी आनन्दित होते ॥ १२ ॥

संविभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः।

सुहृदः प्रकृतीदारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥ १३ ॥

वे पुष्पमाला, ताम्बूल, चन्दन, अङ्गराग आदि वस्तुओंको पहले ब्राह्मणों, बन्धु-बान्धवों, मन्त्रियों, सन्तानों एवं पत्नियोंको प्रदान करते, बादमें जो शेष रहता, उसे स्वयं ग्रहण कर लेते ॥ १३ ॥

तावत् सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम्।

सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥

इसी बीच उनका दारुक नामका सारथि सुग्रीव आदि अश्वोंसे जुते हुए अति अद्भुत रथको ले आता और प्रणाम करके उनके सम्मुख खड़ा हो जाता ॥ १४ ॥

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत्।

सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वोद्दिमिव भास्करः ॥ १५ ॥

तब भगवान् अपने हाथसे सारथिका हाथ पकड़कर सात्यकि एवं उद्धवके साथ रथपर इस प्रकार सवार होते, मानो सूर्यदेव उदयाचलपर आरूढ़ हो रहे हों ॥ १५ ॥

ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः।

कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन् मनः ॥ १६ ॥

अन्तःपुरकी नारियाँ सलज्ज भाव एवं प्रेममयी चितवनसे उन्हें निहारती रहतीं और उन्हें बड़े कष्टसे विदा करतीं। श्रीकृष्ण मधुर मुसकानसे उनका चित्त चुराते हुए महलसे बाहर निकल जाते ॥ १६ ॥

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ।

प्राविशद्यत्रिविष्टानां न सन्त्यङ्ग षडूर्मयः ॥ १७ ॥

हे वत्स ! तदनन्तर श्रीकृष्ण यादवोंसे परिवेष्टित होकर सुधर्मा नामकी सभामें प्रवेश करते। इस सभामें जो भी प्रवेश करता था, उसे भूख-प्यास, शोक-मोह, बुढ़ापा और मृत्यु—इस प्रकारसे दैहिक जीवनके छहों कष्टोंकी अनुभूति नहीं होती थी ॥ १७ ॥

तत्रोपविष्टः परमासने विभु-

र्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ।

वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो,

यथोदुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥

उस सुधर्मा-सभामें सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण जब नरश्रेष्ठ यादवोंसे घिरकर उत्तम सिंहासनपर विराजमान होते, तब अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको उसी प्रकार उज्ज्वल कर देते, जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रोंसे घिरकर अपनी ज्योत्स्ना द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आलोकित करते हुए आकाशमें सुशोभित होते हैं। दानवोंके विश्वकर्मा मय दानवने खाण्डव वनको जला देनेके बदलेमें सुधर्मा-सभाको श्रीकृष्णको प्रदान किया था ॥ १८ ॥

तत्रोपमन्त्रिणो राजन् नानाहास्यरसैर्विभुम् ।

उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ॥ १९ ॥

परीक्षित् ! उस समय सभामें विदूषक लोग विविध प्रकारके हास-परिहाससे, नटाचार्य अपने अभिनयसे और नर्तकियाँ अपने कलापूर्ण नृत्यसे उनकी सेवा करते ॥ १९ ॥

मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ।

ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिनः ॥ २० ॥

उस समय मृदङ्ग, वीणा, वेणु, करताल और शङ्ख-ध्वनिके साथ सूत, मागध एवं बन्दीगण नृत्य, गीत एवं स्तव किया करते ॥ २० ॥

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ।

पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञाञ्चाकथयन् कथाः ॥ २१ ॥

उस सभामें विराजमान ब्रह्मवादी ब्राह्मण उस समय वेदमन्त्रोंको सस्वर गाकर उनकी व्याख्या किया करते और कुछ वाणी-विदग्धगण प्राचीन पवित्रकीर्त्ति राजाओंके चरितोंको सुनाया करते ॥ २१ ॥

तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ।

विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ २२ ॥

हे राजन्! एक दिनकी बात है, द्वारकापुरीमें राजसभाके द्वारपर एक अपरिचित पुरुष आया। द्वारपालोंने यह समाचार भगवान् श्रीकृष्णको निवेदन किया और उनकी अनुमति प्राप्त करके उस पुरुषको सभाभवनमें प्रवेश कराया ॥ २२ ॥

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ।

राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥

नवागत पुरुषने परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इसके बाद जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओंके विषयमें बतलाया कि वे बड़े दुःखी हैं ॥ २३ ॥

ये च दिग्विजये तस्य सन्नतिं न ययुर्नृपाः ।

प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥

हे प्रभो! जब जरासन्ध दिग्विजयके लिए भ्रमण कर रहा था, तब इन राजाओंने कर-दानादिके द्वारा उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। अतः जरासन्धने इन बीस हजार राजाओंको बलपूर्वक गिरिव्रज नामक दुर्गमें कैद कर रखा था ॥ २४ ॥

राजान ऊचुः—

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयभञ्जन ।

वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥ २५ ॥

उस नवागत पुरुषने निवेदन किया कि उन राजाओंने कहा है—हे प्रभो! हे अप्रमेय-स्वरूप! हे शरणागत-भयहर! हे मन

और वाणीसे अगोचर सच्चिदानन्द-स्वरूप! हे श्रीकृष्ण! हे श्रीकृष्ण! हमारी विषयोंमें बड़ी आसक्ति है, हम जन्म-मृत्युरूप संसार-दावानलसे डरे हुए हैं! हम आपकी शरणमें हैं (इन आपकी भक्तिकी प्रार्थना न करके अपने ही दुःखसे परित्राण चाहते हैं) ॥ २५ ॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥

हे देव! प्रायः सभी जीव निषिद्ध एवं काम्यकर्मोंमें लगे हुए हैं। ये लोग पञ्चरात्र आदि शास्त्रोंमें आपके द्वारा वर्णित आपकी सेवारूप अपने मङ्गलकारी कार्योंसे विमुख एवं प्रमत्त (असावधान) रहते हैं। हे प्रभो! आप महाबलवान् हैं। आप कालस्वरूपसे इस लोकमें ऐसे मानवोंके दीर्घायु जीवनकी आशा-लताका तुरन्त ही उच्छेद कर डालते हैं। हम आपके उस कालरूपको नमस्कार करते हैं (आपका अर्चन एवं आपका भजन—यही मनुष्योंका वास्तव निज-धन है, आप ही संसार-दुःखके निवर्त्तक एवं प्रेम सुखभोग प्रदायक है। मनुष्य विकर्ममें अर्थात् स्त्री-पुत्रादि-वैषयिक-सुख-साधक कर्मोंमें निरत रहते हैं और वह सुख भी दुर्भागे जीवोंको प्राप्त नहीं होता) ॥ २६ ॥

लोके भवान् जगदिनः कलयावतीर्णः
सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः।
कश्चित्त्वदीयमति याति निदेशमीश
किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तत्र विद्मः ॥ २७ ॥

हे प्रभो! आप जगत्के अधीश्वर हैं। आप साधुओंकी रक्षा एवं दुर्जनोके निग्रहके लिए ही इस धराधाममें अपने अंश (बलराम) के साथ अवतीर्ण हुए हैं। तब आपके शासनका उल्लङ्घन करते हुए जरासन्ध आदि दुष्ट राजा हमें दुःख प्रदान

कर रहे हैं? अथवा हम अपने ही कर्मोंके कारण दुःख भोग रहे हैं? यह बात हमारी समझमें नहीं आती। आप कृपा करके हमें इस कष्टसे अवश्य ही मुक्त करें॥ २७॥

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश
शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः।
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं
क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥ २८ ॥

हे भगवन्! राज-सुख हमारा विषय-साध्य था, किन्तु अब वह स्वप्नके समान समाप्त हो गया है। भयके कारण निरन्तर व्याकुलता बनी रहती है। शरीर मृतकके समान हो जाता है और इसी शरीरसे केवल स्त्री-पुत्रादिकी विभिन्न चिन्ताओंरूपी भारको ढोते रहते हैं। आपकी मायासे मोहित होकर इस लोकमें हम दीन-हीन भावसे रहते हैं। निष्काम जनोंको जो सुख स्वतःसिद्ध प्राप्त होते हैं, उन्हें छोड़-छाड़कर हम मात्र कष्ट-ही-कष्ट भोग रहे हैं॥ २८॥

तन्नो भवान् प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो
बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात्।
यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको
विभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥ २९ ॥

हे देव! आपके चरणकमल शरणागत भक्तोंके सभी प्रकारके सन्ताप हरण करनेमें समर्थ हैं। अतः हे नाथ! आप मगधराज जरासन्धरूप कर्मबन्धनसे हमें छुटकारा दिलवाइये। इस जरासन्धका बल दस हजार उन्मत्त हाथियोंके बलके समान है। सिंह जिस प्रकार भेड़ोंको बाँधकर रखता है, उसी प्रकार जरासन्धने अकेले ही हम दस हजार राजाओंको बन्दी बना रखा है॥ २९॥

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र
भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम्।

जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो
युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥ ३० ॥

हे उद्यत सुदर्शनधारिन्! इस जरासन्धने आपके साथ अठारह बार युद्ध किया था, जिसमेंसे सत्रह बार वह पराजित हुआ और अन्तमें अठारहवीं बार इसने अनन्त वीर्यशाली मनुष्यों-जैसा आचरण करनेवाले आपको पराजित-सा मान लिया और तभी-से बड़ा घमण्डी हो गया है। हमें आपकी प्रजा (भक्त) मानकर हमारे ऊपर शोषण अत्याचार करता है। अतः हे अजित्! इस विषयमें आप जो ठीक समझें, वही करें ॥ ३० ॥

श्रीदूत उवाच—

इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकाङ्क्षिणः ।

प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥

दूतने कहा—जरासन्धके कैदी राजाओंने आपसे इस प्रकार प्रार्थना की है। वे आपके शरणागत हैं। आपके दर्शनकी उन्हें उत्कट अभिलाषा है। अतः आप उन आर्त राजाओंको दुःखसे मुक्ति दिलाइये ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच—

राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः ।

बिभ्रत् पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद् यथा रविः ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—राजदूत इन वचनोंको निवेदन कर ही रहा था कि परम तेजस्वी देवर्षि नारद वहाँ उपस्थित हुए। वे पिङ्गल-वर्णकी (सुनहरी) जटाओंको धारण किये हुए थे। उनकी दिव्य-कान्तिको देखकर ऐसा मालूम हो रहा था, मानो साक्षात् सूर्यदेव ही उदित हो रहे हों ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्व्वलोकेश्वरेश्वरः ।

ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥

ब्रह्मादि समस्त लोकपालोंके एकमात्र अधिपति भगवान् श्रीकृष्णने जैसे ही देवर्षि नारदके दर्शन किये, वैसे ही वे परम हर्षित होकर उठ खड़े हुए। उनके साथ उनके मन्त्री, सभासद और अनुचर भी खड़े हो गये। सभीने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ३३ ॥

सभाजयित्वा विधिवत् कृतासनपरिग्रहम्।

बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन् मुनिम् ॥ ३४ ॥

जब देवर्षि नारद संनिदर्शित आसनपर बैठ गये, तब भगवान्ने उनका विधिपूर्वक सत्कार किया। इसके बाद श्रीकृष्ण बड़ी श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रसन्न करते हुए सुमधुर वाणीसे कहने लगे ॥ ३४ ॥

अपि स्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम्।

ननु भूयान् भगवतो लोकान् पर्यटतो गुणः ॥ ३५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवर्षे! मैं तो मानता हूँ इस समय तीनों लोकोंमें आपका ही सर्वतोभावसे कुशल-मङ्गल है। आप समस्त लोकोंमें पर्यटन करते रहते हैं। इससे हमें बड़ा लाभ यह होता है कि घर बैठे आपके द्वारा उन सब लोकोंका वृत्तान्त पता चल जाता है ॥ ३५ ॥

न हि तेऽविदितं किञ्चिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु।

अथ पृच्छामहे युष्मान् पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥

हे मुनिवर! ईश्वर-रचित इस भुवनमण्डलमें कोई ऐसा विषय नहीं है, जिसे आप न जानते हों। मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि इस समय पाण्डव क्या कर रहे हैं? ॥ ३६ ॥

श्रीनारद उवाच—

दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया

माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः।

भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभि-

र्वहेरिवच्छत्ररुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥

देवर्षि नारदने कहा—हे सर्वव्यापक प्रभो! आप सम्पूर्ण विश्वके कर्त्ता हैं। जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार आप अपने प्रकाशको गुप्त रखकर अपनी अचिन्त्यशक्तिके द्वारा समस्त प्राणियोंमें विराजमान रहते हैं। आप परम मायावी हैं। मैंने बहुत बार आपकी दुर्लभ मायाके प्रभावको साक्षात् देखा है। अतः आप पाण्डवादिके विषयमें इस प्रकारसे प्रश्न कर रहे हैं, यह मेरे लिए आश्चर्यकी बात नहीं है॥ ३७॥

तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं

स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः।

यद्विद्यमानात्मतयावभासते

तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने॥ ३८॥

यह जगत् असत् होते हुए भी आपकी मायाके अचिन्त्य प्रभावसे सत्यके समान प्रतीत होता है। आप ही अपनी मायासे इस जगत्की कभी निर्माण-क्रिया एवं कभी पालन-प्रक्रिया तथा कभी संहार-क्रिया सम्पन्न करते हैं। हे अचिन्त्यपुरुष! आपका स्वरूप अति विलक्षण है, कोई भी आपकी लीलाको—कि आप कब क्या करना चाहते हैं, भलीभाँति नहीं जानता। मैं तो केवल आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ॥ ३८॥

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं

न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः।

लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं

प्राज्वालयेत् त्वा तमहं प्रपद्ये॥ ३९॥

हे भगवन्! जीव अनादिकालसे अनर्थोंके मूल एक शरीरसे दूसरे शरीरमें भटकते रहते हैं, परन्तु इस देह-बन्धनसे मुक्तिका उपाय नहीं जानते। आप उन जीवोंकी मुक्तिके लिए विविध लीलावतारोंके द्वारा अपने यशरूप दीपकको प्रज्वलित कर उनके मार्गको आलोकित करते हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ; मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ३९॥

अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडम्बनम्।

राज्ञः पैतृष्वस्त्रेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥

हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! आप सर्वज्ञ हैं। पाण्डवोंकी क्या अभिलाषा है, उसे आप पहलेसे ही जानते हैं। तो भी, मनुष्य लीलाका अनुकरण करनेवाले हे परम सत्य! मैं आपके आदेशका पालन करता हूँ और आपकी बुआ कुन्ती देवीके पुत्र एवं आपके प्रेमी भक्त राजा युधिष्ठिरका जो मनोवाञ्छित है, उसे आपको बतलाता हूँ ॥ ४० ॥

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः।

पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥

हे देव! राजा युधिष्ठिरकी एक छत्र साम्राज्यकी अभिलाषा है, इसलिए राजसूय नामक महायज्ञके अनुष्ठान द्वारा आपकी पूजा करना चाहते हैं। आप उसका अनुमोदन करनेकी कृपा करें ॥ ४१ ॥

तस्मिन् देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः।

दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥

हे देव! इस महायज्ञमें आपके दर्शनकी इच्छासे देवता इत्यादि दिव्यलोकवासी एवं बड़े-बड़े यशस्वी राजा एकत्रित हो रहे हैं ॥ ४२ ॥

श्रवणात् कीर्तनाद्भ्यानात् पूयन्तेऽन्तेवसायिनः।

तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिर्मर्शिनः ॥ ४३ ॥

हे ईश! आप स्वयं ब्रह्मघनमूर्तिमय हैं। आपका श्रवण, कीर्तन एवं ध्यान करनेसे चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं। तब जो आपका दर्शन अथवा स्पर्श करते हैं, उनके विषयमें क्या कहा जाय? ॥ ४३ ॥

यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां

भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम्।

मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो
गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥ ४४ ॥

हे भुवनमङ्गलकर! हे दिक्मण्डलके भूषणस्वरूप! आपका यश स्वर्ग, मर्त्यलोक एवं रसातलमें सुविस्तृतरूपसे उसी प्रकार व्याप्त हो रहा है, जिस प्रकार आपके पादपद्मोंका प्रक्षालन-वारि (चरणामृत) स्वर्गमें 'मन्दाकिनी', पातालमें 'भोगवती', और पृथ्वीमें 'गङ्गा' नामसे प्रसिद्ध होकर सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर रहा है ॥ ४४ ॥

श्रीशुक उवाच—

तत्र तेष्व्वात्मपक्षेष्वगुणत्सु विजिगीषया।
वाचःपेशैः स्मयन् भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! उस समय सभामें उपस्थित सभी यादव यह चाहते थे कि पहले जरासन्धको पराजित किया जाय। अतः देवर्षि नारदकी बातका उन्होंने सम्यक् रूपसे सम्मान नहीं किया। तब भगवान् केशवने तनिक मुसकराकर सुमधुर वाणीमें उद्धवसे कहा ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित्।
तथात्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे उद्धव! तुम हमारे बान्धव और परम हितैषी हो। तुम मन्त्रणा सम्बन्धी विषयोंके परिणामको भलीभाँति जानते हो एवं हमारे उत्तम चक्षुःस्वरूप हो। अतः जरासन्ध-विजय और राजसूय यज्ञ—इन दोनों कार्योंके मध्य हमारा प्रथम कर्त्तव्य क्या है? तुम्हारे प्रति हमारी बड़ी श्रद्धा है। इसलिए तुम जैसा परामर्श दोगे, हम उसीके अनुसार कार्य करेंगे ॥ ४६ ॥

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत्।
निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीभगवद् याम-विचार नामे
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

परीक्षित्! श्रीकृष्णने स्वयं सर्वज्ञ होकर भी अनजानके समान
उद्धवसे जब इस प्रकार अनुरोध किया, तब उद्धव उनकी आज्ञा
शिरोधार्य कर प्रत्युत्तरमें कहने लगे ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सत्तरवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

उद्धवके परामर्शसे श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ पधारना एवं
पाण्डवोंका परमोत्सव

श्रीशुक उवाच—

इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ।

सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! उद्धव बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने देवर्षि नारदके पूर्वोक्त वचन भी सुने और वहाँ उपस्थित सभासद और भगवान् श्रीकृष्णके हृद्गत अभिप्रायको भी भलीभाँति समझा। वे इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥

श्रीउद्धव उवाच—

यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ।

कार्यं पैतृष्वश्वेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥

श्रीउद्धवने कहा—हे प्रभो! देवर्षि नारदने जो भी कहा है, तदनुसार यज्ञके अभिलाषी आपकी बुआके पुत्र युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित होकर उनकी सहायता करना जिस प्रकारसे आपका कर्त्तव्य है, उसी प्रकार जरासन्धके द्वारा बन्दी बनाये गये अपने शरणागत राजाओंको मुक्त करना भी आपका कर्त्तव्य है ॥ २ ॥

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ।

अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥

हे विभो! समस्त दिशाओंपर विजय प्राप्त करनेके लिए ही राजा युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ करना होगा। जरासन्धके वधके बिना दिग्विजय सम्भव नहीं है। अतः इस दिग्विजयके उपलक्ष्यमें जरासन्धकी पराजय हो जाय, तो दोनों ही प्रयोजन सिद्ध हो

जायेंगे। शरणागत राजाओंकी भी रक्षा हो जायेगी और राजसूय यज्ञ भी सम्पन्न हो जायेगा। मुझे तो यही समुचित जान पड़ता है और यही मेरा अभिप्रेत भी है॥ ३॥

अस्माकञ्च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति।

यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान् विमुञ्चतः॥ ४॥

हे गोविन्द! इस प्रसङ्गमें जरासन्धकी पराजय होनेपर हम-यादवोंका प्रबल शत्रु-दमनरूप महाप्रयोजन पूर्ण हो जायेगा और बद्ध राजाओंको भी मुक्ति मिल जायेगी। इससे आपको प्रचुर यश भी प्राप्त होगा॥ ४॥

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले।

बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना॥ ५॥

हे देव! राजा जरासन्धमें दस हजार हाथियोंके बराबर बल है। अतः इसके समान ही बलशाली भीमसेनके साथ इसका युद्ध हो, तो इसकी मृत्यु निश्चित है। भीमसेनके अतिरिक्त चाहे कोई कितना भी बलशाली वीर हो, उसके समक्ष जरासन्ध दुर्जेय ही रहेगा॥ ५॥

द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः।

ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित्॥ ६॥

हे भगवन्! द्वन्द्व-युद्ध होनेसे भीमसेन उसे पराजित कर सकते हैं, परन्तु यदि वह सौ अक्षौहिणी सेना लेकर आ गया, तो उसे हराना सम्भव नहीं है। जरासन्ध ब्राह्मण-भक्त है, सदा-सर्वदा ब्राह्मणोंके हितके लिए तत्पर रहता है। ब्राह्मण किसी वस्तुके लिए याचना करें, तो वह मना नहीं करता॥ ६॥

ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः।

हनिष्यति न सन्देहो द्वैरथे तव सन्निधौ॥ ७॥

अतः वृकोदर भीम ब्राह्मण-वेशमें उसके पास जायें और द्वन्द्व-युद्धकी भिक्षा माँगें। भगवन्! यदि यह द्वन्द्व-युद्ध आपके

सम्मुख हो, तो भीमसेन जरासन्धको युद्धमें अवश्य ही मार डालेंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं है॥७॥

निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः।

हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव॥८॥

हे भगवन्! आप सर्वशक्तिमान, अप्राकृतरूप एवं कालस्वरूप हैं। विश्व-सृष्टि एवं विश्व-संहारके कार्योंके लिए ब्रह्मा एवं शङ्कर तो निमित्त हैं, वास्तवमें आपके द्वारा ही दोनों कार्य किये जाते हैं। इसी प्रकारसे यहाँ भी जरासन्धका आप ही वध करनेवाले हैं, भीमसेन तो केवल निमित्तमात्र बनेंगे (आपकी उपस्थितिसे ही जरासन्धका वध हो जायेगा। आप भीमसेनको यश प्रदान करना चाहते हैं)॥८॥

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो

राज्ञां स्वशुत्रुवधमात्मविमोक्षणञ्च।

गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः

पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयञ्च॥९॥

हे प्रभो! गोपियाँ जिस प्रकारसे आपके द्वारा किये गये शङ्खचूड़-वधसे अपना रक्षण, मगरसे गजराजका विमोचन, रावणसे देवी सीताका उद्धार एवं कंससे देवकी-वसुदेवजीका मोचन आदि आपके पवित्र चरित्रका गुणगान करती हैं एवं आपके शरणागत मुनिगण तथा हम लोग जिस प्रकार आपके द्वारा प्रदत्त मुक्ति-विषयक चरितोंका गान करते हैं, उसी प्रकार नारद द्वारा प्रबोधित होकर जरासन्ध द्वारा आबद्ध राजाओंकी पत्नियाँ अपने-अपने महलोंमें बालकोंका लालन-पालन आदि कार्य करते हुए आपके विमल यशका गान करेंगी तथा अपने रोते हुए शिशुओंको चुप करानेके लिए कहेंगी—हे वत्स! रोओ मत! कृष्ण जरासन्धको मारकर तुम्हारे पिताको मुक्त कर हमारा परित्राण करेंगे॥९॥

जरासन्धवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते।

प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः॥१०॥

हे श्रीकृष्ण ! इस जरासन्धका वध होनेसे हमारे शिशुपाल-वधादि बहुत-से महाप्रयोजन अनायास ही सिद्ध हो जायेंगे। राजसूय-यज्ञका होना बन्दी राजाओंके पुण्यकर्मोंका एवं जरासन्धके पापकर्मोंका परिणाम होगा और यह आपके द्वारा भी सम्मत है—मैं ऐसा मानता हूँ। इसलिए आप पहले इन्द्रप्रस्थ ही पधारिये ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युद्धववचो राजन् सर्वतोभद्रमच्युतम्।

देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णाश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेव कहते हैं—हे राजन् ! उद्धवजीकी मन्त्रणा युक्तियुक्त एवं सब प्रकारसे मङ्गलजनक थी। देवर्षि नारद, यादव-कुलके बड़े-बूढ़े एवं भगवान् श्रीकृष्णने भी उनकी इन बातोंका समर्थन एवं अभिनन्दन किया ॥ ११ ॥

अथादिशत् प्रयाणाय भगवान् देवकीसुतः।

भृत्यान् दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरुन् विभुः ॥ १२ ॥

इसके बाद सर्वसमर्थ प्रभु देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने वसुदेव आदि गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर इन्द्रप्रस्थ जानेकी तैयारीके लिए दारुक, जैत्र आदि सेवकोंको आदेश प्रदान किया ॥ १२ ॥

निर्गमय्यावरोधान् स्वान् ससुतान् सपरिच्छदान्।

सङ्कर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजञ्च शत्रुहन्।

सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥

हे रिपुविनाशन ! हे राजन् ! श्रीकृष्णने पहले तो अपनी रानियोंको बाल-बच्चों एवं सामानके साथ पहले भेजनेकी व्यवस्था की, उसके बाद यदुराज उग्रसेन एवं बलदेवजीसे अनुमति लेकर दारुक द्वारा लाये गये गरुडध्वज रथपर सवार हुए (कृष्णपत्नियाँ भी इस यज्ञमें निमन्त्रित थीं, अतः वे जानेके लिए अति उत्सुक थीं) ॥ १३ ॥

ततो रथद्विपभटसादिनायकैः,
 करालया परिवृत आत्मसेनया।
 मृदङ्गभेर्यानि कशङ्खगोमुखैः,
 प्रघोषघोषित ककुभो निरक्रमत् ॥ १४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदलोंकी भारी सेनाओंके प्रमुख अधिकारियों एवं अपनी अति भयङ्कर सेनाके साथ नगरसे बाहर प्रस्थान किया। उस समय मृदङ्ग, भेरी, दुन्दुभि, शङ्ख तथा गोमुखकी अत्युच्च ध्वनि-तरङ्गोंसे सारी दिशाएँ गूँज रही थीं ॥ १४ ॥

नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं,
 सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः।
 वराम्बराभरणविलेपनस्रजः,
 सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥ १५ ॥

भगवान् अच्युतकी सती-साध्वी (पति-परायणा) पत्नियाँ उत्तम वस्त्रों, अलङ्कारों, चन्दनादि अङ्गरागों एवं फूलोंकी मालाओंसे विभूषित थीं। वे अपने शिशुओंके साथ डोलियों (नरयानों), रथों (अश्वयानों) और सोनेकी बनी पालकियोंपर विराजमान होकर अपने पति श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चलीं। पैदल सिपाही हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर उन सबकी रक्षा करते हुए चल रहे थे ॥ १५ ॥

नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्य्यनः-
 करेणुभिः परिजनवारयोषितः।
 स्वलङ्कृताः कटकुटिकम्बलाम्बरा-
 द्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ १६ ॥

हे राजन्! महलोंकी सेविकाओं (अनुचरोंकी स्त्रियों) एवं वारवनिताओंने भलीभाँति शृङ्गार करके खस (उशीर) आदि घासकी बनी झोंपड़ियों, भाँति-भाँतिके तम्बुओं, कनातों, कम्बलों आदि ओढ़ने-बिछानेकी सामग्रियोंको बैलों, भैसों, गधों और

खच्चरोपर लाद दिया (कसकर बाँध दिया)। वे स्वयं डोलियों, ऊँटों, छकड़ों एवं हथिनियोंपर सवार होकर सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त करती हुई चल रही थीं॥ १६॥

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरै-

वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ।

दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवे-

र्यथार्णवः क्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥ १७॥

ऊँची-ऊँची फहराती हुई बृहदाकृति ध्वजाओं, पताकाओं, राजछत्रों, ध्वजदण्डों, चँवरों, उत्तम वस्त्रों, अलङ्कारों, मुकुटों एवं कवचोंसे सुशोभित एवं जयजयकार तथा कोलाहल करती हुई भगवान् श्रीकृष्णकी सेना दिनके समय सूर्यकी विकीर्ण किरणोंसे उसी प्रकार सुशोभित हो रही थीं, जिस प्रकार मगरमच्छों एवं तरङ्गोंसे आलोड़ित होनेवाले समुद्रकी शोभा होती है॥ १७॥

अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः

प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा।

निशम्य तद्व्यवसितमाहताहर्णो

मुकुन्दसन्दर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥ १८॥

यदु-प्रधान मुकुन्द भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा विविध सामग्रियोंसे सम्मानित होकर देवर्षि नारद भगवान्‌के अभिप्रायको जानकर बड़े प्रसन्न हो गये। श्रीकृष्णके दर्शनसे उनका चित्त एवं इन्द्रियाँ शान्त हो गयीं। नारदने भगवान्‌को मन-ही-मन प्रणाम किया और हृदयमें उनका ही दृढ़तापूर्वक ध्यान करते हुए आकाश-मार्गसे चले गये॥ १८॥

राजदूतमुवाचेदं भगवान् प्रीणयन् गिरा।

मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम्॥ १९॥

भगवान् श्रीकृष्णने राजाओं द्वारा भेजे हुए दूतको मधुर वचनोंसे प्रसन्न करते हुए कहा—“हे दूत! उन राजाओंसे कहना—डरना मत। तुम्हारा मङ्गल होगा। मैं जरासन्धका वध करवा दूँगा॥” १९॥

इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान्।

तेऽपि सन्दर्शनं शौरैः प्रत्यैक्षन् यन्मुमुक्षवः॥ २० ॥

श्रीकृष्णसे आदेश प्राप्त करके राजदूत गिरिव्रज लौट गया और राजाओंको श्रीकृष्णका सन्देश ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। वे राजा भी कारागारसे मुक्ति प्राप्त करनेकी अभिलाषासे श्रीकृष्णके शीघ्रातिशीघ्र दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे॥ २० ॥

आनर्त्तसौवीरमरून्स्तीर्त्वा विनशनं हरिः।

गिरिन् नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान्॥ २१ ॥

हे परीक्षित्! अब भगवान् श्रीकृष्ण आनर्त्त, सौवीर, मरुदेश, कुरुक्षेत्र आदि जनपदोंसे यात्रा करते हुए पर्वत, नदी, नगर, ग्राम एवं गोपोंकी बस्तियों तथा खानोंको पार करके आगे बढ़े॥ २१ ॥

ततो दृषद्वर्ती तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम्।

पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत्॥ २२ ॥

इसके बाद भगवान् मुकुन्दने क्रमशः दृषद्वती और सरस्वती नामकी दोनों नदियोंको पार किया तथा पाञ्चाल एवं मत्स्य देशोंसे आगे बढ़कर इन्द्रप्रस्थ पहुँचे॥ २२ ॥

तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम्।

अजातशत्रुर्निरगात् सोपाध्यायः सुहृद् वृतः॥ २३ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। जब अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरने यह सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण समीप ही आ गये हैं, तब वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने आचार्यों एवं बन्धु-बान्धवोंको साथ लिया और उनकी अगवानी करनेके लिए नगरसे बाहर निकले॥ २३ ॥

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा।

अभ्ययात् स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः॥ २४ ॥

इन्द्रियाँ जिस प्रकार मुख्य प्राणोंसे मिलनके लिए उनकी ओर प्रवृत्त होती हैं, उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर मङ्गल-गीतों, वाद्यों

एवं वेदध्वनिके साथ हृषीकेश श्रीकृष्णका स्वागत करनेके लिए चल दिये॥ २४॥

दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः।

चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः॥ २५॥

श्रीकृष्णके दर्शनसे महाराज युधिष्ठिरका चित्त स्नेहसे द्रवीभूत हो उठा। उन्हें बहुत दिनोंके बाद अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतः वे उनका बार-बार आलिङ्गन करने लगे॥ २५॥

दोभ्यां परिष्वज्य रमामलालयं

मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः।

लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो

हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥ २६॥

भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह लक्ष्मीका पवित्र एवं सनातन निवास-स्थान-स्वरूप है। महाराज युधिष्ठिर अपनी भुजाओंसे उनका आलिङ्गन करके परम शान्त एवं परम आनन्दित हुए। उनका सारा पाप-ताप (दुर्दैव) नष्ट हो गया। आँखोंसे आँसू उमड़ आये, शरीर रोमाञ्चित हो गया; उन्हें किसी लौकिक व्यवहारकी सुधि न रही॥ २६॥

तं मातुलेयः परिरभ्य निर्वृतो

भीमः स्मयन् प्रेमजलाकुलेन्द्रियः।

यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा

प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम्॥ २७॥

इसके बाद भीमसेनने खिलखिलाकर हँसते हुए अपने ममेरे भाई श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया। भीमसेनकी आँखोंसे प्रेमकी धारा बहने लगी, वे परम आनन्दित हो रहे थे। तब अर्जुन, नकुल एवं सहदेवने भी परम हर्षके साथ अपने घनिष्ठ, परम प्रिय और हितैषी अच्युत भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया। उनकी भी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग रही थी॥ २७॥

अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः।

ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः।

मानिनो मानयामास कुरुसृञ्जयकैकयान्॥ २८॥

अर्जुनने भगवान्का पुनः आलिङ्गन किया और नकुल एवं सहदेवने उन्हें नमस्कार किया। भगवान् श्रीकृष्णने भी ब्राह्मणों एवं कुलके बड़े-बूढ़ोंको विधिवत् प्रणाम करके माननीय कुरु, सृञ्जय एवं कैकय वंशीयजनोंका भी यथोचित सम्मान किया॥ २८॥

सूतमागधगन्धर्वा वन्दिनश्चोपमन्त्रिणः।

मृदङ्गशङ्खपटह-वीणापणवगोमुखैः ।

ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्नृतुर्गुः॥ २९॥

उस समय सूत, मागध, बन्दीजन, उपहासक और ब्राह्मण श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे तथा गन्धर्व, नट विदूषक आदि मृदङ्ग, शङ्ख, पटह (दुन्दुभि), वीणा, पणव (ढोल), गोमुख आदि वाद्य-यन्त्रोंको बजाकर श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिए नाचने-गाने लगे॥ २९॥

एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः।

संस्तूयमानो भगवान् विवेशालङ्कृतं पुरम्॥ ३०॥

इस प्रकार यशस्वी-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने भव्यरूपसे सुसज्जित इन्द्रप्रस्थ नगरमें प्रवेश किया। उस समय बन्धु-बान्धव उनके साथ-साथ चल रहे थे। चारों ओर उनकी प्रशंसा हो रही थी। सूत आदि उनकी स्तुति-स्तवन कर रहे थे॥ ३०॥

संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयै-

श्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः।

मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्-

गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम्॥ ३१॥

उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजाल-

निर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम्।

मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गै-

जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कुरुराज युधिष्ठिरकी राजधानी इन्द्रप्रस्थको देखने लगे। यह राजसी नगर रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजा-पताकाओं, स्वर्ण-तोरणों और जलसे पूर्ण कुम्भ-कलशोंसे सुसज्जित अत्यन्त दिव्य एवं भव्य दिखायी दे रहा था। सभी युवक एवं युवतियाँ उत्तम एवं नवीन वस्त्रों, आभूषणों और पुष्पहारोंसे अलंकृत थे। उन्होंने गन्ध-इत्र-फुलेल आदिसे अपने शरीरोंको सुगन्धित कर रखा था। राजपथको मत्त हाथियोंके मस्तकसे निःसृत मद-द्रवसे सुवासित किये गये जलसे सींचा गया था। प्रत्येक घर प्रज्वलित दीप-मालाओं एवं पुष्पादि पूजाकी सामग्रीसे मनोरम एवं अलौकिक लग रहा था। झरोखोंसे निकलती हुई सुगन्धित धूपसे सारा नगर ही सुरम्य प्रतीत हो रहा था। इधर-उधर फहराती पताकाओंसे उसका सौन्दर्य और भी बढ़ रहा था। भवनोंके शिखरोंपर चाँदीके आधारपर स्वर्ण-कलश स्थापित किये गये थे और ऊँचे-ऊँचे शिखरोंको रत्नोंसे जड़ा गया था। ऐसे महलोंसे परिपूर्ण पाण्डवोंकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ नगरके अपार सौन्दर्यको देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण आगे बढ़े ॥ ३१-३२ ॥

प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्र-

मौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ।

सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे

द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥ ३३ ॥

मानव-लोचनोंके एकमात्र दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्ण राजपथ पर पधार रहे हैं—यह सुनकर नगरकी स्त्रियाँ घरके सारे काम-काज और शय्यापर सोये हुए अपने पतियोंको छोड़-छाड़कर भगवान्को देखनेके लिए राजपथ पर दौड़ी चली आयीं। उत्सुकताके कारण उनके केश-बन्धन एवं वस्त्रोंकी गाँठें ढीली पड़ गयीं ॥ ३३ ॥

तस्मिन् सुसङ्कुल इभाश्वरथद्विपद्भिः
 कृष्णं सभार्य्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः।
 नाय्यो विकीर्य्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य
 सुस्वागतं विदधुरुत्सम्यवीक्षितेन ॥ ३४ ॥

राजपथपर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंकी भीड़ लग रही थी। ये पुरनारियाँ घरकी अटारियोंपर चढ़ गयीं। वहाँसे उन्होंने श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियोंको देखा। उन स्त्रियोंने भगवान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा की, हृदयसे उनका आलिङ्गन किया और मुसकान भरी चितवनसे उनका स्वागत करती हुई मन-ही-मन उनसे संभाषण करने लगीं ॥ ३४ ॥

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नी-
 स्तारा यथोडुपसहाः किमकार्य्यमूभिः।
 यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहास-
 लीलावलोक कलयोत्सवमातनोति ॥ ३५ ॥

राजपथपर श्रीकृष्णकी महिषियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं, मानो चन्द्रकी सहचरी तारिकाएँ हों। उन रानियोंको देखकर वे परस्पर कहने लगीं कि इन श्रीकृष्णकी पत्नियोंने पूर्व जन्मोंमें न जाने कौन-से महत् एवं पुण्य कर्म किये होंगे जो पुरुषशिरोमणि श्रीकृष्ण अपने उन्मुक्त हास्य एवं विलासपूर्ण कटाक्षोंके द्वारा उनके नेत्रोंको आनन्दमय उत्सव प्रदान करते हैं ॥ ३५ ॥

तत्र तत्रोपसङ्गम्य पौरा मङ्गलपाणयः।
 चक्रुः सपथ्या कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३६ ॥

राजपथपर स्थान-स्थानपर श्रीकृष्णके दर्शनसे निष्पाप हुए धनी-मानी व्यापारियों एवं शिल्पी सम्प्रदायके प्रधान पुरुषों तथा पुरवासियोंने अपने हाथोंमें माङ्गलिक उपहार ला-लाकर भगवान्‌ श्रीकृष्णकी पूजा की और उनका स्वागत-सत्कार किया ॥ ३६ ॥

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः।
 ससम्भ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥ ३७ ॥

अन्तःपुरके सदस्य भी आनन्दसे प्रफुल्लित नेत्रों एवं विह्वल हृदयसे आगे बढ़े और मुकुन्द भगवान्‌का प्रेमपूर्वक स्वागत किया। श्रीकृष्ण उनसे मिलकर राजमहलमें पधारे ॥ ३७ ॥

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम्।

प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात् सस्नुषा परिष्वजे ॥ ३८ ॥

महलमें अपने भतीजे त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णको देखकर कुन्तीका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया। वे अपनी पुत्रवधू द्रौपदीके साथ पर्यङ्कसे उठकर आगे आयीं और श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया ॥ ३८ ॥

गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः।

पूजायां नाविदत् कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥ ३९ ॥

राजा युधिष्ठिर देवदेवाधिपति गोविन्दको अपने निजी भवनमें ले आये। आदर-भाव एवं आनन्दके कारण उनका (युधिष्ठिरका) चित्त अभिभूत हो रहा था। वे कुछ निर्णय ही नहीं कर पा रहे थे कि उनकी पूजाका अनुष्ठान किस प्रकारसे किया जाय ॥ ३९ ॥

पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम्।

स्वयञ्च कृष्णया राजन् भगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४० ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपनी बुआ कुन्ती देवी, गुरुजनोंकी पत्नियों एवं अन्यान्य बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंको प्रणाम किया। इसके बाद वहाँ खड़ी द्रौपदी एवं बहन सुभद्राने उन्हें प्रणाम किया ॥ ४० ॥

श्वश्र्वा सञ्चोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्व्वशः।

आनर्च्य रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा ॥ ४१ ॥

कालिन्दीं मित्रविन्दाञ्च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम्।

अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मण्डनादिभिः ॥ ४२ ॥

अपनी सास कुन्तीदेवीके आदेशसे द्रौपदीने रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, शैब्या, परम साध्वी नाग्नजिती

एवं वहाँ आर्यो अन्यान्य श्रीकृष्ण-महिषियोंका वस्त्र, पुष्पहारों एवं रत्नादि आभूषणोंसे यथायोग्य सत्कार किया ॥ ४१-४२ ॥

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ।

ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्य्यञ्च नवं नवम् ॥ ४३ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियों, सेवकों, मन्त्रियों एवं सेनाओंको इन्द्रप्रस्थमें ठहराया और ऐसी व्यवस्था की कि उन्हें हर दिन नव-नव आतिथ्य-सुखका आनन्द मिले ॥ ४३ ॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ।

मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४४ ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमवश्यताके कारण सदा सर्वदा अर्जुनके साथ रहे। भगवान्ने उनके द्वारा पहले भी खाण्डव-वनका दाह करवाकर अग्निको सन्तुष्ट कराके मयदानवकी रक्षा करवायी थी। उसी दानवने भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे महाराज युधिष्ठिरके लिए दिव्य सभा बना दी थी ॥ ४४ ॥

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।

विहरन् रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्र भाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीकृष्णस्येन्द्रप्रस्थगमनं नाम
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

परीक्षित्! इन्द्रप्रस्थमें रहते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन एवं अन्यान्य योद्धाओंसे घिरकर रथपर सवार होकर मृगया आदिके लिए यहाँ-वहाँ विहार करते। युधिष्ठिरको आनन्द प्रदान करनेकी अभिलाषासे वे वहीं कुछ महीने ठहर गये।

अतः कथाओंका क्रम इस प्रकारसे है—इन्द्रप्रस्थमें खाण्डव-दाह, अर्जुनको गाण्डीव आदि अस्त्रोंकी प्राप्ति, मृगयाके समय कालिन्दीकी प्राप्ति, वर्षाकालमें चातुर्मास्य वास, वहाँसे द्वारका गमन, कालिन्दी

भद्रादि विवाह, नरक वध इत्यादि बहुत-सी लीलाओंके उपरान्त राजसूय-निमन्त्रण प्रसङ्ग हुआ है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके इकहत्तरवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

पाण्डवोंके राजसूय यज्ञका आयोजन तथा
जरासन्धका उद्धार

श्रीशुक उवाच—

एकदा तु सभामध्ये आस्थितो मुनिभिर्वृतः।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः।
शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! एक बार महाराज युधिष्ठिर सभामें मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, भाइयों, आचार्यों, कुल-वृद्धों, जाति-बन्धुओं, सगे-सम्बन्धियों, श्वसुरालयवालों और कुटुम्बियोंके साथ राजसिंहासन पर बैठे हुए थे। तब वे सभीके समक्ष ही भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधन करते हुए कहने लगे ॥ १-२ ॥

श्रीयुधिष्ठिर उवाच—

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः।
यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत् सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीयुधिष्ठिरने कहा—हे गोविन्द! मैं राजसूय नामक उत्तम यज्ञके द्वारा आपकी और आपके लोकपावन अंश-स्वरूप देवताओंकी आराधना करना चाहता हूँ। हे प्रभो! आप कृपा करके मेरा यह सङ्कल्प पूर्ण कीजिये। 'पावनी' अर्थात् देवता (आपके शक्ति-प्रदत्त प्रतिनिधि) यहाँ आपके दर्शन करके पवित्र होंगे। देवताओं एवं राजाओंको कृतार्थ करनेके लिए यह राजसूय यज्ञ है ॥ ३ ॥

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति
ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति।

विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्ग-

माशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥ ४ ॥

हे पद्मनाभ! आपकी चरण-पादुकाएँ निरन्तर सभी अमङ्गलोंका नाश करनेवाली हैं। जो शरीरसे इनकी सेवा करते हैं, विशुद्ध चित्तसे ध्यान करते हैं और स्तुति-स्तवन द्वारा गान करते हैं, वे भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। यदि कोई काम्य वस्तुकी अभिलाषासे इनकी सेवा करता है, तो उसे राजचक्रवर्तियोंके द्वारा अलभ्य विषयोंकी प्राप्ति हो जाती है और जो इनकी शरण ग्रहण नहीं करते, उन्हें न तो मुक्ति मिलती है और न ही सांसारिक भोगोंकी प्राप्ति होती है।

हे भगवन्! आपने अपनी अपार कृपा द्वारा हमें आत्मसात् किया है, जिससे हमें आपके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हो रहा है। इस राजसूययज्ञके लिए हमारा कोई आग्रह नहीं है, परन्तु जो दुष्ट आपको परमेश्वर नहीं मानते—वे लोग मेरे हृदयमें शूल-से चुभते हैं। राजसूययज्ञके छलसे ब्रह्मा, शिवादि सर्वज्ञोंको, चतुःसनादि ब्रह्मचारियोंको, देवतागणोंको एवं चौदह लोकोंके वासियोंको बुलाकरके कोई एक सभा करनी चाहिये, उस सभामें वे सर्वप्रथम पूजाके लिए जिसकी व्यवस्था करेंगे—वे ही आपको साक्षात् रूपसे परमेश्वर सिद्ध करेंगे तो मेरे हृदयका शूल निकल जायेगा—मैं बस यही चाहता हूँ। आपकी चरण-पादुकाओंकी जो सर्वक्षण परिचर्या करते हैं, उनके सम्पूर्ण अमङ्गल एवं अविद्या नष्ट हो जाते हैं। आपके दर्शन करनेसे हमारी कोई कामना ही नहीं बची है ॥ ४ ॥

तद्देवदेव

भवतश्चरणारविन्द-

सेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः।

ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां

निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ५ ॥

हे देवाधिदेव! इस राजसूय यज्ञमें संसारी लोग आपके पादपद्मोंकी सेवाके प्रभावको देखें। कुरुवंश और सृञ्जयवंशमें जो

लोग आपका भजन करते हैं और जो कर्मप्रधान लोग आपकी भक्तिसे विमुख हैं, उनके मोहकी निवृत्तिके लिए आप भक्तोंका उत्कर्ष (सद्गति) और अभक्तोंका अपकर्ष (अधोगति) जनताको दिखलाकर दोनोंके बीचका अन्तर स्पष्ट कर दें॥ ५ ॥

न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्
सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ।
संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥

हे प्रभो! आप निरुपाधिक, सर्वान्तर्यामी, (अनादि कर्म-प्रवाहमें पतित सभीको अपने-अपने कर्ममें प्रेरित करनेवाले) एवं समदर्शी हैं। आप अपने स्वयंके आनन्दानुभवमें तृप्त रहते हैं। आपमें अपना-पराया भेद न रहनेपर भी जो आपकी सेवा करते हैं, उन भक्तोंको सेवाके न्यूनाधिक तारतम्य भेदके अनुरूप फलकी प्राप्ति ठीक वैसे ही हो जाती है, जैसे कल्पतरुकी सेवा करनेवालोंको। इस विषयमें किसी भी प्रकारकी विषमता आपमें दिखायी नहीं देती (अवैषम्य रहनेपर भी अपने भक्तोंके प्रति वात्सल्यके कारण आपका पक्षपातित्व रहता है। अतः उनके अनुकूल एवं प्रतिकूलमें आपका भी आनुकूल्य एवं प्रातिकूल्य हो जाता है) ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

सम्यग् व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शनं ।
कल्याणी येन ते कीर्त्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे रिपुविनाशन महाराज! (इस सम्बोधनसे युधिष्ठिरने सर्वराज-विजय-शक्तिका सञ्चार किया है) आपने जो निर्णय लिया है, वह अतीव उत्तम है। इस यज्ञके अनुष्ठानसे आपकी पवित्र कीर्ति समस्त लोकोंमें व्याप्त होगी ॥ ७ ॥

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ।
सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥

हे राजन्! मेरे महिमा-रसका महामेघस्वरूप आपका यह राजसूय नामक महायज्ञ देवताओं, ऋषियों, पितरों, आपके कुटुम्बियों और हमें ही नहीं, समस्त प्राणियोंके लिए वाञ्छनीय है ॥ ८ ॥

विजित्य नृपतीन् सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे।

सम्भृत्य सर्वसम्भारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥

महाराज! आपके लिए सुख-साध्य यही है कि आप पृथ्वीके समस्त राजाओंको पराजित करें एवं सारी पृथ्वीको अपने अधीन करें। अनन्तर यज्ञीय द्रव्योंका संग्रह करके महायज्ञको सम्पन्न करें ॥ ९ ॥

एते ते भ्रातरो राजन् लोकपालांशसम्भवाः।

जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ १० ॥

हे राजन्! आपके वीर भाई लोकपालोंके (वायु, इन्द्र, अश्विनी कुमारोंके) अंशसे उत्पन्न हुए हैं। आप अपनी जितेन्द्रियताके कारण उन पुरुषोंके लिए दुर्जयस्वरूप हैं, जिनका अपनी इन्द्रियोंपर संयम नहीं है। इसीसे आप मुझे भी वशीभूत करनेमें समर्थ हैं। जो अपने मन एवं इन्द्रियोंका संयम नहीं कर पाते, मैं उन लोगोंके लिए दुर्जय हूँ ॥ १० ॥

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया।

विभूतिभिर्वाभिभवद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥

हे राजन्! इस जगत्में जिनका चित्त मेरे प्रति आसक्त रहता है, उन्हें देवता भी अपने तेज, यश, सौन्दर्य अथवा ऐश्वर्य द्वारा अभिभूत नहीं कर सकते, मनुष्योंकी तो बात ही क्या? (अरे! विपक्षियोंसे अपने पराजयकी आशङ्का भी मत करना) ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच—

निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः।

भ्रातृन् दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित् ! इस प्रकार राजा युधिष्ठिर भगवान्‌के वचनोंको सुनकर अतीव प्रसन्न हो गये और उनका मुख कमलके समान खिल गया। उन्होंने अपने सभी भाइयोंको दिग्विजयके लिए आदेश दिया। भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंमें अपनी शक्तिका सञ्चार करके उन्हें अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया ॥ १२ ॥

सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत् सह सृञ्जयैः ।
दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ।
प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ॥ १३ ॥

उन्होंने सृञ्जयवंशीय वीरोंके साथ सहदेवको दक्षिण दिशामें, मत्स्यदेशीय वीरोंके साथ नकुलको पश्चिम दिशामें, कैकयदेशीय वीरोंके साथ अर्जुनको उत्तर दिशामें, मद्रदेशीय वीरोंके साथ भीमसेनको पूर्व दिशामें विजय-प्राप्तिका आदेश दिया ॥ १३ ॥

ते विजित्य नृपान् वीरा आजहूर्दिग्भ्य ओजसा ।
अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥

हे राजन् ! सहदेव आदि वीरोंने अपने-अपने प्रभावसे विभिन्न देशोंके राजाओंको पराजित कर दिया और उनसे बहुत-सा धन संग्रह करके यज्ञ करनेके अभिलाषी अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको दे दिया ॥ १४ ॥

श्रुत्वाजितं जरासन्धं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ।
आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥

दिग्विजयके अन्तमें राजा युधिष्ठिरने जब यह सुना कि जरासन्धको पराजित नहीं किया जा सका है, तो वे उसकी पराजयके लिए उपाय सोचने लगे। सनातन भगवान् श्रीहरिने उन्हें वही उपाय बतलाया, जो उद्धवने बतलाया था ॥ १५ ॥

भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः ।
जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥ १६ ॥

हे वत्स! इसके बाद भीमसेन, अर्जुन एवं श्रीकृष्ण—ये तीनों ब्राह्मणका वेश धारण करके गिरिव्रजमें पहुँचे, जहाँ बृहद्रथका पुत्र जरासन्ध रहता था॥ १६ ॥

ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम्।

ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः॥ १७ ॥

जरासन्ध ब्राह्मण-भक्त, गृहस्थ-धर्मका पालन करनेवाला और कर्तव्यनिष्ठ था। ये तीनों राजवंशीय क्षत्रिय ब्राह्मणका वेश बनाकर उसी निश्चित समय पर पहुँचे, जब वह अपने घरमें अतिथियोंका सत्कार करता था। वे तीनों उससे इस प्रकार याचना करने लगे॥ १७ ॥

राजन् विद्ध्यतिथीन् प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान्।

तत्रः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे॥ १८ ॥

(उन तीनोंने कहा—) हे राजन्! आपका कल्याण हो। हम बहुत दूरसे आ रहे हैं और आपके यहाँ अतिथिके रूपमें उपस्थित हुए हैं। आप हमें याचक समझ सकते हैं; इसलिए हम जो आपसे माँगना चाहते हैं; उसे हमें अवश्य प्रदान कीजिये। आपका सब प्रकारसे मङ्गल होगा॥ १८ ॥

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः।

किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम्॥ १९ ॥

इस लोकमें जो सहिष्णु हैं, उनके लिए असहनीय कुछ भी नहीं है। समदर्शियोंके लिए पराया कोई नहीं है, दुष्ट व्यक्ति बुरे-से-बुरा क्या नहीं कर सकते और उदार पुरुष क्या नहीं दे सकते?

अतिशय ममतास्पद पुत्रका विच्छेदरूप दुःख असहनीय होता है, परन्तु देखा जाता है कि विश्वामित्र दशरथसे उनके अति प्रिय पुत्रको माँग ले गये थे। श्रेष्ठ दाताओंके लिए क्या अदेय है—देखिये! दधीचि ऋषिने देवताओंकी प्रार्थनापर अपने शरीरका

दान दे दिया था। आप समदर्शी ज्ञानी हैं, आपमें विषम-दर्शनरूप अज्ञान सम्भव नहीं है॥ १९॥

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम्।

नाचिनोति स्वयं कल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः॥ २०॥

जो सामर्थ्य रहनेपर भी नाशवान् शरीरसे साधुओंके द्वारा कीर्त्तनीय अविनाशी यशका संग्रह नहीं करते, वे जगत्में निन्दनीय एवं शोचनीय ही हुआ करते हैं॥ २०॥

हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उच्छ्वृत्तिः शिबिर्बलिः।

व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः॥ २१॥

हे राजन्! हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, उच्छ्वृत्ति (फसल कटनेके बाद दाने बीन-बीनकर निर्वाह करनेवाले महात्मा), मुद्गल, शिबि, बलि, व्याध, कपोत इत्यादि अनेकोंने पहले भी इस अनित्य शरीरके द्वारा अविनाशी पदको प्राप्त किया है।

हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रका ऋण शोधन करनेके लिए अपनी पत्नी एवं पुत्रको बेच दिया था। उन्होंने चाण्डाल वृत्तिको अपनाया था और अन्तमें बिना किसी खेदके अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्ग चले गये थे। रन्तिदेव अपने कुटुम्बके साथ अड़तालीस दिनों तक भूखे-प्यासे रहे थे। अगले दिन जब यत्किञ्चित (जो कुछ भी) प्राप्त हुआ, उसे वे याचकोंको देकर ब्रह्मलोक चले गये थे। उच्छ्वृत्ति मुद्गल भी छह मासतक अतिथियोंको (दुर्वासादिको) दान करते हुए बड़े कष्टपूर्वक अपने परिवारके साथ रहे और अन्तमें ब्रह्मलोकको चले गये। शिबिराजने शरणागत कपोतकी रक्षा करनेके लिए अपने शरीरका मांस श्येन पक्षीको दिया और स्वर्ग प्राप्त किया। बलि महाराजने विप्र-वेशधारी श्रीहरिको सर्वस्व देकर अपने वशमें कर लिया। कपोतने भी कपोतीके साथ अतिथि व्याधको अपना मांस दिया और विमानपर चढ़कर स्वर्ग चला गया था। व्याध कपोत-कपोतीके सत्त्वगुणको देखकर स्वयं भी विरक्त हो गया था। उसने भी अपने

महाप्रस्थान-कालमें वन-अग्निमें अपनी देहको भस्म करके स्वर्गके लिए आरोहण किया था॥ २१॥

श्रीशुक उवाच—

स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि ।

राजन्यबन्धून् विज्ञाय दृष्टपूर्व्वानचिन्तयत् ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! राजा जरासन्ध विचार करने लगा कि उसने इन्हें पहले भी (द्रौपदी-स्वयंवर आदि स्थानोंपर) कहीं-न-कहीं देखा है। अब इनके गम्भीर कण्ठस्वर, सुदृढ़ शारीरिक बनावट और हाथोंमें पड़ी धनुषकी प्रत्यज्वाकी रगड़के चिह्नोंको देखकर उसने जान लिया कि ये ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय हैं॥ २२॥

राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ।

ददानि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥ २३ ॥

उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि ये क्षत्रिय ही हैं, परन्तु कपटताके कारण इन्होंने ब्राह्मण वेश एवं चिह्नोंको धारण कर रखा है। जब ये भिक्षा माँग रहे हैं, तब ये जो कुछ भी माँगेंगे, जहाँ तक कि दुस्त्यज्य शरीर भी माँगेंगे—मैं इन्हें दे दूँगा॥ २३॥

बलेर्नु श्रूयते कीर्त्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा ।

ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥

श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ।

जानन्नपि महीं प्रादाद्धार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥

दैत्यराज बलिका विस्तृत विमल यश आज भी दिग्दिगन्तमें सुनायी पड़ता है। वामनावतारमें श्रीहरिने विप्रवेश धारण करके इन्द्रकी राज्यलक्ष्मीके उद्धारके लिए बलिका धन, ऐश्वर्य—सब कुछ छीनकर उन्हें राज्यसे पतित कर दिया। वे जानते थे कि वामनाकृति ब्राह्मण बालकरूपमें विष्णु ही हैं, शुक्राचार्यने भी उन्हें

रोका था, तो भी उन्होंने उन विप्ररूपी विष्णुको पृथ्वीका दान कर दिया ॥ २४-२५ ॥

जीवता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना।

देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥

जो इस नश्वर देहसे चहुँ-दिशि-व्यापी विप्र-हितरूप यश अर्जित नहीं करता, जो ब्राह्मणको उसकी मनचाही वस्तु प्रदान नहीं कर सकता, उस अधम क्षत्रियका प्राण धारण करनेसे क्या लाभ ? ॥ २६ ॥

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णाज्जुनवृकोदरान्।

हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥

परीक्षित्! जरासन्धकी बुद्धि बड़ी उदार थी। उसने इस प्रकार सोच-विचार करके श्रीकृष्ण, अर्जुन एवं भीमसेनसे कहा—हे ब्राह्मणो! आप लोग अपनी अभीष्ट वस्तु माँग लें, आप यदि मेरा सिर भी माँगेंगे, तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच—

युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे।

युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्यकाङ्क्षिणः ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे राजेन्द्र! हमलोग अन्नके इच्छुक ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं और युद्धकी अभिलाषासे आपके पास आये हैं। युद्धरूप द्रव्यके अतिरिक्त हमें अन्य किसी वस्तुकी कामना नहीं है। यदि हमारी याचनाको सुसङ्गत मानते हैं, तो हमारे साथ द्वन्द्व-युद्ध करें ॥ २८ ॥

असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताज्जुनो ह्ययम्।

अनयोर्मर्तातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥

देखिये, ये कुन्तीपुत्र भीमसेन हैं, यह उनका भाई अर्जुन है और मैं उन दोनोंका ममेरा भाई और आपका चिर-शत्रु कृष्ण हूँ ॥ २९ ॥

एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः।

आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः॥ ३० ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा इस प्रकारसे परिचय कराये जानेपर राजा जरासन्ध बहुत जोरसे हँसा और असहिष्णु होकर बड़ी उपेक्षासे कहने लगा—रे मूर्खों! यदि तुमलोग युद्ध ही चाहते हो, तो लो, मैं तुम्हें वही देता हूँ॥ ३० ॥

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा।

मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः॥ ३१ ॥

कृष्ण! तुम तो युद्ध-भीरु हो, रणभूमिसे पीठ दिखाकर भाग जाते हो। मेरे डरसे तुम अपनी मथुरापुरीका त्याग करके समुद्रका आश्रय लेकर जा छिपे, तुम्हारे बलने तुम्हारा बीचमें ही साथ छोड़ दिया। मैं तुम जैसे कायरके साथ युद्ध करना नहीं चाहता॥ ३१ ॥

अयन्तु वयसातुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः।

अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम॥ ३२ ॥

यह अल्पबलशाली अर्जुन भी मेरी जोड़का योद्धा नहीं है। न तो यह आयुमें मेरे बराबर है और न ही शारीरिक बलमें। अतः युद्ध करनेके लिए मैं इसे सक्षम नहीं मानता। मैं समझता हूँ कि भीमसेन ही मेरे समान बलवान् योद्धा है॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम्।

द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः॥ ३३ ॥

यह कहकर जरासन्धने भीमसेनको एक बड़ी गदा प्रदान की और स्वयं दूसरी गदा लेकर नगरसे बाहर निकल आया (जरासन्धने भीमके हाथमें विशाल गदा देते हुए कहा—तुम अतिथि हो, तुममें प्रसन्न करना मेरा कर्तव्य है, अतएव बड़ी गदा तुम ग्रहण करो—मेरी गदा जैसी-तैसी है—मैं इसीसे युद्ध कर लूँगा। जरासन्धकी उक्तिमें गर्व प्रकाशित हो रहा है)॥ ३३ ॥

ततः समेखले वीरौ संयुक्तावितरेतरम् ।

जघ्नतुर्व्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्ममदौ ॥ ३४ ॥

इस प्रकार दोनों रणोन्मत्त वीर मैदानमें आ डटे और एक-दूसरेसे भिड़ गये। वे वज्रके समान सुदृढ़ गदाओंसे एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ३४ ॥

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ।

चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रङ्गिणोः ॥ ३५ ॥

रङ्गक्षेत्रमें जैसे दो नट अपनी युद्ध-कलाका प्रदर्शन करते हों, उसी प्रकार वे दोनों दाएँ-बाएँ पैतरे बदलते हुए मण्डलाकाररूपमें निर्भयतापूर्वक घूम रहे थे। इस प्रकार वहाँ एक अद्भुत एवं भव्य दृश्य उपस्थित हो गया था ॥ ३५ ॥

ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः ।

गदयोः क्षिप्तयो राजन् दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥ ३६ ॥

हे राजन्! रणमत्त दो हाथियोंके दाँतोंकी परस्पर टकराहटसे जिस प्रकार चटचटानेकी ध्वनि उठती है, उसी प्रकार जब ये वीर एक-दूसरे पर गदासे प्रहार करते, तब दोनोंकी गदाओंकी टकराहटसे ऐसी तुमुल ध्वनि उठती, मानो वर्षाके समय बड़े जोरसे बिजली कड़क रही हो ॥ ३६ ॥

ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने

अन्योन्यतोऽसकटिपादकरोरुजत्रुम् ।

चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे

संयुध्यतोद्विरदयोरिव दीप्तमन्वयोः ॥ ३७ ॥

अत्यन्त क्रोधसे भरे हुए जैसे दो हाथी जब आक-वृक्षकी शाखाओंको तोड़-तोड़कर एक-दूसरेपर प्रहार करते हैं और वे शाखाएँ एक-दूसरेकी चोटसे चकनाचूर हो जाती हैं, उसी प्रकार ये दोनों वीर अपनी भुजाओंके बल एवं वेगसे एक दूसरेपर गदा चला-चलाकर कन्धों, कमरों, पाँवों, हाथों, जाँघों और हसलियोंपर

चोट करने लगे, तब उनकी दोनों ही गदाएँ उनके अङ्गोंसे टकराकर चूर्ण-विचूर्ण होने लगीं ॥ ३७ ॥

इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ
 क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम्।
 शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासी-
 त्रिर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥

गदाओंके नष्ट होनेपर दोनों वीर क्षुब्ध हो गये और बड़े क्रोधके साथ घूसों एवं थप्पड़ोंसे एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। इन प्रहारोंकी मार लोहेके हथौड़ोंकी चोटके समान थी और ध्वनि बिजलीकी कड़कड़ाहट जैसी कर्कश थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो दो हाथी एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे हों ॥ ३८ ॥

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः।
 निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥

हे राजन्! दोनों ही प्रतिद्वन्द्वियोंके गदा-प्रहार कुशलता, बल एवं उत्साहमें समान थे। युद्ध करते हुए दोनोंमेंसे कोई किसीसे कम नहीं पड़ रहा था। परस्पर प्रहार करते रहनेपर भी किसीकी जीत या हार नहीं हुई। युद्धकी समाप्ति होती दिखायी नहीं देती थी ॥ ३९ ॥

(एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः।
 दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः॥
 एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन् वृकोदरः।
 न शक्तोहं जरासन्धं निज्जेतुं युधि माधव॥)

शत्रोर्जन्ममृती विद्वान् जीवितञ्च जराकृतम्।
 पार्थमाप्याययन् स्वेन तेजसाचिन्तयद्धरिः ॥ ४० ॥

(इस प्रकार हे महाराज! उन दोनोंको युद्ध करते हुए सत्ताईस दिन बीत गये। दिनमें वे परस्पर प्रहार करते और रातको मित्रके

समान रहते थे। तब हे राजन्! अट्टाईसवें दिन वृकोदर भीमने अपने ममेरे भाईसे कहा—माधव! मैं जरासन्धको युद्धमें हरा नहीं सकता।)

भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धके जन्म, मृत्यु एवं जीवन-तत्त्वका रहस्य जानते थे। वे अवगत थे कि किस प्रकार जरा नामक राक्षसीने इसके शरीरके दो टुकड़ोंको जोड़कर इसे जीवन दान दिया है। अतः वे भीमसेनमें अपनी शक्तिका सञ्चार करनेके साथ ही उसके वधका उपाय सोचने लगे ॥ ४० ॥

सञ्चिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः।

दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४१ ॥

परीक्षित्! श्रीकृष्णका ज्ञान अबाध है। अब उन्होंने शत्रुके वधका उपाय भलीभाँति विचार किया और एक वृक्षकी शाखाको बीचमेंसे चीरकर सङ्केतके द्वारा भीमको उपाय बतला दिया ॥ ४१ ॥

तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः।

गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४२ ॥

वीर-शिरोमणि और परम शक्तिशाली भीमसेनने श्रीकृष्णके सङ्केतका अभिप्राय जानकर जरासन्धके दोनों पैरोंको पकड़कर उसे भूमिपर गिरा दिया ॥ ४२ ॥

एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः।

गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥ ४३ ॥

इसके बाद भीमसेनने अपने एक पैरसे जरासन्धके एक पैरको दबाया तथा दोनों भुजाओंसे उसका दूसरा पैर पकड़ लिया और उसकी गुदाके भागसे क्रमशः ऊपरकी ओर ऐसे चीर डाला, जैसे मत्त हाथी वृक्षकी शाखाको चीर डालता है ॥ ४३ ॥

एकपादोरुवृषण कटिपृष्ठस्तनांसके।

एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४४ ॥

प्रजाजनोंने जरासन्धके शरीरको दो खण्डोंमें विभक्त देखा। प्रत्येक खण्डमें एक पैर, जङ्घा, अण्डकोश, कमर, पीठ, स्तन, कन्धा, भुजा, नेत्र, भौंह और कान थे॥ ४४॥

हाहाकारे महानासीन्निहते मगधेश्वरे।

पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ॥ ४५॥

मगधराज जरासन्धके मर जानेपर उसकी प्रजा एवं बन्धु-बान्धव उच्च स्वरसे हाहाकार करने लगे। इधर श्रीकृष्ण एवं अर्जुनने भीमसेनका आलिङ्गन किया और उनका अभिनन्दन करने लगे॥ ४५॥

सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूतभावनः।

अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः।

मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये॥ ४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे जरासन्धवधो नाम
द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण समस्त मनुष्योंके पालनकर्त्ता हैं। वे अप्रमेय-स्वरूप हैं अर्थात् उनके कार्य एवं विचारोंको कोई समझ नहीं सकता। उन्होंने जरासन्धके पुत्र सहदेवका राजसिंहासनपर मगधके अधिपतिरूपमें अभिषेक कर दिया और बन्दी राजाओंको कारागारसे मुक्त कर दिया॥ ४६॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बहत्तरवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

जरासन्धके कारागारसे मुक्त राजाओंका प्रस्थान तथा
श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ प्रत्यावर्त्तन

श्रीशुक उवाच—

अयुते द्वे शतान्यष्टौ निरुद्धा युधि निर्जिताः ।
ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥
क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्षिताः ।
ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥
श्रीवत्साङ्गं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥
पद्महस्तं गदाशङ्खरथाङ्गैरुपलक्षितम् ।
किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाञ्चितम् ॥ ४ ॥
भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ।
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ ५ ॥
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः ।
प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्द्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! जरासन्धने युद्धमें पराजित हुए बीस हजार आठ सौ राजाओंको पहाड़की घाटीमें एक किलेके भीतर बन्दी बना रखा था। श्रीकृष्णके द्वारा मुक्त होनेपर जब वे बाहर निकले, तब इन राजाओंके शरीरका वर्ण धूमिल हो गया था, वस्त्र मलिन हो गये, भूखसे पीड़ित होनेके कारण मुख सूख गये थे और दीर्घ-बन्धनके कारण वे बड़े दुर्बल हो गये थे। जैसे ही ये राजागण गिरिव्रज दुर्गसे बाहर आये, तो देखा कि सम्मुख ही श्रीकृष्ण खड़े हैं। वर्षाकालीन मेघके समान उन्होंने श्यामल शरीरपर पीले रङ्गके रेशमी वस्त्र धारण कर रखे

हैं, वक्षःस्थल पर श्रीवत्सका चिह्न है, चार भुजाएँ हैं, कमलकोशके समान रतनारे नेत्र हैं, सुन्दर एवं प्रफुल्ल मुखकमल है, कानोंमें दीप्तिमान् मकराकृति कुण्डल हैं और चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म हैं, मस्तकपर मुकुट विराजमान है, कण्ठमें रत्नजड़ित हार, कौस्तुभ मणि एवं वनमाला सुशोभित हैं, हस्त-कमल सोनेके कङ्कन, सोनेकी करधनी और बाजूबन्दसे विभूषित हैं। सभी राजाओंने सिर झुकाकर भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम किया। वे सभी श्रीकृष्णके दर्शनसे निष्पाप हो गये थे। हे राजन्! वे अपनी दोनों आँखोंसे भगवान्‌को इस प्रकार देखने लगे, मानो उनके सौन्दर्यका पान कर रहे हों, जीभ द्वारा उनके श्रीविग्रहको चाट रहे हों, नासिकासे उनके श्रीअङ्गके सौरभका घ्राणास्वादन कर रहे हों और भुजाओंके द्वारा मानो उनका आलिङ्गन कर रहे हों॥ १-६॥

कृष्णसन्दर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ।

प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः॥ ७॥

श्रीकृष्णका दर्शनकर उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उनके कारागार-बन्धनका सारा कष्ट दूर हो गया। वे हाथ जोड़कर विनम्र वाणीसे हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे॥ ७॥

श्रीराजान ऊचुः—

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्त्तिहराव्यय।

प्रपन्नान् पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान् घोरसंसृतेः॥ ८॥

राजाओंने कहा—हे देवदेवेश! हे शरणागतोंके दुःखोंको हरनेवाले! हे अविनाशी! हम आपको प्रणाम करते हैं। हे श्रीकृष्ण! हमने अति क्लेश पाकर बड़े कष्टपूर्ण हृदयसे आपकी शरण ग्रहण की है। इस घोर सांसारिक बन्धनसे हम निराश हो चुके हैं। हे नाथ! हमारी रक्षा कीजिये॥ ८॥

नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन।

अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिविभो॥ ९॥

हे प्रभो! हम इस मगधराज जरासन्धके ऊपर कोई दोषारोपण नहीं करते। हे मधुसूदन! हमलोग जो राज्यलक्ष्मीसे च्युत (भ्रष्ट) कर दिये गये हैं, वह तो हमपर आपका परम अनुग्रह है॥९॥

राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः।

तन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः॥१०॥

राजा शासन-शक्ति एवं राजैश्वर्यके मदसे मत्त होकर उच्छृङ्खल हो जाते हैं और उन्हें सच्चे सुखकी—कल्याणकी प्राप्ति कभी हो ही नहीं सकती। वे आपकी मायासे मुग्ध होकर अनित्य राज-सम्पत्तिको ही नित्य एवं अचल मान लेते हैं॥१०॥

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम्।

एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते॥११॥

मूर्ख लोग जिस प्रकार मृगतृष्णाके जलको (सूर्यकी किरणोंको) जलाशय मानकर उसीको सत्य निर्धारण कर लेते हैं, उसी प्रकार इन्द्रिय-लोलुप और अविवेकी व्यक्ति भी परिवर्तनशील (विकारग्रस्त) मायाको ही सद्बस्तु मान लेते हैं तथा भोगसम्पत्तिरूप दुःखको ही सुख मानते हैं॥११॥

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो

जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः।

घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो

मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः॥१२॥

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा

दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः।

कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया

विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते॥१३॥

हे प्रभो! पहले हम ऐश्वर्यके कारण मदान्ध हो रहे थे। इतने दुरभिमानी थे कि आप मृत्युरूपमें हमारे सम्मुख सदा उपस्थित रहते हैं, इसका भी तनिक विचार नहीं करते थे। पृथ्वीको जीत

लेनेकी कामनासे एक-दूसरेसे स्पर्धा करते थे। अतिशय निर्दयताके कारण अपनी प्रजाओंपर अत्याचार करते थे। हे श्रीकृष्ण! अब वे हम ही आज राज्यसे भ्रष्ट हो गये हैं। कालकी गति गहन, अलक्ष्य एवं दुर्लभ्य है। इसी कालकी प्रेरणासे हमारे राज्य भ्रष्ट हुए हैं तथा अब आपकी अहैतुकी कृपासे हमारा गर्व चूर-चूर हो गया है। आपसे यही प्रार्थना है कि आपके श्रीचरणकमलोंका स्मरण करते रहें॥ १२-१३॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं
देहेन शश्वत् पतता रुजां भुवा।
उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो
क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम्॥ १४॥

हे विभो! यह शरीर रोगोंका निधान है, क्षण-क्षण क्षीण होता जा रहा है। इस मर्त्य शरीरसे भोगे जानावाला यह राज्य भी मरीचिकाके समान मिथ्या है, अब हम इसके लिए लालायित नहीं हैं। हे भगवन्! पुण्य कर्मोंके (अश्वमेधादि यज्ञोंके) फलसे मिलनेवाले पारलौकिक स्वर्गादि सुख भी हमें नहीं चाहिये। ये तो बस सुननेमें ही आकर्षक हैं और कानोंके लिए झूठे बहलावा मात्र हैं (स्वर्गमें स्पर्धा रहती है, वहाँ सुख नहीं रहता)॥ १४॥

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः।
स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह॥ १५॥

अतः ऐसा उपाय बतलाइये कि सदा-सदा हमारे हृदयोंमें आपके चरणकमलोंकी स्मृति बनी रहे। हमें इस संसारमें किसी भी योनिमें क्यों न भ्रमण करना पड़े, किसी भी कालमें आपकी विस्मृति न हो (वस्तुतः इन राजाओंमें अपनी मुक्तिकी अभिलाषासे भी अधिक कृष्ण-दर्शनकी अभिलाषा है)॥ १५॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥ १६॥

हे प्रभो! आप हमारे जैसे प्रणाम करनेवालोंके भक्ति प्रतिबन्धकोंका (क्लेशोंका) नाश करनेवाले हैं। हे गोविन्द! हे परमात्मस्वरूप (शान्त एवं दास भक्तोंके परम प्रेमास्पद)! हे वासुदेव (समस्त जीवोंके अन्तरमें रहकर भी कृपापूर्वक वसुदेवसे प्रकट होनेवाले)! हे श्रीहरि (दैत्योंके भी संसार-दुःखको हरनेवाले)! हे कृष्ण! हम आपको प्रणाम करते हैं। निज अङ्ग-गन्ध आदि सुख प्रदानके लिए आप हमारे निकट उपस्थित हुए हैं॥ १६॥

श्रीशुक उवाच—

संस्तूयमानो भगवान् राजभिर्मुक्तबन्धनैः।

तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा॥ १७॥

श्रीशुकदेवने कहा—हे वत्स परीक्षित! कारागारसे मुक्त राजाओंने जब निखिलजन-शरण करुणामय भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब भगवान्ने बड़े मधुर वचनोंसे उन्हें सम्बोधन करते हुए कहा॥ १७॥

श्रीभगवानुवाच—

अद्य प्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे।

सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा॥ १८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे राजागण! तुम लोगोंने जैसी प्रार्थना की है, तुम्हें वैसी ही सिद्धि प्राप्त होगी। आजसे समस्त जगत्के अधीश्वर एवं अन्तर्यामीस्वरूप मेरे प्रति तुम्हारी अचला भक्ति होगी। अनन्तर क्रमशः प्रेमाभक्ति, अनुभवयुक्त भक्ति एवं नवनवायमान भक्तिकी वृद्धि होगी॥ १८॥

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः।

श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम्॥ १९॥

हे नरपतियो! तुम लोगोंने जो सङ्कल्प किया है, वह अतिशय कल्याणजनक है। तुमने जो कुछ भी कहा है, वह भी अतीव सत्य एवं यथार्थ है। मैं स्वयं देखता हूँ कि आत्म-संयमके

अभावके कारण बहुत-से लोग धन-सम्पत्तिके मदसे उच्छृङ्खल और उन्मत हो जाते हैं ॥ १९ ॥

हैहयो नहुषो वेणो रावणो नरकोऽपरे।

श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥ २० ॥

पहले भी देखा गया है कि कार्तवीर्य, नहुष, बेन, रावण, नरकासुर एवं अन्यान्य अनेक देवता, दैत्य एवं राजा अपने धन-ऐश्वर्यसे उत्पन्न गर्वके कारण अपने पदसे भ्रष्ट हुए हैं ॥ २० ॥

भवन्त एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत्।

मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्ष्यथ ॥ २१ ॥

तुमलोग देह और देहसे उत्पन्न पदार्थ मात्रको ही नश्वर जानो। अतः उनमें आसक्त मत होओ। यज्ञोंके द्वारा मेरी आराधना करो। बड़ी सावधानीसे मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर धर्मका रक्षण करते हुए प्रजाका पालन करनेके लिए सन्तान उत्पन्न करनेका सङ्कल्प ग्रहण करो, भोगके लिए कदापि नहीं ॥ २१ ॥

सन्तन्वन्तः प्रजातन्तून् सुखं दुःखं भवाभवौ।

प्राप्तं प्राप्तञ्च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥

अपने चित्तको सदा-सर्वदा मुझमें लगाकर पुत्रादि वंश-परम्पराकी रक्षाके लिए, भोगके लिए नहीं, सन्तान उत्पन्न करो। प्रारब्धसे सुख-दुःख, भव-अभव (जन्म-मृत्यु) जो कुछ भी प्राप्त हो जाय, सबके प्रति समान भाव रखकर अपना जीवन बिताओ ॥ २२ ॥

उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः।

मय्यावेश्य मनः सम्यङ्मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥

इस प्रकार देह एवं देहादिसे सम्बन्धित विषयोंसे उदासीन रहकर एवं आत्मानन्दानुभवमें परितृप्त रहकर अपने नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करो। चित्तको भलीभाँति मेरे प्रति समर्पण कर लेनेपर अन्तमें तुमलोग ब्रह्मरूप मुझे ही प्राप्त होओगे ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यादिश्य नृपान् कृष्णो भगवान् भुवनेश्वरः ।

तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान् स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! त्रिलोकाधिपति भगवान् श्रीकृष्णने राजाओंको आदेश देकर उन्हें स्नानादि करानेके लिए बहुत-से पुरुषों और स्त्रियोंको सहदेव द्वारा नियुक्त करा दिया ॥ २४ ॥

सपर्य्यां कारयामास सहदेवेन भारत ।

नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५ ॥

हे भरतकुलनन्दन! तत्पश्चात् श्रीकृष्णने जरासन्धके पुत्र सहदेवके द्वारा राजोचित वस्त्र, अलङ्कार, माल्य एवं चन्दनादि सामग्रियोंसे उन राजाओंका स्वागत करवाया ॥ २५ ॥

भोजयित्वा वरात्रेण सुस्नातान् समलङ्कृतान् ।

भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥

इसके बाद जब राजाओंने अच्छी तरहसे स्नान करके अलङ्कार धारण कर लिये, तब भगवान्ने उन्हें उत्तम भोज्य पदार्थोंसे युक्त भोजन कराया। अनन्तर राजोचित ताम्बूलादि विविध भोगद्रव्योंके द्वारा सहदेवसे पुनः सत्कार करवाया ॥ २६ ॥

ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः ।

विरेजुर्मोचिताः क्लेशात् प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥ २७ ॥

परीक्षित्! भगवान् मुकुन्दने इस प्रकार उन बन्दी राजाओंको बन्धन-कष्टसे मुक्त किया, सहदेव द्वारा सुमार्जित-सम्मानित करवाया। झिलमिलाते कुण्डल धारणकर ये राजा ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे वर्षाकालकी समाप्ति पर मेघोंसे मुक्त चन्द्र, तारे आदि ग्रह शोभा पाते हैं ॥ २७ ॥

रथान् सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् ।

प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान् प्रत्ययापयत् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने उन्हें स्वर्ण एवं मणियोंसे विभूषित एवं उत्तम घोड़ोंसे युक्त रथोंपर चढ़ाया और मधुर वचनोंसे उन्हें सन्तुष्ट किया। इसके बाद उन्हें अपने-अपने राज्यमें भेज दिया ॥ २८ ॥

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात् कृष्णेन सुमहात्मना।

ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥ २९ ॥

उदार-शिरोमणि श्रीकृष्णने उन राजाओंको कष्टोंसे मुक्त किया। अब वे अपने-अपने हृदयोंमें जगत्पति श्रीकृष्ण एवं उनकी अद्भुत लीलाओंका चिन्तन करते हुए अपने-अपने राज्यमें चले गये ॥ २९ ॥

जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम्।

यथान्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥ ३० ॥

राजाओंने अपने-अपने राज्यमें पहुँचकर मन्त्रियों एवं प्रजाओंको परम-पुरुष श्रीकृष्णकी अद्भुत लीला और कृपाके विषयमें कह सुनाया। इसके बाद उनके आदेशानुसार ही अपने कर्तव्योंका सावधानीपूर्वक पालन करने लगे ॥ ३० ॥

जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः।

पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात् सहदेवेन पूजितः ॥ ३१ ॥

राजन्! भीमसेन द्वारा जरासन्धका वध करवाकर और सहदेवके द्वारा सम्मानित होकर भगवान् श्रीकृष्ण भीम एवं अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थ लौट गये ॥ ३१ ॥

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान् धमुर्जितारयः।

हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदाञ्चासुखावहाः ॥ ३२ ॥

शत्रुजन-दुःखावह, शत्रुविजयी तीनों वीरोंने इन्द्रप्रस्थमें उपस्थित होकर शङ्खनाद किया, जिससे उनके बान्धवोंको हर्ष और शत्रुओंको दुःख हुआ ॥ ३२ ॥

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः।

मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथः ॥ ३३ ॥

शङ्ख-निनादको सुनकर इन्द्रप्रस्थके निवासियोंका चित्त हर्षित हो गया। वे समझ गये कि मगधराज जरासन्ध मर गया है और अब राजा युधिष्ठिरके मनोरथ मानो पूर्ण हो ही गये हैं ॥ ३३ ॥

अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनाईनाः ।

सर्वमाश्रावयाञ्चक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् भीम, अर्जुन और श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको प्रणाम किया और अपने-अपने द्वारा किये गये कार्योंका वर्णन किया ॥ ३४ ॥

निशम्य धर्मराजस्तत् केशवेनानुकम्पितम् ।

आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन् प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीराजमोक्षणं नाम

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

परीक्षित्! धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी अनुकम्पासे सम्पन्न हुए इस सारे वृत्तान्तको सुनकर प्रेमसे भर गये। आनन्दसे उनके आँसू प्रवाहित होने लगे और वे हर्षाधिक्यके कारण कुछ भी नहीं कह पाये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तिहत्तरवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

राजसूय यज्ञके आरम्भमें श्रीकृष्णकी अग्र-पूजा एवं
शिशुपालका उद्धार

श्रीशुक उवाच—

एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः।

कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! धर्मराज युधिष्ठिर जरासन्धके वध एवं सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णके उस अद्भुत प्रभावको सुनकर अति हर्षित हुए और प्रसन्न मनसे भगवान्से कहने लगे ॥ १ ॥

श्रीयुधिष्ठिर उवाच—

ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्व्वे लोकाः महेश्वराः।

वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—हे सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण! त्रिलोकीके स्वामी ब्रह्मा और शङ्कर, तीनों लोकोंके गुरु सनकादि, इन्द्रादि लोकपाल तथा समस्त जीव भी आपका आदेश पानेके लिए विकल रहते हैं, यदि यह मिल जाता है तो अपना सौभाग्य मानकर उसे शिरोधार्य करते हैं और ये वचन कहते रहते हैं ॥ २ ॥

स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम्।

धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥

हे भूमन्! हे अनन्त! ऐसे सर्वशक्तिमान्, परमेश्वर, कमललोचन कहाँ आप और कहाँ हम जैसे शासकाभिमानी, परन्तु वास्तवमें अति दीन-हीन। आप हमारे आदेशोंका पालन करते हैं—यह कैसी विडम्बना (विरोधी बात) है! यह मनुष्य-लीलाका आपके लिए अभिनय नहीं तो और क्या है? ॥ ३ ॥

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।

कर्मभिर्वद्धते तेजो हसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥

हे देव ! उदय तथा अस्त होनेसे जिस प्रकार सूर्यके तेजकी वृद्धि अथवा हास नहीं होते, उसी प्रकार दूसरोंपर अनुग्रह आदि कर्मोंके द्वारा आपके प्रभावमें भी वृद्धि अथवा हास (क्षय) नहीं होते, क्योंकि आप 'एक' (अन्य कोई ईश्वर न रहनेके कारण) एवं 'अद्वितीय' हैं। अर्थात् आप सजातीय अर्थात् अवतार एवं अवतारी भेदसे रहित तथा विजातीय भेदसे भी रहित हैं, क्योंकि माया शक्ति और जीव शक्ति—दोनों आपकी ही हैं। 'सर्वनियन्ता' (परन्तु भक्तवत्सल) एवं 'ब्रह्मरूप' (सर्वव्यापक होनेके कारण आपका आच्छादन अर्थात् आप सीमा-विशिष्ट नहीं) हैं ॥ ४ ॥

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ।

त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृती ॥ ५ ॥

हे अजित ! हे माधव ! 'यह मैं हूँ और यह मेरा है तथा यह तू है और यह तेरा'—दैहिक विषयोंमें इस प्रकारकी विविध भेद-बुद्धि तो पशुओंकी (मूर्खोंकी) होती है। आपके अनन्य-भक्तोंमें ऐसी विकृत भेद-बुद्धि नहीं होती। उनकी बुद्धि तो चिन्मय होती है ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान् स ऋत्विजः ।

कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन् ! धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार कहकर श्रीकृष्णकी अनुमतिसे यज्ञोचित समय आनेपर यज्ञकर्मोंमें निपुण वेदज्ञ ब्राह्मणोंको होता (ऋत्विज/आचार्य/पुरोहित) के रूपमें वरण कर लिया ॥ ६ ॥

द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः ।

वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥

विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः।
 पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च॥८॥
 अथर्व्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः।
 वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः॥९॥

इस यज्ञमें श्रीव्यासदेव, भारद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, वीतिहोत्र, मधुश्छन्दा, वीरसेन एवं अकृतव्रण—ये सब ऋषि-महर्षि पधारे थे॥७-९॥

उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः।
 धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः॥१०॥
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः।
 तत्रेयुः सर्व्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप॥११॥

हे राजन्! उस समय निमन्त्रित लोगोंमें पुत्रोंके साथ धृतराष्ट्र, महामति विदुर, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह एवं कृपाचार्य आदि अन्यान्य अतिथिगण भी वहाँ पधारे। देशके सभी राजा, उनके अधीन मन्त्री, प्रजा तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि भी यज्ञ देखनेके लिए उत्सुक होकर उस स्थानपर उपस्थित हुए॥१०-११॥

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः।
 कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम्॥१२॥

इसके बाद वरण किये हुए ऋत्विज ब्राह्मणोंने यज्ञभूमिको सोनेके हलसे जुतवाया और वहीं पर राजा युधिष्ठिरको शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञमें दीक्षित कर दिया॥१२॥

हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा।
 इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चभवसंयुताः॥१३॥
 सगणाः सिद्धगन्धर्व्वा विद्याधरमहोरगाः।
 मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः॥१४॥

राजानश्च समाहूता राजत्न्यश्च सर्वशः।

राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै।

मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ १५ ॥

प्राचीन कालमें वरुणदेवके राजसूय यज्ञमें जिस प्रकार यज्ञके सभी पात्र सोनेके बने हुए थे, उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिरके यज्ञमें भी स्वर्ण-पात्रोंका ही प्रयोग किया गया था। ब्रह्मा, महेश्वर, इन्द्रादि लोकपाल, सपरिवार सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानागगण, मुनिगण, यक्ष राक्षस, खग, किन्नर, चारण, बड़े-बड़े राजाओं एवं राजपत्नियोंको निमन्त्रित किया गया था, अतः वे सभी राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे। वहाँ अनुष्ठानकी तैयारियाँ देखकर कोई भी किञ्चित् मात्र भी विस्मित नहीं हुआ, क्योंकि कृष्ण-भक्तोंके लिए इस प्रकारका समृद्ध अनुष्ठान युक्ति-सङ्गत एवं सम्भवपर ही है ॥ १३-१५ ॥

अयाजयन् महाराजं याजका देववर्चसः।

राजसूयेन विधिवत् प्राचेतसमिवामराः ॥ १६ ॥

हे राजन्! पूर्वकालमें देवताओंने जिस प्रकार वरुणदेवके द्वारा यज्ञ करवाया था, उसी प्रकार देवताओंके समान तेजस्वी याजकोंने वैदिक रीतिसे राजा युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ सम्पन्न करवाया ॥ १६ ॥

सूत्येऽहन्यवनीपालो याजकान् सदसस्पतीन्।

अपूजयन् महाभागान् यथावत् सुसमाहितः ॥ १७ ॥

इसके बाद राजा युधिष्ठिरने सोमाभिसव अर्थात् सोमलतासे रस निकालनवाले दिनपर सुसमाहित चित्तसे सभाके श्रेष्ठ सदस्योंका एवं याजकोंका (ऋत्विकोंका) विधिपूर्वक पूजन किया (वैदिक पद्धतिके अनुसार यज्ञमें भाग लेनेवालोंको सोम नामक लताका रस पिलाया जाता है) ॥ १७ ॥

सदस्याग्रार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः।

नाध्यगच्छन्नैकान्त्यात् सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥ १८ ॥

अब सभा-स्थित सभासद परस्पर यह विचार करने लगे कि सदस्योंमें सबसे पहले किसकी पूजा—अग्रपूजा होनी चाहिये। योग्य पुरुषोंकी बहुलताके कारण किसी एक विशिष्ट व्यक्तिके लिए सर्वसम्मतिसे कोई निर्णय न हो सका। तब सहदेवने इस प्रकार कहा—(सहदेव परिस्थितिके अनुकूल सठीक परामर्श देनेके लिए विख्यात थे) ॥ १८ ॥

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान् सात्वतां पतिः।

एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥

सहदेवने कहा—हे सभासदो! इस सभा-स्थलपर यदुवंश-शिरोमणि (सात्वतपति) अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण ही पूजनीय पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ और अग्रपूजाके पात्र हैं; क्योंकि वे ही सर्वदेवमय हैं और वे ही देश, काल एवं द्रव्यादि स्वरूपोंमें वर्तमान हैं ॥ १९ ॥

यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः।

अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥ २० ॥

एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत्।

आत्मनात्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ २१ ॥

हे सभासदो! यह विश्व उनका ही रूप है और उनके ही अधीन है, समस्त यज्ञ जिनकी उपासनाके उपाय स्वरूप हैं तथा अग्नि, आहुति, मन्त्र आदि सब उन्हींके रूप हैं। सांख्य, योग आदि भी एकमात्र उन्हींको लक्ष्य करते हैं। वे ही एक अद्वितीय, स्वप्रतिष्ठ एवं अजन्मा हैं। वे परमेश्वर हैं और अन्तर्यामीरूपमें अपनी मायाशक्तिसे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति, संहार करते हैं ॥ २०-२१ ॥

विविधानीह कर्माणि जनयन् यदवेक्षया।

ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥

मानव उन्हींकी कृपासे इस जगत्में तप, योग आदि विविध कर्मोंका अनुष्ठान करके धर्म, अर्थ काम एवं मोक्षादि शुभ फलोंको प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

तस्मात् कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम्।

एवं चेत् सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥

अतः पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी ही अग्रपूजा (श्रेष्ठतमरूपमें पूजा) करना उचित है। ऐसा किये जानेसे समस्त प्राणियोंकी और अपनी भी पूजा हो जाती है ॥ २३ ॥

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शने।

देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥ २४ ॥

जो चाहते हैं कि पूजा-सम्मानरूपी उनके दानका फल अक्षय बना रहे, उन्हें समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी, भेदबुद्धिरहित, शान्त एवं अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित श्रीकृष्णको ही उद्देश्य करके दान करना चाहिये। यही विधि सार्वकालिक एवं सार्वलौकिक है। इस विषयमें यदि किसीका विमत है, तो वह अपना मत स्थापन करे। मैं उसका समाधान करूँगा ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत् तूष्णीं कृष्णानुभाववित्।

तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! सहदेव श्रीकृष्णके माहात्म्य एवं प्रभावको जानते थे। यह कहकर वे शान्त हो गये। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरकी सभामें उपस्थित सभी सज्जनगण एक स्वरसे 'साधु साधु', 'बहुत ठीक' कहकर सहदेवकी बातका समर्थन करके उन्हें धन्यवाद देने लगे ॥ २५ ॥

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम्।

समर्हयद्दृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरका हृदय समुपस्थित ब्राह्मणोंकी आज्ञा एवं साधु, साधु सुनकर अभिभूत हो गया। उन्होंने समझ लिया कि श्रीकृष्णका अग्रपूजन ही सभासदोंका अभिप्राय है। उन्होंने अति प्रीति एवं प्रणयसे विभोर होकर श्रीकृष्णकी सम्यक् प्रकारसे पूजा की ॥ २६ ॥

तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः।

सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बो वहन् मुदा॥ २७॥

वासोभिः पीतकौषेयैर्भूषणैश्च महाधनैः।

अर्हयित्वाश्रुपूर्णाक्षो नाशकत् समवेक्षितुम्॥ २८॥

उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको पखारा और उस त्रिलोकपावन चरणोदकको अतीव हर्षके साथ अपने, अपनी पत्नी, मन्त्रियों एवं कुटुम्बियोंके सिरोंपर छिड़का। युधिष्ठिर जब पीतवर्णके रेशमी वस्त्र एवं महामूल्य आभूषण भगवान्को समर्पण कर रहे थे, तब उनकी आँखें आनन्दाश्रुओंसे भर गयीं। वे अपने सेव्य भगवान् श्रीकृष्णको भलीभाँति देख भी नहीं पा रहे थे॥ २७-२८॥

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्व्वे प्राञ्जलयो जनाः।

नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः॥ २९॥

उस समय वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने श्रीकृष्णके इस प्रकारके पूजा-अर्चनको देखकर हाथ जोड़े और 'नमस्कार है, नमस्कार है, जय हो, जय हो' शब्दोंको उच्च स्वरसे कहते हुए सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा स्वयं ही होने लगी॥ २९॥

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठा-

दुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः।

उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी,

संश्रावयन् भगवते परुषाण्यभीतः॥ ३०॥

इधर सहदेवके द्वारा किये गये श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन सुनकर अपने आसनपर बैठे शिशुपालका चित्त क्षुब्ध हो रहा था। अन्यान्य लोग भी उनकी प्रशंसा कर रहे थे तो वह और भी सहन नहीं कर सका। शिशुपाल भरी सभामें अपने आसनसे उठा और निर्भयतापूर्वक हाथ उठाकर भगवान् श्रीकृष्णको सुना-सुनाकर बड़ी कठोर बातें कहने लगा॥ ३०॥

ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः।

वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥

आज यह लोक-प्रवाद वास्तवमें यथार्थ ही सिद्ध हुआ है कि दुर्लभ्य काल ही समस्त विषयोंका ईश्वर है, क्योंकि आज बालकके वचनोंसे बड़े-बूढ़े ज्ञानियोंकी मति भी भ्रमित हुई है।

शिशुपालने पूजाके आरम्भमें कुछ न कहकर पूजोपरान्त जो कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि यदि मैं इस समय विनत होकर बहुत व्यक्तियोंको साथ लेकर कृष्णके अपूज्यत्वका प्रतिपादन करता हूँ तो मेरी बातको कोई निरस्त नहीं कर पायेगा, परन्तु वे किसी अन्य व्यक्तिकी अग्रपूजाके लिए व्यवस्था कर लेंगे और यज्ञ भी भलीभाँति सम्पन्न हो जायेगा। अतः यज्ञ नष्ट करानेके लिए इस समय मुझे मौन ही रहना पड़ेगा। कृष्णकी पूजा होनेके बाद शास्त्र-वचनोंसे मैं उसका अपूज्यत्व स्थापित करूँगा कि जिस स्थलपर अपूज्योंकी पूजाकी जाती है एवं पूज्योंका व्यतिक्रम किया जाता है, वहाँ मङ्गल कार्योंमें विघ्न आते हैं। तब मेरी बात सुनकर मेरे सङ्गी राजागण, युधिष्ठिरके अन्य भाई-बन्धु, दुर्योधनादि एवं ब्राह्मण (वेद-अविद्) वहाँसे चले जायेंगे। इसके बाद हाहाकार आरम्भ होगा और मेरा मनोरथ पूर्ण होगा ॥ ३१ ॥

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम्।

सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत् सम्मतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥

हे सभासदो! आप लोग अग्रपूजाके योग्य पात्रका निर्णय करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। अतः “श्रीकृष्ण अग्रपूजाके लिए सर्वोपयुक्त हैं”—बालक सहदेवकी इस बातको ठीक मानकर ग्रहण न करें ॥ ३२ ॥

तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान्।

परमर्षीन् ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ३३ ॥

सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ।

यथा काकः पुरोडाशं सपर्या कथमर्हति ॥ ३४ ॥

यहाँ इस सभामें बड़े-बड़े तपस्वी, विद्वान्, तत्त्वज्ञ, निष्पाप, व्रतनिष्ठ, परमर्षि एवं लोकपालोंके द्वारा पूजित सभापति व्यक्ति विराजमान हैं, उनका अतिक्रमण करके किस प्रकार यह कुलको कलङ्कित करनेवाला ग्वाला भला अग्रपूजाका अधिकारी हो सकता है? कौआ क्या देवलभ्य यज्ञके भागका पुरोडाश ग्रहण करनेके योग्य हो सकता है? ॥ ३३-३४ ॥

वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।

स्वैरवर्त्ती गुणैर्हीनः सपर्या कथमर्हति ॥ ३५ ॥

न तो यह किसी वर्णका पालन करता दिखायी देता है और न ही किसी आश्रमका। सारे धार्मिक कृत्योंसे यह बहिष्कृत है और इसका कुल भी ऊँचा नहीं है। कोई भी गुण इसमें दिखायी नहीं देता, यह वेद और लोक-मर्यादाओंका उल्लङ्घन करके स्वेच्छापूर्वक आचरण करनेवाला किस प्रकारसे प्रथमपूजाका पात्र हो सकता है? ॥ ३५ ॥

ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ।

वृथापानरतं शश्वत् सपर्या कथमर्हति ॥ ३६ ॥

आप सभी लोग यह जानते हैं कि राजा ययातिने इसके वंशको शाप दे रखा है और सज्जनोंने भी इस वंशका समाजसे बहिष्कार कर रखा है। विशेषरूपसे ये लोग सदा-सर्वदा ही मधुपानमें आसक्त रहते हैं। अतः यह यदुवंशी श्रीकृष्ण किस प्रकार अग्रपूजा प्राप्त कर सकता है? ॥ ३६ ॥

ब्रह्मर्षिसेवितान् देशान् हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ।

समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥ ३७ ॥

ये यादव ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित मथुरा आदि पुण्य भू-भागका परित्याग करके वेद-चर्चासे रहित समुद्रमें दुर्ग बनाकर द्वारकामें

रहने लगे हैं और डाकुओंकी तरह सारी प्रजाको सताते रहते हैं ॥ ३७ ॥

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ।

नोवाच किञ्चिद्भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥

परीक्षित्! शिशुपालका सारा शुभ नष्ट हो गया था। इसीसे वह श्रीकृष्णको लक्ष्य करके दुर्वचन कहता रहा। सिंह जिस प्रकार सियारकी 'हुँआ हुँआ' पर ध्यान नहीं देता, भगवान् ने भी उसकी अनर्गल बातोंका कोई उत्तर नहीं दिया, मौन रहे ॥ ३८ ॥

भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ।

कर्णौ पिथाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥

परन्तु सभासद श्रीकृष्णके प्रति इस प्रकारके निन्दापरक वचन सह न सके। उन्होंने अपने कानोंको ढक लिया और क्रोधपूर्वक चेदि-नरेश शिशुपालकी भर्त्सना की। “हे शिशुपाल! तेरे प्राण निकल जायें!”—यह कहते हुए वे सभासे निकल गये ॥ ३९ ॥

निन्दां भगवतः शृण्वन् तत्परस्य जनस्य वा ।

ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्युतः ॥ ४० ॥

जो लोग भगवान् अथवा तत्परायण भक्तोंकी निन्दा सुनकर उस स्थानसे शीघ्र ही दूर नहीं चले जाते, वे निन्दक व्यक्तिके समान पुण्य-भ्रष्ट एवं नरक-गामी होते हैं ॥ ४० ॥

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकय-सृञ्जयाः ।

उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥

हे राजन्! श्रीकृष्णकी निन्दा सुनकर क्रोधसे भरे हुए पाण्डुपुत्र तथा मत्स्य, कैकय और सृञ्जय आदि वीर शिशुपालको मार डालने लिए अपने अस्त्रोंको लेकर आसनसे उठ खड़े हुए ॥ ४१ ॥

ततश्चैद्यस्त्वसम्भ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी ।

भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥

हे भरतकुलनन्दन ! शिशुपाल वहीं निर्भयतापूर्वक डटा रहा तथा बिना किसी सोच-विचारके सभास्थलपर ही कृष्णपक्षीय राजाओंको ललकारते हुए उसने ढाल-तलवार निकाल ली और युद्धके लिए तैयार हो गया ॥ ४२ ॥

तावदुत्थाय भगवान् स्वान् निवार्य स्वयं रुषा।

शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहार पततो रिपोः ॥ ४३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण भी उस समय आसनसे खड़े हो गये और स्वपक्षीय वीरोंको रोक दिया। क्रोधसे भरे हुए उन्होंने छुरेके समान तीक्ष्ण धारवाले सुदर्शन चक्रसे अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शिशुपालका सिर काट दिया ॥ ४३ ॥

शब्दः कोलाहलोऽथासीच्छिशुपाले हते महान्।

तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥ ४४ ॥

शिशुपालके मरते ही सभाके बीचमें महा कोलाहल मच गया। उसके समर्थक राजागण अपने जीवनकी रक्षाके लिए सभास्थल छोड़कर इधर-उधर भाग गये ॥ ४४ ॥

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत्।

पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्युता ॥ ४५ ॥

आकाशसे टूटा हुआ तारा जिस प्रकार भूमिमें समा जाता है, उसी प्रकार सभी प्राणियोंके सामने ही शिशुपालकी देहसे एक तेजोमयी ज्योति निकली और श्रीकृष्णके विग्रहमें प्रवेश कर गयी।

(शिशुपालकी आत्म-ज्योति ऊपर वैकुण्ठ जाकर और वहाँसे लौटकर श्रीकृष्णके चरणोंमें लीन होकर स्थित रही। वैकुण्ठका पार्षद-शरीर अनश्वर है, इसलिए आकाशसे गिरे उल्काके समान ऐक्य धारण करके वह ज्योति कृष्णमें ही प्रवेश कर गयी। कृष्ण-विग्रहमें प्रवेश करके अपने प्रभु वैकुण्ठनाथके पासमें ही रही। कृष्ण-लीलाके अन्तमें अपने प्रभु वैकुण्ठनाथके साथ ही

प्रभास क्षेत्रसे वैकुण्ठ चली गयी। लोक-प्रसिद्धि है कि राजसूय यज्ञके समय शिशुपाल सायुज्य प्राप्त करके श्रीकृष्णके विग्रहमें ही रहा) ॥ ४५ ॥

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया

धिया ।

ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ ४६ ॥

परीक्षित्! यह शिशुपाल भगवान्‌के प्रति तीन जन्मोंसे वैर भाव रख रहा था और अभिवृद्धित विद्वेष-बुद्धिसे ही उनका निरन्तर चिन्तन करता रहता था। इसीसे देहावसानके समय वह भगवान्‌के साथ तन्मय हो गया—उनका पार्षद हो गया। प्रति क्षण ध्यान करनेसे जीवको ध्येय वस्तुका सारूप्य प्राप्त हो ही जाता है ॥ ४६ ॥

ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ।

सर्वान् सम्पूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥

हे राजन्! शिशुपालकी सद्गति होनेके बाद चक्रवर्ती-सम्राट् युधिष्ठिरने सभासदों एवं ऋत्विगोंको प्रचुर दक्षिणा दी और सभीकी शास्त्रोक्त रीतिसे पूजा-अर्चना की। तत्पश्चात् दीक्षान्त कर्म अर्थात् प्रायश्चित्तादि हवनका समापन हुआ और धर्मराज युधिष्ठिरने यज्ञान्त अवभृथ स्नान किया ॥ ४७ ॥

साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।

उवास कतिचिन्मासान् सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार परम योगेश्वर श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूययज्ञ सम्पन्न कराया। इसके बाद बन्धु-बान्धवोंकी प्रार्थनासे वे और भी कुछ महीने इन्द्रप्रस्थमें रह गये ॥ ४८ ॥

ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ।

ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥

राजा युधिष्ठिरकी इच्छा न रहनेपर भी देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अपने गमनके विषयमें उनसे किसी भी प्रकारसे

अनुमति ले ली और अपनी पटरानियों एवं मन्त्रियोंके साथ द्वारका पुरीकी यात्रा की॥ ४९ ॥

वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम्।

वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात् पुनःपुनः॥ ५० ॥

हे राजन्! वैकुण्ठवासी जय-विजयको विप्र-शापके कारण तीन बार पृथ्वीपर जन्म-ग्रहण करना पड़ा था। इस उपाख्यानको आपको विस्तारपूर्वक मैं पहले ही (सप्तम स्कन्धमें) सुना चुका हूँ॥ ५० ॥

राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः।

ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव॥ ५१ ॥

महाराज युधिष्ठिर राजसूययज्ञ समाप्त करके दीक्षान्त विधिके अनुसार अवभृथ स्नानादि सम्पन्न करके ब्राह्मणों एवं क्षत्रियोंकी सभामें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो देवताओंकी सभामें साक्षात् देवराज इन्द्र हों॥ ५१ ॥

राज्ञा सभाजिताः सर्व्वे सुरमानवखेचराः।

कृष्णं क्रतुञ्च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मदा॥ ५२ ॥

राजा युधिष्ठिरने देवता, मानव एवं आकाशचारियोंका (शिवजीके साथ रहनेवाले योगी आदिका) भी बड़े सम्मानके साथ सत्कार किया। वे सभी भगवान् श्रीकृष्ण एवं राजसूययज्ञकी प्रशंसा करते हुए बड़े आनन्दसे अपने-अपने लोकोंको चले गये॥ ५२ ॥

दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम्।

यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य ताम्॥ ५३ ॥

दुर्योधन तो कलिके अंशसे उत्पन्न, धर्म-द्वेषी और कुरुकुल-व्याधि था। वह राजा युधिष्ठिरकी इस समृद्धिको सहन नहीं कर पाया। उसके अतिरिक्त अन्यान्य सभीने श्रीकृष्ण एवं यज्ञकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ ५३ ॥

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम्।
 राजमोक्षं वितानञ्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे शिशुपालवधो नाम
 चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

परीक्षित्! जो मनुष्य बन्दी राजाओंकी मुक्ति, राजसूययज्ञका अनुष्ठान एवं जरासन्ध, शिशुपाल वध आदि श्रीकृष्णकी लीलाओंका कीर्तन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौहत्तरवें अध्यायका
 श्लोकानुवाद समाप्त।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

राजसूय यज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान

श्रीराजोवाच—

अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम्।

सर्व्वं मुमुदिरे ब्रह्मन् नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥

दुर्योधनं वर्ज्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः।

इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥

श्रीपरीक्षित् महाराजने कहा—हे भगवन्! हे ब्रह्मन्! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आये देवताओं, ऋषियों एवं राजाओंमें दुर्योधनके अतिरिक्त अन्य सभी परम आनन्दित थे—यह मैंने आपके मुखसे श्रवण किया। आप यह बतलाइये कि दुर्योधनके असन्तोषका कारण क्या था? राजसूय यज्ञके परिशिष्ट भागका भी सिंहावलोकन-न्यायसे वर्णन करें ॥ १-२ ॥

श्रीबादरायणिरुवाच—

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः।

बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन् प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन्! आपके दादा युधिष्ठिर महात्मा थे। राजसूययज्ञमें उनके प्रेम-बन्धनमें बँधे हुए अनेक बन्धु-बान्धव विभिन्न प्रकारकी सेवा-परिचर्याके लिए नियुक्त थे ॥ ३ ॥

भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः।

सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥

सतां शुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने।

परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥

युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः।

बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सन्तर्दनादयः ॥ ६ ॥

निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा।

प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

भीमसेन पाकशालाकी देखरेखके लिए अध्यक्ष पदपर, दुर्योधन कोषाध्यक्ष पदपर, सहदेव समागत अतिथियोंके स्वागत-सत्कारके लिए, नकुल विविध वस्तुओंके संग्रहके लिए, अर्जुन गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषाके लिए, श्रीकृष्ण आये हुए अतिथियोंके पाद-प्रक्षालनके लिए (अभिमानि व्यक्ति पाद-द्यौत कार्यमें असमर्थ होते हैं, इसलिए परम करुण कृष्ण इस कार्यमें स्वयं ही नियुक्त हो गये), द्रौपदी परिवेषणके लिए, प्रशस्तचेता कर्ण दान कार्यमें जुट गये। युयुधान, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर आदि महात्मा, भूरिश्रवा आदि बाह्यीकके पुत्रगण, सन्तर्दन आदि अन्यान्य समागत राजा उस महायज्ञके अवसरपर विभिन्न प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त हो गये। हे राजश्रेष्ठ! ये सभी स्वेच्छासे राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिए सेवा-कार्यमें संलग्न थे ॥ ४-७ ॥

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु

स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः।

चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे

चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥

हे राजन्! चेदिराज शिशुपाल देहान्त होनेपर जब श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रविष्ट हो गया एवं युधिष्ठिरके द्वारा सभी ऋत्विकों, प्रमुख सदसत्पतियों (सभामें सहयोग करनेवाले सदस्यों), बहुशास्त्रज्ञ विद्वानों तथा बान्धवोंका प्रिय एवं मधुर वचनों, बहुमूल्य अलङ्कारों और विविध दक्षिणादिके द्वारा अच्छी प्रकारसे सत्कार हो गया, तब धर्मराज युधिष्ठिर सबके साथ दीक्षान्त स्नानके लिए गङ्गाजी गये ॥ ८ ॥

मृदङ्गशङ्खपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः ।

वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥

उस स्नान-महोत्सवके समय मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल (पणव), नौबत (धुन्धुरी), नगारे (आनक) एवं अन्यान्य विचित्र वाद्ययन्त्र बजाये गये ॥ ९ ॥

नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ।

वीणावेणुतलोत्रादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥

नर्तकियाँ आनन्दसे भरकर नृत्य करने लगीं और गायक समूह बनाकर गाने लगे। उनकी वीणा, वेणु एवं झाँझ-मञ्जीरेसे उठी तुमुल ध्वनि स्वर्गलोकका स्पर्श करने लगी ॥ १० ॥

चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वाभिः ।

स्वलङ्कृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥

उस समय स्वर्ण हारोंसे विभूषित सारे राजा जब गङ्गाकी ओर जा रहे थे तब चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे युक्त उत्तम हाथियों, रथों एवं अश्वों पर सुसज्जित सिपाही तथा पदचारी सैनिक भी उनके साथ चल रहे थे ॥ ११ ॥

यदुसृज्जयकाम्बोजकुरुकेकयकोशलाः ।

कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥ १२ ॥

यदु, सृज्जय, काम्बोज, कुरु, केकय एवं कोशलवंशीय राजागण यजमान धर्मराज युधिष्ठिरको आगे करके अपनी-अपनी सेनाओंके साथ भूमिको कम्पित करते हुए नगरसे बाहर निकल रहे थे ॥ १२ ॥

सदस्यत्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ।

देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥

उस समय यज्ञके सदस्य, ऋत्विज आदि उत्तम विप्रगण तुमुल स्वरमें वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चल रहे थे। देवता, पितर एवं गन्धर्व भी पुष्प-वर्षण करते हुए यशोगान कर रहे थे ॥ १३ ॥

स्वलङ्कृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः।

विलिम्पन्त्योऽभिषिञ्चन्त्यो विजहुर्विविधै रसैः ॥ १४ ॥

चन्दनादि गन्ध, पुष्प-मालाओं, आभूषणों एवं सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित इन्द्रप्रस्थके नर-नारी जल, तेल, दूध, मक्खन आदि विविध रसमय द्रव्योंको एक दूसरेपर डालकर भिगो देते तथा एक-दूसरेके शरीरपर मल देते। इस प्रकार वे क्रीड़ा करते हुए चल रहे थे ॥ १४ ॥

तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः ।

पुम्भिलिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजह्वारयोषितः ॥ १५ ॥

पुरुष वाराङ्गनाओंको तेल, गोरस (दधि आदि गव्य वस्तुएँ), गोरोचन, सुगन्धित जल, हरिद्रा, गाढ़ कुङ्कुम आदि द्रव्योंसे सराबोर कर देते और वाराङ्गनाएँ भी इन्हीं वस्तुओंसे पुरुषोंके शरीरोंपर लेपन कर देतीं—इस प्रकार वे परस्पर विहार करते हुए चल रहे थे ॥ १५ ॥

गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्-

देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः।

ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः

सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ॥ १६ ॥

उस महोत्सवको देखनेके लिए जिस प्रकार देवाङ्गनाएँ आकाश मार्गसे व्योमयानपर चढ़कर आयी थीं, उसी प्रकार इन्द्रप्रस्थकी राजमहिलाएँ भी अङ्गरक्षकोंके द्वारा सुरक्षित होकर सुन्दर-सुन्दर पालकियोंपर विराजित होकर आयी थीं। उस समय उनके पतियोंके ममेरे भाई श्रीकृष्ण और उनके भाई गद, सारण, भीम एवं अर्जुन आदि बन्धु (देवर) भी उन रानियोंको तरह-तरहके गन्धमय जलके सेचन द्वारा अभिषिक्त कर रहे थे, जिससे वे लजाकर मुसकराने लगतीं और उनका मुखकमल प्रफुल्लित हो जाता। श्रीकृष्ण, गद आदिका उनके पतियोंके साथ मातुलेय

(ममेरे) भाईका सम्बन्ध था, अतः देवरोके साथ हास-परिहास हो रहा था। ऐसा हास-परिहास पतिके भागिनेय (ननदोई) के साथ भी किया जा सकता है॥ १६॥

ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः

क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः।

औत्सुक्यमुक्तकबराच्यवमानमाल्याः

क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः॥ १७॥

उन लोगोंके द्वारा रङ्गीन जल आदि डालनेसे रानियोंके वस्त्र गीले हो गये। वस्त्रोंके शरीरसे संलग्न होनेके कारण उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग, स्तन, जङ्घाएँ एवं कटि भाग कुछ झलकने लगे। उत्सुकतावश उनके केश-बन्धन ढीले पड़ गये, उनपर बँधी हुई मालाएँ भी गिरने लगीं। वे भी दृति अर्थात् चर्म निर्मित जल-निक्षेप यन्त्रों (पिचकारियों) और पात्रोंमें रङ्ग एवं गन्धोदकादि भर-भरकर अपने देवों एवं उनके सखाओंपर डालने लगीं। उस अवसरपर उनकी मनोरम अङ्ग-भङ्गिमाके साथ उन्हें इधर-उधर विचरते देखकर कामियोंके (दुर्योधनादिके) चित्तमें क्षोभ उत्पन्न होने लगा॥ १७॥

स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम्।

व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव॥ १८॥

चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिर उस समय उत्तम अश्वोंसे योजित एवं स्वर्णिम मालाओंसे सुसज्जित रथपर सवार होकर अपनी रानियोंके साथ विराजित होकर ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो स्वयं यज्ञराज—राजसूययज्ञ अपनी प्रयाज आदि क्रियाओंके साथ मूर्तिमान होकर सुशोभित हो रहा हो॥ १८॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः।

आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया॥ १९॥

तदनन्तर याज्ञिक विप्रोंने पत्नी-संयाज (यज्ञ विशेष क्रिया) नामक दीक्षान्त कृत्यका अनुष्ठान कराया और बादमें आचमनके

द्वारा शुद्धि करवाकर राजा युधिष्ठिरको महारानी द्रौपदीके साथ गङ्गा-स्नानके लिए कहा ॥ १९ ॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् ।

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥

उस समय मनुष्यों द्वारा बजायी गयी दुन्दुभियोंके साथ देव-दुन्दुभियाँ भी बजने लगीं। देवता, ऋषि, पितर एवं मानव सभी पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥

सस्नुस्तत्र ततः सर्व्वे वर्णाश्रमयुता नराः ।

महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥

महाराज युधिष्ठिरके स्नान कर लेनेपर सभी वर्णों एवं आश्रमोंसे सम्बन्धित धर्मावलम्बी मनुष्योंने भी स्नान किया। गङ्गा-स्नान करनेसे महापापी भी तत्काल पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ २१ ॥

अथ राजाहते क्षौमे परिधाय स्वलङ्कृतः ।

ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् महाराज युधिष्ठिरने नवीन रेशमी धोती एवं उत्तरीय वस्त्र धारण किये और विविध प्रकारके अलङ्कारोंसे अपनेको अलंकृत किया। इसके बाद उन्होंने याजकों, सदस्यों, विद्वान् ब्राह्मणों एवं अतिथियोंको वस्त्र तथा अलङ्कार प्रदान करके सम्मान किया ॥ २२ ॥

बन्धुन् ज्ञातीन् नृपान् मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः ।

अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण-परायण महाराज युधिष्ठिर अपने बन्धुओं, कुटुम्बियों, मित्रों, सुहृदों, अन्य राजाओं—सभीका पुनः-पुनः सम्मान किया करते थे ॥ २३ ॥

सर्व्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस-

गुष्णीषकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ।

नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्ट-

वक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥

वहाँ उपस्थित सभी पुरुष उस समय मणियोंसे जड़े कुण्डल, पुष्पोंके हार, पगड़ी, अङ्गरखा, सुन्दर वस्त्र एवं महामूल्यवान् हार पहनकर देवताओंके समान दिव्य प्रतीत हो रहे थे। स्त्रियोंकी मुख-कान्ति भी कानोंके दोनों कुण्डलों एवं घुँघराली अलकावलियोंसे अति सुशोभित हो रही थी। सोनेकी करधनी पहननेके कारण वे और भी सुन्दर लग रही थीं ॥ २४ ॥

अर्थर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥

देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः।

पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥

हे राजन्! तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरने परम शीलवान् पुरोहित, महान वेदज्ञ, याजक, सदस्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा, देव, ऋषि, पितर, भूत-प्रेत और अपने अनुयायियोंके साथ लोकपाल आदि सभीकी भलीभाँति पूजा की। उसके बाद वे लोग महाराज युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर अपने-अपने स्थानपर चले गये ॥ २५-२६ ॥

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम्।

नैवातृप्यन् प्रशंसन्तः पिबन् मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥

हे राजन्! मनुष्य जिस प्रकार अमृतका आस्वादन करके कभी तृप्त नहीं होते, बल्कि अमृत पान करनेकी उनकी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, उसी प्रकार देवता आदि समस्त लोग महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी प्रशंसा करते हुए पूरी तरहसे अघा नहीं रहे थे बल्कि प्रशंसा कर-करके बड़े ही आनन्दित हो रहे थे ॥ २७ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान्।

प्रेम्णा निवारयामास कृष्णञ्च त्यागकातरः ॥ २८ ॥

सुहृदोंके चले जानेपर विरह पीड़ाकी कल्पनासे राजा युधिष्ठिरका चित्त विकल हो रहा था, अतः उन्होंने बड़े प्रेमपूर्ण अनुरोधके साथ सुहृद, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवों एवं श्रीकृष्णको रोक लिया और अपने पास इन्द्रप्रस्थमें ही ठहरा दिया ॥ २८ ॥

भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सीत् तत्प्रियङ्करः ।

प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बार्दींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥

हे वत्स! युधिष्ठिरको आनन्दित करनेके लिए भगवान् श्रीकृष्णने साम्ब आदि यदुवीरोंको तो द्वारका भेज दिया और स्वयं इन्द्रप्रस्थमें ही रह गये ॥ २९ ॥

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ।

सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीदगतज्वरः ॥ ३० ॥

महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुकम्पासे अपने मनोरथरूप विशाल एवं दुस्तर महासमुद्रको भलीभाँति पार कर लिया और उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी ॥ ३० ॥

एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ।

अतप्यद् राजसूयस्य महित्वञ्चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥

परीक्षित! एक दिनकी बात है कि अच्युत भगवान् श्रीकृष्णके प्रति आसक्तचित्तवाले राजा युधिष्ठिरकी अन्तःपुरकी समृद्धि एवं राजसूय यज्ञकी महिमाको देखकर दुर्योधनका चित्त ईर्ष्यासे सन्तप्त होने लगा ॥ ३१ ॥

यस्मिन् नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मी-

नाना विभान्ति किल विश्वसृजोपकल्पताः ।

ताभिः पतीन् द्रुपदराजसुतोपतस्थे

यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥

इस अन्तःपुरमें विश्वके सर्वश्रेष्ठ कलाकार मय दानवने जो महल बनाये थे, उनमें नरेन्द्र, दानवेन्द्र एवं देवेन्द्रोंकी विविध विभूतियों और श्रेष्ठ सौन्दर्यको स्थान-स्थानपर प्रकटित किया गया

था। महारानी द्रौपदी समस्त ऐश्वर्योसे अपने पतियोंकी सेवा करती थीं। इस विचित्र ऐश्वर्यको देखकर दुर्योधनके हृदयमें बड़ी ईर्ष्या होती थी। एक बात और थी, वह यह कि दुर्योधनका चित्त द्रौपदीमें अत्यासक्त था और यही उसकी जलन एवं सन्तापका प्रधान कारण भी था॥ ३२॥

यस्मिस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं
श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदङ्घ्रिशोभम्
मध्ये सुचारुकुचकुङ्कुमशोणहारं
श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम्॥ ३३॥

उस समय उस अन्तःपुरमें भगवान् श्रीकृष्णकी हजारों महिषियाँ निवास कर रही थीं। उनका कटिभाग अति सुरम्य था। उनके गलोंके मोतियोंके सुन्दर हार कुचोंपर लगे कुङ्कुम रागसे रञ्जित होनेके कारण लाल-लाल दिखायी दे रहे थे। चञ्चल कुण्डलों एवं केशोंसे उनका मुखमण्डल अत्यधिक शोभायमान हो रहा था। नितम्बके भारसे वे मन्द गतिसे चला करती थीं, जिसके कारण उनके नूपुरकी मृदु ध्वनिसे उनके चरणोंकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी॥ ३३॥

सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट्।
वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा॥ ३४॥

आसीनः काञ्चने साक्षादासने मधवानिव।

पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च वन्दिभिः॥ ३५॥

एक बार धर्मपुत्र महाराजाधिराज युधिष्ठिर मय द्वारा बनाये हुए सभा-भवनमें अपने भाइयों, बान्धवों, अनुचरों एवं अपने हिताहित-निर्देशक और नेत्र-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके साथ विराजमान थे। ब्रह्माके समान ऐश्वर्यमयी साम्राज्य-लक्ष्मीसे समन्वित होकर वे स्वर्णसिंहासनपर विराजित इन्द्रके समान सुशोभित हो रहे थे। बन्दीगण उनकी स्तुति कर रहे थे (श्रीकृष्ण आँखोंके सङ्केतसे

ही युधिष्ठिरादिको हित-अहितका निर्देश कर दिया करते थे) ॥ ३४-३५ ॥

तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप।

किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥ ३६ ॥

हे राजन्! उसी समय दुःशासन आदि भाइयोंके साथ अभिमानी दुर्योधनने मुकुट एवं हार पहने हुए और हाथमें तलवार लिये द्वारपालोंको तिरस्कृत करते हुए उस सभाभवनमें प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत्।

जले च स्थलवद्भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥

वहाँ वह मयदानवकी मायासे रचित कौशलसे विमोहित हो गया। कहीं-कहीं वह स्थलको जल समझकर अपने वस्त्रके प्रान्त (छोर) को उठा लेता और कहीं-कहीं जल भागको स्थल समझकर ज्यों ही आगे बढ़ता, वह उस जलमें गिर पड़ता ॥ ३७ ॥

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे।

निवार्यमाणा अप्यङ्ग राजा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३७ ॥

हे वत्स! उस समय दुर्योधनको गिरता हुआ देखकर भीमसेन, राजरानियाँ, राजा एवं अन्यान्य लोगोंको हँसी आ जाती। राजा युधिष्ठिर उन्हें रोक रहे थे, पर उन्हें सङ्केतसे श्रीकृष्णका अनुमोदन प्राप्त था (श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार हरण करनेके इच्छुक थे। कलह-बीजका आरोपण करने हेतु ही भीमादिके लिए उनका अनुमोदन था। मय दानवकी माया तो निमित्तमात्र थी) ॥ ३८ ॥

स व्रीडितोऽवागवदनो रुषा ज्वलन्

निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम्।

हाहेति शब्दः सुमहानभूत् सता-

मजातशत्रुर्विमना इवाभवत्।

बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भरं

समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥

इससे राजा दुर्योधनका मुख लज्जासे झुक गया और क्रोधसे उसका चित्त उद्दीप्त हो उठा। वह मौन रहा और सभाभवनसे निकलकर हस्तिनापुर चला गया। उस समय सत्पुरुषोंके मध्यसे खेदको सूचित करनेवाली हाहाकारकी ध्वनि उठी। अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरका चित्त भी दुःखी हो गया। वे अनमने-से (अन्यमनस्क) बैठे रहे, परन्तु जिनके दृष्टिपातसे दुर्योधनको भ्रम हुआ था, पृथ्वीके भार-हरण करनेके इच्छुक वे भगवान् श्रीकृष्ण भी मौन ही रहे ॥ ३९ ॥

एतत् तेऽभिहितं राजन् यत्पृष्टोऽहमिह त्वया।

सुर्योधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे दुर्योधनमानभङ्गो नाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

हे राजन्! तुमने मुझसे यह पूछा था कि उस महान राजसूय यज्ञमें दुर्योधनने ईर्ष्यावश दुर्व्यवहार क्यों किया? उसका सारा वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पिचहत्तरवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शाल्वके साथ यादवोंका युद्ध

श्रीशुक उवाच—

अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप।

क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! मनुष्यकी-सी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी उस अद्भुत लीलाको सुनो, किस प्रकारसे उन्होंने सौभ नामक विमानके अधिपति शाल्वका वध किया था ॥ १ ॥

शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्धाह आगतः।

यदुभिर्निर्जितः सङ्ख्ये जरासन्धादयस्तथा ॥ २ ॥

शाल्व शिशुपालका मित्र था। रुक्मिणी देवीके विवाहके अवसर पर विदर्भ नगरमें जरासन्ध आदि अन्यान्य वीरोंके साथ शाल्व भी शिशुपाल-पक्षसे वहाँ उपस्थित था। उस समय यादव वीरोंने युद्धमें जरासन्ध आदिके साथ शाल्वको भी पराजित कर दिया था ॥ २ ॥

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोत् शृण्वतां सर्वभूभुजाम्।

अयादवां क्षमां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥

शाल्वने समस्त राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि मैं इस पृथ्वीको यादवोंसे रहित कर दूँगा, आपलोग मेरे बल-पराक्रमको देखना ॥ ३ ॥

इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम्।

आराधयामास नृपः पांशुमुष्टिं सकृद्ग्रसन् ॥ ४ ॥

परीक्षित्! मूर्ख शाल्व यह प्रतिज्ञा करनेके बाद दिनमें केवल एक बार ही एक मुट्ठी धूल फाँककर देवाधिदेव पशुपति महेश्वरकी आराधना करता था ॥ ४ ॥

संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः ।

वरेण च्छन्दयामास शाल्वं शरणागतम् ॥ ५ ॥

उमापति भगवान् आशुतोष शङ्करका यह स्वभाव है कि वे अपने आराधकोंकी उपासनासे बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। शाल्वकी आराधनासे प्रसन्न होनेपर भी इस आशङ्कासे कि कृष्ण-विद्वेषीको दिया हुआ वरदान अवश्य ही विफल होगा; उन्होंने उसे शीघ्र दर्शन नहीं दिया। शरणागत शाल्व द्वारा अत्यन्त आग्रह करनेपर अन्ततः उन्होंने एक वर्ष बाद दर्शन दिया और शाल्वसे वर माँगनेके लिए कहा ॥ ५ ॥

देवासुरमनुष्याणां

गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।

अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥

तब शाल्वने वर माँगा कि वे उसे ऐसा विमान प्रदान करें, जो उसकी इच्छानुरूप गतिशील हो, यादवोंके लिए अति भयङ्कर हो और असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग एवं राक्षस आदि किसीके भी द्वारा अभेद्य हो (अर्थात् उसे तोड़ा न जा सके) ॥ ६ ॥

तथेति गिरीशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः ।

पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात् सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥

तब महादेवने कहा, 'तथास्तु।' तदनन्तर उन्हींके आदेशसे शत्रुपुर-विजयी मयदानवने लोहेका सौभ नामक विमान बनाकर शाल्वको दे दिया। वह विमान एक नगरके रूपमें था ॥ ७ ॥

स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् ।

ययौ द्वारवर्ती शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥

शाल्व इस स्वेच्छागामी, अन्धकारसे भरे हुए और किसीकी भी पहुँचसे बाहर दुर्धर्ष यानको प्राप्त करके यादवोंके वैर भावको स्मरण करता हुआ द्वारकापर आक्रमण करनेके लिए चल दिया ॥ ८ ॥

निरुद्ध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ।
 पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥
 सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः।
 विहारान् स विमानाग्रययात्रिपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥
 शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः।
 प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद्रजसाच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥

हे भरतकुल-प्रवर! वहाँ पहुँचकर शाल्वने अपनी विशाल सेनाके द्वारा द्वारकाको चारों ओरसे घेर लिया और फल-फूलसे लदी हुई वहाँकी वाटिकाओं एवं उद्यानोंको उजाड़ने लगा तथा पुरद्वारों, फाटकों, प्रासादों अट्टालिकाओं, चारदीवारियों (प्रान्त-भित्तियों) एवं सार्वजनिक मनोरञ्जनके स्थलोंको तोड़-फोड़ने लगा। उसने छिपकर लौह-विमानके अग्रभागसे शस्त्रोंकी बौछार लगा दी। उससे बड़े-बड़े पत्थर, वृक्ष, वज्र, सर्प और ओलोंकी बरसात होने लगी। भयङ्कर बवण्डर उठ खड़ा हुआ, सारी दिशाओंमें धूल-ही-धूल छा गयी ॥ ९-११ ॥

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम्।
 नाभ्यपद्यत शं राजस्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥

हे राजन्! पुराकालमें त्रिपुरासुरने जिस प्रकार पृथ्वीको पीड़ित कर रखा था, उसी प्रकार शाल्वके सौभ विमानने भी द्वारका नगरीको इतना उत्पीड़ित कर दिया था कि वहाँके निवासियोंको क्षणभरके लिए कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी ॥ १२ ॥

प्रद्युम्नो भगवान् वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः।
 मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशः ॥ १३ ॥

महायशस्वी वीरवर प्रद्युम्नने अपनी प्रजाको इस प्रकार उत्पीड़ित देखकर कहा 'डरो मत' (तुमलोग रुको, मैं शाल्वको मारकर अभी यहाँ आता हूँ) और रथपर सवार होकर शाल्वके विमानकी ओर चल पड़े ॥ १३ ॥

सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः।

हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥ १४ ॥

अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः।

निर्ययुर्दृशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥ १५ ॥

उस समय सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, छोटे भाइयोंके साथ अक्रूर, हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक, सारण एवं अन्यान्य धनुर्धारी प्रधान-प्रधान यादव-वीर रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल आदि चतुरङ्गिणी सैन्य मण्डलसे संरक्षित होकर तथा कवच आदि धारण करके उनके पीछे-पीछे चल दिये ॥ १४-१५ ॥

ततः प्रवृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह।

यथासुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ १६ ॥

तब जैसे पुराकालमें देवताओंके साथ दानवोंका घमासान युद्ध हुआ था, उसी प्रकार यादवोंके साथ शाल्वपक्षीय वीरोंका रोमाञ्चित कर देनेवाला घमासान युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १६ ॥

ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः।

क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७ ॥

सूर्यदेव जिस प्रकार प्रातःकाल होनेपर क्षणमात्रमें ही रात्रिकालीन अन्धकारको क्षणभरमें ही नष्ट कर डालते हैं, उसी प्रकार प्रद्युम्नने भी दिव्यास्त्रोंके द्वारा शाल्वकी सम्पूर्ण सेनाका क्षणकालमें ही संहार कर डाला ॥ १७ ॥

विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः।

शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १८ ॥

शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान्।

दशभिर्दशभिर्नेतृन् वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥

प्रद्युम्नके बाणोंमें सोनेके पंख (पुच्छले) लगे थे, फल (बाणका अग्रभाग) लोहेसे बना था तथा समतल भाग गाँठोंसे युक्त था। उन्होंने पच्चीस बाणोंसे शाल्वके प्रधान सेनापति

द्युमान्को घायल कर दिया और सौ बाणोंसे शाल्वपर प्रहार किया। इसके बाद एक-एक बाणसे प्रत्येक सैनिकपर, दस-दस बाणोंसे प्रत्येक सारथिपर एवं तीन-तीन बाणोंसे उनके वाहनोपर प्रहार किया ॥ १८-१९ ॥

तदद्भुतं महत् कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः।

दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥

महात्मा प्रद्युम्नके इस प्रकारके अतिशय अद्भुत और महान कार्यको देखकर स्वपक्ष और परपक्षके समस्त वीर हृदयसे उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २० ॥

बहुरूपैकरूपं तद् दृश्यते न च दृश्यते।

मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥ २१ ॥

मय दानव द्वारा रचित मायामय वह सौभ विमान कभी तो बहुत-से रूपोंको प्रकट करता और कभी एक रूप धारण कर लेता। कभी दिखायी देता तो कभी अदृश्य होकर यादवोंको कहीं भी दिखायी नहीं देता। यादवगण निश्चय ही नहीं कर पा रहे थे कि वह है कहाँ? ॥ २१ ॥

क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिर्मूर्ध्नि जले क्वचित्।

अलातचक्रवद्भ्राम्यत् सौभं तद् दुरवस्थितम् ॥ २२ ॥

शाल्व इस सौभ विमानको एक क्षणमें भूमिपर तो दूसरे ही क्षण आकाशमें ले जाता, कभी पर्वतके शिखरोंके ऊपर पहुँचा देता तो कभी जलमें तैराता। कभी उसे अलातचक्रकी भाँति (प्रज्वलित काष्ठ यन्त्रके समान) घुमाता। एक क्षणके लिए भी वह उस विमानको कहीं भी स्थिर नहीं करता था ॥ २२ ॥

यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः।

शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चन् शरान् सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥

यादव-वीर जिस समय, जिस स्थानपर सौभ एवं सैनिकोंके साथ शाल्वको देखते; वे उसी समय, उस स्थानपर, उसे लक्ष्यकर बाणोंकी वर्षा करने लगते ॥ २३ ॥

शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ।

पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत् परेरितैः ॥ २४ ॥

शाल्व-शत्रु यदुओंके बाण विषैले सर्पके विषके समान असह्य एवं सूर्य तथा अग्निके संस्पर्शके समान तेजस्वी थे, जिनसे सौभ और शाल्व-सेना उत्पीड़ित हो रही थी और स्वयं शाल्व भी मूर्च्छित हो गया था ॥ २४ ॥

शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्हिताः ।

न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥ २५ ॥

वृष्णिवंशी यादव वीर ऐहिक-पारलौकिक दोनों लोकोंकी विजयके अभिलाषी थे। यही कारण था कि शाल्वके सेनापतियों द्वारा चलाये गये हथियारोंकी वर्षासे पीड़ित होनेपर भी रणभूमिमें उन्होंने अपने-अपने नियत स्थानोंका परित्याग नहीं किया ॥ २५ ॥

शाल्वामात्यो द्युमान् नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः ।

आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥

परीक्षित्! शाल्वका द्युमान् नामक एक महाबलशाली मन्त्री था, जिसे पहले प्रद्युम्नजीने पच्चीस बाण मारकर घायल कर दिया था। वह स्वयं प्रद्युम्नजीके सम्मुख आया और कृष्ण-लौहसे (फौलादसे) बनी गदासे उनपर प्रहार करके जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥ २६ ॥

प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिन्दमम् ।

अपोवाह रणात् सूतो धर्म्मविद्धारुकात्मजः ॥ २७ ॥

इस गदाघातसे रिपुदमन प्रद्युम्नका वक्षःस्थल विदीर्ण-सा हो गया। उनका सारथि था दारुक-पुत्र, जो बड़ा धर्मज्ञ था, वह रथ चलाते हुए अपने स्वामीको युद्धक्षेत्रसे हटाकर अन्यत्र ले गया।

(चिदानन्दमय प्रद्युम्नके वक्षःस्थलका प्राकृत द्युमान्के गदाघात द्वारा शीर्ण होना सम्भव नहीं है। यह तो लीला-शक्ति द्वारा युद्धमें उसके उत्साह-रस-वर्द्धनके लिए आवेगका उत्पादन मात्र है। यह

भी परिलक्षित होता है कि दारुक-पुत्र प्रद्युम्नके प्रति महास्नेहवान् है) ॥ २७ ॥

लब्धसंज्ञो मुहूर्त्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत्।

अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥

क्षणकालमें ही प्रद्युम्नको चेतना प्राप्त हो गयी। वे सारथिसे कहने लगे—हे सूत! तूने यह बहुत अनुचित किया। तू रणक्षेत्रसे मुझे इस प्रकार क्यों हटा लाया? यह तो मेरा पलायन हुआ न ॥ २८ ॥

न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः।

विना मत् क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ॥ २९ ॥

सूत! तू कायर है, नपुंसक है। आज तेरे दुर्बल-चित्तके कारण मेरी ख्याति कलङ्कित हो गयी। मैं पापग्रस्त हो गया हूँ, अन्यथा यदुकुलमें उत्पन्न अन्य किसीका भी युद्धका इस प्रकारसे परित्याग (पलायन) सुनायी नहीं देता ॥ २९ ॥

किं नु वक्ष्येऽभिसङ्गम्य पितरौ रामकेशवौ।

युद्धात् सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥ ३० ॥

तू बतला तो सही, अब अपने ताऊ बलरामजी और पिता श्रीकृष्णके समक्ष जाकर क्या कहूँगा? उनके प्रश्नोंका उत्तर मैं किस प्रकार दूँगा? सभी लोग कहेंगे कि मैं युद्धसे पलायन कर आया। अपनी प्रतिष्ठाके अनुरूप कहनेके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं ॥ ३० ॥

व्यक्तं मे कथयिषन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः।

क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥

मेरी भाभियाँ निश्चय ही मुझपर हँसेंगी और मुझसे कहेंगी—हे वीर! कहो—शत्रुसे युद्ध करते हुए युद्धभूमिसे भाग कैसे आये? जरा बतलाओ तो! तुम तो ऐसे कायर कभी न थे! तुममें दुर्बलता कैसे उत्पन्न हो गयी? मूढ़! तुझे धिक्कार है। सूत! तू मुझे जानता ही नहीं ॥ ३१ ॥

सारथिरुवाच—

धर्मं विजानतायुष्मन् कृतमेतन्मया विभो।

सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥

सारथिने कहा—हे आयुष्मान्! हे स्वामी! विपत्ति आनेपर सारथि रथीकी एवं रथी भी विपदग्रस्त होनेपर सारथिकी रक्षा करते हैं—यह नियम जाननेके कारण ही मैंने यह धर्म-संस्तुत कार्य किया है ॥ ३२ ॥

एतद्विदित्वा तु भवान् मयापोवाहितो रणात्।

उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे शाल्वयुद्धं नाम

षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

आप युद्धस्थलपर शत्रुके गदाघातसे मूर्च्छित हो गये थे, अतः सारथि-धर्मको समझते हुए आपको युद्धसे हटाकर यहाँ ले आया ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके छिहत्तरवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा शाल्वका उद्धार

श्रीशुक उवाच—

स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकाम्मुकः।

नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! इसके बाद क्षात्र-धर्म प्रवीण प्रद्युम्नजीने जलमें स्नान किया और युद्ध-विच्युतिरूप विपत्ति परिहारके लिए आचमनपूर्वक कवच धारण कर लिया। धनुष हाथमें लेकर उन्होंने सारथिसे कहा—हे सूत! तू युद्धके लिए वीर द्युमान्के समीप मुझे पुनः ले चल ॥ १ ॥

विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः।

प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ॥ २ ॥

सारथि उन्हें वहाँ ले आया। द्युमान् यदु-सैनिकोंको विध्वंस किये जा रहा था। रुक्मिणी-सुत प्रद्युम्न उसपर उलटकर वार करने लगे। उन्होंने हँसते हुए उससे कहा 'जितनी सामर्थ्य है, प्रहार कर' और यह कहकर आठ नाराच (लोहेके बने) बाणोंके प्रहारसे उसे घायल कर दिया ॥ २ ॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् सूतमेकेन चाहनत्।

द्वाभ्यां धनुश्च केतुञ्च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥

इन बाणोंमेंसे उन्होंने चार बाणोंसे उसके चार घोड़ोंको, एक बाणसे उसके सारथिको, दो बाणोंसे उसके धनुष एवं पताकाको छिन्न कर दिया और एक अन्य बाणसे द्युमान्के मस्तकपर प्रहार किया ॥ ३ ॥

गदसात्यकि साम्बाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम्।

पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे सञ्छिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥

इधर गद, सात्यकि, साम्ब आदि यादव वीर भी शाल्वकी सेनाका संहार करने लगे। सौभ विमानमें स्थित वीरोंकी गर्दनें कटने लगीं और वे इसी स्थितिमें समुद्रमें गिरने लगे ॥ ४ ॥

एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम्।

युद्धं त्रिनवरात्रं तदभूत् तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥

यदुवंशी वीर और शाल्व सैनिक एक-दूसरे पर प्रहार करते रहे। यह घनघोर एवं तुमुल (भयानक) युद्ध सत्ताईस दिन और रात तक चलता रहा ॥ ५ ॥

इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना।

राजसूयेऽथ निवृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥

कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम्।

निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥

उन दिनों धर्मपुत्र युधिष्ठिरके आमन्त्रणपर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे। राजसूय यज्ञ सम्पन्न हो चुका था और शिशुपालका निधन भी हो चुका था। वहाँ श्रीकृष्णको अति घोर अपशकुन दिखायी देने लगे। अतः उन्होंने कुरुवंशी बड़े-बूढ़ों, ऋषि-मुनियों, बुआ कुन्ती एवं उनके पुत्रोंसे अनुमति ली और द्वारका लौट आये ॥ ६-७ ॥

आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसङ्गतः।

राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥

मार्गमें वे मन-ही-मन विचार करने लगे—मैं बड़े भइया पूज्य बलरामजीके साथ इन्द्रप्रस्थ आ गया। शिशुपालपक्षीय क्षत्रिय मेरी इस अनुपस्थितिका लाभ उठाकर हमारी पुरीका निश्चय ही विनाश कर रहे होंगे ॥ ८ ॥

वीक्ष्य तत् कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम्।

सौभञ्च शाल्वराजञ्च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥

द्वारका पहुँचकर भगवान् केशवने स्वजनोका ऐसा उत्पीड़न देखा, तो पुरीकी रक्षाके लिए उन्होंने बलदेवको नियुक्त कर दिया तथा अन्तःपुर-स्थित सभी पट्टमहिषियोंको विशिष्ट सैनिकों द्वारा गुप्त पथसे द्वारकाके भीतर सुरक्षित स्थानोंपर प्रवेश करा दिया। अनन्तर सौभ-यान एवं शाल्वको देखकर दारुकको इस प्रकार आदेश दिया—॥ ९ ॥

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यान्तिकमाशु वै।

सम्भ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम्॥ १० ॥

दारुक ! तुम शीघ्र ही मेरे रथको शाल्वके समीप ले चलो। यह सौभपति शाल्व बड़ा मायावी है, पर तुम विचलित मत होना ॥ १० ॥

इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः।

विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम्॥ ११ ॥

भगवान्का आदेश पाकर दारुक रथपर सवार हो गया और उसे शाल्वकी ओर ले चला। जैसे ही यह रथ रणक्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ, ध्वजाके अग्रभागपर अङ्कित अरुण-अनुज-गरुड-चिह्नको देखते ही यदुवंशी एवं शाल्व सैनिक—दोनोंने ही पहचान लिया कि श्रीकृष्ण आ रहे हैं ॥ ११ ॥

शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः।

प्राहरत् कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे॥ १२ ॥

अब तक शाल्वकी सेना प्रायः नष्ट हो चुकी थी। शत्रुसेनाके अधीश्वर शाल्वने श्रीकृष्णको युद्धक्षेत्रमें उपस्थित देखते ही दारुकको लक्ष्य करके एक महाशक्ति छोड़ी। यह शक्ति भयङ्कर ध्वनि करती हुई तीव्रतापूर्वक चली ॥ १२ ॥

तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा।

भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाच्छिनत्॥ १३ ॥

शौरि भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि यह शक्ति दिशाओंको उल्काके समान प्रकाशित करती हुई आकाश-मार्गसे वेगपूर्वक चली आ रही है, तो उन्होंने बाणोंके प्रहारसे उसे सैकड़ों भागोंमें खण्ड-खण्ड कर दिया ॥ १३ ॥

तञ्च षोडशभिर्विद्धवा बाणैः सौभञ्च खे भ्रमत् ।

अविध्यच्छरसन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥

इसके बाद भगवान्ने सोलह बाणोंसे शाल्वपर प्रहार किया। तत्पश्चात् आकाशमें इधर-उधर घूमते हुए सौभको बाणोंकी मुसलाधार वर्षासे इस प्रकार भेद डाला, जिस प्रकार सूर्य अपनी रश्मियोंसे आकाशको भेद देते हैं। (प्रस्तुत स्थलपर श्यामवर्ण एवं शीघ्रगति सौभविमानकी उपमा आकाश एवं सूर्यके साथ, असंख्य शरोंकी उपमा ताप-दानकारी सूर्यकी रश्मियोंके साथ एवं कृष्णकी उपमा सर्वतेजपराभवकारी सूर्यके साथ दी गयी है) ॥ १४ ॥

शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ।

बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत् तदद्भुतम् ॥ १५ ॥

तभी शाल्वने शार्ङ्गधनुषधारी श्रीकृष्णकी बायीं भुजामें इस प्रकारसे बाण मारा कि उनके हाथसे शार्ङ्ग धनुष गिर पड़ा और यह एक अद्भुत घटना घट गयी ॥ १५ ॥

हाहाकारो महानासीद्भूतानां तत्र पश्यताम् ।

निनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥

युद्धदर्शी देवता एवं सभी प्राणी तुमुल ध्वनिसे हाहाकार करने लगे। सौभपति शाल्व उच्च स्वरसे गर्जना करता हुआ श्रीकृष्णको लक्ष्य करके इस प्रकार कहने लगा— ॥ १६ ॥

यत् त्वया मूढ नः सख्युभ्रातुर्भार्या हतेक्षताम् ।

प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥ १७ ॥

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ।

नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥

शाल्वने कहा—रे मूढ़! तूने देखते-देखते ही मेरे मित्र एवं अपनी बुआके पुत्र अपने भाई शिशुपालकी होनेवाली भार्याका अपहरण कर लिया और राजसूय सभामें जब वह असावधान था, तूने उसे मार डाला। मैं देखता हूँ, आज मेरे सम्मुख तू कितनी देर ठहरता है। अपनेको अपराजेय माननेवाले अभिमानी! अब मैं तीखे बाणोंके प्रहारसे तुझे उस यमालयमें भेज रहा हूँ, जहाँसे लौटना सम्भव नहीं॥ १७-१८॥

श्रीभगवानुवाच—

वृथा त्वं कथसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम्।

पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः॥ १९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे मूर्ख! तू व्यर्थ ही आत्म-प्रशंसा किये जा रहा है, तेरे सिरपर सवार मृत्यु तुझे दिखायी नहीं दे रही। वीर अपनी वीरता दिखाते हैं, कभी भी वाचालता (बकवाद) का प्रकाशन नहीं करते॥ १९॥

इत्युक्त्वा भगवान् शाल्वं गदया भीमवेगया।

तताड जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक्॥ २०॥

भगवान्ने इस प्रकार कहकर क्रोधपूर्वक अपनी भयङ्कर एवं वेगवती गदासे शाल्वके कन्धे एवं वक्षःस्थलके सन्धि-देशपर (हँसलीपर) प्रहार किया, जिससे वह रक्त उगलता हुआ काँपने लगा॥ २०॥

गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत।

ततो मुहूर्त्ते आगत्य पुरुषः शिरसाच्युतम्।

देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन्॥ २१॥

इधर जब गदा भगवान् अच्युतके पास लौट आयी, तब शाल्व अन्तर्हित हो गया। एक क्षण बाद ही कोई एक पुरुष वहाँ आया। उसने नतमस्तक होकर श्रीकृष्णको प्रणाम किया और कहा—“मुझे देवकीजीने भेजा है।” वह रोते हुए और भी कहने लगा—॥ २१॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल।

बद्ध्वापनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥ २२ ॥

हे श्रीकृष्ण! हे श्रीकृष्ण! हे पितृवत्सल! हे महाबाहो! कसाई जिस प्रकार किसी पशुको बाँधकर ले जाता है, उसी प्रकार शाल्व भी तुम्हारे पिताको बाँधकर ले गया है ॥ २२ ॥

निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः।

विमनस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥

यह अशुभ समाचार सुनते ही श्रीकृष्णका हृदय दुःखी हो गया। वे मनुष्य-स्वभावका आश्रय लेते हुए करुणा एवं खेद व्यक्त करने लगे तथा पितृ-स्नेहके वशीभूत हो प्राकृत जीवके समान कहने लगे ॥ २३ ॥

कथं राममसम्भ्रान्तं जित्वाजेयं सुरासुरैः।

शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान् विधिः ॥ २४ ॥

अहो! वास्तवमें दैव बड़ा बलवान है, अन्यथा अल्प बल-पौरुष वाला यह शाल्व देव और असुरोंके लिए अजेय एवं सदा-सर्वदा सजग रहनेवाले बलदेव भइयाको पराजित करके पिताजीको किस प्रकार हर लाता? ॥ २४ ॥

इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः।

वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥ २५ ॥

जब भगवान् गोविन्द इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उसी समय सौभरपति शाल्व वसुदेवके समान मायारचित एक मूर्तिको ले आया और इस प्रकार कहने लगा— ॥ २५ ॥

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि।

वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत् पाहि बालिश ॥ २६ ॥

शाल्वने कहा—रे मूर्ख! तूने जिसके अनुग्रहसे इस पृथ्वीपर शरीर धारण किया है, वह यही तेरा पिता वसुदेव है और जिसके

लिए तू जी रहा है, मैं तेरे समक्ष ही इसका वध कर रहा हूँ, तुझमें सामर्थ्य है, तो इसकी रक्षा कर ॥ २६ ॥

एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः ।

उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥

मायावी शाल्वने श्रीकृष्णकी भर्त्सना करते हुए तलवारसे वसुदेवका सिर काट दिया और उसे लेकर आकाश-स्थित सौभयानमें प्रवेश कर गया ॥ २७ ॥

ततो मुहूर्त्तं प्रकृतावुपप्लुतः

स्वबोध आस्ते स्वजनानुषङ्गतः ।

महानुभावस्तदबुद्ध्यदासुरीं

मायां स शाल्वप्रसृतो मयोदिताम् ॥ २८ ॥

महाप्रभावशाली श्रीकृष्ण स्वतःसिद्ध ज्ञानसे परिपूर्ण एवं अनुभवकी असीम शक्तिसे सम्पन्न हैं। तब भी वे स्वजन स्नेहके वशीभूत हो क्षण भरके लिए मनुष्योचित मोहसे ग्रस्त-से हो गये। पल भरके बाद ही वे समझ गये कि यह तो मय दानव द्वारा बतलायी हुई एवं शाल्व द्वारा विस्तारित माया है ॥ २८ ॥

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं

प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ।

स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं

सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥

स्वप्नसे जागा हुआ व्यक्ति जिस प्रकार जागनेपर स्वप्नमें देखे गये पदार्थोंको पुनः नहीं देखता, उसी प्रकार प्रबुद्ध भगवान् श्रीकृष्णको भी युद्धक्षेत्रमें न तो दूत और न ही पिताका शरीर—कुछ भी दिखायी नहीं दिया। अब तो वे सौभ विमानमें स्थित आकाशचारी शाल्वको देखकर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥ २९ ॥

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च नान्विताः।

यत् स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥ ३० ॥

हे राजर्षे! इस स्थलपर श्रीकृष्णके मोह आदि असम्भव वृत्तान्तरूप जिस अंशका वर्णन किया गया है, वह पूर्वापरका विचार न करनेवाले किसी-किसी ऋषिके मतको आधार बनाकर कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा कहना उन्हींके वचनोंके विपरीत है—यह बात वे भूल जाते हैं।

[जैसा कि पहले बतलाया गया है कि श्रीकृष्ण सङ्कर्षणकी आज्ञा लेकर स्वयं इन्द्रप्रस्थ चले गये थे और यहाँ पर वर्णित अंशको देखा जाय तो जिन श्रीकृष्णने अपशकुनोंको देखकर द्वारका आते समय विचार किया था—मैं पूजनीय बलदेवके साथ इन्द्रप्रस्थ चला आया, शत्रु निश्चय ही इस अवसरपर मेरी पुरीको विनष्ट कर रहे होंगे। अतः पहले ग्रन्थमें (वाक्यमें) श्रीकृष्णका एकाकी गमनका वर्णन हुआ और इस अंशमें बलदेवके साथ गमन इत्यादि जो मनोकल्पित वर्णित हुआ, वह विरुद्ध होनेके कारण असत्य ही माना जायेगा। अतः यह विचार शुकदेव-सम्मत नहीं हैं। सुर एवं असुरों द्वारा अजेय कृष्णके विषयमें प्राकृत वृत्तियाँ किस प्रकार सम्भव हो सकती हैं? शाल्वकी माया द्वारा कृष्णका मोह सम्भव नहीं है, न ही उसके भयसे शार्ङ्ग धनुषका गिरना सम्भव है। कभी-कभी कोई-कोई वैशम्पायनादि ऋषि मायामलिन चित्तवाने लोगोंके अनुरूप कोई बात कह देते हैं। जिन्हें वे पहले भगवान् कहते हैं, अपने ही वचनोंको भूलकर श्रीकृष्णके शोक-मोहका वर्णन करने लगते हैं] ॥ ३० ॥

क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसम्भवाः।

क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥ ३१ ॥

कहाँ अज्ञानियोंमें रहनेवाले शोक, मोह, स्नेह और भय आदि तथाहाँ अखण्ड ज्ञान, अखण्ड विज्ञान और अखण्ड ऐश्वर्यशाली पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण! भला उनमें शोकादि भावोंकी सम्भावना ही कहाँ है?

(शोक दो प्रकारके होते हैं—अज्ञजात एवं विज्ञजात। अज्ञ अर्थात् असर्वज्ञजन, वे अविद्या-अधीन होनेके कारण भौतिक शोक, मोहादिसे ग्रस्त रहते हैं, जब कि विज्ञ अर्थात् मायातीतजन—इनके शोक, मोहादि चिन्मय होते हैं। भगवान्‌के चरणकमलोंके सेवनसे आत्मविद्या प्राप्त महापुरुषों एवं सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान्‌में अविद्या-जनित दोषोंकी सम्भावना ही नहीं है। अखिलरसामृत-स्वरूप भगवान्‌में ये सभी सञ्चारीभाव रसके अङ्गरूपमें रहते हैं) ॥ ३१ ॥

यत्पादसेवोर्जितयात्मविद्यया,
हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ।
लभन्त आत्मीयमनन्तमैश्वरं,
कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥ ३२ ॥

विशेषरूपसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एवं विशुद्ध सन्त जिनके चरणकमलोंके सेवनसे संवर्द्धनशील आत्मज्ञानके द्वारा अनादि कालसे ही देहादिमें आत्मबुद्धिरूप अज्ञानको (आत्म-विपर्ययको) निरस्त कर डालते हैं तथा भगवद्-दास्यरूप नित्य-स्वरूपको प्राप्त करते हैं, उन विशुद्ध सन्तोंके गति-स्वरूप (शरण्य-स्वरूप) श्रीकृष्णमें मोह किस प्रकारसे सम्भव है? ॥ ३२ ॥

तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा
शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ।
विद्ध्वाच्छिनद्धर्मं धनुः शिरोमणिं
सौभज्य शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥ ३३ ॥

शाल्व बड़े उत्साह और वेगसे बाणोंकी वर्षासे यादव सैनिकोंका उत्पीड़न कर रहा था। अमोघ-पराक्रम भगवान् श्रीकृष्णने भी बाणोंसे शाल्वपर प्रहार करके उसे घायल कर दिया और उसके कवच, धनुष एवं शिरोमणिको छिन्न-भिन्न कर डाला। उन्होंने गदाके आघातोंसे सौभ विमानको भी तोड़ डाला ॥ ३३ ॥

तत् कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं
 पपात तोये गदया सहस्रधा।
 विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदा-
 मुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगादद्भुतम् ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्णके हाथोंसे चलाई हुई गदाके आघातसे सौभ विमान सहस्रों भागोंमें चूर्ण-विचूर्ण होकर समुद्रके जलमें गिर पड़ा। गिरनेके पहले ही शाल्व हाथमें गदा लेकर पृथ्वीपर कूद पड़ा और अच्युत भगवान् श्रीकृष्णकी ओर झपटा ॥ ३४ ॥

आधावतः सगदं तस्य बाहुं
 भल्लेन छित्त्वाथ रथाङ्गमद्भुतम्।
 वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं
 बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी ओर द्रुतगतिसे दौड़कर आते हुए शाल्वके हाथको गदा सहित ही भालेसे काट दिया और उसे मार डालनेके लिए प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र धारण कर लिया। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण शिखरपर भास्करसे युक्त उदयाचलके समान सुशोभित हो रहे थे (उदयाचल उदय होते हुए सूर्यको शिखरपर धारण करता है) ॥ ३५ ॥

जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं
 किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः।
 वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो
 बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥ ३६ ॥

परीक्षित्! इन्द्रने जिस प्रकार वज्रसे वृत्रासुरका सिर काट डाला था, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपने सुदर्शन चक्रसे मायावी शाल्वके मुकुट एवं कुण्डल सहित सिरको काट दिया। उस समय शाल्वके अनुयायी उच्च स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ३६ ॥

तस्मिन् निपतिते पापे सौभे च गदया हते।
 नेदुर्दुन्दुभयो राजन् दिवि देवगणेरिताः।
 सखीनामपचिर्तिं कुर्वन् दन्तवक्रो रुषाभ्यगात् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे सौभवधो नाम
 सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

हे राजन्! इस प्रकार दुराचारी शाल्व मारा गया एवं गदाके प्रहारोंसे उसका सौभ विमान भी चूर्ण-विचूर्ण हो गया। देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगे, जिससे आकाश गूँज उठा। इस ध्वनिको सुनते ही दन्तवक्र, शाल्व, शिशुपालादि अपने मृत बन्धुओंके वैर-प्रतिशोधरूप अन्त्येष्टि-कृत्य सम्पन्न करनेकी अभिलाषासे बड़े रोषके साथ श्रीकृष्णकी ओर दौड़े ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सप्तहत्तरवें अध्यायका
 श्लोकानुवाद समाप्त।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

दन्तवक्र और विदूरथका उद्धार तथा तीर्थयात्रामें
बलरामके हाथसे रोमहर्षण सूतका वध

श्रीशुक उवाच—

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः।

परलोकगतानाञ्च कुर्वन् पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥

एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन्।

पद्भ्यामिमां महाराज माहसत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे महाराज ! महाबलशाली, मूर्ख दन्तवक्र परलोकगत मित्र शिशुपाल, शाल्व एवं पौण्ड्रककी मित्रताका परोक्षरूपसे (कृष्ण-वधरूप) ऋण चुकानेके लिए गदा हाथमें लेकर रणक्षेत्रकी ओर अकेले ही पैदल चल पड़ा। क्रोधपूर्वक चलनेसे उसके पदाघातसे धरती कम्पित हो रही थी ॥ १-२ ॥

तं तथायान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः।

अवप्लुत्य रथात् कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णने दन्तवक्रको गदा हाथमें लेकर सामने आते हुए देखा, तो वे भी गदा हाथमें लेकर रथसे शीघ्र ही कूद पड़े। समुद्रके तटकी भूमि जिस प्रकार सम्मुख आती हुई सिन्धु-तरङ्गों (ज्वार-भाटा) को रोक देती है, उसी प्रकार भगवान्ने उसे रोक दिया ॥ ३ ॥

गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः।

दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥

करूष-नरेश दुरभिमानी दन्तवक्र गदा लेकर उद्यत हो गया और भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगा—हे कृष्ण ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज तुम मेरी आँखोंके सामने आ गये। यह बड़ी

उत्तम बात है। (सरस्वती पक्षमें अर्थ है—अपने तृतीय जन्ममें मुक्तिदानके लिए आये कृष्णसे दन्तवक्रने कहा—आज तृतीय जन्ममें ब्रह्म-शापकी समाप्तिपर मोक्ष-प्रदाता प्रभु दृष्टिपथपर आये हैं, भाग्यवशतः यह मेरा मङ्गल-ही-मङ्गल है) ॥ ४ ॥

त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रधुङ्मां जिघांससि।

अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥

कृष्ण! तुम मेरे मामाके पुत्र हो, इसलिए तुम्हें मारना उचित नहीं है, परन्तु तुमने मेरे मित्रोंको मारा है और मुझे भी मारना चाहते हो। इसलिए रे मूर्ख! आज वज्र-तुल्य गदाके प्रहारसे मैं तुम्हें मार डालूँगा (वसुदेवजीकी बहिन श्रुतश्रवा दन्तवक्रकी माँ है) ॥ ५ ॥

तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः।

बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

रे मूर्ख! मैं मित्र-वत्सल हूँ, उनका कृतज्ञ हूँ। शरीरमें रहनेवाले रोगके समान यद्यपि तुम्हारा परिचय मेरे ममेरे भाईके रूपमें है, तब भी हो तो शत्रु ही। तुम्हारा वध करके मैं परलोकगत मित्रोंके ऋणसे मुक्त हो जाऊँगा ॥ ६ ॥

एवं रूक्षैस्तुदन् वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम्।

गदयाताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्च सः ॥ ७ ॥

परीक्षित! दन्तवक्रने पहले तो कर्कश वचनोंसे श्रीकृष्णको व्यथित किया, बादमें जिस प्रकार महावत अङ्कुशसे हाथीके मस्तकपर आघात करता है, उसी प्रकार वह गदासे भगवान्‌के सिरपर प्रहार करके सिंहके समान गरजने लगा ॥ ७ ॥

गदयाभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः।

कृष्णोऽपि तमहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥ ८ ॥

युद्धस्थलमें अपने सिरपर गदाके द्वारा प्रहार किये जानेपर भी यदुकुल-उद्धारक भगवान् श्रीकृष्ण किञ्चित् मात्र भी विचलित

नहीं हुए, बल्कि उन्होंने कौमोदकी नामक अपनी विशाल गदासे दन्तवक्रके वक्षःस्थलपर बहुत जोरसे प्रहार किया ॥ ८ ॥

गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात् ।

प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन् धरण्यां न्यपतद्वयसुः ॥ ९ ॥

गदाके उग्र प्रहारसे दन्तवक्रका हृदय विदीर्ण हो गया। वह मुखसे रक्त उगलने लगा। उसके केश बिखर गये। दोनों हाथ और दोनों पैर फैल गये। निष्प्राण होकर वह भूमिपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ।

पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥ १० ॥

हे नृप! शिशुपालके वधके समान ही दन्तवक्रका वध हो गया। उसकी देहसे अति सूक्ष्म एवं विचित्र ज्योति निकली और सभी प्राणियोंके सामने ही (शिशुपालके समान) श्रीकृष्णके विग्रहमें समा गयी ॥ १० ॥

विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ।

आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥ ११ ॥

दन्तवक्रका भाई था विदूरथ। भाईकी मृत्युके कारण वह शोकसे विह्वल हो गया। चित्तकी विकलताके कारण वह लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा और श्रीकृष्णका वध करनेकी इच्छासे ढाल-तलवार हाथमें लेकर उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ ॥ ११ ॥

तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ।

शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ १२ ॥

हे राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णने जैसे ही विदूरथको प्रहार करनेके लिए आते हुए देखा, तभी छुरेके समान तीखी धारवाले अपने सुदर्शनसे उसके किरीट एवं कुण्डलसे युक्त सिरको काट दिया ॥ १२ ॥

एवं सौभञ्च शाल्वञ्च दन्तवक्रं सहानुजम्।
 हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥ १३ ॥
 मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः।
 अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥ १४ ॥
 उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः।
 वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालङ्कृतां पुरीम् ॥ १५ ॥

हे राजन्! श्रीकृष्णने शाल्व, उसके विमान सौभ, दन्तवक्र, विदूरथ आदि जिन्हें मारना दूसरोंके लिए असम्भव था, उन सबका संहार कर दिया। इसके बाद उन्होंने अपने स्वागतमें सजी-धजी द्वारकापुरीमें प्रवेश किया। वृष्णिवंशीय श्रेष्ठ यादव उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। देवता एवं मानव उनकी स्तुति कर रहे थे। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, अप्सरा, पितर, यक्ष, किन्नर एवं चारण पुष्प-वर्षण करते हुए विजय-गीत गा रहे थे ॥ १३-१५ ॥

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवान् जगदीश्वरः।
 ईयते पशुदृष्टीनां निर्ज्जितो जयतीति सः ॥ १६ ॥

महायोगी जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण सर्वदा ही महाबलशाली शत्रुओंको पराजित करते रहते हैं परन्तु पशुबुद्धिवाले मूर्ख जरासन्धादि उन्हें कभी-कभी अपने चर्म-चक्षुओंसे पराजित भी देखते हैं। वे सदैव विजयी ही हैं।

[जब दन्तवक्रने सुना कि शिशुपाल मारा गया है, तब वह कृष्णके विरुद्ध लड़ने मथुरा गया। कृष्ण भी मनकी गतिके समान चलनेवाले अपने रथपर सवार होकर क्षणभरमें ही मथुरा पहुँच गये। मथुराके द्वारपर दन्तवक्र एवं वासुदेवका युद्ध पूरे दिन एवं पूरी रात चला। अन्ततः कृष्णने अपनी गदासे उसका वध कर दिया। दन्तवक्र सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुआ। आज इस स्थलको दन्तवक्र-हा अर्थात् दतिहा कहा जाता है। (यह ग्राम आज भी द्वारकाकी ओर अभिमुख होकर स्थित है।) इस ग्रामकी स्थापना कृष्णके प्रपौत्र वज्रके द्वारा की गयी थी। विदूरथको मारनेके बाद

कृष्णने यमुना नदीको पार किया और नन्द-गोकुलमें आ गये। यहाँ वे दो मास तक रहे। अनन्तर श्रीकृष्णने नन्दगोप आदि व्रजवासियोंको अपने दिव्य धाममें पहुँचा दिया और रथसे आकाश मार्गसे यात्रा करते हुए अकेले ही द्वारका लौट आये।

श्रील सनातन गोस्वामीपादने लीलाओंका क्रम इस प्रकार बताया है—सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्र-यात्रा, राजसूय-यज्ञ, द्यूत-क्रीड़ा, द्रौपदी चीरहरणका प्रयास, पाण्डवोंका वनवास, शाल्व एवं दन्तवक्रका वध, कृष्णका वृन्दावन-गमन एवं वृन्दावनीय लीलाओंका समापन] ॥ १६ ॥

श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः।

तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥

हे राजन्! इधर बलदेवने सुना कि पाण्डवोंके साथ कौरवोंके युद्धकी तैयारी चल रही है, वे इस विषयमें निर्लिप्त एवं निरपेक्ष रहनेकी इच्छासे तीर्थ-स्नानके छलसे द्वारकासे प्रयाण कर गये।

(भगवान् श्रीहरिने विदूरथ पर्यन्त असत्-जनोंका वध करके अस्त्र त्याग दिये थे और बलदेवने सूत एवं बल्लवका वध-करनेके बाद अस्त्र त्याग दिये थे। बलदेव पाण्डवोंके साथ कौरवोंके युद्धका आरम्भ सुनकर सोचने लगे—दुर्योधन मुझे प्रिय है और युधिष्ठिर भी मुझे प्रिय है—दोनों ही पक्षोंसे निमन्त्रण आयेगा—मैं किसका पक्ष लूँगा? अतः तीर्थस्थानके छलसे द्वारकासे प्रस्थान कर गये) ॥ १७ ॥

स्नात्वा प्रभासे सन्तर्प्य देवर्षिपितृमानवान्।

सरस्वतीं प्रतिस्नोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥ १८ ॥

वहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंके साथ प्रभास तीर्थमें स्नान किया एवं देव, ऋषि, पितर एवं मानवोंको सलिलोदक-अञ्जलि आदि प्रदान करके उनका तर्पण किया तथा प्रतिलोमगामिनी (पश्चिमसे समुद्रकी ओर प्रवाहित होती हुई) सरस्वतीके तटपर पहुँचे ॥ १८ ॥

पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ।
 विशालं ब्रह्मतीर्थञ्च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥
 यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत ।
 जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २० ॥

हे भरतकुलनन्दन ! तदनन्तर वे पृथूदक, बिन्दुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन तीर्थ, विशालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, प्राची सरस्वती तीर्थ (पूर्व दिशाकी ओर प्रवाहित) एवं गङ्गा-यमुनाके तटोंपर वर्तमान जितने भी तीर्थ हैं, उन सभी स्थानोंपर गये। इसके बाद वे नैमिषारण्य भी गये, जहाँ बड़े-बड़े ऋषि सत्सङ्गरूप महान् सत्र (द्वादश वार्षिक बृहद्-यज्ञका अनुष्ठान) कर रहे थे ॥ १९-२० ॥

तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
 अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥ २१ ॥

दीर्घ कालतक सत्सङ्ग सत्रका नियम लेकर बैठे हुए दीक्षित मुनियोंने जब बलदेवजीको आते हुए देखा, तो अपने-अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम करके उनका अभिनन्दन किया तथा यथाविधि उनकी पूजा-अर्चना की ॥ २१ ॥

सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ।
 रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥

पूजा-सम्मान प्राप्त करके बलदेव अपने अनुयायियोंके साथ आसन पर विराजमान हुए ही थे कि उन्होंने महर्षि व्यासदेवके शिष्य रोमहर्षणको व्यास-गद्दीपर बैठे हुए ही देखा ॥ २२ ॥

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् ।
 अध्यासीनञ्च तान् विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥ २३ ॥

सूत-जातिमें उत्पन्न (प्रतिलोम जातिमें—अर्थात् क्षत्रिय पिता तथा ब्राह्मण माताके सङ्कर विवाहसे उत्पन्न) रोमहर्षण न तो उठकर मेरी अगवानी करता है, न नमस्कारादि करता है, विनय तो इसमें है ही नहीं और इसपर भी अपनेसे श्रेष्ठ ऋषियोंकी

अपेक्षा ऊँचे आसनपर बैठा है—यह सब देखकर बलदेव अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे ॥ २३ ॥

कस्मादसाविमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः।

धर्मपालांस्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥

वे कहने लगे—यह रोमहर्षण प्रतिलोम (निम्न) जातिका होनेपर भी इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं धर्मके रक्षक हम लोगोंका अतिक्रमण करके उच्च आसनपर विराजित है—इस अपराधके कारण यह दुर्बुद्धि निश्चय ही वधके योग्य है ॥ २४ ॥

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च।

सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥

अदान्तस्याविनीतस्य वृथापण्डितमानिनः।

न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ २६ ॥

भगवान् व्यासदेवका शिष्य होनेसे इसने बहुत-से शास्त्रोंका अध्ययन कर लिया है—इसी कारण यह व्यर्थ ही पाण्डित्याभिमानसे ग्रस्त हो गया है। इसमें न आत्म-संयम है, न विनय ही। जितेन्द्रियता भी इसमें दिखायी नहीं देती। इसने इतिहास, पुराण, धर्म-शास्त्र आदिका जो अध्ययन किया है—वे सब नटके द्वारा अधीत (अध्ययन किये हुए) शास्त्रके समान अभिनय मात्र है। इससे न अपना लाभ है और न दूसरेका। (इस प्रकारका अध्ययन किसी प्रकारके गुणोंका उत्पादक न होकर जीविका-निर्वाहका निमित्त मात्र ही है) ॥ २५-२६ ॥

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः।

वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥ २७ ॥

मैं ऐसे धर्म-ध्वजियों (कपटपूर्ण धार्मिक वेशधारियों) के दमनके लिए ही इस लोकमें अवतीर्ण हुआ हूँ। यह तो विशेष रूपसे मेरे द्वारा वध करने योग्य है, क्योंकि पापी व्यक्तिकी भी अपेक्षा यह साक्षात् रूपसे अधिक पाप कर रहा है (ये धर्मध्वजी धर्महीनों पर ही अपनी धर्मवत्ताका प्रदर्शन करते हैं) ॥ २७ ॥

एतावदुक्त्वा भगवान् निवृत्तोऽसद्वधादपि ।

भावित्वात् तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत् प्रभुः ॥ २८ ॥

परीक्षित्! तीर्थयात्रा-नियमके कारण बलदेवजी यद्यपि उस समय दुष्टोंके वधसे विरत हो गये थे, किन्तु होनहारवश उन्होंने पूर्वोक्त वचन कहनेके साथ ही हाथमें स्थित कुशकी नोकसे (कुशके तिनकेके अग्रभागसे) रोमहर्षणका स्पर्श कर दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी ॥ २८ ॥

हाहेतिवादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ।

ऊचुः सङ्कर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥

यह देखकर वहाँ उपस्थित ऋषि-मुनि हाय-हाय करने लगे, वे सभी अत्यन्त दुःखी हो गये। उन्होंने भगवान् बलदेवसे कहा—हे प्रभो! आपने यह बहुत ही अनुचित कार्य किया है ॥ २९ ॥

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन ।

आयुश्चात्माक्लमं तावद्यावत् सत्रं समाप्यते ॥ ३० ॥

हे यदुनन्दन! जिस समय तक यज्ञ-सत्र सम्पन्न हो, उस समय तकके लिए हमने सूतजीको ब्रह्मासन दिया था। पुराणकी व्याख्या करते समय इन्हें दैहिक क्लान्ति (शारीरिक कष्ट) का अनुभव न हो, इसलिए इन्हें उत्तम आयु भी दे रखी थी ॥ ३० ॥

अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ।

योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ॥ ३१ ॥

यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन ।

चरिष्यति भवान् लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३२ ॥

यह सब वृत्तान्त न जाननेके कारण अनजानेमें ही किया गया आपका यह कार्य ब्रह्म-हत्याके समान है। यद्यपि योगेश्वर होनेके कारण वेद भी आपपर शासन नहीं कर सकते, तथापि हे लोक-पावन! यदि आप अपनी इच्छासे इस ब्रह्म-हत्याका प्रायश्चित्त करेंगे, तो इससे लोकशिक्षाके उदाहरणका प्रसार होगा ॥ ३१-३२ ॥

श्रीभगवानुवाच—

करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया।

नियमः प्रथमे कल्पे यावान् स तु विधीयताम् ॥ ३३ ॥

श्रीबलदेवने कहा—हे मुनियो! लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिए तथा लोकशिक्षाके लिए मैं इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा। अतः इसके लिए इस कल्पमें जो नियम-अनुष्ठान प्रथम पालनीय है, आपलोग उसीका विधान कीजिये ॥ ३३ ॥

दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च।

आशासितं यत् तद्ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३४ ॥

आपलोग इस रोमहर्षणके लिए विशेषरूपसे जो दीर्घायु, बल, इन्द्रिय-पटुता एवं अन्यान्य गुण, जो कुछ देना चाहते हैं, मुझे बतला दीजिये, मैं योगमायाके बलसे सबको साधित करूँगा ॥ ३४ ॥

ऋषय ऊचुः—

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च।

यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३५ ॥

ऋषियोंने कहा—हे बलराम! आप ऐसा कीजिये, जिससे आपके कुश-अस्त्रका पराक्रम बना रहे और इनकी मृत्युकी सत्यता भी बनी रहे। हमने जो इन्हें वरदान दिये हैं, वे सब भी सत्य हो जायें ॥ ३५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम्।

तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥

भगवान् बलदेवने कहा—ऋषियो! वेदोंमें ऐसा कहा गया है कि आत्मा (जीव) स्वयं ही पुत्ररूपमें उत्पन्न होता है। अतः इस रोमहर्षणके स्थानपर उसका पुत्र उग्रश्रवा आप लोगोंको पुराण सुनायेगा एवं आपकी इच्छानुसार उसे मैं अपनी शक्तिसे दीर्घायु, इन्द्रिय-पटुता, बल आदि गुण दिये देता हूँ (रोमहर्षण साक्षात् जीवित नहीं रहेगा, परन्तु अस्त्र, मृत्युकी सत्यता एवं पुत्ररूपमें

यह जीवित रहेगा तथा आयु इत्यादि गुणोंसे युक्त होनेपर आपके वचनोंकी सत्यता भी सिद्ध होगी) ॥ ३६ ॥

किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ।

अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥ ३७ ॥

हे ऋषिश्रेष्ठगणो! इसके अतिरिक्त और किसी विषयमें आपकी अभिलाषा हो, तो वह भी बतला दीजिये—मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। अनजानेमें मुझसे जो पाप हो गया है, उसके निराकरणसे मैं अनभिज्ञ हूँ। अतः हे विद्वज्जनो! आप लोग भलीभाँति निर्धारण करके इसके प्रायश्चित्तका समुचित उपाय भी मुझे बतला दीजिये ॥ ३७ ॥

श्रीऋषय ऊचुः—

इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः।

स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३८ ॥

ऋषियोंने कहा—हे बलदेवजी! इल्वलका पुत्र बल्वल नामक एक भयङ्कर दानव प्रत्येक पर्व-दिवसपर (प्रत्येक मासकी अमावस्यापर) यहाँ आ जाता है और मलादि फेंककर हमारे सत्रको दूषित कर देता है ॥ ३८ ॥

तं पापं जहि दाशार्हं तत्रः शुश्रूषणं परम्।

पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३९ ॥

हे यादव-प्रवर! यहाँ आकर वह पीव, रक्त, मल, मूत्र, मद्य और मांसादि फेंकता है। यदि आप इस दुराचारीका वध कर दें, तो यही हमारी उत्तम सेवा होगी ॥ ३९ ॥

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः।

चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसि ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ब्रह्मसूत्र भाष्ये पारमहंस्यां संहितायां
वैयासिक्यां दशमस्कन्धे बलदेवचरित्रे बल्वल-वधोपक्रमो

नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इसके बाद आप सुसमाहित (एकाग्र) चित्तसे (क्रोधादिसे रहित होकर) बारह महीनों तक भारतवर्षकी परिक्रमा कीजिये तथा कृच्छ्र-व्रतका (कष्टसाध्य व्रतका) अनुष्ठान करते हुए तीर्थोंमें स्नान कीजिये। इसीसे आपकी शुद्धि होगी ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अठहत्तरवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

बल्ललका उद्धार और श्रीबलरामकी विभिन्न तीर्थोंकी यात्रा

श्रीशुक उवाच—

ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांशुवर्षणः।

भीमो वायुरभूद्राजन् पूयगन्धस्तु सर्वशः॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! इसके बाद जैसे ही पर्वकाल उपस्थित हुआ, अति भयङ्कर आँधी चलने लगी, धूलकी वर्षा होने लगी और सर्वत्र पीवकी दुर्गन्ध फैल गयी॥ १ ॥

ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्ललेन विनिर्मितम्।

अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक्॥ २ ॥

तत्पश्चात् यज्ञशालामें बल्लल दैत्य अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा करने लगा और फिर हाथमें शूल लिये हुए साक्षात् दिखायी पड़ा॥ २ ॥

तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम्।

तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम्॥ ३ ॥

सस्मार मुषलं रामः परसैन्यविदारणम्।

हलञ्च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः॥ ४ ॥

बलदेवने देखा कि उसकी देह अति विशाल है। रङ्ग इतना अधिक काला है, मानो काजलका ढेर विकीर्ण हो गया हो। उसकी दाढ़ी-मूँछ तपे ताँबेकी कान्तिके समान लाल हैं। बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे युक्त होनेके कारण उसका मुख बड़ा भयङ्कर है। उसे देखकर बलदेवने शत्रु-सेनाको खण्ड-विखण्ड कर देनेवाले मुसलका एवं दैत्योंको चीर-फाड़ कर देनेवाले हलका स्मरण किया। दोनों अस्त्र शीघ्र ही उनके सम्मुख उपस्थित हो गये॥ ३-४ ॥

तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम्।

मुषलेनाहनत् क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः॥५॥

बलदेवने हलकी नोकसे आकाशमें विचरनेवाले ब्रह्मद्रोही बल्वलको खींचा और क्रोधसे उसके सिरपर मुसलसे प्रहार किया॥५॥

सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक् समुत्सृजन्।

मुञ्चन्नार्त्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः॥६॥

मुसलके प्रहारसे बल्वलका ललाट फट गया। उसके रक्तरञ्जित शरीरसे रुधिर-स्राव होने लगा। वह आर्त्तनाद करता हुआ इस प्रकार भूमिपर गिर पड़ा, जिस प्रकार इन्द्रके वज्राघातसे आहत होकर धातुरागसे (गेरुसे) लाल हुआ कोई पर्वत गिर पड़ा हो॥६॥

संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः।

अभ्यषिञ्चन् महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा॥७॥

प्राचीन कालमें देवताओंने जिस प्रकार वृत्रासुरका विनाश करनेवाले इन्द्रदेवकी स्तुति करते हुए उनका अभिषेक किया था, उसी प्रकार महाभाग ऋषियोंने बलदेवकी स्तुति करते हुए उनका अभिषेक किया और उन्हें अमोघ आशीर्वचन दिये॥७॥

वैजयन्तीं ददुर्मांलां श्रीधामाम्लानपङ्कजाम्।

रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च॥८॥

इसके बाद उन ऋषियोंने बलदेवको लक्ष्मीके निवासस्थान-स्वरूप अम्लान (कभी न मुरझानेवाले) कमलोंसे युक्त वैजयन्ती माला, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य आभूषण प्रदान किये॥८॥

अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः।

स्नात्वा सरोवरमगादयतः सरयुरास्रवत्॥९॥

तत्पश्चात् बलदेवने नैमिषारण्यके मुनियोंसे विदा ली और उनकी आज्ञानुसार ब्राह्मणोंके साथ कौशिकी नदीके तटपर पहुँचे।

वहाँ स्नान करके वे उस सरोवरपर गये, जहाँसे सरयू नदी निकलती है ॥ ९ ॥

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः।

स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम् ॥ १० ॥

वहाँसे वे सरयूकी अनुलोम गतिसे अर्थात् सरयू नदीकी धाराका अनुकरण करते हुए प्रयाग पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्नान किया और ऋषि, पितर एवं देवता आदिके लिए तर्पण किया। वहाँसे वे पुलहाश्रम चले गये (पुलहाश्रम हरिक्षेत्रके नामसे भी विख्यात है) ॥ १० ॥

गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः।

गयां गत्वा पितृनिष्ट्वा गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ११ ॥

उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाभिवाद्य च।

सप्तगोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥ १२ ॥

स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम्।

द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥ १३ ॥

कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीञ्च सरिद्राम्।

श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥

ऋषभार्द्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा।

सामुद्रं सेतुमगमत् महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥

पुलहाश्रमसे गोमती, गण्डकी, विपाशा एवं शोण-नदियोंमें स्नान करके गया पहुँचे। गयामें पितरोंकी आराधना करके गङ्गासागरके सङ्गम पर पहुँचे और वहाँ शुद्धिके लिए स्नानादि अनुष्ठान किये। वहाँसे वे महेन्द्र पर्वतपर पहुँचे। यहाँ उन्होंने परशुरामजीका दर्शन एवं अभिवादन किया। तदनन्तर सप्त-गोदावरी (गोदावरीकी सात शाखाओंमें), वेणा, पम्पा एवं भीमरथी तीर्थ आदिमें स्नान करते हुए उन्होंने कार्तिकेयजीके दर्शन किये और बादमें भगवान् महादेवकी आवास-भूमि श्रीशैलपर उपस्थित हुए। प्रभु बलदेव वहाँसे द्रविड़ देश (दक्षिण प्रान्त) में स्थित परम पवित्र वेंकट

पर्वत (बालाजी), कामकोष्णी (कामाक्षी-शिवकाञ्ची), काञ्ची नगरी (विष्णु-काञ्ची) होते हुए श्रेष्ठ नदी कावेरीमें स्नान करके श्रीरङ्गम् नामक परम पवित्र क्षेत्रमें पहुँचे, जहाँ श्रीहरि सदा साक्षात् रूपसे वर्तमान रहते हैं। इस श्रीरङ्गम् नामक पवित्र स्थानके समीप ही श्रीहरिका क्षेत्र ऋषभ पर्वत है। वहाँसे वे दक्षिण मथुरा (मदुराई देवी मीनाक्षीका धाम) गये और वहाँसे बड़े-बड़े महापातकोंको नष्ट करनेवाले समुद्र-सेतुबन्ध (रामेश्वरम्) पहुँचे ॥ ११-१५ ॥

तत्रायुतमदाद्धेनूब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ।
 कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयञ्च कुलाचलम् ॥ १६ ॥
 तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ।
 योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ।
 दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥ १७ ॥

बलदेवने सेतुबन्धपर ब्राह्मणोंको दस हजार गायें दान कीं। वहाँसे कृतमाला एवं ताम्रपर्णी नदियोंमें स्नान करके वे सात-कुलाचलोंमेंसे एक मलय पर्वतपर पहुँचे। मलयाचलपर अगस्त्य ऋषि विराजमान थे। बलदेवने उन्हें नमस्कार एवं अभिवादन करके उनकी स्तुति की और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके आगे बढ़नेके लिए अनुमति प्राप्त की। वहाँसे दक्षिण समुद्रमें पहुँचकर उन्होंने कन्याकुमारी नामक दुर्गा देवीका दर्शन किया ॥ १६-१७ ॥

ततः फाल्गुनमासाद्य पञ्चाप्सरसमुत्तमम् ।
 विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वास्पर्शद्गवायुतम् ॥ १८ ॥

इसके बाद वे विष्णुके साक्षात् निवासस्थान फाल्गुन तीर्थ अनन्तशयन (अनन्तपुर) पहुँचे। यहाँ पञ्चाप्सरस नामक उत्तम तीर्थमें स्नान किया (यहाँपर भगवान् विष्णु साक्षात् रूपमें प्रकट हुए थे)। उन्होंने यहाँ भी ब्राह्मणोंको दस हजार गायें प्रदान कीं ॥ १८ ॥

ततोऽभिव्रज्य भगवान् केरलांस्तु त्रिगर्तकान्।
 गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥ १९ ॥
 आर्या द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगादबलः।
 तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् ॥ २० ॥
 प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी।
 मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥

भगवान् बलदेव वहाँसे क्रमशः केरल, त्रिगर्त एवं भगवान् शिवके साक्षात् आवास स्थान परम पावन गोकर्ण क्षेत्रमें पहुँचे (यहाँ साक्षात् भगवान् धूर्जटि अर्थात् शिव प्रकट हुए थे)। वहाँ उन्होंने द्वीपवासिनी पूज्या दुर्गादेवीके दर्शन किये और वहाँसे शूर्पारक क्षेत्र पहुँचे। इसके बाद तापी, पयोष्णी एवं निर्विन्ध्या नदियोंमें स्नान किया और तब दण्डकारण्य पहुँचे। वहाँसे वे नर्मदा (रेवा) नदीके तटपर पहुँचे। इसी पवित्र नदीके तटपर ही माहिष्मती पुरी है। बादमें मनुतीर्थ गये और स्नान करके पुनः प्रभास क्षेत्रमें उपस्थित हुए ॥ १९-२१ ॥

श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे।

सर्व्वराजन्यनिधनं भारं मेने हतं भुवः ॥ २२ ॥

यहाँ उन्होंने ब्राह्मणोंसे सुना कि कौरवों एवं पाण्डवोंके युद्धमें समस्त क्षत्रियोंका विनाश हो गया है। यह सुनकर उन्होंने निर्णय कर लिया कि पृथ्वीका बहुत-सा भार उतर गया है ॥ २२ ॥

स भीमदुर्य्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे।

वारयिष्यन् विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥ २३ ॥

उस समय कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें भीमसेन एवं दुर्योधन गदा-युद्ध कर रहे थे। बलदेव उस संग्रामको रोकनेके अभिप्रायसे वहाँ जा पहुँचे ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि।

अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥ २४ ॥

महाराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण एवं अर्जुन—सभीने जैसे ही इन्हें देखा, वैसे ही उन्हें प्रणाम किया, परन्तु इस आशङ्कासे मौन रहे कि “ये न जाने क्या कहनेकी इच्छासे यहाँ आये हैं?” ॥ २४ ॥

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ।

मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत् ॥ २५ ॥

बलदेवने देखा कि भीम एवं दुर्योधन बड़े क्रोधके साथ एक-दूसरेको परास्त करनेके लिए हाथमें गदा लेकर भाँति-भाँतिके पैंतरे बदल रहे थे। उन्हें सम्बोधनकर बलरामने कहा— ॥ २५ ॥

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर।

एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥ २६ ॥

हे राजा दुर्योधन! हे वृकोदर! तुम दोनों ही महावीर हो। तुम दोनोंमें बल-पौरुष भी समान है। तुम दोनोंमेंसे भीम देहबलमें अधिक और दुर्योधन गदा-युद्धके कौशलमें अधिक है ॥ २६ ॥

तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः।

न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥ २७ ॥

अतः समान पराक्रमी तुम दोनोंमेंसे किसी एककी युद्धमें जय अथवा पराजय दिखायी नहीं देती, इसलिए इस व्यर्थके युद्धको रोक दो ॥ २७ ॥

न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत्।

अनुस्मरन्तावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥

परीक्षित! बलदेवकी बात यथार्थ थी, दोनोंके लिए हितकर थी, परन्तु दोनों उनकी बात माननेको तैयार नहीं हुए। दोनों ही एक-दूसरेके प्रति कहे गये दुर्वचनों एवं पूर्वकृत दुर्व्यवहारोंका स्मरण कर रहे थे, जिससे उनका वैर-भाव और भी सुदृढ़ हो रहा था ॥ २८ ॥

दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवर्ती ययौ।

उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥

अतः बलदेवने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि युद्ध दैव-कृत है। अतः वे द्वारका लौट आये। वहाँ उग्रसेन आदि गुरुजनों और बन्धु-बान्धवोंने उन्हें देखा, तो वे अतीव आनन्द एवं प्रेमसे उनसे मिले ॥ २९ ॥

तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा।

क्रत्वङ्गं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥

इसके बाद वे पुनः नैमिषारण्य लौट आये। वे युद्ध आदि समस्त विरुद्ध भावोंसे निवृत्त हो चुके थे। वस्तुतः वे साक्षात् यज्ञमूर्ति-स्वरूप थे, तो भी ऋषियोंने अति प्रसन्नताके साथ उनके द्वारा बहुत-से वैदिक यज्ञोंका अनुष्ठान करवाया (बलदेव स्वयं यज्ञ-भोक्ता हैं, परन्तु लोगोंको वैदिक आदेशों एवं अनुष्ठानोंका पालन करनेकी शिक्षा देनेके लिए वे इन कार्योंमें प्रवृत्त हो गये) ॥ ३० ॥

तेभ्यो विशुद्धं विज्ञानं भगवान् व्यतरद्विभुः।

येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥ ३१ ॥

सर्वशक्तिमान् बलदेवने ऋषियोंको वह अप्राकृत स्वरूप-ज्ञान प्रदान किया, जिससे इस ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर वे लोग निखिल प्राणियोंमें भगवान्का एवं भगवान्में निखिल प्राणियोंके अधिष्ठानका अनुभव कर सकें ॥ ३१ ॥

स्वपत्न्यावभृथस्नातो

ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः।

रेजे स्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलङ्कृतः ॥ ३२ ॥

इसके बाद बलदेवने यज्ञके अन्तमें अपनी पत्नी रेवतीके साथ अवभृथ स्नान किया। स्नानके बाद सुन्दर वस्त्र एवं सुन्दर आभूषण धारण किये। अनन्तर अपने भाई-बन्धुओं एवं सुहृदोंके

साथ मिलकर वे इस प्रकार सुशोभित हुए, जिस प्रकार तारों और चाँदनीसे अलंकृत होकर चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥ ३२ ॥

ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ।

अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ॥ ३३ ॥

परीक्षित्! अनन्त माहात्म्यशाली, अप्रमेय-स्वरूप, मायामनुष्य-विग्रह एवं महाबलवान् बलदेवके चरित्र असंख्य हैं। श्रुतिमें कहा गया है कि बलदेव निजस्वरूपभूता-निजशक्ति-मायासे नित्य युक्त रहते हैं ॥ ३३ ॥

योऽनुस्मरेत् रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ।

सायं प्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीबलदेव-तीर्थयात्रानिरूपणं
नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

हे राजन्! जो अद्भुत-कर्मा, बलदेवके इन चरित्रोंका निरन्तर प्रातःकाल एवं सायंकाल स्मरण करता है—वह श्रीहरिका प्रीतिभाजन हो जाता है ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके उन्यासीवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।

अशीतितमोऽध्यायः

सुदामाका द्वारकापुरी आना तथा श्रीकृष्णके द्वारा
उनका स्वागत

श्रीराजोवाच—

भगवन् यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः।

वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामि हे प्रभो ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—हे प्रभो! प्रेम और मुक्तिके दाता, अनन्तवीर्यशाली, परमब्रह्म, परमात्मा, भगवान् श्रीकृष्णकी और भी जो अनन्त माधुर्यपूर्ण एवं शौर्यपूर्ण लीलाएँ हैं, उनका श्रवण करना चाहता हूँ ॥ १ ॥

को नु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन् उत्तमःश्लोकसत्कथाः।

विशेषज्ञो विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥

हे ब्रह्मन्! विषय-सुखोंके लिए निरन्तर प्रयास करते हुए जिस मानवका चित्त खिन्न हो गया हो, कर्म-मार्गके दुःखरूपी बाण जिसके चित्तमें चुभते रहते हों, ऐसी स्थितिमें यदि कोई रस-विशेषज्ञ उत्तमश्लोक (पुण्यकीर्ति) श्रीकृष्णकी मङ्गलमयी लीलाओंका एक बार भी श्रवण कर ले तथा उसके सार-वैशिष्ट्यसे अवगत हो जाए, तो क्या वह इन लीलाओंसे विमुख रह सकता है? ॥ २ ॥

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते

करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।

स्मरेद्वसन्तं

स्थिरजङ्गमेषु

शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥

जो वाणी (वागिन्द्रिय) भगवान्के गुणोंका गान करती है, वास्तवमें वही वाणी सार्थक है। जिन हाथोंसे निरन्तर भगवान्की

सेवा होती है, वस्तुतः वे ही हाथ हैं, जिस मनके द्वारा समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी श्रीकृष्णका स्मरण होता है, वही मन वास्तवमें मन है और जिन कानोंके द्वारा भगवान्‌के पुण्य-चरित्रोंका श्रवण होता है, यथार्थमें उन्हें ही कान कहा जा सकता है ॥ ३ ॥

शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत्
तदेव यत् पश्यति तद्धि चक्षुः।
अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां
पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥

जो सिर चल-अचल दोनों पदार्थोंमें ही भगवान्‌का अस्तित्व जानकर उन्हें प्रणाम करता है, वही सिर वास्तवमें सिर है, जो चक्षु जड़-चेतन सर्वत्र भगवान्‌का दर्शन करते हैं, वे ही वास्तवमें चक्षु हैं एवं जो अङ्ग निरन्तर भगवान्‌ एवं उनके भक्तोंके चरणोदकका सेवन करते हैं, वे ही वास्तवमें अङ्ग पद वाच्य हैं ॥ ४ ॥

श्रीसूत उवाच—

विष्णुरातेन सम्पृष्टो भगवान् बादरायणिः।
वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

श्रीसूतने कहा—हे शौनकादि ऋषियो! जब महाराज परीक्षितने श्रीशुकदेव गोस्वामीसे ये सब प्रश्न पूछे, तब श्रीशुकदेव, जिनका हृदय भगवान्‌ श्रीकृष्णमें निरन्तर निमग्न रहता था, वे परीक्षितसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच—

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! सुदामा नामके एक ब्राह्मण श्रीकृष्णके परम सखा थे, वे विषयोंसे विरक्त, जितेन्द्रिय, प्रशान्तचित्त एवं वेदोंके श्रेष्ठ ज्ञाता थे ॥ ६ ॥

यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी।
तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥ ७ ॥

वे गृहस्थ होनेपर भी किसी प्रकारका संग्रह न करके प्रारब्धके अनुसार स्वयं ही प्राप्त द्रव्योंसे जीविकाका निर्वाह कर सन्तुष्ट रहते थे। उनके वस्त्र सदैव जीर्ण-मलिन रहते थे। उन ब्राह्मणकी पत्नी भी उसी प्रकार फटे-पुराने, मैले-कुचेले कपड़े पहनती थी। भूखे रहनेके कारण वह भी पतिके समान ही दुबली-पतली हो गयी थी (जो थोड़ा-बहुत अन्न होता था, वह उसे पतिको ही परोस देती थी, स्वयं तो भूखी ही रहती थी) ॥ ७ ॥

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा।
दरिद्रा सीदमाना वै वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥

एक दिन वह पतिव्रता ब्राह्मणी अपने पतिके लिए भोजन जुटानेमें असमर्थ होनेके कारण बड़ी दुःखी हो गयी। वह भयसे (भगवान्‌से भक्तिके अतिरिक्त अन्य प्रार्थना अनुचित है, इसलिए) काँपती हुई मुरझाये मुखसे अपने दरिद्र पतिके पास आयी और कहने लगी— ॥ ८ ॥

ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मन्! साक्षात् लक्ष्मीपति, यादव-श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण आपके सखा हैं। वे भक्तवत्सल, ब्राह्मण-भक्त और शरणागतवत्सल हैं ॥ ९ ॥

तमुपैहि महाभाग साधूनाञ्च परायणम्।
दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बने ॥ १० ॥

हे महाभाग! हे आर्यपुत्र! श्रीकृष्ण साधुओंकी परमगति-स्वरूप हैं। आप उनके समीप जाइये। जब वे कुटुम्बके पालनमें असमर्थ होनेके कारण आपको दुःखी देखेंगे तो बहुत-सा धन प्रदान करेंगे ॥ १० ॥

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।

स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ।

किं न्वर्थकामान् भजतो नात्यभीष्टान् जगद्गुरुः ॥ ११ ॥

आजकल भोज, वृष्णि एवं अन्धकोंके अधिपति श्रीकृष्ण द्वारकामें ही निवास कर रहे हैं। (असुर-मारणके लिए कहीं नहीं गये हैं) जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण इतने उदार हैं कि स्मरण मात्रसे ही प्रेमी भक्तोंको अपने चरणकमल, यहाँ तक कि अपने-आपको भी दान कर देते हैं। अतः आप जैसे निष्ठावान् भक्तको यदि धन-सम्पत्ति और विषय-भोग वाञ्छनीय न होनेपर भी प्रदान कर दें, तो इस विषयमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? आप मौन भी रहेंगे, तो भी वे सर्व-हितकारी धनके साथ ही अपने चरणकमलका माधुर्य भी दे देंगे ॥ ११ ॥

स एवं भार्य्या विप्रो बहुशः प्रार्थितो मुहुः ।

अयं हि परमो लाभ उत्तमः श्लोकदर्शनम् ॥ १२ ॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे ।

अप्यस्त्युपायनं किञ्चिद्गृहे कल्याणि दीयताम् ॥ १३ ॥

जब उन ब्राह्मणदेवताकी पत्नीने बार-बार अनुरोध किया तो ब्राह्मणने अपने मनमें सोचा—“धनकी तो कोई बात नहीं है; किन्तु उत्तमः श्लोक श्रीकृष्णका दर्शन हो जायेगा, यही तो जीवनका परम लाभ है।” अतः उन्होंने जानेके लिए सङ्कल्प कर लिया और पत्नीसे कहा—हे कल्याणी! घरमें क्या कोई उपहार योग्य वस्तु है, यदि हो तो, उसे ले आओ ॥ १२-१३ ॥

याचित्वा चतुरो मुष्टीन् विप्रान् पृथुकतण्डुलान् ।

चैलखण्डेन तान् बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥

तब ब्राह्मणी अपने पड़ोसी ब्राह्मणोंके पास गयी और चार मुठ्ठी चिउड़े भिक्षामें माँग लायी। उसने उन्हें फटे वस्त्रके टुकड़ोंमें (पोटलीमें) बाँधा और श्रीकृष्णको उपहार-स्वरूप भेंट करनेके लिए उसे अपने पतिके हाथमें दे दिया ॥ १४ ॥

स तानादाय विप्राग्रयः प्रययौ द्वारकां किल।

कृष्णसन्दर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन् ॥ १५ ॥

विप्रवर सुदामाने उन चिउड़ोंको ले लिया और मार्गमें यह सोचते हुए चले जा रहे थे कि मुझे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कैसे प्राप्त होंगे? यही विचार करते-करते वे द्वारका पहुँच गये ॥ १५ ॥

त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च सद्विजः।

विप्रोऽगम्यान्धकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥

गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेद्विजः।

विवेशैकतमं श्रीमद्ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥ १७ ॥

परीक्षित्! द्वारकापुरी पहुँचने पर विप्र सुदामा अन्तःपुरचारी ब्राह्मणोंके साथ तीन गुल्म अर्थात् रक्षकोंके आवास-स्थानों (छावनियों) एवं तीन ड्योढियोंको पार करके श्रीकृष्णके आज्ञाकारी, कृष्णासक्त—अन्धक एवं वृष्णियोंके महलोंमें पहुँचे, जहाँ पहुँचना बड़ा कठिन है। वहाँसे श्रीकृष्णके सोलह हजार महलोंमेंसे एक प्रधान एवं रमणीय महलमें (रुक्मिणी मन्दिरमें) प्रवेश किया। वहाँ उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मानो वे ब्रह्मानन्द-समुद्रमें डुबकी लगा रहे हों (वे महलके द्वारपर क्षणभर मौन रहे और सब कुछ भूल गये। इसके बाद आगे बढ़े) ॥ १६-१७ ॥

तं विलोक्याच्युतो दूरात् प्रियापर्यङ्गमास्थितः।

सहस्रोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥

उस समय अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण प्रियतमा रुक्मिणीके पर्यङ्गपर विराजमान थे। ब्राह्मणदेवताको दूरसे ही देखकर वे सहसा उठ खड़े हुए और उनके समीप पहुँच गये। श्रीकृष्णने बड़े आनन्दसे विभोर होकर उनका आलिङ्गन किया ॥ १८ ॥

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः।

प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ १९ ॥

अपने प्रिय सखा विप्रवर सुदामाके अङ्ग-संस्पर्शसे कमल-लोचन श्रीकृष्णको अत्यधिक आनन्द हुआ। हर्षके कारण उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओंका वर्षण होने लगा ॥ १९ ॥

अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम्।
 उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥ २० ॥
 अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवान् लोकपावनः।
 व्यलिम्पद्विव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ २१ ॥
 धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा।
 अर्चित्वावेद्य ताम्बूलं गाञ्च स्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥

हे राजन्! इसके बाद त्रिलोकपावन श्रीकृष्णने उन्हें पर्यङ्कपर बिठाया और स्वयं ही पूजोपहार समर्पण करके उनका पूजन किया। भगवान् श्रीकृष्णने उनके चरणकमलोंको स्वयं पखारा और उनका चरणोदक अपने सिरपर धारण किया। इसके बाद सुगन्धित चन्दन, अगुरु, कुङ्कुम एवं अन्यान्य गन्ध-द्रव्योंका उन ब्राह्मणदेवताके शरीरमें लेपन करके सुगन्धित धूप एवं प्रदीपावली द्वारा अति आनन्दके साथ आरती उतारी। तदनन्तर ताम्बूल एवं गाय प्रदान किये तथा 'भले पधारे' आदि स्वागतपरक एवं मधुर वचनोंका भी उच्चारण किया ॥ २०-२२ ॥

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसन्ततम्।
 देवी पर्यचरत् साक्षाच्चामरव्यजनेन वै ॥ २३ ॥

ब्राह्मणदेवता फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। शरीर अत्यन्त मलिन और दुर्बल था। शिराओंके जाल फैलनेके कारण देहकी नस-नस दिखायी देती थी। स्वयं महारानी रुक्मिणीदेवी चँवर डुलाते हुए उनकी सेवा करने लगीं ॥ २३ ॥

अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना।
 विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥

अन्तःपुरवासी स्त्रियाँ पुण्यश्लोक श्रीकृष्ण द्वारा एक मलिनकाय ब्राह्मणका इस प्रकार अति प्रीतिके साथ स्वागत-सत्कार करते हुए देखकर आश्चर्यमें पड़ गयीं और सोचने लगीं। (इसी स्थलपर भगवान्‌का नाम 'सुदामा-दारिद्र्य-भञ्जन' हुआ है)॥ २४॥

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा।
श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च॥ २५॥

योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः।
पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा॥ २६॥

वे स्त्रियाँ परस्पर कहने लगीं—त्रिलोकीके गुरु, श्रीनिवास-श्रीकृष्ण पर्यङ्कपर विराजमान लक्ष्मीरूपिणी रुक्मिणीदेवीको छोड़ करके बलदेवके समान जिसका इतना सम्मान एवं आलिङ्गन कर रहे हैं, इस मैले-कुचैले, निर्धन, लोकनिन्दित और अधम भिक्षुकने ऐसे कौन-से पुण्यका उपार्जन किया है?॥ २५-२६॥

कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः।
आत्मनोर्ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम्॥ २७॥

हे राजन्! इसके बाद श्रीकृष्ण एवं विप्र सुदामा दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़कर गुरु-गृहमें निवास-कालीन अपनी प्राचीन एवं मनोहर घटनाओंका स्मरण करते हुए उनका बड़े आनन्दसे वर्णन करने लगे॥ २७॥

श्रीभगवानुवाच—

अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षिणात्।
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्य्याढा सदृशी न वा॥ २८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे धर्मज्ञ! हे विप्रवर! आप गुरु-दक्षिणा देकर जब पाठशालासे अपने घर लौट आये, तब आपने अपने अनुरूप स्त्रीके साथ विवाह किया या नहीं?॥ २८॥

प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा।
नैवातिप्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे॥ २९॥

हे विद्वन्! मैं यह निश्चित ही जानता हूँ कि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेपर भी आपका चित्त न तो सांसारिक विषयोंमें आसक्त है और न ही भौतिक इच्छाओंसे बाधित। धन, वस्त्र आदि काम्य-वस्तुओंमें भी आपकी कोई प्रीति नहीं है। (द्वारकामें सुदामाके प्रतिष्ठा-प्रचारके लिए कृष्णने उनकी सकामताका प्रकाश नहीं किया है। उन्होंने विचार किया कि—भार्याके अनुरोधसे यदि धनमें इसकी प्रीति है, तो वह मैं बादमें दूँगा। प्रकटमें कुछ भी नहीं दूँगा। पुरवासियोंके समक्ष उन्होंने यही व्यक्त किया कि यह गृहस्थ अति निस्पृह है, दूसरोंसे कुछ भी कामना नहीं करता, बलपूर्वक देनेपर भी कुछ ग्रहण नहीं करता) ॥ २९ ॥

केचित् कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ।

त्यजन्तः प्रकृतीदैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥ ३० ॥

हे विप्रवर! मैं जिस प्रकार स्वयं ईश्वर होकर भी लोकशिक्षाके लिए कर्म करता हूँ, उसी प्रकार विषयोंसे अनासक्त चित्तवाले कुछ लोग ही ईश्वरकी मायासे रचित विषय-वासनाओंका परित्याग करके कर्मोंको अपना कर्तव्य मात्र समझकर करते रहते हैं (विषय-विरक्त आप भी कर्म करते रहे, संन्यास ग्रहण नहीं किया) ॥ ३० ॥

कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः ।

द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥ ३१ ॥

हे ब्रह्मन्! गुरुकुलमें द्विज-विद्यार्थी ज्ञातव्य-वस्तु परमात्म तत्त्वको जानकर अज्ञानरूप संसार-सागरको पार कर लेते हैं, हमारे उस गुरुकुलकी बातें आपको याद हैं क्या, किस तरह हम वहाँ एक साथ निवास करते थे? ॥ ३१ ॥

स वै सत्कर्मणां साक्षाद्विज्जातेरिह सम्भवः ।

आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥

इस लोकमें वर्णाश्रमियोंके तीन गुरु होते हैं। पहला—जन्मदाता पिता। दूसरा—उपनयन संस्कार कराकर जो वेदशास्त्रका—सावित्री—

गायत्रीका उपदेश प्रदान करते हैं (वे दीक्षागुरु मेरे समान ही पूजनीय हैं)। तीसरा—चारों प्रकारके आश्रमियोंको दिव्य-ज्ञान प्रदान कर जो परमात्माको प्राप्त करा देते हैं; वे सर्वोत्तम गुरु हैं और मेरे ही स्वरूप हैं ॥ ३२ ॥

नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन् वर्णाश्रमवतामिह ।

ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥

हे ब्रह्मन्! मेरे प्यारे सखा! गुरुके रूपमें मैं स्वयं हूँ। इस लोकमें वर्णाश्रमियोंमें जो मेरे उपदेशोंका आश्रय लेकर अनायास ही इस संसार-सागरसे तर जाते हैं, वे ही वस्तुतः परमार्थके विषयमें सम्यक् पाण्डित्य रखते हैं ॥ ३३ ॥

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।

तुष्येयं सर्व्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥

प्रिय मित्र! समस्त प्राणियोंका आत्मा-स्वरूप मैं सबके हृदयोंमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान रहता हूँ। मैं जिस प्रकार श्रद्धापूर्वक की गयी गुरु-सेवा-शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ, उस प्रकार ब्रह्मचर्य (वेदाध्ययनादि), गार्हस्थ्य (पञ्चमहायज्ञादि), वानप्रस्थ (तपस्या) और संन्यास (सर्वतोभावेन उपरति) से सन्तुष्ट नहीं होता ॥ ३४ ॥

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ ।

गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥ ३५ ॥

प्रविष्टानां महारण्यमपतौ सुमहद्विज ।

वातवर्षमभूत् तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥

हे ब्रह्मन्! जब हम गुरुकुलमें रहा करते थे, तब एक दिन गुरु-पत्नीने हमें सूखी लकड़ियोंका संग्रह करनेके लिए भेजा था। इसके लिए जब हमने एक घोर जङ्गलमें प्रवेश किया, उस समय जो कुछ घटित हुआ, क्या वह आपको याद है? उस दिन बिना ऋतुके ही अत्यन्त प्रचण्ड आँधी आ गयी, जोरोंसे वर्षा होने

लगी और आकाशमें विद्युत्की कर्कश गर्जनाके साथ तूफान आ गया था ॥ ३५-३६ ॥

सूर्यश्चास्तं गतस्तावत् तमसा चावृता दिशः।

निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ३७ ॥

उस समय सूर्यदेव भी अस्ताचलको चले गये थे। सारी दिशाओंमें अन्धकार छा गया था। धरतीपर चारों ओर जल-ही-जल दिखायी दे रहा था, भूमि कहाँ ऊँची है और कहाँ नीची, कुछ भी ज्ञात नहीं होता था ॥ ३७ ॥

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभि-

निहन्यमाना मुहुरम्बुसंप्लवे।

दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने

गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥

उस दिन जङ्गलमें प्रचण्ड आँधीके प्रहारों और वर्षाकी बौछारोंसे हम लोगोंको अतिशय पीड़ा हो रही थी, बड़े कातर होकर एक दूसरेका हाथ पकड़कर हम लकड़ियोंका गड्ढर सिरपर ढोते हुए उस महारण्यमें इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे। गन्तव्य-पथका निर्णय नहीं कर पा रहे थे। हमने वह सारी रात्रि ऐसे ही बिता दी ॥ ३८ ॥

एतद्विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिर्गुरुः।

अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥

प्रातःकाल होनेपर जब परम सदाचारसम्पन्न गुरु सान्दीपनि मुनिको यह पता चला कि हम आश्रममें नहीं लौटे हैं, तब वे हमें ढूँढ़ते हुए उस जङ्गलमें आये और हमारी कातर अवस्थाको देखा ॥ ३९ ॥

अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः।

आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥

उस समय उन्होंने हमसे कहा—हे पुत्रो! आश्चर्य है, आश्चर्य है! यह शरीर समस्त प्राणियोंको अतिशय प्रिय है। तुम दोनोंने मेरे प्रति समर्पित होकर अपने शरीरकी भी उपेक्षा कर दी और मेरी सेवाके लिए इतना कष्ट उठाया ॥ ४० ॥

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्त्तव्यं गुरुनिष्कृतम्।

यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्षणं गुरौ ॥ ४१ ॥

उत्तम शिष्यका कर्त्तव्य यही है कि वे गुरुके ऋणसे मुक्त होनेके लिए इस सर्वार्थ-साधक शरीरको तथा अपना सब कुछ श्रद्धापूर्वक गुरुकी सेवामें समर्पण कर दे ॥ ४१ ॥

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः।

छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४२ ॥

हे द्विजश्रेष्ठो! मैं तुम दोनोंसे अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सारे मनोरथ सफल हों। तुम दोनोंने जिन वेद-शास्त्रोंका अध्ययन किया है—वे सदा तुम्हें कण्ठस्थ रहें तथा इस लोक और परलोकमें सर्वदा सारयुक्त होकर तुममें अवस्थित रहें, कभी भी निष्फल न हों ॥ ४२ ॥

इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मनि।

गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये ॥ ४३ ॥

हे प्रिय मित्र! गुरु-गृहमें निवास करते हुए इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ घटित हुई थीं। विप्रवर! मनुष्य गुरुके अनुग्रहसे परिपूर्ण होकर प्रकृष्ट शान्तिको प्राप्त करनेकी सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है ॥ ४३ ॥

श्रीब्राह्मण उवाच—

किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो।

भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥ ४४ ॥

श्रीब्राह्मणदेवताने कहा—हे जगद्गुरो! हे देवताओंके भी आराध्यदेव! आपके समान भक्तोंके मनोरथोंको परिपूर्ण करनेवाले परम ब्रह्म

परमात्माके साथ गुरुकुलमें मैंने एक साथ निवास किया। अतः मेरे लिए भला क्या करना शेष रह सकता है? (आपके भयसे तो वायु प्रवाहित होती है; आपके साथ मेरा गुरुकुल-वास मेरे सौभाग्यका फल है) ॥ ४४ ॥

यस्यच्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो।

श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे
श्रीदामचरितेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

हे विभो! जिनके श्रीविग्रहसे सम्पूर्ण मङ्गलोंके आकर-स्वरूप वेदशास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है, ऐसे आप विद्याभ्यासके लिए गुरुकुलमें निवास करें, यह विडम्बना मात्र है। यह मनुष्य-लीलाका अभिनय (अतिशय विषमतामय अनुकरण) नहीं तो और क्या है? ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अस्सीवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

एकाशीतितमोऽध्यायः

सुदामा विप्रको ऐश्वर्यकी प्राप्ति

श्रीशुक उवाच—

स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः ।

सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान् प्रहसन् प्रियम् ।

प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—प्रिय परीक्षित! भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयकी बात जाननेवाले, ब्राह्मणोंके हितैषी तथा सन्तोंके एकमात्र आश्रय हैं। वे विप्रदेवताके साथ बहुत देर तक प्रेमालाप करते रहे और इन प्रसङ्गोंसे बड़े आनन्दित होते रहे। अब उन्होंने अपने बन्धुवरको अतिशय स्नेहसे देखा और कुछ विनोद करते हुए कहने लगे— ॥ १-२ ॥

श्रीभगवानुवाच—

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् ।

अण्वप्युपाहतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्य्येव मे भवेत् ।

भूर्य्यप्यभक्तोपहतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे ब्रह्मन्! आप घरसे मेरे लिए क्या उपहार लाये हैं? प्रेमी भक्तोंके द्वारा प्रेमसे दिये गये छोटे-से-छोटे उपहारको भी मैं बहुत मानता हूँ, परन्तु अभक्तोंके द्वारा दी गयी बहुत बड़ी भेंटसे भी मैं सन्तुष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥

(अल्प मात्र लानेके कारण सुदामाको लज्जा आ सकती है, इसलिए कहने लगे—) मत्परायण भक्त प्रेममयी भक्तिके साथ मुझे

पत्र, पुष्प, फल अथवा जलादि जो कुछ भी वस्तु प्रदान करता है, मैं भक्तिके साथ लायी गयी उस-उस वस्तुको बड़े आदरसे ग्रहण करता हूँ (मेरी भक्तिके कारण मेरे भक्तोंका हृदय शुद्ध होता है, अतः उस वस्तुके स्वादु-अस्वादुका भी विचार मैं नहीं करता) ॥ ४ ॥

इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै ब्रीडितः पतये श्रियः।

पृथुकप्रसूतिं राजन् न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥

हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर भी उन ब्राह्मण देवताने लज्जासे मुख नीचा कर लिया। साक्षात् लक्ष्मीपति श्रीकृष्णको वे नगण्य चार मुठ्ठी चिउड़े दे नहीं पा रहे थे (घरसे निकलते वक्त सोचा ही नहीं—यह वस्तु श्रीकृष्णके लिए अभक्ष्य है, अतः सुदामा देनेसे हिचक रहे थे) ॥ ५ ॥

सर्वभूतात्मदृक् साक्षात् तस्यागमनकारणम्।

विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माभजत् पुरा ॥ ६ ॥

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया।

प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥

समस्त जीवोंके हृदयको जाननेवाले, प्रत्यक्ष साक्षीस्वरूप श्रीहरि अपने प्रिय सखाके आगमनका उद्देश्य भलीभाँति जानते थे। वे विचार करने लगे—मेरे इस प्रिय सखाने पहले कभी भी सम्पत्तिकी अभिलाषासे मेरा भजन नहीं किया है, (इसे तो भोगोंसे सदैव ही द्वेष रहा है तथा इसके दारिद्र्यका कारण भी यही है) परन्तु इस समय यह केवल अपनी पतिव्रता पत्नीकी प्रसन्नताके लिए उसीके आग्रहसे ही यहाँ आया है। अतः मैं इसे वह सम्पत्ति दूँगा, जो देवताओंके लिए भी दुर्लभ है ॥ ६-७ ॥

इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान् द्विजन्मनः।

स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥ ८ ॥

इस प्रकार विचार करके भगवान्ने स्वयं ही 'यह क्या है' ऐसा कहकर विप्रदेवताके पहने हुए वस्त्रोंमेंसे मलिन कपड़ेके चीथड़ेमें

बँधे हुए तण्डुल जैसे चिउड़ोंको स्वयं ही छीन लिया और कहा— ॥ ८ ॥

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे।

तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे सखे! यह तो तुम मेरे लिए अत्यन्त प्रसन्नतादायक एवं प्रियताप्रदायक उपहार लाये हो। ये चिउड़े न केवल मुझे, बल्कि सारे विश्वको भी तृप्त करनेमें यथेष्ट हैं ॥ ९ ॥

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे।

तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥

भगवान्ने यह कहकर उनमेंसे एक मुठ्ठी चिउड़े खा लिये, दूसरी मुठ्ठी ज्योंही उठायी, त्योंही पतिव्रता रुक्मिणीदेवीने उनका हाथ पकड़ लिया। रुक्मिणीजी कहने लगीं, “नाथ! इस अद्भुत वस्तुका स्वयं ही भोजन करोगे तो मैं अपनी सखियोंको, सपत्नियोंको, दासियोंको और स्वयं अपने लिए भी कैसे वितरण करूँगी”—सुदामाके अभिप्रायसे यह कहा और अपना अभिप्राय सखियोंको बतलाया कि श्रीकृष्ण महासुकुमार हैं, इन शुष्क तण्डुलोंसे श्रीकृष्णका स्वास्थ्य न बिगड़ जाय ॥ १० ॥

एतावतालं विश्वात्मन् सर्वसम्पत्समृद्धये।

अस्मिन् लोकेऽथवामुष्मिन् पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥

रुक्मिणीदेवीने कहा—हे सर्वान्तर्यामिन्! बस, बस! आपकी प्रसन्नताके लिए इतना ही पर्याप्त है। एक मुठ्ठी ग्रहण करनेसे ही इस विप्रवरको इस लोकमें और परलोकमें मेरी कटाक्ष-विलासभूत जितनी भी सम्पत्तियाँ है, इस विप्रवरको प्राप्त हो गयी हैं। अब दूसरी मुठ्ठी खाकर हमें इनके अधीन मत बनाइये (अन्तिम वाक्य मनोगत है, स्पष्ट नहीं कहा है) ॥ ११ ॥

ब्राह्मणस्तान्तु

रजनीमुषित्वाच्युतमन्दिरे ।

भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! ब्राह्मण देवता उस रात्रिको अच्युत भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही रहे। वहाँ उन्होंने सुखपूर्वक भोजन-पान आदि सम्पन्न किये। उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था, मानो वे वैकुण्ठलोकमें ही वास कर रहे हों ॥ १२ ॥

श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः ।

जगाम स्वालयं तात पथ्यनुब्रज्य नन्दितः ॥ १३ ॥

दूसरे दिन वे द्विजश्रेष्ठ सुदामा अपने घरकी ओर चल दिये। स्वानन्दपूर्ण, विश्वभावन श्रीकृष्ण कुछ देर तक पथपर उनके पीछे-पीछे चले। अनन्तर प्रणाम करके विनयपूर्वक मधुर वचनोंसे उन्हें आनन्दित किया (जो विश्वभावन श्रीकृष्ण सङ्कल्पमात्रसे ही इस विश्वकी सृष्टि कर लेते हैं, उन्हें महासम्पत्तिमय सुदामापुरीकी सृष्टि करनेमें क्या कष्ट है!) ॥ १३ ॥

स चालब्ध्वा धनं कृष्णात्र तु याचितवान् स्वयम् ।

स्वगृहान् व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥

उन विप्र सुदामाको श्रीकृष्णने प्रत्यक्षरूपसे कुछ भी नहीं दिया और न ही उन ब्राह्मणदेवताने लज्जाके कारण कुछ माँगा। वे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनको ही परम उपलब्धि मानकर आनन्द-सागरमें डूबते-उतरते अपने घरकी ओर चल पड़े ॥ १४ ॥

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ।

यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥

मार्गमें चलते-चलते वे मन-ही-मन सोचते जाते थे—अहो ! कितने आनन्द और आश्चर्यकी बात है ! आज मैंने ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णकी सुविख्यात ब्राह्मण-भक्ति अपनी आँखोंसे प्रत्यक्ष देख ली ! धन्य है ! जिनके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीजी नित्य ही विराजमान रहती हैं, उन्होंने उसी वक्षःस्थलसे मुझ सर्वाधिक दरिद्रका आलिङ्गन किया ॥ १५ ॥

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।

ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥ १६ ॥

कहाँ तो मैं दरिद्र एवं पापी और कहाँ श्री-निकेतन श्रीकृष्ण ! तब भी, अपनी दोनों भुजाओंके द्वारा उन्होंने मुझे-जैसे अधम, दरिद्र ब्राह्मणका आलिङ्गन किया ॥ १६ ॥

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा ।

महिष्या वीजितः श्रान्तो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥

और तो और, जिस पर्यङ्कपर स्वयं रुक्मिणीदेवी शयन करती हैं, उसपर मुझे इस प्रकार बिठाया, मानो मैं उनका सगा भाई हूँ। मुझे थका देखकर स्वयं उनकी पटरानी रुक्मिणीजीने अपने हाथोंसे मुझपर चँवर डुलाते हुए मेरी सेवा की ॥ १७ ॥

शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ।

पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥

अहो ! देवाधिदेव और ब्राह्मणोंके इष्टदेव श्रीकृष्णने मेरे पाँवोंका संवाहन किया। अपने ही हाथोंसे खिला-पिलाकर मेरी सेवा-शुश्रूषा की और ऐसे सत्कार किया, मानो मैं देवता हूँ ॥ १८ ॥

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।

सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥

मनुष्योंके लिए स्वर्गलोक, मर्त्यलोक एवं पाताललोकके सम्पूर्ण ऐश्वर्यों तथा समस्त प्रकारकी सिद्धियों और मुक्तिकी प्राप्तिका मूलकारण श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा ही है ॥ १९ ॥

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।

इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥ २० ॥

परम कारुणिक श्रीकृष्णने मुझे यही सोचकर तनिक भी धन नहीं दिया कि यह निर्धन व्यक्ति धन प्राप्त करके कहीं उन्मत्त न हो जाय और उन्हें भूल जाय (अतः प्रचुर धन ही दिया है) ॥ २० ॥

इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम्।
 सूर्यानलेन्दुसङ्काशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥
 विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्विवजकुलाकुलैः।
 प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोज-कहलारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥
 जुष्टं स्वलङ्कृतैः पुष्पैः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः।
 किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥

परीक्षित्! विप्र सुदामा इस प्रकार विचार करते-करते अपने घरके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि चारों दिशाओंमें सूर्य, अग्नि एवं चन्द्रमाके समान चमकते हुए तथा रत्नोंसे बने हुए ऊँचे-ऊँचे महल विराजमान हैं। स्थान-स्थान पर जलाशय बने हुए हैं, जिनमें कुमुद, कमल, कहार एवं उत्पल आदि पुष्प खिले हुए हैं, उपवन और उद्यान वहाँके सौन्दर्यको द्विगुणित कर रहे हैं, रङ्ग-बिरङ्गे पक्षी सुमधुर कूजन कर रहे हैं, उत्तम आभूषणोंसे विभूषित पुरुष एवं हिरणी जैसी आँखोंवाली सुलोचना स्त्रियाँ यहाँ-वहाँ विचरण कर रही हैं। यह सब देखकर ब्राह्मण देवता सोचने लगे—यह क्या! ये महल किसके हैं! यह स्थान इस प्रकार कैसे हो गया! (सुदामाने वहाँ पहले तेज-पुञ्ज देखा कि यह क्या है? उसके बाद विमान देखे तो सोचने लगे कि ये विमान किसके हैं और जब यह निश्चय हो गया कि ये सब उनके ही हैं तब विचारमें पड़ गये कि यह सब कैसे हो गया?) ॥ २१-२३ ॥

एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः।

प्रत्यगृहन् महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥

ब्राह्मण सोच-विचारमें डूबे हुए ही थे कि उसी समय देवताओंके समान आभासे युक्त सुन्दर-सुन्दर पुरुष एवं स्त्रियाँ वाद्ययन्त्रोंके साथ ऊँचे स्वरसे गीत गाते हुए महाभाग सुदामाकी अगवानी करने आये ॥ २४ ॥

पतिमागतमाकर्ण्य

पत्न्युद्धर्षातिसम्भ्रमा।

निश्चक्राम गृहात् तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालायात् ॥ २५ ॥

पतिदेवके आगमनका समाचार सुनकर ब्राह्मणी हर्षातिरेकसे भर गयी और पतिको सम्पूर्ण चमत्कार बतानेके लिए अपने भवनसे हड़बड़ाते हुए बाहर निकली। ऐसा लगता था, मानो साक्षात् लक्ष्मीदेवी कमलवनसे पधार रही हों ॥ २५ ॥

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचना।

मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिष्वजे ॥ २६ ॥

पतिव्रता ब्राह्मणीने जैसे ही अपने पतिदेवको देखा, तो उसके हृदयमें प्रेम एवं उत्कण्ठाका आवेग हो आया, आँखोंसे आँसू बहने लगे। उसने अपने नेत्र बन्दकर उन्हें प्रणाम किया और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन किया (भगवान् ने नस-नस दिख रही सुदामाकी देहमें कोई परिवर्तन नहीं किया ताकि उनकी पत्नी उन्हें आसानीसे पहचान सके) ॥ २६ ॥

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव।

दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥ २७ ॥

प्रिय परीक्षित्! गलेमें सोनेके हारादि अलङ्कार पहनकर सजी-धजी दासियोंसे मण्डित ब्राह्मणी अति देदीप्यमान प्रतीत हो रही थी। लगता था मानो कोई विमानचारिणी देवाङ्गना हो। विप्र सुदामा उसे देखकर विस्मित रह गये ॥ २७ ॥

प्रीतः स्वयं तथा युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम्।

मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥

वे पत्नीसे मिलकर बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने अतिशय प्रीतिपूर्वक अपनी पत्नीके साथ महलमें प्रवेश किया, जो सहस्रों मणिमय स्तम्भोंसे युक्त इन्द्रालयके समान था। कृष्णकी कृपासे इन्द्रका सारा वैभव पृथ्वीपर ही आ गया था ॥ २८ ॥

पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः।

पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च।
 मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च॥ ३० ॥
 स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च।
 रत्नदीपान् भ्राजमानान् ललना रत्न-संयुताः॥ ३१ ॥
 विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदाम्।
 तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम्॥ ३२ ॥

प्रिय परीक्षित्! उस महलमें स्वर्ण-निर्मित पायोंसे युक्त हाथी-दाँतके बने पर्यङ्क थे, जिनपर दुग्धके फेनके समान कोमल एवं धवल बिछौने बिछे हुए थे, सोनेकी डण्डियोंसे युक्त बहुत-से चँवर-व्यजन रखे हुए थे, सोनेके सिंहासन थे—जिनके ऊपर सुकोमल आस्तरण (गद्दे) सजे थे तथा अत्युज्ज्वल (चमचमाते हुए) चँदोवे लगे थे। चँदोवोंपर मुक्तामालाएँ लटकी हुई थीं। स्वच्छ स्फटिक मणियोंसे बनी हुई दीवारोंपर महामरकतसे नक्काशी की गयी थी, रत्नोंसे जड़ी हुई स्त्रीमूर्तियोंके हाथोंमें दीपमालाएँ जगमगा रही थीं। सुदामा विप्रने जब समस्त सम्पत्तियोंकी समृद्धिको देखा और उसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं देखा, तब बड़े गम्भीर एवं शान्त भावसे चिन्तन करने लगे कि अनायास ही यह अहैतुकी समृद्धि कहाँसे आयी? ॥ २९-३२ ॥

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य
 शश्वद्वरिद्रस्य समृद्धिहेतुः।
 महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो
 नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य॥ ३३ ॥

वे मन-ही-मन सोचने लगे—मैं तो सदैव ही दारिद्र्य-दुःखसे पीड़ित रहा हूँ। मेरे जैसे दुर्भागके पास इस प्रकारका विलासमय ऐश्वर्य कहाँसे आ सकता है? महाविभूतिशाली यदुवंश-शिरोमणि श्रीकृष्णके साक्षात्कार एवं उनकी कृपाके अतिरिक्त और कोई कारण सङ्गत अथवा युक्तियुक्त नहीं हो सकता॥ ३३ ॥

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं
याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः।
पर्जन्यवत् तत् स्वयमीक्षमाणो
दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥

दाशार्ह-श्रेष्ठ (दाशार्ह राजागण अपनी उदारताके लिए विख्यात थे) श्रीकृष्ण अनन्त सम्पदाओंसे सम्पन्न हैं। मेरे सखा यदु-प्रवर श्रीकृष्ण याचक भक्तोंका अभाव देखकर उन्हें स्वयं ही बहुत कुछ प्रदान करके उसे थोड़ा ही समझते हैं। वे साक्षात् दानकी बात नहीं करते। वे तो मेघके समान परोक्षरूपसे प्रार्थित वस्तुको प्रचुर मात्रामें दे दिया करते हैं (मेघ समुद्रको प्लावित कर देनेकी सामर्थ्य रखने पर भी किसानके सामने न बरसकर उसके सो जानेपर रातमें बरसता है और बहुत बरसने पर उसे थोड़ा ही समझता है।) श्रीकृष्ण मेघसे भी अधिक वदान्य (महा उदार) हैं ॥ ३४ ॥

किञ्चित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं
सुहृत्कृतं फलवपि भूरिकारी।
मयोपनीतं पृथुकैकमुष्टिं
प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥

मेरे प्यारे सखा श्रीकृष्ण भक्तोंको भूरि-भूरि देकर उसे थोड़ा-सा मानते हैं और प्रेमी भक्तोंके द्वारा प्रदत्त अति तुच्छ भेंटको भी बहुत मानते हैं। देखो तो सही उनकी उदारता! मेरे द्वारा लाये गये एक मुठ्ठी चिउड़ेको भी उन्होंने कितने प्रेमसे स्वीकार कर लिया ॥ ३५ ॥

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री-
दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात्।
महानुभावेन गुणालयेन
विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥ ३६ ॥

मुझे तो जन्म-जन्मान्तरोमें अपने सखाका भक्त-वात्सल्य, स्नेह, सख्य, एक साथ अवस्थान, प्रणय, मैत्री एवं दास्य इसी प्रकारसे प्राप्त होता रहे। मैं उनका सेवक बना रहूँ। महानुभाव पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण समस्त गुणोंके आकर हैं। मुझे उनके प्रेमी भक्तोंका उत्तम सङ्ग प्राप्त हो और उनके श्रीचरणोंमें दृढ़ अनुरक्ति बनी रहे॥ ३६ ॥

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदो
राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः।
अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं
पश्यन् निपातं धनिनां मदोद्भवम्॥ ३७ ॥

अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण परम विवेकी हैं। वे जानते हैं कि धनवान् धन-मदके कारण पतित हो जाता है। अतः वे अपने अदूरदर्शी (आध्यात्मिक सम्यक् दृष्टिसे रहित) सेवकको सम्पत्ति, ऐश्वर्य, पुत्र-कलत्र आदि कुछ भी नहीं देते, बल्कि दृढ़ (अनपायिनी) भक्ति ही देते हैं॥ ३७ ॥

इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने।
विषयान् जायया त्यक्ष्यन् बुभुजे नातिलम्पटः॥ ३८ ॥

परीक्षित्! विप्र सुदामा मन-ही-मन बुद्धिपूर्वक निश्चय करके विषयोंको प्रभुकी कृपा जानकर अपनी पत्नीके साथ अनासक्त भावसे भोग करने लगे, लम्पट भावसे नहीं। क्रमशः वे विषय-भोगोंके त्यागका अभ्यास करते रहे। भगवान् जनार्दनमें दिनोंदिन उनका अनुराग अतिशय बढ़ता गया॥ ३८ ॥

तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः।
ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम्॥ ३९ ॥

हे राजन्! देवताओंके भी आराध्यदेव, भक्तवत्सल प्रभु, यज्ञेश्वर श्रीहरि ब्राह्मणोंको अपना प्रभु-स्वरूप, अपना इष्टदेव मानते हैं। अतः उन ब्राह्मणोंकी अपेक्षा जगत्में परम देवता और कोई नहीं है॥ ३९ ॥

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत् तदा
 दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम्।
 तद्ध्यानवेगोदग्रथितात्मबन्धन-
 स्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके प्रिय सखा विप्र सुदामाने देखा कि यद्यपि भगवान् अजित हैं, तथापि अपने सेवकोंसे पराजित हो जाते हैं; तब वे उन्हींके ध्यानमें तन्मय हो गये। ध्यानके वेग-बलसे उनकी जड़-अहङ्कार-स्वरूप आत्म-ग्रन्थिका छेदन हो गया और उन्होंने भक्तोंके एकमात्र आश्रय वैकुण्ठधामको प्राप्त कर लिया ॥ ४० ॥

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः।
 लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पृथुकोपाख्यानं
 नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

परीक्षित्! ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णकी ब्राह्मण-भक्तिसे परिपूर्ण इस उपाख्यानको जो सुनता है, वह भगवद्-भक्तिको प्राप्त करके संसारके कर्म-बन्धनसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके इक्यासीवें अध्यायका
 श्लोकानुवाद समाप्त।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

सूर्य-ग्रहणके उपलक्षमें कुरुक्षेत्रमें कृष्ण और
बलरामके साथ गोप-गोपियोंका मिलन

श्रीशुक उवाच—

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः।

सूर्योपरागः सुमहानासीत् कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! जब कृष्ण एवं बलदेव द्वारकामें वास कर रहे थे, तब एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण लगा, जैसा कि प्रलयकालमें लगा करता है। बलदेव द्वारा व्रजगमनके बाद तथा राजसूय यज्ञसे पहले कुरुक्षेत्र यात्रा सम्पन्न हुई है ॥ १ ॥

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तादेव सर्वतः।

समन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥

हे राजन्! लोग पहलेसे ही ज्योतिषियोंसे सूर्य-ग्रहणके विषयमें जान चुके थे। अतः पुण्य उपार्जनके लिए लोग विभिन्न स्थानोंसे समन्त-पञ्चक तीर्थ कुरुक्षेत्रमें पहुँच गये। यह क्षेत्र पुण्यप्रद है ॥ २ ॥

निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः।

नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाहृदान् ॥ ३ ॥

ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा।

लोकं संग्राहयन्नीशो यथान्योऽघापनुत्तये ॥ ४ ॥

महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रागन् भारतीः प्रजाः।

वृष्णयश्च तथाक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥

ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः।

गदप्रद्युम्न-साम्बाद्याः सुचन्द्र-शुकसारणैः।

आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भगवान् परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेके लिए इक्कीस बार क्षत्रिय राजाओंका वध कर दिया था और उनके रक्तकी धारासे पाँच बड़े-बड़े सरोवर बना दिये थे। यद्यपि वे स्वयं क्षत्रिय-वध-जनित-पापसे स्पृष्ट नहीं थे, तथापि लोक-मर्यादा एवं लोक-शिक्षाके लिए उन्होंने उस स्थानपर इस प्रकार यज्ञ किये, जिस प्रकार कोई साधारण व्यक्ति अपने पापकी निवृत्तिके लिए प्रायश्चित्त करता है। हे परीक्षित! उस सूर्यग्रहणके अवसरपर महातीर्थ-यात्राके उद्देश्यसे भारतवासी बड़ी संख्यामें कुरुक्षेत्रमें आये थे। इन लोगोंमें अनेक वृष्णिजन भी उपस्थित थे—जिनमें अक्रूर, वसुदेव एवं उग्रसेन आदि बड़े-बूढ़े तथा गद, प्रद्युम्न और साम्ब आदि यादव भी अपने-अपने पापोंका नाश करने आये थे। उस समय द्वारकाकी रक्षाके लिए सुचन्द्र, शुक एवं सारणके साथ प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्ध एवं सेनापति कृतवर्माको नियुक्त कर दिया गया था (अनिरुद्ध श्वेतद्वीप पालनकर्त्ता विष्णुरूपमें प्रसिद्ध हैं) ॥ ३-६ ॥

ते रथैर्देवधिष्यभैर्हयैश्च तरलप्लवैः।

गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ ७ ॥

व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः।

दिव्यस्रग्वस्त्रसत्राहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥

महातेजस्वी यादवोंने दिव्य मालाएँ, सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्णमालाएँ एवं कवच धारण कर रखे थे। वे तीर्थयात्राके पथपर विमानोंके समान रथों, समुद्रकी तरङ्गोंके समान चञ्चल घोड़ों, बादलोंके समान विशालकाय एवं चिंघाड़ते हुए हाथियों एवं विद्याधरोंकी द्युतिके समान पैदल सैनिकों द्वारा ढोयी जानेवाली पालकियोंपर अपनी पत्नियोंके साथ ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो आकाशमें स्वर्गके देवता ही विचरण कर रहे हों ॥ ७-८ ॥

तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः।

ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनूर्वासःस्रगुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥

महाभाग यादवोंने कुरुक्षेत्र पहुँचकर एकाग्रचित्तसे अर्थात् संयमपूर्वक स्नान किया एवं ग्रहणके अवसरपर उपवास रखा। ग्रहणके समय उन्होंने ब्राह्मणोंको उत्तम वस्त्र, पुष्पमालाओं तथा स्वर्णहारोंसे विभूषित गायें दान कीं॥९॥

रामहृदेषु विधिवत् पुनराप्लुत्य वृष्णयः।

ददुः स्वत्रं द्विजाग्रयेभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति॥१०॥

ग्रहणका मोक्ष हो जानेपर उन्होंने परशुरामके बनाये हुए कुण्डोंमें (रामहृदोंमें) शास्त्रीय विधिके अनुसार स्नान किया। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उत्तम भोज्य प्रदान किये और उनसे प्रार्थना की कि “श्रीकृष्ण-चरणोंमें हमारी भक्ति हो।” (चिरकाल पूर्व परशुरामजीने स्वकृत हत्याओंके प्रायश्चित्तके लिए कुरुक्षेत्रमें तपस्याकी थी। उन्होंने वहाँ जो पाँच तालाब खोदे थे, वे द्वापर-युगमें भी थे और आज भी हैं)॥१०॥

स्वयञ्च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः।

भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायाङ्घ्रिपाङ्घ्रिषु॥११॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही जिनके इष्ट-देवता हैं, उन वृष्णियोंने श्रीकृष्णसे आज्ञा लेकर स्वयं भोजन किया तथा सुशीतल और घनी छायासे युक्त वृक्षोंके नीचे सुखपूर्वक बैठ गये॥११॥

तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्सम्बन्धिनो नृपान्।

मत्स्योशीनरकौशल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ॥१२॥

काम्बोजकैकयान् मद्रान् कुन्तीनानर्त्तकेरलान्।

अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान् परांश्च शतशो नृप।

नन्दादीन् सुहृदो गोपान् गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम्॥१३॥

हे नरेन्द्र! यदुवंशियोंने देखा कि सुहृद-सम्बन्धियोंके साथ मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ती, आनर्त्त एवं केरल आदि अनेक देशोंके भी राजा यहाँ आये हुए हैं। स्वपक्षीय एवं शत्रुपक्षीय अन्यान्य सैकड़ों राजा

भी वहाँ उपस्थित हैं। इनके अतिरिक्त हे राजा परीक्षित्! यदुवंशियोंके परम हितैषी बन्धु नन्दरायादि गोप और चिरकालसे श्रीकृष्णके दर्शनके लिए उत्कण्ठित गोपियाँ भी वहाँ पधारी हैं ॥ १२-१३ ॥

अन्योन्यसन्दर्शनहर्षरंहसा

प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ।

आशिलष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला

हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १४ ॥

एक-दूसरेके देखते ही हर्षके आवेगसे उनके हृदय-कमल प्रफुल्लित हो गये एवं मुख-कमल प्रसन्नताकी आभासे सुशोभित होने लगे। परस्पर गाढ़ आलिङ्गनके द्वारा वे परम आनन्दित हुए, आँखोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। शरीर पुलकित हो उठा और प्रेमातिशयताके कारण वाणी अवरुद्ध हो गयी ॥ १४ ॥

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृद-

स्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे ।

स्तनैः स्तनान् कुङ्कुमपङ्कूरूषितान्

निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १५ ॥

पुरुषोंकी भाँति स्त्रियाँ भी प्रेमाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रों, मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त विमल चितवन एवं अतिशय सौहार्दसे एक दूसरेको देखने लगीं। वे एक-दूसरीको अपनी भुजाओंमें भरकर अपने स्तनोंसे दूसरेके कुङ्कुमरागसे रञ्जित उज्ज्वल स्तनोंको दबाती हुई आलिङ्गन करते हुए आनन्दका अनुभव करने लगीं ॥ १५ ॥

ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवादिताः ।

स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥ १६ ॥

छोटोंने बड़े-बूढ़ोंको प्रणाम किया और बड़े-बूढ़ोंने छोटोंको आशीर्वाद दिया। एक दूसरेसे सुखपूर्वक आगमन एवं कुशल-मङ्गल

पूछनेके उपरान्त सभी श्रीकृष्णकी मधुर लीलाएँ आपसमें कहने-सुनने लगे ॥ १६ ॥

पृथा भ्रातृन् स्वसृर्वीक्ष्य तत्पुत्रान् पितरावपि।

भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दञ्च जहौ सङ्कथया शुचः ॥ १७ ॥

परीक्षित्! महारानी कुन्तीदेवी अपने माता-पिता, वसुदेवादि भाइयों, बहनों, भतीजे-भतीजियों, भांजे-भाजियों, भाभियों एवं श्रीकृष्णको देखकर उनके साथ बड़े प्रेमसे संभाषण करने लगीं, जिनसे उनके सारे शोक दूर हो गये ॥ १७ ॥

श्रीकुन्त्युवाच—

आर्य्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम्।

यद्वा आपत्सु मद्वात्ता नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १८ ॥

कुन्तीने वसुदेवसे कहा—“हे पूजनीय भैया! मैं तो अपनेको अतिशय विफल मनोरथ मानती हूँ क्योंकि आप-जैसे साधु-स्वभाव भाईने विपत्कालमें मेरी कोई खोज-खबर नहीं ली ॥” १८ ॥

सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि।

नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ १९ ॥

भैया! विधाता ही जिसके प्रतिकूल हो, उसे स्वजन, सुहृद, ज्ञाति, पुत्र, भाई एवं पिता-माता सभी भूल जाते हैं। इसमें आप लोगोंका कोई दोष नहीं है ॥ १९ ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान् नरान्।

ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथ वा ॥ २० ॥

श्रीवसुदेवने कहा—बहिन! हमारे ऊपर दोषारोपण मत करो, क्योंकि हम सभी दैवके खिलौने मात्र हैं। मनुष्य चाहे स्वतन्त्र भावसे कार्य करे अथवा दूसरोंके द्वारा कार्य करनेको बाध्य हो, सभी लोग जगदीश्वर भगवान्के वशीभूत हैं ॥ २० ॥

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशम्।

एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २१ ॥

हे बहिन! कंसके उत्पीड़नके कारण हम सब भी विभिन्न दिशाओंमें भाग गये थे। अब दैवकी कृपासे अपने-अपने घरोंमें पहुँच पाये हैं ॥ २१ ॥

श्रीशुक उवाच—

वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्घिता नृपाः।

आसन्नच्युतसन्दर्श-परमानन्दनिर्वृताः ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! वहाँ आये हुए समस्त राजाओंका वसुदेव, उग्रसेन आदि यादवोंने स्वागत-सत्कार किया और वे सब अच्युत भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके परमानन्द और परम शान्तिका अनुभव करने लगे ॥ २२ ॥

भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा।

सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सञ्जयो विदुरः कृपः ॥ २३ ॥

कुन्तीभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान्।

पुरुजिद्द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः स काशिराट् ॥ २४ ॥

दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ।

युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥ २५ ॥

राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः।

श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २६ ॥

हे राजेन्द्र! उस समय भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, पुत्रोंके साथ गान्धारी, पत्नियोंके साथ पाण्डव, कुन्ती, सञ्जय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्तीभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशीराज, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिला-नरेश, मद्र-नरेश, केकय-नरेश, युधामन्यु, सुशर्मा, अपने पुत्रोंके साथ बाह्लीक आदि राजा एवं युधिष्ठिरके अनुयायी (अब तक युधिष्ठिरको आधा राज्य प्राप्त हो चुका था, ये सभी राजा उनके

अधीन थे) अन्य राजागण आदि सभी परम सुन्दर, श्रीनिकेतन-विग्रह एवं अपनी पत्नियोंके साथ विराजमान श्रीकृष्णको अपने सम्मुख देखकर आश्चर्यचकित हो गये ॥ २३-२६ ॥

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक् प्राप्तसमर्हणाः ।

प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्णपरिग्रहान् ॥ २७ ॥

ये राजागण बलराम तथा श्रीकृष्णसे यथायथ सम्मान प्राप्त करके अतीव सन्तुष्ट हो गये और बड़े प्रसन्न मनसे वृष्णिवंशी कृष्णाश्रित यादवोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २७ ॥

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ।

यत् पश्यथासकृत् कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८ ॥

राजाओंने कहा—हे भोजराज उग्रसेन! मानवोंमें आपलोगोंका ही जन्म इस पृथ्वीपर सार्थक है, आप धन्य हैं! धन्य हैं! क्योंकि योगियोंके लिए भी जिनके दर्शन दुर्लभ हैं, आप उन्हें नित्य-निरन्तर देखते रहते हैं ॥ २८ ॥

यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति

पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ।

भूः कालभर्जितभगापि यदङ्घ्रि पद्म-

स्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ २९ ॥

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्प-

शय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः ।

येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्त्ततां वः ।

स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३० ॥

श्रुतियाँ जिनकी विमल कीर्तिका गान करती हैं, जिनके पाद-प्रक्षालन-वारि-स्वरूप गङ्गादेवी एवं वाणी-स्वरूप वेदशास्त्र इस विश्व-ब्रह्माण्डको अत्यन्त पवित्र कर रहे हैं, जिस कालके प्रभावसे पृथ्वीका सारा सौभाग्य नष्ट हो चुका था, परन्तु अब जिनके चरणकमलोंका स्पर्श पाकर वे पुनः शक्तिमती होकर

हमारी सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी पूर्ति कर रही हैं, उन्हीं श्रीकृष्णके साथ आपका वैवाहिक एवं सपिण्ड (दैहिक) सम्बन्ध है। इसीलिए आप उन्हें नित्य-निरन्तर देखते हैं, उनका स्पर्श करते हैं, उनके साथ चलते हैं, उनसे प्रेमालाप करते हैं, उनके साथ सोते-बैठते हैं और भोजन करते हैं। यों तो आप लोग घर-गृहस्थीमें उलझे हुए हैं, तो भी आप लोगोंकी स्वर्ग-अपवर्गकी वितृष्णाको नष्ट करके भक्ति प्रदान करनेवाले श्रीकृष्ण आपके घरोंमें निवास करते हैं। वस्तुतः आपका जीवन ही सार्थक है ॥ २९-३० ॥

श्रीशुक उवाच—

नन्दस्तत्र यदून् प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान्।

तत्रागमद्वृतो

गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—जब नन्द महाराजको यह पता चला कि श्रीकृष्ण आदि प्रमुख यादव कुरुक्षेत्रमें आये हुए हैं, तब वे गोप-गोपियोंको साथ लेकर तथा अपने छकड़ोंपर धन आदि विविध सामग्री लादकर श्रीकृष्ण-बलराम आदिको देखनेके लिए वहाँ पहुँचे ॥ ३१ ॥

तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः।

परिष्वजिरे

गाढं

चिरदर्शनकातराः ॥ ३२ ॥

नन्द महाराजको देखकर सारे वृष्णिजन इस प्रकार उठ खड़े हुए मानो मृत शरीरोंमें प्राणोंका सञ्चार हो गया हो। वे सब उनसे मिलनेके लिए दीर्घकालसे विह्वल हो रहे थे। अतएव सभी यादवोंने बड़े प्रेमके साथ नन्दरायका गाढ़ आलिङ्गन किया ॥ ३२ ॥

वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः।

स्मरन् कंसकृतान् क्लेशान् पुत्रन्यासञ्च गोकुले ॥ ३३ ॥

वसुदेवको कंस द्वारा किये गये अत्याचारोंका स्मरण हो आया, जिसके कारण उन्हें अपने पुत्रोंको संरक्षणके लिए नन्दके

घरमें रखनेको बाध्य होना पड़ा था। वे नन्दका आलिङ्गन करके परम सन्तुष्ट हुए। आनन्द और प्रेमकी अधिकतासे वसुदेव भावविभोर हो गये ॥ ३३ ॥

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च।

न किञ्चनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरुद्वह ॥ ३४ ॥

हे कुरुनन्दन! श्रीकृष्ण एवं बलदेवने नन्द बाबा और यशोदा मैयाको हृदयसे लगाकर उनका आलिङ्गन एवं अभिवादन किया। प्रेमके उद्रेकसे उनका गला रूँध गया और वे दोनों भी कुछ नहीं बोल पाये (बहुत देर तक आलिङ्गनके बाद अवकाश मिलनेपर प्रणामका अवसर मिला था) ॥ ३४ ॥

तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च।

यशोदा च महाभागा सुतो विजहतुः शुचः ॥ ३५ ॥

महाभाग नन्द एवं महाभाग्यवती यशोदादेवीने अपने दोनों पुत्रोंको अपनी गोदमें बिठाकर और दोनों भुजाओंमें भरकर दृढ़ आलिङ्गन किया, जिससे दीर्घ विरहके कारण उनका जितना भी शोक-दुःख था, वह दूर हो गया (नन्दबाबा एवं यशोदा अपने स्वाभाविक वात्सल्यके कारण उन दोनोंको आठ वर्षका ही देख रहे थे, वे दोनों भी इस समय पूर्णतम गोप जातिके हो गये थे) ॥ ३५ ॥

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य ब्रजेश्वरीम्।

स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥ ३६ ॥

रोहिणी एवं देवकी दोनोंने ब्रजेश्वरी यशोदाका आलिङ्गन किया। उन दोनोंको यशोदाकी मैत्रीका स्मरण हो आया, जिससे उनकी आँखोंमें आँसू आ गये और कण्ठ रूँध गया। वे कहने लगीं— ॥ ३६ ॥

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां ब्रजेश्वरि।

अवाप्यायैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३७ ॥

रोहिणी एवं देवकीने कहा—हे ब्रजेश्वरी यशोदे! इन्द्रके समान ऐश्वर्य पाकर भी हम आपकी मित्रताका ऋण नहीं चुका सकतीं। आपका एवं नन्द महाराजका नित्य-निरन्तर मित्रताका जैसा भाव बना रहता है, भला कौन स्त्री उसे विस्मृत कर सकती है ॥ ३७ ॥

एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः

सम्प्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ।

प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णो-

न्यस्तावकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥ ३८ ॥

(रोहिणी एवं देवकी विचार कर रही हैं कि हमारे दोनों पुत्र प्रेमान्ध एवं मत्त होकर यशोदाके वात्सल्य-सागरमें ऐसे डूब गये हैं कि हमारी ओर देख-भर भी नहीं रहे। यशोदा भी अविवेकी तथा प्रेमान्धकी भाँति इनपर हमारी अपेक्षा लाख-गुना अधिक मातृ-स्नेह बरसा रही है तथा हमें तो अनजानके जैसी ताक भर रही है। अतः इससे स्नेहपूर्ण शब्दोंमें बात करते हैं। देवकी कहने लगीं—)

हे देवि! पलकें जिस प्रकार आँखोंकी भलीभाँति रक्षा करती हैं, उसी प्रकार आपने इन दोनों बालकोंकी रक्षा की। शैशवास्थाके कारण ये दोनों तो अपने माता-पिताको जानते भी न थे, इसके पहले ही इन्हें हमने आपके एवं नन्दमहाराजके हाथोंमें समर्पित कर दिया था। इन्हें आपके पाससे परम प्रीति, पोषण (प्यार-दुलार) और सम्यक् सुरक्षा-प्रबन्ध प्राप्त थे। अतः हे माननीया! आपकी देख-रेखमें ये सर्वथा निर्भय रहे। आप लोगोंके लिए ऐसा आचरण युक्तिसङ्गत ही है, क्योंकि सज्जनोंमें अपने-परायेका भेद-भाव नहीं रहता।

(यशोदाने जब कोई उत्तर नहीं दिया तब रोहिणीने कहा— देवकी! यशोदाको भाव-समाधिसे निकालना असम्भव है। यह तो हमारा अरण्य-रोदन है। हमारे दोनों पुत्र इसके साथ स्नेह-रज्जुसे दृढ़ आबद्ध हैं। अतः बाहर चलकर कुन्ती, द्रौपदी आदिसे मिलने चलें) ॥ ३८ ॥

श्रीशुक उवाच—

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—दीर्घ-विछोहके बाद जब गोपियोंको श्रीकृष्णका चिरवाञ्छित दर्शन प्राप्त हुआ, तो वे उन्हें निर्निमेष नेत्रोंसे (टकटकी बाँधकर) देखने लगीं। देखते समय आँखोंकी पलकोंके गिरनेके कारण पलकोंके सृष्टिकर्ता विधाताकी वे निन्दा करने लगीं। अनन्तर नेत्र-पथसे प्रियतम श्रीकृष्णको हृदयमें ले जाकर उन्होंने उनका प्रगाढ़ आलिङ्गन किया और उस तन्मयताको प्राप्त किया, जो योगका निरन्तर अभ्यास करनेवाले आत्माराम-शिरोमणि महायोगेश्वर श्रीरुद्रादिके लिए भी अतीव दुर्लभ है ॥ ३९ ॥

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसङ्गतः।

आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४० ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें तादात्म्यावस्था (आनन्द-मूर्च्छावस्था) में देखा तो वे एकान्तमें (निर्जनमें) उनके समीप पहुँचे और अपनी विभूति-शक्ति द्वारा प्रत्येक गोपीका पृथक्-पृथक् रूपसे आलिङ्गन किया। उन्होंने हरेकसे कुशल-क्षेमके विषयमें पूछा तथा सुरम्य मुसकानके साथ कहने लगे—(श्रीकृष्णने अपना विस्तार करते हुए हर गोपीकी समाधिको भङ्ग किया और उनसे पूछा, 'मेरा विरहरूप महारोग अब शान्त हो गया न?' उन्हें हँसानेके लिए स्वयं भी उच्च-स्वरसे हँसे) ॥ ४० ॥

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया।

गतांश्चिरायितान्

शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४१ ॥

हे सखियो! स्वजन-सम्बन्धियोंका प्रयोजन साधनेके लिए ही मैं वहाँसे चला आया। इतने दिनों तक शत्रुओंका वध करनेमें ही लगा रहा। बहुत समयसे तुमलोगोंने मुझे देखा नहीं, अतः कहीं

मुझे भुला तो नहीं दिया। ब्रजमें आनेका मुझे अवसर ही नहीं मिला ॥ ४१ ॥

अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञाविशङ्कया ।

नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४२ ॥

मेरी प्यारी सखियो! अथवा तुम्हें यह आशङ्का तो नहीं है कि मैं अकृतज्ञ हूँ और इसीलिए मेरी अवज्ञा कर रही हो। वास्तवमें तो भगवान् ही समस्त प्राणियोंको एकत्रित करते हैं और वे ही उन्हें वियुक्त कर देते हैं! इसमें हमारा कोई दोष नहीं है ॥ ४२ ॥

वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ।

संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४३ ॥

वायु जिस प्रकार बादलों, तिनकों, रूईके फाहों एवं धूलिके कणोंको एक-दूसरेसे मिला देती है और पुनः उन्हें पृथक्-पृथक् कर देती है, उसी प्रकार सृष्टिकर्त्ता भगवान् भी समस्त प्राणियोंका संयोग एवं वियोग करा देते हैं ॥ ४३ ॥

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।

दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४४ ॥

(गोपियोंने कहा, हे वक्ता शिरोमणि! आप जिनपर दोषका आरोपण कर रहे हैं, वे भगवान् आप ही समस्त लोकोंमें विख्यात हैं, यह हम जानती हैं। तब श्रीकृष्णने कहा—) गोपियो! मेरे प्रति भक्तिका अभ्युदय होनेसे ही प्राणिमात्रको अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त हो जाता है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमलोगोंको मेरा वह परम स्नेह (परिपक्व प्रेम) भी प्राप्त हो चुका है, जो मेरी प्राप्तिका कारण-स्वरूप है। अधिक क्या कहूँ! यह अतिशय कल्याणजनक है। तुम्हारा मेरे प्रति जो स्नेह है, वह मुझे बलपूर्वक आकर्षितकर तुम्हारे पास ले ही आता है ॥ ४४ ॥

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।

भौतिकानां यथा खं वार्ष्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४५ ॥

हे प्रियतमाओ! पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—ये पञ्च महाभूत जिस प्रकार सम्पूर्ण भौतिक पदार्थोंके आदि, अन्त, मध्य तथा भीतर-बाहर आदि विविध रूपोंमें वर्तमान रहते हैं, उसी प्रकार मैं भी सभीके भीतर एवं बाहर विराजमान रहता हूँ। मैं ही जरायुजादि सभी प्राणियोंका सृष्टिकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता हूँ। इसलिए तुम लोगोंसे मेरा कभी वियोग नहीं है (यदि मुझे भगवान् मानती हो, तो मैं सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त हूँ, तब मेरे वियोगका अनुभव होना ही नहीं चाहिये। उद्धवने जो कहा, वही मेरा उपदेश है पर उससे तुम्हारा दुःख नष्ट ही नहीं हुआ। हे अबलाओ! तुम ज्ञानवती-प्रेमवती हो। मेरे तत्त्वको समझो) ॥ ४५ ॥

एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः।

उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४६ ॥

घट-पट आदि भौतिक (उत्पन्न किये गये) पदार्थ जिस प्रकार अपने मूलभूत-कारण पञ्च महाभूतोंमें (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वीमें) वर्तमान रहते हैं, उसी प्रकार पञ्चमहाभूत भी अपने कारण सूक्ष्मभूतोंमें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि पञ्च-तन्मात्राओंमें) विराजमान रहते हैं, आत्मामें नहीं। आत्मा भी भोक्तृसूत्रके रूपमें ही प्राणियोंमें विराजमान है, कारण सूत्रमें नहीं। आत्मा समस्त सृष्टिमें व्याप्त रहती है। भूतादि एवं भौतिकरूप-भोग्य-पदार्थ (भौतिक तत्त्वोंसे बने पदार्थ एवं समस्त जीव) एवं भोक्ता-आत्मा—ये दोनों ही परिपूर्ण परमात्मारूपी मुझसे प्रकाशित होते हैं। तुम्हारी देह एवं आत्मा मुझमें ही सर्वदा विद्यमान हैं। अतः मेरा जो विरह-दुःख है, वह अविवेक-कल्पित है ॥ ४६ ॥

श्रीशुक उवाच—

अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः।

तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन्

॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! श्रीकृष्णसे इस प्रकार अध्यात्म-शिक्षाके द्वारा स्व-स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके गोपियाँ

प्रतिक्षण उनका ही ध्यान करने लगीं, जिससे उनके जीवन-कुमुदका अन्तर्भाग—आत्माका सूक्ष्म आवरण-मिथ्या अहङ्कार ध्वस्त हो गया। श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी आशासे (क्योंकि श्रीकृष्णने मथुरा आते समय यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अवश्य-अवश्य ही आवेंगे) वे अपने जीवनकी रक्षाके लिए किञ्चित् मात्र ही प्रयास करती थीं अर्थात् किसी प्रकारसे जीवन धारण करती थीं। जीवनकी समाप्तिपर वे उन्हें ही प्राप्त हो गयीं [कृष्ण द्वारा प्रदत्त ज्ञान-प्राप्त गोपियोंने कहा कि हमारी जिज्ञासा न रहनेपर भी ये कृष्ण प्रथम तो रासलीलामें धर्मके उपदेष्टा बने, बादमें उद्धव द्वारा ज्ञानके उपदेष्टा बने और अब पुनः ज्ञानका ही उपदेश कर रहे हैं—यह ज्ञान देनेका स्वभाव इनके लिए दुस्त्यज्य ही है (अर्थात् ज्ञान देना छोड़ ही नहीं सकते)। नित्य सिद्ध साधुओंका लिङ्ग-देह नहीं होता, तब प्रेमधन-सम्पन्न हमारा (हम गोपियोंका) जीवकोश (मिथ्या अहङ्कार द्वारा प्राकृत बन्धन) सम्भव ही नहीं है] ॥ ४७ ॥

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीवृष्णि-गोपसङ्गमो नाम
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

उस समय गोपियोंने प्रार्थना की—हे कमलनाभ! अगाध ज्ञानसे सम्पन्न ब्रह्मादि योगेश्वर आपके जिन चरणकमलोंका सदा सर्वदा हृदयमें ध्यान करते हैं तथा जो चरणकमल संसारमें रत मनुष्योंके लिए एकमात्र आश्रय हैं; हे प्रभो! हम बस यही अभिलाषा करती हैं कि आपके वे चरणकमल हमारे हृदयमें सदा आविर्भूत रहें।

गोपियोंने वक्रोक्तिसे कहा कि हे तत्त्वज्ञान-अध्यापक-शिरोमणि ! हे परमेश्वर ! हे साक्षात् मूर्त्त परमात्मा ! आप हमारी कुटुम्बासक्तिसे अवगत हैं—इसलिए हमारा चित्त निर्मल करनेके लिए आपने उद्धवको भेजा, लेकिन हमारी तो बुद्धि दुष्ट है। आप भी अब जो ज्ञान दे रहे हो, वह भी हमारे हृदयमें ठहरता नहीं है। हमारा हृदय तो कर्मफलसे सन्तापित है, परन्तु हे प्राणप्रेष्ठ ! आपके प्रति जो हमारा शुद्ध स्नेह है, उससे हमारा हृदय अवश्य सराबोर रहता है।

सर्व-भक्त-चूड़ामणि गोपियोंने निवेदन किया—हे अज्ञानरूप-अन्धकार-ध्वंसकारी-सूर्य ! आपके तत्त्वज्ञानरूप तापके द्वारा तो हम जलकर ही मर जायेंगी। चकोरीके समान आपके मुख-चन्द्रकी ज्योत्स्नासे ही जीवित रह सकेंगी, द्वारकामें हम तो न रह सकेंगी। हम तो वृन्दावन-सेविनी हैं, हमारे लिए वृन्दावन-त्याग करना असम्भव है, वृन्दावनमें ही शिखिपुच्छचूड़ामणि आपके मुरलीमनोहर गानरूप माधुर्यमें ही हमारी रुचि है, अतएव आपके चरणकमल हमारे वृन्दावनमें ही उदित हों अर्थात् पधारें। जब व्रजभूमिमें आपका दर्शन होगा, तभी हमारे सन्तापका उपशम होगा, आपके स्मरणसे कदापि नहीं। तब आपके द्वारा उपदिष्ट आत्म-ज्ञानसे तो कुछ भी सम्भव नहीं है (अर्थात् यह ज्ञान हमारे किसी कामका नहीं है) ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके बयासीवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी रुक्मिणी आदि पत्नियोंके साथ
द्रौपदीका वार्त्तालाप

श्रीशुक उवाच—

तथानुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुर्गतिः।

युधिष्ठिरमथापृच्छत् सर्वाश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित् ! गोपियोंके अध्यात्म-विषयक गुरु (गन्तव्य) और उनके एकमात्र आश्रय (महती गति) भगवान् श्रीकृष्णने पूर्वोक्तरूपसे गोपियोंपर महान् अनुग्रह किया। तत्पश्चात् उन्होंने युधिष्ठिर एवं अन्यान्य सुहृदोंसे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ १ ॥

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः।

प्रत्युचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

श्रीकृष्णके चरणकमलोंके दर्शनसे वे सभी पापोंसे मुक्त हो चुके थे। उनके द्वारा कुशल-क्षेम पूछे जानेपर युधिष्ठिरादि सभी बान्धव सम्मानका अनुभव कर रहे थे। अतः वे बड़े ही आनन्दित होकर उत्तर देने लगे— ॥ २ ॥

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं

महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित्।

पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो

देहं भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आपकी लीला-कथाएँ महापुरुषोंके मुख-कमलसे निःसृत होकर (बाहर निकलकर) जीवोंके संसारकी हेतुभूत अविद्याका समूल नाश कर देती हैं, ऐसे आपके श्रीपादपद्मोंके चरित-मधु-मकरन्दका जो एक बार भी कर्णपुटों द्वारा पान कर लेते हैं, उनका अमङ्गल किस प्रकार सम्भव हो सकता है? इस

दिव्य कथारसका पान देहधारी जीवात्माओंको जन्म-मृत्युके चक्रमें डालनेवाली भगवत्-विस्मृतिका उच्छेद (समूल नाश) कर डालता है ॥ ३ ॥

हि त्वात्मधामविधुतात्मकृतत्रयवस्था-
मानन्दसंप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् ।
कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोग-
मायाकृति परमहंसगतिं नताः स्म ॥ ४ ॥

हे प्रभो! आपके स्वरूपके (निज विग्रहके) प्रकाशसे आपके सम्मुख बुद्धिकी तीनों अवस्थाएँ—जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति तथा सतो, रजो और तमोमयी अवस्थाएँ निरस्त हो जाती हैं। आप स्वयं सर्वानन्दरूप, अखण्ड एवं अकुण्ठित चित्-शक्तिसे सम्पन्न हैं। कालके प्रभावसे लुप्तप्राय वेदोंकी रक्षाके लिए आप अपनी योगमायासे अपना सर्वश्रेष्ठ नर वपु स्वीकार करके दुष्ट-निग्रह एवं शिष्ट-पालन करते हैं। आप परमहंसोंकी एकमात्र गति हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

श्रीऋषिरुवाच—

इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जने-
ष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ।
समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगुणं-
स्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! इधर अन्यान्य लोग पुण्यश्लोक-चूड़ामणि श्रीकृष्णकी प्रशंसा कर रहे थे और उधर यादव-कौरववंशकी स्त्रियाँ सम्मिलित होकर त्रिलोकीमें विख्यात गोविन्दकी लीला-कथाओंकी परस्पर चर्चा कर रही थीं। उन कथाओंको मैं तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो ॥ ५ ॥

श्रीद्रौपद्युवाच—

हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौशले।
हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥

हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान् स्वयम्।

उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन् स्वमायया ॥ ७ ॥

श्रीद्रौपदीने कृष्णमहिषियोंको सम्बोधन करते हुए कहा—हे रुक्मिणी! हे भद्रे! हे जाम्बवती! हे सत्ये! हे सत्यभामे! हे कालिन्दी! हे शैब्ये! हे रोहिणि! हे लक्ष्मणे! हे अन्यान्य कृष्णकी पत्नियो! अच्युत भगवान् श्रीकृष्णने अपनी मायाके योगसे मनुष्य-लीलाका अनुकरण करते हुए तुमलोगोंसे जिस प्रकार विवाह किया, वह हमें निष्कपटरूपसे बतलाओ ॥ ६-७ ॥

श्रीरुक्मिण्युवाच—

चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकाम्मुकेषु

राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः ।

निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्

तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥

श्रीरुक्मिणीने कहा—द्रौपदीजी! जरासन्ध आदि राजा शिशुपालके साथ मेरा विवाह करवानेकी अभिलाषासे धनुष आदि धारण करके युद्धके लिए प्रस्तुत थे, परन्तु बकरियों एवं भेड़ोंके झुण्डमेंसे सिंह जिस प्रकार बलपूर्वक अपना भाग छीन लेता है, उसी प्रकार वे मुझे हर लाये। अजेय वीर योद्धा जिनकी पदधूलिको मुकुटोंपर आदरपूर्वक धारण करते हैं, उन समस्त सम्पत्ति और सौन्दर्यके आश्रय भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमल ही जन्म-जन्मान्तरोंमें मेरे एकमात्र सेव्य हों—मैं उनके चरणोंकी सेवा-अर्चना करती रहूँ ॥ ८ ॥

श्रीसत्यभामोवाच—

यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन

लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ।

जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात् स तेन

भीतः पितादिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥

श्रीसत्यभामाने कहा—द्रौपदीजी! एक सिंहने मेरे चाचाजी प्रसेनको वनमें मार दिया था। भाईके वधके कारण मेरे पिताका हृदय बड़ा दुःखी रहता था। उन्होंने श्रीकृष्णके ऊपर ही हत्याका मिथ्या कलङ्क लगा दिया। तब श्रीकृष्ण अपने ऊपर लगे कलङ्कको दूर करनेके लिए वनमें गये तथा ऋक्षराज जाम्बवान्को पराजित करके उनसे स्यमन्तक मणि ले आये और उसे मेरे पिताके हाथोंमें दे दिया। तब पिताजीने श्रीकृष्णके प्रति मिथ्या कलङ्क लगानेके अपराधसे डरकर उनके साथ मेरा विवाह कर दिया, यद्यपि वे पहले अक्रूरके साथ मेरा विवाह करनेके लिए वाग्दान कर चुके थे॥ ९॥

श्रीजाम्बवत्युवाच—

प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदैवं
सीतापतिं त्रिनवहान्यमुनाभ्ययुध्यत्।
ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां
पादौ प्रगृह्य मणिनाहममुष्य दासी॥ १०॥

श्रीजाम्बवतीने कहा—द्रौपदीजी! मेरे पिता ऋक्षराज जाम्बवान् पहले तो समझ ही नहीं पाये कि ये ही उनके आराध्यदेव सीतापति श्रीरामचन्द्र हैं, अतः उनके साथ सत्ताईस दिनों तक युद्ध करते रहे। बादमें, जब परीक्षा पूरी हुई, तब उन्होंने जान लिया कि ये ही उनके प्रभु श्रीरामचन्द्र हैं, तब उनके चरणोंको पकड़ लिया और स्यमन्तक मणिके साथ मुझे भी उनके चरणोंमें उपहार-स्वरूप प्रदान कर दिया। मैं अब यही चाहती हूँ कि जन्म-जन्मान्तरोंमें उन्हींकी दासी बनी रहूँ। मेरे पिताजी रामावतारमें भी उनके साथ मेरा विवाह करना चाहते थे, परन्तु उस समय वे एक पत्नीव्रतधारी थे, अतः मुझे स्वीकार नहीं किया था॥ १०॥

श्रीकालिन्द्युवाच—

तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया।
सख्योपेत्याग्रहीत् पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी॥ ११॥

श्रीकालिन्दीने कहा—द्रौपदीजी! जब भगवान्को यह विदित हुआ कि मैं उनके चरणकमलोंके स्पर्शकी अभिलाषासे यमुना-तटपर तपस्या कर रही हूँ, तब वे अपने सखा अर्जुनके साथ उस स्थानपर आये और मेरा पाणिग्रहण किया। मैं अब श्रीकृष्णके महलमें बुहारनेवाली दासीके रूपमें रहती हूँ॥ ११॥

श्रीमित्रविन्दोवाच—

यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्
निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः।
भ्रातृश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौक—
स्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्घ्र्यवनेजनत्वम्॥ १२॥

श्रीमित्रविन्दाने कहा—द्रौपदीजी! मेरा स्वयंवर हो रहा था, समस्त सम्पत्तियोंके आश्रय-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ उपस्थित हुए। कुत्तोंके बीचमेंसे सिंह जिस प्रकार अपना शिकार उठा ले जाता है, उसी प्रकार प्रतिपक्षी राजाओं एवं प्रतिकूल रहनेवाले मेरे भाइयोंको पराजित करके श्रीकृष्ण मुझे अपनी द्वारकापुरी ले आये। मुझे जन्म-जन्ममें उनके पाँव पखारनेका सौभाग्य (प्रक्षालन-सेवाका अधिकार) प्राप्त होता रहे—यही मेरी अभिलाषा है॥ १२॥

श्रीसत्योवाच—

सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्
पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय।
तान् वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य
क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान्॥ १३॥
य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम्।
पथि निर्जित्य राजन्यान् निन्ये तद्वास्यमस्तु मे॥ १४॥

श्रीसत्याने कहा—द्रौपदीजी! मेरे पिताजीने मेरे स्वयंवरमें आये हुए राजाओंके बल-पौरुषकी परीक्षाके लिए बड़े-बड़े वीरोंके मिथ्या दर्पको खण्डित करनेवाले और तीखे सींगवाले, महाबलशाली

सात बैलोंको रख छोड़ा था। बालक जिस प्रकार बकरियोंके शावकोंको अनायास ही वशमें करके उन्हें बाँध लेते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णने बिना प्रयासके ही उन सात बैलोंको नाथकर इन्हें बाँध लिया और अपनी वीरतारूपी शुल्कके द्वारा दासियोंके साथ मुझे मोल ले आये। आते समय रास्तेमें विरोध करनेवाले विपक्षी राजाओंकी चतुरङ्गिणी सेनाको पराजित करके उसे भी अपनी राजधानीमें ले आये। मेरी भी यही कामना है कि मुझे उनकी दास्य-सेवाका अवसर सदा-सर्वदा प्राप्त होता रहे॥ १३-१४॥

श्रीभद्रोवाच—

पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान्।

कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः॥ १५॥

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः॥ १६॥

श्रीभद्राने कहा—हे द्रौपदीजी! श्रीकृष्ण मेरे मामाके पुत्र हैं। जब मेरे पिताको पता चला कि मेरा हृदय उनके प्रति अनुरक्त हो गया है, तो उन्होंने स्वयं ही श्रीकृष्णको बुलाया एवं अक्षौहिणी सेना और बहुत-सी सखियोंके साथ तद्गतचित्त मुझे उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया। मैं अपना परम कल्याण इसीमें समझती हूँ कि कर्मफलके बन्धनके अनुसार संसारमें मुझे जहाँ भी जन्म लेना पड़े, प्रत्येक जन्ममें उनके ही चरणकमलोंके संस्पर्शकी अनुगति प्राप्त होती रहे॥ १५-१६॥

श्रीलक्ष्मणोवाच—

ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म

श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह।

चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया

वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान्॥ १७॥

श्रीलक्ष्मणाने कहा—हे रानीजी! मैंने देवर्षि नारदके मुखसे अच्युत भगवान् श्रीकृष्णके जीवन-चरितके विषयमें बार-बार सुना

था और स्वयं पद्महस्ता लक्ष्मीदेवीने विशेषरूपसे विचार करके ब्रह्मादि लोकपालोंका त्याग करके इनका ही वरण किया था—यह सब मनन करके मेरा चित्त मित्रविन्दाकी भाँति श्रीकृष्णके प्रति आसक्त हो गया॥ १७॥

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः।

वृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत्॥ १८॥

हे साध्वी! मेरे पिता वृहत्सेन मुझपर बहुत प्रेम रखते थे। उन्होंने मेरी इच्छा जानकर उसकी पूर्तिके लिए एक उपाय सोचा॥ १८॥

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थप्सया कृतः।

अयन्तु बहिराच्छत्रो दृश्यते स जले परम्॥ १९॥

हे रानीजी! जिस प्रकार आपके पिताने स्वयंवरमें अर्जुनको वररूपमें प्राप्त करनेके लिए मत्स्य-बेधका आयोजन किया था, उसी प्रकार मेरे पिताने भी लक्ष्यभेदके लिए एक मत्स्यका निर्माण करवाया। आपके पिता द्वारा निर्मित मत्स्य मात्र बाहरसे ढका हुआ था एवं स्तम्भसे लगा हुआ था, जिसे ऊपरकी ओर देखकर लक्ष्य साधा जा सकता था, परन्तु उस मत्स्यको तो स्तम्भके नीचे रखा गया था। कुण्डके जलमें पड़े उसके प्रतिबिम्बपर लक्ष्य साधना था। नीचे जल-कलशकी ओर देखकर ऊपर लक्ष्य भेद करना श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यके लिए साध्य न था॥ १९॥

श्रुत्वैतत् सर्व्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम्।

सर्व्वस्त्र-शस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः॥ २०॥

यह समाचार सुनकर अस्त्र-शस्त्र-विशारद बहुत-से राजा अपने-अपने आचार्योंके साथ पिताजीकी राजधानीमें उपस्थित हुए॥ २०॥

पित्रा सम्पूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः।

आददुः सशरं चापं वेद्भुं पर्षदि मद्भियः॥ २१॥

मेरे पिताजीने पराक्रम और वरिष्ठताके आधारपर हरेकका यथोचित सम्मान किया। उन राजाओंने मुझे प्राप्त करनेकी कामनासे वहाँ रखे धनुष-बाण धारण किये और स्वयंवर सभामें मत्स्य भेदना आरम्भ किया॥ २१॥

आदाय व्यसृजन् केचित् सज्यं कर्तुमनीश्वराः।

आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुनाहताः॥ २२॥

उनमेंसे कुछ राजाओंने धनुष तो उठा लिया, परन्तु उसकी प्रत्यञ्चा भी नहीं चढ़ा सके। उन्होंने धनुषको ज्यों-का-त्यों रख दिया। कुछने धनुषकी डोरीको एक सिरेसे बाँधकर दूसरे सिरे (हाथकी कलाई) तक खींच तो लिया, परन्तु स्वयं धनुषके झटकेसे आहत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २२॥

सज्यं कृत्वापरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः।

भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम्॥ २३॥

द्रौपदीजी! बड़े-बड़े प्रसिद्ध वीर—मगधराज जरासन्ध, अम्बष्ठ देशाधिपति चेदिराज शिशुपाल, भीम, दुर्योधन और कर्णने धनुष पर प्रत्यञ्चाको चढ़ा तो दिया, किन्तु उन्हें मत्स्यकी स्थितिका पता तक भी नहीं चला॥ २३॥

मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम्।

पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत् पस्पृशे परम्॥ २४॥

पाण्डव वीर अर्जुनने कुण्डमें स्थित मत्स्यकी परछाईको देखकर उसकी स्थितिका निर्धारण भी कर लिया कि मत्स्य कहाँ है और बड़े यत्नके साथ बाण चलाया भी, किन्तु यह बाण लक्ष्यको भेद न सका और मत्स्यका स्पर्श मात्र करके निकल गया॥ २४॥

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु।

भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाथ लीलया॥ २५॥

तस्मिन् सन्धाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले।

छित्त्वेषुणापातयत् तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते॥ २६॥

महारानीजी! इस प्रकार जब सारे अभिमानी राजाओंका गर्व चूर हो गया, तब उन्होंने उससे विमुख होकर लक्ष्य-भेदका प्रयास ही छोड़ दिया। उस समय मध्याह्न-काल था, सर्वार्थ-साधक अभिजित नक्षत्र था, सूर्यदेव आकाशमें अवस्थित थे। तभी भगवान् श्रीकृष्णने अनायास ही धनुष उठा लिया, उसपर प्रत्यज्वा चढ़ायी तथा जलमें मत्स्यकी परछाईको मात्र एक बार देखकर शरसे उस मत्स्यको भेदकर भूमिपर गिरा दिया॥ २५-२६ ॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि।

देवाश्च कुसुमासारान् मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥ २७ ॥

रानीजी! मत्स्यके गिरते ही पृथ्वीपर जय-जयकार ध्वनि होने लगी और आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। बड़े-बड़े देवता आनन्दसे विभोर होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ २७ ॥

तद्रङ्गमाविशमहं

कलनूपुराभ्यां

पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम्।

नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्रये

सव्रीडहासवदना

कबरीधृतस्रक् ॥ २८ ॥

अनन्तर मैंने नये-नये रेशमी उत्तरीय इत्यादि वस्त्र पहने और उनपर करधनी बाँधी, केशोंपर पुष्प-मालाएँ धारण कीं, स्वर्ण-निर्मित दीप्तिशाली रत्न-जड़ित हार पहने। अपने पैरोंमें बँधे नूपुरोंकी रुनझुन-रुनझुन मधुर ध्वनि करती हुई लजीली मुसकानके साथ स्वयंवर स्थलमें प्रवेश किया॥ २८ ॥

उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विङ्-

गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः।

राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारे-

रंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥ २९ ॥

सुविशाल तथा घनी अलकावलियों और कुण्डलोंकी कान्तिसे मेरा कपोल-प्रदेश विशिष्ट आभामय हो रहा था। मैंने अपने परम सुन्दर मुख-मण्डलको ऊपर उठाया और सुशीतल मुस्कान

तथा तिरछी चितवनसे धीर-धीरे चारों ओर बैठे हुए राजाओंकी ओर देखा। मेरा हृदय तो श्रीकृष्णके प्रति ही आकृष्ट था, अतः अपने हाथोंमें धारण की हुई वरमाला मैंने श्रीकृष्णके गलेमें अर्पित कर दी॥ २९॥

तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यान्कादयः।

निनेदुर्नटनर्त्तक्यो ननृतुर्गायिका जगुः॥ ३०॥

मैंने ज्यों ही वरमाला पहनायी, त्यों ही मृदङ्ग, पखावज, भेरी, शङ्ख, ढोल, नगाड़े आदि वाद्य-यन्त्र बजने लगे, नट एवं नर्त्तकियाँ नाचने लगे और गायकोंने गाना आरम्भ कर दिया॥ ३०॥

एवं वृते भगवति मयेशे नृपयूथपाः।

न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्द्धन्तो हृच्छयातुराः॥ ३१॥

हे याज्ञसेनि! जब मैंने श्रीकृष्णका वरण कर लिया, तब कामातुर राजा यह सहन नहीं कर पाये और बहुत ही क्रोधित हो गये। हे द्रौपदीजी! स्पर्द्धाके कारण वे परस्पर लड़ने लगे॥ ३१॥

मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम्।

शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः॥ ३२॥

इसके बाद चतुर्भुज श्रीकृष्णने मुझे उत्तम चार घोड़ोंवाले रथपर चढ़ा लिया। उन्होंने स्वयं कवचादि धारण किये। दो हाथोंसे मुझे पकड़ लिया और दो हाथोंमें शार्ङ्ग धनुष धारण करके संग्राम-क्षेत्रमें युद्धके लिए अपने रथपर डटकर खड़े हो गये॥ ३२॥

दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम्।

मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव॥ ३३॥

हे रानीजी! सिंह जिस प्रकार अन्यान्य छोटे-छोटे पशुओंका तिरस्कार कर अपना भाग लेकर चला जाता है, उसी प्रकार सारथि दारुक भी राजाओंके देखते-देखते उनकी अवहेलना करते हुए सुवर्ण-सामग्रियोंसे विभूषित रथको हाँक ले चला॥ ३३॥

तेऽन्वसज्जन्त राजन्या निषेद्धं पथि केचन।

संयत्ता उद्धतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥ ३४ ॥

कुत्ते जिस प्रकार सिंहको बाधित करनेके लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं, उसी प्रकार कुछ राजा भी श्रीकृष्णके मार्गको रोकनेके लिए धनुषको ऊँचा उठाये उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे, परन्तु उनके मनोरथ विफल हुए ॥ ३४ ॥

ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रि-कन्धराः।

निपेतुः प्रधने केचिदेके सन्त्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्णके शार्ङ्ग धनुषके बाणोंके प्रहारसे कुछ वीरोंके तो हाथ, पैर और गर्दन आदि अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये। कुछ रणक्षेत्रमें निष्प्राण होकर गिर पड़े और जो शेष बचे थे, वे युद्धस्थलीसे भाग गये ॥ ३५ ॥

ततः पुरीं यदुपतिरत्यलङ्कृतां

रविच्छदध्वज-पटचित्रतोरणाम् ।

कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां

समाविशत् तरणिरिव स्वकेतनम् ॥ ३६ ॥

कुशस्थली (द्वारका नगरी) स्वर्गलोक, मर्त्यलोक आदि सभी स्थानोंमें सर्वत्र प्रशंसित है। यदुपति भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ उसी प्रकार प्रवेश किया, जिस प्रकार सूर्यदेव अपने निवासस्थानमें प्रवेश करते हैं। उस समय द्वारका नगरीको सुन्दर-सुन्दर वन्दनवारोंसे सुसज्जित किया गया था, वहाँ इतनी ध्वजा पताकाएँ लगायी गयी थीं कि उनके कारण सूर्यका ताप धरती तक नहीं आ पा रहा था ॥ ३६ ॥

पिता मे पूजयामास सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान्।

महार्हवासोऽलङ्कारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥ ३७ ॥

मेरी इच्छा पूर्ण हो जानेसे अत्यन्त प्रसन्न होकर मेरे पिताजीने अपने सगे-सम्बन्धियों एवं बान्धवोंका महामूल्य वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसन एवं बहुत-सी सामग्रियोंसे सत्कार किया ॥ ३७ ॥

दासीभिः सर्वसम्पद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ।

आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥ ३८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण यद्यपि आप्तकाम एवं सर्वकामपरिपूर्ण हैं, तथापि मेरे पिताजीने प्रेमवश उन्हें विविध प्रकारकी सम्पत्ति, हाथी, रथ एवं घुड़सवार तथा पैदल योद्धारूपमें चतुरङ्गिणी सेना, महामूल्यवान् अस्त्र-शस्त्र एवं बहुत-सी दासियाँ प्रदान की ॥ ३८ ॥

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः ।

सर्वसङ्गनिवृत्त्याद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥

इस प्रकार हम आठों रानियाँ सभी प्रकारकी आसक्तियोंको परित्यागकर निज धर्मका पालन (तपस्या) करती हुई आत्माराम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी गृह-दासियाँ बनकर रह रही हैं।

(लक्ष्मणा आवेशपूर्वक अपने विषयमें बहुत कुछ कह गयी, तब अन्तमें सभीको सन्तुष्ट करनेके लिए उसने ये वचन कहे। वह कहना चाहती है कि हम आठों श्रेष्ठ होनेपर भी श्रीकृष्णको कभी वशीभूत नहीं कर सकीं। वस्तुतः ये सब महिषियाँ भी श्रीकृष्णकी ह्लादिनी-शक्तिकी अंशभूता हैं और आत्मस्वरूप प्रेम द्वारा उन्हें वशमें भी किये हुए हैं) ॥ ३९ ॥

श्रीमहिष्य ऊचुः—

भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा

ज्ञात्वाथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ।

निर्म्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः

पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥ ४० ॥

अन्यान्य सोलह हजार महिषियोंकी ओरसे रोहिणीदेवीने कहा— नरकासुरने दिग्विजयके समय बहुत-से राजाओंको पराजित करके उनकी कन्याओं अर्थात् हम सबको बन्दी बना लिया। आप्तकाम श्रीकृष्णने यह जानकर नरकासुरको और उसकी सेनाको युद्धमें

मार गिराया और वहाँसे हमें मुक्त कर लाये। उनके चरणकमल संसारसे मुक्ति-प्राप्तिके परम स्रोत हैं—हम उनका ही ध्यान किया करती थीं। इसी कारण उन्होंने हमलोगोंको वहाँसे छुड़ाया और हमारा पाणिग्रहण करके अपनी दासी बना लिया ॥ ४० ॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत।

वैराज्यं पारमेष्ठ्यञ्च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः।

कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥ ४२ ॥

हे साध्वि! हमें सार्वभौमपद, इन्द्रपद, इन दोनोंके भोग, अणिमादि आठ सिद्धियाँ, ब्रह्मपद, मुक्तिपद आदिकी बात तो दूर रहे, श्रीहरिके सालोक्य आदि पदोंकी भी कामना नहीं है। एकमात्र यही इच्छा है कि लक्ष्मीजीके कुच-कुङ्कुमकी सुगन्धसे युक्त गदाभृत श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी श्रीरज सदैव अपने मस्तकपर धारण करती रहें।

साम्राज्य, सार्वभौमपद (सम्पूर्ण पृथ्वीपर शासन), स्वराट्का भाव, स्वाराज्य-इन्द्रपद (स्वर्गपर शासन), भौज्य (सभी विषयोंका यथेच्छ भोग करनेकी क्षमता), वैराज्य (विराट्-अणिमादि विशिष्ट ऐश्वर्योंका भोग), पारमेष्ठ्य (ब्रह्मापद), आनन्त्य (मोक्ष-प्राप्ति), श्रीहरिके पद (सालोक्यादि मुक्ति-चतुष्टय) की कामना गोपियोंने भी नहीं की है। साम्राज्य पूर्वके लिए, भौज्य दक्षिणके लिए, स्वाराज्य पश्चिमके लिए और वैराज्य उत्तर दिशाके लिए बतलाये गये हैं। महिषियोंकी एकमात्र कामना श्रीकृष्णकी श्रीदेवीके (राधारानीके) कुच-कुङ्कुमगन्ध युक्त पद-रजकी प्राप्ति है। इसीके लिए उनकी तपस्या है। श्रीउद्धवने कहा है कि लक्ष्मीदेवी श्रीकृष्णका यह श्रेष्ठ प्रसाद प्राप्त नहीं कर पायी हैं। अतः भगवान्की अन्तरङ्गा-शक्ति श्रीराधाजीकी पद-रज ही सभीके लिए काम्य वस्तु है ॥ ४१-४२ ॥

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ।

गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

गोचारण करते समय उदार-शिरोमणि श्रीकृष्णकी चरण-धूलिका स्पर्श व्रजरमणियों, गोपगणों, तृण-लताओं एवं पुलिन्द-रमणियोंको भी प्राप्त हुआ था। अन्योके द्वारा दुर्लभ होनेपर भी यह चरण-रज उन सबको सुलभ हो सकती है, जिनका चित्त उनमें लगा हुआ है। हमें भी इस रज-प्राप्तिकी अभिलाषा है।

गोपियोंकी रुक्मिणीके साथ सम्बन्ध-गति नहीं है, इसलिए वे उनकी वाञ्छा कभी नहीं करेंगी। रुक्मिणीके प्रति व्रजदेवियोंको सपत्नी-भावके कारण असूया अवश्य दिखायी देती है, जैसा कि उन्होंने कहा है—कृष्ण किसलिए व्रजमें आयेंगे! मथुरामें राज्य प्राप्त किया है, शत्रुओंको मारा है, राजकन्याओंसे विवाह किया है।

बृहत्-गौतमीयतन्त्रके अनुसार इस प्रसङ्गमें 'श्री' पद कृष्णमयी देवी, परदेवता, सर्वलक्ष्मी, सर्वकान्ति, कृष्ण-सम्मोहिनी, सर्वश्रेष्ठ श्रीराधिकाको ही अभिलक्ष्य करता है। व्रजदेवियाँ राधाकी सखी सुहृद् हैं, इसलिए वे राधाजीके कुच-कुङ्कुमगन्धसे युक्त श्रीकृष्णकी पदरजकी वाञ्छा करती हैं। श्रीराधाजीका जो कुच-कुङ्कुम तृणमें लगा है—पुलिन्द रमणियाँ उस स्थानकी वाञ्छा करती हैं। गोचारण-कालमें पुलिन्द रमणियाँ ही परिपूर्ण भाग्यवती मानी गयी हैं। श्रीकृष्णके प्रियनर्म सखा गोपगणोंमें सुबलादि कोई-कोई तो सखी भावितमति हैं। वे भी उनके चरण-रजकी वाञ्छा करते हैं, इतना ही नहीं उनके चरणकमल-स्पर्शकी भी अभिलाषा करते हैं।

इस स्थलपर यह स्पष्टकर देना आवश्यक है कि सोलह हजार एक सौ महिषियोंमें इस कामनाका उदय उस दिनसे हुआ है, जब

उद्धवने स्त्रियोंकी महासभामें एकान्तमें श्रीकृष्णके निकट श्रीराधिकाके रूप, गुण, प्रेम, सौभाग्यका एवं माधुर्यके परमोत्कर्षका वर्णन किया था, जिससे श्रीकृष्ण उनके वशमें रहते हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि रुक्मिणी आदि अष्ट महिषियाँ स्वयंके सौभाग्यका उत्कर्ष मानती हैं, इसलिए उनमें ऐसी (श्रीराधाके पदरजकी) कामना उत्पन्न नहीं होती। सोलह हजार एक सौ आठ महिषियोंका सौभाग्य इन आठोंसे अल्प है, इसलिए उनमें श्रीराधिकाजीकी पद-रजकी वाञ्छा उदित हुई है। यही कारण था कि प्रभासक्षेत्रमें मौसल-लीलाके अन्तमें श्रीकृष्ण सोलह हजार एक सौ गोप-वेश धारण करके पथमें इन महिषियोंको अर्जुनसे छीनकर गोकुल ले आये थे—कोई-कोई ऐसा कहते हैं॥ ४३॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके तिरासीवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

वसुदेवका यज्ञ-महोत्सव

श्रीशुक उवाच—

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी
माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः।
कृष्णोऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं
सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! उस समय कुन्तीदेवी, सुबल-पुत्री गान्धारी, याज्ञसेनी (द्रौपदी), माधवी (सुभद्रा), अन्यान्य राजपत्नियों एवं कृष्ण-भक्त श्रीकृष्णकी प्रियतमा गोपियोंने सर्वेश्वर, सर्वात्मा श्रीकृष्णके प्रति महिषियोंका कितना प्रेम है—यह देखा तो उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये। वे अत्यन्त मुग्ध एवं अत्यन्त विस्मित हो गयीं।

गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा आदिने द्रौपदीके प्रश्नोंके उत्तरमें पट्टमहिषियोंकी विवाह-कथाको सुना, किन्तु गान्धारी एवं कुन्तीने इन प्रसङ्गोंको वयोवृद्धावस्थाके कारण साक्षात् रूपसे नहीं, परम्परा क्रमसे सुना। कुन्ती, गान्धारीके सम्मुख द्रौपदी एवं पट्टमहिषियोंकी यह विनोद-वार्ता स्वतन्त्ररूपसे अनुचित भी है। द्रौपदी एवं सुभद्राका कृष्णपत्नियोंके साथ सख्य भाव है, अतः साक्षात् श्रवण उचित है। गोपियोंकी महिषियोंके साथ सजातीयता अथवा संवेदनात्मकता नहीं है और न ही साथमें अवस्थान है। इन गोपियोंको विस्मय श्रीकृष्णके तत्-तत्-चरित्रको सुनकर हुआ है, कुछ-कुछ सजातीय भाव-दर्शनके कारण नेत्रोंसे आँसू भी छलछलाये हैं अर्थात् उन्हें श्रीकृष्णकी ब्रजलीलाओंका स्मरण हो आया है। रानियोंके प्रति इन गोपियोंका कोई अनुराग नहीं है। कृष्ण-कथा सुनकर कुन्ती, गान्धारीको विस्मय हुआ है, सुभद्राका विस्मय स्नेहके कारण है

और समवयस्क होनेके कारण सुभद्रा एवं द्रौपदीमें भी कौतुकका भाव है ॥ १ ॥

इति सम्भाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ।
 आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णराम-दिदृक्षया ॥ २ ॥
 द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ।
 विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥ ३ ॥
 रामः सशिष्यो भगवान् वशिष्ठो गालवो भृगुः ।
 पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥
 द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः ।
 अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥

स्त्रियोंके साथ स्त्रियाँ और पुरुषोंके साथ पुरुष परस्पर संभाषण कर ही रहे थे कि व्यासदेव, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भारद्वाज, गौतम, शिष्योंके साथ भृगुराम, वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, सनकादि ब्रह्मपुत्र, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव आदि बहुत-से ऋषि-मुनि श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेके लिए वहाँ पधारे ॥ २-५ ॥

तान् दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ।
 पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥ ६ ॥

वहाँ पहलेसे ही सम्मुख बैठे हुए राजादि एवं अन्य लोग, पाण्डव, बलराम और श्रीकृष्ण उन विश्ववन्दित मुनियोंको देखकर सहसा उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया ॥ ६ ॥

तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ।
 स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥

इसके बाद अन्यान्य सभी राजाओंके समान बलरामके साथ श्रीकृष्णने भी स्वागत-प्रश्नों, आसन, पाद्य (पैर धोनेका जल),

अर्घ्य (पीनेके लिए जल) पुष्प-माला, अगुरु, धूप एवं चन्दनादि अर्पण करके उन मुनियोंकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ७ ॥

उवाच सुखमासीनान् भगवान् धर्मगुप्तनुः।

सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥

जब सारे ऋषि-मुनि सुखपूर्वक बैठ गये, तब धर्मकी रक्षा करनेके लिए अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णने उस विशाल सभाको सम्बोधित किया। सभी लोग अपनी वाणीको संयत करके उनके वचनोंको मनोयोगपूर्वक सुनने लगे ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्येन तत्फलम्।

देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अहो! धन्य है! आज निश्चय ही हमारा जन्म सार्थक हो गया। हमें इस जन्मका सर्वतोभावसे चरम फल आज प्राप्त हुआ है, क्योंकि हमें उन योगेश्वरोंका साक्षात् दर्शन प्राप्त हो रहा है, जिनके दर्शन देवताओंके लिए भी दुर्लभ हैं ॥ ९ ॥

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम्।

दर्शनस्पर्शन-प्रश्न-प्रहृपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥

विशेषरूपसे उनकी तपस्या अल्प है, जो लोग अपने इष्टदेवको समस्त प्राणियोंके हृदयमें न देखकर केवल अर्चा-विग्रहमें ही दर्शन करते हैं, उनके भाग्यमें इन योगेश्वरोंका दर्शन, स्पर्श, कुशल-प्रश्न, प्रणाम और पाद-अर्चन क्या कभी सम्भव हो सकता है? यह वस्तुतः असम्भव ही है। आप लोगोंके दर्शन सुदुर्लभ होनेपर भी आपके कृपा-विलाससे हमें प्राप्त हो रहे हैं। (साधारण मनुष्योंकी प्रतिमामें ही देवबुद्धि होती है, आपके प्रति देवबुद्धि नहीं होती) ॥ १० ॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।

ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥

इस लोकमें जलमय स्थान ही 'तीर्थ' एवं मिट्टी तथा शिलासे निर्मित विग्रह ही 'देव' कहे जाते हैं, वस्तुतः ये तीर्थ एवं स्थान देव पदवाच्य नहीं हैं, क्योंकि वे अपनी सेवा करनेवालोंको दीर्घकालके बाद पवित्र करते हैं, परन्तु आपके जैसे साधु तो दर्शन मात्रसे ही मनुष्योंको पवित्र कर देते हैं। अतः आप ही 'तीर्थ' हैं और आप ही 'देव' हैं ॥ ११ ॥

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका

न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।

उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं

विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त्तसेवया ॥ १२ ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मनके अधिष्ठातृ देवताओंकी उपासना करनेसे भेद-बुद्धिसे युक्त मनुष्योंके पाप पूर्णरूपसे नष्ट नहीं होते, किन्तु जो भेद-ज्ञान यथा अवज्ञा, उपेक्षा एवं मात्सर्य आदिसे रहित हैं, उन तत्त्वज्ञानियोंकी क्षणभरकी सेवासे ही सेवकोंके सम्पूर्ण पाप विनष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके

स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-

ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ १३ ॥

महात्माओ और सभासदो! जो लोग वात, पित्त और कफ— इन तीन धातुओंसे बनी शव-तुल्य देहको प्रेमास्पद आत्मा अर्थात् मैं, स्त्री-पुत्रादिको आत्मीय अर्थात् मेरा, पार्थिव मूर्तियोंको देवता तथा नदी आदिके जलको तीर्थ मानते हैं, किन्तु भगवत्-तत्त्वज्ञ साधुओंमें आदर-भावना नहीं रखते, वे मनुष्य होनेपर भी गाय

एवं गधेके धर्मकी समानताके कारण गाय एवं गधा हैं अथवा गायके लिए तृणादि भार ढोनेवाले गधा हैं ॥ १३ ॥

श्रीशुक उवाच—

निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमधसः ।

वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन् भ्रमद्वियः ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—उस समय अगाध—(अप्रतिहत अथवा अकुण्ठित)ज्ञान-सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकारके गूढ़ वचनोंको सुनकर ऋषि-मुनियोंकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। वे समझ न सके कि भगवान् श्रीकृष्ण क्या कहना चाहते हैं, अतः वे मौन बैठे रहे ॥ १४ ॥

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् ।

जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥

कुछ देर तक विचार करनेके बाद उन्होंने यह निश्चय किया कि जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णके ये वचन अनीश्वर भावसे युक्त कर्मके अधीन साधारण मानवके आचरणके समान हैं। अतः उनकी यह वाणी लोक-संग्रहके लिए ही प्रकट हुई है। वे मुसकराते हुए भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगे ॥ १५ ॥

श्रीमुनय ऊचुः—

यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं

विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ।

यदीशितव्यायति गूढ ईहया

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥

मुनियोंने कहा—हे भगवन्! आप स्वयं भगवान् होकर भी मनुष्य-लीला करते हुए निज स्वरूपको आच्छादित करके अनीश्वर (जैसे कि आप ईश्वर नहीं हैं) के समान आचरण कर रहे हैं। हम मरीचि इत्यादि प्रमुख स्रष्टाओंके (प्रजापतियोंके) आप अधीश्वर हैं। आप परम तत्त्वको जाननेवाले हैं। हम आपकी

मायासे मोहित हो रहे हैं। अहो! आपका लीला-चरित चिन्तनसे अतिशय परे, अति विचित्र है ॥ १६ ॥

अनीह एतद्बहुधैक आत्मना
सृजत्यवत्यति न बध्यते यथा।
भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी
अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ १७ ॥

भूमि स्वरूपतः एक होनेपर भी वृक्ष, पत्थर, घटादि विकार-भेदोंसे जिस प्रकार अनेक नाम एवं आकृति धारण करती है, उसी प्रकार आप स्वरूपतः एक एवं निष्क्रिय होकर भी अपने स्वरूपके द्वारा बहुत प्रकारसे इस विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं। आप अपने कर्म-फलोंसे बँधे हुए नहीं हैं। यह विडम्बना ही है कि परिपूर्ण काम होकर भी आप जन्मादि-चरितोंका अनुकरण करते हैं। धन्य है यह आपकी लीला ॥ १७ ॥

अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये
बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च।
स्वलीलया वेदपथं सनातनं
वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥ १८ ॥

हे भगवन्! यद्यपि आप प्रकृतिसे परे, स्वयं ब्रह्म, वर्णाश्रम धर्मके एकमात्र रक्षक, परम पुरुष कहे जाते हैं, तो भी भक्तोंकी रक्षा एवं दुष्टोंके दमनके लिए आप समय-समय पर शुद्ध सत्त्वमय विग्रह धारण करते हैं। आप अपनी लीलाओंसे सनातन-वैदिक-पथका पालन करते हैं ॥ १८ ॥

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः।
यत्रोपलब्धं सद्ब्रह्मव्यक्तञ्च ततः परम् ॥ १९ ॥

हे ब्रह्मन्! मानव जिन वेदशास्त्रोंमें तपस्या, अध्ययन एवं आत्मसंयम द्वारा व्यक्त (कार्य), अव्यक्त (कारण) और इन दोनोंसे परे सत्-स्वरूप ब्रह्म-वस्तुका सन्धान करते हैं—वे वेदशास्त्र आपके विशुद्ध अन्तरङ्ग-स्वरूप हृदय ही हैं ॥ १९ ॥

तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः।

सभाजयसि सद्धाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥

हे परब्रह्म! ये वेदशास्त्र ही आपकी उपलब्धिके विषयमें एकमात्र प्रमाण हैं और ये ब्राह्मण ही इन वेदशास्त्रोंके एकमात्र प्रचारक हैं। अतः हे शास्त्रयोनि! आप अपनी उपलब्धिके साक्ष्य-स्वरूप (वेदोंके आधारभूत आपके स्वरूपकी उपलब्धिके स्थान) इन ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं और इसी कारण आप ब्राह्मण-भक्तोंमें अग्रगण्य भी हैं ॥ २० ॥

अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः।

त्वया सङ्गम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः ॥ २१ ॥

आज हमने साधुओंकी शरणरूप आपका सात्रिध्य प्राप्त करके अपनी विद्या, तपस्या, चक्षु एवं जन्मको सफल कर लिया है। वास्तवमें आप ही समस्त मङ्गलोंकी पराकाष्ठा हैं ॥ २१ ॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे।

स्वयोगमाययाच्छत्रमहिम्नेपरमात्मने ॥ २२ ॥

हे प्रभो! श्रीकृष्ण! आप अपनी अचिन्त्य-शक्ति-योगमायाके बलसे गूढ़ महिमावाले, असीम ज्ञान-सम्पन्न, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्द-स्वरूप परम पुरुष स्वयं भगवान् हैं। हम इष्ट-बुद्धिसे आपको प्रणाम करते हैं (आप लोक-संग्रहके लिए ही हमारी स्तुति एवं प्रणाम कर रहे हैं) ॥ २२ ॥

न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः।

मायाजवनिकाच्छत्रमात्मानं कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥

हे भगवन्! आपने लोगोंकी आँखोंपर मायाका ऐसा पर्दा डाल रखा है कि इस सभामें बैठे हुए राजागण और दूसरोंकी तो बात ही क्या, आपके साथ सर्वदा आहार-विहार करनेवाले ये यादव भी सर्वान्तर्यामी और कालरूपी आपको वास्तविकरूपसे नहीं जान पाते। ये वृष्णिगण आपके परम प्रेमास्पद हैं। ये आपके साथ

एक ही शय्या, आसन आदिपर बैठकर आपकी सङ्गतिका आनन्द लेते हैं। ये आपको ईश्वररूपमें नहीं जानते। ये असाधु राजा भी अपने संहर्ता कालस्वरूप आपको ईश्वररूपमें नहीं जानते। माया-यवनिका इनके ज्ञानकी आवरणकारिका है। इन राजाओंमें माया अविद्या रूपमें है और यादवोंमें योगमाया उनके ज्ञानकी (आपके ईश्वरत्वकी) आवरिका रूपमें है ॥ २३ ॥

यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक्।

नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥ २४ ॥

एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया।

मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥

हे भगवन्! निद्रित पुरुष जिस प्रकार प्रकृतिके गुणोंके कार्य यथा स्वप्न-दृष्ट-विषयोंमें तत्त्व-बुद्धि अथवा सत्य-बुद्धि करता है और अज्ञानाच्छन्न पुरुष जिस प्रकार प्रकृतिके गुणोंके कार्य यथा देहमें तत्त्व-बुद्धि अथवा आत्म-दृष्टि करके देहाभिमानी हो जाता है (मनः कल्पित एवं अयथार्थ सिंह-व्याघ्रादिके नाम एवं रूपोंमें देखकर स्वयंको उसी रूपमें सत्य मान लेता है और देवदत्तादि अपने वास्तविक स्वरूप एवं नामको भूल जाता है), उसी प्रकार जिन मनुष्योंका चित्त मायाके द्वारा विमोहित हो गया है और जिनकी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति स्वप्न-तुल्य विषयोंमें लग गयी है, वे अपनी विवेक-बुद्धि नष्ट हो जानेसे आपके यथार्थ (प्रकृत) स्वरूपको नहीं जान पाते ॥ २४-२५ ॥

तस्याद्य ते ददृशिमाङ्घ्रिमघौघमर्ष-

तीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः।

उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा

आपुर्भवद्गतिमथानुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥

हे भगवन्! आपके चरणकमल पापोंको नाश करनेवाली गङ्गादेवीके आश्रय हैं। सुपरिपक्व भक्ति योगबलसे सम्पन्न महापुरुष इन्हीं चरणकमलोंका अपने हृदयमें ध्यान करते हैं, आज हमें भी

सौभाग्यसे इन चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हुआ है। अतः आप हमें अपना भक्त जानकर अनुग्रहीत करें। आपके उत्कृष्ट भक्ति-बलसे जिनका अन्तःकरणरूप जीव-कोष (लिङ्ग-शरीर) विध्वस्त हो गया था, उन महापुरुषोंने पहले भी वैकुण्ठ धाम प्राप्त किया है, अन्य कोई उसकी प्राप्ति के लिए समर्थ नहीं है (भक्तिके बिना आपका दर्शन युक्तियुक्त है भी नहीं) ॥ २६ ॥

श्रीशुक उवाच—

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम्।

राजर्षे स्वाश्रमान् गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजर्षे! मुनियोंने श्रीकृष्णके प्रति इस प्रकार अपनी स्तुति ज्ञापित करके धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर एवं भगवान् श्रीकृष्णसे अनुमति ली और अपने-अपने आश्रमोंमें जानेका निश्चय किया ॥ २७ ॥

तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशः।

प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥ २८ ॥

पुण्यश्लोक महायशस्वी वसुदेव ऋषि-मुनियोंको जाते देखकर उनके समीप आ गये और उन्हें प्रणाम किया। अति संयमित चित्तसे मुनियोंके चरण पकड़कर वे बड़ी विनम्रतासे कहने लगे ॥ २८ ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ।

कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥

श्रीवसुदेवने कहा—हे ऋषियो! आप लोग सर्वदेवस्वरूप हैं। मैं आप सबको प्रणाम करता हूँ। आप कृपा करके मेरी एक प्रार्थना सुनिये। आप मुझे यह उपदेश दीजिये कि किन कर्मोंके अनुष्ठानके द्वारा कर्मफलोंका आत्यन्तिक नाश हो सकता है। (श्रीवसुदेव नित्य-मुक्त विशुद्ध-सत्त्वमूर्ति हैं। उनका यह प्रश्न सांसारिक लोगोंके लिए है। वसुदेवने ऋषियोंको 'समस्त देवताका

निवास' कहा है यथा—'सर्वदेवेभ्यो नमः'—आप सभी देवता-स्वरूप हैं। श्रुतिमें है—'यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति' अर्थात् जो भी देवता है, वे सभी वेदविद् ब्राह्मणमें वास करते हैं। वसुदेव कहते हैं—मेरा भक्तिमें अधिकार नहीं है, क्योंकि गृह, पुत्र, कलत्र आदिमें मेरी महा-आसक्ति है) ॥ २९ ॥

श्रीनारद उवाच—

नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभूत्सया ।

कृष्णं मत्त्वार्भकं यत्रः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥

श्रीनारदने कहा—हे मुनियो! आप आश्चर्यचकित न हों। वसुदेव श्रीकृष्णको अपना बालक ही मानते हैं। अतः तत्त्व-ज्ञानके अभिप्रायसे ही उनसे न पूछकर हम लोगोंसे प्रश्न कर रहे हैं।

नारद कहते हैं—आश्चर्य है कि भगवान्‌के पिता होकर भी स्वयंको संसारी जीव मान बैठे हैं। वसुदेवकी यह जिज्ञासा दूसरोंके लिए है, तथापि कृष्णको छोड़कर दूसरोंसे पूछ रहे हैं। अतः नारदने कहा हे विप्रगण! वसुदेव अपना मङ्गल जाननेके इच्छुक हैं। वे कृष्णके ऐश्वर्यको पुत्र-भावकी प्रधानताके कारण भूल-से गये हैं ॥ ३० ॥

सन्निकर्षोऽत्र

मर्त्यानामनादरणकारणम् ।

गङ्गां हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१ ॥

इस लोकमें मनुष्य महद् व्यक्तियोंके समीप होनेपर उनका अनादर करते हैं। यथा गङ्गाके किनारे रहनेवाले लोग गङ्गाजलको छोड़कर पुण्य अर्जित करनेके लिए अन्य तीर्थका सेवन करते हैं ॥ ३१ ॥

यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्यादिनास्य वै ।

स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥

तं क्लेशकर्म-परिपाक-गुणप्रवाहै-

रव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् ।

प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो

मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥ ३३ ॥

हे ब्रह्मज्ञ पूज्यपादगणो! (केवल वसुदेव ही कृष्ण-तत्त्वसे अनभिज्ञ हैं, ऐसा नहीं है—यहाँ सभी कृष्णके ईश्वरत्वके विषयमें अज्ञानी हैं; इसलिए नारदने आगे कहा—) श्रीकृष्णकी अनुभूति कर्कटिका (ककड़ी) इत्यादि फलकी भाँति कालके फेरसे, इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति, संहार एवं प्रलयसे, विद्युत् इत्यादिके समान मुद्गर (गदा) इत्यादि बाह्य कारणोंसे स्वतः विनष्ट होती दिखायी देनेपर भी क्षीण (विनष्ट) नहीं होती, न ही घटादिके समान, न ही कारणान्तर द्वारा देहादिके समान अथवा रूपान्तरोत्पत्ति द्वारा विनष्ट होती है। भगवान् श्रीकृष्ण अव्याहत (निर्बाध) ज्ञानयुक्त, सर्वान्तर्यामी एवं अद्वितीय परम पुरुष हैं। जिस प्रकार सूर्यदेव अपने वैभव यथा बादल, कुहासा अथवा ग्रहणसे ढक जाते हैं, उसी प्रकार प्राकृत लोग भगवान् श्रीकृष्णको उनके ही वैभव-स्वरूप प्राणादि पदार्थ, अविद्या, राग-द्वेष आदि क्लेश, पुण्य-पापमय कर्म, सुख-दुःख आदि उन कर्मोंके परिणाम तथा सत्त्वादि तीनों गुणोंके प्रभावसे आच्छादित मान लेते हैं (भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप-ज्ञान अखण्ड है, उसे कोई उसी प्रकार ढक नहीं सकता, जैसे सूर्यको बादल नहीं ढक सकते। अज्ञानके कारण मनुष्य भगवान्को सामान्य मनुष्य समझ लेता है ॥ ३२-३३ ॥

अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम्।

सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥ ३४ ॥

परीक्षित्! महर्षि नारदके कहनेके उपरान्त मुनियोंने श्रीकृष्ण, बलराम एवं अन्यान्य राजाओंके सामने वसुदेवसे संभाषण करते हुए कहा— ॥ ३४ ॥

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः।

यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥

हे वसुदेव ! कर्मों द्वारा होनेवाले कर्म-बन्धनके आत्यन्तिक नाशके लिए यज्ञोंके द्वारा सर्वयज्ञेश्वर भगवान् श्रीहरिकी आराधना करें—शास्त्रोंका यही विधान है। साधुओं द्वारा भी यही उत्कृष्ट उपाय निर्णीत हुआ है। विष्णु-आराधनरूप यज्ञके बिना कर्म नष्ट नहीं होते ॥ ३५ ॥

चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा।

दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥

त्रिकालदर्शी तत्त्वज्ञ पण्डितोंने शास्त्र-दृष्टि द्वारा हिताहितका भलीभाँति विचार करके विष्णु-जनोंके चित्तकी शान्तिके लिए विष्णु-यज्ञको ही सुलभ-उपाय, मोक्ष-साधक, आत्मप्रीति-दायक और अवश्य-करणीय धर्मके रूपमें निर्देश किया है ॥ ३६ ॥

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः।

यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥ ३७ ॥

अपने न्यायार्जित धनसे जगदीश्वर श्रीहरिकी निष्कामभावसे आराधना करनी चाहिये। धार्मिक गृहस्थोंके लिए यही परम कल्याणका मार्ग है ॥ ३७ ॥

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम्।

आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद्बुधः।

ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥ ३८ ॥

हे वसुदेव ! आत्मकल्याणपरायण विद्वान् यज्ञ एवं दान द्वारा धनकी कामनाका, गृहस्थोचित भोगों द्वारा स्त्री-पुत्रकी कामनाका और परिणाममें कालक्रमसे उच्चसे उच्चतर लोक भी नष्ट हो जाते हैं—इस विचारसे स्वर्गादि-लोकोंकी प्राप्तिकी कामनाका परित्याग करें (अर्थात् वित्तैषणा, पुत्रैषणा एवं लोकैषणाका परित्याग कर देना चाहिये)। पहले भी आत्म-संयमी एवं धीर-पुरुष तीनों प्रकारकी एषणाओंसे (इच्छाओंसे) मुक्त होकर तपोवनमें चले जाया करते थे। निष्कामताके बिना कर्मका नाश

नहीं होता। आत्माकी स्वर्गादिलोककी भोग-वासना भी कालक्रमसे क्षय हो जाती है॥ ३८ ॥

ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो।

यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन् पतेत्॥ ३९ ॥

हे प्रभो! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों ही देवता, ऋषि एवं पितरोंका ऋण लेकर जन्म-ग्रहण करते हैं। अतः यथाक्रमसे यज्ञ, अध्ययन और सन्तानोत्पत्तिके द्वारा—इन तीनों ऋणोंसे उक्तृण हुए बिना यदि कोई गृहस्थाश्रमका त्याग करता है, तो उसका अधोपतन हो जाता है। ब्रह्मचर्य द्वारा ऋषिऋण, यज्ञ द्वारा देवऋण तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृऋणका शोधन होता है। ऋणके शोधन होनेपर ऋणमुक्त होकर वनमें चले जाना चाहिये॥ ३९ ॥

त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते।

यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव॥ ४० ॥

हे परम बुद्धिमान् वसुदेवजी! आप अध्ययन एवं सन्तानोत्पत्तिके द्वारा ऋषि एवं पितरोंके ऋणसे मुक्त हो गये हैं। अब वैदिक यज्ञोंके द्वारा देवताओंके ऋणका परिशोधन करें। सबसे उक्तृण होकर गृहाश्रम त्यागकर वानप्रस्थका आश्रय करें और भगवान्की आराधना करें॥ ४० ॥

वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिम्।

जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः॥ ४१ ॥

हे वसुदेव! आपने निश्चय ही परम भक्तिके साथ जगदीश्वर श्रीहरिकी उत्कृष्ट आराधना की है, तभी तो वे इस समय आप दोनोंके पुत्र हुए हैं (मुनियोंने वसुदेवसे कहा—आपने लोक-रीतिके अनुसार प्रश्न किये, हमने लोक-रीति एवं शास्त्र-रीतिके अनुसार उत्तर दिये। वस्तुतः आप भगवान्के नित्यसिद्ध पिता हैं—आप भगवान्के ही समान हैं—लोकशास्त्रमें आपका अधिकार नहीं है। आपका अधिकार तो अत्युन्नत है)। यदि आप स्वयंको शास्त्रोक्त

धर्मका अधिकारी मानते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि सर्वधन-श्रेष्ठ भक्तियोग ही आपमें प्रकाशित हुआ है। अतएव हे वसुदेव! परमभक्ति द्वारा ही आप भगवान्की अर्चना करें। नित्यसिद्ध होनेसे अति-निकृष्ट कर्म-अधिकारमें आप क्यों पतित होंगे? तो भी यदि कर्म करनेकी आपकी इच्छा है, वह लोक-शिक्षाके लिए ही है॥ ४१॥

श्रीशुक उवाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः।

तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्ना नम्य प्रसाद्य च॥ ४२॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! महामति वसुदेवने मुनियोंकी यह बात सुनकर उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया और उन्हें भलीभाँति प्रसन्न करके उन्हें यज्ञके ऋत्विजोंके रूपमें वरण कर लिया॥ ४२॥

त एनमृषयो राजन् वृता धर्मेण धार्मिकम्।

तस्मिन्नयाजयन् क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः॥ ४३॥

हे राजन्! शास्त्रीय विधानके अनुसार वरण किये गये ऋषियोंने उसी पुण्यस्थली कुरुक्षेत्रमें परम धार्मिक वसुदेवके द्वारा व्यवस्थित उत्तम सामग्रियोंसे यज्ञ सम्पन्न कराये॥ ४३॥

तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः।

स्नाताः सुवाससो राजन् राजानः सुष्ठ्वलङ्कृताः॥ ४४॥

तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः।

दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः॥ ४५॥

हे राजन्! यज्ञके दीक्षाकालमें वृष्णिजनोंने स्नान करके सुन्दर वस्त्र, कमल-मालाएँ एवं (सुरम्य) आभूषण धारण किये। अन्य राजागण भी सुष्ठुरूपसे अलङ्कृत और सुसज्जित हो गये। उनकी महिषियोंने अति सुन्दर वस्त्र एवं गलोंमें हार पहन लिये तथा अपने शरीरोंको चन्दनादिसे अनुलिप्त कर लिया। इसके बाद बड़े

आनन्दके साथ माङ्गलिक सामग्रियोंको हाथमें लेकर यज्ञशालामें (दीक्षाशालामें) प्रवेश किया ॥ ४४-४५ ॥

नेदुर्मृदङ्गपटह-शङ्खभेर्यानकादयः ।

ननृतुर्नटनर्त्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ।

जगुः सुकण्ठ्यो गन्धर्व्यः सङ्गीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥

उस समय मृदङ्ग, पखावज, शङ्ख, भेरी, नगाड़े आदि बज रहे थे, नर्त्तक एवं नर्त्तकियाँ नृत्य कर रहे थे, सूत, मागध आदि स्तुतिपाठ कर रहे थे और पतियोंके साथ गन्धर्व रमणियाँ मधुर स्वरमें गान कर रही थीं ॥ ४६ ॥

तमभ्यषिञ्चन् विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ।

पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥ ४७ ॥

वसुदेवजीके नेत्रोंमें काजल लगानेके बाद उनके शरीरमें मक्खन (अभ्यङ्ग) लगाकर ऋत्विजोंने उनका देवकी आदि अठारह पत्नियोंके साथ शास्त्रीय विधिके अनुसार महाभिषेक किया। वे अपनी अठारह रानियोंके साथ इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे तारोंके बीच चन्द्रमा ॥ ४७ ॥

ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः ।

स्वलङ्कृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥

उस समय यज्ञमें दीक्षित होनेके कारण वसुदेव मृगचर्म धारण किये हुए थे, जिसके कारण वे अतिशय शोभाशाली दिख रहे थे। उनकी पत्नियाँ सुरम्य वस्त्र, कङ्कन, हार, पायजेब, एवं कर्णफूलादि आभूषणोंसे विभूषित थीं ॥ ४८ ॥

तस्यत्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ।

ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥

हे महाराज परीक्षित्! वसुदेवके यज्ञमें सदस्यों एवं ऋत्विजोंने रत्नोंसे जड़ित आभूषण एवं पीतवर्णके कौशेय वस्त्र धारण कर

रखे थे। वे इतने तेजस्वी दिख रहे थे, जैसे पहले वृत्र-हन्ता देवराज इन्द्रके यज्ञमें दिखायी दिये थे ॥ ४९ ॥

तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ।

रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥

उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंके अधिपति बलराम और श्रीकृष्ण अपने-अपने पुत्रों, पत्नियों, बन्धु-बान्धवों आदि अपनी विभूतियोंके साथ विराजमान होकर अति शोभायमान हो रहे थे ॥ ५० ॥

इजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः।

प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥ ५१ ॥

वसुदेवने प्रत्येक यज्ञ यथा—ज्योतिष्टोम, दर्श, पूर्णमास आदि प्राकृत यज्ञ, सौरसत्रादि वैकृत यज्ञ और अग्निहोत्रादि अन्यान्य यज्ञोंमें होनेवाले शास्त्रोक्त विधि-विधानके अनुसार सम्पूर्ण द्रव्यों, मन्त्रों एवं अनुष्ठानोंके अधीश्वर श्रीहरिकी आराधना की ॥ ५१ ॥

अथत्विग्भ्योऽददात् काले यथाम्नातं स दक्षिणाः।

स्वलङ्कृतभ्योऽलङ्कृत्य गोभूकन्या महाधनाः ॥ ५२ ॥

यज्ञ समाप्त होनेपर उन्होंने सुन्दर आभूषणोंसे युक्त ऋत्विजोंको पुनः अलंकृत किया, शास्त्रविधिके अनुसार उन्हें दक्षिणा दी एवं गौएँ, भूमि और विप्र-कन्याएँ प्रदान कीं ॥ ५२ ॥

पत्नीसंयाजावभृथैश्चरित्वा ते महर्षयः।

सस्नु रामहृदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥ ५३ ॥

तत्पश्चात् महर्षियोंने पत्नी-संयाज नामक याग-विशेष एवं अवभृथ सम्बन्धित स्नानादि अनुष्ठानोंको सम्पन्न करवाया तथा यजमान वसुदेवजीको आगे करके रामहृद (परशुराम सरोवर) में दीक्षान्त स्नान करवाया और स्वयं भी स्नान किया ॥ ५३ ॥

स्नातोऽलङ्कारवासांसि वन्दिभ्योऽदात् तथा स्त्रियः।

ततः स्वलङ्कृतो वर्णानाश्वभ्योऽग्नेन पूजयत् ॥ ५४ ॥

यज्ञान्त स्नान समाप्त होनेपर वसुदेवजी एवं उनकी महिषियोंने सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण धारण किये और अपने (पूर्व) सारे वस्त्र एवं अलङ्कार स्तुति-पाठ करनेवाले बन्दीजनोंको प्रदान कर दिये। उन्होंने समस्त वर्णोंमें उत्पन्न व्यक्तियोंसे लेकर कुत्तोंतकको भोजन कराके सम्मानित एवं सन्तुष्ट किया॥ ५४॥

बन्धून् सदारान् ससुतान् पारिबर्हेण भूयसा।

विदर्भकोशलकुरून् काशिकेकयसृञ्जयान्॥ ५५॥

सदस्यर्त्विक्सुरगणान् नृभूतपितृचारणान्।

श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम्॥ ५६॥

तत्पश्चात् वसुदेवने स्त्री-पुत्रोंके साथ सभी भाई-बान्धवों, विदर्भ, कोशल, कुरु, काशी, केकय, सृञ्जय आदि राज्योंके राजाओं, यज्ञ सभाके सदस्यों, ऋत्विजों, देवताओं, मनुष्यों, भूतों, पितरों और चारणोंका बड़े-बड़े उपहारोंसे सम्मान किया। बादमें उन लोगोंने श्रीधाम श्रीकृष्णसे अनुमति ली और यज्ञकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानोंकी ओर चले गये॥ ५५-५६॥

धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ।

नारदो भगवान् व्यासः सुहृत्सम्बन्धिबान्धवाः॥ ५७॥

बन्धून् परिष्वज्य यदून् सौहृदाक्लिन्नचेतसः।

ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः॥ ५८॥

हे परीक्षित्! धृतराष्ट्र, विदुर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, भीष्म पितामह, द्रोण, कुन्ती, नकुल, सहदेव, नारद, व्यासदेव अन्यान्य सगे-सम्बन्धी, बान्धव सभीने यदुओंका आलिङ्गन किया। सौहार्दवश सभीका चित्त द्रवीभूत हो गया। वे अपने हितैषी बन्धु यादवोंको छोड़कर जानेमें विरह-व्यथाका अनुभव करने लगे और अति कठिनाईसे किसी प्रकार अपने-अपने स्थानोंकी ओर प्रस्थान कर गये॥ ५७-५८॥

नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः।

कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद् बन्धुवत्सलः॥ ५९॥

हे परीक्षित्! बन्धुवत्सल नन्दबाबा और अन्य सब गोप प्रेमवश वहाँ बहुत दिनों तक रहे। श्रीकृष्ण, बलराम, उग्रसेन आदि यादवोंने ऐश्वर्यमयी पूजा-सामग्रियोंसे पूजा-अर्चन करके उनका सत्कार किया (बन्धुवत्सल नन्दमहाराजने गोपगणोंके साथ विशेष अर्थात् पञ्च-पाण्डवोंसे भी अधिक सम्मान प्राप्त किया) ॥ ५९ ॥

वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम्।

सुहृद्भूतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीवसुदेव अपने बहुत बड़े मनोरथ-यज्ञरूप महासमुद्रको अनायास ही पार कर गये। वे बड़े आनन्दित हो रहे थे। सुहृदजन उनके चारों ओर बैठे थे। वे नन्द महाराजका हाथ पकड़कर कहने लगे— ॥ ६० ॥

श्रीवसुदेव उवाच—

भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः।

तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥

श्रीवसुदेवने कहा—हे भाईजी! भगवान्ने मनुष्योंके लिए स्नेह नामक एक बहुत बड़ा बन्धन बना दिया है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि इस स्नेह-बन्धनको बड़े-बड़े शूरवीर बलके द्वारा और योगी-यति भी ज्ञानके द्वारा भङ्ग करनेमें नितान्त असमर्थ हैं ॥ ६१ ॥

अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत् कृताज्ञेषु सत्तमैः।

मैत्र्यर्पिताफला चापि न निवर्त्तत कर्हिचित् ॥ ६२ ॥

आप जैसे सज्जन-श्रेष्ठने हम जैसे अकृतज्ञोंके प्रति जो अनुपम मित्रताका व्यवहार स्थापित किया है, वह अतुलनीय है। आप इसके प्रत्युपकारकी इच्छा नहीं करते और न ही उसके फलकी। यह मैत्री सम्बन्ध कभी विरत नहीं हो सकता, आप इस स्नेह-पाशको ईश्वरकृत मानकर सदा निभाते रहेंगे ॥ ६२ ॥

प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि।

अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ॥ ६३ ॥

हे भाई! पहले तो हम (कंस वध न होने तक) बन्दीगृहमें बन्द रहनेके कारण आपके लिए कुछ भी प्रिय या हितकारी कार्य नहीं कर पाये। अब धन-मदसे हम अन्धे हो गये हैं, जो आप सम्मुख स्थित हैं और हम आपको देख तक नहीं पा रहे हैं ॥ ६३ ॥

मा राज्यश्रीरभूत् पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद।

स्वजनानुत बन्धून् वा न पश्यति ययान्धदृक् ॥ ६४ ॥

हे मानद! राजलक्ष्मीके कारण पुरुष अन्धे होकर बन्धु-बान्धवों यहाँ तक कि स्वजनोंको भी भूल जाते हैं। अतः जो अपना कल्याण चाहते हैं, उन पुरुषोंको ऐसी राजलक्ष्मीका प्राप्त न होना ही अच्छा है। (इस प्रकार महादेन्यरूप समुद्रमें वसुदेव तो आप्लावित हो रहे हैं। उन्होंने नन्दमहाराजको भी सराबोर कर दिया है) ॥ ६४ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः।

रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! इस प्रकार कहते-कहते वसुदेवजीका हृदय प्रेम-विह्वल हो गया। उन्हें नन्द महाराजकी मित्रता और उपकारका स्मरण हो आया। उनकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये और वे रोने लगे ॥ ६५ ॥

नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत् प्रेम्णा गोविन्दरामयोः।

अद्य श्व इति मासांस्त्रीन् यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥ ६६ ॥

नन्दबाबा अपने सखा वसुदेवको प्रसन्न करना चाहते थे तथा श्रीकृष्ण और बलरामके प्रेम-पाशमें भी बँधे थे। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल होनेपर कहते 'दोपहरको चला जाऊँगा' और दोपहर बीत जानेपर कहते 'कल सुबह चला जाऊँगा'—इस प्रकार आजकल करते-करते तीन महीने वहीं रह गये। यदुवंशियोंने

उनका बहुत सम्मान किया। श्रीशुकदेव गोस्वामी नन्दमहाराजका उपक्रम बता रहे हैं कि उन्होंने वसुदेवके सम्मुख यह प्रकट नहीं होने दिया कि मेरे पुत्र श्रीकृष्णमें जो तुम्हें अपना पुत्ररूप अभिमान है, मैं उसे नष्ट करके अपने पुत्रको ब्रजमें ले जाऊँगा। (नन्दमहाराज कुरुक्षेत्रमें कृष्ण एवं बलरामके साथ ही सोते-बैठते और तद्विषयक प्रेमानन्द प्राप्त करते। वे वसुदेवके भी प्रियकारी बनकर रहे) ॥ ६६ ॥

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः।

पराद्धर्माभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥

वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः।

दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥ ६८ ॥

इसके बाद यदुओंने नन्दरायजीको तथा उनके ब्रजवासी सङ्गी गोपों एवं बन्धु-बान्धवोंको बहुमूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र, विविध मूल्यवान् सामग्री एवं अन्यान्य भोग-वस्तुओंसे सन्तुष्ट किया। वसुदेव, महाराज उग्रसेन, श्रीकृष्ण, उद्धव और बलदेवने उन्हें उत्तम उपहार दिये। नन्दमहाराजने इन उपहारोंको लेकर उनसे विदा ली और गोप-गोपी, ब्रज-स्थित पशु एवं महासैन्य मण्डलीके साथ ब्रज-गोकुलकी ओर चले गये।

नन्दमहाराजने तीन मासके बाद श्रीकृष्णसे कहा—हे प्राणकोटि सर्वस्व श्रीकृष्ण! आपके पसीनेकी एक बूँदपर मैं करोड़ों जीवन निछावर कर सकता हूँ, अब ब्रज चलो। अब यहाँ और रहा नहीं जाता। वसुदेवके पास जाकर उन्होंने कहा, “हे सखा वसुदेव! श्रीकृष्णको ब्रजमें भेज दो।” उग्रसेनसे भी कहा—“हे महाराज उग्रसेन! आप वसुदेवको आदेश करें, यदि ऐसा न हुआ तो मैं आपकी आँखोंके समक्ष ही रामहृदमें (परशुराम सरोवरमें) डूब जाऊँगा। हम सूर्यग्रहणके पर्वपर पुण्य अर्जित करने नहीं आये थे। हम कृष्णको न पानेपर मरनेके लिए और कृष्णको पा लेनेपर जीनेके लिए आये हैं।”

तब वसुदेवने देश, काल, पात्र विषयोंके जानकार अपने बन्धुओंसे परामर्श करके निश्चय किया और नन्दमहाराजसे कहा, “हे सखे ब्रजराज! सत्य ही कह रहे हो। अपने बन्धुओंकी मृत्यु तो हमें भी सम्मत नहीं है। हम कृष्णको ब्रज अवश्य भेजेंगे। अभी तो हमें बन्धु-बान्धवों, सम्बन्धियों, स्त्रियोंके साथ द्वारका जाना है। हम कृष्णके साथ आये हैं, अब कृष्णको छोड़कर घर कैसे जायेंगे? लोग क्या कहेंगे? अतः क्षमा कीजिये। हम शपथ लेकर कहते हैं कि हम द्वारका पहुँचकर दूसरे ही दिन उसे ब्रज भेज देंगे।” श्रीउग्रसेनने कहा, “हे ब्रजेश्वर! मैं इसके लिए साक्षी हूँ। मैं कृष्णको बलपूर्वक भिजवाऊँगा ही।”

इधर श्रीकृष्ण उद्धव एवं बलरामके साथ श्रीनन्दमहाराजको एकान्तमें ले गये और उनसे कहा—“हे पिताजी! यदि आज मैं इन्हें छोड़कर ब्रजमें जाता हूँ, तो ये मेरे विरहमें मरनेके लिए तैयार हो जायेंगे। केशी, अरिष्टासुर आदिसे हजारों गुना बलशाली शत्रु इन्हें मार देंगे। मैं सर्वज्ञ हूँ। मैं जो बतला रहा हूँ, उसे सुनो! मैं यहाँसे (कुरुक्षेत्रसे) द्वारका जाकर युधिष्ठिर महाराजके राजसूय-यज्ञमें निमन्त्रण प्राप्त करके इन्द्रप्रस्थ जाऊँगा। यज्ञमें शिशुपालका वध करके पुनः द्वारका पहुँचकर शाल्वका वध करूँगा। बादमें दन्तवक्रके वधके लिए मथुराके दक्षिण द्वारमें जाकर वहीं उसका वध करूँगा। वहाँसे ब्रजमें प्रवेश करके बन्धु-बान्धवोंसे मिलूँगा और आपकी गोदमें खेलते हुए शेष जीवन व्यतीत करूँगा। तबतक भाग्यमें लिखे विरह-दुःखको सहन कर लेना चाहिये। इस समय हठ छोड़ो, ब्रज चले जाओ। बस इतनी-सी बात है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब-जब आप मुझे याद करोगे, मैं तब-तब आविर्भूत होकर आपकी सारी विघ्न-बाधाओंको दूर करके आपके सारे मनोरथ पूर्ण करूँगा।” तत्पश्चात् वसुदेवने उन्हें बहुमूल्य अलङ्कार एवं रत्नादि दिये, जिन्हें स्वीकार करके नन्दमहाराज ब्रज चले गये॥ ६७-६८ ॥

नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे ।

मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥

नन्दबाबा, गोप एवं गोपियोंका चित्त भगवान् गोविन्दके चरण-
कमलोंमें इस प्रकार समर्पित था कि अब वे प्रयत्न करनेपर भी
उसे वहाँसे दूसरे विषयोंकी ओर आकर्षित नहीं कर पा रहे थे।
अतः बिना मनके ही मथुराकी ओर चल पड़े ॥ ६९ ॥

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ।

वीक्ष्य प्रावृषमासन्नात् ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥ ७० ॥

नन्दबाबा आदि बन्धु-बान्धव जब वहाँसे विदा हो गये, तब
श्रीकृष्णको ही एकमात्र अभीष्ट माननेवाले यादवगण वर्षाकाल
समीप आया देखकर द्वारकाके लिए प्रस्थान कर गये ॥ ७० ॥

जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ।

यदासीत् तीर्थयात्रायां सुहृत्सन्दर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे तीर्थयात्रानुवर्णनं नाम

चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

परीक्षित्! द्वारका पहुँचकर उन्होंने वहाँके लोगोंको तीर्थयात्रामें
घटित सुहृद्-मिलन इत्यादि जितने भी प्रसङ्ग थे, वे सब सुनाये,
साथ ही वसुदेवके यज्ञ-महोत्सव वृत्तान्तको भी कह-सुनाया ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौरासीवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त ।

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

श्रीवसुदेवकी प्रार्थनासे श्रीकृष्ण द्वारा उन्हें ज्ञानका उपदेश देना तथा देवकीके छह मृत पुत्रोंको सुतल-लोकसे लाना

श्रीबादरायणिरुवाच—

अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ।

वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या सङ्कर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! एक बार बलराम और श्रीकृष्ण प्रातःकाल अपने पिताके समीप गये और उन्हें प्रणाम किया। वसुदेवने अपने दोनों पुत्रोंका बड़े प्रेमके साथ अभिनन्दन किया और कहने लगे ॥ १ ॥

मुनीना स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ।

तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥

हे राजन्! वसुदेवने पहले भी ऋषियोंके मुखसे अपने दोनों पुत्रोंकी महिमा सुनी थी और उनके ऐश्वर्यपूर्ण चरित्रोंको देखा था, जिससे उन्हें इस बातका दृढ़ विश्वास हो गया था कि ये साधारण मनुष्य नहीं स्वयं भगवान् हैं। इसलिए वे बलराम और श्रीकृष्णको प्रेमपूर्वक सम्बोधन करते हुए कहने लगे— ॥ २ ॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सङ्कर्षण सनातन ।

जाने वामस्य यत् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥

वसुदेवने कहा—हे महायोगीश्वर सङ्कर्षण! हे सनातनस्वरूप श्रीकृष्ण! इस विश्वके साक्षात् कारणस्वरूप जो प्रकृति एवं पुरुष हैं—आप उन दोनोंके नियामक-स्वरूप परमेश्वर हैं, यह मैं जानता हूँ ॥ ३ ॥

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ।

स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥

घट-पट आदि समस्त पदार्थ जिस देशमें, जिस कालमें, जिस रूपमें, जिनके द्वारा, जिनसे, जिनके सम्बन्धसे और जिनके उद्देश्यसे निर्मित हुए हैं, उन प्रकृति एवं पुरुषके स्रष्टा (महाविष्णु) आप ही हैं। आप ही साक्षात् उन समस्तके स्वरूप हैं अर्थात् ये घटपट आदि सब आपके ही कार्य हैं।

[अभिप्राय यह है कि विश्वके सभी पदार्थ (वस्तुएँ), जिस देशमें हों, जिस कारणके द्वारा हों, जिस उपादानसे हों, जिनके सम्बन्धसे हों, जिसे दान दी जाती हों, जो वस्तु दी जाती हो, जो वस्तु, जिस प्रकारसे, जिस कालमें होती हो—समस्त आपकी ही शक्तिके (मायाके) कार्य हैं। यह जगत् एवं इस जगत्में समस्त पदार्थ आपके ही रूप हैं। आप दोनों समस्त विश्वके मूल कारण हैं। आप ही कारणार्णवशायी महाविष्णुरूपसे प्रधानमें अर्थात् साम्यावस्था प्राप्त मायामें अपनी शक्तिका सञ्चार करते हैं]॥ ४॥

एतन्नानाविधं

विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज।

आत्मनानुप्रविश्यात्मन् प्राणो जीवो बिभर्ष्यज॥ ५॥

हे अधोक्षज! हे परमात्मन्! हे अज! आप ही प्राण (क्रिया-शक्तिमय एवं तत्त्व-स्वरूप) एवं जीव (ज्ञान-शक्तिमय चेतनातत्त्व-स्वरूप) के रूपमें अपनी मायाके द्वारा रचित इस चित्र-विचित्र विश्वमें अन्तर्यामी सूत्रके रूपमें प्रवेश करके इसका पालन-पोषण करते हैं अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिमें आत्मारूपमें प्रवेश करके उनमें प्राण, बुद्धि, कर्म एवं चेतनाके रूपमें व्याप्त रहकर इस जगत्का पालन करते हैं॥ ५॥

प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः।

पारतन्त्र्याद्वैसादृश्याद्वयोश्चेष्टैव

चेष्टताम्॥ ६॥

बाणमें जो भेदन-शक्ति देखी जाती है, वह जैसे बाण-चलानेवाले पुरुषकी ही होती है, वैसे ही विश्वके कारणभूत प्राणादि पदार्थ भी पराधीन हैं—उनके अन्तर्गत जो शक्ति देखी जाती है—वह परम कारण-स्वरूप परमेश्वरकी (आपकी) है।

चेतन (परमात्मा) एवं अचेतन (प्राणादि) पदार्थोंमें परस्पर विषमताके कारण अचेतन पदार्थ चेतन पदार्थोंके समान स्वतन्त्र नहीं हैं अर्थात् ये प्राणादि उनके अधीन हैं। वायुकी शक्तिके द्वारा जिस प्रकार तिनके आदि उड़ा करते हैं और पुरुषकी शक्तिके द्वारा जैसे बाणकी गति देखी जाती है, उसी प्रकार परमेश्वरकी शक्तिसे ही प्राणादि पदार्थोंकी केवल चेष्टा ही देखी जाती है, उनकी कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं होती ॥ ६ ॥

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कक्षीविद्युताम्।

यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥

हे प्रभो! चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, विद्युत् एवं तारोंकी स्फुरणरूप सत्ता (टिमटिमाना), पर्वतोंकी स्थिरता एवं भूमिकी आधार शक्ति और गन्ध-वृत्ति—ये समस्त वस्तुतः आपकी ही शक्तियाँ हैं ॥ ७ ॥

तर्पणं प्राणनमपां देव त्वं ताश्च तद्रसः।

ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥

हे देव! हे ईश्वर! आप ही जल हैं और आप ही जलकी तृप्तिकारिणी-शक्ति, जीवन-शक्ति एवं रस-स्वरूप शक्ति हैं। वायुका तेज (इन्द्रिय-शक्ति), सह (अन्तःकरणकी शक्ति), बल (शारीरिक शक्ति), चेष्टा एवं गति—समस्त आपकी ही शक्तियाँ हैं ॥ ८ ॥

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः।

नादो वर्णस्त्वमोङ्कार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥

उपाधिकृत दिशाओंके आकाश-प्रदेशोंके अवकाश आप ही हैं। आकाश और उसके आश्रयभूत स्फोट (शब्द तन्मात्रा अर्थात् ध्वनि) या परावस्था-वाणी आप ही हैं, नाद-पश्यन्ती (अप्रकट ध्वनि), उँकार—वर्ण—मध्यमा (प्रथम अक्षर) एवं पदार्थोंके पृथक्-पृथक् नाम-निर्देशक पद अर्थात् वर्ण (अक्षर), वैखरी

वाणी (श्रव्य वाणी)—ये समस्त आप ही हैं। मनीषी ब्राह्मण कहते हैं कि वाक्यके चार पद अर्थात् चार क्रमिक अवस्थाएँ हैं—उनमेंसे तीन हृदय-गुहामें ही रहती हैं अर्थात् हृदयके भीतर अश्रव्य स्पन्दनोंके रूपमें रहती हैं—बाहर नहीं आतीं, जो चौथा 'वाक्' है, उसीको मनुष्य वाणीके रूपमें जानते हैं ॥ ९ ॥

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः।

अवबोधो भवान् बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥

इन्द्रियाँ, उनकी विषय-प्रकाशिका (वस्तुओंको प्रकट करनेवाली) शक्ति, उनके अधिष्ठातृ देवता, उन इन्द्रियोंकी अधिष्ठान शक्ति (उन-उन इन्द्रियोंके देवता-विशेष द्वारा उन-उन इन्द्रियोंके कार्य करनेकी अधिकार-शक्ति), बुद्धिकी निश्चयात्मिका शक्ति (अर्थात् बुद्धिके द्वारा निर्णय लेनेकी क्षमता) और जीवोंकी यथार्थ-स्मरण (प्रतिधान अथवा सही-सही स्मरण) शक्ति ये समस्त आपकी ही स्वरूप-शक्तियाँ हैं ॥ १० ॥

भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणाञ्च तैजसः।

वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥ ११ ॥

भूतोंमें उनका कारण तामस अहङ्कार, इन्द्रियोंमें उनका कारण राजस अहङ्कार, वैकल्पिक (इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ) देवताओंका कारणीभूत सात्त्विक अहङ्कार एवं जीवोंके संसारकी मूलाधार प्रकृति (माया)—ये समस्त आप ही हैं ॥ ११ ॥

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम्।

यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥

मृत्तिका, स्वर्ण, आदि वस्तुओंके विकारोंसे उत्पन्न घट, कुण्डल आदि नाशवान् पदार्थोंमें जिस प्रकार मिट्टी, सोना आदि वस्तुएँ अपने मूलरूपमें अविनश्वर निर्णीत हुई हैं, उसी प्रकार जगत्में विनाशशाली पदार्थोंमें एकमात्र आप ही अविनाशी हैं ॥ १२ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः।

त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥

सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण और उनकी वृत्तियाँ—महत्तत्त्वादि सभी साक्षात् परब्रह्मस्वरूप आपमें योगमायाके द्वारा कल्पित हैं ॥ १३ ॥

तस्मात्र सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः।

त्वञ्चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाव्यावहारिकः ॥ १४ ॥

इसलिए हे देव! पूर्वोक्त जन्म, अस्ति, वृद्धि आदि भावोंकी जिस समय आपमें कल्पना कर ली जाती है, यद्यपि वे भाव आपमें सर्वथा नहीं हैं, उस समय मात्र आपमें इनकी प्रतीति होती है, क्योंकि आप कारणरूपमें उन सभी विकृत पदार्थोंमें अनुप्रविष्ट—से जान पड़ते हैं। कल्पनाकी निवृत्ति हो जानेपर तो उन जन्मादिकी कोई सत्ता भी नहीं रहती और निर्विकल्प परमार्थ—स्वरूप आप अकेले ही रहते हैं।

[महाप्रलयमें सभी जड़-पदार्थोंका—सारे जीव-शरीरोंका—सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका ही आपकी इच्छाशक्ति (योगमाया) के द्वारा वियोग हो जाता है—उस समय इन जागतिक विकार-कार्योंमें आपका कोई संसर्ग नहीं रहता। सृष्टि एवं स्थितिकालमें आप उनमें व्यवहार-कार्यके नियामकरूपमें होते हैं और हम सबकी व्यवहार सिद्धिके लिए अन्तर्यामीत्व (अणु-अणुमें प्रवेश) आदि अंश स्वीकार करते हैं। वस्तुतः भगवान् किसी पदार्थके भीतर नहीं रहते, वे ब्रह्मरूपमें सर्वत्र एवं सभीमें व्याप्त रहते हैं] ॥ १४ ॥

गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः।

गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥ १५ ॥

सत्त्व, रज और तम—इन गुणोंके प्रवाहके सम्बन्धमें सर्वान्तर्यामी आपकी सूक्ष्मगतिसे जो अनभिज्ञ हैं, वे देहाभिमान(अज्ञान)—जनित कर्मोंके कारण बाध्य होकर संसार-दशाको प्राप्त होकर जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़े रहते हैं ॥ १५ ॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम्।

स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर॥ १६ ॥

हे परमेश्वर! इस लोकमें किसी भी कारणसे मुझे इन्द्रिय शक्तिसे युक्त यह दुर्लभ मानव-शरीर प्राप्त हुआ, पर आपकी मायाके प्रभावसे परम स्वार्थ-विषय-परमार्थमें असावधानीके कारण मेरी आयु व्यर्थ ही बीत गयी—इस प्रकारका ज्ञान आपकी भक्ति द्वारा मनुष्य जन्ममें सम्भव होता है, जिसे नहीं होता, वही शोक प्राप्त करता है॥ १६ ॥

असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु।

स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान् सर्वमिदं जगत्॥ १७ ॥

हे भगवन्! आपने ही इन जीवोंको देहमें अहं बुद्धिरूपसे 'यह मैं हूँ' और पुत्रादि विषयमें ममत्व बुद्धिरूप 'ये मेरे हैं' इस प्रकारके स्नेह-पाशसे बाँध रखा है॥ १७ ॥

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ।

भूभार-क्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह॥ १८ ॥

मैं जानता हूँ कि आप दोनों वस्तुतः मेरे पुत्र नहीं हैं, आप प्रकृति एवं पुरुष (महाविष्णु) के ईश्वर हैं। आपने जन्मके समय मुझसे कहा था कि पृथ्वीके भार-स्वरूप क्षत्रियोंके विनाशके लिए आप मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। हमारी तो देहमें अहं बुद्धि है और पुत्रादिमें ममता बुद्धि है। आप पुत्र नहीं हो परन्तु पुत्र-बुद्धिसे आपके प्रति ममता है॥ १८ ॥

तत् ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्द-

मापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ।

एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन

मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः॥ १९ ॥

हे शरणागत-वत्सल दीनबन्धो! इसलिए आज मैंने शरणागत-जनोंके संसार-भय-नाशक आपके चरणकमलोंका आश्रय लिया है। इस

मर्त्य-शरीरमें आत्मबुद्धि रखनेसे मैं इन्द्रियोंकी तृष्णाओंके वशीभूत हो गया। आपमें भी मैंने पुत्र-बुद्धि कर ली। अब तो बस मेरी इस इन्द्रिय-तृष्णाकी निवृत्ति हो॥ १९॥

सूतीगृहे ननु जगाद् भवानजो नौ
संजज्ञे इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै।

नानातनूर्गनवद्विदधज्जहासि

को वेद भूमन् उरुगाय विभूतिमायाम्॥ २०॥

हे महाकीर्तिशालिन् प्रभो! आपने सूतिका-गृहमें हमसे (मुझसे एवं देवकीसे) कहा था कि वस्तुतः आप अजन्मा होकर भी अपनी बनायी धर्मकी मर्यादाकी रक्षाके लिए प्रत्येक युगमें जन्म-ग्रहण करनेकी लीलाका अभिनय करते हैं। हे भगवन्! आप घट-पटादि महाकाशके समान प्रत्येक युगमें विविध श्रीविग्रहोंको स्वीकार करते हैं और फिर उन रूपोंमें ही अन्तर्द्धान हो जाते हैं। हे भूमन्! आपकी विभूतिरूप मायाको जाननेमें कोई समर्थ नहीं है। जैसा कि आपने बताया हमने पृश्नि-सुतपा, कश्यप-अदिति एवं वसुदेव-देवकीके रूपोंमें जन्म लिया है परन्तु आप तो पुत्र होकर भी आकाशके समान अलिप्त रहे॥ २०॥

श्रीशुक उवाच—

आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान् सात्वतर्षभः।

प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा॥ २१॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! यदुवंश-शिरोमणि, भक्त-वत्सल भगवान् श्रीकृष्ण पिताके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर जोरसे हँस पड़े। वे विनयके साथ सिर झुकाकर नम्रतापूर्वक मधुर वचनोंसे कहने लगे (श्रीकृष्णने वसुदेवके ऐश्वर्य भावको पुत्र भावमें परिवर्तित कर दिया था, परन्तु मुनियोंके वचनोंसे उनमें दोनों पुत्रोंके प्रति पुनः ईश्वर भाव जाग उठा और वे वन्दना करने लगे। यह रसाभास दोष नहीं रहना चाहिये, इसलिए कृष्ण हँसने लगे)॥ २१॥

श्रीभगवानुवाच—

वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे।

यत्रः पुत्रान् समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥ २२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पिताजी! हम आपके पुत्र ही हैं। हमें लक्ष्य करके यथार्थ तत्त्वोंका आपने जो भलीभाँति उपदेश दिया है—हम आपकी एक-एक बातको उपयुक्त एवं युक्तिसङ्गत मानते हैं ॥ २२ ॥

अहं यूयमसावार्य्य इमे च द्वारकौकसः।

सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृग्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥

पिताजी! मैं, पूजनीय बलदेव भैया, आप सारे द्वारकावासी एवं यह चराचर जगत्—जैसा आपने बतलाया—इन सबको ब्रह्म-सम्बन्धसे ही समझना उचित है। आप मुझे पुत्ररूपमें ही नहीं, अपितु परमात्मारूपमें भी देखें, परन्तु अपनी शिक्षा द्वारा पुत्ररूपमें मुझे कृतज्ञ भी करें। मेरे प्रति आत्मदृष्टि रखें ॥ २३ ॥

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः।

आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥ २४ ॥

परमात्मा स्वप्रकाश, नित्य, प्राकृत गुणोंके सम्पर्कसे सर्वथा रहित एवं प्रकृतिसे अतीत हैं। वे एक होनेपर भी आत्म-सृष्ट (स्वरचित) गुणोंके द्वारा देहोंकी सृष्टि करके अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण विविध रूपोंमें प्रकाशित होकर भी अपने स्वरूप एवं स्वरूपानुबन्धी गुणोंका त्याग नहीं करते (प्रस्तुत पंक्तियोंमें द्वारकाके परिकरोंकी भगवत्-सदृशताका निरूपण हुआ है) ॥ २४ ॥

खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम्।

आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ॥ २५ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पञ्चमहाभूत जिस प्रकारसे अपने द्वारा ही रचित घट, कुण्डलादि उपाधिके अनुसार

प्रकट-अप्रकट (दृश्य-अदृश्य), लघु-विशाल एवं एक और अनेक रूपोंको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार एक परमात्मा भी आविर्भाव-तिरोभावके कारण विभिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं—इस दृष्टिसे आपका कहना ठीक ही है ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं भगवता राजन् वसुदेव उदाहृतः।

श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके इन वचनोंको सुनकर वसुदेव भेद-बुद्धिसे (नाना प्रकारके विचारोंसे) मुक्त हो गये। हृदयमें अति आनन्दका अनुभव करते हुए वे मौन होकर स्थित रहे।

वसुदेवने निर्धारण कर लिया कि जगत् एवं जीव श्रीकृष्णकी शक्तिके विलास हैं तथा कृष्ण स्वयं साधारण जीव नहीं हैं। श्रीकृष्ण एवं बलराम उनके ही पुत्र हैं—इस ज्ञानसे उनमें सहज वात्सल्य उदित हो आया और वे आनन्दसे अभिभूत गये ॥ २६ ॥

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता।

श्रुत्वानीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥

कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान् कंसविहिंसितान्।

स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥

हे कुरुवर! उस समय वहाँ समस्त लोकोंकी पूजनीय देवकी देवी (जो भगवान्की अन्तरङ्गा-शक्ति द्वारा मोहित थीं) भी बैठी हुई थीं। वे बहुत पहलेसे ही यह बात सुनकर अत्यन्त विस्मित थीं कि श्रीकृष्ण और बलराम अपने ही द्वारा रचित यमालयसे गुरु सान्दीपनि मुनिके मृतपुत्रको लौटा लाये थे। उन्हें कंस द्वारा मारे गये अपने पुत्रोंका स्मरण हो आया। उनका हृदय आतुर हो गया और आँखोंसे आँसू बहने लगे। उन्होंने अत्यन्त करुण स्वरसे श्रीकृष्ण एवं बलरामसे कहा ॥ २७-२८ ॥

श्रीदेवक्युवाच—

राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर।

वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपुरुषौ ॥ २९ ॥

हे अप्रमेयस्वरूप बलराम! हे योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण! मैं समझती हूँ कि तुम दोनों इस विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मादियोंके भी नियन्ता सनातन पुरुष हो ॥ २९ ॥

कालविध्वस्तसत्त्वानां राजामुच्छास्त्रवर्तिनाम्।

भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥

मैं यह भी निश्चितरूपसे जानती हूँ कि तुम दोनों जगदीश्वर हो। जिन राजाओंने काल-क्रमसे अपना धैर्य, संयम और सत्त्वगुण (साधुत्व) खो दिया है एवं जो शास्त्र-मार्गका उल्लङ्घन करके स्वेच्छाचारी हो रहे हैं, उन पृथ्वीके भार-स्वरूप राजाओंका वध करनेके लिए तुम दोनों मेरे गर्भसे अवतीर्ण हुए हो ॥ ३० ॥

यस्यांशांशांशभागेन

विश्वोत्पत्तिलयोदयाः।

भवन्ति किल विश्वात्मस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥ ३१ ॥

हे निखिलान्तर्यामिन्! हे आदिपुरुष! जिनके अंश महावैकुण्ठनाथ हैं और जिनके भी अंशभूत महाविष्णु हैं और जिनकी भी अंशभूता प्रकृतिके अंश—परमाणु अर्थात् रज आदि गुणोंसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति एवं संहार होते हैं—आज मैं उन आपकी शरणमें हूँ ॥ ३१ ॥

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा काल चोदितौ।

आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥

तथा मे कुरु तं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ।

भोजराजहतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुमाह्वतान् ॥ ३३ ॥

मैंने सुना है कि आपके गुरु सान्दिपनी मुनिका पुत्र बहुत समय पहले मर गया था, जब उन्होंने गुरुदक्षिणाके रूपमें पुत्रको माँगा, तब कालकी प्रेरणासे तुम दोनों यमालय जाकर उसे वापस

ले आये और गुरु-दक्षिणाके रूपमें उसे प्रदान कर दिया। उसी प्रकार हे योगेश्वराधिपति! तुम दानों कंसके द्वारा मारे गये मेरे पुत्रोंको भी फिरसे ला दो। उन्हें देखनेकी मेरी बड़ी इच्छा है। तुम लोग मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करो॥ ३२-३३ ॥

श्रीऋषिरुवाच—

एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत।

सुतलं संविशितुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे भरतकुलनन्दन! माता देवकी द्वारा इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर श्रीकृष्ण और बलराम—दोनोंने योगमायाका आश्रय लेकर सुतल लोकमें प्रवेश किया॥ ३४ ॥

तस्मिन् प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड्-

विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः।

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः

सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥

वहाँ दैत्यराज बलिने विश्वात्मा, विश्वाराध्य, निज अभीष्टदेव बलराम और श्रीकृष्णको सुतल लोकमें प्रवेश करते देखा, तो उनका हृदय आनन्दसे भर गया। वे अपने परिवारके साथ आसनसे शीघ्र ही उठे और सपरिवार झुककर उन्हें प्रणाम किया॥ ३५ ॥

तयोः समानीय वरासनं मुदा

निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः।

दधार पादाववनिज्य तज्जलं

सवृन्द आब्रह्म पुनद् यदम्बु ह ॥ ३६ ॥

राजा बलिने बड़े ही आनन्दके साथ उन्हें उत्तम सिंहासनपर बिठाया। सिंहासनपर विराजमान हो जानेके बाद उन्होंने कृष्ण-बलरामके चरण पखारे और ब्रह्मासे लेकर सारे जगत्को पवित्र करनेवाले उस पादोदकको मस्तकपर धारण किया॥ ३६ ॥

समर्हयामास स तौ विभूतिभि-

र्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ।

ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः

स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥

इसके बाद दैत्यराज बलिने महामूल्यवान् वस्त्र, अलङ्कार, सुगन्धित चन्दन, ताम्बूल, प्रदीप, अमृतके समान भोज्य आदि द्रव्योंसे उन दोनोंकी पूजा की तथा अपना समस्त परिवार, सम्पत्ति और अपने-आपको भी उनके चरणोंमें समर्पण कर दिया ॥ ३७ ॥

स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं

बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया ।

उवाच हानन्दजलाकुलेक्षणः

प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥

हे राजन्! उस समय इन्द्रकी सेनाको जीतनेवाले दैत्यराज बलिका चित्त प्रेमसे द्रवित हो गया। वे बार-बार श्रीकृष्ण और बलरामके चरणकमलोंको कभी अपने वक्षपर और कभी अपने मस्तकपर धारण करने लगे। उनके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु उमड़ आये, उनका रोम-रोम खिल उठा और वे बड़े गद्गद स्वरसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥

श्रीबलिरुवाच—

नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ।

सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥

राजा बलिने कहा—जो अनन्तरूपसे अपने विशाल फणके एक भागमें विश्वको धारण करते हैं, मैं उन महान् बलदेवको नमस्कार करता हूँ। ब्रह्माण्डके स्रष्टा, भाग्यके विधाता, सांख्य (ज्ञान-शास्त्र) और योगका विस्तार करनेवाले परम ब्रह्म, परमात्मा, सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापञ्चाप्यदुर्लभम्।

रजस्तमःस्वभावानां यत्रः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥

भगवन्! आपके दर्शन तो योगेश्वरोंके लिए भी दुर्लभ हैं, तथापि हमारे जैसे रज एवं तमोमय स्वभाववालोंके सम्मुख जो आप सुलभ हुए हैं, वह आपकी अहैतुकी कृपा ही है ॥ ४० ॥

दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः।

यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥

विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि।

नित्यं निबद्धवैरास्ते वयञ्चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥

केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः।

न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥

प्रभो! दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ-नायक (प्रेत), हम और हमारे जैसे लोगोंने चिरकालसे आपसे वैर-भाव बना रखा है। विशुद्ध-सत्त्वाश्रय भक्तिशास्त्रोंमें कहा गया है कि आपका श्रीविग्रह (शास्त्र-विग्रह) सच्चिदानन्दमय है। हममें एवं अन्यान्य लोगोंमेंसे शिशुपाल आदि किसी-किसीने आपके प्रति दृढ़ वैर-भावसे और गोपियों आदिने अनुरागयुक्त भक्तिसे (काम भावसे) जिस प्रकार आपका सान्निध्य प्राप्त किया है, सत्त्वप्रधान देवताओंको वैसा सान्निध्य प्राप्त नहीं हो सकता।

हिरण्यकशिपु-वंशजात मैं अपने बाण आदि पुत्रोंके साथ सदा ही आपका विद्वेषी और दैत्योंका पक्षपाती रहा हूँ। दैत्य आपसे नित्य वैर भाव रखते हैं। (स्वयंमें दोषारोपण करना परम भक्तका स्वभाव होता है।) दानव, राक्षसादि आपके भक्तोंसे द्वेष करते हैं। गन्धर्व आदि (सिद्ध, विद्याधर एवं चारण आदि) सकाम भक्तगणोंको मेरे द्वारपर रखकर कृपापूर्वक मुझे दर्शन प्रदान करते हैं (हम दुष्ट स्वभाववालोंको तो आपका दर्शन दुर्लभ है)। शिशुपालादि कितने ही दैत्योंको मारकर आप मुक्ति प्रदान करते हैं, गन्धर्वोंको

निज यशोगान आदि गुण प्रदान करते हैं, इस गानको स्वयं भी श्रवण करते हैं और अपने भक्तोंको भी कराते हैं तथा कभी तो देवताओंको भी अपना स्वरूप विस्मृत कराकर विषय-भोग दे देते हैं, वे आपके समीप रहकर भी आपको प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ४१-४३ ॥

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ।

न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥ ४४ ॥

हे योगेश्वरेश्वर ! ब्रह्मादि बड़े-बड़े योगीन्द्र भी आपकी योगमायाको स्वरूपतः अथवा विशेषतः नहीं जान सकते कि “यह इस प्रकारसे है या ऐसी है” फिर हम तो किस प्रकारसे जान सकते हैं ? ॥ ४४ ॥

तत्रः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्-

पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् ।

निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्रयुपलब्धवृत्तिः

शान्तो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥

इसलिए हे प्रभो ! पूर्णकाम, परमहंस, महाजन जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं, उन आपके चरणकमलोंके आश्रयसे दूर रहकर मैं गृहान्ध कूपमें पड़ा हुआ हूँ। आप मुझपर अनुग्रह कीजिये कि मैं यहाँसे निकलकर समस्त विश्वके आश्रय वृक्षोंके नीचे रहकर स्वयं ही गिरे हुए फलों द्वारा जीवन धारणकर शान्त भावसे अकेला रहूँ अथवा सभीके सच्चे बान्धव महान् सन्तोंके साथ पर्यटन करता रहूँ ॥ ४५ ॥

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान् कुरु नः प्रभो ।

पुमान् यच्छ्रद्धयातिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥

(यदि कोई कहे कि मेरे जैसे अल्प पुण्यवाले व्यक्तिके लिए यह किस प्रकारसे सम्भव है ? इसलिए कहता हूँ) हे जीवेश, हे प्रभो ! आप समस्त चराचर जगत्के नियन्ता और स्वामी हैं। जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाका पालन करता है, वह विधि-निषेधरूप

वैदिक अनुष्ठानोंसे मुक्त हो जाता है। मुझे वही आज्ञा—वही शिक्षा प्रदानकर निष्पाप कर दीजिये ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

आसन् मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे।

देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे दैत्यराज! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति मरीचिकी पत्नी ऊर्णादेवीके गर्भसे छह पुत्र उत्पन्न हुए, जो देवता थे। प्रजापति ब्रह्माको अपनी ही पुत्रीके साथ रमण करनेके लिए उद्यत देखकर इन छहों पुत्रोंको हँसी आ गयी ॥ ४७ ॥

तेनासुरीमगन्

योनिमधुनावद्यकर्मणा।

हिरण्यकशिपोर्जाता

नीतास्ते

योगमायया ॥ ४८ ॥

देवक्या उदरे जाता राजन् कंसविहिंसिताः।

सा तान् शोचत्यात्मजान् स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥

इस परिहासरूप अपराधके कारण ब्रह्माजीने उन्हें आसुरी योनिमें जन्म लेनेका अभिशाप दे दिया, जिससे उन्हें हिरण्यकशिपुके पुत्रोंके रूपमें जन्म लेना पड़ा। वहाँसे योगमाया उन्हें ले आयी एवं उन्हें देवकीके गर्भमें रख दिया, जिससे उनका जन्म देवकी-पुत्रोंके रूपमें हुआ, जिन्हें कंसने मार डाला। हे दैत्यराज! मेरी माँ देवकीदेवी उन्हें ही अपना पुत्र समझकर शोकातुर हो रही हैं। मरीचिके वे छहों पुत्र आपके पास हैं ॥ ४८-४९ ॥

इत एतान् प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये।

ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥ ५० ॥

हम माता देवकीका शोक दूर करनेके लिए वहाँसे इस स्थानपर आये हैं और इन्हें माताके पास ले जाना चाहते हैं। इसके बाद ये शापसे मुक्त होकर सन्ताप-रहित हो जायेंगे और अपने स्थान देवलोकमें चले जायेंगे— ॥ ५० ॥

स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृद्घृणी।

षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥

स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत् और घृणी नामक ये छह पुत्र हमारे अनुग्रहसे पुनः सद्गतिको प्राप्त करेंगे ॥ ५१ ॥

इत्युक्त्वा तान् समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ।

पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥ ५२ ॥

परीक्षित्! यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये। दैत्यराज बलिने उन दोनोंका भलीभाँति पूजन किया; तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण उन छहों बालकोंको लेकर पुनः द्वारका आ गये और उन्हें अपनी माताको सौंप दिया ॥ ५२ ॥

तान् दृष्ट्वा बालकान् देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी।

परिष्वज्याङ्गमारोप्य मूदूर्ध्व्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥

उन बालकोंको देखते ही वात्सल्य स्नेहके उद्रेकसे देवकी माताके स्तनोंसे दूध झरने लगा। वे उनका आलिङ्गन करने लगीं और उन्हें गोदमें बिठाकर बार-बार मस्तक सूँघने लगीं ॥ ५३ ॥

अपाययत् स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिस्नुतम्।

मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ५४ ॥

भगवान्ने जिस योगमायाके बलसे अप्राकृत सृष्टिका प्रवर्तन किया है, तल्लीलापरिकरको प्रादुर्भूत करनेवाली उस योगमायासे देवकी मोहित हो गयीं और पुत्र-स्पर्शसे उत्पन्न वात्सल्य-स्नेहसे सराबोर होनेके कारण स्वतः क्षरित दुग्धका उन्हें बड़े आनन्दके साथ पान कराने लगीं ॥ ५४ ॥

पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः।

नारायणाङ्गसंस्पर्श-प्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥

ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम्।

मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने पहले देवकी माताका स्तन्य-पान किया था। अतएव उनका उच्छिष्ट देवकीके स्तनोंका दूध साक्षात् अमृत ही था; उन बालकोंने वही अमृतमय दूध पिया। उस दुग्धामृतके पीनेसे तथा श्रीकृष्णके दिव्य अङ्गोंके स्पर्शके कारण उन्हें अपने मूल-स्वरूप अर्थात् देवस्वरूपका ज्ञान हो गया। उन्होंने भगवान् गोविन्द, देवकी, अपने पिता वसुदेव और बलदेवको प्रणाम किया तथा समस्त प्राणियोंके देखते-ही-देखते वे देवलोकको चले गये ॥ ५५-५६ ॥

तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम्।

मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥

हे राजन्! पूजनीया देवकीदेवी मृतक पुत्रोंके पुनः आगमन एवं पुनः देवलोकमें प्रस्थान देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं। तब उन्होंने निश्चय कर लिया कि यह भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रची हुई माया है ॥ ५७ ॥

एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः।

वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥ ५८ ॥

हे भरतकुलनन्दन! अनन्त प्रभावशाली परमात्मा श्रीकृष्णके ऐसे ही आश्चर्यजनक बहुत-से पराक्रममय लीला-चरित्र हैं ॥ ५८ ॥

श्रीसूत उवाच—

य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारे—

श्चरितममृतकीर्त्तैर्वर्णितं व्यासपुत्रैः।

जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं

भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे मृताग्रजानयनं नाम
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

श्रीसूत गोस्वामीने कहा—हे मुनियो ! भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्त्ति अक्षय है, अमृतमयी है। उनका चरितामृत जगत्के सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला तथा भक्तोंके कर्ण-कुहरोंमें परम अमृतको प्रवाहित करनेवाला दिव्य कर्णाभूषण-स्वरूप है। जो व्यासपुत्र द्वारा सुनायी गयी इन कथाओंको निरन्तर सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, उसका चित्त भगवान्में स्थिर हो जाता है और वह कालादिके भयसे रहित होकर भगवान्के मङ्गलमय धामको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पिचासीवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

षडशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा सुभद्रा-हरण और श्रीकृष्णका मिथिलापुरीमें
राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मणके घर
एक ही समय जाना

श्रीराजोवाच—

ब्रह्मन् वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ।

यथोपयेमे विजयो या ममासीत् पितामही ॥ १ ॥

महाराज परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्! (आपने बलदेवसे अनिरुद्ध पर्यन्त सभीके विवाहोत्सवका वर्णन किया। अब) मेरी दादी सुभद्रादेवी जो बलराम और श्रीकृष्णकी बहिन थीं, अर्जुनके साथ उनका विवाह किस प्रकार हुआ—यह मैं आपसे सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ।

गतः प्रभासमश्रुणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ।

तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! एक बार शक्तिशाली अर्जुन तीर्थयात्राके लिए पृथ्वीपर पर्यटन करते हुए प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुना कि बलदेव उनके (अर्जुनके) मामाकी पुत्री सुभद्राका विवाह दुर्योधनके साथ करना चाहते हैं, किन्तु वसुदेव और श्रीकृष्ण आदि आत्मीयगण इस विषयमें सहमत नहीं हैं। तब अर्जुनके मनमें उसके साथ विवाह करनेकी अभिलाषा जग गयी और वे बलदेवादिकी वञ्चनाके लिए त्रिदण्डी संन्यासीका वेश धारण करके द्वारका पहुँचे ॥ २-३ ॥

तत्र वै वार्षिकान् मासानवात्सीत् स्वार्थसाधकः ।

पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥

अर्जुन सुभद्राको प्राप्त करनेके लिए वर्षाकालीन चार महीने वहीं रहे। पुरवासी एवं बलदेव कोई भी अर्जुनको उस वेशमें पहचान न सका। उन लोगोंने उन्हें त्रिदण्डी संन्यासी जानकर उनका अच्छी प्रकारसे सम्मान किया ॥ ४ ॥

एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् ।

श्रद्धयोपहतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥

एक बार बलदेवने आतिथ्यके लिए अर्जुनको अपने घरमें निमन्त्रित किया और सत्कार-धर्म एवं श्रद्धाके साथ उनके लिए भोजन परोसा। अर्जुन उन दिनों भिक्षासे प्राप्त अन्न ही ग्रहण किया करते थे ॥ ५ ॥

सोऽपश्यत् तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ।

प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥

उसी समय अर्जुनने विवाह-योग्य, अद्भुत-सुन्दरी वीर-धीर-मनोहारिणी बालाको देखा। उसे देखकर उनके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित हो गये और चित्त उसकी प्राप्तिकी कामनासे विचलित हो गया ॥ ६ ॥

सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमम् ।

हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तत्र्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥

अर्जुनका सौन्दर्य भी स्त्रियोंके मनोंको आकर्षित करनेवाला था। सुभद्रा तनिक मुसकराती हुई लजीली चितवनसे अति मनोरम अर्जुनको निहारने लगी और अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया ॥ ७ ॥

तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ।

न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥

अर्जुन सर्वदा सुभद्राका चिन्तन करते रहते थे। वे उसका हरण करनेका कोई अवसर ढूँढ़ने लगे। सुभद्राको प्राप्त करनेकी प्रबल अभिलाषासे उनका चित्त भ्रमित हो रहा था। बलदेवसे सम्मान प्राप्त करके भी उन्हें किसी भी प्रकारसे शान्ति नहीं मिल रही थी॥ ८ ॥

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम्।

जहारानुमतः पित्रो कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥

एक दिन वह कन्या किसी देवोत्सवके उपलक्षमें (चातुर्मासके अन्तमें श्रीभगवान्‌के उत्थानके अवसरपर) रथपर आरूढ़ होकर द्वारका-दुर्गसे बाहर निकली ही थी कि महारथी अर्जुनने देवकी, वसुदेव एवं श्रीकृष्णकी अनुमति प्राप्त करके उनका हरण कर लिया ॥ ९ ॥

रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुन्धतो भटान्।

विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥

सिंह जिस प्रकार अन्यान्य पशुओंमेंसे अपना भाग हर ले जाता है, उसी प्रकार उच्च स्वरसे आर्त्तनाद करती हुई सुभद्राकी सखियोंकी उपेक्षा करके महारथी अर्जुनने सुभद्राको रथपर चढ़ा लिया एवं धनुष धारण करके स्वयं ही चारों दिशाओंमें रुकावट डालनेवाले यादव-वीरोंको एवं पैदल-योद्धाओंको पराजित करके रथको लेकर आगे बढ़ चले ॥ १० ॥

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः।

गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चानुसान्त्वितः ॥ ११ ॥

उत्सव दिवस पर इस अपहरणके समाचारको सुनकर बलदेव इस प्रकार विचलित हो उठे, जिस प्रकार पूर्णिमाके दिन समुद्र क्षुब्ध हो जाता है। तब श्रीकृष्ण और उनके बान्धवोंने उनके चरण पकड़े और समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया ॥ ११ ॥

प्राहिणोत् पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः।

महाधनोपस्करोभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥

इसके बाद तो बलदेवने अति प्रसन्नताके साथ वर-वधूको दहेजमें बहुमूल्य सामग्रियाँ, हाथी, घोड़े, रथ, सैनिक एवं दासियाँ उपहार-स्वरूप भिजवाये ॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच—

कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः।

कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविरलम्पटः ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे राजन्! श्रीकृष्णकी अनन्य-भक्तिके कारण पूर्ण-मनोरथ, परम-शान्त एवं विषयोंसे विरक्त श्रुतदेव नामसे प्रसिद्ध एक विवेकी ब्राह्मण थे ॥ १३ ॥

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी।

अनीहयागताहार्यनिर्वर्त्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥

वे गृहस्थ ब्राह्मण थे और विदेहराजकी राजधानी मिथिला नगरीमें वास करते थे। सहजरूपसे जो कुछ भोज्य पदार्थ मिल जाता, उसीसे सन्तुष्ट रहकर वे अपनी जीविकाका निर्वाह कर लेते थे ॥ १४ ॥

यात्रामात्रं

त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत।

नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥

प्रारब्ध-वश प्रतिदिन उन्हें जीवन-निर्वाहके लिए उपयोगी सामग्री मात्र ही प्राप्त हो पाती थी, अधिक नहीं। वे उससे ही सन्तुष्ट होकर वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार अपने कर्त्तव्योंका पालन किया करते थे ॥ १५ ॥

तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः।

मैथिलो निरहम्मान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥

हे वत्स परीक्षित्! श्रुतदेवके समान ही राजत्व-अहङ्कारसे रहित बहुलाश्व नामके राजा थे, जो महाराज जनकके प्रतिष्ठित वंशमें उत्पन्न हुए थे। वे ही उस समय विदेह राज्यके अधिपति थे। वे दोनों ही श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे॥ १६॥

तयोः प्रसन्नो भगवान् दारुकेणाहृतं रथम्।

आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान् प्रययौ प्रभुः॥ १७॥

भगवान् श्रीकृष्णने उन दोनोंसे बहुत प्रसन्न होकर दारुकसे रथ मँगवाया और उसपर विराजमान होकर मुनियोंके साथ द्वारकासे विदेह-राज्यकी यात्रा की।

श्रुतदेव एवं बहुलाश्व दोनों ही अपने इष्टदेवके श्रीविग्रहकी सेवा-पूजामें लगे रहते थे। उन दोनोंको ही भगवान्का दर्शन करनेकी तीव्र उत्कण्ठा थी। तब श्रीकृष्ण स्वयं ही उन दोनोंको दर्शन देनेके लिए मुनियोंके साथ मिथिलापुरी चल दिये। मुनियोंको श्रम (थकावट) न हो इसलिए उन्होंने उन्हें भी अपने रथपर बिठा लिया॥ १७॥

नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः।

अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः॥ १८॥

उस समय नारद, व्यासदेव, अत्रि, वामदेव, भार्गव, असित, आरुणि, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन आदि मुनि और स्वयं मैं (शुकदेव) भी उनके साथ था॥ १८॥

तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप।

उपतस्थुः सार्ध्यहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम्॥ १९॥

हे राजेन्द्र! वे जिस भी नगर अथवा ग्रामसे गुजरते, वहाँके नागरिक एवं ग्रामवासी अपने हाथोंमें पूजाकी सामग्री लेकर उनके गमन-पथपर आ जाते और उनका अभिनन्दन करते। उस समय मुनियोंसे परिवेष्टित श्रीकृष्ण इस प्रकार शोभा पाते जैसे ग्रहोंके साथ सूर्यका उदय हुआ हो॥ १९॥

आनर्त्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमतस्य-

पाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोशलाणाः ।

अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहास-

स्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥

हे राजन्! उस समय आनर्त्त, धन्व, कुरु-जाङ्गल, कङ्क, मतस्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोसल, अर्ण आदि राज्यों एवं अन्यान्य देशोंमें रहनेवाले स्त्री-पुरुषोंने अपने-अपने नेत्ररूपी प्यालेसे सानुराग उनकी उदार मुस्कान और प्रेमभरी चितवनसे युक्त मुख-कमलके अमृतमय मकरन्द रसका पान करने लगे ॥ २० ॥

तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः

क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशञ्च यच्छन्।

शृण्वन् दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं

गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥

त्रिलोक-गुरु भगवान् श्रीकृष्णके कृपा-कटाक्षको प्राप्त करके उन लोगोंकी दृष्टि अज्ञान-अन्धकारसे मुक्त हो गयी। श्रीकृष्ण दर्शकोंको अभय-दान एवं तत्त्व-ज्ञानका वितरण करते हुए चल रहे थे। देवता, मानव उनके अशुभ-विनाशक एवं दिग्मण्डल-प्रकाशक यशका गान कर रहे थे, जिसे सुनते हुए वे धीरे-धीरे विदेह-राज्यमें पहुँचे।

प्रश्न हो सकता है कि श्रीकृष्णके माधुर्यका आस्वादन प्रजाओंको निज नेत्रों द्वारा किस प्रकारसे सम्भव है, तो इसका उत्तर है कि वे दर्शनार्थियोंके अज्ञान-अन्धकारको दूर करके परमार्थ-अनुभव योग्य-निज भक्तियोग एवं निज माधुर्य विशेषको अनुभव करनेकी शक्ति देते हैं और इस उक्तिको सार्थक करते हैं-‘भक्त्याहमेकया ग्राह्यः’ अर्थात् एकमात्र भक्ति द्वारा ही मैं अनुभव-योग्य हूँ ॥ २१ ॥

तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप।

अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥

हे राजन्! विदेहराज्यके पुरवासियों एवं ग्रामवासियोंने जब श्रीकृष्णके शुभागमनके विषयमें सुना, तो वे बड़े आनन्दित हो गये और अपने-अपने हाथोंमें उपहार लेकर उनकी अगवानीके लिए चल दिये ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा त उत्तमःश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः।

कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वास्तथा मुनीन् ॥ २३ ॥

पुण्यश्लोक-शिरोमणि श्रीकृष्णका दर्शन करके दर्शनार्थियोंका हृदय प्रीतिसे प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने सिरोंके ऊपर अञ्जलि बाँधकर भगवान् श्रीकृष्णको और साथ आये मुनियोंको प्रणाम किया। उन लोगोंने उन मुनियोंके केवल नाम सुने थे, उन्हें देखा नहीं था ॥ २३ ॥

स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम्।

मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥ २४ ॥

मिथिला-नरेश बहुलाश्व एवं ब्राह्मण श्रुतदेव दोनों ही यह निश्चय करके कि जगद्गुरु श्रीकृष्णका आगमन उनपर ही अनुग्रह करनेके लिए हुआ है, अतः उनके श्रीचरणोंमें झुककर बार-बार प्रणाम करने लगे ॥ २४ ॥

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः।

मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत् संहताञ्जली ॥ २५ ॥

दोनोंने एक साथ एक ही समयमें हाथ जोड़कर मुनियोंके साथ यदुवंश-शिरोमणि श्रीकृष्णको आतिथ्य ग्रहण करनेके लिए निमन्त्रित किया ॥ २५ ॥

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया।

उभयोराविशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ २६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने दोनोंका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और दोनोंपर प्रीतिपूर्वक अनुग्रह करनेके लिए एक ही समय पृथक्-पृथक् रूपसे दोनोंके घर पधारे। दोनोंमेंसे किसीको यह पता

नहीं चला कि जैसे श्रीकृष्ण उसके घर आये हैं, वैसे दूसरेके घर भी गये हैं।

भगवान्ने दोनोंकी मनोवाञ्छा जानकर दोनोंके घरोंमें प्रवेश किया और अपना एवं मुनियोंका वैभव-प्रकाश आविर्भूत किया। इस समय वे दोनोंसे अलक्षित रहे अर्थात् श्रुतदेवने सोचा कि मेरा निमन्त्रण स्वीकार करके कृपालु प्रभु मेरे ही घर आये हैं और राजा बहुलाश्वने भी इसी प्रकारसे विचार किया। भगवान्के दो प्रकाश प्रकट हुए—एकके लिए कृष्ण-संयुक्त एवं आनन्दित एवं दूसरा कृष्ण-वियुक्त एवं विषण्णचित्त। कृष्णसे युक्त राजाके प्रतिवेशियोंने श्रुतदेवको कृष्ण-वियुक्त एवं विषण्णचित्त देखा और उसी प्रकारसे श्रुतदेवके प्रतिवेशियोंने राजाको कृष्ण-वियुक्त एवं विषण्णचित्त देखा ॥ २६ ॥

श्रान्तानप्यथ तान् दूराज्जनकः स्वगृहागतान्।

आनीतेष्वासनाग्रयेषु सुखासीनान् महामनाः ॥ २७ ॥

प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्त्राविलेक्षणः।

नत्वा तदङ्घ्रीन् प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥

सकुटुम्बो वहन् मूर्ध्ना पूजयाञ्चक्र ईश्वरान्।

गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घ्यगोवृषैः ॥ २९ ॥

महामति विदेहराज बहुलाश्वने दूरसे देखा कि उनके भवनमें भगवान् श्रीकृष्ण मुनियोंके साथ प्रवेश कर रहे हैं। वे कुछ थके-से लग रहे हैं। राजा बहुलाश्वने उत्तम-उत्तम आसन प्रदान किये और उन्हें बिठाया। जब वे सुखपूर्वक आसीन हो गये, तब राजाने उन सबको अतिशय श्रद्धाके साथ प्रणाम किया। अत्यधिक आनन्दके कारण उनकी आँखें आँसुओंसे भीग गयीं। बहुलाश्वने अपने अतिथियोंके चरण पखारे और उस लोकपावन चरणामृतको अपने परिवारके साथ अपने मस्तकपर धारण किया। इसके बाद गन्ध, माल्य, वस्त्र अलङ्कार, धूप, दीप अर्घ्य, गौ एवं

वृषभ प्रदान करके भगवान् एवं भगवत्-स्वरूप मुनियोंका भलीभाँति अर्चन किया ॥ २७-२९ ॥

वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहात्रतर्पितान्।

पादावङ्गगतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥

जब वे सभी भोजन करके सन्तुष्ट हो गये, तब राजा बहुलाश्वने अति प्रफुल्लित मनसे भगवान्‌के चरणकमलोंको गोदमें धारणकर लिया एवं सुखपूर्वक संवाहन करने लगे तथा भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिए मधुर वाणीसे धीरे-धीरे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

श्रीबहुलाश्व उवाच—

भवान् हि सर्व्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो।

अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—हे सर्वशक्तिमान् प्रभु! आप समस्त प्राणियोंके चेतनकर्त्ता (कृपापूर्वक अपनी भक्ति देनेवाले), प्रकाशक (मङ्गल एवं अमङ्गल कर्मके द्रष्टा) एवं स्वयं-प्रकाश-स्वरूप (किसी भी बाह्य साधनसे प्रकाशित न होनेवाले) हैं। हम आपके चरणकमलोंका सदा-सर्वदा ध्यान करते रहते हैं, जिससे आपने हमें दर्शन देकर कृतार्थ किया है ॥ ३१ ॥

स्ववचस्तदृतं कर्त्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान्।

यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥

हे भगवन्! आपने कहा है, मुझे अपना एकान्त प्रेमी भक्त भैया बलराम, पत्नी लक्ष्मी एवं पुत्र अजन्मा ब्रह्मासे भी अधिक प्रिय है। इसी कथनको सत्य करनेके लिए ही आप हमारे दृष्टिगोचर हुए हैं। अपना कोई प्रयोजन न रहनेपर भी द्वारकासे इतनी दूर आये हैं ॥ ३२ ॥

को नु त्वच्चरणाभ्योजमेवविद् विसृजेत् पुमान्।

निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥

हे भगवन्! आप निष्किञ्चन एवं शान्तचित्त मुनियोंको अपने-आपको भी दानकर अनुगृहीत करते हैं, यह जानकर ऐसा कौन-सा पुरुष होगा, जो आपके चरणकमलोंका परित्याग कर सकेगा? ॥ ३३ ॥

योऽवतीयं यदोर्वशे नृणां संसरतामिह।

यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥

हे देव! आपने यदुवंशमें अवतीर्ण होकर जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़े हुए मनुष्योंकी संसार-निवृत्तिके लिए ही इस लोकमें त्रिलोकके पाप-ताप विनाशन अपने यशका विस्तार किया है ॥ ३४ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे।

नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥

हे प्रभो! आप हिंसादि धर्मोंसे रहित, शान्त एवं असीम ज्ञानी हैं तथा लोकशिक्षाके लिए आप ही नारायण ऋषिके रूपमें बदरिकाश्रममें तपस्या कर रहे हैं। हे भगवान् श्रीकृष्ण! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

बहुलाश्व अपने घरमें श्रीकृष्णको रोकनेके लिए उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं—जिस प्रकार ऋषि नारायण भारतभूमिके मङ्गल हेतु बदरिका आश्रममें वास कर रहे हैं, उसी प्रकार आप मिथिला भूमिमें कुछ दिनों तक रहकर इसका भी सौभाग्य उदित करें। आप सुशान्त तपके इच्छुक हैं, इसलिए द्वारका जैसी ऐश्वर्यपरक भूमिको त्याग करके इस गृहमें रहकर अपनी तपस्या करें ॥ ३५ ॥

दिनानि कतिचिद्भूमन् गृहान् नो निवस द्विजैः।

समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥

हे भूमन्! (हे सर्वव्यापिन्!) आप इन मुनियोंके साथ कुछ दिनों तक हमारे घरमें ठहरें और अपनी चरण-धूलिसे राजा जनकके इस निमि-वंशको पवित्र करें ॥ ३६ ॥

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवान् लोकभावनः।

उवास कुर्वन् कल्याणं मिथिलानरयोषिताम्॥ ३७ ॥

राजा बहुलाश्वने जब भगवान्से आदर सहित यह प्रार्थना की, तब लोकपावन भगवान् श्रीकृष्णने मिथिलावासी नर-नारियोंके कल्याणके लिए और कुछ दिनों तक ठहरनेकी स्वीकृति दे दी॥ ३७ ॥

श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहान् जनको यथा।

नत्वा मुनीन् सुसंहृष्टो धुन्वन् वासो ननर्त्त ह॥ ३८ ॥

हे राजन्! बहुलाश्वके समान श्रुतदेवने भी अपने घरमें आये हुए अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण एवं मुनियोंको प्रणाम किया तथा अतिशय आनन्दके साथ अपने सिरके ऊपर अपने उत्तरीय वस्त्रको उछाल-उछालकर नृत्य करने लगे॥ ३८ ॥

तृणपीठबृषीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः।

स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन् सभार्योऽवनिजे मुदा॥ ३९ ॥

उन्होंने अपने घरकी एवं दूसरेके घरसे लायी हुई तृणमयी चटाइयों, पीढ़ों एवं कुशासनोंपर अपने अतिथियोंको बिठाया और स्वागतपरक वचनोंसे उनका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् उन्होंने और उनकी पत्नीने बड़े आनन्दसे उनके पाँव पखारे॥ ३९ ॥

तदम्भसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम्।

स्नापयाञ्चक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः॥ ४० ॥

परीक्षित्! महासौभाग्यशाली श्रुतदेवने अत्यन्त हर्षपूर्वक भगवान्के चरणोदकसे अपने घर, अपने कुटुम्बियों और अपना अभिसिञ्चन किया। अब तो वे पूर्णमनोरथ होकर आनन्द-विह्वल हो रहे थे॥ ४० ॥

फलार्हणोशीरशिवामृताम्बुभि-

र्मदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः।

आराधयामास यथोपपन्नया,
सपर्य्या सत्त्वविवर्द्धनान्धसा ॥ ४१ ॥

उन्होंने आमलकी (आँवला) इत्यादि फल, उशीर नामक तृणमूल, सुवासित, अमृत-तुल्य, स्वादिष्ट, उत्तम पानीय-जल, कस्तूरी इत्यादि सुगन्धित पदार्थ, मृत्तिका, तुलसी-दल, कुश, पद्म-प्रसून एवं भूत-द्रोहसे रहित अनायास उपलब्ध अन्यान्य उपहारोंसे एवं सत्त्वगुण-वर्धक अन्नसे उनकी आराधना की ॥ ४१ ॥

स तर्कयामास कुतो ममान्वभूत्-
गृहान्धकूपे पतितस्य सङ्गमः ।
यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः
कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥

श्रुतदेव मन-ही-मन आश्चर्य करते हुए विचार करने लगे— मुनियोंका हृदय भगवान् श्रीकृष्णका निवासस्थान-स्वरूप है और उनकी पदरेणु समस्त तीर्थोंका आश्रय-स्वरूप है। मेरे-जैसे गृहान्ध-कूपमें पड़े हुए अभागके लिए भगवान् श्रीकृष्णका एवं महा-माहात्म्यशाली मुनियोंका समागम कैसे हो गया! यह समझमें नहीं आ रहा है ॥ ४२ ॥

सूपविष्टान् कृतातिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः ।
सभार्य्यस्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥

जब अतिथिगण आतिथ्यसे सम्मानित होकर आरामसे बैठ गये, तब श्रुतदेव अपने आश्रित स्त्री-पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुए और मुनियोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका संवाहन करते हुए इस प्रकार कहने लगे— ॥ ४३ ॥

श्रीश्रुतदेव उवाच—

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ।
यहीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥

श्रीश्रुतदेवने कहा—हे प्रभो! हे परमपुरुष! आपने जिस समय अपनी सत्त्व इत्यादि गुणात्मक शक्ति द्वारा इस ब्रह्माण्डकी रचना की और आत्मसत्तारूपमें उसमें प्रवेश किया, उसी समयसे आप हमें प्राप्त हो गये थे, परन्तु आज हम आपका साक्षात् दर्शन कर रहे हैं।

ब्राह्मण श्रुतदेवने अपने पाण्डित्य एवं रसालपूर्ण वचनोंसे कहा—हमारा परस्पर दर्शन आज ही हुआ है, ऐसा नहीं है। इस जगत्की सृष्टि करके जबसे आपने इस विश्वमें प्रवेश किया है, तबसे आरम्भ करके आपकी तटस्था शक्तिकी वृत्तियाँ—हम जीव अपने कर्मफलका भोग करते हुए आपकी दृष्टिसे जी रहे हैं, किन्तु दर्शन तो आज ही हुआ है॥ ४४॥

यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया।

सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते॥ ४५॥

सोया हुआ व्यक्ति जिस प्रकार मन-ही-मन अविद्या द्वारा स्वप्न रचित लोककी सृष्टिमें प्रवेशकर तद्-तद् वस्तुओंको (नगर, ग्रामादि को) देखता है, उसी प्रकार आप सृष्टिके आरम्भसे आज तक हमें देखते रहे हैं, पर हमें तो आपके अनुभवकी गन्ध भी नहीं है। आज आप कृपा करके हमें साक्षात् दर्शन दे रहे हैं॥ ४५॥

शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाभिवन्दताम्।

नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम्॥ ४६॥

हे भगवन्! आप उन्हींके हृदयमें प्रकाशित होते हैं, जो निरन्तर आपका श्रवण, कीर्तन, अर्चन एवं वन्दन करते हैं, एक-दूसरेके साथ आपकी लीला-कथाओंकी चर्चामें निमग्न रहते हैं और मत्सरादि मालिन्यसे रहित निर्मल अन्तःकरणवाले हैं॥ ४६॥

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम्।

आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७॥

आप समस्त जीवोंके हृदयमें विराजमान रहते हैं, किन्तु कर्मोंमें उलझे चित्तवाले पुरुषोंकी अहङ्कार आदि चित्तवृत्तियोंसे आप ग्राह्य (अनुभूत) नहीं हो सकते, बल्कि बहुत दूर ही रहते हैं। श्रवण, कीर्तनादि आपके गुणगानसे जिसका चित्त सुसंस्कृत एवं शुद्ध हो गया है—आप उनके ही हृदयोंमें सदा विराजमान रहते हैं ॥ ४७ ॥

नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने

अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ।

सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे

स्वमाययासंवृतरुद्धदृष्टये

॥ ४८ ॥

हे प्रभो! आप देहादि अहङ्कारसे रहित—अध्यात्मविद् पुरुषोंके लिए परमात्म-स्वरूपमें मोक्षप्रद हैं, किन्तु देहादि अहङ्कारसे युक्त अनात्म अर्थात् बद्ध मनुष्योंके लिए मृत्युका (जन्म-मृत्युरूप संसारका) विधान करते हैं। आप अभक्तोंके लिए विराट्-रूपा प्राकृती मूर्ति हैं अर्थात् विराट् रूपमें प्रकट होते हैं तथा भक्तोंके लिए अहैतुक सच्चिदानन्दमयी अप्राकृती मूर्ति युक्त हैं अर्थात् भक्तोंके लिए साक्षात् श्रीविग्रहरूपमें प्रकट होते हैं। इस प्रकार आप दोनों ही प्रकारकी मूर्तियोंसे युक्त हैं। आपने अपनी माया द्वारा निज दृष्टिको अप्रतिहत (अबाधित) कर रखा है, वह आपपर पर्दा नहीं डाल सकती, किन्तु उसने दूसरोंकी (निराकार एवं निर्विशेषवादियोंकी) दृष्टिको ढक रखा है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४८ ॥

स त्वं शाधि स्वभृत्यान् नः किं देव करवाम हे।

एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥ ४९ ॥

हे स्वयंप्रकाश प्रभो! हम आपके सेवक हैं। हम आपकी प्रसन्नताके लिए क्या करें? आप इसकी शिक्षा हमें प्रदान करें। आप जैसे ही मानवोंकी दृष्टिके सम्मुख होते हैं, उसी समय उनके सांसारिक कष्टोंका अन्त हो जाता है ॥ ४९ ॥

श्रीशुक उवाच—

तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान् प्रणतार्तिहा।

गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह॥५०॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण शरणागतोंके दुःखोंको हरनेवाले हैं। जब भगवान्ने श्रुतदेवके इन वचनोंको सुना, तो वे मुक्तकण्ठसे हँसने लगे। उन्होंने श्रुतदेवका हाथ अपने हाथोंमें लिया और उन्हें सख्यरसमें सराबोरकर मुसकराते हुए कहने लगे। मेरे तत्त्वको तुम जानते हो और तुम्हारे तत्त्वको मैं जानता हूँ। अतएव मैं आपको और क्या उपदेश दूँ?॥५०॥

श्रीभगवानुवाच—

ब्रह्मंस्तेऽनुग्राहार्थाय सम्प्राप्तान् विद्ध्यमून् मुनीन्।

सञ्चरन्ति मया लोकान् पुनन्तः पादरेणुभिः॥५१॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे प्रिय द्विजवर! ये बड़े-बड़े मुनिगण अपनी चरण-धूलि द्वारा त्रिभुवनको पवित्र करते हुए मेरे साथ भ्रमण कर रहे हैं। अब ये तुमपर अनुग्रह करनेके लिए ही यहाँ पधारे हैं। ऐसा समझो॥५१॥

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः।

शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया॥५२॥

देवता, पुण्यक्षेत्र एवं गङ्गादि तीर्थ अर्चन, दर्शन एवं स्पर्शसे धीरे-धीरे अर्थात् बहुत समय बाद अपने सेवकोंको पवित्र करते हैं और उनकी वह कृपा भी उन्हें पूज्यतम सन्तोंकी शुभदृष्टिसे ही प्राप्त होती है, किन्तु इन ऋषि-मुनियोंका तो दर्शन ही समस्त मानव-जातिको पवित्र कर देता है और इनका विचरण भी तीर्थोंको पवित्र करनेकी इच्छासे होता है॥५२॥

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह।

तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः॥५३॥

ब्राह्मण शौक्रादि दो जन्मोंके कारण जन्मसे ही इस लोकमें समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ है। यदि वह ब्राह्मण तपस्या, ज्ञान, तुष्टि, मेरी उपासना—मेरी भक्तिसे युक्त हो, तो इस विषयमें कहना ही क्या है? ॥ ५३ ॥

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम्।

सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥

श्रुतदेव! मुझे अपना यह चतुर्भुजरूप ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं है, क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय हैं और मैं भी सर्वदेवमय होनेके कारण सर्वेश्वर हूँ। मेरा स्वरूप उनके द्वारा ही निर्णीत हुआ है ॥ ५४ ॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः।

गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥

प्रतिमा आदि (अर्चाविग्रह) में ही पूज्य बुद्धि रखनेवाले असूयाग्रस्त एवं दुर्मतिपरायण विप्र—तत्त्वको समझ नहीं पाते और मेरे भक्त तथा मेरे निवास—स्वरूप मुझसे अभिन्न गुरुओं एवं ब्राह्मणोंका अपमान करते हैं ॥ ५५ ॥

चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः।

मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥

मेरा साक्षात्कार (अनुभव) करनेके कारण ब्राह्मण (श्रीनारदादि) सदा—सर्वदा यह जानते हैं कि यह चराचर विश्व एवं उसका मूल कारणरूपी महत्-तत्त्व आदि सब मेरे ईक्षणसे विस्तार प्राप्त करनेके कारण मेरे ही रूप हैं। मेरा ईक्षण ही विश्वका कारण है ॥ ५६ ॥

तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान् ब्रह्मन् मच्छ्रद्धयार्चय।

एवञ्चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥

हे विप्रवर! तुम जिस प्रकार श्रद्धाके साथ मेरी पूजा करते हो, उसी श्रद्धाके साथ तुम इन ब्रह्मर्षियोंकी भी अर्चना-पूजा करो। उनकी पूजा होनेसे साक्षात् मेरी भी पूजा हो जाती है, अन्यथा प्रभूत वैभवसे (बहुमूल्य सामग्रियोंसे) भी मेरी पूजा सिद्ध नहीं होती॥ ५७ ॥

श्रीशुक उवाच—

स इत्थं प्रभुनादिष्टः सहकृष्णान् द्विजोत्तमान्।

आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम्॥ ५८ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! अपने प्रभु श्रीकृष्णके आदेशके अनुसार श्रुतदेव एवं बहुलाश्व दोनोंने ही ऐकान्तिक भक्तिके द्वारा श्रीकृष्णके साथ ऋषि-मुनियोंकी भी ऐकान्तिक भावसे आराधना करके सद्गतिको प्राप्त किया॥ ५८ ॥

एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान्।

उषित्वादिश्य सन्मार्ग पुनर्द्वारवतीमगात्॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीश्रुतदेवानुग्रहो नाम

षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

हे राजन्! जैसे भक्तिमान् भक्त भगवान्की भक्ति करते हैं, वैसे ही भगवान् भी भक्तोंकी भक्ति करते हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण मिथिलापुरीमें अपने दोनों भक्तोंके घरोंमें कुछ दिन रहे और साधु पुरुषोंके मार्गका उपदेश प्रदान करके पुनः द्वारका लौट आये॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके छियासीवें अध्यायका

श्लोकानुवाद समाप्त।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

श्रीनारायण-नारद-संवादमें श्रुति-स्तव (वेद-स्तुति)

श्रीपरीक्षिदुवाच—

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ।

कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे ॥ १ ॥

राजा परीक्षितने कहा—हे मुनिवर ! ब्रह्म-वस्तु कार्यकारणात्मक इस जगत् एवं तीनों गुणोंसे (सत्त्व, रज एवं तमसे) अतीत है। अतः मन, वाणी आदि किसी भी प्रकारसे उसका निर्देश नहीं किया जा सकता। इसलिए त्रिगुणविषयक वेदवाक्य अभिधावृत्ति (साक्षात् रूपसे) द्वारा किस प्रकारसे उस ब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन कर सकते हैं, यह बतलाइये।

पूर्व अध्यायके अन्तमें कहा गया था कि भगवान् सन्मार्गका उपदेश करके द्वारका चले गये। इससे स्पष्ट होता है कि साधु भक्तोंका पथ भगवत्-विषयक भक्तियोग है। ज्ञानी साधुओंका पथ ब्रह्म-विषयक ज्ञानयोग है, किन्तु त्रिगुणात्मक श्रुतियों द्वारा परब्रह्मका प्रतिपादन किस प्रकार सम्भव है? वेद जाति, द्रव्य, क्रिया एवं गुणका वर्णन करते हैं, ब्रह्म तो निर्गुण हैं, अतः गुणोंका वर्णन करनेवाले वेद-वाक्य निर्गुण एवं अनिर्देश्य ब्रह्मका अभिधादि वृत्तियोंसे किस प्रकार निष्पादन कर सकते हैं? ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच—

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः ।

मात्रार्थञ्च भवार्थञ्च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥ २ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित ! जगदीश्वरने जीवोंके लिए बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणरूप उपाधियोंकी सृष्टि की है, जिससे वे रूप-रसादि विषयोंको ग्रहणकर इन्द्रिय-तृप्ति कर सकें, उत्कृष्ट जन्म प्राप्तिके लिए उपयोगी कर्मोंका आचरण कर सकें,

पारलौकिक सुख-भोग प्राप्त कर सकें और मुक्ति-लाभ कर सकें।

(इस प्रकार जीवकी उत्तरोत्तर उच्च अवस्थाका वर्णन करते हुए स्पष्ट करना चाहते हैं कि बद्ध जीवोंके लिए बुद्धि आदिका सृजन करनेवालेको निर्गुण अथवा निर्विशेष कैसे कहा जा सकता है?) ॥ २ ॥

सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्व्वेषां पूर्व्वजैर्धृता।

श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिञ्चनः ॥ ३ ॥

इस ब्रह्म-विषयिणी उपनिषद् विद्याको नारदादि मुनियोंसे भी पहले सनकादि ब्रह्मर्षियोंने अपने हृदयमें धारण किया था। हम उसी सनातनी विद्याका अब मात्र प्रकाश कर रहे हैं। जो व्यक्ति कुतर्क-बुद्धिसे (वितण्डासे) रहित होकर श्रद्धायुक्त चित्तसे श्रवण-कीर्तनादि द्वारा इस विद्याको धारण करते हैं, वे देहादि समस्त उपाधियोंसे (अनात्म पदार्थोंसे) रहित होकर परम-पदको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम्।

नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥

इस विषयमें मैं तुम्हारे लिए नारायण ऋषि और देवर्षि नारदके संवादरूपमें नारायण ऋषि द्वारा वर्णित प्राचीन इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

एकदा नारदो लोकान् पर्य्यटन् भगवत्प्रियः।

सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥

एक बार भगवद्-भक्त देवर्षि नारद तीनों लोकोंमें भ्रमण करते-करते सनातन ऋषि नारायणके दर्शन करनेके लिए उनके बदरिकाश्रममें पहुँचे ॥ ५ ॥

यो वै भारतवर्षेऽस्मिन् क्षेमाय स्वस्तये नृणाम्।

धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादस्थितस्तपः ॥ ६ ॥

नारायण ऋषि इस कर्मक्षेत्र भारतवर्षमें मनुष्योंके लौकिक मङ्गल एवं पारलौकिक स्वस्ति (कल्याण) के लिए कल्पके प्रारम्भसे ही वर्णाश्रम धर्म, ब्रह्म-ज्ञान, भगवत्-निष्ठा और आत्म-संयमके साथ आज भी महान तपस्या करते हुए आदर्शरूपमें स्थित हैं ॥ ६ ॥

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ।

परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरुद्वह ॥ ७ ॥

हे कुरुवंशधर ! नारद उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ कलाप ग्रामके रहनेवाले ऋषियोंसे परिवेष्टित नारायण ऋषि विराजमान थे। नारदने उन्हें प्रणाम किया और तुमने जो मुझसे पूछा है, यही प्रश्न बड़ी नम्रतासे उन्होंने नारायण ऋषिसे पूछा था ॥ ७ ॥

तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ।

यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥

जनलोक निवासियोंमें पहले वेदोंके तात्पर्यरूपमें ब्रह्म-विषयक विचार-मन्थन हुआ था। उस सभामें भगवान् नारायण ऋषिने ब्रह्मके स्वरूपके सम्बन्धमें जो बतलाया था, उन्हीं विचारोंको वे उन ऋषियोंकी उपस्थितिमें नारदसे कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

स्वयम्भुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत् पुरा ।

तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥

नारायण ऋषिने कहा—हे ब्रह्मा—सुत नारद ! प्राचीन कालकी बात है, ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक) ब्रह्मचारी—ब्रह्माके मानसपुत्र जनलोक निवासी सनकादि मुनियोंका एक ब्रह्मसत्र हुआ था, जिसमें ब्रह्मके स्वरूपके विषयमें विचार-विवेचन हुआ था ॥ ९ ॥

श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ।

ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ।

तत्र हायमभूत् प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥ १० ॥

प्रलयके समय श्रुतियाँ जहाँ मौनरूपसे अवस्थित रहती हैं, वहीं श्वेतद्वीप अधिपति मेरी अनिरुद्धमूर्तिके (क्षीरोदकशायी विष्णुके) दर्शन करनेकी इच्छासे तुम श्वेतद्वीप चले गये थे। वहाँ जन-लोकमें परब्रह्म-विषयक गोष्ठीका बड़े उत्साहके साथ आरम्भ हुआ था। इस समय तुम जो मुझसे पूछ रहे हो, वहाँ भी इसी विषयमें प्रश्न किये गये थे॥ १० ॥

तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः ।

अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे॥ ११ ॥

सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चारों भाइयोंका एवं जनलोकके सभी मुनियोंका शास्त्र-ज्ञान, वेदाध्ययन, तपस्या और शील-स्वभाव सभी समान थे। वे शत्रु-मित्रके प्रति उदासीन और सभीके प्रति समभावसे युक्त थे। उनमेंसे प्रत्येक ही प्रवचन करनेमें पारङ्गत था। तब भी उन्होंने सनन्दनको ही वक्ता (व्याख्याकर्ता) बना लिया और अन्य सभी सुननेकी अभिलाषासे उत्सुक होकर बैठ गये॥ ११ ॥

श्रीसनन्दन उवाच—

स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः।

तदन्ते बोधयाज्वक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम्॥ १२ ॥

यथा शयानं सम्राजं वन्दिनस्तत्पराक्रमैः।

प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः॥ १३ ॥

श्रीसनन्दनने कहा—हे मुनियो! प्रातःकाल होनेपर सम्राट्के अनुजीवी बन्दीजन (दरबारी कवि) उसके समीप आकर जिस प्रकार उसके सुयशपरक एवं पराक्रमसूचक कार्योंका उल्लेख करते हुए स्तुति गान करके उसे जगाते हैं, उसी प्रकार प्रलयके समय परमेश्वर भी स्वरचित ब्रह्माण्डको निज योगबलसे अपनेमें लीन करके सोये-से रहते हैं, उनकी शक्तियाँ भी उस समय सुप्त रहती हैं। प्रलयके अन्तमें जब अगली सृष्टिका समय आता है,

तब उनके प्रथम निःश्वाससे प्रकट श्रुतियाँ उनके माहात्म्य-प्रतिपादक वचनोंके द्वारा उन्हें जगाती हैं ॥ १२-१३ ॥

श्रीश्रुतय ऊचुः—

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥ १४ ॥

श्रुतियोंने कहा—जिस प्राणमयी मायाके द्वारा सत्त्व-रज-तमोगुण दोषके कारण जीवोंके शुद्ध-स्वरूपका आच्छादन हो जाता है, आप उस अजाका (मायाका) विनाश कीजिये—आपकी जय हो, जय हो! आप अपनी शक्तिसे ही मायातीत समस्त ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण हैं—आप इस मायाको दूर कीजिये। आप ही जगत्के समस्त चर तथा अचर प्राणियोंकी शक्तिको जगानेवाले हैं। जब आप अपनी शक्तियोंके साथ विशाल चित्-जगत्में लीला करते हैं और जब किसी कारणवश अपनी छायाशक्ति मायाके प्रति ईक्षण करके उससे स्वयं निर्लिप्त रहकर सृष्टि आदि लीला करते हैं—हम श्रुतियाँ आपकी इन दोनों प्रकारकी लीलाओंका प्रतिपादन करती हैं (जैसे—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वेदाश्च प्रहिणोति, तस्मै य आत्मनि तिष्ठन्, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, ब्रह्मज्योतिः सनातम्, ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहं) ॥ १४ ॥

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया
यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात्।
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥ १५ ॥

हे प्रभो। घट, शराव (मिट्टीका प्याला) आदि सभी विकृत पदार्थोंकी उत्पत्ति मिट्टीसे होती है, और अन्तमें वे मिट्टीमें ही मिल जाते हैं, परन्तु मिट्टी अविकृत तथा अपरिवर्तनशील रहती है, उसी प्रकार ब्रह्मवस्तु भी अविकृत है—यद्यपि उससे सम्पूर्ण

विश्वकी उत्पत्ति एवं प्रलयादि होते हैं तो भी सभी कालों और स्थितियोंमें एकमात्र वह ब्रह्मवस्तु (आप) अवशिष्ट रहती है। आप निर्विकार हैं, इसलिए यह जगत् आपमें उत्पन्न नहीं, प्रतीत है। यही कारण है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने समस्त मनोवाक्यचरित (विचार-वचन-कर्म) अर्थात् मन्त्रोंका तात्पर्य आपमें ही निहित किया है और इन्द्र-वरुणादि नामोंको आपके ही नामोंके रूपमें निर्णीत किया है। मनुष्य मिट्टी, पत्थर आदि जहाँ भी अपना पैर रखे—वह पृथ्वीपर ही होगा, क्योंकि मूल रूपमें वे सब पृथ्वी-स्वरूप ही हैं। उसी प्रकार वेदोंके किसी-किसी स्थलपर विकारी देवताओंका माहात्म्य वर्णित तो हुआ है, पर वस्तुतः वह माहात्म्य सर्वकारणकारणस्वरूप आपका ही है ॥ १५ ॥

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमल-

क्षपणकथामृताद्धिमवगाह्य तपांसि जहुः।

किमुत पुनः स्वधामविधूताशयकालगुणाः

परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥ १६ ॥

हे त्रिगुणात्मक माया-मृगीको नचानेवाले प्रभो! विवेकी महापुरुषोंने पहले कहे गये कारणोंके आधारपर आपके अखिल-लोक-पापविनाशन-कीर्ति-सुधाके समुद्रमें गहन डुबकी लगाकर सम्पूर्ण पाप-सन्तापोंसे छुटकारा पाया है, इसलिए हे परमपुरुष! जो लोग अपनी स्वरूप-स्फूर्तिके (आत्म-ज्ञानके) कारण अन्तःकरणके रागादि धर्मोंका और शरीरके जरा-व्याधि आदि कालकृत धर्मोंका परित्याग करके अखण्ड आनन्द-स्वरूप आपकी सेवा करते हैं—वे सम्पूर्ण पाप-ताप एवं क्लेशोंसे मुक्त हो जायेंगे—इसमें कहना ही क्या है? ॥ १६ ॥

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा

महदहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः।

पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः

सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥ १७ ॥

हे स्वामिन्! आपके प्रति भक्तियुक्त होनेपर ही प्राणियोंका जीवन धारण करना सार्थक होता है, अन्यथा वे लुहारकी धोंकनीकी भाँति व्यर्थ ही साँस ले रहे हैं। हे देव! महत्-तत्त्व, अहङ्कार आदि तत्त्वोंके अभिमानी देवताओंने आपके प्रवेशसे ही सामर्थ्य प्राप्तकर समष्टि-व्यष्टिरूप (ब्रह्माण्ड-व्यक्तिगत) देहोंकी सृष्टि की है। आप ही अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पञ्चकोशोंमें प्रवेशकर उन-उन स्वरूपोंमें परिलक्षित होते हैं, तथा सर्वान्तमें (समस्त प्राधिकृत—‘रसो वै सः’ अर्थात् वे रसस्वरूप और रसमय हैं—जीव इस रसस्वरूपकी अनुभूति कर परम आनन्दमय हो जाता है) पञ्चकोशोंके आश्रय आप ‘पुच्छ’—आनन्दमयरूपमें उपदिष्ट हुए हैं। आप स्वरूपतः स्थूल-सूक्ष्म अन्नमय सभी पदार्थोंसे अतीत हैं तथा पञ्चकोशोंमें ‘नेति, नेति’ के द्वारा इन सबका निषेध हो जानेपर एकमात्र आप ही अवशिष्ट रहते हैं—इस प्रकार आप परम सत्य, परम उत्कृष्ट, घनीभूत आनन्दस्वरूप हैं तथा इसी सत्य-पदार्थरूपमें अर्थात् अप्रच्युत स्वभावके रूपमें आपका गान होता है॥१७॥

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः
परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।
तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं
पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे॥१८॥

हे अनन्त! हे परमाराध्य भगवन्! ऋषि-मुनियोंने बहुत-से मार्ग बतलाये हैं। उनमें जो स्थूल दृष्टिवाले हैं, वे अपरिच्छिन्न ब्रह्म अथवा उदरस्थ मणिपुरचक्रमें स्थित ब्रह्म (अग्नि-वैश्वानर) की उपासना करते हैं, आरुणि सम्प्रदायवाले सम्पूर्ण (१०१) नाड़ियोंके मार्गस्वरूप हृदयमें स्थित (ज्ञानशक्तिदायक) परम सूक्ष्म वस्तु—दहर नामक हृदयावच्छिन्न ब्रह्मकी उपासना करते हैं। इस हृदयमें आपकी उपलब्धिका स्थान सुषुम्ना नाड़ी है, जो परम-ज्योतिर्मय ब्रह्मरन्ध्र (मस्तककी ओर) तक गयी है। इस स्थानको

प्राप्त कर लेनेपर मनुष्योंको मृत्युमुखमें (संसारमें) पतित नहीं होना पड़ता ॥ १८ ॥

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशात्रिव हेतुतया
तरतमतश्चकास्स्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः ।

अथ वितथास्वमूष्णवितथं तव धाम समं

विरजधियोऽनुयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ १९ ॥

हे सर्वान्तर्यामिन्! आप समस्त वस्तुओंके उपादान कारण हैं, इसलिए समस्त पदार्थोंमें आप सृष्टिकालसे ही विद्यमान हैं। किसी भी वस्तुमें आपका मुख्यरूपसे नूतन प्रवेश सम्भव नहीं है, तथापि आप स्व-शक्तिके द्वारा रचित ब्रह्मादिसे स्थावर पर्यन्त नानाविध योनियोंमें प्रवेश करके निज-सृष्ट योनियोंका अनुकरण करते हैं। जिस प्रकार अग्नि स्वयंमें न्यून-अधिक रूपोंसे रहित होनेपर भी दाह्य काष्ठके आकारके अनुसार न्यूनाधिक रूपोंमें प्रतीत होती है, उसी प्रकार आप स्वयं स्वरूपतः न्यून-अधिक रूपोंसे रहित होनेपर भी तद्-तद् योनिके अनुरूप विविध आकारोंमें प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि विशुद्धसत्त्व, निर्मलचित्त एवं लोकव्यवहारातीत—अर्थात् समस्त विषयोंमें निर्वेदको प्राप्त विवेकी ज्ञानी पुरुष इन सभी उच्च (देवता), मध्यम (मनुष्य) एवं निम्न (पशु) आदि योनियोंमें विद्यमान अविनश्वर, सर्वत्र समभाव एवं समत्व बुद्धिसे युक्त, नित्य, निर्विकार, अव्यय तथा एकरस आपको ही सत्य जानकर आपके स्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं

तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतांऽशकृतम् ।

इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं

भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥

हे प्रभो! सभी शास्त्रोंने दिग्दर्शन किया है कि जीव जिन मनुष्यादि विभिन्न शरीरोंमें रहते हैं, वे सभी उसके कर्मों द्वारा निर्मित होते हैं, परन्तु जीवात्मा इन देहोंमें बाह्य एवं आन्तर

सम्बन्धादिसे अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म आवरणसे रहित है। आप अखिल शक्तिधर एवं परिपूर्ण स्वरूप हैं और जीव आपका ही कार्य तथा अंश (चित्कण अथवा विभिन्नांश) है। जीवका स्वरूप देहादिसे विलक्षण (पृथक्) एवं परमात्मासे भिन्नाभिन्न रूपमें है। मनीषीगण इस प्रकार जीव-तत्त्वकी आलोचना करते हुए बड़े विश्वासके साथ आपके उन श्रीचरणकमलोंकी उपासना करते हैं, जो समस्त वैदिक-कर्मोंके समर्पण-स्थल, जीवके संसार-भयके निवर्तक एवं सकल पुरुषार्थके साधक हैं ॥ २० ॥

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्मतनो-

श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः ।

न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते

चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥

हे ईश्वर! परमात्म-तत्त्वका ज्ञान अत्यन्त कठिन है। उसी आत्म-तत्त्वको (अपने निज-स्वरूपको) ज्ञापित करनेके लिए आप विविध प्रकारके अवतार ग्रहण (मूर्तियोंका प्राकट्य) करते हैं—जो आनन्दके अथाह सागर हैं। आपके इन अवतारोंके लीला-कथारूप महामृत-समुद्रमें जो लोग अवगाहन करते हैं (जो आपके लीला-कथाके श्रवण-मननादिमें अभिनिविष्ट रहते हैं), उन लोगोंकी समस्त सांसारिक थकावट (अन्य साधनादिकी चेष्टा) दूर हो जाती है, और वे भगवत्-सेवारूप परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं। ये लोग आपके चरणकमलोंमें हंसकी भाँति विचरण करनेवाले भक्तोंका सङ्ग प्राप्त करके गृहादिका परित्याग कर देते हैं, इन महापुरुषोंको मुक्तिपदकी भी कामना नहीं रहती, तब धर्म, अर्थ, काम—इस त्रिवर्गके विषयमें क्या कहा जाय ॥ २१ ॥

त्वदनुपथं

कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियव-

च्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ।

न बत रमन्त्यहो असदुपासनयात्मह्नो

यदनुशया

भ्रमन्त्युरुभये

कुशरीरभृतः ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! पृथ्वीमें लीन होनेवाली यह नश्वर देह जब आपके भक्तिमार्गकी अनुगामिनी और आपकी सेवाके लिए उपयोगी साधन बन जाती है, तब आत्मा, सुहृद एवं प्रियके समान स्वाधीनतापूर्वक आचरण करते हुए भजन आदिमें प्रवृत्त होती है। आप जीवोंके प्रिय, हितकारी, निरन्तर कृपा प्रदान करनेके लिए उन्मुख रहते हैं, तो भी ये जीव सख्यादि भावोंसे आपकी उपासना नहीं करते। आत्मघाती ये जीव असत्-उपासना (आपकी माया द्वारा रचित ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंकी उपासना) में मतवाले होकर अपने शरीर और शरीरसे सम्बन्धित पदार्थोंमें रमे रहते हैं, और निम्नसे निम्नतर (नीच-से-नीच) शूकर, राक्षस आदि देहोंको धारणकर महाभयोंसे परिपूर्ण इस जन्म-मरण-प्रवाहरूप भयानक संसारमें भटकते रहते हैं॥ २२॥

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि य-

न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।

स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो

वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः॥ २३॥

हे प्रभो ! चिन्तनशील मुनियोंने प्राण, मन, इन्द्रिय आदिको वशमें (संयममें) करके दृढ़ भक्तियोगसे युक्त होकर हृदयमें जिस तत्त्वकी उपासना करके जिस परम सत्यको प्राप्त किया है, शत्रुओंने (पौण्ड्रक, शिशुपाल आदिने) भी आपके नित्य-निरन्तर स्मरणके कारण उसी तत्त्वको प्राप्त किया है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। हे देव ! जो रमणियाँ (ब्रजाङ्गनाएँ) सर्पराजके शरीरके समान आपके विशाल भुजदण्डोंके प्रति लालसाके कारण आपको परिच्छिन्न मानती हैं और आपकी उन सुकुमार भुजाओंके प्रति काम-भावसे आसक्त रहती हैं, वे जिस परम पदको प्राप्त करती हैं, वही परम पद हम श्रुतियोंको (श्रुति अभिमानी देवताओंको) भी उन गोप-रमणियोंका अनुगमन करनेसे प्राप्त है। तात्पर्य यह है कि अपरिच्छिन्न दृष्टिसे युक्त हम भी उन गोपियोंकी तरह आपकी कृपा-पात्री हैं। आपके चरणकमलोंको

सुष्ठुरूपसे धारण कर हम उनके मकरन्दामृतका पान करती हैं। समदर्शिताके कारण आपमें परिच्छिन्न या अपरिच्छिन्न दृष्टिका कोई भेद नहीं है। सभी अधिकारी उपासक आपके निकट समान हैं (आपका ध्यान किसी भी रूपमें क्यों न हो, वह संसारकी निवृत्ति कराता ही है, साथ ही आपको भी प्राप्त कराता है। आपकी प्राप्तिका एवं मोक्षानन्दका अधिकार सभीको समान है ॥ २३ ॥

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं
यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये।
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः
किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥ २४ ॥

हे भगवन्! आपसे ब्रह्मा और ब्रह्माजीसे निवृत्तिपरायण (आध्यात्मिक) सनकादि और प्रवृत्तिपरायण (आधिदैविक) मरीचि आदि छोटे-बड़े देवता उत्पन्न हुए हैं ऐसे पूर्वसिद्ध अर्थात् सृष्टिके पूर्व ही स्वतःसिद्ध अनादि, अनन्त, सर्वेश्वर, देवाधिदेव, सनातन पुरुषोत्तम आपको इस जगत्में अभी उत्पन्न होनेवाले तथा परवर्तीकालमें विनष्ट होनेवाले और बादमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य किस प्रकार जान सकते हैं? हे देव! आप जिस समय समस्त सृष्ट पदार्थोंका उपसंहारकर योगनिद्राका आश्रय लेते हैं, उस समय आकाशादि स्थूल पदार्थ, महत्-तत्त्वादि सूक्ष्म पदार्थ और इन दोनोंके द्वारा निर्मित स्थूलशरीर, काल-वैषम्य, वेग, इन्द्रिय, प्राण एवं उनके ज्ञापक पदार्थ अर्थात् शास्त्र—कुछ भी नहीं रहते। जीवोंके लिए किसी भी प्रकारके ज्ञानका साधन नहीं रहता। कालक्रमसे मलिनचित्त जीव तो आपको जान भी नहीं सकते। ऐसी अवस्थामें आपके श्रीचरणोंमें श्रवण-कीर्तनरूप भक्ति ही वरेण्य है ॥ २४ ॥

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां
विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः।

त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥

हे देव ! वैशेषिकादि मतावलम्बी परमाणुओंसे जगत्की उत्पत्तिको स्वीकार करते हैं (परन्तु परमाणुओंके संयोगसे पूर्व पाप तथा पुण्य अर्जित नहीं किये जा सकते। परमाणुओंके आदि संयोगकी विवेचना जीवोंके शेष कर्मफलके प्रतिफलके रूपमें नहीं की जा सकती। ये कर्मके फल जीवके स्वयं होते हैं और वे दूसरे जीवमें स्थानान्तरित नहीं हो सकते, तब निष्क्रिय परमाणुओंकी बात ही क्या?) पातञ्जलादि योगादि असत् विधियोंके द्वारा ब्रह्मत्वकी प्राप्तिकी धारणा करते हैं (इस दर्शनमें भक्तिके अनिवार्य पक्ष—परम पुरुषके प्रति आत्मसमर्पणकी उपेक्षा की गयी है, बिना श्रद्धाके आसन, ध्यान, धारणा सब व्यर्थ होते हैं), गौतम ऋषि आदि नैयायिकगण इक्कीस प्रकारके दुःखोंके नाशको ही 'मुक्ति' कहते हैं (मोक्षका मूल साधन है—भक्ति, भगवान्की अर्चना मुक्तावस्थामें भी की जाती है। नैयायिकोंकी यह धारणा सर्वथा गलत है कि मुक्तावस्थामें कोई चेतना नहीं रहती, जब कि जीवात्माको सदैव ज्ञाता कहा गया है), कपिल आदि सांख्यकारगण चेतनाको आत्मासे तथा सक्रियताको प्रकृतिसे जोड़ते हुए आत्मवस्तुमें भेद करते हैं (जब कि जीव कर्त्ता है न कि प्रकृतिका गुण। शास्त्रोंके आदेशोंका पालन चेतन कर्त्ताके बिना सम्भव नहीं। अचेतन गुणमें सक्रियताकी प्रवृत्तिको जाग्रत नहीं किया जा सकता)। और जैमिनि आदि मीमांसक कर्मफलको (व्यवहारको) ही ईश्वर मानते हैं तथा कर्मफलसे उत्पन्न स्वर्गादिको ही सत्य और परमपुरुषार्थ मानते हैं (जब कि शास्त्रके वचन हैं कि मुक्तात्मा इस जगत्में नहीं लौटते, भक्तिसे समस्त कर्मफल नष्ट हो चुके होते हैं)—अतः इन सबकी ये धारणाएँ भ्रान्त ही हैं, तत्त्वदृष्टिपरक नहीं। पुरुषको त्रिगुणमय मानकर उसमें जो भेद-भाव (सत्त्व, तम एवं रजोगुणके अनुसार भेद-भाव) रहता है, वह अज्ञानका ही विलास है और हे ईश ! आप अज्ञानसे

अतीत, अनासक्त एवं चिद्घनस्वरूप हैं—आपमें अज्ञानसे उत्पन्न भेद रह नहीं सकता ॥ २५ ॥

सदिव मनस्त्रिवृत् त्वयि विभात्यसदा मनुजात्

सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदः ।

न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया

स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयावसितम् ॥ २६ ॥

त्रिगुणात्मक यह जगत् वस्तुतः मनकी कल्पना मात्र एवं असत्-स्वरूप है, तब भी आपमें अधिष्ठित होनेके कारण यह मनुष्य पर्यन्त समस्त जीवोंको सत्यकी ही भाँति प्रतीत हो रहा है। आत्मतत्त्वज्ञ पण्डित भोक्ता-भोग्य-स्वरूप इस सम्पूर्ण विश्वको परमात्म-रूप सद्बस्तुका कार्य होनेके कारण सत् रूपमें देखते हैं, परन्तु परमात्म-सम्बन्धके बिना इसकी पृथक् सत्ताका ज्ञान नहीं करते, जिस प्रकार स्वर्णको चाहनेवाले व्यक्ति कुण्डलादि वस्तुओंका त्याग नहीं करते, क्योंकि वे स्वर्णके ही कार्य हैं, स्वर्णसे निर्मित हैं, अतः ग्रहण कर लेते हैं। इसीलिए यह निश्चित हुआ है कि आपके द्वारा रचित यह जगत् और इसमें अनुप्रविष्ट पुरुष या जीवात्मा एक प्रकारसे आपके ही स्वरूप हैं ॥ २६ ॥

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया

त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निःर्हतेः ।

परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तां-

स्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥ २७ ॥

जो लोग समस्त जीवोंके आश्रय-रूप आपको जानकर आपकी सेवा करते हैं, वे ही निःशङ्क होकर मृत्युके सिरपर पैर रखते हुए उसे जीत लेते हैं, परन्तु जो भक्तिसे शून्य हैं—वे कितने ही प्रकाण्ड पण्डित क्यों न हों—आप कर्मकाण्डीय स्वर्गादि फलश्रुतिपरक वचनोंके द्वारा उन लोगोंको पशुओंकी भाँति कर्ममार्गमें बाँध देते हैं। जो आपसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, वे ही स्वयंको और दूसरोंको पवित्र करते हैं, अन्य किसीमें यह सामर्थ्य नहीं है ॥ २७ ॥

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधर-
 स्तव बलिमुद्रहन्ति समदन्त्यजयानिमिषाः ।
 वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो
 विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ २८ ॥

हे प्रभो ! प्राकृत इन्द्रियोंके सम्पर्कसे रहित और स्वतन्त्र-ईश्वर होनेपर भी आप समस्त प्राणियोंकी सम्पूर्ण इन्द्रिय-शक्तिको परिचालित करते हैं। खण्ड राज्योंके अधिपति जिस प्रकार महामण्डलेश्वरको उपहार प्रदान करते हैं और स्वयं अपनी-अपनी प्रजा द्वारा दिये गये उपहारोंका भोग करते हैं, उसी प्रकार अजा (मायादि) सहित ब्रह्मादि सभी देवता विश्वकर्त्ता आपके उद्देश्यसे ही मनुष्योंके द्वारा दिये गये हव्य-कव्य आदि उपहारोंका भोग करते हैं और आपसे भयभीत होकर आपके द्वारा नियुक्त अपने-अपने अधिकारोचित कर्मोंको सम्पन्न कर आपका पूजन करते हैं ॥ २८ ॥

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो
 विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ।
 न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्-
 वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥

हे नित्यमुक्त ! हे मायासङ्गरहित ! आपके ईक्षण मात्रसे जब मायाके साथ आपकी क्रीड़ा होती है, तब चराचर जीवोंका आविर्भाव होता है, इसके साथ ही उनके निमित्त कारण एवं सुप्त कर्म भी जग जाते हैं। आप परम कारुणिक हैं। आकाशकी भाँति सर्वत्र समभावसे व्याप्त होनेके कारण आप आकाशके समान निर्लेप भी हैं। न आपका कोई अपना है, और न पराया। आपमें कोई वैषम्य नहीं है ॥ २९ ॥

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्व्वगता-
 स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा ।

अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तु भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥ ३० ॥

हे नित्यस्वरूप! अनन्त जीव यदि स्वरूपतः आपसे उत्पन्न न होकर नित्य एवं सर्वव्यापक होते, तो वे आपके द्वारा शासित (नियन्त्रित) नहीं हो सकते थे। आपसे उत्पन्न होनेपर ही उनका शासन एवं नियमन सम्भव है। आप अग्नि स्थानीय हैं और जीव आपसे विस्फुलिङ्गके (चिनगारीके) रूपमें उत्पन्न होते हैं। अतः आप उनके अपरित्यज्य कारण हैं, नियन्ता हैं और सर्वत्र अन्तर्यामीरूपमें समान भावसे अवस्थित हैं। आपका वह स्वरूप कैसा है, मत-वैषम्यके (एक मतके साथ दूसरे मतके विरोधके) कारण उसे जानना अत्यन्त कठिन है। जो लोग ऐसा समझते हैं कि मैंने जान लिया है, वे अज्ञानी हैं। उन्होंने आपको यथार्थ रूपमें न जानकर अपनी बुद्धिके विषयको ही जाना है, आप तो उससे परे हैं। बुद्धिकी भिन्नताके कारण ही भिन्न-भिन्न मति होती है; आपका स्वरूप समस्त मतवादोंसे परे है ॥ ३० ॥

न घटत उद्भवः प्रकृतिपुरुषयोरजयो-
रुभययुजा भवन्त्यसुभृतौ जलबुद्बुदवत्।
त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे
सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥ ३१ ॥

हे स्वामिन्! (स्वप्रकाश आनन्दात्म जीवकी अविद्याकृत अनर्थ-निवृत्ति मात्र ही उसकी मोक्ष-प्राप्ति है और उपाधिके द्वारा जन्म ही उसका जन्म है, स्वतः नहीं! इसलिए कह रहे हैं—) प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही जन्म एवं रूपके विकारोंसे रहित हैं। इसलिए वे दोनों जीवके रूपमें उत्पन्न नहीं हो सकते। केवल जल या केवल वायु द्वारा जिस प्रकार बुलबुलेकी सृष्टि नहीं होती, बल्कि उपादान कारण जल और निमित्त कारण वायुके संयोगसे वह उत्पन्न होता है। इसी प्रकार प्रकृति एवं पुरुष दोनोंके परस्पर संयोग (प्रकृतिमें पुरुषके ईक्षणके प्रभाव) से प्राणियोंकी (स्थूल-

शरीरोंकी) सृष्टि होती है—अतः जीवोंका जन्म वास्तव नहीं है, उपाधिका ग्रहण अथवा उपस्थित होना ही जीवोंका जन्म या उत्पत्ति है। जिस प्रकार मधु (शहद) में समस्त पुष्पोंका रस पृथक्-पृथक् प्रतीत न होकर (परिलक्षित अवस्थामें सामान्यरूपसे) लीन रहता है, उसी प्रकार सुषुप्ति एवं प्रलयकालमें जीव कारणात्मकरूपी आपमें लीन हो जाते हैं। (उस समय कार्य-उपाधिका केवलमात्र लय होता है अर्थात् वे उपाधिरहित होकर आपमें समा जाते हैं।) मुक्ति-कालमें कारणात्माका भी आत्यन्तिक लय होनेके कारण जीव निरुपाधिक आपमें उसी प्रकार लीन हो जाते हैं, जिस प्रकार समुद्रमें नदियाँ (मुक्तावस्थामें जीवका नित्य पृथक् अस्तित्व रहता है, जीव कभी ब्रह्म नहीं बन सकता॥ ३१॥

नृषु तव मायया भ्रमममीष्ववगत्य भृशं

त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्।

कथमनुवर्त्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः

सृजति मुहुस्त्रिनेमिरभवच्छरणेषु भयम्॥ ३२॥

विवेकी पुरुष इन जीवोंमें उत्तरोत्तर (श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर) योनियोंमें जन्म-ग्रहण करनेके कारण और आपकी मायाके प्रभावसे जीवोंको भ्रमित देखकर इस संसार-बन्धनसे कैसे छुटकारा मिले—उसके लिए आपके प्रति चित्तको निविष्ट करके उत्कट प्रेमाभक्ति करते हैं। शीत-ग्रीष्म-वर्षारूप तीन परिच्छेदोंसे (भागोंसे) युक्त संवत्सरात्मक काल आपकी भ्रू-भङ्गिमाका विलास मात्र है। जिन्होंने आपके चरणोंका आश्रय नहीं लिया है, भूत-भविष्य-वर्त्तमानसे युक्त वह त्रिनेमि काल ही उनके लिए पुनः-पुनः जन्म, मरण, रोग तथा नरक-यातना-रूप भय उत्पन्न करता है, आपके शरणागतोंको संसारका भय नहीं होता॥ ३२॥

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं

य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः।

व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं

वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ॥ ३३॥

हे अज ! जिन लोगोंने इन्द्रियों एवं प्राणोंका तो संयम कर लिया है, उनके लिए भी जिनका दमन करना सम्भव नहीं है— उस अति चञ्चल एवं उच्छृङ्खल मनरूपी तुरङ्गको (घोड़ेको) जो गुरु-चरणाश्रयके बिना दूसरे उपायोंसे संयत करनेका प्रयास करते हैं—वे विविध दुःखदायी उपायोंकी चेष्टा करते-करते विफल रहते हैं, उन्हें अति कष्ट उठाना पड़ता है और शत-शत विघ्नोंसे व्याकुल रहना पड़ता है। इस प्रकार गुरु-पदाश्रय किये बिना इस संसार-समुद्रमें वे केवल दुःखोंका उसी प्रकार भोग करते हैं, जिस प्रकार समुद्री-यात्रामें कर्णधारके बिना व्यापारी सैकड़ों बाधाओंको झेलता है ॥ ३३ ॥

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथै-

स्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे।

इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां

सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥

हे प्रभो ! आप सबके शरण्य, परमानन्दमय, परमात्मा हैं। आपके रहते हुए मनुष्योंको पुत्र, आत्मा, देह, स्त्री, धन, गृह, भूमि, रथ (वाहनादि), प्राण एवं प्रतिष्ठा आदिसे भला क्या प्रयोजन ! जो परमार्थ-तत्त्वसे अनभिज्ञ होकर मैथुन-रतिरूप मायाजन्य भ्रमपूर्ण सुखोंमें निमग्न रहते हैं, उन मनुष्योंको स्वभावतः ये विनाशी एवं सारहीन पदार्थ संसारमें किसी भी प्रकारसे यथार्थ आनन्द नहीं दे सकते ॥ ३४ ॥

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदा-

स्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः।

दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे

न पुरुरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥ ३५ ॥

हे देव ! (अतः वे बुद्धिमान पुरुष स्वजन, पुत्र, स्त्री और गृहादिको त्यागकर भजनके अनुकूल तीर्थोंमें रहते हैं।) आपके चरणकमलोंको हृदयमें धारण करनेके कारण जिनका चरण-धौत-जल

समस्त पापोंको विनष्ट कर देता है—ऐसे विगत-अहङ्कार मुनि भी पृथ्वीमें बहुत-से पुण्यतीर्थों, पुण्यक्षेत्रों (आपकी आविर्भाव एवं लीला-स्थलियों) की सेवा करते हैं। वहीं उनका महत् सङ्ग होता है। जिन्होंने केवल एक बार भी नित्य एवं सुखमय परमात्मारूपी आपके प्रति अपने चित्तको समर्पित कर दिया है, उन्हें पुनः उन गृह (घरों) की उलझनोंमें नहीं फँसना पड़ता, जो मनुष्योंके विवेक, वैराग्य, धैर्य, क्षमा और शान्ति आदि सारतत्त्वोंको हर लेती हैं ॥ ३५ ॥

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं
व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक्।
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया
भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥

हे देव! इस जगत्को सत्-वस्तुका कार्य अर्थात् सत्-वस्तुसे उत्पन्न होनेके कारण सद् कहा जाय तो यह सिद्धान्त तर्क द्वारा बाधित हो जाता है, क्योंकि सत्य—ऐन्द्रजालिक (जादूगर) के कार्यको ऐन्द्रजालिक विद्याके कारण मिथ्या ही देखा जाता है। अतः इस स्थानपर पूर्वोक्त सिद्धान्तका (सत्से सत् कार्यकी उत्पत्तिका) व्यभिचार (नियमका उल्लङ्घन) होता है। ऐन्द्रजालिक कार्य (जगत्) ऐन्द्रजालिक विद्याका (उपादानका) निमित्त कारण है; निमित्त कारणके स्थानपर पूर्वोक्त सिद्धान्तका व्यभिचार (भटकाव) हो सकता है, किन्तु उपादान कारणके (सत् पदार्थके) स्थानपर उस प्रकारसे व्यभिचार नहीं होता। अतः सत् पदार्थको जगत्का उपादान कारण कहा जाय तो वहाँ सिद्धान्तकी कोई हानि नहीं होती। तब वहाँ वक्तव्य यह है कि उपादान कारणके स्थानपर भी उक्त सिद्धान्तका व्यभिचार दिखायी देता है, जैसे मरीचिकामें मिथ्या जलकी प्रतीति होती है। यदि कहा जाय कि मरीचिकासे उत्पन्न (सूर्यकी प्रखर किरणोंमें), जलके देखे जानेसे अज्ञान ही कारण है, तो वहाँ मिथ्यात्व सिद्ध होता है—तो इसका

उत्तर यह है कि इस स्थानपर भी सत् पदार्थ ही जगत्का कारण होनेसे जगत्का मिथ्यात्व ही सिद्ध होता है। यदि कहो कि मरीचिकाके जलके स्थानपर कार्य-कारणका सारूप्य देखा जाता है, इसलिए वहाँ कार्य-कारण भाव स्वीकार किया जाता है, किन्तु यह जगत् विविध वैचित्र्य युक्त है—इसके सत्-वस्तुसे सर्वथा भिन्न होनेके कारण ही दोनोंके कार्य-कारण-भावको स्वीकार नहीं किया जा सकता। सोनेसे बने कुण्डल, मिट्टीसे उत्पन्न घट आदिके स्थानपर सर्वत्र उपादान कारण एवं कार्यका सारूप्य ही देखा जाता है, तो कहना यह है, कि जगत्का वैचित्र्य केवल अन्ध-परम्परा द्वारा कल्पित मात्र है, वास्तवमें कोई वैचित्र्य ही नहीं है। यदि कहा जाय कि अज्ञानी पुरुषोंके द्वारा अपनायी हुई इस काल्पनिक व्यवस्थामें पण्डितोंकी भी आसक्ति देखी जाती है, तो इसका उत्तर यह है कि कर्मफलको सत्य बतलानेवाली आपकी वाणीरूपा श्रुतियाँ (गौणी, लक्षणा रूप आदि वाक्य वृत्तियाँ) केवल उन्हीं लोगोंको भ्रममें डालती हैं, जिन्हें कर्ममें अतिशय श्रद्धा है। (जो मन्द बुद्धि कर्ममें जड़ हो रहे हैं और यह नहीं जानते कि इन वेद-वाणियोंका तात्पर्य कर्मफलकी सत्यता बतलानेमें नहीं, बल्कि उनकी प्रशंसा करके उन्हें कर्मोंमें लगानेमें है) ॥ ३६ ॥

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधना-

दनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे।

अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथै-

र्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः

॥ ३७ ॥

यह जगत् सृष्टिके पहले नहीं था, प्रलयके बाद भी नहीं रहेगा, इसलिए मध्यावधि अर्थात् वर्तमान समयमें जो केवल एकरस (अपरिवर्तनशील आनन्दरूप) आपमें मिथ्या ही विविध रूपसे प्रतीत हो रहा है, इसका अनुमान किया जा सकता है। इसलिए घटादि विकारी वस्तुएँ जिस प्रकार केवल नाम मात्रके ही

आधार पर मृत्तिकादिसे भिन्न हैं, जब कि वे वास्तवमें भिन्न नहीं हैं। आकाशादि कार्य वस्तुकी भी केवल नाममात्रकी पृथक् सत्ता प्रतीत होती है, वास्तवमें ब्रह्मसे (आपसे) अतिरिक्त कोई पृथक् सत्ता या सत्तावान् नहीं है। जो अज्ञानी हैं, केवल वे ही इस मनःकल्पित मिथ्या वस्तुको सत्यरूपमें मानते हैं ॥ ३७ ॥

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्
भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः।
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो
महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥ ३८ ॥

(संसारका मिथ्यात्व सिद्ध हो जानेपर जीव एवं ईश्वरका भेद प्रदर्शित करते हुए कहा जा रहा है) यह जीव मायासे मोहित होकर जब अविद्याको अपना लेता है, तब देह, इन्द्रियादि और गुणोंसे उत्पन्न वृत्तियोंको अपना मानकर उनके मोहमें फँस जाता है। उसके स्वाभाविक आनन्दादि गुण ढक जाते हैं और वह बार-बार जन्म-मृत्यु भोगता है। आप सदा-सर्वदा नित्य ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं। जिस प्रकार सर्प केंचुलका त्याग करता है, आप भी उसी प्रकार अविद्याकी उपेक्षा करके अपरिमित ऐश्वर्यके अधिकारी रूपमें अणिमादि आठ प्रकारकी विभूतियोंसे युक्त परम ऐश्वर्य पदपर विराजमान रहते हैं ॥ ३८ ॥

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा
दुरधिगमोऽसतां हृदिगतोऽस्मृतकण्ठमणिः।
असुतृप्योगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगव-
न्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥

हे भगवन्! आप यति-योगियोंके हृदयोंमें अन्तर्यामीरूपसे अवस्थित रहते हैं, परन्तु जब तक उनके हृदयसे काम-वासना जड़से निर्मूल नहीं हो जाती, तब तक आप उनके लिए उसी प्रकार दुष्प्राप्य रहते हैं, जिस प्रकार लोकमें कोई अपने गलेमें मणि पहने हुए हैं, परन्तु वह इस बातको भूलकर उसे इधर-उधर

ढूँढ़ता है और उसे दुष्प्राप्य मान लेता है। कपट-योगी मरण-धर्मको नहीं जानते और वे लोकाराधन (लोगोंसे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेका प्रयास) एवं धनार्जनादि क्लेश उठाते रहते हैं। आपके स्वरूपसे अवगत न होनेके कारण तथा अपने धर्मका उल्लङ्घन करनेके कारण इस समय तो भोग-वैभव सम्बन्धी भय-दुःख बना रहता है तथा परवर्तीकालमें अर्थात् मृत्युके बाद भी आपके द्वारा निर्धारित दण्ड अर्थात् नरक-प्राप्ति सम्बन्धी भय-दुःख बना रहता है ॥ ३९ ॥

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयो-
 गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृताञ्च गिरः।
 अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया
 श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ॥ ४० ॥

हे षडैश्वर्यशालिन्! जिनका चित्त आपमें निमग्न हो गया है, ऐसे मनुष्य कर्मफल प्रदाता आपके द्वारा रचित पुण्य एवं पाप कर्मोंके फलसे उदित होनेवाले शुभ-अशुभ, गुण-विगुणका चिन्तन नहीं करते। ऐसे मनुष्य देहाभिमानसे रहित होकर देहाभिमानियोंके द्वारा कहे गये विधि-निषेधपरक वचनोंकी भी उपेक्षा कर देते हैं। इसका कारण यह है कि युगों-युगोंसे निरन्तर आपके कथागायकोंसे आपके गुणों एवं यशको सूचित करनेवाली लीला-कथाओं एवं माधुर्य और ऐश्वर्यपूर्ण चरितोंको वे श्रवण-परम्परासे हृदयमें धारण कर लेते हैं और चरम पुरुषार्थ—मोक्षस्वरूप आपको ही एकमात्र आश्रय मानते हैं ॥ ४० ॥

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया
 त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः।
 ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतय-
 स्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥

हे भगवन्! आपके प्रत्येक रोमकूपमें उत्तरोत्तर दसगुना अधिक सात आवरणोंसे युक्त असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, जो आकाशमें धूलके

कर्णोंके समान एक ही समयमें कालचक्रकी भाँति परिभ्रमण करते हैं। आपका कोई अन्त दिखायी नहीं देता, इसलिए ब्रह्मादि लोकपाल भी आपकी सीमाको जान नहीं सकते, यहाँ तक कि आप स्वयं भी अपनी सीमाका पार नहीं पा सकते क्योंकि जब उसका अन्त ही नहीं है, तब कोई भी उसकी अवधि कैसे पा सकता है? अतः हम श्रुतियाँ भी अस्थूल, अनणु, अहस्वम्, अदीर्घम् इत्यादि शब्दोंसे निषेध करती-करती तात्पर्य वृत्तिके द्वारा आपका निर्देश करती हैं अर्थात् निरसन विधि द्वारा आपके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंका निषेध करते-करते अन्तमें अपना भी निषेध कर लेती हैं और आपमें ही अपनी सत्ताका लय करके सफल हो जाती हैं। 'आप इस प्रकारके हैं'—इस प्रकार साक्षात् भावसे आपका प्रतिपादन नहीं कर पातीं॥ ४१॥

श्रीभगवानुवाच—

इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम्।

सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वात्मनो गतिम्॥ ४२॥

भगवान् श्रीनारायण ऋषिने कहा—हे देवर्षि नारद! जनलोकमें स्थित मुनियोंने सनकादि मुनियोंसे इस प्रकार ब्रह्मविद्या विषयक उपदेश सुनकर आत्मज्ञान प्राप्त किया और स्वयंको पूर्णमनोरथ किया। उन्होंने सनन्दनकी पूजा करके उनका सम्मान किया॥ ४२॥

इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः ।

समुद्भूतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः॥ ४३॥

देवर्षे! सनकादि ऋषि सृष्टिमें सबसे प्राचीन हैं। अतः वे सबके पूर्वज एवं पूज्यतम हैं। उन आकाशचारी महात्माओंने इस प्रकार सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोंके रहस्यके सार-सर्वस्व आत्मज्ञानका संग्रह किया है॥ ४३॥

त्वञ्चैतद्ब्रह्मदायाद

श्रद्धयात्मानुशासनम्।

धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम्॥ ४४॥

हे ब्रह्मा-सुत! तुम भी उनकी ज्ञान-सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो। तुम भी परम श्रद्धाके साथ इस परमात्म विद्याको धारण करो और स्वेच्छापूर्वक पृथ्वीपर विचरण करो। यह ब्रह्मविद्या मनुष्योंकी भौतिक कामनाओंको भस्म कर देनेवाली है ॥ ४४ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान्।

पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! देवर्षि नारद उदारमति एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने श्रुति-विषयक उपदेशोंको कृत-कृत्य भावसे हृदयमें धारण कर लिया। उस समय भी नारद मुनिको जब श्रीनारायण ऋषिने पूर्वोक्त रूपसे आत्मतत्त्व सम्बन्धी उपदेश दिया, तब उन्होंने उसे बड़ी श्रद्धासे ग्रहण किया और कहा— ॥ ४५ ॥

श्रीनारद उवाच—

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्तये।

यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥ ४६ ॥

देवर्षि नारदने कहा—जो समस्त प्राणियोंकी संसार निवृत्तिके लिए इस जगत्में मङ्गलप्रद अनेक सर्वाकर्षक कमनीय कलावतार धारण करते हैं, उन पुण्यश्लोक परम पवित्र कीर्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४६ ॥

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः।

ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपानयस्य मे ॥ ४७ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार महात्मा देवर्षि नारद सनातन भगवान् नारायण ऋषि एवं उनके महाप्रभावशाली शिष्योंको प्रणाम करके वहाँसे बदरीकाश्रममें मेरे पिता श्रीव्यासदेवके आश्रमपर चले गये ॥ ४७ ॥

सभाजितो भगवता कृतासन परिग्रहः।

तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ४८ ॥

वहाँ भगवान् व्यासदेवने उनका यथोचित सम्मान किया। वे आसनको स्वीकार कर उसपर बैठ गये। उन्होंने भगवान् नारायणके मुखसे जो कुछ सुना था, वह सम्पूर्ण आत्म-ज्ञान तत्त्व मेरे पिताजीको सुना दिया ॥ ४८ ॥

इत्येतद्वर्णितं राजन् यत्रः प्रश्नः कृतस्त्वया।

यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि मनश्चरेत् ॥ ४९ ॥

हे राजन्! ब्रह्म प्राकृत गुणोंसे रहित निर्गुण एवं मन-वाणीसे अगोचर हैं। इन अनिर्देश्य परब्रह्म-तत्त्वमें मनका प्रवेश कैसे होता है—इस विषयमें तुमने जो प्रश्न किये थे—उसके उत्तरमें मैंने यह आख्यान सुनाया ॥ ४९ ॥

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो

यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः।

यं सम्पद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा

तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां

संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीनारदनारायणसंवादे

वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

परीक्षित्! जो जीवोंकी समस्त प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिए सृष्टि-स्थिति-प्रलयादि कार्योंके निमित्तरूपमें वर्तमान हैं, वे जगत्के कारणरूपमें माने जानेवाले प्रकृति एवं पुरुष दोनोंके स्वामी हैं। उन्होंने ही इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि करके भोक्ता जीवके साथ इसमें प्रवेश किया है। वे ही जीवके भोगायतन शरीरोंकी रचना करते हैं, और भोग-सम्पादनके लिए उसका पालन करते हैं। गाढ़ निद्रामें सोया व्यक्ति जिस प्रकार अपने शरीरके सम्बन्धसे मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार भगवान्के प्राप्त होनेपर जीव

अविद्याका परित्याग कर देता है। अतः जो अपने अच्युत स्वरूपमें रहते हुए मूलकारण मायाका तिरस्कार करते हैं, उन भयहारी श्रीहरिका निरन्तर ध्यान करना ही जीवका एकमात्र कर्त्तव्य है ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके सत्तासीर्वे अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

शिवजीका सङ्कटमोचन

श्रीराजोवाच—

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम्।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! देवता, असुर एवं मनुष्योंमें जो लोग भोगोंसे रहित, परम विरक्त शङ्करजीकी उपासना करते हैं, वे प्रायः धनाढ्य, भोगसम्पन्न एवं इन्द्रियपरायण होते हैं और जो समस्त भोगोंके आश्रय लक्ष्मीपति श्रीहरिके सेवक हैं, वे प्रायः भोगैश्वर्यसे रहित देखे जाते हैं ॥ १ ॥

एतद्वेदितुमिच्छामः सन्देहोऽत्र महान् हि नः।

विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥

विपरीत स्वभावसे युक्त दोनों ईश्वरोंके सेवकोंमें इस प्रकारका गति-विपर्यय (सर्वभोगास्पद श्रीहरिके सेवकोंकी ऐश्वर्यहीनता और भोगरहित शिवके भक्तोंके ऐश्वर्य) को देखकर विषम सन्देह हो रहा है। आपसे इसका कारण जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच—

शिवः शक्तियुतः शश्वत् त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः।

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित! शङ्कर नित्य ही निजी शक्ति अर्थात् मायाके सम्बन्धसे युक्त हैं एवं मायाके तीनों गुणों द्वारा सम्यक् रूपसे परिवृत होकर त्रिगुणमयरूपमें अवस्थित रहते हैं। वे अहङ्काराधिष्ठाता हैं और सात्त्विक, राजस एवं तामस—तीन प्रकारके अहङ्कार रूपोंमें विद्यमान हैं ॥ ३ ॥

ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु कञ्चन।

उपधावन् विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम्॥४॥

इस अहङ्कारसे सोलह विकार उत्पन्न हुए हैं—मन, दस इन्द्रियाँ और पाँच महाभूत। इन विकारोंमेंसे जो सुन्दर स्त्री और भोगकी लालसासे (उपस्थ, जैह्व एवं मानस सुखोंके उद्देश्यसे) शिवजीकी आराधना करता है, वह अपनी प्रार्थनानुसार उसी प्रकारकी विभूति अथवा ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है॥४॥

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।

स सर्वद्रुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत्॥५॥

श्रीहरि सर्वद्रष्टा, प्रकृतिसे अतीत, अन्तःकरणके नित्य साक्षी और साक्षात् गुणातीत पुरुषोत्तम हैं। उनकी आराधना करनेपर मनुष्य भी उनके ही समान गुणातीत हो जाता है।

भगवान् श्रीहरि प्रकृतिसे परे निर्गुण हैं। वे स्वभावतः गुणोंको अतिक्रमण करके अवस्थित हैं। अतः गुणातीत विष्णुका भजन करके किसीको भी गुणमयी सम्पद् किस प्रकार प्राप्त हो सकती है? जिनसे शिवादिको भी ज्ञान प्राप्त होता है, उन श्रीहरिका भजन करने पर तो ज्ञान-चक्षु प्राप्त होते हैं। उन्हें सम्पद्से उद्भूत (उत्पन्न) अज्ञान-अन्धकार प्राप्त नहीं होता। श्रीहरि उपद्रष्टा (साक्षी) मात्र हैं और गुण-अलिप्तताके कारण उदासीन हैं। अतः उनका भजन एवं परिणाम भी निर्गुण ही होगा॥५॥

निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः।

शृण्वन् भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम्॥६॥

तुम्हारे पितामह राजा युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञकी समाप्तिके बाद भगवान् श्रीकृष्णसे धर्मकी व्याख्या सुन रहे थे। तब उन्होंने भी वही प्रश्न किया था, जो तुमने किया है॥६॥

स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः।

नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले॥७॥

भगवान् श्रीकृष्ण जगदीश्वर हैं और वे मनुष्योंके मङ्गल-विधानके लिए यदुकुलमें अवतीर्ण हुए थे। राजा युधिष्ठिरका प्रश्न सुनकर और उनकी उत्सुकता देखकर भगवान्ने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया था॥७॥

श्रीभगवानुवाच—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।

ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम्॥८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे राजन्! मैं जिनपर अनुग्रह करता हूँ, धीरे-धीरे उनका समस्त धन छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके पुत्र, सगे सम्बन्धी दुःखीके समान प्रतीत होनेवाले उस निर्धन व्यक्तिको छोड़ देते हैं। युधिष्ठिर! जो व्यक्ति विषयोंके परित्यागकी इच्छा करता है, पर किसी प्रसङ्गवश उनमें लिप्त होकर क्लेशग्रस्त रहता है, तो मैं उन विषयोंका भी हरण कर लेता हूँ। इन विषयोंका हरण ही मेरा अनुग्रह है।

धन नष्ट होनेपर स्वजनों द्वारा त्यागरूप दुःख भगवत्-प्रदत्त है, वह कर्मफल नहीं है। इसी प्रकार सुख भी भक्तोंका कर्मफल नहीं है, भक्तिका आनुषङ्गिक फल है। भक्तिशास्त्रके अनुसार भक्तिमें प्रवृत्ति मात्रसे ही भक्तोंके अप्रारब्ध (जिनका भोग अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है), कूट (जो प्रारम्भ होनेकी दिशामें हैं), बीज (जो प्रकट हो रहे हैं) और प्रारब्ध (जो प्रकट हो चुके हैं) कर्मोंका क्रम उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है जिस प्रकार सहस्रदल पद्मकी पंखुडियाँ धीरे-धीरे बिद्ध हो जाती है। श्रीकृष्णका भजन ही भक्ति है। लौकिक, पारलौकिक भोगोंकी आशासे रहित श्रीकृष्णमें मनका अभिनिवेश होना निष्कर्म-भाव है। उपाधि-निरास द्वारा अर्थात् कामना-रहित होकर श्रीकृष्णमें मन आदि समस्त इन्द्रियोंको आविष्ट करना भजन है; इसी भजनसे निष्काम हुआ जा सकता है। भजनमें प्रवृत्त होते ही भक्तोंके सर्वकर्मोंका ध्वंस हो जाता है। भगवान्की अचिन्त्य-शक्तिसे भजन-आधिक्यका फल

प्राप्त होता है। प्रारब्ध-फलके रूपमें जो सुख-दुःख देखे जाते हैं, वे सभी भगवत्-प्रदत्त हैं। शुभ-अशुभ सभी भगवान् द्वारा प्रदत्त है, परन्तु भगवान् भक्तोंको ही दुःख क्यों देते हैं। इसका उत्तर यही है कि पुत्रवत्सल पिता पुत्रका भोग दूर करनेके लिए उन्हें अध्ययनादिका कष्ट देता है—यह पिता का वात्सल्य है, परन्तु पुत्र इस बातको नहीं जानता है। प्रह्लाद, ध्रुवादिको भोग-सम्पत्तिका सुख दिया है, जब कि 'सिद्ध-शिरोमणि युधिष्ठिरादिको सुहृद कृष्णकी उपस्थितिमें भी विपत्ति आयी है' भीष्मदेवकी उक्तिमें यह सुना जाता है। अतएव भगवान्का अभिप्राय मनुष्योंके लिए दुरधिगम्य है। भीष्मदेवके कथनमें यही सिद्धान्त है—भक्तवत्सल श्रीकृष्णका जो विधान है, वह वे ही जानते हैं।

प्रश्न है कि निजकर्म-जात तथा भगवत्-प्रदत्त सुख एवं दुःखके भोग्य फल समान प्रतीत होनेपर भी उनमें क्या वैशिष्ट्य है। इसका उत्तर है कि निज कर्मफलजात सुख-दुःखोंके भोगके बाद भी उसकी बीजरूप वासना रह ही जाती है। ऐसे वासनायुक्त व्यक्तियोंकी नरक-पात, कर्म-तारतम्य (देह बन्धनका बीज) एवं सुख-दुःख तारतम्य—ये तीन स्थितियाँ रहती हैं। भगवत्-प्रदत्त कर्मफलका बीज भगवत्-इच्छासे होता है, वह भी प्रयोजन तक रहता है, उसके बाद नहीं। जो जिह्वा भगवान्के गुणोंका नाम-सङ्कीर्तन नहीं करती—उसी का नरक-पात है। यह यमराजका कथन है।

भगवान्के प्रिय पात्र भगवत्-प्रदत्त कष्टोंको दुःखका कारण नहीं मानते। कर्मजात-भगवत्-प्रदत्त एवं शत्रुकृत-ताड़न और भातृकृत-ताड़न जात दुःख समान होनेपर भी उनकी विष एवं अमृतके समान तुलना नहीं हो सकती।

प्रश्न है कि यदि सर्वसमर्थ भगवान् भक्तोंको दुःख न दें तो क्या उनका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता—तो इसका उत्तर है कि लीलानिधि भगवान् भक्तियोगके रहस्यकी गोपनीयताकी रक्षाके लिए, मत-मतान्तरोंको रोकनेके लिए, भक्तकी भक्तिकी उत्कण्ठा-

वृद्धिके लिए भक्तोंको यह दुःख प्रदान करते हैं, परन्तु यह दुःख भी उनके सुखके लिए होता है, जिस प्रकार आँखोंमें कटु-रसके अञ्जनसे आँखोंकी ज्योतिको बढ़ाया जाता है।

और भी, यदि विष्णु भक्त सर्वदा सुखी रहते तो साधुओंका परित्राण एवं दुष्टोंका विनाश करनेके लिए इस जगत्में कृष्ण एवं राम आदि अवतारोंका प्रयोजन नहीं रहता। यदि उनका अवतार न होता तो रासादि लीलामृत-सिन्धुमें भक्तोंकी क्रीड़ा किस प्रकार होती। प्रश्न है कि साधुओंका दुःखसे त्राणरूप निमित्तके बिना इस जगत्में अवतार होनेपर क्या दोष है, तो इसका उत्तर श्रीचक्रवर्ती ठाकुर देते हैं—सत्य है, मेरे भाई! तुम रसविषयमें अभिज्ञ नहीं हो, इसलिए सुनो, रात्रि होनेके बाद सूर्योदयकी शोभा होती है, ग्रीष्मकाल रहे तभी शीतलजल सुखप्रद होता है, शीतकाल रहे, तभी उष्णजल सुखकारी होता है, अन्धकारमें ही प्रदीप शोभा पाता है, दिनमें नहीं। भूखकी पीड़ा रहनेपर ही अन्न सुस्वादिष्ट होता है। अलम् विस्तरेण!॥८॥

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्भनेहया।

मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्॥ ९ ॥

जो निर्धन व्यक्ति अपने बन्धुओंके आग्रहसे पुनः अर्थका उपार्जन करनेमें प्रवृत्त होते भी हैं, तब मैं उसका वह प्रयत्न भी विफल कर देता हूँ। इस प्रकार बार-बार असफल होनेके कारण उनका मन विरक्त हो जाता है और वे मेरे भक्तोंके साथ मित्रता स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार उनके प्रति मेरा असाधारण (कष्ट सन्तापरूप प्रथम अनुग्रहके बाद दूसरा) अनुग्रह ही होता है॥ ९ ॥

तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम्।

विज्ञायात्मतया धीरः संसारात् परिमुच्यते॥ १० ॥

उस समय मेरी कृपासे युक्त होकर वह धीर और विवेकी व्यक्ति सत्य, चिन्मय, अनन्त, परम अव्यक्त, ब्रह्मवस्तुको आत्म

रूपसे अनुभव करता है और इस सांसारिक बन्धनसे छूट जाता है। इस प्रकार मेरी आराधना बड़ी कठिन है। यही कारण है कि साधारण लोग मुझे छोड़कर दूसरे देवताओंकी ही आराधना करते हैं ॥ १० ॥

अतो मां सुदुरारार्थं हित्वान्यान् भजते जनः।

ततस्तु आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः।

मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्त्यवजानते ॥ ११ ॥

जो विषयोंमें आसक्त हैं तथा जिन्हें मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं है ऐसे अत्यासक्त पुरुष मेरी आराधना एवं मेरे अनुग्रहको दुस्तर जानकर मेरा परित्याग कर देते हैं और अन्यान्य देवताओंकी आराधना करने लगते हैं। इस आराधनासे शीघ्र ही सन्तुष्ट हुए देवताओंसे उन्हें राज्यश्री प्राप्त हो जाती है और वे उद्धत, गर्वित एवं असावधान होकर अपने वरप्रदाता देवताओंको भूलकर उनका तिरस्कार करने लगते हैं ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच—

शापप्रसादयोरीशा

ब्रह्मविष्णुशिवादयः।

सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—ये तीनों किसीको भी शाप एवं वरदान देनेमें समर्थ हैं, परन्तु ब्रह्मा एवं शङ्कर जिस प्रकार शीघ्र ही सन्तुष्ट अथवा शीघ्र ही रुष्ट होकर वरदान या शाप दे देते हैं, अच्युत श्रीहरि वैसे नहीं हैं ॥ १२ ॥

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।

वृकासुराय गिरीशो वरं दत्त्वाप सङ्कटम् ॥ १३ ॥

कैलाशपति शङ्कर एक बार वृक नामक असुरको वर देकर सङ्कटमें पड़ गये थे, पौराणिक लोग इस प्रस्तावित विषयपर उदाहरणस्वरूप एक प्राचीन इतिहासका उल्लेख करते हैं ॥ १३ ॥

वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम्।

दृष्ट्वाशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥

एक बार शकुनिके पुत्र दुर्बुद्धिपरायण वृकासुरकी कहीं जाते समय रास्तेमें नारदसे भेंट हो गयी, तब वह उनसे पूछने लगा— ब्रह्मादि तीनों देवताओंमेंसे कौन देवता सेवकोंसे शीघ्र प्रसन्न हो जाता है? ॥ १४ ॥

स आह देवं गिरीशमुपाधावाशु सिध्यसि।

योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥

तब नारदने कहा—तुम शङ्करकी आराधना करो। उनसे शीघ्र ही तुम्हारी मनोकामना सिद्ध हो सकती है। वे अल्प गुणोंसे ही शीघ्र-से-शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं और रञ्चमात्र भी दोष देखकर कुपित हो जाते हैं ॥ १५ ॥

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वन्दिनोरिव।

ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसङ्कटम् ॥ १६ ॥

दशानन रावण और बाणासुरने राज दरबारके बन्दियोंके समान उनके यशका गान करते हुए स्तवन किया, जिससे प्रसन्न होकर शिवने उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य प्रदान कर दिया था, परन्तु बादमें कैलाश-उत्पाटन (रावणके द्वारा कैलाश पर्वतको जड़से उखाड़ने) और बाणासुरके पुर-रक्षण (नगरकी रक्षाका भार लेनेसे) उनके लिए महासङ्कट उत्पन्न हो गया था ॥ १६ ॥

इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत् स्वगात्रतः।

केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥

परीक्षित्! नारदसे उपदेश पाकर वृकासुर केदारक्षेत्र चला गया, वहाँ वह अग्निको महादेवका मुख मानकर अपने शरीरसे अपने ही अस्त्रसे मांस काट-काट कर आहुतियाँ प्रदान करते हुए उनकी आराधना करने लगा ॥ १७ ॥

देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात् सप्तमेऽहनि।

शिरोऽवृश्चत् सुधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्द्धजम् ॥ १८ ॥

तदा महाकारुणिकः स धूर्जटि-

र्यथा वयञ्चाग्निरिवोत्थितोऽनलात्।

निगृह्य दोर्भ्या भुजयोर्न्यवारयत्,

तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥

छह दिनों तक आराधना करनेपर भी जब महादेव शङ्करका दर्शन नहीं हुआ, तो वह बड़ा दुःखी हो गया। तब वृकासुरने सातवें दिन केदार तीर्थके पवित्र जलमें सिरके केशोंको भिगोया और तलवारसे अपने सिरको काटनेके लिए प्रस्तुत हो गया। उसी समय परम कारुणिक शङ्कर अग्निकुण्डसे (यज्ञानलसे) अग्निदेवके समान प्रकट हो गये। उन्होंने अपने हाथोंमें उसके दोनों हाथोंको पकड़ लिया। हमलोग जिस प्रकार गम्भीर दुःखके कारण मृत्युकी कामना करनेवाले व्यक्तिको आत्महत्याकी चेष्टासे रोकते हैं, उसी प्रकार शङ्करने भी वृकासुरको सिर काटनेके प्रयाससे रोक दिया। उस समय शङ्करका स्पर्श प्राप्त करते ही वृकासुरके अङ्ग ज्यों-के-त्यों पूर्ण हो गये ॥ १८-१९ ॥

तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे,

यथाभिकामं वितरामि ते वरम्।

प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यता-

महो त्वयात्मा भृशमद्व्यते वृथा ॥ २० ॥

शङ्करने उसे सम्बोधन करते हुए कहा—हे वत्स वृकासुर! बस करो। मस्तक काटनेसे भला क्या लाभ? तुम मुझसे मनचाहा वर माँग लो, मैं तुम्हें वही वर प्रदान करूँगा। मैं तो शरणागत जनोंके जल चढ़ाने मात्रसे ही सन्तुष्ट हो जाता हूँ, तब तुम व्यर्थ ही अपने शरीरको क्यों कष्ट दे रहे हो। अहो! ऐसी कष्टकारी तपस्या करके शरीरको पीड़ित करनेकी अब आवश्यकता नहीं है ॥ २० ॥

देवं स वब्रे पापीयान् वरं भूतभयावहम्।

यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स प्रियतामिति॥ २१॥

इसके बाद हे परीक्षित्! पापात्मा असुरने शिवसे ऐसा वरदान माँगा, जो समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था। वृकासुरने यह वरदान माँगा कि “मैं जिसके सिरपर अपना हाथ रख दूँ, वही मृत्युको प्राप्त हो जाय॥” २१॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो दुर्मना इव भारत।

ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा॥ २२॥

हे भरतकुलनन्दन! वृकासुरकी इस प्रार्थनाको सुनकर भगवान् शिव क्षणभरके लिए दुःखीचित्त होकर खड़े-से रह गये, परन्तु बादमें हँसते हुए ‘तथास्तु’ कहकर उसे अभीष्ट वर दे दिया, मानो सर्पको अमृत पिला दिया॥ २२॥

(इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः।)

स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्द्धिन किलासुरः।

स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत् स्वकृताच्छिवः॥ २३॥

शङ्करके वरदान देनेपर वृकासुरके मनमें यह लालसा हो आयी कि मैं पार्वतीको ही हर लूँ। अब वह दुष्ट असुर वरकी सत्यताकी परीक्षाके लिए महादेवके सिरपर ही अपना हाथ रखनेके लिए उद्यत हो गया। अब तो महादेव अपने द्वारा दिये गये उस वरके कारण भयभीत हो गये॥ २३॥

तेनोपसृष्टः सन्त्रस्तः पराधावत् सवेपथुः।

यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक्॥ २४॥

वह असुर उनका पीछा ते हुए दौड़ने लगा और वे उससे डरकर भयसे अतिशय काँपते हुए पराङ्मुख होकर भागने लगे। शिव उत्तर दिशासे आरम्भ करके स्वर्गलोक, मर्त्यलोक एवं दिशाओंके अन्तिम छोरों तक भागते रहे॥ २४॥

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन् सुरेश्वराः।

ततो वैकुण्ठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥

यत्र नारायणः साक्षात्र्यासिनां परमा गतिः।

शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥

इन सभी स्थलोंपर ब्रह्मादि समस्त देवता इस सङ्कटके निराकरणका कोई उपाय न देखकर मौन रह गये। तब शङ्कर तमोगुणातीत, शुद्धसत्त्वाश्रित एवं तेजस्वी वैकुण्ठ धाममें पहुँचे। यहाँ साक्षात् नारायण निवास करते हैं। वे शान्तचित्त, समस्त प्राणियोंके प्रति राग-द्वेषसे रहित, परम भक्त साधुओंकी परम-गति हैं। इस वैकुण्ठमें जाकर जीवको पुनः संसार-दशामें लौटना नहीं पड़ता ॥ २५-२६ ॥

तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान् वृजिनार्दनः।

दूरात् प्रत्युदियाद्भूत्वा वटुको योगमायया ॥ २७ ॥

मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन्।

अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥

अपने भक्तोंके समस्त दुःखोंको हरनेवाले भगवान् श्रीहरिने दूरसे ही देख लिया कि शिव सङ्कटमें हैं। उन्होंने योगमायासे बाल-ब्रह्मचारीका वेश धारण कर लिया। उन्होंने मूँजकी मेखला, अजिन (काला मृगचर्म), दण्ड एवं रुद्राक्षकी माला धारण कर ली और हाथमें कुश ले लिया। ब्रह्मतेजसे युक्त होनेके कारण उनका श्रीविग्रह अग्निके समान दीप्त हो रहा था। उन्होंने वृकासुरके सम्मुख आकर शिष्यके समान बड़ी नम्रतासे उसका अभिवादन करते हुए कहा—हम ब्रह्मदर्शी हैं; समस्त प्राणियोंके नमस्य हैं, किन्तु तुम शकुनिपुत्र हो, ज्ञानी, तपस्वी हो। मैं ब्रह्मचारी तुम्हारे आशीर्वादके योग्य हूँ ॥ २७-२८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

शाकुनेय भवान् व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः।

क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्मायं सर्वकामधुक् ॥ २९ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे शकुनिनन्दन ! वृकासुरजी ! आपको देखकर स्पष्ट ही प्रतीत हो रहा है कि आप अत्यन्त थके हुए हैं। आप इतनी दूरसे किसलिए चले आ रहे हैं, यह तो बतलाइये। आप क्षणभरके लिए इस स्थानपर विश्राम कीजिये। मनुष्योंकी सारी कामनाएँ इसी शरीरसे पूर्ण होती हैं, यह शरीर ही सारे सुखोंका मूल है। अतः इस शरीरकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ २९ ॥

यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो।

भण्यतां प्रायशः पुम्भिर्धृतैः स्वार्थान् समीहते ॥ ३० ॥

हे प्रभो ! आप सर्वसमर्थ हैं। आप यदि मुझे श्रवणके योग्य समझते हों, तो मुझे बतलाइये—इस समय आप क्या करना चाहते हैं ? क्योंकि प्रायः मनुष्य दूसरोंकी सहायता लेकर अपने-अपने कार्योंको सिद्ध कर लिया करते हैं। मैं ब्रह्मतेजके बलपर आपकी सहायता कर सकता हूँ ॥ ३० ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा।

गतक्लमोऽब्रवीत् तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित ! श्रीहरिके सुमधुर, अमृतवर्षी वचनोंसे वृकासुरकी सारी थकावट दूर हो गयी। उसने क्रमशः अपनी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा शङ्करके पीछे दौड़नेकी बात आरम्भसे क्रमपूर्वक कह सुनायी ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच—

एवं चेत् तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्धधीमहि।

यो दक्षशापात् पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—जिन्होंने दक्षके शापके कारण पिशाच-वृत्तिको प्राप्त कर लिया है और केवल भूत-पिशाचोंके ही अधिपति हैं, उन शिवने यदि आपको ऐसा वरदान दिया भी है, तो मैं उन वचनों पर विश्वास नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ ।

तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३ ॥

हे दानवराज ! यदि आप अब भी शङ्करको जगत्का गुरु मानते हैं और उनके वचनोंपर विश्वास करते हैं, तो अभी ही अपने सिरपर हाथ रखकर इसकी परीक्षा कर लीजिये ॥ ३३ ॥

यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथञ्चिद्दानवर्षभ ।

तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्तानृतं पुनः ॥ ३४ ॥

हे दैत्यराज ! यदि किसी प्रकार शङ्करकी बात किञ्चित् मात्र भी असत्य हो, तो उस मिथ्यावादीको मार ही डालिये, जिससे वह पुनः कभी मिथ्या वचन न कह सके ॥ ३४ ॥

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ।

भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥

परीक्षित् ! भगवान्के ऐसे मनमोहक, अद्भुत वचन-विन्यास एवं मीठे वचनोंको सुनकर दुर्बुद्धि वृकासुरकी विवेक-बुद्धि जाती रही और वह शङ्करके वरदानको भूलकर बिना सोच-समझे अपने ही सिरपर अपना हाथ धर बैठा ॥ ३५ ॥

अथापतद्भिन्नशिराः वज्राहत इव क्षणात् ।

जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्विवि ॥ ३६ ॥

उससे असुरका तत्क्षण ही सिर फट गया। वह वज्रके प्रहारसे आहतके समान भूमिपर गिर पड़ा। आकाशमें 'जय हो, जय हो'—जयध्वनि, 'नमो नमः, नमो नमः' प्रणामसूचक ध्वनि एवं 'साधु-साधु' की प्रशंसासूचक ध्वनि गूँजने लगी ॥ ३६ ॥

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ।

देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः सङ्कटाच्छिवः ॥ ३७ ॥

दुराचारी वृकासुरके मर जानेसे देवता, ऋषि, पितर एवं गन्धर्व बड़ी प्रसन्नताके साथ पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और इधर देवाधिदेव शिव भी उस विकट सङ्कटसे मुक्त हो गये ॥ ३७ ॥

मुक्तं गिरीशमभ्याह भगवान् पुरुषोत्तमः ।
 आहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥
 हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः ।
 क्षेमी स्यात् किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥

हे राजन्! तब भगवान् पुरुषोत्तम श्रीहरि सङ्कटसे मुक्त हुए गिरीश शङ्करके समीप गये और बोले—हे जगद्गुरु महादेव! यह दुराचारी असुर अपने ही पापोंके कारण मारा गया। अहो! यदि कोई महापुरुषोंके प्रति अपराध करता है, तो उसका कभी भी कल्याण नहीं हो सकता। इसने विश्व-ब्रह्माण्डके गुरु आपके प्रति अपराध किया है, तो इसका कल्याण किस प्रकार सम्भव है? ॥ ३८-३९ ॥

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः,
 परस्य साक्षात् परमात्मनो हरेः ।
 गिरित्रमोक्षं कथयेत् शृणोति वा,
 विमुच्यते संसृतिभिस्तथारिभिः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
 संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीरुद्रमोक्षणं
 नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरि परमात्मा हैं, वे प्रपञ्चातीत-स्वरूप शक्तियोंके असीम सागर हैं। जो इस शिव-मोचनरूप चरितको सुनते हैं अथवा दूसरोंको सुनाते हैं, वे जन्म-मृत्युरूप संसार-प्रवाह एवं शत्रुओंके भयसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अष्टासीवें अध्यायका
 श्लोकानुवाद समाप्त ।

एकोनवतितमोऽध्यायः

देवताओंमें कौन श्रेष्ठ है—इस विषयमें संशयग्रस्त
ऋषियोंके कहनेसे महर्षि भृगुके द्वारा त्रिदेवोंकी
परीक्षा और भगवान्का मरे हुए ब्राह्मण—
बालकोंको वापस लाना

श्रीशुक उवाच—

सरस्वत्यास्तटे राजन् ऋषयः सत्रमासत।
वितर्कः समभूत् तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान्॥ १ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! प्राचीन कालमें सरस्वती नदीके पावन तटपर ऋषियोंने एक वैदिक यज्ञका अनुष्ठान किया था। उस समय एक वाद-विवाद उपस्थित हो गया कि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव—इन तीनोंमें सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है?॥ १ ॥

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप।
तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम्॥ २ ॥

हे राजन्! उस समय ऋषियोंने इस विषयमें यथार्थ तत्त्व जाननेकी इच्छासे ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी परीक्षा लेनेके लिए ब्रह्माके पुत्र महर्षि भृगुको उनके पास भेजा। भृगु सर्वप्रथम ब्रह्माकी सभामें पहुँचे॥ २ ॥

न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया।
तस्मै चुक्रोध भगवान् प्रज्वलन् स्वेन तेजसा॥ ३ ॥

भृगुने उस समय ब्रह्माके सतोगुणके प्रभाव अर्थात् धैर्यादिकी परीक्षाके उद्देश्यसे न तो उन्हें प्रणाम किया और न ही उनकी स्तुति की। तब ब्रह्मा अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठे और भृगु पर बड़े क्रोधित हुए॥ ३ ॥

स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः।

अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणात्मभूः॥४॥

यद्यपि ब्रह्मा अतिशय क्रोधाभिभूत होकर भृगुका वध करनेके लिए उद्यत हो रहे थे, तथापि उन्होंने देखा कि भृगु मेरा ही पुत्र है, तो स्वयं ही उस क्रोधको इस प्रकार शान्त कर लिया, जिस प्रकार आग, जो जलकी उत्पत्तिका कारण है, उसी जलसे शान्त की जाती है॥४॥

ततः कैलासमगमत् स तं देवो महेश्वरः।

परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा॥५॥

अब भृगु वहाँसे कैलाश धाम पहुँचे, उन्हें देखते ही शङ्कर आसनसे उठ खड़े हुए और बड़े आनन्दके साथ अपने भाईका आलिङ्गन करनेके लिए भुजाएँ फैला दीं।

भृगु ब्रह्माका अवज्ञारूप 'मानस' अपराध कर बैठे, परन्तु उनकी परीक्षा करके उनमें रजोगुण देखकर सफल भी हुए हैं। अब उनसे श्रेष्ठ शिवके निकट 'मानस' से भी अधिक 'वाचिक' अपराध करने जा रहे हैं॥५॥

नैच्छत् त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह।

शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः॥६॥

पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वयामास तं गिरा।

अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः॥७॥

महर्षि भृगुने महादेवसे कहा—“तुम वेद मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले हो।” यह कहकर आलिङ्गन करनेसे मना कर दिया। भृगुकी बात सुनकर क्रोधावेशके कारण महादेवकी आँखें लाल हो उठीं। वे हाथमें त्रिशूल लेकर भृगुका वध करनेके लिए तत्पर हो गये। तभी पार्वती उनके चरणोंमें गिर पड़ीं और विनयपूर्ण रीतिसे उन्हें समझाने-बुझाने लगी। इसके बाद महर्षि भृगु भगवान् श्रीविष्णुके आवास-स्थान वैकुण्ठधाममें पहुँचे।

शङ्करमें तमोगुण देखकर और उनकी अर्द्धाङ्गिनी पार्वतीमें सत्त्वगुण देखकर उनकी भी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं और अब भृगु उनसे भी श्रेष्ठ विष्णुके समीप 'वाचिक' से भी अधिक 'कायिक' अपराध करेंगे ॥ ६-७ ॥

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ।

तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ ८ ॥

स्वतल्पादवरुद्धाथ ननाम शिरसा मुनिम् ।

आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीदात्रासने क्षणम् ।

अजानतामागतान् वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥

वहाँ भगवान् पुष्प-शय्यापर लक्ष्मीदेवीकी गोदमें सिर रखकर लेटे हुए थे। महर्षि भृगुने उनके वक्षःस्थलपर जोरसे लात मारी। तब साधुओंके शरण्य भगवान् श्रीहरि लक्ष्मीदेवीके साथ शय्यासे उठ खड़े हुए और मस्तक झुकाकर मुनिको प्रणाम किया। भगवान्ने कहा—हे मुनिवर! आप सुखपूर्वक तो आये हैं न! हे ब्रह्मन्! इस आसनपर क्षणकालके लिए बैठिये तो सही! हे प्रभो! मुझे आपके शुभागमनका पता ही नहीं चला, इसलिए आपके प्रति अपराध कर बैठा। आप मुझे क्षमा कीजिये।

भृगुने श्रीविष्णुमें सत्त्वगुणकी परीक्षाके लिए यह अपराध किया है। वस्तुतः विष्णुमें उन्होंने शुद्ध सत्त्वगुण देखा है, साधारण सत्त्वगुण विष्णुको स्पर्श नहीं कर सकता। लक्ष्मी प्रियतम कान्त विष्णुका अभिप्राय जानती थीं, अतः भृगु मुनि द्वारा अपने पतिका तिरस्कार देखकर उनके हृदयमें क्रोध नहीं हुआ—यही शुद्ध सत्त्वगुण धर्म है। (कहा जाता है कि इस घटनाके समयसे ही लक्ष्मी ब्राह्मणोंके अनुकूल नहीं रहतीं) ॥ ८-९ ॥

पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ।

पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ १० ॥

अद्याहं भगवन् लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ।

वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥ ११ ॥

(तब मुनिने कहा—मैंने आपको और आपकी प्रिया लक्ष्मीको अति दुःख पहुँचाया है, अतः कल्प पर्यन्त मेरा नरकमें वास होगा। मुझ महापापी ब्राह्मणका पैर आपके वक्षःस्थलपर लगा है। अनुतापसे जर्जरित मुनिको सम्बोधन करते हुए भगवान् कहने लगे—)

हे महर्षे! हे महामुने! आपके श्रीचरणकमल अत्यन्त सुकुमार हैं—यह कहकर भगवान् विष्णु भृगुजीके चरणोंको अपने हाथोंसे सहलाने लगे और बोले—आपके चरणोंका जल तीर्थोंको भी विशुद्ध करनेवाला है। आप इस पादोदकके द्वारा मुझे, इस वैकुण्ठधामको (श्वेतद्वीपको) तथा मेरे आश्रित लोकपालों और उनके धामोंको पवित्र कीजिये। भगवन्! आपके चरण-कमलोंके स्पर्शसे मेरे सारे पाप धुल गये। आज मैं लक्ष्मीका एकमात्र आश्रय हो गया। अब आपके श्रीचरणोंसे अङ्कित मेरे वक्षःस्थलपर लक्ष्मीदेवी निश्चल होकर सदा सर्वदा निवास करेंगी ॥ १०-११ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा।

निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! भगवान् द्वारा कहे गये इन गम्भीर वचनोंसे भृगु अत्यन्त सन्तुष्ट एवं आनन्दित हो गये। भक्तिभावसे उनका चित्त अभिभूत हो उठा। उनका गला भर आया, आँखोंसे आँसू उमड़ आये और वे मौन खड़े रहे (भृगु आनन्दातिशयताके कारण भगवान्की स्तुति न कर सके। वस्तुतः इस समस्त कर्ममें भृगुजीका अपराध होगा नहीं क्योंकि परीक्षा कार्यमें उनकी भूमिका भगवत् लीला-विनोदरूप सूत्रधार द्वारा नियोजित है) ॥ १२ ॥

पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्।

स्वानुभूतमशेषेण राजन् भृगुरवर्णयत् ॥ १३ ॥

हे राजन्! भृगु वहाँसे पुनः ब्रह्मवादी मुनियोंके उसी सत्सङ्ग-सत्रमें लौट आये और उन्होंने वहाँ जो कुछ भी अनुभव किया, वह सब कह सुनाया ॥ १३ ॥

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ।
 भूयांसं श्रद्धधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १४ ॥
 धर्मः साक्षाद् यतो ज्ञानं वैराग्यञ्च तदन्वितम् ।
 ऐश्वर्यञ्चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ।
 ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद् यशश्चात्ममलापहम् ॥ १५ ॥
 मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ।
 अकिञ्चनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥ १६ ॥
 सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ।
 भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १७ ॥

भृगुके वचनोंको सुनकर मुनिगण बड़े विस्मित हो गये। उनका संशय दूर हो गया। उन्होंने निर्णय कर लिया कि विष्णु ही तीनों देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे ही शान्ति और अभयके स्रोत हैं। उनसे ही धर्म, ज्ञान, वैराग्य, अणिमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्य और समस्त पापोंको धो डालनेवाला यश साक्षात् प्राप्त होता है। सारे शास्त्र उनका ही यशोगान करते हैं कि वे राग-द्वेषादिसे रहित, समबुद्धिसे युक्त, शान्तचित्त, मुनि-धर्मसे युक्त, अकिञ्चन और साधुओंकी परम-गति-स्वरूप हैं। विष्णुका श्रीविग्रह विशुद्ध सत्त्वमय है। ब्राह्मण उनके प्रिय हैं, इसलिए वे उन्हें इष्टदेवके समान आदरणीय मानते हैं। निष्काम, शान्त, निपुण, शास्त्रचक्षु और विवेकीगण विष्णुकी सेवा करते हैं ॥ १४-१७ ॥

त्रिविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ।
 गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत् तीर्थसाधनम् ॥ १८ ॥

यद्यपि उन भगवान्की त्रिगुणमयी मायाने राक्षस, असुर एवं सुर—ये तीन प्रकारकी मूर्तियाँ बना दी हैं, तथापि जीवनमें परम

पुरुषार्थका साधन सत्त्वगुण ही है। भगवान् इन त्रिविध गुणोंसे उदासीन ही रहते हैं॥ १८॥

श्रीशुक उवाच—

एत्थं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये।

पुरुषस्य पदाम्भोज-सेवया तद्गतिं गताः॥ १९॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! सरस्वती तटपर रहनेवाले मुनियोंने अपने लिए नहीं, मनुष्योंके संशयका निवारण करनेके लिए एवं पूर्वोक्त सिद्धान्तके स्थापनके लिए ही ऐसी युक्ति रची थी। उन्होंने भगवान् विष्णुके चरणकमलोंकी भक्ति (सेवा) की और उनका परमपद प्राप्त किया॥ १९॥

श्रीसूत उवाच—

इत्येतन्मुनितनयास्य-पद्मगन्ध-

पीयूषं भवभयभित् परस्य पुंसः।

सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्षणं

पान्थोऽध्वभ्रमण-परिश्रमं जहाति॥ २०॥

श्रीसूतजीने कहा—हे शौनकादि ऋषियो! श्रीव्यासनन्दन श्रीशुकदेव गोस्वामीके मुखकमलसे यह सुरभित पीयूषधारा प्रवाहित हुई है, जो भगवान् पुरुषोत्तम श्रीहरिकी उदार कीर्त्तिसे युक्त है और जन्म-मृत्युरूप संसारके भयका नाश करनेवाली है। इस संसार यात्राका जो पथिक (विष्णु पद्म-गन्ध-मधुकर) अपने कर्णपुटोंसे कथा-पीयूषका निरन्तर पान करता रहता है, वह संसार-मार्गमें भ्रमणसे उत्पन्न क्लेशोंसे मुक्त हो जाता है॥ २०॥

श्रीशुक उवाच—

एकदा द्वारवत्यान्तु विप्रपत्न्याः कुमारकः।

जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत॥ २१॥

(श्रीकृष्णका सर्वमहोत्कर्षत्व बतलानेके लिए उनका एक और चरित्र कहते हैं—) श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—हे भरतकुल-नन्दन! एक बारकी बात है कि द्वारकामें एक ब्राह्मणी-पत्नीने

पुत्रको जन्म दिया, परन्तु भूमिका स्पर्श होते ही वह मर गया ॥ २१ ॥

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः।

इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥ २२ ॥

वह ब्राह्मण अपने मृत शिशुको लेकर राजा उग्रसेनके राज-द्वारपर पहुँचा और शिशुको वहाँ रख कर अत्यन्त कातर एवं दुःखी हृदयसे विलाप करते-करते कहने लगा ॥ २२ ॥

ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः।

क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥ २३ ॥

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ब्राह्मण-द्रोही, कुटिलमति (धूर्त), लोभी एवं विषयी राजाके पाप कर्मोंके (राज-दोषके) कारण ही मेरे इस बालककी मृत्यु हुई है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है ॥ २३ ॥

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम्।

प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥ २४ ॥

जो राजा हिंसापरायण, अजितेन्द्रिय एवं दुःस्वभाव होता है, उसके आश्रयमें रहनेवाली प्रजा दरिद्र, नित्य ही दुःखी एवं क्लेशग्रस्त होती है ॥ २४ ॥

एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयन्त्वेवमेव च।

विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥ २५ ॥

परीक्षित्! दूसरे एवं तीसरे पुत्रोंके भी भूमिष्ठ होते ही मर जानेपर वह ब्राह्मण उनके शवोंको इसी प्रकार राज-द्वारपर रखता रहा और वही गाथा गाता रहा ॥ २५ ॥

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित् केशवान्तिके।

परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥ २६ ॥

किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वग्निवासे इह नास्ति धनुर्द्धरः।

राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥ २७ ॥

जब उसके नवें बालककी मृत्यु हो गयी, तब भी वह वहाँ आया। उस समय श्रीकृष्ण अर्जुनके समीप ही खड़े थे। ब्राह्मण पुनः पूर्वोक्त वचन कहने लगा। अर्जुनने उन आक्षेपात्मक वचनोंको सुनकर ब्राह्मणसे कहा—हे द्विजवर! आप व्यर्थमें किसलिए रो रहे हैं। (वहाँ उपस्थित लोगोंके प्रति कटाक्ष करते हुए कहा—) क्या राज-दरबारमें एक भी अधम क्षत्रिय बन्धु नहीं है, जो धनुर्धारी रक्षकके रूपमें आपके द्वारके सम्मुख खड़ा रहे। ये क्षत्रिय प्रजा-पालन छोड़कर ब्राह्मणोंके समान केवल यज्ञमें ही सम्मिलित हो सकते हैं क्या? ॥ २६-२७ ॥

धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः।

ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुम्भराः ॥ २८ ॥

जिन क्षत्रियोंके राज्यमें ब्राह्मण, स्त्री और पुत्र, धन अथवा किसी अन्य प्रकारके वियोगसे शोकग्रस्त रहते हैं, वे क्षत्रिय क्षत्रिय नहीं हैं बल्कि उदर-पोषणमें (आत्म-प्राण-तर्पणमें) लगे हुए ये नट केवल जीविका-निर्वाहके लिए राजवेश धारण किये हुए हैं ॥ २८ ॥

अहं प्रजा वां भगवन् रक्षिष्ये दीनयोरिह।

अनिस्तीर्ण-प्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥ २९ ॥

हे भगवन्! मैं इस स्थानपर दुःखग्रस्त आपकी तथा आपकी पत्नीकी सन्तानकी रक्षा करूँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है। यदि मैं प्रतिज्ञा-पालनमें असमर्थ रहा तो अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा—और ब्राह्मणके विलाप-श्रवण-जनित पापसे विशुद्ध हो जाऊँगा ॥ २९ ॥

श्रीब्राह्मण उवाच—

सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः।

अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ॥ ३० ॥

तत् कथं नु भवान् कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः।

त्वं चिकीर्षसि बालिश्यात् तत्र श्रद्धमहे वयम् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणने कहा—अर्जुन! सङ्कर्षण, श्रीवासुदेव, धनुर्धर श्रेष्ठ प्रद्युम्न एवं अद्वितीय योद्धा अनिरुद्ध—ये सब भी जहाँ मेरे पुत्रकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सके, वहाँ तुम किस प्रकार समर्थ हो सकते हो? अरे! जो जगदीश्वरोंके लिए भी कठिन है, तुम मूर्खतावश उसी दुष्कर कार्यको करना चाहते हो। मैं तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं कर सकता ॥ ३०-३१ ॥

श्रीअर्जुन उवाच—

नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिरेव च।

अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥ ३२ ॥

श्रीअर्जुनने (गाण्डीव दिखाते हुए) कहा—हे ब्रह्मन्! मैं बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न अथवा अनिरुद्ध नहीं हूँ, परन्तु जिसके पास विश्व विख्यात गाण्डीव नामक अद्वितीय धनुष है, मुझे उसी अर्जुनके नामसे सब जानते हैं ॥ ३२ ॥

मावमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम्।

मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजाः प्रभो ॥ ३३ ॥

हे ब्रह्मन्! आप मेरे बल-पौरुषकी अवज्ञा मत कीजिये। मैं अपनी क्षमतासे पराक्रमी महादेवको सन्तुष्ट कर चुका हूँ। हे भगवन्! मैं साक्षात् यमराजको भी पराजित करके आपके पुत्रोंको लाऊँगा ॥ ३३ ॥

एवं विश्रम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परन्तप।

जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३४ ॥

हे शत्रुसन्तापकर राजन्! अर्जुनके इन वचनोंसे आश्वासन प्राप्त करके तथा उनके बल-पौरुषका वर्णन सुनकर ब्राह्मण प्रसन्न हो गया और अपने घर चला आया ॥ ३४ ॥

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः।

पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३५ ॥

इसके बाद जब पत्नीका प्रसवकाल आया, तब वह ब्राह्मण अर्जुनके पास गया और बड़े कातर होकर उनसे कहने लगा— हे अर्जुन! मृत्युसे मेरी सन्तानकी रक्षा करो, रक्षा करो (इस समय अर्जुनका द्वारका-वास था अथवा वे गर्भ-पूर्तिका समय समीप जानकर द्वारका चले आये थे) ॥ ३५ ॥

स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम्।

दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥ ३६ ॥

तब अर्जुनने पवित्र जलसे आचमन किया, महादेवको प्रणाम किया, दिव्यास्त्रोंका स्मरण किया, गाण्डीवपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और उस धनुषको हाथमें धारण किया ॥ ३६ ॥

न्यरुणत् सूतिकागारं शरैर्नास्त्रयोजितैः।

तिर्य्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम् ॥ ३७ ॥

अर्जुनने अनेक प्रक्षेपास्त्रोंका संयोजन किया और मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित बाणोंसे सूतिकागृहको चारों ओरसे बाँध लिया। इस प्रकार उन्होंने प्रसवगृहके ऊपर-नीचे एवं दायें-बायें बाणोंकी संस्थापना करके एक शर-पिञ्जर बना दिया ॥ ३७ ॥

ततः कुमारः सञ्जातो विप्रपत्न्या रुदन् मुहुः।

सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणपत्नीने पुनः पुत्रको जन्म दिया। जन्म होते ही बालक रोने लगा। कुछ देर तक रोनेके बाद देखते-देखते ही सशरीर आकाशपथमें अदृश्य हो गया (कृष्णकी इच्छावश न तो दिव्य अस्त्र उस बालककी रक्षा कर सके और न ही महादेव) ॥ ३८ ॥

तदाह विप्रो विजयं विनिन्दन् कृष्णसन्निधौ।

मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्धधे क्लीबकत्थनम् ॥ ३९ ॥

तब वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख ही अर्जुनका तिरस्कार करते हुए कहने लगा—अहो! मेरी कैसी मूर्खता है?

मैंने इस नपुंसक अर्जुनकी डींग भरी बातों पर विश्वास कर लिया ॥ ३९ ॥

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः।

यस्य शोकः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४० ॥

भला जिसकी सन्तानकी प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम एवं स्वयं श्रीकेशव भी रक्षा न कर सके, तो कोई अन्य इस कार्यमें किस प्रकार समर्थ हो सकता है? ॥ ४० ॥

धिगज्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः।

दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥ ४१ ॥

दैववश दूसरे लोकमें ले जाये गये मेरे पुत्रोंको यह वापस लाना चाहता है, इस दुर्मति अर्जुनकी यह कैसी मूर्खता है? इस मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है, इस आत्मप्रशंसकके गाण्डीव धनुषको धिक्कार है ॥ ४१ ॥

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः।

ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान् यमः ॥ ४२ ॥

परीक्षित्! इधर ब्राह्मण अर्जुनको भला-बुरा कहता रहा और उधर अर्जुन अपनी योगविद्यासे तत्काल संयमनी पुरी पहुँच गये, जहाँ भगवान् यमराज सदैव विद्यमान रहते हैं ॥ ४२ ॥

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत एन्द्रीमगात् पुरीम्।

आग्नेयीं नैऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ।

रसातलं नाकपृष्ठं धिष्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४३ ॥

ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः।

अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४४ ॥

जब अर्जुनने यमपुरीमें ब्राह्मण-पुत्रको नहीं देखा, तो उन्होंने शस्त्रोंको धारण कर लिया। वे शस्त्र लेकर क्रमसे इन्द्रलोक, अग्निलोक, निऋतिलोक, चन्द्रलोक, वायुलोक, वरुणलोक, रसातलादि नीचेके लोकों, स्वर्गादि ऊपरके लोकों और महर्लोकदि अन्यान्य

लोकोमें पहुँचे, किन्तु कहीं भी उस ब्राह्मण-पुत्रको खोज नहीं पाये। अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी न होनेपर अग्निमें प्रवेश करनेके लिए तैयार हो गये। तभी श्रीकृष्णने उन्हें रोक दिया और कहने लगे ॥ ४३-४४ ॥

दर्शये द्विजसूनुंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ।

ये ते नः कीर्त्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे सखे! मैं तुम्हें ब्राह्मणके पुत्रोंको अभी दिखला रहा हूँ। तुम अपने आपको इतना तिरस्कृत मत समझो। जो इस समय हमारी निन्दा कर रहे हैं, वे ही बादमें हमारी निर्मल कीर्त्तिको स्थापित करेंगे (श्रीकृष्णने अर्जुनको कौतुक दिखाकर विस्मित करनेके लिए श्रीमहाकालरूप भी स्वयं धारण किया और स्वयं ही ब्राह्मणके बालकोंका अपहरण किया) ॥ ४५ ॥

इति सम्भाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः ।

दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥ ४६ ॥

सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण यह कहकर अर्जुनके साथ अपने दिव्य रथपर चढ़कर पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये ॥ ४६ ॥

सप्तद्वीपान् ससिन्धूंश्च सप्तसप्तगिरीनथ ।

लोकालोकं तथातीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ पथके मध्यवर्त्ती ब्रह्माण्डके सात पर्वत, सात समुद्रोंसे युक्त सात द्वीप एवं लोकालोक पर्वतकी सीमा पार करके प्रकृति-कृत घोर अन्धकारमें प्रवेश किया। यह ब्रह्माण्डके आवरणकी शेष (अन्तिम) सीमा है।

सप्त समुद्र, सप्त पर्वत, सप्त द्वीप एवं लोकालोक पर्वतसे वेष्टित भूमण्डल अथवा जम्बूद्वीपसे बहिर्भागको परिवेष्टित करके ब्रह्माण्डकी चारों दिशाओंमें एकके बाद एक क्षिति, जल, तेज, मरुत्, व्योम, अहं एवं महत्—इन सात तत्त्वोंके सात आवरण क्रमशः मण्डलाकारमें रहते हैं। इसके भी बाहर अष्टम आवरण

है—जो अनन्त व्यापक प्रकृति अथवा अन्धकारका आवरण है ॥ ४७ ॥

तत्राश्वाः शैव्यसुग्रीव-मेघपुष्पबलाहकाः ।

तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥

तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ।

सहस्रादित्यसङ्काशं स्वचक्रं प्राहिणोत् पुरः ॥ ४९ ॥

हे भरतकुलश्रेष्ठ ! उस अन्धकारमें रथके शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प एवं बलाहक नामक चार घोड़े ब्रह्माण्डके सात बाह्य आवरणोंकी अन्तिम सीमाके अष्टम आवरणके घोर अन्धकारमें अपना मार्ग भूल गये। तब इस अवस्थाको देखकर महायोगेश्वराधिपति भगवान् श्रीकृष्णने सहस्र सूर्योंके समान प्रभावशाली अपने सुदर्शन-चक्रको रथके आगे-आगे भेज दिया (वैकुण्ठसे आये रथोंके अश्वोंका प्रकृतिके अन्धकारमें गति-भ्रष्ट होना भगवान्की नर-लीलाके समान साधारण अश्वलीलत्व है—इसे अर्जुनादि द्रष्टाओं एवं श्रोताओंके चमत्कारके लिए जानना चाहिये) ॥ ४८-४९ ॥

तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्-

विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ।

मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं

गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५० ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीरामचन्द्रके धनुषसे छूटे बाणोंने जिस प्रकार रावणकी सेनामें प्रवेश किया था, उसी प्रकार मनकी गतिके समान अति द्रुतगामी सुदर्शन भी अपने प्रभूत प्रज्वलित तेजसे निविड़ प्रकृतिके परिणामसे उत्पन्न उस घने एवं भयानक अन्धकारको चीरता हुआ आगे बढ़ा ॥ ५० ॥

द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः-

परं परं ज्योतिरनन्तपारम् ।

समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः

प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५१ ॥

सुदर्शनचक्रके पीछे चलता हुआ रथ जब द्वार-पथ (अन्तिम सीमापर) पहुँचा, तब अर्जुनको अन्धकारके उसपार सुविस्तृत, अनन्त एवं अपार उत्तम भागवत-ज्योति दिखायी पड़े, उनकी आँखें चौंधिया गयीं। उन्होंने दोनों नेत्र बन्द कर लिये।

सुदर्शनचक्रने सातों आवरण भेद दिये और अर्जुनको प्रकृतिके अन्धकारके बाद उस लोकमें ले गया, जहाँ श्रेष्ठ चिन्मय ज्योति व्याप्त हो रही थी। उस ज्योतिसे चकाचौंध होकर अर्जुनने अपने नेत्र बन्द कर लिये। इस ज्योतिके विषयमें श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—हे भरतवंशश्रेष्ठ! तुम जो ब्रह्मतेजमयी, महादिव्य ज्योतिको देख रहे हो, वह मेरा ही सनातन (नित्य) तेज है—यह मेरी सनातनी परा प्रकृतिके व्यक्त एवं अव्यक्त रूपोंसे युक्त है। श्रेष्ठ योगी इसमें प्रवेशकर मुक्त हो जाते हैं—यही ज्योति तपस्वियों एवं सांख्यगणोंकी भी गति है—यही ज्योति परब्रह्म है, जिसके द्वारा सारा जगत् विभक्त है। हे भारत! इस तेजको मेरा घनीभूत तेज समझ सकते हो। मेरी पराप्रकृति ही चिन्मय ब्रह्म है। मेरी स्वरूपशक्ति परा अर्थात् मायातीत है ॥५१॥

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता

बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ।

तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं

भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥५२॥

इसके बाद उन्होंने दिव्य एवं अति विशाल जलराशिमें प्रवेश किया, जो प्रबल वायु-वेगके कारण विशाल तरङ्गरूप भूषणोंसे भूषित हो रही थी। उस जलराशिमें प्रविष्ट होकर अर्जुनने महाकालपुरको देखा, वहाँ एक अत्याश्चर्यमय सुन्दर भवन था, उसमें द्युतिमयी मणियोंसे रचित सहस्र-सहस्र खम्भे थे। उस भवनके चारों ओर दीप्तिमय पदार्थोंकी उज्ज्वल ज्योति प्रकाशित हो रही थी।

कारण-समुद्र अथवा विरजा नदीके जलसे उच्छलित होकर महातरङ्ग ही भूषण हैं जिसकी—ऐसा अद्भुत भवन है—महाकालपुर!

मृत्युञ्जयतन्त्रमें कहा गया है—हे देवि ! ब्रह्माण्डकी ऊपरी दिशामें ब्रह्माका महान् गृह अर्थात् सत्यलोक है, उसके ऊपर विष्णुगणोंका अर्थात् विकुण्ठ-सुतोंका वैकुण्ठ है, तब और ऊपर क्रमशः रुद्ररूपी अहङ्कार आवरण स्थित रुद्रलोक, महाविष्णु अर्थात् महत्-तत्त्व आवरण स्थित महाविष्णुलोक, महादेवी अर्थात् प्रकृतिके आवरण स्थित महादेवीका लोक एवं ब्रह्म-पीयूष-वारिधि कारण-समुद्र, महाकाल अर्थात् परब्रह्म स्थित महावैकुण्ठनाथ, उनके ही कारण-समुद्र जलके मध्यगत गृह—महाकालपुरको अर्जुनने देखा। यह कारणार्णव प्रकृति एवं परव्योमके मध्य स्थानपर सीमारूपमें विराजमान है ॥ ५२ ॥

तस्मिन् महाभोगमनन्तमद्भुतं
सहस्रमूर्द्धन्यफणामणिद्युभिः ।
विभ्राजमानं द्विगुणक्षणोल्बणं
सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥ ५३ ॥

उस महलमें अनन्तदेव विराजमान थे। वे बड़े ही अद्भुत दिखायी दे रहे थे। उनका शरीर स्फटिक गिरिके समान श्वेत, विशाल और दीप्तिमान् था। उनके सहस्र सिर थे और प्रत्येक फणपर अवस्थित मणियाँ चमचमा रही थीं। प्रत्येक सिरमें दो नेत्र होनेके कारण वे दो सहस्र नयनोंसे युक्त थे। उनका कण्ठ तथा जीभ नीले वर्णके थे ॥ ५३ ॥

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं
महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५४ ॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालयावृतम् ॥ ५५ ॥

सुनन्द-नन्दप्रमुखैः स्वपार्षदै-

श्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ।

पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाखिलर्द्धिभि-

निषेव्यमानं परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५६ ॥

परीक्षित्! अर्जुनने देखा कि अनन्तदेवके सुविशाल शरीररूप सुखप्रद एवं कोमल शय्यापर महाप्रभावशाली, लोकपालोंके अधीश्वर, महत्-तत्त्व-स्रष्टाके भी ईश्वर पुरुषोत्तम भगवान् विभु विराजमान हैं। उनके श्रीविग्रहकी कान्ति श्यामल मेघके समान है। उन्होंने पीत वर्णके सुरम्य परिधान धारण कर रखे हैं। नेत्र बड़े ही सुन्दर एवं विशाल हैं (ये दो सहस्र नयन भीषण एवं उग्र भी हैं), मुखमण्डलपर अति मनोहर मुसकान है, अपरिमित सहस्र अलकावलियाँ इधर-उधर लहरा रही हैं, महामणियोंसे जड़ित मुकुट एवं कुण्डलोंकी कान्तिसे सर्वत्र उज्ज्वलता स्फुरित हो रही है, आजानुलम्बित सुरम्य आठ भुजाएँ हैं। गलेमें कौस्तुभ मणि, वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न और घुटनों तक वैजयन्ती नामक वनमाला विभूषित हो रही है। सुनन्द-नन्दादि उनके निजी पार्षद, मूर्तिमान चक्रादि (शङ्ख, गदा, खड्ग, चर्म, शर, चाप, पाश) आयुध, पुष्टि, श्री, कीर्ति और अजा—ये चारों शक्तियाँ तथा अणिमादि समस्त विभूतियाँ रूप धारण करके उनकी आराधना कर रही हैं (ये महाविष्णु अमित प्रभावशाली, सर्वव्यापक विभु, भूमा पुरुष है। ये कारणार्णवशायी भगवान् सङ्कर्षण, गर्भोदकशायी भगवान् प्रद्युम्न एवं क्षीरोदशायी भगवान् अनिरुद्ध—इन तीनों 'पुरुषावतार' अथवा पुरुष श्रेष्ठोंके भी पूजनीय हैं। ये परम पुरुषोत्तम एवं ब्रह्मादि परमेष्ठियोंके तथा सभी देवताओंके पति एवं प्रभु हैं) ॥ ५४-५६ ॥

ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो

जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ।

तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभु-

र्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्ज्या गिरा ॥ ५७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने अपने ही स्वरूप भगवान् अनन्तदेवको (मनुष्यलीलाका अनुकरण कर) प्रणाम किया। अर्जुन जो उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे, उन्होंने भी उन अनन्त प्रभावसे सम्पन्न महापुरुषको (अनन्तदेवको) प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े रहे। तब परमेष्ठियोंके (ब्रह्माण्डोंके समस्त शासकोंके) अधिपति वे विराट् (भूमा) पुरुष मुसकराये एवं मधुर तथा गम्भीर वाणीमें कहने लगे—।

अब श्रीकृष्णने अपनी कौतुक लीला हेतु अपने विष्णु अंशकी स्वयं ही वन्दना की है, जैसे गोवर्धन पूजामें व्रजवासियोंके साथ गोवर्धन-नाथने स्वयं ही स्वयंको प्रणाम किया है। भगवान् अनन्त हैं, असंख्य स्वरूपमय हैं और यह अष्ट-भुजरूप उनमेंसे एक है। यह उनकी अच्युत नरलीला है अर्थात् नरलीलाके रक्षण हेतु वे अपने पदसे च्युत नहीं होते। भूमा पुरुषने कृष्णके स्वांश होनेपर भी कृष्णकी वन्दना न करके ईश्वर-लीलाका प्रदर्शन किया है, जिस प्रकार गोवर्धन पूजामें कृष्णने अपनेसे भी अधिक गोवर्धनका महत्त्व दिखाया है। परमेष्ठि अर्थात् कोटि ब्रह्माण्ड स्थित चतुर्मुख ब्रह्माओंके स्वामी श्रीकृष्ण अर्जुनको मोहित करनेके लिए अर्जुनको अपने रथमें लाये हैं और अपने द्वारा प्रकटित पुरुषोत्तमोत्तम महाकाल शक्तिमय भूमा रूपका दर्शन कराया है। कृष्णके अभिप्रायको जानकर ही महाविष्णु भूमाने कहा, आपका अंश होकर भी मैं अपना आधिक्य अर्थात् अपनी श्रेष्ठता व्यक्त करूँगा। मेरे वचनोंमें आपके रूप, गुण, ऐश्वर्यका आधिक्य व्यक्त होगा और आपका अंशी तत्त्व भी प्रकाशित होगा। (आप ही मेरे मूल उद्गम हैं।) देखो, मेरी चातुरी! बादमें आप भी अर्जुनको अपना निज तत्त्व अवश्य बतायेंगे—इस प्रकार हँसते हुए प्रार्थना भी की॥५७॥

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा

मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये।

कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे॥५८॥

भूमा पुरुषने कहा—हे श्रीकृष्ण और अर्जुन! मैं तुम दोनोंके दर्शनोंकी अभिलाषासे ही ब्राह्मणके पुत्रोंको यहाँ ले आया हूँ। तुम दोनों धर्मकी रक्षाके लिए मेरे सर्वांशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हो। अतः पृथ्वीके भाररूप असुरोंका विनाश करके शीघ्र इसी स्थान पर मेरे समीप आ जाओ॥५८॥

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी।
धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम्॥५९॥

तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम सर्व-लोकोत्तम, और पूर्णकाम हो, तथापि धर्मकी रक्षा एवं लोकशिक्षाके लिए धर्मका आचरण करो॥५९॥

इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना।
ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान्॥६०॥
न्यवर्त्ततां स्वकं धाम सम्प्रहृष्टौ यथागतम्।
विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः॥६१॥

समस्त लोकोंके अधीश्वर भूमा पुरुषने जब श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार आदेश दिया, तब श्रीकृष्ण और अर्जुनने 'तथास्तु' कहकर उन वचनोंको स्वीकार किया और उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर अपने साथ ब्राह्मण बालकोंको लेकर अतिशय प्रसन्न चित्तसे वे जिस मार्गसे आये थे, उसी मार्गका अनुसरण करते हुए अपने धाम लौट आये। उन्होंने ब्राह्मणको उसके पुत्र सौंप दिये, जो रूप और आकृतिमें वैसे ही थे, जैसे शैशवावस्थामें थे, परन्तु उनकी वय बढ़ गयी थी॥६०-६१॥

निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः।
यत्किञ्चित् पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम्॥६२॥

अर्जुन श्रीकृष्णके परमधामको देखकर अति विस्मित हो गये थे। उन्होंने यह स्थिर कर लिया कि जीवोंका जो सम्पूर्ण पौरुष है, वह श्रीकृष्णकी कृपाका ही फल है।

अर्जुन पहले आत्यन्तिक महैश्वर्य देखकर, “अहो! यह मैंने पाण्डुपुत्र नरलोकवासी होकर भी कृष्णके प्रसादसे सर्वमूलस्वरूप (हर वस्तुके मूलस्वरूप) परमेश्वरका दर्शन किया है—यह अति विस्मयकारी है” क्षणकाल विचार करके कहने लगे, अहो! महाकालपुर-अधिपतिने कृष्णसे ऐसा क्यों कहा कि आपका दर्शन करनेके लिए आपको बुलाया है? आद्यावतार परमेश्वरकी अपने अंश कृष्णको देखनेकी इच्छा किस प्रकार सम्भव हो सकती है? यदि यह इच्छा किसी विशेष क्षणिक परिस्थितिके लिए भी होती, तो ऐसा कुछ व्यक्त नहीं किया। यदि यह इच्छा सार्वकालिक है तो द्वारका स्थित कृष्णका इन विभुने (ब्रह्माण्डके सर्वव्यापक स्रष्टा महाविष्णुने) वहाँ दर्शन क्यों नहीं किया? अपने द्वारा सृष्ट विश्वमें स्थित द्वारका तो इनके लिए हाथमें रखे आमलकी फलके समान है। यदि इनका विभुत्व न रहता तो ब्राह्मण-पुत्रोंको लानेके लिए प्रत्येक वर्ष द्वारका नहीं जाते। तैलिक और ताम्बूलिक (तेली एवं पनवाड़ी) जिन्हें देख सकते हैं, तो इन्हें कृष्ण क्यों दिखायी नहीं दिये? वस्तुतः कृष्णकी इच्छाके बिना कृष्णका दर्शन नहीं किया जा सकता, इसीलिए कृष्ण-दर्शन इन्हें नहीं हुआ होगा। तब ब्रह्मण्यदेव होकर भी ब्राह्मणको प्रत्येक वर्ष दुःख क्यों दिया? सोचता हूँ कि कृष्ण-दर्शनकी उत्कण्ठाका त्याग नहीं कर पाये होंगे, इसलिए अकरणीय कार्य भी किया है। ठीक है, अनुचित कार्य करें, परन्तु ब्राह्मणके पुत्रोंका हरण करनेके लिए किसी सेवकको क्यों नहीं भेजा? स्वयं ही क्यों गये! हो सकता है—द्वारकासे ब्राह्मण-पुत्रका हरण दूसरेके लिए दुःसाध्य हो। भूमा पुरुषका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि कृष्ण-नगरमें स्थित ब्राह्मणको दुःख दूँगा तो कृष्ण उसका दुःख सहन

नहीं कर पायेंगे और मुझे दर्शन प्रदान करेंगे। अतः अन्तर्यामी द्वारा प्रेरित होकर ही इस मुखर ब्राह्मणने कृष्णके निकट जाकर हर बालककी मृत्युके बाद व्यथा व्यक्त की है। अतः मैं अनुमान करता हूँ कि कृष्णका ऐश्वर्य भूमा पुरुषसे भी अधिक है। अन्ततः परम विस्मित अर्जुनने यह सब तथ्य जाननेके लिए जिज्ञासा की तब कृष्णने स्पष्ट किया कि मेरे दर्शनके लिए ही इन महापुरुषने ब्राह्मण बालकोंका हरण किया है क्योंकि ब्राह्मणके लिए ही कृष्ण मेरे पास आयेंगे, अन्य प्रकारसे नहीं। कृष्णने यह भी कहा, किन्तु मैं ब्राह्मणके लिए यहाँ नहीं आया, परन्तु हे सखा! तुम्हारे प्राणोंकी रक्षाके लिए आया हूँ। यदि ब्राह्मणके लिए आता तो प्रथम बालकके हरणके बाद ही आ जाता। इस प्रकार भगवान्ने कृपापूर्वक अर्जुनको परव्योमनाथ पर्यन्त सकल पुरुषोंका ऐश्वर्य दिखाया। इस प्रकार 'वेद-स्तव' के आरम्भसे यहाँ तक दशम स्कन्धके अन्तमें दशम आश्रय-तत्त्व कृष्णके सर्वोत्कर्षत्वका ही विशेषरूपसे वर्णन किया है। यह घटना भारत-युद्धके पूर्व घटित हुई है, किन्तु कृष्णकी श्रेष्ठ कथाके प्रस्तावमें अब वर्णित हुई है ॥६२॥

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन्।

बुभुजे विषयान् ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥६३॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस मर्त्यलोकमें पराक्रमशाली बहुत-सी लीलाएँ कीं। यहाँ उन्होंने लौकिक विषयोंका भोग किया एवं महासमृद्ध यज्ञोंका भी अनुष्ठान किया ॥६३॥

प्रववर्षाखिलान् कामान् प्रजासु ब्राह्मणादिषु।

यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवान् श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥६४॥

सर्वश्रेष्ठ पदपर आरूढ़ भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणादि प्रजाजनोंके लिए सम्पूर्ण अभीष्टोंका उसी प्रकार वितरण किया, जिस प्रकार इन्द्र उचित अवसरोंपर वारि-वर्षण करते हैं ॥६४॥

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान् घातयित्वार्जुनादिभिः ।

अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे द्विजकुमारानयनं नाम
एकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

हे राजन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने कंसादि अधार्मिक
राजाओंका स्वयं विनाश किया और अपने प्रमुख भक्तों वीर
अर्जुनादिसे बहुतोंका विनाश करवाया। उन्होंने युधिष्ठिरादि धार्मिक
राजाओंके द्वारा साक्षात् वैष्णव धर्मका प्रवर्त्तन करवाया ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके नवासीर्वे अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त।

नवतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी रानियोंका दिव्योन्माद और
उनके वंशका विस्तार

श्रीशुक उवाच—

सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकायां श्रियः पतिः।
सर्व्वसम्पत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥
स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः
कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिदद्युभिः ॥ २ ॥
नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्धिर्मतङ्गजैः।
स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥
उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु।
निर्विशङ्कङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ॥ ४ ॥
रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥
प्रोत्फुल्लोत्पलकह्वारकुमुदाम्भोजरेणुभिः ।
वासितामलतोयेषु कूजद्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥
विजहार विगाह्याम्भो हृदिनीषु महोदयः।
कुचकुङ्कुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! श्रीपति भगवान् श्रीकृष्ण अपनी द्वारकापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे। यह पुरी समस्त सम्पदाओंसे युक्त थी। इस नगरकी छटा अलौकिक थी। इसके मार्ग मदस्त्रावी उन्मत्त हाथियों, सुसज्जित पैदल योद्धाओं, सजे-धजे घुड़सवारों और सुवर्ण निर्मित रथोंकी विशाल संख्यासे सदा-सर्वदा भरे रहते थे। चारों दिशाओंमें अति मनोहर उद्यान एवं हरे-भरे उपवन दिखायी देते थे, जो फूलों-फलोंसे परिपूर्ण तरुओंकी

श्रेणियोंसे (वृक्षोंकी पंक्तियोंसे) समृद्ध थे। इनपर मण्डराते हुए भ्रमर एवं विहग-कुल अपने गुञ्जार एवं कलरवसे सम्पूर्ण वातावरणको मुखरित करते थे। यदुश्रेष्ठगण इसका सेवन करते हुए परम आनन्दित होते थे। वहाँके प्रासादोंमें नवयौवन-सम्पन्न सुन्दर-सुन्दर रमणियाँ उत्तम वेशभूषासे सुसम्पन्न रहती थीं। जब वे महलोंमें कन्दुक-क्रीड़ा करतीं, तब उनके अङ्गोंसे ऐसी द्युति निकलती, मानो बिजली चमचमा रही हो। भगवान् श्रीकृष्ण सोलह हजारसे भी अधिक पत्नियोंके एकमात्र प्राणवल्लभ थे। उन महा-प्रभावशाली श्रीकृष्णने भी अपने सोलह हजार विचित्र (अद्भुत) शरीरोंमें अपना विस्तार करके उनके साथ उतने ही महलोंमें विहार किया था। इन महासमृद्धिशाली महलोंके प्रांगणमें सुन्दर-सुन्दर सरोवर बने हुए थे। इनका जल अति विमल था। यह जल उत्पल, कल्लार, कुमुद, अम्भोज आदि विविध प्रकारके कमल-कुसुमोंकी रेणुसे सुवासित रहता था। चारों ओर पक्षियोंका कूजन सुनायी पड़ता था। जब इन जलाशयों और नदियोंमें भगवान् यथेच्छ क्रीड़ा-विलास करते, तब उन कामिनियोंके आलिङ्गनसे उनके कुच-कुङ्कुमपर लगा हुआ राग भगवान्‌के श्रीअङ्गों पर लग जाता। 'मधुरेण समापयेत्'—इस न्यायके अनुसार कृष्णके जल-विहारका वर्णन करते हुए प्रथम उद्दीपनरूपमें नगरकी रमणीयताका चित्रण किया है ॥ १-७ ॥

उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ।

वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः ॥ ८ ॥

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ।

प्रतिषिञ्चन् विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥

उस समय गन्धर्वगण बड़े हर्षके साथ मृदङ्ग, पणव, ढोल एवं आनक (नगाड़े) आदि वाद्य-यन्त्र बजाते हुए उनके चरितका कीर्तन करते। सूत, मागध एवं बन्दीगण वीणादि वाद्योंके द्वारा उनकी स्तुति करते। श्रीकृष्णकी पत्नियाँ हँसती हुई उनपर

पिचकारियोंसे जल छिड़कर्ती और तब भगवान् जलसे अभिषिक्त होकर उन्हें भी पिचकारियोंके जलसे सींच देते। श्रीकृष्ण अपनी रानियोंके साथ परस्पर जल-सेचनपूर्वक क्रीड़ा करते, जिस प्रकार यक्षराज कुबेर यक्षणियोंके साथ क्रीड़ा करते हैं (यह दृष्टान्त आंशिक है) ॥ ८-९ ॥

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः

सिञ्चन्त्य उद्धतबृहत्कबरप्रसूनाः ।

कान्तं स्म रेचकजिहीर्षयोपगुह्य

जातस्मरोत्स्मयलसद्वदना विरेजुः ॥ १० ॥

जलके सिञ्चनसे कामिनियोंके पहननेके वस्त्र भीग जाते, जिससे उनके वक्षःस्थल एवं जंघाएँ झलकने लगतीं। बड़ी-बड़ी चोटियों और जूड़ोंसे पुष्प गिरने लगते। उनकी पत्नियाँ जल-सेचन-यन्त्र (पिचकारियाँ) छीन लेनेकी अभिलाषासे (बहानेसे) अपने प्रियतमका आलिङ्गन करतीं। इस प्रकार श्रीकृष्णका स्पर्श पाकर रानियोंका कामवेग बढ़ जाता और मुखपर उत्कृष्ट मुसकान खिल उठती, जिससे उनका सौन्दर्य और भी निखर आता ॥ १० ॥

कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्त्रक्

क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ।

सिञ्चन् मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो

रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥ ११ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी निज वनमाला उन रानियोंके कुच-कुङ्कुम रागसे रज्जित हो जाती। क्रीड़ामें पूरी तरह मग्न हो जानेके कारण भगवान्की अलकावलियोंके बन्धन ढीले पड़ जाते। पत्नियोंके जल-सिञ्चनके द्वारा अभिषिक्त होकर प्रत्युत्तरमें वे स्वयं भी उन्हें जलसे सराबोर कर देते। उनके साथ इस प्रकार विहार करते, मानो कोई गजपति हथिनियोंसे परिसेवित होकर विहार करता है ॥ ११ ॥

नटानां नर्तकीनाञ्च गीतवाद्योपजीविनाम्।

क्रीडालङ्कारवासांसि कृष्णोऽदात् तस्य च स्त्रियः ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण एवं उनकी महिषियाँ जलक्रीड़ाके समय अपने पहने हुए वस्त्र एवं आभूषण उन नर्तक और नर्तकियोंको प्रदान कर देते, जो गीत-वाद्योंसे ही अपनी जीविकाका निर्वाह करते थे ॥ १२ ॥

कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः।

नर्मश्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हता धियः ॥ १३ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नियोंके साथ इसी प्रकार विहार किया करते। वे अपनी गति-भङ्गिमा, सप्रेम संभाषण, कटाक्षपूर्ण (तिरछी) चितवन, मन्द-मन्द मुसकान, मधुर हास्य, परिहासमयी क्रीड़ा और आलिङ्गन आदिसे रानियोंका चित्त आकर्षित कर लिया करते थे ॥ १३ ॥

ऊचुर्मुकुन्दैकधियोऽगिर

उन्मत्तवज्जडम्।

चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥ १४ ॥

परीक्षित्! इन कृष्णगतप्राणा रानियोंके श्रीकृष्ण ही प्राणसर्वस्व थे। वे पद्मपलाशलोचन श्रीकृष्णके चिन्तनमें इतनी मग्न रहती थीं कि कभी-कभी तो उन्मत्तके समान असम्बद्ध (विचार-शून्य) बातें करने लगती थीं। इन बातोंको मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, सुनो।

रानियाँ उन्मत्तके समान बुद्धिहारा (हतबुद्धि) हो गयी थीं मानो किसीका चित्त धतूरा खानेसे विक्षिप्त हो गया हो। श्रीकृष्णका परोक्षरूपसे चिन्तन करते हुए वे जड़ अर्थात् विचार-रहित हो गयी थीं। यह दशा प्रेमकी छठी भूमिका अनुरागका भेद है, जिसे प्रेम-वैचित्री कहा जाता है। इसका लक्षण है—प्रियतमके निकट होनेपर भी प्रेमके उत्कर्ष स्वभावके कारण विरह-बुद्धिसे परम दुःख होने लगता है। अग्रिम दस श्लोकोंमें उनकी उन्माद दशाका वर्णन हुआ है। महिषियोंको कुररी पक्षी, चक्रवाकी, समुद्र,

चन्द्रमा, मलयवायु, मेघ, कोयल, पर्वत, नदियों एवं हंसमें अपने ही भाव दिखायी दे रहे थे॥ १४॥

श्रीमहिष्य ऊचुः—

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्व्विद्धचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

महिषियोंने कहा—हे कुररी! अज्ञात-तत्त्व ईश्वर श्रीकृष्ण इस जगत्में अखण्ड-बोध छिपाकर रात्रिकालमें सोये हुए हैं। (पता नहीं, कहाँ सोये हैं) तुम्हें नींद नहीं आ रही क्या, जो तुम उनकी निद्रा भङ्ग करनेके लिए विलाप कर रही हो, परन्तु वे शयन कर रहे हैं, अतः ऐसा करना उचित नहीं है। अथवा हे सखि! नलिन-नयन श्रीकृष्णके मधुर हास्य एवं उदार तथा कौतुकमय लीला-चिन्तनसे हमारे समान तुम्हारा चित्त भी अतिशयरूपसे विद्ध हो गया है क्या?॥ १५॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धु-
स्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि।
दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां
किंवा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम्॥ १६ ॥

हे चकवी! रात्रिके समय तुम अतिशय करुणस्वरसे क्यों क्रन्दन कर रही हो? क्या तुम्हें अपने प्रियतम दिखायी नहीं दे रहे हैं? अपनी दोनों आँखें बन्द किये हुई हो—क्यों? अथवा हमारे समान तुम भी अच्युत श्रीकृष्णकी दासी बनकर उनके श्रीचरणों द्वारा सेवित पुष्प-मालाको अपने केश-पाशमें धारण करनेकी इच्छासे रो रही हो॥ १६॥

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्व-
त्रलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ।

किंवा मुकुन्दापहतात्मलाञ्छनः,
प्राप्तां दशां त्वञ्च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥

हे प्रिय जलनिधे! क्या तुम्हें स्वभावतः नींद नहीं आती, जो जागते रहते हो और सर्वदा गर्जना करते रहते हो। अथवा ऐसा तो नहीं है कि मिलन-प्रसङ्गमें (सम्भोगकालमें) श्रीकृष्णने जिस प्रकार हमारे कुङ्कुमादि चिह्नोंको हर लिया था, उसी प्रकार तुम्हारे भी लक्ष्मी, कौस्तुभ आदि चिह्नोंको हर लिया है, जिसके कारण तुम इस दुर्लभ्य दशाको प्राप्त हो गये हो ॥ १७ ॥

त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि।
कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं
विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥

हे चन्द्र! क्या तुम्हें राजयक्ष्मा रोग ने आक्रान्त कर लिया है, जो तुम इतने क्षीण हो गये हो और अपनी किरणोंसे अन्धकारको भी नहीं हटा पा रहे हो अथवा तुमने भी हमारे समान ही श्रीकृष्णकी रहस्यमयी एवं उत्साहमयी बातोंको विस्मृत कर दिया है और इस विस्मृतजात-अनुरागके कारण तुम्हारी वाणी स्तब्ध हो गयी है—ऐसा प्रतीत हो रहा है ॥ १८ ॥

किं न्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम्।
गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥

हे मलयानिल! तुम हमसे क्यों अप्रसन्न हो? हमने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है? अरे! गोविन्दके कटाक्षपातरूप बाणों द्वारा हमारा चित्त तो पहले-से ही विदीर्ण हुआ पड़ा है और तुम रन्ध्र-पथसे हमारे हृदयमें कामका सञ्चार कर रहे हो। तुम किसलिए इस विपद्के समय हमसे वैरका व्यवहारकर रहे हो ॥ १९ ॥

मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं
श्रीवत्साङ्गं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः।

अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः

स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः ॥ २० ॥

श्रीमान् जलधर! तुम निश्चय ही लोगोंके आतप-जनित दुःखोंको हरण करनेके कारण यादवेन्द्र श्रीकृष्णके दयित सखा बने हो और इसलिए उनके प्रेममें आसक्त-चित्त होकर हमारे समान श्रीवत्स-लाञ्छन श्रीकृष्णका स्मरण करते रहते हो। उनका और तुम्हारा वर्ण तो समान है, किन्तु उनके श्रीवत्स चिह्नमें तुम्हारी अधिक आसक्ति है। उनका निरन्तर स्मरण करनेके कारण तुम्हारा चित्त हमारे ही समान दुःखी एवं मलिन हो गया है, तभी अति उत्कण्ठित भावयुक्त होकर नेत्रोंसे पुनः-पुनः जल-धाराएँ (आँसू) विसर्जित कर रहे हो। हाय! तुमने किसलिए उनके साथ सख्य भावका स्थापन किया है? अरे! उनके प्रसङ्ग तो अतिशय दुःख प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ २० ॥

प्रियरावपदानि

भाषसे

मृतसञ्जीविकयानया

गिरा।

करवाणि किमद्य ते प्रियं

वद मे वलितकण्ठ कोकिल ॥ २१ ॥

हे रमणीय कण्ठ (अखिल-प्रिय) कोयल! तुम्हारी मधुर बोलीमें तो मधुर बोलनेवाले प्रियतम, प्रियवर श्रीकृष्णकी मधुर-वाणीकी झङ्कार सुनायी दे रही है। तुम्हारी कुहक तो विरहसे मृत प्रेमियोंको सञ्जीवित करनेवाली है, परन्तु तुम्हारा विचित्र सुन्दर कण्ठ इस विरहमें हमें प्रिय प्रतीत न होकर हमारे हृदयको और जला रहा है। तुम आदेश करो। आज हम तुम्हारा क्या प्रिय करें? ॥ २१ ॥

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे

क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम्।

अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रि

वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥

हे महामते (रैवतक) पर्वत! तुम निर्वाक एवं निस्पन्द भावसे ही खड़े हो, न कुछ बोलते हो और न ही हिलते-डुलते हो, प्रतीत होता है कि तुम किसी विशिष्ट प्रयोजनीय विषयका चिन्तन कर रहे हो। अच्छा, समझमें आ गया। तुम भी हमारे उन्नत स्तनोंके समान अपने ऊँचे शिखरोंपर श्रीकृष्णके चरणकमलोंको धारण करना चाहते हो। यदि ऐसा ही है, तो परिणाममें तुम्हें भी हमारे समान उपेक्षा ही मिलेगी॥ २२॥

शुष्यद्ध्रदाः करशिंता बत सिन्धुपत्न्यः

सम्प्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः।

यद्वद्वयं मधुपतेः प्रणयावलोक-

मप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकशिंताः स्म॥ २३॥

हे सिन्धुपत्नी नदियो! इस ग्रीष्मकालमें तुम्हारे प्रियतम समुद्र मेघोंके द्वारा अमृत-वर्षण करके तुम्हें आनन्द-प्रदान नहीं कर रहे हैं न? अहो! हम जिस प्रकार अपने प्रियतम स्वामी श्रीकृष्णकी प्रणय-दृष्टि (प्रेमभरी चितवन) के अभावमें वञ्चित होकर अपना हृदय खो बैठी हैं और इस कारण अतिशय कृशताको प्राप्त हो रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारा चित्त भी अपहृत होनेके कारण तुम्हारा हृद शुष्क हो गया है और शरीर कृश हो गया है। कमलोंकी शोभा भी दिखायी नहीं देती॥ २३॥

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां

दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा।

किंवा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं

क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम्॥ २४॥

हे हंस! तुम्हारा आगमन तो सुखपूर्वक हुआ है न! आओ, आओ और बैठो! प्रिय हंस! शूरवंशी श्रीकृष्णकी वार्त्ता कहो। हम तो समझती है कि तुम उनके दूत हो। जरा बतलाओ तो, ये अजित श्यामसुन्दर सुखपूर्वक तो हैं न? वे अपने पूर्वकालीन वचनोंका स्मरण तो करते हैं न? हे क्षुद्रवार्त्तावह! (हे क्षुद्रके

दूत) ! हम उनकी सेवा किसलिए करें? हम तुम्हारा अनुनय क्यों स्वीकार करें? देखो, यदि वे रति-विहारके लिए हमारा आह्वान कर रहे हों, तो, जो लक्ष्मी हमें वञ्चित करके अकेले ही उनकी सेवा कर रही हैं, तो उन लक्ष्मीको छोड़कर उन कामप्रद प्रियतमको अकेले ही यहाँ आनेके लिए कहना। यदि तुम कहते हो कि लक्ष्मी उनके प्रति एकनिष्ठ चित्त वाली हैं; अतः उनका परित्याग असम्भव है तो बतलाओ जरा, स्त्रियोंमें क्या वही एकमात्र एकनिष्ठ चित्तवाली हैं, क्या अकेली वे ही अनुरक्त हैं, हम क्या वैसी नहीं हैं ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच—

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे।

क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—परीक्षित्! श्रीकृष्णकी प्रिय पत्नियाँ ब्रह्मादि योगेश्वरोंके भी अधिपति श्रीकृष्णके प्रति अत्यन्त अनुरक्त थीं। इसी अनुरागसे उन्होंने परमपदको प्राप्त कर लिया।

इन महिषियोंकी प्राप्य वस्तु क्या थी—“श्रीकृष्ण विषयक अनुराग।” वैष्णवोंकी प्राप्य वस्तु यही प्रेमाभक्ति है। ये महिषियाँ अप्राकृत भगवान्की नित्य प्रेयसियाँ हैं। इन्हें भगवान्का सच्चिदानन्द विग्रह प्राप्त था। योगियोंके निर्विशेष ब्रह्म-आस्वादसे अधिक इन्होंने भगवान्के माधुर्यका आस्वादन किया था। इनके लिए मोक्षादि फलोंकी प्राप्ति अवाञ्छनीय है। प्रेमाधिक्य ही इनकी प्राप्य वस्तु है। ये भावोन्मादकी चरम सीमामें गोपियोंकी भाँति श्रीकृष्णसे तादात्म्यावस्थाको प्राप्त हो गयी थीं, जिस प्रकार रासके समय अन्तर्धानमें गोपियोंके उन्मत्त वाक्य थे—“मैं कृष्ण हूँ, देखो! मेरी गति (चाल) कैसी है।” कुररी आदिसे प्रश्नोंके बाद उनकी यह अवस्था प्रेम-वैचित्री दशाको दिखलाती है। अनुराग विलासिनी इन पट्टमहिषियोंकी प्रेम-दशा कृष्णके साथ अनुराग पर्यन्त वर्णित हुई है। महिषियोंकी प्रेमदशा आगन्तुक है। ये द्वारकालीलाके माधुर्य भावकी सिद्ध परिकर हैं ॥ २५ ॥

श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः।

उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनाञ्च किं पुनः ॥ २६ ॥

जिन श्रीकृष्णके विषयमें कोई सङ्गीतकी उच्च स्वर-लहरीमें विविध सुरम्य भावोंसे उनकी कीर्तिका गान करे अथवा कोई साधारण सङ्गीतमें सामान्य स्वरोंसे साधारण भावसे उनका कीर्तन करे तो उस सङ्गीतके श्रवणमात्रसे ही कामिनियोंका चित्त बलपूर्वक उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है, तब श्रीकृष्णके साक्षात् अवलोकनसे उनकी भार्याओंका चित्त जिस प्रकारसे अपहृत हो गया था, उस विषयमें कहना ही क्या है ? ॥ २६ ॥

याः सम्पूर्य्यचरन् प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः।

जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥ २७ ॥

जिन स्त्रियोंने जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति मानकर विशुद्ध प्रेमभावसे उनकी पाद-संवाहनादि सेवाएँ सम्यक् प्रकारसे कीं, उनके पुण्योंके (अथवा तपस्याके) विषयमें क्या कहा जाय ॥ २७ ॥

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः।

गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम् ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही सत्पुरुषोंकी एकमात्र गति हैं। श्रीकृष्णने इस प्रकार वेद-विहित धर्मोंका बार-बार आचरण करके यह दिखला दिया कि घर ही धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गके साधनका स्थान है ॥ २८ ॥

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम्।

आसन् षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥ २९ ॥

इसीलिए गृहस्थोचित श्रेष्ठ धर्मका आश्रय लेकर वे व्यवहार कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थीं ॥ २९ ॥

तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः ।

रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥

हे राजन्! स्त्रियोंमें रत्नस्वरूप उन सब महिषियोंमें रुक्मिणी आदि जो आठ प्रधान महिषियाँ थीं, मैंने पहले ही उनके और उनके पुत्रोंके विषयमें उल्लेख कर दिया है ॥ ३० ॥

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् ।

यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥

सत्यसङ्कल्प जगदीश्वर श्रीकृष्णने उन आठ पटरानियोंके अतिरिक्त अपनी दूसरी पत्नियोंसे भी दस-दस पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३१ ॥

तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः ।

आसन्नदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्णके उन सभी अप्रतिहत प्रभावशाली पुत्रोंमेंसे जो अट्टारह महायशस्वी, महान् योद्धा थे, उनके नाम सुनो ॥ ३२ ॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च ।

साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥

पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः ।

चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥

वे थे—प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि एवं न्यग्रोध ॥ ३३-३४ ॥

एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः ।

प्रद्युम्न आसीत् प्रथमः पितृवद् रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥

हे राजेन्द्र! मधुसूदन भगवान्के इन सभी पुत्रोंमें रुक्मिणी-पुत्र प्रद्युम्न ही समस्त गुणोंमें पिताके समान सर्वश्रेष्ठ थे ॥ ३५ ॥

स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः ।

तस्यां ततोऽनिरुद्धोऽभूत् नागायुतबलान्वितः ॥ ३६ ॥

महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे विवाह किया था। उसके गर्भसे प्रद्युम्नके अनिरुद्ध नामक पुत्र हुए, जिनमें दस हजार हाथियोंका बल था ॥ ३६ ॥

स चापि रुक्मिणः पौत्री दौहित्रो जगृहे ततः।

वज्रस्तस्याभवदयस्तु

मौषलादवशेषितः ॥ ३७ ॥

रुक्मीके दौहित्र अनिरुद्धने रुक्मीकी पौत्री रोचनासे विवाह किया था। अनिरुद्धकी इस पत्नीके गर्भसे वज्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। विप्र-शापसे हुए मौषल-युद्धमें एकमात्र यही बचे रहे थे ॥ ३७ ॥

प्रतिबाहुरभूत् तस्मात् सुबाहुस्तस्य चात्मजः।

सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥

वज्रसे प्रतिबाहु, प्रतिबाहुसे सुबाहु, सुबाहुसे शान्तसेन और शान्तसेनसे शतसेनका जन्म हुआ था ॥ ३८ ॥

न ह्येतस्मिन् कुले जाता अधना अबहुप्रजाः।

अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥ ३९ ॥

हे राजन्! इस कृष्णवंशमें ऐसा कोई भी नहीं हुआ, जो निर्धन, अल्प सन्तानवाला, अल्पायु अथवा ब्राह्मण-विद्वेषी हो ॥ ३९ ॥

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम्।

संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥

परीक्षित! सारे यदुवंशियोंकी गणना तो दूर रहे, इनमें जो महायशस्वीके रूपमें विख्यात थे, उनकी भी गिनती यदि की जाय, तो दस हजार वर्ष भी कम पड़ जायेंगे ॥ ४० ॥

तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च।

आसन् यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥

सुना गया है कि यदुवंशी कुमारोंको शिक्षा प्रदान करनेके लिए तीन करोड़ अठ्ठासी लाख अध्यापक नियुक्त थे ॥ ४१ ॥

सङ्ख्यानां यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम्।

यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥

परीक्षित्! इन यादवोंकी गणना करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? स्वयं महाराज उग्रसेन पद्म संख्यक परिजनोंसे परिवेष्टित होकर विराजमान रहते थे ॥ ४२ ॥

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः।

ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ॥ ४३ ॥

हे राजन्! प्राचीन कालमें देवासुर संग्राममें जो भयानक दैत्य मारे गये थे, वे ही मनुष्योंके राजाओंके रूपमें उत्पन्न हुए थे और प्रजाओंका उत्पीड़न करते थे ॥ ४३ ॥

तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले।

अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४४ ॥

इन्हींके दमनके लिए श्रीहरिके द्वारा आदेश दिये जानेपर देवता यदुकुलमें अवतीर्ण हुए थे और एक-सौ-एक वंशोंमें विभक्त हो गये थे ॥ ४४ ॥

तेषां प्रमाणं भगवान् प्रभुत्वेनाभवद्भरिः।

ये चानुवर्त्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥

वे समस्त ही श्रीकृष्णको ईश्वर और अपना आदर्श भी मानते थे। वेदादिके प्रति उनकी जितनी श्रद्धा थी, श्रीकृष्णके प्रति भी वे उतने ही श्रद्धावान् थे। उनके समीपमें रहकर वे उनकी सेवामें ही निरत रहते थे। वे सभी यादव सर्वतोभावसे दूसरे सभी यादवोंकी अपेक्षा अधिक वृद्धि एवं उन्नतिको प्राप्त हो गये थे ॥ ४५ ॥

शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ।

न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥

कृष्णगत चित्त इन वृष्णिवंशी यादवोंका सोना, बैठना, भ्रमण करना, आलाप करना, क्रीड़ा, स्नान इत्यादि शारीरिक गतिविधियाँ

स्वतः यन्त्रवत् चला करती थीं। इन व्यस्तताओंमें वे अपनी सुध-बुध भूल गये थे॥ ४६॥

तीर्थ चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं
विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः।
यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य॥ ४७॥

परीक्षित्! भगवान्के चरणोंकी धोवन गङ्गा समस्त तीर्थोंमें प्राचीन है, परन्तु यदुवंशमें श्रीकृष्ण-कीर्तिरूप जिस तीर्थकी उत्पत्ति हुई, उससे गङ्गाकी महिमा अपेक्षाकृत कम हो गयी और वह कृष्ण-कीर्ति (सुयश) समस्त तीर्थोंके ऊपर विराजमान हो गयी। भगवान्से प्रेम करनेवाले उनके मित्रों एवं उनसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंने उनके ही समान नित्य स्वरूप प्राप्त किया था। जिनकी कृपा प्राप्त करनेके लिए ब्रह्मादि देवताओंने भी यत्न किया था, वही लक्ष्मीदेवी दूसरोंके लिए अप्राप्य होकर एकमात्र कृष्ण-सेवामें ही रत रहती थीं। जिनका नाम श्रवण अथवा कीर्तन करनेपर समस्त प्रकारके अमङ्गल नष्ट हो जाते हैं, जिन्होंने ऋषि-वंशमें धर्मका प्रवर्तन किया है, हे राजन्! ऐसे उन सर्वसंहारक, कालमूर्ति एवं दुरन्त प्रभावयुक्त चक्रधारी श्रीकृष्णके लिए इस भू-भारका हरण करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

दशमस्कन्ध श्रीकृष्ण नित्यलीलाका 'रत्नाकर' है। इसका उपसंहार करते हुए श्रीशुकदेवजी अन्य अवतारोंसे श्रीकृष्णकी पाँच विशेषताएँ बतलाते हैं—

१. जिन्होंने यदुवंशमें जन्म-ग्रहण करके कृष्ण-कीर्ति महातीर्थकी अपेक्षामें अपने पाद-धौत गङ्गादि तीर्थोंकी महिमाको कम किया है। इससे पूर्व गङ्गा ही सर्वतीर्थ शिरोमणि थी, अब कृष्ण-कीर्ति ही गङ्गासे अधिक हो गयी। यह प्रथम आश्चर्य है।

२. द्वितीय आश्चर्य है कि जिनके शत्रु कंसादि ने सायुज्य मुक्ति एवं स्निग्ध (परमप्रेमवती) गोपियों आदिने स्वरूप माधुर्य

प्राप्त किया है। दोनों ही श्रेणीके जनोको श्रीविग्रहका सानिध्य प्राप्त हुआ है।

३. तृतीय आश्चर्य है कि जिनकी कृपाका लेशमात्र प्राप्त करनेके लिए ब्रह्मादि यत्न करके भी उन लक्ष्मीको जय नहीं कर पाये, वे लक्ष्मीजी कठिन तपस्या द्वारा भी व्रजदेवियोंके समान श्रीकृष्णको वशीभूत नहीं कर पायीं और रासलीलामें प्रवेश नहीं पा सकीं।

४. चतुर्थ आश्चर्य यह है कि जिनके 'कृष्ण' नामके दो अक्षर 'कृष्+ण' नारायण आदि सभी भगवत्-अंशोंके नामोंसे उत्कृष्ट हैं तथा अमङ्गल, अविद्याका नाश करनेवाले हैं अथवा मुक्त प्रग्रह-वृत्ति द्वारा मङ्गलका सर्वोत्कर्षत्व प्रकट करनेवाले हैं। उच्चारण करने पर कृष्णनाम श्रुतमय बन जाता है अर्थात् यह सर्वसाधनके फलोंके उत्कर्षका मन्थन करके श्रवण एवं कीर्तन द्वारा अपनी सर्वोत्कर्षताको प्रकट करता है। पवित्र विष्णुनामको तीन बार उच्चारण करने पर और कृष्णनामका एक बार उच्चारण करने पर समान फल प्राप्त होता है—यह ब्रह्माण्ड पुराणमें कहा गया है।

५. पञ्चम आश्चर्य यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण धर्मके चारों पद (चरण) दया, तपस्या, शौच एवं सत्यका स्थापनकर पृथ्वीकी रक्षा करते हैं जब कि प्रत्येक युगमें धर्मका एक-एक चरण क्षीण हो जानेके कारण उस समय धर्मका एक ही चरण शेष रह गया था। उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं थी परन्तु धर्मके चारों चरणोंके उदयसे ब्रह्माण्ड विस्मित हो उठा था ॥ ४७ ॥

जयति जननिवासो देवकीजन्मवासो
यदुवरपरिषत् स्वैर्द्वीर्भिरस्यत्रधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम् ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही अन्तर्यामीरूपमें समस्त जीवोंके आश्रय स्थान हैं अर्थात् सभीके हृदयोंमें उनका नित्य निवास है। 'देवकीके उदरसे जन्म' जिनके लिए केवल वाद मात्र है, वस्तुतः वे अजन्मा हैं। यदुश्रेष्ठ उनके सेवक हैं और वे यादवोंके अधिपति हैं। इच्छामात्रसे विनाश करनेमें समर्थ होनेपर भी जिन्होंने अपने बाहुबलसे अथवा अपने ही समान बलवाले अर्जुनादि भक्तोंके द्वारा धर्म-विरोधी असुरोंका संहार करवाया, जो स्थावर-जङ्गमोंके संसाररूप दुःखको हरनेवाले हैं, वे ही व्रज-पुरमें अपने सेवकोंके विरह-दुःखको हरनेवाले हैं। उनका मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त सुन्दर मुखारविन्द मथुरा, द्वारका एवं व्रजपुरीमें स्थित स्त्रियोंके हृदयमें कामका सञ्चार करनेवाला है। ऐसे उन श्रीकृष्णकी जय हो, जय हो।

श्रीशुकदेव गोस्वामी कहते हैं कि हे परीक्षित्! हाय! हाय! इस प्रकार शोक मत करो कि कृष्ण अब तक क्यों नहीं रहे। मनुष्योंमें, गोपोंमें एवं यादवोंमें उनका निवास है, वे जननिवास हैं, उनकी सार्वकालिक स्थिति कही गयी है। उनकी सर्वोत्कृष्टरूपसे जय वर्तमान है। 'जन निवासः' उनका विशेषण है।

देवकी-वसुदेव एवं नन्द-यशोदा दोनोंसे ही जन्मका सिद्धान्त यहाँ कहा गया है। आदि पुराणमें नन्द भार्याके दो नाम बतलाये गये हैं—यशोदा एवं देवकी। 'देवकी जन्मवादः', 'देवकीसे जन्म' एक वाद है, किन्तु वे परमात्मा सर्वघटवासी हैं ॥ ४८ ॥

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्त-

लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ।

कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य

श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ४९ ॥

परीक्षित्! यदुवर भगवान् श्रीकृष्ण पूर्वोक्तरूपसे अपने द्वारा प्रवर्तित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिए मत्स्य, कूर्मादि विविध मूर्तियाँ धारण करते हैं। इन अवतार-लीलाओंका स्मरण करनेसे मनुष्योंके

कर्मबन्धन क्षीण हो जाते हैं तथा कर्म-कषाय नष्ट होकर नैष्कर्म्य भाव प्राप्त हो जाता है। जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी श्रद्धापूर्वक सेवा करना चाहते हैं, उसे उनके तद्-तद् अवतारोंके अनुरूप उनकी लीलाओंका श्रवण-स्मरण करना चाहिये ॥ ४९ ॥

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द-
श्रीमत्कथा-श्रवणकीर्तनचिन्तयैति ।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्ग
ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदथाः ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीब्रह्मसूत्र-भाष्ये पारमहंस्यां
संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे श्रीमहिषीगीतं नाम
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इति दशमस्कन्धोत्तरार्धः सम्पूर्णः ॥

हे राजन्! मानव नित्यप्रति निष्ठापूर्वक भगवान् मुकुन्दकी सुरम्य कथाओंका श्रवण, कीर्तन एवं चिन्तन करे, ऐसा करनेपर क्रमशः अभिवृद्धित भक्ति-बलसे वे दुर्लभ-कालके प्रभावको अतिक्रमण कर जायेंगे और भगवान्के नित्य धामकी प्राप्ति कर सकेंगे। कालकी गतिके परे पहुँचा नहीं जा सकता, परन्तु भक्त कालके प्रभावका भी अतिक्रमण कर जाते हैं। इसी परम धामकी प्राप्तिके लिए प्राचीनकालमें राजाओंने राज्यका परित्याग कर दिया था और वे भक्तिपूर्वक तपस्याके लिए वनमें चले गये थे।

श्रीपाद चक्रवर्ती ठाकुर प्रार्थना करते हैं कि—

श्रीगोपालकृष्ण यदि मेरे वचनरूपी गायोंको कृपापूर्वक स्वीकार करते हैं तो उनके प्रिय भक्तगण अमृत तुल्य दुग्ध-पान करके अप्रतिहत आनन्द प्राप्त कर सकते हैं ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके नव्वेवें अध्यायका
श्लोकानुवाद समाप्त ।